# THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180826

UNIVERSAL
LIBRARY

**OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY**

Call No. H891.21 R165 Accession No. PG H1252

Author श्री महाकाव्यीय रामायण -

Title पूर्वार्द्ध · 1956 ·

This book should be returned on or before the date last marked below

# श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

पूर्वार्द्ध

[आदिकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड और सुन्दरकाण्ड]

का

## हिन्दी-भाषानुवाद

[ सचित्र ]

अनुवादक

पण्डित गोपाल शर्म्मा

प्रकाशक

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), लिमिटेड, प्रयाग

१९५६

मूल्य ६॥)

मुद्रक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग

# वक्तव्य

वाल्मीकीय रामायण के प्रणेता आदि-कवि वाल्मीकि हैं। भारत के अन्यान्य महाकवियों की भाँति इन आदि-कविजी की भी जीवन-घटनाओं का ठीक-ठीक सिलसिलेवार पता नहीं लगता कि इनका जन्मस्थान कौन सा जनपद था; ये किस वंश के रत्न थे और ऐसे विशाल ग्रन्थ का प्रणयन इन्होंने कहाँ पर और किस तरह किया; इसके प्रथम इन्होंने किसी और भी पुस्तक की रचना की थी या नहीं। इनके सम्बन्ध में जो कुछ ज्ञात हुआ है, उसकी भित्ति अनुमान और परम्परा-प्राप्त जनश्रुति है। भारत के किसी भी प्राचीन महाकवि ने प्रायः अपना कोई परिचय, अपने ग्रन्थ में, नहीं दिया है। वे तो अपनी कृति के भीतर इस प्रकार छिपे बैठे हैं कि सदियाँ बीत गई हैं और खोज करनेवाले उन्हीं के वाग्जाल में उन्हें ढूँढ़ रहे हैं। असल बात यह है कि भारत-वासियों को नाम की भूख नहीं थी, वे तो काम कर गये हैं। अस्तु, इस खोज के फलस्वरूप कोई-कोई बात उन कवियों के सम्बन्ध में जब-तब प्रकट हो जाया करती है।

भारत के महाकाव्यों में सबसे प्राचीन रामायण और महाभारत हैं। दोनों ही ग्रन्थ अपने-अपने प्रणेताओं की कुशलता की चरम सीमा के निदर्शक हैं। दोनों की ही रचना-शैली अपूर्व है। एक ने अपने वर्ण्य-विषय का नायक इक्ष्वाकुवंशी श्रीरामचन्द्र को चुना और उनकी जीवन-घटनाओं को वह आदर्श रूप प्रदान किया कि जिसकी प्रशंसा न केवल भारत में प्रत्युत सर्वत्र हो रही है, और होती रहेगी; दूसरे (व्यासदेव) के वर्ण्य-विषय के नायक नटनागर श्रीकृष्णचन्द्र हैं, जिनकी लीलाओं को उन्होंने व्यवस्थित रूप प्रदान करके सारी उलझनों में एक तारतम्य पैदा कर दिया है।

इस समय पश्चात्य विद्वानों का यह प्रश्न है कि रामायण का प्रणयन पहले हुआ अथवा महाभारत का? विद्वानों ने इस पर बहुत कुछ विचार किया है। एक पक्ष का कथन है कि महाभारत में रामायण की कथा की चर्चा है। इसके सिवा रामायण में महाभारत के पात्रों या इन्द्रप्रस्थ का भी उल्लेख नहीं है। और, रामायण के अनेक शब्द, वाक्य, वचन तथा श्लोक तक महाभारत में पाये जाते हैं। इससे प्रकट है कि महाभारत का प्रणयन पीछे से हुआ। प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में महाभारत का उल्लेख होने और रामायण का उलेख न होने का हवाला देकर दूसरा पक्ष रामायण का प्रणयनकाल महाभारत के अनन्तर मानता है। इस प्रकार एक पक्ष दूसरे पक्ष की युक्ति का खण्डन करता है। साथ ही कुछ लोगों का कथन है कि बहुत सम्भव है, किसी तीसरे ही स्थान से दोनों ग्रन्थों में वे बातें आई होंगी जो कि दोनों में एक सी पाई जाती हैं। अस्तु।

अब यदि यह मान लिया जाय कि रामायण का प्रणयन पीछे से हुआ तो वाल्मीकिजी "आदि-कवि" नहीं माने जा सकते; किन्तु उनको यह सम्मान सभी लोग देते आ रहे हैं। पाश्चात्य पण्डितों ने इसका

यह उत्तर दिया है कि वाल्मीकिजी की कविता इतनी सुन्दर, मनोहर और प्रौढ़ हुई कि और-और कवि लोग उन्हीं का पदानुसरण करने लग गये, और इस कारण उनको "आदि-कवि" का सम्मान प्राप्त हो गया।

एक प्रख्यात पण्डित का मत है कि वाल्मीकि से पहले श्लोक (अनुष्टुप् छन्द) का प्रयोग न होता था; पहले पहल उन्हीं ने श्लोक को यह स्वरूप प्रदान किया, और अन्त में जाकर कविकुल-तिलक कालिदास का "श्लोक" सर्वाङ्ग मनोहर हुआ, अर्थात् कालिदास ने जैसा बढ़िया श्लोक लिखा है वैसा किसी और कवि से नहीं बन पड़ा। फलतः पथ-प्रदर्शक आदि-कविजी ही हैं।

यहाँ तक वाल्मीकिजी और उनके काव्य के सम्बन्ध में खोज करनेवाले पण्डितों के मत का, संक्षेप में, उल्लेख किया गया है। यहाँ, भारतवर्षीय पण्डितों की, सनातन समझ तो यह है कि क्रौञ्च पक्षी के जोड़े में से एक पर बहेलिये को बाण छोड़ते देख आदिकवि के मुँह से "उमड़ चली कविता सरिता सी।" यह दैवी घटना है। कवि के मानस में वे भाव पहले से ही अन्तर्निहित थे। इस बहेलिये की करतूत ने कवि के हृदय पर नश्तर का काम कर दिया जिससे भाव-सरिता प्रकट रूप में प्रवाहित हो गई।

वाल्मीकीय रामायण का सम्मान सभी देशों में और अधिकांश लोगों में है। यह काव्य संस्कृत भाषा में है जिसके समझनेवालों की संख्या परिमित है। इस कारण इसका अनुवाद बीसियों भाषाओं में हो गया है और इस प्रकार भारत से सुदूर-स्थित संसार के सभी प्रसिद्ध देशों तक में वाल्मीकीय रामायण मौजूद है। यहाँ, भारतवर्ष की सभी समुन्नत भाषाओं में, इसके कई अनुवाद हो गये हैं। इधर हिन्दी में भी इसके दो-एक रूपान्तर हैं; किन्तु उनकी भाषा ऐसी परिमार्जित और बोलचाल की नहीं कि जिससे सभी लोग आसानी से कवि के भावों को हृदयङ्गम कर सकें। इसी बात पर लक्ष्य करके यह सचित्र हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया गया है। इसकी भाषा यथासम्भव सरल कर दी गई है, छोटे-छोटे वाक्य हैं और विराम-चिह्नों का भी यथेष्ट उपयोग किया गया है। यह सब होने पर भी इसमें विशेषता यह है कि मूल का अनुधावन किया गया है। कोई भी प्रसङ्ग छूटने नहीं पाया। आदि-कवि के समग्र भावों को अक्षुण्ण रखने की चेष्टा की गई है। आशा है, रामायण से प्रेम रखनेवाली हिन्दी जाननेवाली जनता में इसका यथेष्ट प्रचार होगा।

श्री काशीधाम,
विजयादशमी, संवत् १९८०

—सम्पादक

———

# सूची


| सर्ग | | पृष्ठ |
|---|---|---|
| | **आदिकाण्ड** | ... १ |
| १ | " नारदजी के द्वारा समस्त रामायण का संक्षिप्त वर्णन | ... ३ |
| २ | " व्याध को शाप और रामायण बनाने के लिए ब्रह्मा का उपदेश | ... ६ |
| ३ | " ध्यान से ऋषि का सम्पूर्ण रामचरित को जानना | ... ८ |
| ४ | " रामचन्द्र के पुत्र कुश और लव का वाल्मीकिजी से रामायण पढ़ना और उसको राम-सभा मे गाना | ... ६ |
| ५ | " अयोध्या का वर्णन | ... १० |
| ६ | " अयोध्या का कुछ और वर्णन | ... ११ |
| ७ | " मन्त्रियों का वर्णन | ... १२ |
| ८ | " पुत्र के लिए यज्ञ करने का विचार | ... १३ |
| ६ | " ऋष्यशृङ्ग ऋषि की कथा | ... १३ |
| १० | " रोमपाद के यहाँ ऋष्यशृङ्ग ऋषि का आना | १४ |
| ११ | " राजा दशरथ का ऋष्यशृङ्ग को अयोध्या मे लाना | ... १५ |
| १२ | " यज्ञ की चर्चा | ... १६ |
| १३ | " यज्ञ की तैयारियाँ | ... १७ |
| १४ | " यज्ञ का वर्णन | ... १८ |
| १५ | " ब्रह्मा और विष्णु के साथ देवताओं का संवाद | १६ |
| १६ | " रानियों का देवता की दी हुई खीर खाना | २१ |
| १७ | " बन्दरों की उत्पत्ति | ... २२ |
| १८ | " रामचन्द्र का जन्म और विश्वामित्र का आना | २२ |
| १६ | " विश्वामित्र का रामचन्द्रजी को माँगना और राजा का दुःखी होना | ... २४ |
| २० | " राजा का मुनि की बात न मानना | ... २५ |
| २१ | " विश्वामित्र के साथ रामचन्द्र को भेजना | ... २६ |
| २२ | " विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण का जाना और मार्ग मे रामचन्द्र को बला और अतिबला विद्याओं का सिखाना | ... २६ |
| २३ | " कामदेव के आश्रम का वर्णन | ... २७ |
| २४ | " ताड़का के वन का वर्णन | ... २८ |
| २५ | " ताड़का की कथा | ... २६ |
| २६ | " ताड़का-वध | ... ३० |
| २७ | " विश्वामित्र का रामचन्द्रजी को देना | ... ३१ |
| २८ | " अस्त्र फेककर उनके लौटाने की विद्या बताना | ३१ |
| २६ | " मुनि के आश्रम का वर्णन और यज्ञ का प्रारम्भ | ... ३२ |
| ३० | " यज्ञ की रक्षा और राक्षसों का मारना | ... ३३ |
| ३१ | " जनक के धनुष-यज्ञ को देखने जाना | ... ३४ |
| ३२ | " विश्वामित्र के वंश का वर्णन | ... ३५ |
| ३३ | " कुशनाभ की कन्याओं का विवाह | ... ३६ |
| ३४ | " गाधि की उत्पत्ति और मुनि के वंश की कथा | ३६ |
| ३५ | " गङ्गा और पार्वती की कथा | ... ३७ |
| ३६ | " शिव की क्रीड़ा और देवताओं को शाप | ... ३८ |
| ३७ | " स्वामिकार्त्तिक की उत्पत्ति | ... ३६ |
| ३८ | " गङ्गा की उत्पत्ति | ... ४० |
| ३६ | " सगर का यज्ञ और पृथ्वी का खोदना | ... ४१ |
| ४० | " सागर के पुत्रों का भस्म होना | ... ४१ |
| ४१ | " घोड़ा ढूँढ़ने को अंशुमान् का जाना और घोड़े को ले आना | ... ४२ |
| ४२ | " गङ्गा के लाने के लिए सगरवंशी राजाओं की तपस्या | ... ४३ |
| ४३ | " गङ्गा का आना और सगर के पुत्रों का तरना | ४४ |
| ४४ | " भगीरथ की कुछ और कथा | ... ४५ |
| ४५ | " समुद्र-मथन | ... ४६ |
| ४६ | " वायु की उत्पत्ति | ... ४७ |
| ४७ | " वायु की कथा और इक्ष्वाकुवंश का वर्णन | ... ४८ |
| ४८ | " अहल्या की कथा | ... ४६ |
| ४६ | " अहल्या का तरना | ... ५० |
| ५० | " मिथिला में पहुँचकर जनक से मिलना | ... ५१ |
| ५१ | " विश्वामित्र की कथा | ... ५२ |

| सर्ग | | पृष्ठ |
|---|---|---|
| ५२ | " वशिष्ठ मुनि के यहाँ विश्वामित्र का अतिथि-सत्कार ... | ५२ |
| ५३ | " विश्वामित्र का पहुनई और कामधेनु का माँगना ... | ५३ |
| ५४ | " गौ के लिए युद्ध ... | ५४ |
| ५५ | " विश्वामित्र और वशिष्ठ का युद्ध ... | ५५ |
| ५६ | " युद्ध का वर्णन ... | ५६ |
| ५७ | " ब्रह्मर्षि बनने की इच्छा से विश्वामित्र की तपस्या | ५७ |
| ५८ | " त्रिशंकु को शाप मिलना और विश्वामित्र के पास जाना ... | ५७ |
| ५९ | " वशिष्ठ के पुत्रों को शाप ... | ५८ |
| ६० | " त्रिशंकु का यज्ञ और सदेह स्वर्ग मे जाना | ५९ |
| ६१ | " शुनःशेफ की कथा ... | ६० |
| ६२ | " विश्वामित्र के उपदेश से शुनःशेफ की रक्षा | ६१ |
| ६३ | " विश्वामित्र की तपस्या का और वर्णन ... | ६२ |
| ६४ | " रम्भा का शाप पाना ... | ६३ |
| ६५ | " विश्वामित्र का ब्रह्मर्षि-पद पाना ... | ६४ |
| ६६ | " जनक के धनुष मिलने की कथा ... | ६५ |
| ६७ | " जनक का रामचन्द्र को धनुष दिखाना और रामचन्द्र का धनुष तोड़ना .. | ६६ |
| ६८ | " दूतों का अयोध्या में जाना और महाराज दशरथ से मिलना | ६७ |
| ६९ | " राजा दशरथ का मिथिला मे पहुँचना और विवाह की तैयारियाँ .. | ६८ |
| ७० | " राजा दशरथ की वंशावली ... | ६८ |
| ७१ | " राजा जनक के वंश का वर्णन और विवाह के समय का विचार ... | ७० |
| ७२ | " दोनों मुनियो का भरत और शत्रुघ्न के लिए कुशध्वज की दो कन्याएँ माँगना ... | ७० |
| ७३ | " राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न का विवाह | ७१ |
| ७४ | " परशुराम का आना ... | ७२ |
| ७५ | " रामचन्द्र और परशुराम की बातचीत ... | ७३ |
| ७६ | " रामचन्द्र का धनुष चढ़ाना और परशुराम को जीतना ... | ७४ |
| ७७ | " राजा दशरथ का अयोध्या मे पहुँचना ... | ७५ |

| सर्ग | | पृष्ठ |
|---|---|---|
| | **अयोध्याकाण्ड** ... | ७७ |
| १ | " रामचन्द्र के गुणों का वर्णन और यौवराज्याभिषेक का विचार ... | ७८ |
| २ | " रामचन्द्र को युवराज बनाने का विचार ... | ८० |
| ३ | " राजतिलक का सामान इकट्ठा करना ... | ८१ |
| ४ | " दशरथ का रामचन्द्र को बुलाना और रामचन्द्र का माता के घर में जाना | ८३ |
| ५ | " नियम सिखाने के लिए वशिष्ठ का रामचन्द्र के घर जाना ... | ८५ |
| ६ | " रामचन्द्र के नियमों का और अयोध्या के महोत्सव का वर्णन ... | ८६ |
| ७ | " मन्थरा का अटारी पर चढ़ नगर की शोभा देखना और आकर कैकेयी से कहना | ८७ |
| ८ | " कैकेयी को मन्थरा का फिर समझाना ... | ८८ |
| ९ | " कैकेयी का कोपभवन मे जाना ... | ९० |
| १० | " राजा का कैकेयी के भवन मे जाना और उसे समझाना ... | ९२ |
| ११ | " कैकेयी का वर माँगना ... | ९४ |
| १२ | " महाराज का पश्चात्ताप करना, व्याकुल होना और कैकेयी को धिक्कारना .. | ९५ |
| १३ | " राजा और कैकेयी की बातचीत ... | १०० |
| १४ | " कैकेयी का रामचन्द्र को बुलाने के लिए सुमन्त्र को भेजना ... | १०१ |
| १५ | " सुमन्त्र का रामचन्द्र के घर जाना ... | १०३ |
| १६ | " रामचन्द्र का राजा के पास जाना ... | १०५ |
| १७ | " रामचन्द्र का राजा के पास पहुँचना ... | १०७ |
| १८ | " कैकेयी का रामचन्द्र को वन जाने की आज्ञा देना ... | १०८ |
| १९ | " रामचन्द्र का पिता के पास से जाकर माता के घर जाना ... | १०९ |
| २० | " वन जाने की खबर सुनकर कौशल्या का विलाप करना ... | १११ |
| २१ | " रामचन्द्र का कौशल्या और लक्ष्मण को धर्मोपदेश करना ... | ११३ |
| २२ | " रामचन्द्र का लक्ष्मण को समझाना ... | ११६ |

| सर्ग | | पृष्ठ |
|---|---|---|
| २३ | " लक्ष्मण का महाक्रोध ... | ११७ |
| २४ | " रामचन्द्र को वन जाने के लिए कौशल्या का आज्ञा देना ... | ११६ |
| २५ | " रामचन्द्र की वनयात्रा के लिए कौशल्या का मङ्गलाचार करना ... | १२० |
| २६ | " रामचन्द्र का सीता को वन जाने का सन्देश और घर पर रहने की सलाह देना ... | १२२ |
| २७ | " सीता का अयोध्या में न रहने का हठ करना | १२४ |
| २८ | " रामचन्द्र का सीता को समझाना और वनवास के दुःखों का वर्णन करना .. | १२५ |
| २९ | " रामचन्द्र के साथ वन जाने के लिए सीता का हठ करना ... | १२६ |
| ३० | " वन जाने के लिए सीता की प्रार्थना स्वीकार करना ... | १२७ |
| ३१ | " लक्ष्मण को साथ ले जाने के लिए रामचन्द्र का अङ्गीकार करना ... | १२६ |
| ३२ | " रामचन्द्र का ब्राह्मणों को धन बाँटना ... | १३० |
| ३३ | " राम, लक्ष्मण और सीता का दशरथ के पास जाना .. | १३२ |
| ३४ | " दशरथ और रामचन्द्र की बातचीत ... | १३३ |
| ३५ | " सुमन्त्र का कैकेयी से कटु-वचन कहना ... | १३६ |
| ३६ | " राजा दशरथ, कैकेयी और प्रधान मन्त्री की बातचीत ... | १३७ |
| ३७ | " कैकेयी का रामचन्द्र को चीर देना और वशिष्ठ का कैकेयी को समझाना ... | १३८ |
| ३८ | " राजा का कैकेयी से कठोर वचन कहना और वन जाते समय माता के विषय में पिता से रामचन्द्र की प्रार्थना ... | १४० |
| ३९ | " कौशल्या का सीता को उपदेश .. | १४१ |
| ४० | " रामचन्द्र की वनयात्रा ... | १४२ |
| ४१ | " अयोध्यावासियों के दुःख और विलाप का वर्णन ... | १४४ |
| ४२ | " राजा के शोकसन्ताप का वर्णन ... | १४५ |
| ४३ | " कौशल्या का विलाप ... | १४६ |
| ४४ | " सुमित्रा का कौशल्या को समझाना ... | १४७ |
| ४५ | " रामचन्द्र और पुरवासियों में परस्पर लौटाने की बातचीत ... | १४६ |
| ४६ | " तमसा नदी पर रामचन्द्र का रात्रि में निवास और प्रातःकाल पुरवासियों को छोड़कर वन की ओर यात्रा करना ... | १५० |
| ४७ | " पुरवासियों का रामचन्द्र के लिए विलाप और अयोध्या को लौट आना ... | १५२ |
| ४८ | " पुरवासियों की स्त्रियों का विलाप ... | १५२ |
| ४९ | " वनयात्रा का वर्णन ... | १५४ |
| ५० | " रामचन्द्र का शृङ्गवेरपुर में पहुँचना और गुह से मिलना ... | १५५ |
| ५१ | " गुह और लक्ष्मण की बातचीत ... | १५७ |
| ५२ | " रामचन्द्रजी का सुमन्त्र को विदा करना और गङ्गा पार उतरना ... | १५८ |
| ५३ | " रात्रि में राम और लक्ष्मण का संवाद ... | १६१ |
| ५४ | " रामचन्द्रजी का भरद्वाज मुनि के आश्रम में जाना और मुनि से चित्रकूट पर निवास का उपदेश पाना ... | १६३ |
| ५५ | " रामचन्द्रजी का चित्रकूट-यात्रा ... | १६४ |
| ५६ | " रामचन्द्रजी का चित्रकूट पर पहुँचना और वहाँ कुटी बनाकर निवास करना ... | १६६ |
| ५७ | " सुमन्त्र का अयोध्या में पहुँचना, राजा को सन्देश देना और राजा का मूर्च्छित होना | १६७ |
| ५८ | " सुमन्त्र का राजा को रामचन्द्र के सब समाचार विस्तारपूर्वक सुनाना ... | १६८ |
| ५९ | " फिर भी सूत का कुछ कहना, राजा का पछतावा और विलाप ... | १७० |
| ६० | " सूत का कौशल्या को समझाना ... | १७१ |
| ६१ | " फिर कौशल्या का विलाप करना और राजा के प्रति कटु वचन कहना ... | १७२ |
| ६२ | " राजा और कौशल्या की बातचीत ... | १७३ |
| ६३ | " राजा का कौशल्या से अपने शब्द-वेधी बाण चलाने की कथा का कहना ... | १७४ |
| ६४ | " मुनि-पुत्र की कथा सुनाते-सुनाते राजा दशरथ का प्राण त्यागना ... | १७७ |

| सर्ग | | पृष्ठ |
|---|---|---|
| १८ | " रामचन्द्र की आज्ञा से लक्ष्मण का शूर्पणखा के नाक-कान काटना ... | २७६ |
| १९ | " खर का क्रुद्ध होना और रामचन्द्र के मारने के लिए चौदह राक्षसों को भेजना ... | २७७ |
| २० | " उन चौदहों राक्षसों का रामचन्द्र के हाथ से दो घड़ी में मारा जाना ... | २७८ |
| २१ | " शूर्पणखा का खर को धिक्कारना ... | २७९ |
| २२ | " युद्ध के लिए खर की यात्रा ... | २८० |
| २३ | " खर की सेना का और अशकुन का वर्णन ... | २८१ |
| २४ | " युद्ध के लिए रामचन्द्र का तैयार होना और राक्षसों का युद्ध के निमित्त नाना प्रकार की वीर-चेष्टा करना ... | २८२ |
| २५ | " रामचन्द्रजी से राक्षसों का युद्ध ... | २८४ |
| २६ | " खर-त्रिशिरा बचे और राक्षस समाप्त ... | २८६ |
| २७ | " त्रिशिरा का वध ... | २८७ |
| २८ | " रामचन्द्र का खर से घोर युद्ध करना ... | २८८ |
| २९ | " रामचन्द्र का खर को दुर्वचन कहना और उसकी गदा काट गिराना ... | २८९ |
| ३० | " खर का मारा जाना ... | २९० |
| ३१ | " जनस्थान से जाकर अकम्पन का रावण को सन्देश देना, रावण का मारीच के पास जाना और उसके सदुपदेश से लङ्का मे लौट आना ... | २९२ |
| ३२ | " शूर्पणखा का लङ्का मे जाना ... | २९४ |
| ३३ | " शूर्पणखा का रावण को धिक्कारना ... | २९५ |
| ३४ | " शूर्पणखा का राम-लक्ष्मण और सीता का वर्णन करना ... | २९६ |
| ३५ | " रावण का फिर मारीच के पास जाना ... | २९७ |
| ३६ | " रावण का मारीच को अपना अभिप्राय समझाना ... | २९८ |
| ३७ | " मारीच का रावण को समझाना ... | २९९ |
| ३८ | " उदाहरण देकर मारीच का रावण को समझाना ... | ३०० |
| ३९ | " मारीच का फिर उदाहरण देना और रावण को समझाना ... | ३०२ |
| ४० | " रावण का मारीच को धमकाना ... | ३०३ |
| ४१ | " अब मारीच का बहुत कठोर वचनों से रावण को समझाना ... | ३०४ |
| ४२ | " मारीच का काञ्चन-मृग बनकर राम के आश्रम में जाना और सीता को लुभाना ... | ३०५ |
| ४३ | " सीता के कहने से राम का मृग के पीछे जाना और सीता की रक्षा के लिए लक्ष्मण को सावधान करना ... | ३०६ |
| ४४ | " रामचन्द्र का उस मृगरूप राक्षस को मार-कर लौटना ... | ३०८ |
| ४५ | " सीता का लक्ष्मण को रामचन्द्र के पास भेजना ... | ३०९ |
| ४६ | " लक्ष्मण का राम के पास जाना और, आश्रम में प्रवेश कर रावण का सीता से बातचीत करना ... | ३११ |
| ४७ | " रावण का हरने का अभिप्राय जानकर उसको सीता का कटु वचन कहना और धिक्कारना ... | ३१२ |
| ४८ | " रावण का आत्म-प्रशंसा करना और सीता का उसके लिए धिक्कारना ... | ३१४ |
| ४९ | " रावण का अपना स्वरूप प्रकट कर सीता को हरना ... | ३१५ |
| ५० | " जटायु का रावण को समझाना और युद्ध के लिए उद्यत होना ... | ३१७ |
| ५१ | " रावण और जटायु का युद्ध ... | ३१८ |
| ५२ | " सीता को लेकर रावण की यात्रा और सीता का खेद ... | ३२० |
| ५३ | " सीता का रावण को धिक्कारना और विलाप करना ... | ३२२ |
| ५४ | " सीता का किष्किन्धा में वानरों को देखकर वस्त्र और आभूषण गिराना और रावण का सीता को ले जाकर लङ्का मे टिकाना | ३२३ |
| ५५ | " रावण का अनेक प्रकार से सीता को लुभाने की चेष्टा करना ... | ३२४ |

| सर्ग | | पृष्ठ |
|---|---|---|
| ५६ | " सीता का रावण को धिक्कारना और कटु वचन कहना ... | ३२६ |
| ५७ | " अशकुन देखकर राम का चिन्ता करना और लक्ष्मण को आते देख और भी शोक-पीडित होना ... | ३२७ |
| ५८ | " राम का आश्रम मे जाना और सीता को न पाकर व्याकुल होना ... | ३२८ |
| ५९ | " फिर लक्ष्मण से रामचन्द्र का सीता के विषय की बात पूछना और लक्ष्मण का उत्तर देना | ३२९ |
| ६० | " सीता को आश्रम मे न देख रामचन्द्र का विलाप करना और उन्मत्त की तरह इधर-उधर पूछते फिरना ... | ३३० |
| ६१ | " राम का विलाप और लक्ष्मण का समझाना | ३३२ |
| ६२ | " फिर रामचन्द्र का विलाप करना ... | ३३३ |
| ६३ | " फिर रामचन्द्र का विलाप करना और लक्ष्मण का समझाना ... | ३३४ |
| ६४ | " विलाप करते हुए रामचन्द्र का दक्षिण दिशा की ओर जाना तथा रावण और जटायु की युद्ध-भूमि देखना ... | ३३५ |
| ६५ | " क्रुद्ध रामचन्द्र को लक्ष्मण का समझाना ... | ३३८ |
| ६६ | " लक्ष्मण का राम को फिर समझाना ... | ३३९ |
| ६७ | " राम का सीता को खोजना और जटायु से मिलना ... | ३४० |
| ६८ | " रामचन्द्र के द्वारा जटायु की अन्त्येष्टि-क्रिया | ३४१ |
| ६९ | " राक्षसी का विरूप करना और कबन्ध राक्षस से भेंट होना ... | ३४२ |
| ७० | " कबन्ध की भुजाओं का काटा जाना और उसका प्रीति-पूर्वक बोलना ... | ३४४ |
| ७१ | " कबन्ध का अपने कुरूप का हेतु कहना और अपने शरीर को भस्म करने के लिए राम से प्रार्थना करना ... | ३४५ |
| ७२ | " दोनों भाइयों का कबन्ध को जलाना और सुग्रीव से मैत्री करने के लिए उसका उपदेश देना ... | ३४६ |
| ७३ | " कबन्ध के साथ वार्तालाप ... | ३४७ |
| ७४ | " शबरी के साथ रामचन्द्र की बातचीत ... | ३४९ |
| ७५ | " राम का पम्पा-तीर पर जाना ... | ३५० |

किष्किन्धाकाण्ड ... ३५२

| | | |
|---|---|---|
| १ | " रामचन्द्र का कामोन्मत्त होकर सीता के लिए विलाप करना ... | ३५३ |
| २ | " दोनों भाइयों का समाचार जानने के लिए सुग्रीव का हनुमान् को भेजना ... | ३५७ |
| ३ | " दोनों भाइयों से हनुमान् की बातचीत ... | ३५८ |
| ४ | " हनुमान् से बातचीत और उनका राम लक्ष्मण को पीठ पर चढ़ाकर सुग्रीव के पास जाना ... | ३६० |
| ५ | " रामचन्द्र और सुग्रीव का अग्नि को साक्षी कर मैत्री करना ... | ३६१ |
| ६ | " सीता के गिराये हुए वस्त्र और भूषण देखकर रामचन्द्र का विलाप करना ... | ३६२ |
| ७ | " सुग्रीव का रामचन्द्र को समझाना ... | ३६३ |
| ८ | " सुग्रीव का विलापपूर्वक अपनी दुर्दशा का समाचार कहना ... | ३६४ |
| ९ | " सुग्रीव का अपने भाई बाली का वैर कहना | ३६६ |
| १० | " फिर भी सुग्रीव का बाली के विषय मे विशेष समाचार कहना ... | ३६७ |
| ११ | " रामचन्द्र और सुग्रीव का संवाद ... | ३६९ |
| १२ | " रामचन्द्र का शाल-वृक्ष को भेदन करना और बाली-सुग्रीव का युद्ध ... | ३७२ |
| १३ | " किष्किन्धा के मार्ग का वर्णन ... | ३७३ |
| १४ | " रामचन्द्र का सुग्रीव को समझाकर फिर युद्ध के लिए तैयार करना ... | ३७४ |
| १५ | " तारा के उपदेश को न मानकर बाली की युद्ध-यात्रा ... | ३७५ |
| १६ | " बाली का मारा जाना ... | ३७७ |
| १७ | " बाली का रामचन्द्र के प्रति कठोर वचन कहना ... | ३७८ |

| सर्ग | | पृष्ठ |
|---|---|---|
| १८ | " रामचन्द्र का बाली के कठोर वचनों का उत्तर देना और बाली का रामचन्द्र से अपने दुर्वचनों की क्षमा माँगना ... | ३८१ |
| १९ | " तारा आदि का विलाप ... | ३८४ |
| २० | " तारा आदि का विलाप ... | ३८५ |
| २१ | " हनुमान् का तारा को समझाना ... | ३८६ |
| २२ | " बाली का सुग्रीव और अङ्गद के प्रति कुछ कहकर शरीर त्यागना ... | ३८७ |
| २३ | " तारा का विलाप ... | ३८८ |
| २४ | " सुग्रीव का विलाप, तारा की प्रार्थना और रामचन्द्र का तारा को समझाना ... | ३८९ |
| २५ | " रामचन्द्र का सुग्रीव, तारा और अङ्गद को समझा-बुझाकर बाली की और्ध्वदैहिक क्रिया करवाना ... | ३९२ |
| २६ | " सुग्रीव का राज्याभिषेक ... | ३९४ |
| २७ | " दोनों भाइयों का प्रस्रवण पर्वत पर निवास करना और कुछ बातचीत करना ... | ३९५ |
| २८ | " रामचन्द्र का वर्षा-ऋतु की शोभा का वर्णन करना ... | ३९७ |
| २९ | " हनुमान् का सुग्रीव को समझाना और सुग्रीव का नील वानर को आज्ञा देना ... | ४०१ |
| ३० | " रामचन्द्र का विलाप करना, शरत्काल का वर्णन और सुग्रीव के विषय में भी कुछ कहना ... | ४०३ |
| ३१ | " लक्ष्मण का धनुर्बाण लेकर किष्किन्धा में जाना ... | ४०७ |
| ३२ | " सुग्रीव का पश्चात्ताप और हनुमान् का उनको समझाना ... | ४०९ |
| ३३ | " लक्ष्मण का भीतर जाना और तारा से बातचीत करना ... | ४११ |
| ३४ | " लक्ष्मण का सुग्रीव को कटु वचन कहना ... | ४१३ |
| ३५ | " तारा की विनती से लक्ष्मण के क्रोध की शान्ति | ४१४ |
| ३६ | " सुग्रीव की प्रार्थना से लक्ष्मण का प्रसन्न होना ... | ४१५ |
| ३७ | " सुग्रीव की आज्ञा से हनुमान् का वानरों को बुलवाना ... | ४१६ |
| ३८ | " लक्ष्मण के साथ सुग्रीव का श्रीरामचन्द्र के पास जाना ... | ४१८ |
| ३९ | " सेनापति और सेना की उपस्थिति तथा वानरों की संख्या ... | ४१९ |
| ४० | " श्री रामचन्द्र की आज्ञा से वानरों को सीता के खोजने के लिए भेजना ... | ४२० |
| ४१ | " दक्षिण की ओर वानरों को भेजना .. | ४२३ |
| ४२ | " सुषेण इत्यादि वानरों को पश्चिम दिशा में भेजना ... | ४२५ |
| ४३ | " उत्तर दिशा में वानरों को भेजना ... | ४२७ |
| ४४ | " हनुमान् के प्रति सुग्रीव का विशेष वचन और रघुपति का मुद्रिका देना ... | ४२९ |
| ४५ | " वानरों की यात्रा ... | ४३० |
| ४६ | " राम का सम्पूर्ण पृथ्वीदर्शन के विषय में सुग्रीव से पूछना और सुग्रीव का उत्तर देना ... | ४३१ |
| ४७ | " हनुमान् को छोड़ शेष वानरों का लौट आना | ४३२ |
| ४८ | " दक्षिण दिशा के खोज का वर्णन ... | ४३३ |
| ४९ | " अङ्गद के कहने से फिर वानर लोग ढूँढने चले ... | ४३३ |
| ५० | " वानरों का ऋक्षबिल नामक दुर्गम स्थान मे जाना ... | ४३४ |
| ५१ | " उस वृद्धा तापसी का वानरों से अपना समाचार कहना ... | ४३६ |
| ५२ | " हनुमान् का सब समाचार कहना और स्वयंप्रभा के तपोबल से बिल के बाहर निकलना ... | ४३७ |
| ५३ | " समय के बीत जाने से वानरों का अत्यन्त शोकयुक्त होना ... | ४३८ |
| ५४ | " हनुमान् का अङ्गद को समझाना ... | ४३९ |
| ५५ | " वानरों का प्रायोपवेशन करना ... | ४४० |
| ५६ | " सम्पाति से भेंट और उसका अपने भाई के सब समाचार पूछना ... | ४४२ |

| सर्ग | | पृष्ठ |
|---|---|---|
| ५७ | " वानरों का सम्पाति को पर्वत से उतारकर अपना सब समाचार कह सुनाना | ... ४४३ |
| ५८ | " गृध्र का वानरों को सीता का ठिकाना बतलाना | ४४४ |
| ५९ | " सम्पाति का वानरों से बातचीत करना और कुछ अपना समाचार भी कहना | ... ४४५ |
| ६० | " सम्पाति का वानरों से विस्तार पूर्वक अपना समाचार वर्णन करना | ... ४४६ |
| ६१ | " मुनि से अपना समाचार कहना | ... ४४७ |
| ६२ | " निशाकर मुनि का सम्पाति को समझाकर वर देना | ... ४४८ |
| ६३ | " सम्पाति के पङ्ख जमना | ... ४४९ |
| ६४ | " वानरों का समुद्र को देखकर फिर दुःखित होना | ४५० |
| ६५ | " वानरों का अपनी-अपनी शक्ति वर्णन करना | ४५१ |
| ६६ | " जाम्बवान् का हनुमान् की स्तुति करना | ... ४५२ |
| ६७ | " हनुमान्-कृत अपने पराक्रम का वर्णन | ... ४५४ |

— —

सुन्दरकाण्ड ... ४५६

| | | |
|---|---|---|
| १ | " वीर हनुमान् का समुद्र लाँघना | ... ४५७ |
| २ | " लङ्का का वर्णन | ... ४६४ |
| ३ | " कपि का लङ्का में प्रवेश करना और शरीर-धारिणी लङ्का को घूसा मारना | ... ४६६ |
| ४ | " हनुमान् का पुरी मे जा करके रावण के अन्तःपुर को देखना | ... ४६८ |
| ५ | " चन्द्रोदय और अन्तःपुर का वर्णन | ... ४६९ |
| ६ | " रावण के प्रधान राक्षसों के घरों पर हनुमान् का जाना और राजभवन-मण्डलों को भी देखना | ... ४७१ |
| ७ | " राजभवन का वर्णन | ... ४७३ |
| ८ | " फिर पुष्पक विमान का वर्णन | ... ४७४ |
| ९ | " रावण के रनिवास का वर्णन | ... ४७४ |
| १० | " रावण और मन्दोदरी को देखना | ... ४७७ |
| ११ | " हनुमान् की बुद्धि का बदल जाना और फिर सीता की खोज में तत्पर होना | ... ४८० |
| १२ | " उस स्थान को छोड़कर दूसरी जगह हनुमान् का सीता को खोजना | ... ४८१ |
| १३ | " हनुमान् की चिन्ता और अशोकवाटिका को ढूँढने के लिए विचार करना | ... ४८२ |
| १४ | " अशोकवाटिका का वर्णन | ... ४८५ |
| १५ | " हनुमान् का सीता को देखना | ... ४८७ |
| १६ | " सीता को पीड़ित देख हनुमान् का विलाप करना | ... ४८९ |
| १७ | " सीता की रखवाली राक्षसियों का और कुछ सीता का भी वर्णन | ... ४९० |
| १८ | " रावण का जागना और सीता को देखने के लिए अशोकवाटिका में आना | ... ४९२ |
| १९ | " रावण को देखकर सीता की दशा का वर्णन | ४९३ |
| २० | " सीता को रावण का अनेक प्रकार से लुभाना | ... ४९४ |
| २१ | " सीता का रावण को उत्तर देना | ... ४९५ |
| २२ | " रावण का सीता को कटु वचन कहना और सीता का भी रावण को कठोर उत्तर देना, फिर रावण का दो मास की प्रतिज्ञा करके चला जाना | ... ४९७ |
| २३ | " राक्षसियों का सीता को धमकाना | ... ४९९ |
| २४ | " राक्षसियों का सीता को धमकाना | ... ४९२ |
| २५ | " सीता का विलाप | ... ५०१ |
| २६ | " फिर सीता का विलाप करना | ... ५०२ |
| २७ | " त्रिजटा के स्वप्न का वर्णन | ... ५०४ |
| २८ | " सीता का फिर विलाप करना | ... ५०६ |
| २९ | " सीता के शुभसूचक शकुनों का वर्णन | ... ५०७ |
| ३० | " सीता से बातचीत करने के लिए हनुमान् का अनेक तर्क-वितर्क करना | ... ५०८ |
| ३१ | " हनुमान् का सीता को राम की कथा सुनाना और सीता का हनुमान् को देखना | ... ५१० |
| ३२ | " वानर रूप को देख सीता का अत्यन्त शोक करना | ... ५१० |
| ३३ | " हनुमान् और सीता की बातचीत | ... ५११ |

| सर्ग | | पृष्ठ |
|---|---|---|
| ३४ | " हनुमान् का सीता को समझाना और सीता का हनुमान् को रावण समझकर डरना | ५१२ |
| ३५ | " हनुमान् का लक्ष्मण सहित रामचन्द्र का वर्णन करना और सब समाचार कहना ... | ५१४ |
| ३६ | " हनुमान् का सीता को मुद्रिका देना और सीता का दृढ़ विश्वासपूर्वक कपि से बोलना | ५१८ |
| ३७ | " सीता और हनुमान् की बातचीत और हनुमान् का सीता को अपना विशाल रूप दिखलाना ... | ५१९ |
| ३८ | " हनुमान् का सीता को समझाना और सीता का हनुमान् को मणि-चिह्न देना ... | ५२२ |
| ३९ | " हनुमान् और सीता की बातचीत ... | ५२५ |
| ४० | " सीता और हनुमान् की कुछ बातचीत ... | ५२६ |
| ४१ | " हनुमान् का रावण की मनोहर वाटिका को उजाड़ना ... | ५२७ |
| ४२ | " रावण का सेना भेजना और हनुमान् का युद्ध ... | ५२९ |
| ४३ | " हनुमान् का चैत्यप्रासाद को विनष्ट करना और वहाँ के राक्षसों को मारना ... | ५३० |
| ४४ | " हनुमान् का जम्बुमाली को मारना ... | ५३१ |
| ४५ | " हनुमान् का सातों मन्त्रिपुत्रों को मारना... | ५३२ |
| ४६ | " रावण का सेना के पाँच मुख्य नायकों को भेजना और हनुमान् के हाथ उनका मारा जाना ... | ५३३ |
| ४७ | " अक्षकुमार का मारा जाना ... | ५३४ |
| ४८ | " इन्द्रजित द्वारा हनुमान् का बाँधा जाना ... | ५३६ |
| ४९ | " कपि का रावण को देखना ... | ५३९ |
| ५० | " रावण का हनुमान् से पूछना और उनका उत्तर देना ... | ५४० |
| ५१ | " हनुमान् का रावण को उपदेश करना ... | ५४१ |
| ५२ | " विभीषण का रावण को कपिवध करने से रोकना ... | ५४३ |
| ५३ | " रावण का कपि की पूँछ जलाने की आज्ञा देना ... | ५४४ |
| ५४ | " लङ्का दाह ... | ५४५ |
| ५५ | " सीता के लिए हनुमान् का शोकग्रस्त होना... | ५४७ |
| ५६ | " कपि की यात्रा ... | ५४९ |
| ५७ | " हनुमान् का कूदकर उस पार जाना और अङ्गद आदि से भेंट करना ... | ५५१ |
| ५८ | " हनुमान् का अङ्गद आदि से सब समाचार कहना ... | ५५२ |
| ५९ | " कुछ उद्योग का विचार करना और लङ्का का भी कुछ समाचार कहना ... | ५५८ |
| ६० | " वानरों का विचार करना ... | ५६० |
| ६१ | " वानरों का मधुवन में जाना और फल तोड़कर खाना ... | ५६० |
| ६२ | " मधुवन किया जाना और सुग्रीव के पास दधिमुख का जाना ... | ५६१ |
| ६३ | " दधिमुख का वानरों के उपद्रव का वर्णन करना और सुग्रीव का प्रसन्न होकर उनको बुलवाना ... | ५६३ |
| ६४ | " दधिमुख का जाकर वानरों को भेजना और उनका किष्किन्धा में आना ... | ५६४ |
| ६५ | " हनुमान् का सीता का समाचार कहना और रामचन्द्र को अभिज्ञानमणि देना ... | ५६५ |
| ६६ | " मणि को देखकर रामचन्द्र का विलाप करना और कपि से फिर पूछना ... | ५६६ |
| ६७ | " हनुमान् का विस्तारपूर्वक सीता का सन्देश कहना ... | ५६७ |
| ६८ | " फिर सीता का सन्देश कहना ... | ५६९ |

# चित्र-सूची


| | | |
|---|---|---|
| १* | वाल्मीकि और क्रौञ्च ... ... ... | मुख-पृ० |
| २* | मुनि-मोहन ... ... ... | १४ |
| ३* | देव-स्तुति ... ... ... | १६ |
| ४* | प्रतिज्ञा ... ... ... | २१ |
| ५ | दशरथ-कृत यज्ञ और रानियों को चरु-दान ... ... ... | २३ |
| ६ | दशरथ का राम को देना और ताडका-वध ... ... ... | २७ |
| ७ | अस्त्र-शिक्षा .. ... ... | ३२ |
| ८ | पार्वती ... ... ... | ३७ |
| ९ | चिन्तामग्ना अहल्या ... ... . | ४६ |
| १०* | अभिशप्ता अहल्या ... ... ... | ५१ |
| ११* | कैकेयी और मन्थरा ... ... ... | ८६ |
| १२ | गङ्गावतरण ... ... | १५६ |
| १३ | चित्रकूट ... . ... | १६५ |
| १४ | सुमन्त्र का विह्वल होकर लौटना ... ... ... | १६६ |
| १५ | भरत का अयोध्या आना ... ... ... | १८८ |
| १६ | राक्षसों को मारने की राम-प्रतिज्ञा .. ... ... | २६१ |
| १७ | वन-पथ पर ... ... ... | २७० |
| १८* | माया-मृग . ... ... | ३०७ |
| १९* | रावण-भिक्षा ... ... ... | ३११ |
| २० | कबन्ध-दाह ... ... ... | ३४५ |
| २१ | सुग्रीव-मिताई ... ... ... | ३६१ |
| २२ | सुग्रीव और बाली का युद्ध ... ... ... | ३७७ |
| २३ | वाटिका-विध्वंस ... ... ... | ५२८ |
| २४ | लङ्का-दहन ... ... ... | ५४५ |


*चिह्न-युक्त चित्र रङ्गीन हैं।

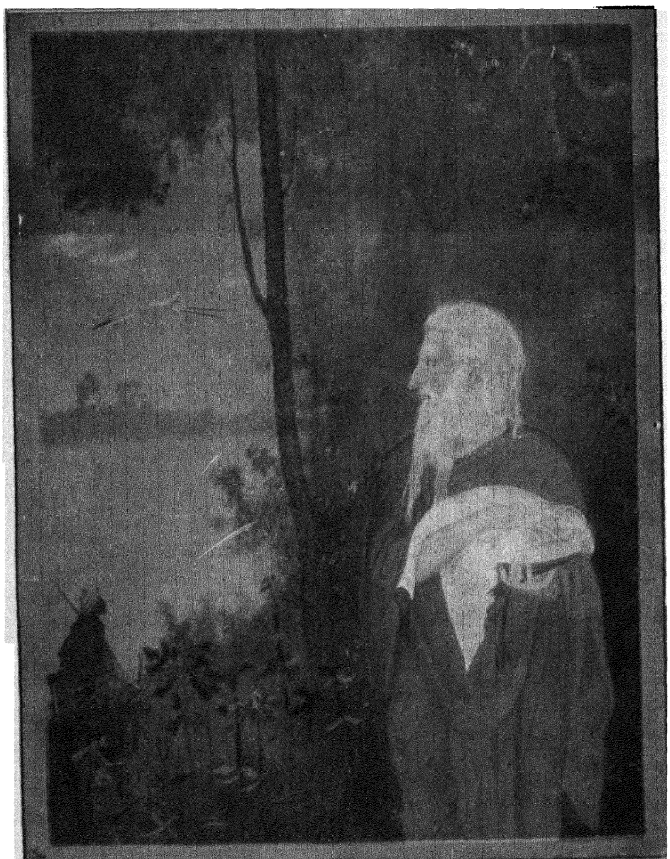

वाल्मीकि और क्रौञ्च

श्रीरामचन्द्राय नमः

# श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

## (हिन्दीभाषानुवाद)

## आदिकाण्ड

### भाषान्तरकार-कृत मङ्गलाचरण

श्लोकाः

श्रीदेवेन्द्रमुखप्रपूजितपदं भक्तेष्टसिद्धिप्रदं
विघ्नध्वान्तदिवामणिं गुणपरीवारैः समासेवितम् ।
श्रीनीलाम्बुजसुन्दरामलतनुं श्रीपार्वतीनन्दनं
दिव्येभेन्द्रमुखं नतेन शिरसा श्रीमद्गणेशं नुमः ॥ १ ॥

श्रीमत्सर्वगुणाकरं सुरवरैः सम्पूजिताङ्घ्रिद्वयं
लीलामानुषरूपिणं सकलभूभारापनुत्यै विभुम् ।
स्निग्धाम्भोधरसुप्रतीकरुचिरं श्रीमैथिलीवल्लभं
श्रीसौमित्रियुतं नतेन शिरसा श्रीराममीशं भजे ॥ २ ॥

श्रीमद्वीरवरप्रवेकमतुलं दीव्यद्विवेकाम्बुधिं
वेगे सर्वगतौ च मारुतसमं श्रीबुद्धिविद्यानिधिम् ।

---

तुलसीदास ने रामचरितमानस (रामायण) के आदि में सात श्लोक संस्कृत में लिखे हैं। भाषान्तरकार पण्डित गोपाल शर्मा ने भी मङ्गलाचरण के रूप में सात श्लोक आरम्भ में लिखे हैं। वे संस्कृत के अच्छे पण्डित और काव्य के अच्छे ज्ञाता थे। उनके मङ्गलाचरण का मतलब श्लोकों की संख्या के अनुसार, यथाक्रम, आगे दिया जाता है :—

इन्द्रादि देवताओं ने जिसके चरणों की पूजा की है, भक्तों की इच्छित सिद्धि का जो देनेवाला है, विघ्नरूपी अन्धकार का नाश करने में जो सूर्य का काम देता है, अनन्त गुणों ने जिसकी सेवा स्वीकार की है, नील कमल के समान जिसका शरीर सुन्दर और निर्मल है, और जिसका मुख दिव्य हाथी का ऐसा है—उस पार्वतीनन्दन श्रीगणेश को मैं सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ ॥१॥

जो सब गुणों का आकर (खान) है, श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ देवताओं ने जिसके दोनों चरणों की अच्छी तरह पूजा की है, संसार का भार उतारने ही के लिए जिसने मनुष्य का रूप धारण करने की लीला दिखाई है, जो सब कहीं व्यापक है, जिसका शरीर स्निग्ध मेघ के समान सुन्दर है, और जो मैथिली (सीता) का प्यारा पति है, लक्ष्मण सहित ऐसे रामरूपी ईश्वर का, सिर झुकाकर, मैं भजन करता हूँ ॥२॥

देवेन्द्राचलसन्निभं तनुरुचा कृत्या च वीर्य्यादद्भुतं
श्रीरामप्रियमप्रमेयचरितं भक्त्याञ्जनेयं भजे ॥ ३ ॥
रजनिचरकुलान्तकं महान्तं वशिनमिनं प्लवगाग्र्ययूथपानाम् ।
अतुलितबलशालिनं समीडे हनुमन्तं राघवाङ्घ्रियुग्मरतम् ॥ ४ ॥
श्रीमच्छ्वेतांगरागां शुचिवरवसनां कच्छपीभूषिताङ्कां
नित्यं भक्त्या विरिञ्चिप्रमुखसुरवरैः सेव्यपादारविन्दाम् ।
शुक्लाम्भोजासनस्थां त्रिभुवनजननीं बुद्धिजाड्यापहन्त्रीं
वन्दे लोकैकवन्द्यामतिनतशिरसा वाङ्मयीं देवतां ताम् ॥ ५ ॥
कर्पूरराशिधवलाङ्गमपाङ्गदृष्ट्या भक्तेप्सितप्रदमनङ्गमदापहारम् ।
तारं जगज्जलधितः प्रणतेन मूर्ध्ना साम्बं कृपानिधिमहं गिरिशं नतोस्मि ॥ ६ ॥
श्रीमद्रामकथासुधामनुपमां लोकानपिप्यच्च यो
यस्याद्योदभवच्चमत्कृतियुता श्लोकाकृतिर्भारती ।
यद्धस्तामलकं बभूव सकलं रामायणं योगत-
स्तं वाल्मीकिमुनिं नतेन शिरसा वन्दे महद्भिर्नुतम् ॥ ७ ॥

---

वीर-वरों में भी जो श्रेष्ठ है, जिसकी तुलना नहीं हो सकती, देदीप्यमान विवेक का जो समुद्र है, वेग मे और सब कही प्रवेश कर जाने में जो हवा की बराबरी करता है, बुद्धि और विद्या का जो निधि है, आकार और शरीर की शोभा मे जो सुमेरु पर्वत के समान है, जो अद्भुत वीर्यवान् है, और जिसके अलौकिक चरित्र की थाह नही है ऐसे रामचन्द्र के प्यारे अञ्जनानन्दन (हनुमान्) का मैं भक्तिपूर्वक भजन करता हूँ ॥३॥

राक्षसों के कुल के काल, महान् (महात्मा), जितेन्द्रिय, कपि-यूथपों के स्वामी, अतुलित बली रामचन्द्र के पद-युग्म मे रत हनुमान् की मैं स्तुति करता हूँ ॥४॥

जिसका अङ्गराग श्वेत है, जिसके वस्त्र अत्यन्त उत्तम और शुभ्र हैं, जिसकी गोद में कच्छपी नामक वीणा रक्खी हुई है, ब्रह्मा आदिक बड़े-बड़े देवता भक्तिपूर्वक जिसके चरणकमलों की नित्य सेवा किया करते है, शुभ्र कमल जिसका आसन है, त्रिलोक की जो माता है, बुद्धि की जड़ता की जो नाश करनेवाली है, और देवताओं को छोड़कर सब लोग जिसकी वन्दना करते हैं ऐसी वाणीरूपिणी सरस्वती देवी की, अपने मस्तक को बहुत ही नम्र करके, मैं वन्दना करता हूँ ॥५॥

कपूर की राशि के समान जिसका अङ्ग श्वेत है, आँख के एक कोने से देखकर ही जो अपने भक्तो की इच्छा को पूरी कर देता है, अनङ्ग (काम) के मद का जो हरण करनेवाला है और संसार रूपीसमुद्र का जो तारक है—ऐसे पार्वतीसहित कृपानिधि शङ्कर को नतमस्तक होकर मैं प्रणाम करता हूँ ॥६॥

श्रीरामचन्द्र की कथारूपिणी अनुपम सुधा (अमृत) को जिसने सारे संसार को पिलाया, चमत्कारिणी सरस्वती—[illegible] अवतार में—पहले पहल जिसके मुख से उत्पन्न हुई, और योगबल से समस्त रामायण जिसको हस्तामलक सा (हाथ में रक्खे हुए आमले के समान सुलभ) हो गया—महात्माओं से भी नमस्कार किये गये उस वाल्मीकि मुनि की, मस्तक झुकाकर मैं वन्दना करता हूँ ॥७॥

# पहला सर्ग

## नारदजी के द्वारा समस्त रामायण का संक्षिप्त वर्णन

श्रीतपस्वी वाल्मीकि मुनि ने तप और वेदपाठ में तत्पर तथा बोलनेवालों में श्रेष्ठ नारदजी से पूछा कि हे मुनि! इस समय मैं ऐसे पुरुष को जानना चाहता हूँ कि जो इस भूलोक में गुणवान्, वीर्यवान् और धर्मज्ञ हो; जो किये हुए उपकार को न भूले, तथा सत्यवादी, दृढ़व्रत और लोकाचार में तत्पर हो; जो सब प्राणियों का हितकारी, विद्वान्, सामर्थ्यवान् और रूपवान् हो तथा अन्तःकरण को वश में रखता हो; एवं जो क्रोध को जीतनेवाला, कान्तिमान् और ईर्ष्यारहित हो। वह ऐसा हो कि क्रुद्ध होने पर युद्ध में देवताओं तक के हृदय में भय उत्पन्न कर दे। कृपा करके आप मुझे ऐसा पुरुष बतलाइए। क्योंकि ऐसे पुरुष के जानने में आप समर्थ हैं।

ऐसा वचन सुन, तीनों लोकों के जाननेवाले देवर्षि नारद प्रसन्न होकर बोले—हे मुनि! आपने जिन गुणों का नाम लिया वे सब बहुत दुर्लभ हैं। परन्तु मैं स्मरण करके उन गुणों से युक्त एक पुरुष की कथा आपसे कहता हूँ। आप सुनिए।

इक्ष्वाकु राजा के वंश में उत्पन्न "राम" नामक एक प्रसिद्ध पुरुष हैं। वे मन को जीतनेवाले, महावीर्य, कान्तिमान्, धैर्यवान् और जितेन्द्रिय हैं; वे बुद्धिमान्, नीतियुक्त, बड़े अच्छे वक्ता, श्रीमान् और शत्रुनाशक हैं; उनकी भुजाएँ महान् और कन्धे विशाल हैं। उनकी गरदन पर शङ्ख के समान तीन रेखाएँ हैं। ठुड्डी उनकी बहुत बड़ी है। उनकी छाती बहुत विस्तृत है और उनका धनुष बहुत लम्बा-चौड़ा है! उनकी गरदन के पास की हँसुली (हड्डी) मांस से छिपी हुई है। उनके हाथ घुटनों तक लटकते हैं। उनका सिर और मस्तक बहुत सुन्दर है। उनकी चाल हाथी और शेर की चाल के समान है। न वे लम्बे हैं न नाटे। उनके अङ्ग बराबर-बराबर बँटे हुए हैं। उनका वर्ण चिकना है। आँखें बड़ी-बड़ी हैं। वे प्रताप से युक्त हैं। उनका वक्षःस्थल स्थूल है। लक्ष्मी से वे परिपूर्ण हैं। धर्म को वे अच्छी तरह जानते हैं और प्रजा के हित में हमेशा रत रहते हैं। वे यशस्वी हैं, ज्ञानी हैं, पवित्र हैं और नम्र हैं। चित्त में आये हुए विकार को वे रोक लेते हैं। ब्रह्मा के समान वे प्रजा का पालन करते हैं। वे स्वधर्म, स्वजन और जीवों की रक्षा करते हैं। वेद, वेदाङ्ग, धनुर्वेद और सब शास्त्रों के वे ज्ञाता हैं। उनकी स्मरणशक्ति बहुत अच्छी है। सब बातों को शीघ्र ही जान लेते हैं। सब लोग उनको प्यार करते हैं। उनका स्वभाव बहुत अच्छा है। वे कभी दीनता नहीं दिखाते। वे बड़े चतुर हैं। सज्जन सदा उनकी सेवा किया करते हैं। वे पूजनीय हैं। वे सबको बराबर देखते हैं और सदा प्रसन्न रहते हैं। वे कौशिल्या के आनन्द को बढ़ाते हैं। गम्भीरता में वे समुद्र के समान हैं; धीरता में दूसरे हिमाचल हैं। पराक्रम में वे विष्णु के तुल्य हैं और सौन्दर्य में चन्द्रमा के सदृश। क्रोध में वे कालाग्नि के और क्षमा में भूमि के तुल्य हैं। दान में वे कुबेर के तुल्य हैं और सत्यता में वे साक्षात् धर्मरूप हैं। इस प्रकार, सब गुणों से युक्त ज्येष्ठ पुत्र प्रिय रामचन्द्र को—प्रजा के हित की इच्छा से—महाराज दशरथ ने युवराज बनाने की इच्छा की। प्रिय पत्नी कैकेयी को राजा पहले दो वर दे चुके थे। उसने इस अवसर पर अभिषेक की तैयारी देख, राम को वनवास और भरत को युवराज-पद राजा से माँगा।

तब सत्यवादी राजा ने धर्मपाश से बँधकर रामचन्द्र को वनवास दिया। पिता की आज्ञा से, कैकेयी को प्रसन्न करने के लिए, रामचद्र वन को चले। सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण राम को अत्यन्त प्रिय थे। राम को निकलते देख वे भाई के पीछे हो लिये। इन दोनों को चलते देख राजा जनक की पुत्री—साक्षात् देवमाया के समान, सब लक्षणों से युक्त—स्त्रियों में सर्वोत्तम सीता भी, चन्द्रमा के साथ रोहिणी की तरह साथ चलीं। इन तीनों के पीछे, कुछ दूर तक, पुरवासी और राजा दशरथ भी जाकर लौट आये। रामचन्द्र ने शृङ्गवेरपुर में गङ्गा-तट पर पहुँचकर अपने सारथी को लौटा दिया और निषादों के स्वामी गुह से भेंट की। इस प्रकार वे तीनों, वनों के भीतर बड़ी-बड़ी नदियों को पार कर, भरद्वाज मुनि के बताने से, चित्रकूट में आये; वहाँ पर एक रमणीय कुटी बनाकर देव-गन्धर्व के सदृश वे सुख से रहने लगे।

अब, यहाँ अयोध्या में, पुत्र के वियोग से व्याकुल होकर महाराज दशरथ "हा राम, हा राम" करते-करते स्वर्ग को सिधारे। इसके अनन्तर वशिष्ठ आदि भरत को राज्य देने लगे; परन्तु भरत ने राज्य को अंगीकार नहीं किया। चित्रकूट जाकर उन्होंने महाराज रामचन्द्र को विनय-पूर्वक लौटाना चाहा। रामचन्द्र ने पिता की आज्ञा को प्रधान समझकर राज्य की इच्छा नहीं की। उन्होंने भरत से कहा कि राज्य करना ही तुम्हारा धर्म है। पर भरत ने यह बात न मानी। तब राज्यासन पर स्थापन करने के लिए अपनी चरण-पादुका देकर राम ने उनको बिदा किया। रामचन्द्र के चरण छूकर भरत लौट पड़े और उनके फिर लौट आने तक नन्दिग्राम नामक नगर में राज्य करने लगे।

भरत के चले जाने पर रामचन्द्र ने सोचा कि यहाँ रहने से शायद फिर भी कोई अयोध्यावासी हमारे पास आवे, इसलिए यहाँ से चल देना चाहिए। यह विचार-कर उन्होंने दण्डकारण्य वन की तरफ यात्रा की। वहाँ विराध नामक राक्षस को मारकर वे शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य और अगस्त्य के भाई ऋषियों से मिले। अगस्त्य के कहने से इन्द्र के धनुष, खड्ग और अक्षय बाणवाले दो तरकसों को उन्होंने ग्रहण किया। यहाँ पर, राक्षसों के वध के लिए, ऋषि लोग राम के पास आये। रामचन्द्र ने दण्डकारण्यवासी ऋषियों से दुष्ट राक्षसों के मारने की प्रतिज्ञा की। कुछ काल के अनन्तर, वहाँ रामचन्द्र ने जनस्थान नामक प्रान्त में रहनेवाली कामरूपिणी शूर्पनखा राक्षसी को कुरूप किया। और राक्षसी के कहने से युद्ध के लिए आये हुए खर, त्रिशिरा और दूषण राक्षसों को—उनके साथियों-समेत कुल चौदह सहस्र राक्षसों को—मारा।

अपने जाति-भाइयों के मारे जाने की खबर पाकर रावण को बड़ा क्रोध आया। उसने मारीच को अपना सहायक बनाना चाहा। मारीच ने उसको समझाकर कहा कि हे रावण! बलवान् के साथ तुझे वैर करना अनुचित है। पर रावण ने मारीच की बात न मानी। क्यों माने? वह मृत्यु के मुँह में था न! मारीच को संग लेकर वह राम के आश्रम में आया। उस मायावी के द्वारा उसने राम और लक्ष्मण को आश्रम से दूर भिजवाया। फिर सीता को हरकर उसने जटायु गीध को मारा। मारे गये गीध को देख और सीता का हरण सुनकर, रामचन्द्र शोक से सन्तप्त होकर विलाप करने लगे। उसी व्याकुल दशा में महाराज ने गीध की दाह-क्रिया की। फिर सीता को खोजते-खोजते उन्होंने भयंकर और विकराल रूपवाले कबन्ध राक्षस को मारकर स्वर्ग भेज दिया। मरते समय उस

राक्षस ने राम से कहा कि आप धर्म में तत्पर शबरी तपस्विनी के पास जाइए। उसके कहने से रामचन्द्र वहाँ गये। उसने भक्ति से राम की पूजा की। तदनन्तर रामचन्द्र पम्पा के किनारे हनुमान् से मिले। हनुमान् के अनुरोध करने पर उन्होंने सुग्रीव से भेंट की और आदि से सीता का सब वृत्तान्त कह सुनाया। सब सुनकर सुग्रीव ने अग्नि को साक्षी करके राम से मैत्री की और प्रेम के कारण अपना सारा दुःख राम को सुनाया। तब कृपासिन्धु राम ने बाली को मारने की प्रतिज्ञा की। सुग्रीव ने बाली का पराक्रम राम से वर्णन किया; क्योंकि उसको रामचन्द्र के पराक्रम के विषय में शङ्का थी। रामचन्द्र के विश्वास के लिए उसने दुन्दुभि राक्षस की पर्वताकार ठठरी दिखला दी। तब रामचन्द्र ने हँसकर पैर के अँगूठे से उस भारी हड्डी को दश योजन पर फेंक दिया। फिर सात ताड़ वृक्ष, पर्वत और रसातल को एक ही महाबाण से छेदकर उन्होंने सुग्रीव को दृढ़ विश्वास करा दिया। तब सुग्रीव प्रसन्न होकर रामचन्द्र को साथ ले किष्किन्धा नामक गुहा के पास जाकर गर्जा। उस महानाद को सुन बाली ने, तारा को समझा-बुझाकर, घर से निकल सुग्रीव से युद्ध किया। रामचन्द्र ने, सुग्रीव के कहने से, एक ही बाण से बाली को मारकर उसके राज्य पर सुग्रीव को बिठाया।

तब वानरों के राजा सुग्रीव ने सीता को खोजने के लिए चारों दिशाओं में वानरों को भेजा। महाबली हनुमान् ने, सम्पाति गीध के कहने से, सौ योजन खारी समुद्र को पार करके लङ्कापुरी में प्रवेश किया। वहाँ अशोक वाटिका में ध्यान करती हुई सीता को हनुमान् ने रामचन्द्र की मुद्रिका दी और उनके समाचार कहकर सीता को ढाढ़स बँधाया। फिर उसने लङ्का के द्वार के तोरण भाग को तोड़ डाला। फिर पाँच सेनापतियों को, मन्त्रियों के सात पुत्रों को, और रावण के पुत्र अक्ष को मारकर हनुमान् ब्रह्मास्त्र के बन्धन में जा फँसा। ब्रह्मा के वरदान के कारण अपने को बन्धन से छूटा हुआ सा जान करके भी उसने बाँधनेवालों के अनादर को सहा। इसके अनन्तर वह, सीता के स्थान को छोड़, सारी लङ्का को भस्म कर समुद्र के इस पार चला आया। महात्मा रामचन्द्र के पास जा, उनकी प्रदक्षिणा करके उसने सीता के दर्शन का सब समाचार कह सुनाया। सुग्रीव को साथ लेकर रामचन्द्र समुद्र के तीर पर आये। जब सूर्य के समान तीक्ष्ण बाणों से उन्होंने समुद्र को क्षोभित किया तब समुद्र ने अपना स्वरूप दिखाया। समुद्र की राय से महाराज ने नल से सेतु बँधवाया। उस पर से वे लङ्का को गये। वहाँ रावण को मारकर उन्होंने सीता को पाया। परन्तु परम लज्जित होकर, सबके सामने, उन्होंने सीता को कठोर वचन कहा। उस वचन को न सहकर सीता ने अग्नि में प्रवेश किया। फिर अग्नि के वचन से सीता को पाप-रहित जानकर और पिता के वचन को मानकर, राम ने उसे ग्रहण किया। रामचन्द्र के इस बड़े काम से सचराचर देवताओं और ऋषियों सहित त्रैलोक्य सन्तुष्ट हुआ। उस समय सम्पूर्ण देवताओं से पूजित और हर्षित रामचन्द्र की अत्यन्त शोभा हुई। तब विभीषण को लंका का राज्य देकर, महाराज कृतार्थ हुए। देवताओं ने रामचन्द्र को वर दिया। मृतक वानरों को प्राणदान देकर पुष्पक विमान पर सवार हो महाराज अयोध्या को चले। मार्ग में भरद्वाज के आश्रम से उन्होंने भरत के पास हनुमान् को भेजा। फिर पुरानी बातें कहते हुए सुग्रीव के साथ, पुष्पक विमान पर चढ़कर, वे नन्दिग्राम पहुँचे। वहाँ भाइयों के

साथ जटाओं को त्याग कर महाराज राज्यसिंहासन पर बैठे।

महाराज रामचन्द्र के राज्य में प्रजा आनन्दित, तुष्ट, पुष्ट, धर्मात्मा, आधिव्याधि-रहित और दुर्भिक्ष के भय से वर्जित होगी। उनके राज्य में कोई पुरुष पुत्र का मरण न देखेगा; स्त्रियाँ वैधव्य-रहित और पतिव्रता होंगी। अग्नि, जल, वायु, ज्वर, क्षुधा और चोरों का भय कदापि न होगा। नगर और देश धनधान्य से भरे-पूरे होंगे और लोग ऐसे आनन्दित रहेंगे जैसे सत्ययुग में रहते हैं। भगवान् रामचन्द्र सौ अश्वमेध यज्ञ करके, ब्राह्मणों को विधिपूर्वक अनन्त गोदान और अनन्त धन देंगे; सौ गुने राजवंशों को स्थापन करके, अपने-अपने धर्मों पर चारों वर्णों को नियुक्त करेंगे और ग्यारह हजार वर्ष तक राज्य का पालन करके ब्रह्मलोक को जायँगे।

जो इस पवित्र, पाप-नाशक और आयुर्बल देने-वाले राम के चरित्र को पढ़ेंगे वे सब पापों से छूट जायँगे और कुटुम्ब एवं परिवार-सहित स्वर्ग में पूजित होंगे।

इस रामायण को ब्राह्मण पढ़े तो वेद-शास्त्र में पारङ्गत हो, क्षत्रिय पढ़े तो भूमिपति हो, वैश्य पढ़े तो व्यापारी हो और शूद्र पढ़े तो बड़प्पन पावे।

---

## दूसरा सर्ग

### व्याध को शाप और रामायण बनाने के लिए ब्रह्मा का उपदेश

वाल्मीकि ऋषि नारद की बातें सुनकर उनकी प्रशंसा करने लगे। शिष्यों ने भी उनकी प्रशंसा की। तदनन्तर देवर्षि नारदजी ने मुनि से बिदा माँग आकाश-मार्ग से गमन किया। नारदजी के जाने पर, कुछ देर में, तमसा नदी के तीर जाकर पास खड़े हुए भरद्वाज नामक शिष्य से मुनि बोले—देखो भरद्वाज, यह सुन्दर और निर्मल जल-युक्त तीर्थ है। इसका जल वैसा ही साफ है जैसा सत्पुरुषों का मन होता है। सो कलश को यहीं रखकर मेरे पहिनने के वल्कल दो। मैं इस उत्तम तमसा तीर्थ में स्नान करूँगा। महात्मा की आज्ञा पाकर भरद्वाज ने उन्हें वल्कल दिये। शिष्य के हाथ से वल्कल लेकर चारों ओर वन को देखते हुए, मुनि टहलने लगे। उस समय उस वन में मधुर बोली बोलनेवाले, निर्दोष, चुगते हुए क्रौञ्च पक्षी के जोड़े को वाल्मीकि ने देखा। इतने में पक्षियों के वैरी एक दुष्ट व्याध ने उस जोड़े में से नर को, मुनि के देखते ही, मारा डाला। तब उसकी स्त्री पक्षिणी पति को लोहू से भरा और भूमि पर छटपटाता देख करुण वाणी से रोने लगी। वह बेचारी उस लाल चोटीवाले और काम से मत्त अपने साथी पक्षी से रहित हो गई। उस पक्षी की यह दशा देखकर धर्मात्मा ऋषि के मन में दया उपजी। इस हिंसा-रूप अधर्म को और क्रौञ्ची को रोती देखकर ऋषि यह वचन बोले—

"मा निषाद प्रतिष्ठान्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥"

टीकाकारों ने तो इस श्लोक के कई अर्थ किये हैं; परन्तु उनमें से दो मुख्य हैं। उनमें भी पहला अर्थ सर्वसम्मत है। यथा—

पहला अर्थ—हे व्याध, तू अनेक वर्षों तक स्थिर न रहेगा, क्योंकि तूने इस क्रौञ्च के जोड़े में से काम-पीड़ित पुरुष-पक्षी को मारा है।

दूसरा अर्थ—हे माधव, रामचन्द्र, तू अनेक वर्षों

तक, अर्थात् ग्यारह हजार वर्षों तक, प्रतिष्ठा को—अखण्डैश्वर्य्य राज्य को—प्राप्त हो, क्योंकि तूने इस क्रौञ्च के, अर्थात् मन्दोदरी-रावणरूप राक्षस के, जोड़े में से काम-पीड़ित रावण-पुरुष को मार डाला है।

ऐसा कहते और मन में उसका अर्थ समझते हुए ऋषि को इसलिए बड़ी चिन्ता हुई कि इस पक्षी के शोक से पीड़ित होकर यह मैंने क्या कह डाला?

तब महापण्डित और बुद्धिमान् ऋषिश्रेष्ठ वाल्मीकि ने अपने शिष्य से कहा कि देखो चार पादयुक्त, तुल्य अक्षरवाला और वीणा की लय में गाने योग्य, मुझ शोकार्त्त के मुख से निकला हुआ यह वचन यशोरूप होगा; अन्यथा नहीं। यह बात मुनि के मुख से निकलते ही शिष्य ने उस वचन को याद कर लिया। तब मुनि उस पर सन्तुष्ट हो, विधिपूर्वक स्नान कर, उसी श्लोक के अर्थ का चिन्तन करते हुए आश्रम को लौटे। भरद्वाज शिष्य भी भरा हुआ घट लेकर गुरु के पीछे-पीछे चला। आश्रम में बैठकर शिष्य के साथ मुनिवर विविध कथाएँ कहने लगे। परन्तु ध्यान उनका उसी श्लोक के अर्थ पर था। इस अवसर पर लोकों के कर्त्ता प्रभु ब्रह्मा, मुनि को देखने के लिए, उनके आश्रम में आये। उनको आते देख वाल्मीकि ने बड़ी शीघ्रता से उठकर, नम्र हो, उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक आसन, अर्घ्य और पाद्य इत्यादि से उनकी यथाविधि पूजा की। भगवान् ब्रह्मा ने उत्तम आसन पर बैठकर ऋषि को बैठने की आज्ञा दी। उनकी आज्ञा से ऋषि भी आसन पर बैठ गये। वे अब भी उसी श्लोक के अर्थ की चिन्ता करने लगे कि देखो उस दुष्ट-बुद्धि व्याध ने, बिना कारण, मीठी बोली बोलनेवाले उस क्रौञ्च को मारा। जब क्रौञ्ची की ओर उनका ध्यान गया तब वे उसी श्लोक को फिर दुहराने लगे। इस तरह वे शोक से बहुत सन्तप्त हुए। इस पर भगवान् ब्रह्मा ने हँसकर कहा कि हे मुनिश्रेष्ठ! यह श्लोक ही बन गया है। इस पर कुछ विचार न कीजिए। मेरी ही इच्छा से यह वाणी आपके मुख से निकली है। आप धर्मात्मा, गुणवान्, और बुद्धिमान् महाराज रामचन्द्र के सम्पूर्ण चरित का वर्णन कीजिए जैसा आपने नारद से सुना है। राम, लक्ष्मण, सीता और राक्षसों का, गुप्त अथवा प्रकट सब वृत्तान्त आपको प्रत्यक्ष जान पड़ेगा। इस काव्य में आपकी कोई बात मिथ्या न निकलेगी। इसलिए आप राम की मनोहर और पवित्र कथा का वर्णन श्लोकों में कीजिए। जब तक भूतल पर पर्वत और नदियाँ रहेंगी तब तक लोक में रामायण की कथा का प्रचार रहेगा। और जब तक आपकी कथा का संसार में प्रचार रहेगा तब तक आप मेरे लोक में वास करेंगे। यह कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये। यह देखकर शिष्यों को और मुनि को बड़ा आश्चर्य हुआ। उनके शिष्य लोग प्रसन्न होकर उसी श्लोक को बार-बार पढ़ने लगे कि महर्षि ने तुल्य अक्षरवाले चार चरणों से जिस शोक को प्रकट किया है वह महाशोक में ऋषि के कहने से श्लोकरूप हो गया। तदनन्तर, वाल्मीकि की बुद्धि में यह आया कि मैं इसी प्रकार की श्लोकों में सम्पूर्ण रामायण काव्य बनाऊँ। ऐसा निश्चय कर उत्तम छन्द, पद और अर्थयुक्त, मनोहर और तुल्याक्षर से बने हुए श्लोकों से श्रीरामचन्द्र के चरित का वे वर्णन करने लगे। हे श्रोताओ! सन्धि, समास और प्रकृति-प्रत्यय के योग इत्यादि व्याकरण के अङ्गों से युक्त, मधुर और प्रसाद गुणवाले वाक्यों से सम्बद्ध, मुनि के बनाये हुए रावणवधरूपी रामचरित को तुम लोग सुनो।

———

# तीसरा सर्ग

## ध्यान से ऋषि का सम्पूर्ण रामचरित को जानना

अब नारदजी का धर्म-अर्थ-संयुक्त और हित-कारक उपदेश तथा पितामह ब्रह्मा की आज्ञा सुनकर वाल्मीकि मुनि सम्पूर्ण रामचरित ठीक-ठीक जानने के लिए उद्योग करने लगे। और जल से हाथ-पैर धो, आचमन कर, हाथ जोड़, कुशासन पर बैठे। तब वे मुनि योगबल से राम, लक्ष्मण, सीता, दशरथ और दशरथ की स्त्रियों का और सम्पूर्ण राज्यमण्डल का जो कुछ हँसना, बोलना, गति और चेष्टा थी और जो कुछ सत्यसन्ध महाराज रामचन्द्र ने वन में चरित्र किये थे सो सब देखने लगे। इस प्रकार मुनि ने सब वृत्तान्तों को देखकर अर्थ, धर्म, कामों के गुणों से भरे और सुनने में मनोहर, जैसा कि नारदजी ने उपदेश किया था ऐसे, रामचरित की कथा बनाने लगे।

पहले श्रीरामचन्द्र का जन्म, उनके अनेक गुणों का वर्णन, विश्वामित्र के साथ जाते हुए रास्ते की तरह-तरह की कथा, जनकपुर में जाकर धनुष का तोड़ना, सीता-विवाह, परशुराम का विवाद, राम के राजतिलक की तैयारी, कैकेयी की मति बदलना, राजतिलक का न होना, राम का वन को जाना, राजा का शोक और मृत्यु, प्रजाओं का विलाप, गुह से संवाद, सुमन्त्र का लौटना, गङ्गा का पार उतरना, भरद्वाज का दर्शन, भरद्वाज की सम्मति से चित्रकूट जाना, वहाँ पत्तों की कुटी बनाना, भरत का आना और राम को प्रसन्न करना, पिता की जलक्रिया, पादुका (खड़ाऊँ) का अभिषेक, नन्दिग्राम में भरत का बसना।

फिर रामचन्द्र का दण्डक-वन में जाना, विराध राक्षस का वध, शरभङ्ग ऋषि का दर्शन, सुतीक्ष्ण से भेंट, अनसूया से भेंट, अङ्गराग का अर्पण, अगस्त्य का दर्शन, धनुष का ग्रहण, शूर्पणखा से संवाद और उसके नाक-कान काटकर उसको विरूप करना, खर और त्रिशिरा का वध, रावण का उद्योग, मारीच का वध, सीताहरण, जटायु गीध का मारना, राम का विलाप, कबन्ध का दर्शन, पम्पागमन, शबरी की भेंट, फल-मूल का भोजन, पम्पा पर रामचन्द्र का विलाप, हनुमान् का दर्शन, ऋष्यमूक पर्वत पर जाना, सुग्रीव से मित्रता, बाली और सुग्रीव का युद्ध, बाली को मारना, सुग्रीव का राज्य, तारा-विलाप, प्रतिज्ञा करना, वर्षा-काल भर निवास, राम का क्रोध, राजा सुग्रीव की सेना का इकट्ठा होना, दिशाओं में उनका भेजना, भूगोल-वर्णन, हनुमान्‌जी को सीता के लिए अँगूठी देना, आहार छोड़कर समुद्र के तीर पर बैठना, सम्पाति का दर्शन, हनुमान् का पर्वत पर चढ़ना, समुद्र लाँघना, समुद्र के वचन से पर्वत का दर्शन, राक्षसी का मारना, छाया-ग्रहण करनेवाले को देखना और मारना, लङ्का का दर्शन, रात को लङ्का में प्रवेश, अकेला सोचना, रावण के रनवास में जाना, रावण और उसके पुष्पक-विमान का दर्शन, अशोकवाटिका में सीता का स्वप्न-दर्शन, अँगूठी देना, सीता से बातचीत, राक्षसियों का सीता को डराना, त्रिजटा का स्वप्न देखना, सीता का मणि देना, रावण की वाटिका-भङ्ग, राक्षसियों का भागना, राक्षसों को मारना, हनुमान् का पकड़ा जाना, लङ्का जलाना, फिर कूदकर समुद्र के इस पार आ जाना, मधुवन का विध्वंस करना, राम को सीता का पता मिलना, मणि देना, समुद्र का पुल बाँधना, समुद्र-पार जाना, रात्रि में लङ्का को घेरना, विभीषण का मिलाप, रावण के मारने का उपाय बताना, कुम्भकर्ण और

मेघनाद का मारा जाना, रावण का नाश, सीता का मिलाप, विभीषण को लङ्का का राजा बनाना, पुष्पक-विमान पर चढ़ अयोध्या को चलना, भरद्वाज से भेंट, हनुमान् को भरत के पास भेजना, भरत-मिलाप, राम का राज्याभिषेक, सब सेना को बिदा करना, अपने राज्य-मण्डल को प्रसन्न करना, सीता का त्याग और इसके सिवा वाल्मीकिजी ने रामचन्द्र का आगे का सब हाल भी जान लिया।

——

## चौथा सर्ग

### रामचन्द्र के पुत्र कुश और लव का वाल्मीकिजी से रामायण पढ़ना और उसको राम-सभा में गाना

जब रामचन्द्र राज्यसिंहासन पर बैठ चुके तब ऋषि ने इस ग्रन्थ को बनाया। इसमें चौबीस सहस्र (२४०००) श्लोक और कुछ ऊपर पाँच सौ (५००) सर्ग एवं सात काण्ड हैं। अब वाल्मीकि मुनि सोचने लगे कि मैंने इस काव्य को बना तो लिया परन्तु ऐसा भी तो कोई चाहिए जो इसको पढ़कर सभाओं में प्रचार करे। वे यह सोच ही रहे थे कि मुनि का वेष धारण किये हुए कुश और लव दोनों भाइयों ने आकर मुनि को प्रणाम किया। उन राज-पुत्रों की आवाज बड़ी मीठी और सुरीली थी। उनको धर्मज्ञ, यशस्वी, बुद्धिमान् और वेदों के सार को जाननेवाले जानकर मुनि ने उन्हें वह काव्य पढ़ाया और इस रामायण का नाम "पौलस्त्यवध"* रक्खा।

अब गान-विद्या के जानकार, सुन्दर मीठी आवाज-वाले, सूरत में रामचन्द्रजी के से लक्षणों से युक्त, कुश और लव, उस उत्तम गाने लायक काव्य को, सातो-स्वरवाली उत्तम वीणा के लय और शृङ्गारादि नव रसों से भरे हुए कण्ठ से, ऋषि और ब्राह्मणों की सभाओं में जहाँ-तहाँ गाने लगे। उनके गान को सुनकर मुनि लोग नेत्रों में आनन्द के आँसू भरकर बड़े प्रसन्न होते थे और उनकी बड़ी बड़ाई करते तथा कहते थे कि अहो! श्लोकों के गान की कैसी मधुरता है! प्राचीन वृत्तान्त को कैसा प्रत्यक्ष की तरह दिखाया है। फिर उस मण्डली के किसी मुनि ने प्रसन्न होकर उन दोनों को कलश दिया तो किसी ने वल्कल, मृगचर्म, यज्ञो-पवीत, कमण्डलु, मौञ्जी, आसन और कौपीन दिया। किसी ने कुल्हाड़ी, काषाय वस्त्र, और किसी ने चीर-जटा बाँधने की डोरी, यज्ञपात्र, लकड़ी तथा गूलर का आसन दिया और किसी ऋषि ने स्वस्ति और आयुष्मान् कहा। इसी तरह उन सत्यवादी और धर्मात्मा मुनियों ने प्रसन्न होकर उन दोनों को तरह-तरह की चीजें भेंट कीं।

इसके बाद, किसी समय, अयोध्या की गलियों और सड़कों में इसी काव्य को गाते हुए दोनों भाइयों को महाराज रामचन्द्र ने देखा। घर पर बुलाकर उन्होंने इनका खूब आदर-सत्कार किया। सुवर्ण के दिव्य सिंहासन पर बैठकर, उन्होंने भाइयों से कहा कि इन देव-तुल्य बालकों के इस विचित्र अर्थ और पदयुक्त

* रावण पुलस्त्यवंशी था, इसलिए वह "पौलस्त्य" कहलाता था। पौलस्त्य-वध अर्थात् रावण का वध।

कथा के गान को सुनो। अब रामचन्द्रजी ने कुश और लव को गाने की आज्ञा दी। तब वे दोनों बालक मधुर, मनोहर और वीणा की लय के साथ उस काव्य को गाने लगे। उस समय उनका गाना सुननेवालों को बहुत ही अच्छा मालूम होता था। इस तरह रामचन्द्रजी अपने भाइयों के साथ उनकी बड़ाई करने और गाना सुनने लगे।

श्रीवैवस्त मनु से लेकर जिनके अधिकार में यह सम्पूर्ण पृथ्वी थी, जिनके वंश में महाराज सगर उत्पन्न हुए, जिन्होंने सागर को खोदा और जिनके साठ सहस्र (६०,०००) पुत्र उत्पन्न हुए, उन्हीं इक्ष्वाकुवंशी महात्मा राजाओं के वंश में वह महाकथा उत्पन्न हुई। वही महा-कथा रामायण नाम से विख्यात है। इस रामायण का हम आदि से अन्त तक वर्णन करेंगे।

यह काव्य अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—चारों फलों का दाता है; इस कारण श्रोता लोग ईर्ष्या छोड़कर इसको सुनें।

---

## पाँचवाँ सर्ग

### अयोध्या का वर्णन

सरयू नदी के किनारे, धनधान्य से भरपूर, दिन-दिन खूब बढ़नेवाला कोशल नामक बड़ा प्रदेश है। उस प्रदेश में, सुप्रसिद्ध महाराज मनु की बनाई अयोध्या नगरी है। वह बारह योजन* लम्बी और तीन योजन चौड़ी है। उसकी बड़ी-बड़ी सड़कें और चारों ओर के बड़े-बड़े दरवाजे बड़ी सुघराई से बनाये गये हैं। उसके भीतर की सड़कें सुन्दर-सुन्दर फुलवाड़ियों से सजी हुई हैं। वहाँ, सड़कों पर, खूब छिड़काव होता रहता है। देश के बढ़ानेवाले महाराज दशरथ ने उस नगरी को, इन्द्र की अमरावती पुरी की तरह, बसाया। वह किवाड़ और बन्दनवारों से सुशोभित थी। उसकी दूकानें सुन्दर सजी हुई थीं। वहाँ सब तरह की कलें और अस्त्र-शस्त्र मौजूद रहते थे। वहाँ सब प्रकार के शिल्पकार मौजूद थे। सूत और मागधों से संयुक्त तथा बड़ी सुन्दर चमकती हुई ऊँची-नीची अटारियों और ध्वजाओं से अयोध्या शोभित थी। वहाँ सैकड़ों शतघ्नी (तोप) शस्त्र रक्खे रहते थे। वहाँ पर नाचने-गानेवालों की कमी न थी। उसमें अमराई से और साखुओं के वृक्षों से संयुक्त बगीचे थे। अगाध खाई से घिरी रहने के कारण वह सर्व साधारण के लिए दुर्गम थी। शत्रुओं की दाल तो उसमें गल ही न सकती थी। वह घोड़े, ऊँट इत्यादि पशुओं से भरी हुई थी। सामन्त नरपति कर लिये हाजिर रहते थे। वह नाना देशवासी व्यापारियों से शोभित थी। रत्नों से बनी हुई पर्वताकार अटारियाँ उसकी शोभा बढ़ा रही थीं। उसमें स्त्रियों के बड़े सुन्दर क्रीड़ागृह हैं; कूटागार तो अमरावती के तुल्य सुशोभित हैं। वह अयोध्या श्रेष्ठ नारियों से, सब प्रकार के रत्नों से और सात खनवाले गृहों से सुशोभित है। उसके गृह-समूह अत्यन्त दृढ़ और समभूमि पर बने हुए हैं। उसमें शिल इत्यादि उत्तम तण्डुल और ऊख के रस के समान मीठा जल भरा रहता है। वहाँ नगाड़े, मृदङ्ग, वीणा और ढोलक बजते रहते हैं। अयोध्या, तपस्या से प्राप्त सिद्धों के विमान की तरह है। उसके सुन्दर भवनों में श्रेष्ठ पुरुष रहते हैं। अयोध्या में ऐसे हज़ारों

* योजन चार कोस का होता है।

महारथी भरे पड़े हैं जो असहाय, अकेले मनुष्य को नहीं मारते एवं छिपकर हमला नहीं करते; वे बड़े फुर्तीले हैं; और वे पैने हथियारों से अथवा बाहुबल से मतवाले सिंह, व्याघ्र, वराह आदि जन्तुओं को मारते हैं। उसमें महागुणी, अग्निहोत्री, वेद षडङ्ग के पारंगत पण्डित, बड़े भारी दाता, सत्यशील और महर्षि तुल्य महात्मा निवास करते हैं।

---

## छठा सर्ग

### अयोध्या का कुल और वर्णन

उस अयोध्यापुरी में वेदों के जाननेवाले दीर्घदर्शी और बड़े तेजस्वी राजा दशरथ राज्य करते थे। ये पुरवासियों और राज्य की प्रजा को प्रिय थे और तीनों लोकों में इक्ष्वाकुवंश के महारथी एवं धर्मात्मा माने जाते थे। ये जितेन्द्रिय थे; और खूब यज्ञ-याग करते रहते थे। परपक्ष को अपने बल से दबाकर ये सुजनों पर कृपा रखते थे। अधिक क्या कहें, धन-धान्य का संग्रह करने में ये इन्द्र और कुबेर समझे जाते थे। अमरावती जिस प्रकार इन्द्र से रक्षित है उसी प्रकार सत्यसन्ध दशरथ राजा धर्म, अर्थ और काम का अनुसरण करते हुए अयोध्या का पालन करते थे। उस उत्तम पुरी में धर्मात्मा, लोभ-रहित, सन्तोषी और सत्यवादी लोग रहते थे। उस समय वहाँ कोई ऐसा कुटुम्ब नहीं था कि जो निर्धन हो या किसी वस्तु की आशा रखता हो अथवा जिसका घर गाय, घोड़े, धन और धान्य से पूर्ण न हो। वहाँ कामी, कृपण और हिंसक कोई नहीं था। वहाँ न तो कोई मूर्ख था और न कोई नास्तिक। वहाँ सब स्त्री-पुरुष धर्म करते और इन्द्रियों को वश में रखते थे। उनके काम ऐसे अच्छे थे कि जैसे ऋषियों के होते हैं। वहाँ ऐसा कोई नहीं था कि जो कानों में कुण्डल न पहने हो; माथे पर मुकुट न धारण किये हो; और जिसके गले में माला न पड़ी हो, या जो अच्छी तरह पदार्थों का भोग न करता हो। वहाँ ऐसा भी कोई न था जो मलिन रहता हो, या चन्दनादि सुगन्ध से रहित हो, अथवा अच्छे-अच्छे पदार्थ न खाता हो। वहाँ ऐसा कोई न था कि जिसके गले और हाथों में सोने का गहना न हो, या जिसने अपने मन को न जीता हो, या जिसने अग्नि में यज्ञ न किया हो। वहाँ कोई चोर न था। वहाँ सब सदाचारी थे और अपने-अपने धर्म-कर्म करते थे। उस पुरी में ब्राह्मण लोग सदा अपने काम में लगे रहते थे। वे जितेन्द्रिय थे; और दान करने एवं पढ़ने-पढ़ाने में लगे रहते थे। वे बुरे दान से दूर भागते थे। उस राजधानी में नास्तिक, झूठा, निन्दक, मूर्ख, वेदों के षडङ्गों से हीन, व्रतरहित, दीन, उन्मत्त और पीड़ित कोई भी नहीं देख पड़ता था। सब स्त्री-पुरुष श्रीमान्, रूपवान् और राज-भक्त ही देख पड़ते थे। उस उत्तम पुरी में चारों वर्ण देवता और अतिथियों का सत्कार करते थे; किये हुए उपकार को मानते थे, तथा दानी, शूर, पराक्रमी, सत्यवादी और धर्मात्मा थे। स्त्रियाँ बेटे-पोतोंवाली होती थीं। वहाँ के क्षत्रिय ब्राह्मणों के सेवक होते थे। वैश्य क्षत्रियों के अनुगामी और शूद्र तीनों वर्णों की सेवा करते थे। वह नगरी ऐसे योद्धाओं से भरी रहती थी जो अग्नि के तुल्य तेजस्वी थे और धर्मयुद्ध करते थे। वे योद्धा हार को न सह सकते थे और सम्पूर्ण विद्याएँ जानते थे। काम्बोज, वाह्लीक, वनायु और नदी के समीप के देश में पैदा होनेवाले—इन्द्र के घोड़ों के समान—उत्तम घोड़ों से वह नगरी भरी रहती थी।

विन्ध्य और हिमालय पर्वतों में उपजनेवाले, पर्वताकार, मतवाले हाथी अयोध्या में थे। ऐरावत, महापद्म, अञ्जन और वामन की नस्ल के भद्रमन्द्र, भद्रमृग और मृगमन्द्र नामक जातियों के मेल से उत्पन्न हाथी उस पुरी में थे। ऐसे मतवाले और पर्वताकार हाथियों से अयोध्या भरी रहती थी। दो योजन पर्यन्त वह नगरी वैसी ही थी जैसा कि उसका नाम* है अर्थात् उसे कोई युद्ध से न जीत सकता था। उस नगरी में, तारों में चन्द्रमा की तरह, महाराज दशरथ शोभा देते थे। सच्चे नामवाली, मजबूत तोरण और तरह-तरह के घरों से युक्त, एवं हजारों मनुष्यों से भरी हुई अयोध्यापुरी का शासन वे इन्द्र के समान करते थे।

---

## सातवाँ सर्ग

### मन्त्रियों का वर्णन

राजा दशरथ के—धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्द्धन, अकोप, धर्मपाल और सुमन्त्र—आठ मन्त्री थे। सलाह देने में ये बड़े चतुर थे। इशारों को ये खूब पहचानते थे। ये सदा राजा के हित में लगे रहते थे। ये बड़े यशस्वी, शुद्ध और राज्य के कामों में सदा लगे रहते थे। इनके सिवा राजा के यहाँ वशिष्ठ और वामदेव ऋषि खास यज्ञ करानेवाले थे। सुयज्ञ, जाबालि, काश्यप, गौतम, मार्कण्डेय और कात्यायन, ये सब ब्रह्मर्षि भी—कुलपरम्परा से—राजा के मन्त्री थे अर्थात् समय-समय पर इन ऋषियों से भी राजा सलाह लिया करते थे। ये मन्त्री विद्या और विनय से पूर्ण, लज्जाशील, चतुर और जितेन्द्रिय थे। ये लोग श्रीमान्, महात्मा, शस्त्रविद्या के जाननेवाले, पराक्रमी, और कीर्त्तिमान् थे। वे सावधान होकर राजा के वचन को पालनेवाले, तेजस्वी और क्षमावान् थे तथा प्रसन्नमुख से बोलते थे। क्रोध से वा डाह से वे कभी झूठ न बोलते थे। वे मित्रों और शत्रुओं की खबरें दूत के द्वारा जान लेते थे। व्यवहार में वे बड़े कुशल थे। अपराध करनेवाले मित्रों और पुत्रों को भी वे न्याय से दण्ड देते थे। खजाने और सेना के कामों में वे बड़े चतुर थे। बिना अपराध के वे शत्रु को भी कभी न मारते थे। वीरों की और नीति से चलनेवालों की वे सदा रक्षा करते थे। ब्राह्मणों और क्षत्रियों को क्लेश नहीं देते थे। वे कोश (खजाने) को भरते और अपराधी के बलाबल का विचार कर मामूली या कड़ा दण्ड देते थे। इनका रोब-दाब ऐसा था कि कोई झूठ नहीं बोलता था और न कोई दुराचारी था। राज भर में बड़ा अमन-चैन था। मन्त्री लोग सुन्दर वस्त्र पहनते, सुन्दर वेष धारण करते और महाराज के हित के काम करते थे। बड़े पराक्रमी मन्त्री लोग नीति के ज्ञाता थे। वे अच्छे गुणों को ग्रहण करते और सब कामों को बुद्धि से करते थे। वे सब बातें जानते थे और समय-समय पर सत्वादि तीनों गुणों से युक्त रहते थे। अपने विचारों को वे गुप्त रखते थे। वे नीतिशास्त्र (कानून) के मर्म को जानते थे और सदा प्रिय बोलते थे। इन मन्त्रियों के साथ राजेन्द्र दशरथ, दूतों के द्वारा सब राजकाज किया करते थे। वे धर्म से प्रजा की रक्षा करते थे। अधर्म को वे कभी पास न फटकने देते थे। ये बड़े दानी थे, सदा सच बोलते थे। शत्रुओं को सदा तुच्छ ही समझते थे, और सबसे मित्रता रखते थे। अपने अधीन छोटे-छोटे

* अयोध्या का अर्थ है, जिसके साथ युद्ध न किया जा सके।

राजाओं से पूजित होकर वे अपने प्रताप से इन्द्र की तरह जगत् का राज्य करने लगे और सूर्य की तरह अपने राज्य में तपने लगे।

---

## आठवाँ सर्ग

### पुत्र के लिए यज्ञ करने का विचार

अब प्रतापी महाराज दशरथ को पुत्र के लिए बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे कि अश्वमेध यज्ञ करना चाहिए। ऐसा विचार कर राजा ने अपने आठवें मन्त्री सुमन्त्र से कहा कि हमारे गुरु और पुरोहितों को जल्द बुलाओ। सुमन्त्र राजा की आज्ञा से सुयज्ञ, वामदेव, जाबालि और काश्यप—इन वेदपाठी ब्राह्मणों को बुला लाया। उन सबकी पूजा कर राजा धर्म और अर्थ-युक्त मधुर वचन बोले कि मैं पुत्र के लिए अश्वमेध यज्ञ करना चाहता हूँ। पुत्र की चिन्ता से मुझे कुछ भी सुख नहीं है, इसलिए मैं शास्त्र की विधि से यज्ञ करूँगा। आप लोग ऐसा विचार कीजिए जिससे मेरा मनोरथ पूरा हो। इस पर वशिष्ठ आदि ब्राह्मणों ने राजा के कथन की बड़ाई की। वे प्रसन्न होकर बोले—हे राजा, तैयारी करिए, घोड़ा छोड़िए और सरयू नदी के उत्तर तीर पर यज्ञ के लिए पृथिवी ठीक कराइए। ऐसा करने से आपका मनोरथ जरूर पूरा होगा। आपने यह बहुत ही ठीक सोचा है।

ब्राह्मणों का वचन सुन महाराज दशरथ प्रसन्न हुए। वे मन्त्रियों से बोले कि गुरु लोगों के वचन से मेरे यज्ञ की तैयारी करो। उपाध्याय के साथ घोड़े को छोड़ो और राजपुत्रों को उसकी रक्षा के लिए तैनात करो। सरयू के उत्तर तीर पर यज्ञ-भूमि बनाओ; और कल्प-शास्त्र के अनुसार विधि-पूर्वक शान्ति-कर्म करो; क्योंकि यह यज्ञ करना बड़ा कठिन है। खूब ध्यान रहे कि यज्ञ करने में किसी प्रकार की कमी न रहने पावे; नहीं तो छिद्र खोजनेवाले ब्रह्मराक्षस बड़ा विघ्न करेंगे। जो विधिहीन यज्ञ करता है उसका तुरन्त नाश हो जाता है, इसलिए यज्ञ विधिपूर्वक ही होना चाहिए। तुम लोग इसके करने में समर्थ हो।

राजा का बचन सुनकर मन्त्री लोगों ने 'बहुत अच्छा' कहा। ब्राह्मण लोग भी राजा को आशिष देकर अपने-अपने घर चले गये। मन्त्रियों को समझाकर और उनको बिदा करके राजा रनवास में पहुँचे। वे अपनी रानियों से बोले कि तुम सब यज्ञ-दीक्षा के नियम का पालन करो। मैं पुत्र के लिए यज्ञ करूँगा। पति के मुख से इतनी बात निकलते ही रानियाँ खूब प्रसन्न हुईं, उस समय, खुशी में, उनके चेहरे की शोभा ऐसी हो गई जैसी कि वसन्त-काल में खिले हुए कमलों की होती है।

---

## नवाँ सर्ग

### ऋष्यशृङ्ग ऋषि की कथा

इस तरह यज्ञ की बातें सुनकर सुमन्त्र ने राजा से एकान्त में कहा—महाराज! मैंने पुराण में एक प्राचीन कथा सुनी है, उसे सुनिए। आपकी सन्तान के बारे में भगवान् सनत्कुमार ने ऋषियों को यह कथा सुनाई थी और ऋत्विज लोगों ने कही थी। वह इस तरह है—

काश्यप ऋषि के पुत्र विभाण्डक के ऋष्यशृङ्ग नामक पुत्र होंगे। वे वन ही में रहेंगे और सदा पिता के पास रहने से दूसरे किसी पुरुष वा स्त्री को न जानेंगे। महात्मा ऋष्यशृङ्ग का ब्रह्मचर्य दो प्रकार का होगा। इस बात को सब लोग जानेंगे। अग्नि और पिता की सेवा करते-करते जब ऋष्यशृङ्ग को बहुत समय हो जायगा तब, इसके बाद, अङ्गदेश में महाबली और प्रतापी रोमपाद नामक प्रसिद्ध राजा होगा। कुछ दिनों के बाद उस राजा के अत्याचार से वर्षा न होगी। इससे सब प्राणियों को भयङ्कर दुःखदायक दुर्भिक्ष पड़ेगा। तब वह राजा दुःखित होकर शास्त्र जाननेवाले ब्राह्मणों को इकट्ठा कर कहेगा कि आप लोग लोकव्यवहार और शास्त्र के जाननेवाले हैं। इसलिए वर्षा होने का कोई उपाय बतलाइए। इस पर वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण लोग राजा को यह उपदेश करेंगे कि महाराज! विभाण्डक ऋषि के पुत्र महामुनि ऋष्यशृङ्ग को किसी उपाय से यहाँ ले आइए; और सत्कारपूर्वक, वेदविधि से, अपनी बेटी शान्ता उनसे ब्याह दीजिए तो अवश्य वर्षा होगी। उन ब्राह्मणों की यह बात सुनकर राजा चिन्ता करेंगे कि वे जितेन्द्रिय मुनि-पुत्र किस उपाय से आ सकते हैं। सोच-विचारकर राजा अपने पुरोहित और मन्त्रियों को उस मुनि के पास भेजेगा। पर वे लोग, मुनि के शाप के डर से, राजा की बात न मानेंगे और कहेंगे कि हे राजा! इस तरह से तो नहीं, पर किसी और उपाय से हम ऋषि को यहाँ लिवा लायेंगे। इसमें हमको दोष भी न होगा और काम भी बन जावेगा। फिर वे लोग वेश्याओं से ऋषिपुत्र को बुलवा लेंगे। उनके आने से पानी बरसेगा और राजा रोमपाद अपनी कन्या ऋषि को ब्याह देंगे। महाराज! वही ऋष्यशृङ्ग आपके पुत्र-लाभ के लिए भी उपाय करेंगे।

यह सनत्कुमार की कही हुई बात मैंने आपको कह सुनाई। यह सुन राजा दशरथ बोले कि हे सुमन्त्र! जिस तरह रोमपाद राजा ने उन ऋषिजी को बुलाया वह ब्यौरेवार हमसे कहो।

---

## दसवाँ सर्ग

### रोमपाद के यहाँ ऋष्यशृङ्ग ऋषि का आना

महाराज दशरथ के पूछने पर सुमन्त्र ने ऋष्यशृङ्ग की कथा विस्तार पूर्वक कहनी शुरू कर दी।

सुमन्त्र ने कहा—महाराज! जिस उपाय से ऋष्यशृङ्ग को मन्त्रियों ने बुलवाया सो मैं कहता हूँ। मन्त्रियों-सहित आप सुनिए—

मन्त्री और पुरोहित लोग रोमपाद राजा से बोले कि हमने एक उपाय सोचा है। ऋष्यशृङ्ग तो निरे वनवासी हैं। वे सदा तप में ही लगे रहते हैं। विषयों का सुख तो वे कुछ जानते ही नहीं, इसलिए हम उनको इन्द्रियों के विषयों के द्वारा नगर में बुला लायेंगे। मनुष्य के मन को इन्द्रियों के विषय मोहित कर लेते हैं। बढ़िया रूपवती वेश्याएँ अच्छे-अच्छे गहने और कपड़ों से सज-धजकर वहाँ जायँ और अनेक उपायों से उनको मोहकर यहाँ ले आवें।

यह सुन, राजा ने पुरोहित को और पुरोहित ने मन्त्रियों को ऐसा ही करने की आज्ञा दी। उनकी आज्ञा से वेश्याएँ इस शृङ्गवेरपुर के घोर जङ्गल में, ऋषि के आश्रम के पास, जा उनको देखने का उपाय करने लगीं। क्योंकि ऋष्यशृङ्ग आश्रम से बाहर

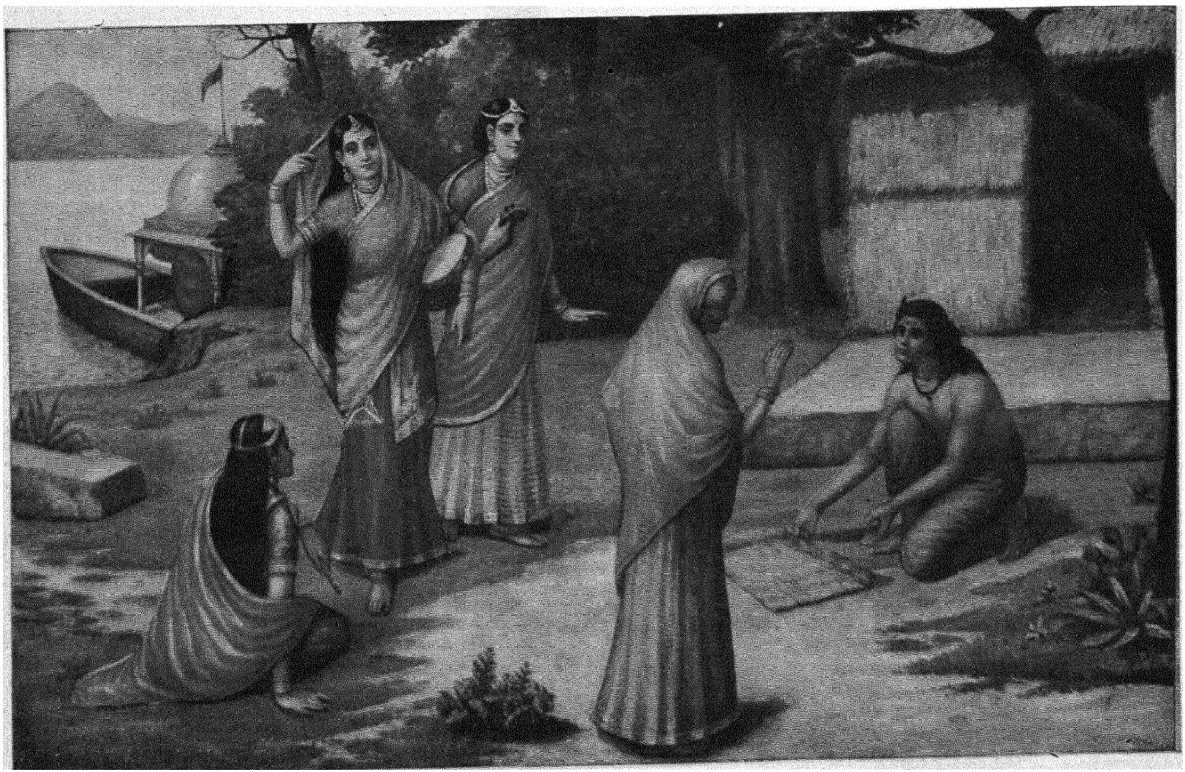

मुनि-मोहन

[ पृष्ठ १४

कभी नहीं जाते थे। वे सदा वहीं आनन्दपूर्वक पिता की सेवा में लगे रहते थे। उन्होंने जन्म से अपने पिता के सिवा और किसी पुरुष अथवा स्त्री को कभी देखा भी न था। उनको संसार की कुछ भी खबर न थी। वह एक दिन अचानक वहाँ आये जहाँ सजी हुई वेश्याएँ नाच और गा रही थीं। वेश्याओं को देखकर ऋषि को बड़ा अचम्भा हुआ। ऋषि के पास जाकर वेश्याएँ बोलीं कि हे ब्रह्मदेव! आप कौन हैं और यहाँ क्या करते हैं; इतनी दूर, निर्जन वन में, आप अकेले किस लिए फिरते हैं? हम आपको जानना चाहती हैं।

ऋष्यशृङ्ग ने ऐसी मीठी, महीन और कोमल वाणी पहले काहे को सुनी थी! इसी लिए वे वेश्याओं की बातें सुनकर चकित हो गये। वे उनसे बड़ी प्रीति से बोले—

हमारे पिता का नाम विभाण्डक और हमारा ऋष्यशृङ्ग है। हम यहाँ जो कुछ करते हैं वह सबको मालूम है। यहाँ, पास ही, हमारा आश्रम है। आप कृपा कर वहाँ चलें। मैं विधिपूर्वक आप लोगों का सत्कार करूँगा। मुनि की बात सुनकर, उनका आश्रम देखने की इच्छा से, वे स्त्रियाँ उनके साथ चली गईं। वहाँ उन्होंने सब तरह से उनकी खातिर की और कन्द-मूल, फल उन्हें खाने को दिये। फिर वे स्त्रियाँ, उनके पिता के डर से, जल्द ही चलने की इच्छा करने लगीं। वे अपने साथ बड़ी सुन्दर-सुन्दर मिठाई लाई थीं। ऋषि को वह मिठाई देकर बोलीं—लीजिए, ये हमारे फल हैं; आप इनका भी स्वाद देखिए। ऋषि ने उन मिठाइयों को, फल समझकर, बड़ी खुशी से खाया। फिर किसी बहाने से वेश्याएँ उस ऋषि से विदा हो अपने घर को लौट आईं।

वेश्याओं के चले जाने पर ऋष्यशृङ्ग बहुत उदास हुए। फिर दूसरे दिन, मन में उनकी याद करते हुए वे उसी जगह आये जहाँ उनको पहले दिन देखा था। उनको आते देख वे सबकी सब प्रसन्न हो, उनके पास आकर बोलीं—महाराज! आइए, हमारा आश्रम भी देखिए। वहाँ इससे भी अधिक तरह-तरह के फल और मूल पाइएगा। ऐसा कह वे उस ऋषि को अपने नगर में लिवा ले गईं।

उस महात्मा ब्राह्मण के आते ही नगर में ऐसी वर्षा हुई कि सारा संसार प्रसन्न हो गया। वृष्टि होते ही राजा ने जान लिया कि ऋषि आ गये। उनके पास जा, उसने बड़ी नम्रता से सिर झुकाकर उनको प्रणाम किया; और उनको शान्त करने के लिए उनसे अपने अपराध की क्षमा माँगी। उन्हें रनवास में ले जाकर, अपनी कन्या शान्ता उनको विधि से ब्याह दी और आप प्रसन्नतापूर्वक राज्य करने लगा। इस तरह सब प्रकार से प्रसन्न हो ऋष्यशृङ्ग उस राजधानी में शान्ता के साथ रहने लगे।

---

## ग्यारहवाँ सर्ग

### राजा दशरथ का ऋष्यशृङ्ग को अयोध्या में लाना

फिर सुमन्त्र ने राजा से कहा कि महाराज! सनत्कुमार की कही हुई और भी एक बात सुनिए। उन्होंने कहा था कि इक्ष्वाकु राजा के वंश में धार्मिक और सत्यसन्ध दशरथ राजा होंगे। अंग देश के राजा से उनकी मित्रता होगी। शान्ता उस राजा की पुत्री होगी। उस राजा के पास राजा दशरथ जाकर

कहेंगे कि हे धर्मात्मा ! मैं सन्तानरहित हूँ; इसलिए अपने जमाई ऋष्यशृङ्ग ऋषि को अनुमति दीजिए ताकि वे मेरे यहाँ सन्तान होने के लिए यज्ञ करें। तब राजा रोमपाद पुत्रसहित ऋष्यशृङ्ग को दशरथ के साथ भेज देंगे। फिर वे ऋषि राजा से यज्ञ करावेंगे। राजा का मनोरथ सिद्ध हो जायगा। उनके बड़े परक्रमी, चार पुत्र होंगे। वे पुत्र सारे संसार में नामी होंगे और अपने वंश को खूब बढ़ावेंगे। महाराज ! सत्ययुग में सनत्कुमार ने यही कहा था। अब आप खुद जाकर उनको आदर के साथ ले आइए।

सुमन्त्र की बात सुनकर राजा दशरथ ने अपने गुरु से अनुमति माँगी; फिर वे मन्त्रियों और रानियों को साथ ले अंगदेश की ओर चले। बहुत से वनों और नदियों को लाँघते हुए धीरे-धीरे वे राजा रोमपाद के नगर में जा पहुँचे। राजा ने वहाँ रोमपाद के पास, अग्नि की तरह तेजस्वी, ऋष्यशृङ्ग को बैठा देखा। राजा रोमपाद ने महाराज दशरथ का खूब सत्कार किया। उन्होंने राजा दशरथ के साथ अपनी मित्रता होने का हाल ऋषिपुत्र से कह दिया। यह सुनकर मुनि भी प्रसन्न हुए। महाराज दशरथ वहाँ सात-आठ दिन रहकर रोमपाद से बोले कि राजन् ! आपकी कन्या, पति के साथ, मेरे नगर को चले तो बड़ी कृपा हो। उनसे मेरा एक बड़ा भारी काम है। इतना सुनते ही राजा ने ऋष्यशृङ्ग से कहा कि अपनी पत्नी के साथ आप महाराज दशरथ के संग जाइए। जाने के लिए मुनि तैयार हो गये। तब वे दोनों राजा परस्पर हाथ जोड़ और गले से गला मिलाकर अत्यन्त आनन्दित हुए। इसके बाद महाराज दशरथ अयोध्या को लौटे। उन्होंने रास्ते ही से जल्द चलनेवाले दूतों को अयोध्या भेजा और कहा कि तुम जल्द जाकर नगरी में खूब सफाई कराओ; खूब सुगन्धित धूप जलवाओ; सड़कों पर खूब छिड़काव कराकर सुन्दर बन्दनवारों से सारे नगर को सजाओ। दूतों ने झट अयोध्या जाकर ऐसा ही किया। राजा तरह-तरह के बाजे बजाते हुए ऋषिपुत्र को नगर में ले गये। फिर ऋषिपुत्र को रनिवास में ले गये। वहाँ, स्त्रियाँ भी पति-सहित शान्ता को देखकर खूब प्रसन्न हुईं। पति के साथ वहाँ शान्ता सुख से रहने लगी।

---

## बारहवाँ सर्ग

### यज्ञ की चर्चा

वसन्त ऋतु में यज्ञ करने की इच्छा से राजा ने, बड़ी नम्रता से, उस देवतुल्य ऋषि से आज्ञा माँगी। ऋषि ने प्रसन्न होकर कहा कि राजन्, आप यज्ञ का सामान इकट्ठा कर घोड़े को छोड़िए; और सरयू नदी के उत्तर तीर पर यज्ञभूमि बनाइए। ऋषि की बात सुनकर राजा ने सुमन्त्र को आज्ञा दी कि ब्रह्मवादी ऋत्विजों को जल्द बुलाओ। तब सुमन्त्र जल्द जाकर सुयज्ञ, वामदेव, जाबालि, काश्यप और पुरोहित वशिष्ठ को तथा और भी बहुत से विद्वान् ब्राह्मणों को राजा के पास बुला लाया। राजा ने विधि से सत्कार कर उनसे कहा कि मैं सन्तान के लिए अश्वमेध यज्ञ करना चाहता हूँ। आशा है, महात्मा ऋष्यशृङ्ग की और आपकी दया से मेरी इच्छा पूरी हो जायगी। इस पर वशिष्ठ आदि ब्राह्मण बोले कि बहुत अच्छा; महाराज ! आप सामान इकट्ठा कर घोड़े को छोड़िए और सरयू के उत्तर तीर पर यज्ञभूमि की रचना कीजिए। आपके बड़े प्रतापी चार पुत्र जरूर पैदा होंगे। यह सुनकर राजा प्रसन्न हो

मन्त्रियों से बोले कि गुरु लोगों के कहने के अनुसार, सब सामान इकट्ठा हो जाय और उपाध्याय के साथ सुरक्षित घोड़ा छोड़ा जाय। सरयू के उत्तर तट पर यज्ञ-भूमि बनाकर शास्त्र के अनुसार विधिपूर्वक शान्ति की जाय। सभी राजा लोग यह यज्ञ नहीं कर सकते। इसमें किसी प्रकार की त्रुटि न होनी चाहिए। क्योंकि ब्रह्म-राक्षस छिद्र ढूँढ़ते रहते हैं, और विधिहीन यज्ञ का करनेवाला भी जल्द नष्ट हो जाता है; इसलिए ऐसा उपाय करना चाहिए जिसमें यह यज्ञ विधि से हो। यह सुनकर मन्त्री लोग बड़े प्रसन्न हुए और उनकी इच्छा से यज्ञ की सब तैयारियाँ करने लगे। राजा की बड़ाई करके ब्राह्मण लोग अपने-अपने स्थान को चले गये और मन्त्रियों को बिदा कर राजा अपने महल में चले आये।

---

# तेरहवाँ सर्ग

## यज्ञ की तैयारियाँ

वसन्त ऋतु के आने पर राजा ने वशिष्ठजी के पास जा, हाथ जोड़कर कहा—गुरुजी, अब यज्ञ आरम्भ होना चाहिए। आप ऐसा उपाय कीजिए जिसमें कोई विघ्न न हो; क्योंकि आप हमारे बड़े हितैषी हैं। इस यज्ञ का सारा भार आपके ही ऊपर है। वशिष्ठजी बोले कि आपका सब काम निर्विघ्न पूरा हो जायगा। फिर उन्होंने यज्ञ कराने की विधि जाननेवाले बड़े-बड़े विद्वान् ब्राह्मणों को, रथ बनानेवालों को, अच्छे-अच्छे शिल्पी लोगों को, बढ़इयों को, पृथ्वी खोदनेवालों को, गणकों, नटों और नाचनेवालों को बुलाया। राजा के सामने ही उन्होंने सबको आज्ञा दी कि तुम लोग राजा के यज्ञ का काम करने के लिए तैयार हो जाओ। बाहर से आनेवाले राजाओं और ब्राह्मणों के ठहरने के लिए ऐसे मकान तैयार करो जिनमें सब तरह का आराम हो। उन मकानों में सब जरूरी चीजें रख दो। राजा लोगों के हाथी-घोड़ों के ठहरने के लिए भी मकान बनाओ और उनके खाने-पीने का सब सामान तैयार रक्खो। बहुत से मकान और भी तैयार करो जिनमें बाहर के लोग आराम से ठहरें। उन सबके आदर-सत्कार में किसी तरह की कमी न होने पावे। यज्ञ करानेवालों की भी तुम खूब सेवा करो। तुम अपने-अपने काम पर तैयार रहो।

वशिष्ठजी की बातें सुनकर वे लोग बोले—महाराज! आप किसी बात की चिन्ता न कीजिए, सब काम ठीक हो जायँगे। तब वशिष्ठ ने सुमन्त्र को बुलाकर कहा कि तुम धर्मात्मा राजाओं के पास न्यौता भेजो और ब्राह्मण आदि चारों वर्णों को सत्कार से बुलवाओ। सत्यवादी महाराज मिथिला-नरेश, काशी-नरेश और महाराज दशरथ के श्वशुर केकयदेश के राजा को पुत्रसहित न्यौता भेजो; महाराज के मित्र अङ्ग देश के राजा रोमपाद को, पुत्रसहित कोशल देश के राजा भानुमान को और अनेक शास्त्रों में निपुण मगध देश के राजा को न्यौता भेजो। पूर्व देश के सिन्धु, सौवीर, सुराष्ट्र और दक्षिण देशवाले सम्पूर्ण राजाओं को तथा इसके सिवा पृथ्वी पर जो और-और राजा लोग हैं उन सबके पास दूत भेजकर कुटुम्ब-परिवार-सहित सबको बुलवाओ। आज्ञा पाकर सुमन्त्र ने राजाओं को बुलाने के लिए अच्छे चतुर दूतों को आज्ञा दी और आप भी उस कार्य में लग गये। जिन

शिल्पी लोगों को पहिले वशिष्ठजी ने आज्ञा दी थी वे आकर उनसे कहने लगे कि महाराज! सब काम तैयार है। इस पर वशिष्ठ मुनि प्रसन्न होकर बोले कि देखो किसी को कोई पदार्थ अनादर से न देना क्योंकि अनादर से किया हुआ काम दाता का नाश करता है।

इसके बाद, कुछ दिनों में, तरह-तरह के रत्नों की भेट लेकर राजा लोग महाराज दशरथ की यज्ञशाला में आ पहुँचे। राजाओं को आया देख वशिष्ठजी प्रसन्न होकर दशरथ से बोले कि हे राजेश्वर! आपके आज्ञानुसार राजा लोग आ गये हैं; मैंने भी यथायोग्य उनका सत्कार किया है। यज्ञ की सामग्री तैयार हो गई और स्थान आदि सब बनकर तैयार हैं। अब आप यज्ञ करने के लिए चलिए और सब देखिए।

तब ऋष्यशृङ्ग मुनि की आज्ञा लेकर, अच्छे मुहूर्त्त में राजा यज्ञ के लिए निकले। फिर वशिष्ठ आदि ब्राह्मणों ने ऋष्यशृङ्ग को आगे कर यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। राजा दशरथ अपनी रानियों के साथ यज्ञदीक्षा के नियमों का पालन करने लगे।

---

## चौदहवाँ सर्ग

### यज्ञ का वर्णन

वर्ष दिन बाद जब यज्ञ का घोड़ा आ गया तब ऋष्यशृङ्ग आदि ब्राह्मणों ने यज्ञ करना आरम्भ किया। वेद के जाननेवाले ब्राह्मण लोग भी ऋष्यशृङ्ग की आज्ञा ले-लेकर विधि से यज्ञ-क्रियाएँ करने लगे। विधि से प्रवर्ग्य और उपसद दोनों कर्म किये गये; फिर प्रसन्नतापूर्वक उन कर्मों में पूज्य देवताओं की पूजा की गई। मुनि लोग प्रातः सवन करके, इन्द्र का भाग विधिपूर्वक दे और सोमलता का रस निकाल, मध्याह्न-सवन करने लगे। फिर ब्राह्मणों ने शास्त्र-रीति से तीसरा सायं-सवन किया। इसके बाद ऋष्यशृङ्ग आदि मुनियों ने, शिक्षा के अनुसार, मन्त्रों से इन्द्रादि देवताओं का आवाहन किया। होता लोगों ने आवाहन के मन्त्रों के मधुर गान से आवाहन करके देवताओं को हविर्भाग दिया। उस यज्ञ में किसी तरह की त्रुटि न थी। सब कर्म निर्विघ्न और मन्त्रों से होते जाते थे। उस यज्ञ के समय न कोई थका या भूखा देख पड़ता था और न उस स्थान में कोई मूर्ख ब्राह्मण देख पड़ता था। बहुत से अतिथि वहाँ नित्य भोजन करते थे और वृद्धों, रोगियों, स्त्रियों और बालकों को भी अन्न दिया जाता था। ऐसा सुस्वादु भोजन बनता था कि ये लोग उसे पाकर, खूब तृप्त हो जाते थे। राजा की आज्ञा से भण्डारी लोग जी खोलकर अन्न और वस्त्र आदि का दान कर रहे थे। भूखों को देने के लिए पर्वत के समान अन्न की बहुत सी ढेरियाँ लगी हुई थीं। भिन्न-भिन्न देशों के जो स्त्री-पुरुष आते-जाते थे वे अन्न-पान से तृप्त होते थे और ब्राह्मण लोग रसोई के स्वाद की बड़ाई करते थे। "अहो! हम तृप्त हुए; आपका मङ्गल हो"—यह शब्द महाराज दशरथ सुनते थे। वहाँ अच्छे भूषणों से सजे हुए पुरुष ब्राह्मणों को परोसते थे। जो उनकी सहायता के लिए नियुक्त थे वे भी अच्छे-अच्छे मणि-कुण्डलों से सुशोभित थे। वहाँ यज्ञ-कर्मों के बीच-बीच में, अच्छे वक्ता पण्डित लोग परस्पर जीतने की इच्छा से, तरह-तरह के शास्त्र-विचार करते जाते थे। उस यज्ञ में ब्राह्मण लोग सब यज्ञ-क्रियाएँ करते थे। राजा के सभासदों में ऐसा कोई नहीं था जो वेद को न जानता हो या

देव-स्तुति

[ पृष्ठ १८

व्रतधारी न हो, या बहुश्रुत न हो अथवा बोलने में कुशल न हो।

उस यज्ञ में अठपहलू इक्कीस स्तम्भ गाड़े गये थे। उनमें ६ स्तम्भ खैर के और उनके सामने ६ बेल के, ६ ढाक के, १ लिसोड़े का और २ देवदारु के (अँकवार भर मोटे) थे। वे इक्कीस-इक्कीस अरत्नि* ऊँचे थे और सब सुवर्ण तथा वस्त्र से भूषित किये गये थे। शिल्पियों ने इनको ऐसा मजबूत गाड़ा था ताकि हिलने न पावें। उस समय इनकी शोभा आकाश के सप्तर्षि-मण्डल की तरह देख पड़ती थी। पुष्प और गन्धों से इनकी पूजा की गई। शिल्प कर्म में चतुर ब्राह्मणों ने अग्निस्थापन के लिए ईंटें लाकर त्रिगुण गरुड़ाकार ६ वेदियाँ बनाईं; उन गरुड़ों के पक्षस्थान पर सुवर्ण की ईंटों को रक्खा। वहाँ उन-उन देवताओं के लिए सर्प, पशु और पक्षी बनाये गये। घोड़ों और जलचर जन्तुओं को ऋषियों ने शास्त्र की रीति से बनाया। इस तरह तीन सौ पशु उन खम्भों में बाँधे गये। इसके बाद कौशल्या ने उस घोड़े को प्रोक्षण आदि से संस्कार करके तीन तरवार से छेदन किया और फिर अश्वमेध यज्ञ की रीति जैसी शास्त्रों में बतलाई गई है, सब की।

फिर कुलवृद्धिकारक महाराज दशरथ ने इस महायज्ञ को यथाविधि पूरा करके होता को पूर्व दिशा, अध्वर्य्यु को पश्चिम दिशा, ब्रह्मा को दक्षिण दिशा और उद्गाता को उत्तर दिशा, यज्ञ की दक्षिणा में दी। इस प्रकार इक्ष्वाकु-नन्दन महाराज दशरथ ऋत्विजों को भूमिदान करके बड़े प्रसन्न हुए। तब ऋत्विज लोग बोले—महाराज, इस सम्पूर्ण पृथ्वी की रक्षा करने में आप ही समर्थ हैं। हम लोगों को भूमि का कुछ काम नहीं; क्योंकि हम इसका पालन नहीं कर सकते। हम तो तप में ही लगे रहते हैं, इसलिए मणि या रत्न, सुवर्ण या गौ, या जो कुछ और आप देने लायक समझते हों वह हमें दीजिए। हमको इस पृथ्वी से कुछ प्रयोजन नहीं। तब राजा ने दस लाख गायें, बहुत सा सुवर्ण और कितनी ही चाँदी उनको दे दी। उन ऋत्विजों ने वह सब धन ऋष्यशृङ्ग और वशिष्ठ के सामने रख दिया। फिर उन दोनों ने सबको यथायोग्य बाँट दिया। सबने कहा कि राजन्, हम सन्तुष्ट और आनन्दित हुए। फिर राजा ने भिखारियों को सुवर्ण बँटवाया और ब्राह्मणों को भी अनन्त सुवर्ण-दान दिया। इसके बाद महाराज ने एक भिखारी दरिद्र ब्राह्मण को अपने हाथ का भूषण उतारकर दे दिया; क्योंकि उस समय कोई दूसरा द्रव्य उसको देने के लायक वहाँ न था। ब्राह्मणों को प्रसन्न देखकर महाराज ने प्रसन्न होकर उन्हें प्रणाम किया। ब्राह्मणों ने राजा को आशीर्वाद दिया। इस तरह महाराज दशरथ पापनाशक, स्वर्गदायक और अन्य राजाओं को दुर्लभ, यज्ञ करके ऋष्यशृङ्ग से बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! मेरे कुल की वृद्धि के लिए आप उपाय कीजिए। राजा की बात सुनकर मुनि बोले—हे राजा! मैं पुत्रेष्टि अर्थात् पुत्र देनेवाला यज्ञ करता हूँ। इस यज्ञ से आपके कुलवर्द्धन चार पुत्र होंगे। मुनि का यह वचन सुन राजा ने प्रसन्न होकर ऋष्यशृङ्ग मुनि को प्रणाम किया।

---

## पन्द्रहवाँ सर्ग

### ब्रह्मा और विष्णु के साथ देवताओं का संवाद

ऋष्यशृङ्ग ऋषि कुछ देर तक ध्यान करके राजा से बोले कि तेरे पुत्र होने के लिए मैं अथर्ववेद के

* मुट्ठी बँधे हाथ को अरनि कहते हैं।

मन्त्रों से पुत्रेष्टि यज्ञ करूँगा। जब ऋष्यशृङ्ग मुनि ने अथर्ववेद के मन्त्रों से पुत्रेष्टि का प्रारम्भ किया और जब वे विधि से अग्नि में आहुति देने लगे तब देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि उस यज्ञ-सभा में यज्ञ-भाग लेने के लिए आये। उस सभा में देवता लोग ब्रह्मा से बोले—हे भगवन्! आपके वरदान से रावण राक्षस हम सबको पीड़ा देता है। हम लोग पराक्रम-द्वारा उसका कुछ भी नहीं कर सकते; क्योंकि आपने प्रसन्न होकर उसको वर दे दिया है। आपके वरदान के कारण हम लोग उसको क्षमा करते हैं। वह तीनों लोकों को सता रहा है और वैर करके इन्द्र को भी नीचा दिखलाना चाहता है। वरदान मिलने से घमण्डी होकर वह ऋषि, यक्ष, गन्धर्व, ब्राह्मण और असुर किसी को भी कुछ नहीं समझता। उससे सूर्य और वायु देवता भी डरते रहते हैं। समुद्र भी उसको देखकर ठहर जाता है। भगवन्! उस भयङ्कर राक्षस से हम लोगों को बड़ा डर है।

इसलिए आप उसके मारने का उपाय करिए। देवताओं की प्रार्थना सुनकर ब्रह्मा ने कुछ विचार किया। फिर उन्होंने कहा—वर देने के समय उसने यह वर माँगा था कि मैं गन्धर्व, यक्ष, देव और राक्षसों के हाथ से न मारा जाऊँ; और मैंने उसे यह वर दे दिया। वरदान में उसने मनुष्यों का नाम नहीं लिया था इसलिए वह केवल मनुष्य से ही मर सकता है। और कोई दूसरा उपाय नहीं है। यह सुनकर देवता और महर्षि खूब प्रसन्न हुए। उसी समय महाप्रकाशरूप, शङ्ख-चक्र-गदा और पद्म को धारण किये, पीताम्बर पहने, गरुड़ पर सवार विष्णु भगवान् भी वहाँ आ गये। देवताओं ने उन्हें प्रणाम किया। जब ब्रह्मा से मिलकर विष्णु उनके पास बैठे तब देवता लोग बड़े विनयपूर्वक स्तुति करके विष्णु भगवान् से बोले—हे महाप्रभु, हम लोग सारे संसार की भलाई के लिए आपसे एक प्रार्थना करते हैं। वह यह कि महादानी और धर्मात्मा अयोध्याधिपति महाराज दशरथ की ही, श्री और कीर्ति के समान जो तीन रानियाँ हैं उनमें आप अपने चार भाग करके पुत्र-भाव स्वीकार कीजिए। आप वहाँ मनुष्य होकर महा घमण्डी और दुराचारी रावण को मारिए। वह देवताओं से भी नहीं मारा जा सकता। क्योंकि वह मूर्ख अपने बल से देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि लोगों को पीड़ा देता है। देखिए, उस दुष्ट ने नन्दन वन में क्रीड़ा करते हुए अनेक ऋषियों, गन्धर्वों और अप्सराओं को मार डाला है। हम लोग मुनियों को साथ लेकर इसी लिए आये हैं। ये सिद्ध, गन्धर्व और यक्ष आप की शरण आये हैं। हे देव, आप ही हमारी परम गति हैं। हे कृपानिधि, आप दुष्टों को मारने के लिए कृपा कीजिए।

इस तरह देवताओं की स्तुति और प्रार्थना सुनकर भगवान् विष्णु बोले कि हे देवताओ! तुम किसी तरह का डर मत करो। जो देव और ऋषियों का शत्रु है उस दुष्ट को कुटुम्बसहित मारकर, मैं तुम्हारे लिए ग्यारह हजार वर्ष तक पृथ्वी पर राज्य करूँगा। भगवान् विष्णु ने देवताओं को इस प्रकार समझा-बुझाकर मनुष्यलोक में अपनी जन्मभूमि का चिन्तन किया और अपने चार भाग कर राजा दशरथ को अपना पिता बनाना निश्चित किया। तब ऋषि, गन्धर्व, रुद्र और अप्सराएँ, सभी भगवान् की स्तुति करके बोले कि हे प्रभु! इस बड़े तेजस्वी, अति अहङ्कारी, देवताओं के वैरी, साधु-तपस्वियों के कण्टक और भय-दाता रावण को सेना तथा कुटुम्बसहित जल्द मारकर फिर वैकुण्ठ में पधारिएगा।

———

प्रतिज्ञा [ पृष्ठ २१

## सोलहवाँ सर्ग

### रानियों का देवता की दी हुई खीर खाना

फिर भगवान् विष्णु देवताओं से बोले कि उस राक्षस के मारने के लिए क्या उपाय करना चाहिए? यह सुनकर देवता बोले कि आप मनुष्य का रूप धारण कर उसको मारिए। क्योंकि जब उसने तपस्या कर ब्रह्मा को सन्तुष्ट किया तब ब्रह्मा ने केवल मनुष्य को छोड़ और सब प्राणियों से उसको अभय कर दिया। तब से वह बराबर तीनों लोकों को सता रहा है। वह स्त्रियों को भी चुरा ले जाता है। अब सिर्फ मनुष्यों के ही द्वारा वह मारा जा सकता है। यह सुन भगवान् विष्णु ने दशरथ के घर अवतार लेने की इच्छा की और महाराज दशरथ भी पुत्र पाने ही के लिए यज्ञ करते थे। विष्णु इस तरह निश्चय करके ब्रह्मा से बिदा हो वैकुण्ठ को चले गये।

इधर राजा दशरथ के अग्निकुण्ड में से एक महाबलवान् कृष्णवर्ण का पुरुष निकला। वह लाल कपड़े पहिने था, मुँह उसका लाल था, वह दुन्दुभी का-सा शब्द करता था, सिंह के रोम के से उसके रोम और वैसी ही मूँछें थीं, लक्षण उसके शुभ थे, वह सुन्दर गहना पहने था, वह पर्वत के शिखर के समान ऊँचा, और सूर्य के बराबर तेजस्वी था, सिंह की-सी उसकी चाल थी, और जलते हुए अग्नि के समान उसका रूप था। वह दोनों हाथों में, सोने के पात्र में, चाँदी के ढकने से ढकी हुई खीर लिये हुए था। वह निकलते ही राजा दशरथ की ओर देखकर बोला—हे राजन् मुझे भगवान् विष्णु ने तुम्हारे पास भेजा है। तब राजा हाथ जोड़कर बोले—भगवन्! आपका आना मङ्गलरूप हो। मुझे क्या आज्ञा है? राजा का वचन सुनकर वह पुरुष फिर बोला—हे राजन्! अश्वमेध यज्ञ के प्रभाव से देवताओं की बनाई हुई, सन्तान देनेवाली, धन और ऐश्वर्य बढ़ानेवाली यह खीर मैं तुम्हारे लिए लाया हूँ। इसे लीजिए और अपनी रानियों को खिला दीजिए। इसके प्रभाव से तुम्हारे पुत्र पैदा होंगे जिसके लिए तुमने यज्ञ किया।

इस बात को सुन राजा प्रसन्न हुए। उन्होंने उस पात्र को ले लिया, फिर उस पुरुष की प्रदक्षिणा कर उसको प्रणाम किया। उस समय राजा को ऐसा आनन्द हुआ जैसा दरिद्र मनुष्य को धन मिलने से होता है। फिर वह अद्भुत पुरुष गुप्त हो गया। उस समय राजा का रनवास ऐसा प्रसन्न हुआ जैसा कि शरत्काल के चन्द्र की किरणों से आकाश शोभित होता है। राजा ने रनवास में जाकर रानियों को वह खीर देकर कहा कि यह पुत्र पैदा करने के लिए मुझे देवता ने दी है; तुम लोग इसको खाओ। उन्होंने खीर का आधा हिस्सा कौशल्या को, चौथाई सुमित्रा को और आठवाँ हिस्सा कैकेयी को दिया। फिर कुछ विचारकर बाकी जो अष्ट-मांश बचा था वह सुमित्रा को दे दिया। इस तरह कौशल्या आदि रानियाँ खीर खाकर बड़ी खुश हुईं। फिर उन रानियों ने वह खीर खाकर अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी गर्भ धारण किये। रानियों को गर्भवती देख और अपने मनोरथ को पूरा हुआ जानकर राजा भी बड़ा प्रसन्न हुआ।

---

## सत्रहवाँ सर्ग

### बन्दरों की उत्पत्ति

इस प्रकार जब विष्णु भगवान् ने राजा का पुत्र होना स्वीकार किया तब ब्रह्मा ने देवताओं से कहा—हे देवताओ, हमारे हितैषी भगवान् विष्णु की सहायता के लिए तुम लोग भी अप्सराओं से, गन्धर्वियों से, यक्षों और नागों की कन्याओं से एवं ऋक्षियों से, विद्याधरियों से तथा किन्नरियों से और वानरियों से अस्त्र-विद्या जाननेवाले, देवों के सदृश वानरों को, उत्पन्न करो। वे वानर बली हों, कामरूपी हों, माया को जानते हों, और वेग में वायु के समान हों; वे नीति को जानते हो, बुद्धिमान् हों, और पराक्रम में विष्णु की जोड़ के हों। वे उद्योगी हों, उनका संहार कोई न कर सके, और उनके शरीर दिव्य हों। मैंने भी पहले अपने मुख की जँभाई से जाम्बवान् नामक रीछ को पैदा किया है। ब्रह्मा की आज्ञा मानकर ऋक्ष, सिद्ध, विद्याधर, नाग और चारण लोग वानररूपी पुत्रों को पैदा करने लगे। इन्द्र ने अपने ही समान बाली नामक वानर को पैदा किया। सूर्य्य ने सुग्रीव को, बृहस्पति ने तार नामक वानर को पैदा किया जो कि सब वानरों में अति बुद्धिमान् था। कुबेर ने गन्धमादन को, विश्वकर्म्मा ने नल को और अग्नि ने नील को उत्पन्न किया। इसका तेज अग्नि के समान था। यश और वीर्य्य में यह पिता से भी अधिक था। अश्विनीकुमारों ने मैन्द और द्विविद को, वरुण ने सुषेण को, मेघ ने शरभ को और वायु ने श्रीहनुमान् को पैदा किया। इनका शरीर वज्र के समान और बुद्धि तथा बल सब वानरों से अधिक था। इस प्रकार ये हजारों वानर, भालू और लंगूर पैदा हो गये। ये सब बड़े बलवान् थे। शरीर इनका हाथी और पर्वत के समान था। जिस देवता का जैसा रूप, जैसा वेश और जैसा पराक्रम था उससे उत्पन्न वानर का भी वैसा ही रूप, वेश और पराक्रम था। ये सब शिलाओं से, पर्वतों से, नखों से और दाँतों से प्रहार करते थे। बड़े-बड़े पर्वतों को भी हिला देते थे; और बड़े-बड़े वृक्षों को उखाड़ देते थे। ये अपने वेग से समुद्र को चलायमान करते, पैरों की चोट से पृथ्वी को फोड़ देते और उड़कर आकाश में चलने लगते थे। बड़े-बड़े वनैले तथा मतवाले हाथियों को पकड़ते और अपनी गर्जना से उड़ते हुए पक्षियों को गिरा देते थे। ये लाखों बड़े-बड़े वानरों के यूथों के यूथपति हुए। इनमें हजारों वानर ऋक्षवान् पर्वत के शिखरों पर जा बसे और शेष वानर जगह-जगह पर्वतों और वनों में बसने लगे। इनमें से बहुत से तो बाली और सुग्रीव—दोनों भाइयों—के पास रहने लगे; और बहुतों ने नल, नील और अन्य यूथपतियों के द्वारा दोनों भाइयों का सहारा लिया। महापराक्रमी बाली अपने बाहुबल से इन सबका पालन करता था। श्रीरामचन्द्र की सहायता के लिए पैदा हुए इन महापर्वताकार और भयङ्कर रूपवाले वानरों से सब पृथ्वी भर गई।

---

## अठारहवाँ सर्ग

### रामचन्द्र का जन्म और विश्वामित्र का आना

इस प्रकार महाराज दशरथ का अश्वमेध यज्ञ पूरा होने पर, सब देवता अपना-अपना यज्ञभाग पाकर अपने-अपने स्थान को चले गये। राजा भी रानियों

के साथ सेना और वाहनों को ले, पुरी में चले गये। बाहर के राजा लोग प्रसन्न होकर अपने-अपने देशों को लौट गये। राजा से बिदा होकर ऋष्यशृंग मुनि भी शान्ता के साथ अपने स्थान को चल दिये। थोड़ी दूर तक राजा स्वयं उनको पहुँचाने गये। इस तरह उन सबको बिदा कर महाराज दशरथ, प्रसन्न हो, सन्तान होने की बाट जोहते हुए सुख से रहने लगे।

जब छः ऋतु बीत गये, और बारहवाँ महीना चैत्र का लगा, तब इस चैत्र मास की नवमी तिथि को पुनर्वसु नक्षत्र में; जब अपने-अपने उच्च स्थानों में सूर्य, मंगल, शनि, बृहस्पति और शुक्र क्रम से—मेष, मकर, तुला, कर्कट और मीन, राशियों में—आ गये और जब चन्द्रमा बृहस्पति के साथ हो गये तब, कर्क लग्न का उदय होते ही, जगत् के स्वामी और सब लोकों में विख्यात, दिव्य लक्षणोंवाले, लोहित नेत्रोंवाले, बड़ी लम्बी भुजाओंवाले और दुन्दुभी के समान आवाजवाले श्रीरामचन्द्रजी कौशल्या के पैदा हुए। उस समय महातेजस्वी श्रीरामचन्द्र से कौशल्या की ऐसी शोभा हुई कि जैसी इन्द्र के द्वारा अदिति की हुई थी। फिर कैकेयी ने अच्छे गुणवान् भरत को पैदा किया जो कि विष्णु के चतुर्थ भाग हैं। इसके बाद सुमित्रा ने लक्ष्मण और शत्रुघ्न को पैदा किया। ये दोनों विष्णु के अष्टमांश हैं। पुष्य नक्षत्र और मीन लग्न में भरत उत्पन्न हुए; और श्लेषा नक्षत्र तथा कर्क लग्न में—सूर्योदय के समय—लक्ष्मण और शत्रुघ्न पैदा हुए। ये चारों पुत्र गुणवान् थे। इनकी कान्ति पूर्व भाद्रपदा नक्षत्रों के तुल्य थी। उस समय गन्धर्व लोग मधुर गान करने लगे। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं, देवताओं के बाजे बजने लगे और आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। इस प्रकार अयोध्या में बड़ा भारी उत्सव हुआ। नटों, नर्तकों, गवैयों और बजवैयों से, और पुत्रजन्म के हर्ष से लुटाये हुए रत्नों से नगर की गलियाँ भर गईं। उस उत्सव में राजा ने सूत, मागध और बन्दियों को यथोचित धन देकर, ब्राह्मणों को धन और सहस्रों गायें देकर प्रसन्न किया। तेरहवें दिन वशिष्ठ ऋषि ने उन चारों पुत्रों का नामकरण किया। कौशल्या के पुत्र का नाम राम, कैकेयी के पुत्र का भरत और सुमित्रा के दोनों पुत्रों में से पहले का लक्ष्मण और दूसरे का नाम शत्रुघ्न रक्खा।

नाम रखे जाने के बाद, राजा ने अपने पुरवासियों और बाहर से आये हुए ब्राह्मणों को भी भोजन कराया और उनको बहुत से रत्न देकर अपने पुत्रों के सब संस्कार कराये। इन चारों पुत्रों में कुल की पताका के समान रामचन्द्र पिता को बहुत ही प्यारे थे। ये चारों वेद जानते, शूर और सब लोगों के हितकारी थे। ये ज्ञानी थे और अच्छे-अच्छे गुणों को जानते थे। उनमें रामचन्द्र, निर्मल चन्द्रमा की तरह, सब लोगों को प्यारे थे। ये हाथी, घोड़े और रथ पर चढ़ने तथा धनुर्विद्या में बड़े निपुण थे। ये सदा पिता की सेवा में लगे रहते थे। लक्ष्मण बचपन ही से रामचन्द्र पर बहुत स्नेह रखते थे। रामचन्द्र भी उनको प्राण के समान चाहते थे। यहाँ तक कि यह इनके बिना शयन और भोजन भी नहीं करते थे। जब रामचन्द्र घोड़े पर चढ़कर शिकार को जाते थे तो लक्ष्मण भी धनुष लेकर उनके पीछे-पीछे जाते थे। यही हाल भरत के प्रति शत्रुघ्न का भी था। इन चारों पुत्रों से महाराज दशरथ ऐसे प्रसन्न रहते थे जैसे चारों दिक्पालों से ब्रह्मा प्रसन्न रहते हैं।

जब चारों कुमार ज्ञान, लज्जा, कीर्ति और दूरदर्शिता आदि गुणों से सम्पन्न हो गये तब इनके विवाह के लिए महाराज दशरथ कुटुम्बियों और मन्त्रियों से सलाह करने

लगे। उसी समय महामुनि विश्वामित्र राजा से मिलने आये। उन्होंने द्वारपालों से कहा कि राजा को मेरे आने की खबर जल्द दो। यह सुनकर उन्होंने राजभवन में जाकर राजा से मुनि के आने का समाचार बड़े आदर से कहा। खबर पाते ही राजा ने पुरोहित को साथ ले, शास्त्ररीति से मुनि की पूजा की। मुनि ने राजा से खजाने, कुटुम्ब और मन्त्रियों की कुशल पूछी। इसी तरह वशिष्ठ और वामदेव आदि ऋषियों से भी विश्वामित्र ने कुशल-क्षेम पूछा। इसके बाद वे जब राजभवन में आकर आसनों पर बैठ गये तब राजा प्रसन्न होकर मुनि से बोले—हे महर्षि! आपके आने से मुझको ऐसा हर्ष हुआ कि जैसे अमृत के मिलने से, सूखे वृक्ष को वर्षा से, और अपुत्र को पुत्र के जन्म से होता है। मुझको ऐसा हर्ष हुआ जैसा खोई हुई चीज के मिलने से होता है। कहिए, आपके लिए मैं क्या काम करूँ? हे ब्रह्मन्! आज मेरा जन्म सफल हुआ। आप राजर्षि पद से ब्रह्मर्षि पद को प्राप्त हुए इसलिए भी आप हमारे पूजनीय हैं। आपके दर्शन से मैं पवित्र हुआ। कृपा कर आप अपना प्रयोजन कहिए। जो कुछ आप आज्ञा करेंगे मैं उसका पालन जरूर करूँगा। आपके आने से मुझे बड़ा आनन्द हुआ। हृदय और कानों को सुख देनेवाले, बड़ी नम्रता से भरे हुए, राजा के ये वचन सुनकर मुनि बड़े प्रसन्न हुए।

——

# उन्नीसवाँ सर्ग

## विश्वामित्र का रामचन्द्रजी को माँगना और राजा का दुःखी होना

राजा दशरथ की बात सुन विश्वामित्र प्रसन्न होकर बोले—हे राजशार्दूल! आप जैसे इक्ष्वाकुवंशी और वशिष्ठ के यजमानों को छोड़कर ऐसे वचन और कौन कह सकता है? राजन्! अब मैं अपने मन की बात कहता हूँ उसको पूर्ण कीजिए और अपनी प्रतिज्ञा को सच्ची रखिए। मैंने यज्ञ आरम्भ किया है। जब वह पूरा होने पर आता है तब मारीच और सुबाहु राक्षस वेदी पर मांस और रुधिर फेंक देते हैं। उससे मेरा नियम भ्रष्ट हो जाता है। तब मैं निरुत्साह होकर वहाँ से हट जाता हूँ। मैं उन्हें शाप भी नहीं दे सकता, क्योंकि इस यज्ञ में शाप देना उचित नहीं। इसलिए महाराज! आप अपने बड़े पुत्र रामचन्द्र को मुझे दीजिए। वे मेरे यज्ञ की रक्षा करेंगे और उन विघ्न करनेवाले राक्षसों को मारेंगे। मैं इसके बदले में इनको बहुत सी उत्तम-उत्तम वस्तुएँ दूँगा। वे दोनों राक्षस इनके सामने कभी खड़े नहीं रह सकेंगे। और कोई दूसरा ऐसा नहीं जो उनको मारे; क्योंकि वे दोनों पापी बड़े बलवान् हैं। परन्तु अब उनका काल आ गया; क्योंकि रामचन्द्र के सामने आते ही वे मारे जायँगे। अब दस दिन का समय है। इसी बीच में उनको मारना चाहिए। मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि अब वे राक्षस मारे जायँगे। हे राजन्! आप पुत्रभाव से रामचन्द्र पर स्नेह न कीजिए। इन महात्मा और सत्यवादी रामचन्द्र को मैं, वशिष्ठ मुनि और ये ऋषि लोग जानते हैं। यदि आप धर्म और यश चाहते हैं तो राम को दीजिए। वशिष्ठ प्रभृति आपके मन्त्री लोग, जो

इस विषय में आपको सम्मति दें तो राम को मेरे साथ कर दीजिए। अब ये ऐसे बालक भी नहीं हैं कि माता-पिता को न छोड़ सकें। महाराज! ऐसा कीजिए जिसमें यह दशरात्र यज्ञकाल मेरा न बीतने पावे; और किसी बात के लिए शोक न कीजिए। कुछ चिन्ता नहीं। इतनी बात कहकर विश्वामित्र तो चुप हो गये परन्तु इन वचनों को सुनकर राजा ऐसे शोकयुक्त हुए कि काँप कर मूर्च्छित हो गये। फिर कुछ देर में सचेत हो, मन को दुखानेवाले मुनि के वचनों को सोच, बड़े दुःखी हुए। वे फिर भी कम्पित होकर मूर्च्छित हो गये।

---

## बीसवाँ सर्ग

### राजा का मुनि की बात न मानना

थोड़ी देर में जब राजा को चेत हुआ तब उन्होंने मुनि से कहा—हे विश्वामित्र! मेरे रामचन्द्र अभी पन्द्रह वर्ष के हैं। मेरी समझ में तो ये अभी राक्षसों के साथ लड़ने में असमर्थ हैं। हाँ, आपके काम के लिए मैं अपनी सेना लेकर आपके साथ चलूँगा और उनसे युद्ध करूँगा। ये मेरे पराक्रमी योद्धा उनके साथ युद्ध करने के योग्य हैं। आप राम को न ले जाइए। जब तक जीता रहूँगा तब तक मैं ही धनुष लेकर राक्षसों से युद्ध करूँगा। इस प्रकार आपका यज्ञ भी निर्विघ्न पूरा होगा। अभी ये बालक हैं। विद्या में भी अभी ये कच्चे हैं और कुछ ऊँच-नीच भी नहीं जानते। इनके पास अस्त्र-बल भी नहीं और न ये युद्ध में चतुर हैं। आप तो जानते ही हैं कि राक्षस लोग छल किया करते हैं, अतः ये उनसे लड़ने योग्य नहीं। मैं राम के वियोग में क्षण भर भी नहीं जी सकता। इसलिए हे मुनीश्वर! आप इन्हें न ले जाइए। यदि आप इनको ले जाना ही चाहते हैं तो सेना के साथ-साथ मुझे भी ले चलिए। देखिए, साठ हजार वर्ष की आयु में, बड़े क्लेश से, मैंने इनको पाया है। चारों पुत्रों में, मेरी अधिक प्रीति इन्हीं पर है। इसलिए इनको मत ले जाइए। भला यह तो बताइए कि वे राक्षस कैसे पराक्रमी और किसके पुत्र हैं; वे कितने बड़े हैं और उनकी रक्षा कौन करता है? मुझे समझाइए कि रामचन्द्र या मेरे योद्धा लोग उन छली राक्षसों को किस तरह से मारेंगे और उन दुष्टों का सामना मैं किस प्रकार करूँगा?

यह सुनकर मुनि बोले—राजन्! पुलस्त्यवंशी रावण राक्षस को ब्रह्मा ने वर दिया है। वह तीनों लोकों को सताता है और है भी महापराक्रमी। वह बहुत से राक्षसों का राजा, कुबेर का भ्राता और विश्रवा मुनि का पुत्र है। सुना जाता है कि उसी के भेजे हुए ये दोनों मारीच और सुबाहु राक्षस यज्ञ में विघ्न करते हैं। मुनि के मुख से यह बात निकलते ही राजा ने कहा कि मैं उस दुष्ट के साथ युद्ध करने को समर्थ नहीं। हे धर्मज्ञ! आप मेरे पुत्र पर और मुझ पर कृपा करें, क्योंकि आप मेरे देवता और गुरु हैं। देखिए, देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, पक्षी और नाग भी युद्ध में रावण को नहीं जीत सकते; फिर मनुष्यों की क्या सामर्थ्य है। युद्ध में वह बलवानों के बल को खींच लेता है। इसलिए मैं न तो उसके ही साथ युद्ध कर सकता हूँ और न उसकी सेनाओं के साथ। हे ब्रह्मन्! मैं युद्ध न जाननेवाले अपने बालक पुत्र को न दूँगा। मारीच और सुबाहु राक्षस बड़े बलवान् हैं। वे युद्ध करने में बड़े चतुर हैं। यदि हो सका तो मैं उनमें से एक के साथ युद्ध करने चलूँगा; नहीं तो मैं आपसे, न चलने के लिए, क्षमा माँगूगा। राजा के

वचन सुनकर विश्वामित्र ऐसे जल उठे जैसे घी डालने से आग जलने लगती है।

---

## इक्कीसवाँ सर्ग

### विश्वामित्र के साथ रामचन्द्र को भेजना

पुत्र के मोह से व्याकुल राजा के वचन सुन विश्वामित्र क्रुद्ध होकर बोले कि हे राजा, पहले कहकर अब आप अपने वचनों से फिरते हैं। यह तो रघुकुल में उलटी बात है। जो आपकी यही इच्छा है तो मैं जाता हूँ। अपनी प्रतिज्ञा को तोड़कर परिवार-सहित आप सुखी रहिए। इस तरह जब विश्वामित्र का कोप बढ़ा तब सारी पृथिवी काँप उठी और देवताओं को बड़ा भय हुआ। सारे संसार में हलचल-सी मची देखकर राजा से महर्षि वशिष्ठ बोले—महाराज! आप इक्ष्वाकु-कुल में साक्षात् धर्मधुरन्धर और व्रत धारण करनेवाले होकर धर्म का त्याग न कीजिए। तीनों लोकों में विख्यात हो रहा है कि महाराज दशरथ धर्मात्मा हैं; इसलिए आप अपने धर्म की रक्षा कीजिए और अधर्म को दूर कीजिए। जो कहकर नहीं करता उसको इष्टापूर्त्त यज्ञ के नाश करने का पाप लगता है; इसलिए आप इनके साथ रामचन्द्र को भेज दीजिए—रामचन्द्र चाहे युद्ध-विद्या जानते हों या न भी जानते हों। विश्वामित्र मुनि के प्रताप से राक्षस इनका कुछ न कर सकेंगे। ये विश्वामित्र मुनि बड़े बलवान् हैं और सब विद्याएँ जानते हैं। इनकी महिमा को देवता, ऋषि, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर और महोरग आदि कोई भी नहीं जानते। जब ये पहले राज्य करते थे तब शिवजी ने प्रसन्न होकर इनको सब अस्त्र-विद्या बतला दी थी। ये मुनि दक्ष प्रजापति की कन्या से पैदा हुए और कृशाश्व के पुत्र हैं।

दक्ष प्रजापति के दो बेटियाँ थीं। एक जया और दूसरी सुप्रभा। इन दोनों ने वरदान के बल से बड़े-बड़े अस्त्रों का आविष्कार किया था; इसलिए अस्त्र-विद्या में ये भी बड़े निपुण हैं। ये बहुत से नये अस्त्र भी बना सकते हैं और अगली-पिछली सब बातों को जानते हैं। इसलिए, हे राजन्! ऐसे महातेजस्वी मुनि के साथ रामचन्द्र को बिदा कीजिए। आप कुछ सन्देह न कीजिए। ये मुनि उन राक्षसों को अपने आप भी मार सकते हैं, परन्तु तुम्हारे पुत्र की भलाई के लिए ये रामचन्द्र को माँगने आये हैं।

इस प्रकार गुरु वशिष्ठजी के समझाने से, राजा दशरथ मुनि के साथ रामचन्द्रजी को भेजने के लिए तैयार हो गये।

---

## बाईसवाँ सर्ग

### विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण का जाना और मार्ग में रामचन्द्र को बला और अतिबला विद्याओं का सिखाना

वशिष्ठ के कहने से दशरथ ने राम और लक्ष्मण को बुलाया। फिर माता, पिता और वशिष्ठ ने स्वस्ति-वाचन और मंगलाचार किया। तब राजा ने प्रसन्नतापूर्वक पुत्रों का माथा सूँघकर उन्हें विश्वामित्र ऋषि को सौंप दिया। जब राम और लक्ष्मण को साथ लेकर विश्वामित्र

चलने लगे तब शीतल, मन्द और सुगन्धित पवन चलने लगा। आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी। शङ्ख और दुन्दुभि आदि बाजे बजने लगे। मार्ग में आगे-आगे विश्वामित्र उनके पीछे धनुष लिये रामचन्द्र और उनके पीछे लक्ष्मण चले जाते थे। ये दोनों भाई तरकस बाँधे, धनुष लिये, मुनि के पीछे-पीछे ऐसे चले जाते थे मानो ब्रह्मा के पीछे अश्विनीकुमार जाते हों। उस समय हाथ में धनुष लिये, अच्छे-अच्छे भूषण पहने, गोधांगुलित्राण* बाँधे, और तलवार लिये हुए राम-लक्ष्मण, मुनि को ऐसे शोभित करते जाते थे जैसे भगवान् रुद्र को स्कन्द और विशाख शोभित करते हों। इस प्रकार ये तीनों छः कोस चलकर सरयू के दक्षिण तट पर पहुँचे। वहाँ रामचन्द्र से मधुर वाणी में विश्वामित्र बोले—हे रामचन्द्र! तुम शीघ्र हाथ-मुँह धोकर शुद्ध हो जाओ और बला-अतिबला दो विद्याओं को ग्रहण करो। इन विद्याओं के पढ़ने से तुमको न श्रम होगा और न ज्वर की बाधा होगी। इन विद्याओं के प्रभाव से न तुम्हारे रूप की हानि होगी, न सोते हुए और न अशुद्ध होने पर ही राक्षस लोग तुमको जीत सकेंगे। तुम्हारे बाहुबल को पृथ्वी में कोई न पावेगा और सौभाग्य, चतुराई, ज्ञान एवं बोलने में तुम्हारे बराबर कोई न निकलेगा। हे राम! इन दोनों विद्याओं के पढ़ने से तुम्हारे समान तुम्हीं दीखोगे। ये विद्याएँ सारे ज्ञान की माता हैं। हे तात! तुमको भूख-प्यास भी कभी न सतावेगी और सारे संसार में तुम्हारा यश फैल जायगा। ये दोनों विद्याएँ ब्रह्मा की पुत्री हैं। इनको तुम ग्रहण करो। यद्यपि तुममें भी इस तरह की बहुत सी बातें हैं तो भी इनके लेने योग्य तुम्हीं हो। ये विद्याएँ तपोबलवाली हैं। इसलिए ये अनेक फल देंगी।

मुनि की बात सुनकर रामचन्द्र प्रसन्न हुए। उन्होंने जल से शरीर-शुद्धि कर, विश्वामित्र से उन विद्याओं को ग्रहण किया। उस समय विद्याओं को ग्रहण करते ही रामचन्द्र की ऐसी शोभा हुई जैसे शरत्काल के सूर्य की होती है। इसके बाद दोनों भाइयों ने गुरु के समान विश्वामित्र की सेवा कर—रात में वहीं—सरयू के तीर पर, मुनि के साथ निवास किया। विश्वामित्र के मधुर वचन सुनते-सुनते दोनों भाइयों ने तृणशय्या पर बड़े आनन्द से रात बिताई।

* प्रत्यञ्चा ( जेह ) का आघात बचाने के लिए, गोह के चर्म का बना हुआ, हाथ में पहिनने का दस्ताना।

---

## तेईसवाँ सर्ग

### कामदेव के आश्रम का वर्णन

प्रातःकाल, चार घड़ी तड़के, पत्तों पर सोते हुए दोनों भाइयों से विश्वामित्रजी बोले—हे रामचन्द्र! यह पहली सन्ध्या हो गई। उठो, देवता का ध्यान और शौच आदि कामों को करो। ऋषि का वचन सुनकर दोनों भाई उठ बैठे। स्नान और सन्ध्या कर वे गायत्री का जप करने लगे। इस प्रकार जब प्रातःसन्ध्या करके, मुनि को प्रणाम कर, वे चलने के लिए तैयार हुए तब उनको साथ लेकर ऋषि गंगा की ओर चले। वहाँ से सरयू नदी के सङ्गम पर पहुँचे। फिर हजारों वर्षों से जो महात्मा ऋषि तप करते थे, उनके पवित्र आश्रमों पर पहुँचे। उस पवित्र आश्रम को देख दोनों भाई मुनि से बोले—भगवन्! यह पवित्र आश्रम किसका है और इसमें कौन पुरुष रहता है? विश्वामित्र ने कहा कि एक

समय, जब विवाह करके देवताओं के साथ यहाँ आकर शिवजी तप करने लगे थे तब मूर्त्ति धारण कर कामदेव ने शिवजी को बहुत सताया था। इससे शिव ने क्रोध में आकर अपने तीसरे नेत्र की अग्नि से उस कामदेव को भस्म कर दिया। हे राघव! तब से वह कामदेव "अनङ्ग" नाम से प्रसिद्ध हो गया। इसलिए इस देश को अंग देश कहते हैं। यह शिवजी का आश्रम है। इसमें शिवजी के भक्त ये ऋषि लोग तप कर रहे हैं। ये बड़े धर्मात्मा हैं। हे रामचन्द्र! आज रात को हम यहीं निवास करें। कल हम स्नानादि क्रिया कर, पवित्र हो, पुण्याश्रम को चलेंगे। वहाँ के रहनेवाले मुनि लोग, स्नान, जप और हवन कर चुके थे। तपोबल से इन बातों को जानकर वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने विश्वामित्र की सेवा करके राम और लक्ष्मण का भी सत्कार किया। इस तरह उस आश्रम में मुनियों से सत्कार पाकर तीनों ने सन्ध्योपासन और जप इत्यादि किया। फिर सुख से ठहरकर राम और लक्ष्मण को विश्वामित्र ने तरह-तरह की मनोहर कथाएँ सुनाईं।

---

## चौबीसवाँ सर्ग

### ताड़का के वन का वर्णन

दोनों भाई प्रातःकाल उठे। वे नित्य-क्रिया करके विश्वामित्र के साथ नदी के तीर पर आये। वहाँ के ऋषि लोग भी साथ-साथ आये और उन्होंने अच्छी नाव मँगाकर विश्वामित्र से कहा—आप राजपुत्रों को लेकर नाव पर चढ़िए और यात्रा करिए। अब विलम्ब न कीजिए। यह सुनकर विश्वामित्र मुनि दोनों भाइयों को ले उस नाव पर चढ़े और नाव चल दी। जब नाव चली और बीच धारा में आई तब, वहाँ एक प्रकार का जल का शब्द सुनाई दिया। उस शब्द को सुन दोनों भाइयों ने मुनि से पूछा—महाराज! क्या यह जल के टकराने का शब्द है या कोई और बात है? मुनि ने उत्तर दिया—हे रामचन्द्र! कैलास पर्वत पर ब्रह्मा ने मन से एक सरोवर रचा था इसलिए वह मानस सरोवर कहलाता है। उस ब्रह्मसरोवर से निकली हुई पवित्र सरयू नदी [जो अयोध्या में बहती है] गङ्गा नदी से मिलती है। उन दोनों नदियों के जल की टक्कर लगने से यह शब्द होता है। इतने में नाव दक्षिण तीर पर जा पहुँची और तीनों नाव से उतर ऐसे भयङ्कर वन में चले जिसमें कोई पगडण्डी भी नहीं देख पड़ती थी। ऐसे भयङ्कर वन को देख रामचन्द्र ने मुनि से पूछा—ओहो! मुनिजी! यह वन तो बड़ा भयानक है! इसमें तो बड़े-बड़े भयङ्कर जीवों के शब्द सुनाई दे रहे हैं। यहाँ पर सिंह, व्याघ्र, शूकर और हाथियों की कमी नहीं। देखिए, धव, अश्व-कर्ण, अर्जुन, बेल और बेरियों के वृक्षों से कैसा घना जङ्गल दीखता है। विश्वामित्र ने कहा—हे रामचन्द्र! सुनो, पहले यहाँ बहुत बड़े मलद और करूष दो देश बसते थे। वे देवताओं से बनाये गये थे। हे राघव! वृत्रासुर के मारने से मैली और भूखी ब्रह्महत्या इन्द्र के शरीर में घुस गई। उस समय देवताओं और महर्षियों ने इन्द्र को मलिन देख उनको शुद्ध जल से नहलाकर उनके शरीर से वह मलिन और क्षुधारूपिणी ब्रह्महत्या निकाल ली, फिर उसे इसी भूमि में डाल दिया। जब इन्द्र निर्म्मल और क्षुधारहित हो गये तब उन्होंने प्रसन्न हो इस देश को वर दिया कि यहाँ, मेरे अङ्ग के मल को धारण करनेवाले, मलद और करूष नामों से प्रसिद्ध बड़े-बड़े दो देश विख्यात

होंगे। इस प्रकार इन देशों की प्रतिष्ठा देख देवता लोग इन्द्र की बहुत बड़ाई करने लगे। हे रामचन्द्र! ये दोनों देश बहुत काल तक धन और धान्य से भरे हुए थे। कुछ दिनों बाद, ताड़का नाम की यक्षिणी सुन्द की स्त्री हुई। वह तरह-तरह के रूप बनाती है और उसमें हजार हाथियों के समान बल है। उसका पुत्र मारीच नामक राक्षस ऐसा हुआ जो इन्द्र के तुल्य बली, महाभुज, और महामस्तकवाला है। मुख उसका बड़ा, भारी शरीर और भयङ्कर रूप है। वह प्रजा को नित्य दुःख देने लगा। यह दुष्टा ताड़का भी इन दोनों देशों का नाश करने लगी। हे राघव! वह यक्षिणी आधे योजन से भी अधिक मार्ग को रोके रहती है। इसलिए ताड़का के वन में चलकर, मेरी आज्ञा से, उसे मारकर तुम इस देश को निष्कण्टक करो; क्योंकि इसके भय से कोई मनुष्य इस देश में नहीं आने पाता।

---

## पच्चीसवाँ सर्ग

### ताड़का की कथा

इतना सुनकर फिर रामचन्द्र ने मुनि से पूछा—हे मुनि! यक्ष जाति तो थोड़े ही बलवाली सुनने में आती है फिर इस अबला स्त्री में हजार हाथियों का बल कहाँ से आ गया? इस पर मुनि बोले—हे रामचन्द्र! जिस तरह यह यक्षिणी वरदान से इतनी बलवती हुई, सो सुनिए।

पहले सुकेतु नामक एक बड़ा बलवान् और सन्तान-रहित यक्ष था। सन्तान होने के लिए उसने बड़ा तप किया। भगवान् ब्रह्मा की कृपा से उस यक्ष के ताड़का नामक कन्या हुई। उस कन्या को ब्रह्मा ने हजार हाथियों का बल दिया। कुछ दिन बाद जब वह कन्या बड़ी हो गई तब सुकेतु ने जम्भ के पुत्र सुन्द से उसका विवाह कर दिया। फिर कुछ दिनों में उस यक्षिणी के अति बलिष्ठ मारीच पुत्र पैदा हुआ। यह शाप से राक्षस हुआ था। जब अगस्त्य मुनि के शाप से सुन्द मारा गया तब ताड़का क्रोध में भरकर पुत्र को साथ ले अगस्त्य को मारने के लिए दौड़ी। उसको दौड़ी हुई आती देख, भगवान् अगस्त्य ने मारीच से कहा—तू राक्षस हो जा और ताड़का से कहा कि तू मनुष्यों को खाया कर; इस रूप को छोड़कर अति भयङ्कर रूप धारण कर। इस शाप से अत्यन्त क्रुद्ध होकर यह ताड़का अगस्त्य मुनि के इस स्थान का नाश किये डालती है। हे राघव! तुम इस भयङ्कर रूपवाली राक्षसी को, गौ और ब्राह्मणों के हित के लिए, अवश्य मारो। हे रघुनन्दन! तीनों लोकों में तुमको छोड़ ऐसा कोई पुरुष नहीं जो इसको मार सके। हे नरोत्तम! स्त्री के वध के लिए घृणा मत करो। राजपुत्र को चारों वर्णों के हित का काम करना चाहिए। चाहे वह काम अच्छा हो या बुरा; चाहे उसमें दोष हो या न हो। प्रजा की रक्षा करना ही क्षत्रियों का परम धर्म है। राजा का यही सच्चा सनातन धर्म है। सो हे रामचन्द्र! इस अधर्मिणी को तुम अवश्य मारो। देखो, विरोचन की पुत्री मन्थरा पृथ्वी का नाश करना चाहती थी इसलिए उसको इन्द्र ने मारा और इसी तरह विष्णु ने भी शुक्र की माता पतिव्रता भृगु की पत्नी को मारा। वह इन्द्र से शत्रुता रखती थी। इसी तरह अनेक महात्मा राजपुत्रों ने अधर्मी स्त्रियों को मारा है। इसलिए तुम मेरे कहने से घृणा त्यागकर इस ताड़का को मारो।

---

# छब्बीसवाँ सर्ग

## ताड़का-वध

मुनि की यह आज्ञा सुन रामचन्द्रजी ने हाथ जोड़कर कहा—महाराज! चलते समय भरी सभा में श्री पिताजी ने मुझे यह आज्ञा दी थी कि जो कुछ विश्वामित्र मुनि तुमको आज्ञा दें उसका पालन करना। इसलिए महाराज! एक तो श्री पिताजी की आज्ञा और दूसरे आप जैसे ब्रह्मवादी महात्मा की शिक्षा को भला मैं कैसे टाल सकता हूँ। देश, गौ और ब्राह्मणों की रक्षा के लिए मैं अवश्य इस दुष्टा ताड़का को मारूँगा। फिर रामचन्द्रजी ने धनुष की प्रत्यञ्चा का ऐसा शब्द किया कि उस वन के सारे जीव डर गये। ताड़का भी उस शब्द को सुन क्रुध हो जिधर से वह शब्द आया था उधर ही को चल दी। पर्वत के समान बड़े भयानक शरीरवाली ताड़का को दौड़ी हुई आती देख रामचन्द्रजी लक्ष्मणजी से बोले—देखो भाई! इस राक्षसी का रूप कैसा डरावना है; इसको देखकर बड़े-बड़े योद्धाओं के हृदय फट जायँ। अब देखो, मैं इसकी नाक काटकर भगाये देता हूँ; क्योंकि स्त्री के मारने की तो शास्त्र में कहीं आज्ञा नहीं है। या इसके हाथ-पैर काट डालूँ जिससे यह निर्बल पड़ जाय। ये इतना कही रहे थे कि वह राक्षसी क्रोध में भरी हुई, अपने लम्बे-लम्बे हाथ उठाये, गर्जती हुई झट इनकी ओर दौड़ी। तब ब्रह्मर्षि विश्वामित्र, उस राक्षसी को हुंकार से डपटकर, राम और लक्ष्मण की जय मनाने लगे। फिर ताड़का ने ऐसी धूल उड़ाई कि छिपी-छिपी दोनों भाइयों पर पत्थर फेकने लगी। तब तो रघुनन्दन ने क्रोध कर बाणों की वर्षा से उसकी शिला-वृष्टि को रोक, उसके दोनों हाथ काट डाले। इतने पर भी वह गर्जती हुई पास चली आती थी। तब सुमित्रानन्दन लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट डाले। इस पर भी वह अपनी इच्छा से तरह-तरह के रूप बनाकर, राक्षसी माया से उनको मोहित करती हुई फिर उनके ऊपर पत्थरों की वर्षा करने लगी। तब विश्वामित्र मुनि पत्थरों की वर्षा को देखकर बोले—हे रामचन्द्र! अब दया छोड़कर यज्ञ की विघ्नकारिणी इस पापिनी दुष्टा को जल्द मारो। नहीं तो सन्ध्या होती आती है; क्योंकि सन्ध्याकाल में राक्षस लोग अत्यन्त बलवान् हो जाते है। मुनि का यह वचन सुनते ही महाराज रामचन्द्र ने पत्थर बरसानेवाली ताड़का को शब्दबेधी बाणों से घेर लिया। जब वह बाणों से रुँध गई तब तो वह गर्जती हुई दोनों भाइयों पर झपटी। उस समय बिजली की तरह तड़तड़ाती हुई उसको आती देख राम ने उसकी छाती में ऐसा बाण मारा कि वह गिरकर मर गई। उस समय उस भयङ्कर राक्षसी को गिरी देखकर इन्द्र आदि देवता बड़े प्रसन्न हो वाह-वाह कहने लगे। उन्होंने विश्वामित्र से कहा कि हम लोग इस काम से बड़े प्रसन्न हुए। कृशाश्व के पुत्र सत्य, पराक्रमी और तपोबल से युक्त हैं; उन्हें रामचन्द्र को सौंप इनको सन्तुष्ट कीजिए। ये तुम्हारे दान के पात्र हैं और आपके मन के योग्य कार्य्य करते हैं। इनको अभी देवताओं का बड़ा कार्य करना है। ऐसा कहकर देवता लोग चले गये और सन्ध्याकाल हो गया। तब मुनिराज रामचन्द्र का माथा सूँघकर बोले—हे राघव! आज हम लोग रात भर यहीं रहें। कल प्रातःकाल अपने आश्रम को चलेंगे। मुनि की बात सुनकर रामचन्द्र प्रसन्न हो उसी ताड़का के वन में रहे। ताड़का के मरने से शाप से छुटा हुआ वह जंगल ऐसा रमणीय देख पड़ता था जैसा कुबेर का

बगीचा चैत्ररथ। इस प्रकार रघुनाथ ताड़का को मार, देवता और ऋषि लोगों से पूजित हो, उस वन में मुनि के साथ रात्रि में निवास कर प्रातःकाल जागे।

---

## सत्ताईसवाँ सर्ग

### विश्वामित्र का रामचन्द्रजी को देना

प्रातःकाल विश्वामित्र रामचन्द्र से मधुर वाणी से बोले—हे राजपुत्र! मैं प्रसन्न हूँ और प्रीति से सब अस्त्र तुम्हें देता हूँ। इन अस्त्रों से तुम सुर, असुर, गन्धर्व और नाग इत्यादि शत्रुओं को अपने वश में कर जीतोगे। उन शस्त्रों के नाम ये हैं—दण्डचक्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र, ऐन्द्रचक्र, वज्रास्त्र, शैव, शूलवत, ब्रह्मशिर, ऐषीक, ब्रह्मास्त्र—मोदकी और शिखरी (ये गदाएँ), धर्मपाश, काल-पाश, वरुणपाश—शुष्क और आर्द्र (ये वज्र), पैनाकास्त्र, नारायणास्त्र, आग्नेयास्त्र, शिखर नामक वायव्यास्त्र, हयशिरोस्त्र, क्रौञ्चास्त्र (दो शक्तियाँ), भयङ्कर कङ्कालनाम मुशल, कपाल और किंकिणी (ये राक्षसों के वध के लिए है) वैद्याधरास्त्र, नन्दन, उत्तम खड्ग, गान्धर्वास्त्र, मोहन, प्रस्वापन, प्रशमन, सौम्य, वर्षण, सन्तापन, विलापन, मदनास्त्र, मानवास्त्र, पैशाचास्त्र, मोहननामक तामस, सोमन, संवर्त्त, मौशल, सत्यास्त्र, मायामय, तेजःप्रभ, सौरास्त्र (जो शत्रु के तेज को खींच लेता है), शिशिर नामक सोमास्त्र, त्वाष्ट्रास्त्र, भगास्त्र, शीलेषु और मानव; महाबली और कामरूपी अस्त्रों को शीघ्र ग्रहण करो। ऐसा कह पूर्व को मुख करमु निश्रेष्ठ विश्वामित्र ने, प्रसन्न हो, उन सम्पूर्ण अस्त्रों के मन्त्र रामचन्द्र को दे दिये। ये अस्त्र देवताओं को भी दुर्लभ हैं।

अब अस्त्रों के बुलाने के लिए विश्वामित्र कुछ जप करने लगे। उनके मन्त्र जपते ही सब अस्त्र आकर खड़े हो गये और हाथ जोड़कर रामचन्द्र से बोले—हे राघव! हम सब आपके किङ्कर हैं, आप जो-जो काम हमसे चाहते हैं वह सब हम करें। तब रामचन्द्र प्रसन्न हो, उन सबको हाथ से छूकर बोले—तुम सब मेरे मन में बसो अर्थात् जब मैं चाहूँ तब मेरे पास आकर मेरा काम किया करो। इस तरह उनको आज्ञा दे और विश्वामित्र को प्रणाम कर, राम और लक्ष्मण मुनि के साथ चल दिये।

---

## अट्ठाईसवाँ सर्ग

### अस्त्र फेंककर उनके लौटाने की विद्या बताना

अब चलते-चलते मुनि से रघुवर बोले—भगवन्! आपने अस्त्र तो मुझे दिये परन्तु इनके संहारों* को भी कृपा कर बतलाइए। रामचन्द्र की बात सुन मुनि प्रसन्न हो संहारों की विधि बताने लगे। सत्यवान्, सत्यकीर्ति, धृष्ट, रभस, प्रतिहारतर, पराङ्मुख, अवाङ्मुख, लक्ष्य, अलक्ष्य, दृढ़नाभ, सुनाभ, दशाक्ष, शतवक्त्र, दशशीर्ष, शतोदर, पद्मनाभ, महानाभ, दुन्दुनाभ, ज्योतिष, शकुन, नैराश, विमल, यौगन्धर, विनिद्र, दैत्य-प्रमथन, शुचिबाहु, निष्फलि, विरुच, सार्चिमाली, घृतमाली, वृत्तिमान,

* अस्त्र छोड़कर फिर उसके वापस लेने को संहार कहते हैं।

रुचिर, पित्र्य, सौमनस, विधूत, मकर, करवीर, रति, धन, धान्य, कामरूप, कामरुचि, मोह, आवरण, जृम्भक, सर्पनाथ, पन्थान और वरुण, हे रामचन्द्र! ये सब कृशाश्व के पुत्र बड़े तेजस्वी हैं। इनको तुम ग्रहण करो; क्योंकि इनके पात्र तुम्हीं हो। मुनि के ऐसा कहते ही वे सब दिव्य और तेजःस्वरूप मूर्ति को धारण करके उपस्थित हो गये। उनमें कोई काले धुएँ के समान, कोई चन्द्र और कोई सूर्य के समान थे। वे सब हाथ जोड़कर रामचन्द्र से बोले—महाराज! हम उपस्थित हैं, जो आज्ञा हो सो करें। रामचन्द्र प्रसन्न हो बोले—तुम मेरे मन में बसो और काम के समय मेरी सहायता करो। इस समय जहाँ तुम्हारी इच्छा हो वहाँ जाओ। रामचन्द्र का वचन सुन, बहुत अच्छा कह, वे चले गये।

इस प्रकार संहारों को पाकर रामचन्द्र चलते-चलते फिर विश्वामित्र से बोले। महाराज! ये बहुत से वृक्ष पर्वत के पास मेघ की तरह काले-काले दीख रहे हैं, इन पर तरह-तरह के पक्षी मीठी-मीठी वाणी बोल रहे हैं, ये बहुत ही भले मालूम पड़ते हैं। यहाँ तो हमको ऐसा मालूम होता है कि अब हम भयङ्कर जङ्गल से निकल आये। कृपा कर बतलाइए यह किसका आश्रम है? और वह आपका आश्रम कौन-सा है जहाँ यज्ञ में विघ्न करने के लिए राक्षस आया करते हैं? कृपा कर बतलाइए कि आपके यज्ञ की रक्षा के लिए उन राक्षसों को हम कहाँ मारें?

---

# उनतीसवाँ सर्ग

## मुनि के आश्रम का वर्णन और यज्ञ का प्रारम्भ

रामचन्द्र की सब बातें सुन विश्वामित्र बोले—हे रघुनन्दन! इस आश्रम में भगवान् विष्णु ने सौ युग और अनेक वर्षों तक तपस्या के लिए वास किया था। यह आश्रम भगवान् वामन का है और सिद्धाश्रम नाम से प्रसिद्ध है। किसी समय विरोचन का पुत्र बलि नामक दैत्य देवताओं को जीतकर तीनों लोकों का राजा हो गया। अब उसने यज्ञ करने का आरम्भ किया। तब देवता लोग अग्नि को साथ ले विष्णु के पास जाकर बोले—महाराज! बलि यज्ञ करता है। उसका यज्ञ समाप्त होने के पहले ही अपना कार्य कीजिए। इस समय जो माँगनेवाले लोग इधर-उधर से उसके पास जाते हैं वे मुँह-माँगा दान पाते हैं। इसलिए आप देवताओं के हित के लिए, अपनी माया के बल से, वामन (बौना) रूप धारण कर देवताओं का कल्याण कीजिए।

इसी बीच में अग्नि के समान तेजवाले कश्यप ऋषि, अपनी स्त्री अदिति के साथ, हजारों वर्षों तक तप कर वरदानी भगवान् की स्तुति करने लगे—"हे भगवान्! आप तपोमय, तपोराशि, तप की मूर्ति और तपोरूप हैं। इसलिए मैं अपनी तपस्या के प्रभाव से आपको देखता हूँ। हे पुरुषोत्तम! मैं आपके शरीर में इस सारे संसार को देख रहा हूँ। आप अनादि हैं। आप कहने में नहीं आ सकते। मैं आपकी शरण लेता हूँ।"

इस प्रकार ऋषि की स्तुति सुन भगवान् बोले—मैं प्रसन्न हूँ। तुम जो चाहो वर माँगो। इस पर

मरीच के पुत्र कश्यप बोले—महाराज ! मैं चाहता हूँ कि आप मेरे पुत्र हों। मेरी स्त्री की भी यही इच्छा है और देवता भी यही चाहते हैं। इसलिए आप इन्द्र के छोटे भाई बनकर देवताओं की सहायता कीजिए। आपकी कृपा से यह आश्रम सिद्धाश्रम के नाम से प्रसिद्ध होगा।

देवताओं का काम करने के लिए भगवान् ने कश्यप की बात मान ली। उन्होंने अदिति के जन्म ले वामन रूप रक्खा और बलि के यज्ञ में जाकर तीन पाँव पृथिवी माँगी। फिर तीनों लोकों को वश में कर, बलि को बाँध, पाताल में भेज दिया। त्रैलोक्य का राज्य देवताओं को दिया। इसलिए हे राघव ! यह आश्रम उन्हीं का है और उन्हीं की भक्ति से मैं भी इसमें वास करता हूँ। इसी आश्रम में विघ्नकारी राक्षस आते हैं। उनका वध करना चाहिए। हे रघुनाथ ! यह आश्रम जैसा मेरा वैसा तुम्हारा भी है। चलो, इस आश्रम में चलें।

अब रामचन्द्र को साथ ले मुनि आश्रम में गये। उस समय रामचन्द्र के साथ मुनि की ऐसी शोभा हुई जैसी पुनर्वसु के साथ शरत्काल के चन्द्रमा की होती है। उस समय मुनि को आते देख आश्रमवासी ऋषियों ने उठकर दण्डवत्-प्रणाम कर विश्वामित्र का आदर-सत्कार किया और इन दोनों भाइयों का भी यथोचित आतिथ्य किया। थोड़ी देर विश्राम कर दोनों भाई हाथ जोड़ मुनि से बोले—भगवन् ! आप आज ही यज्ञ का प्रारम्भ कीजिए और इस सिद्धाश्रम को सिद्ध करिए। यह सुनते ही कौशिक (विश्वामित्र) मुनि ने यज्ञ-दीक्षा ली और दोनों भाई रात्रि को वहाँ बसे। उन्होंने प्रातः-काल उठकर पूर्व सन्ध्या की; फिर जप करके पवित्र हो अग्निहोत्र किया और मुनि लोगों को प्रणाम किया।

---

## तीसवाँ सर्ग

### यज्ञ की रक्षा और राक्षसों का मारना

फिर दोनों भाई विश्वामित्र से बोले—महाराज ! कृपा कर बतलाइए वे दोनों राक्षस किस समय आते हैं जिससे हम उनसे यज्ञ की रक्षा करें। उन दोनों भाइयों को राक्षसों के साथ युद्ध करने के लिए तैयार देखकर और उनकी यह बात सुनकर ऋषि लोग बड़े प्रसन्न हुए। वे उनकी प्रशंसा करके बोले—हे राघव ! आप आज से छः दिन तक रक्षा कीजिए; क्योंकि विश्वामित्र मुनि ने यज्ञ-दीक्षा ली है। अब ये मौन रहेंगे।

यह बात सुन दोनों भाई धनुष लेकर बड़ी सावधानी से मुनि की रक्षा करने लगे। जब पाँच दिन बीत गये और छठा दिन आया तब रामचन्द्र लक्ष्मण से बोले—भाई सावधान रहो। रामचन्द्र के यह कहते ही उपाध्याय, पुरोहित और ऋत्विक लोगों के देखते-देखते कुश, चमच, श्रुवा, समिधा और पुष्प आदि पदार्थों सहित वेदी भभक उठी*। उस समय यज्ञ हो रहा था। इतने में आकाश से ऐसा भयानक शब्द सुनाई पड़ा जैसा वर्षाकाल में मेघों का शब्द होता है। फिर मायावी मारीच और सुबाहु तथा उनके साथी लोग रुधिर की वर्षा करने लगे। वेदी को रुधिर की धारा से सनी हुई देखकर रामचन्द्र शीघ्र दौड़े और आकाश में राक्षसों को देखकर लक्ष्मण से बोले—देखो लक्ष्मण, मैं इन दुष्ट मांसभक्षकों को "मानवास्त्र" से ऐसे उड़ाये देता हूँ जैसे वायु बादलों को उड़ा देता

* यज्ञ में ऐसा होना एक प्रकार का उत्पात समझा जाता है।

है; क्योंकि इनको मैं मारना नहीं चाहता। फिर रामचन्द्र ने धनुष पर मानवास्त्र को रखकर मारीच की छाती में ऐसा मारा कि वह उड़कर चार सौ कोस पर समुद्र में गिर पड़ा। इस तरह मारीच को दूर फेंककर रामचन्द्र लक्ष्मण से बोले--देखो, इस "शीतेषु" नामक मानवास्त्र को मनु ने बनाया है। यह शत्रु को मोहित करके अचेत कर देता है; मारता नहीं। अब मैं इन दुष्ट रुधिरभक्षकों को भी मारता हूँ। ऐसा कह अपने हाथ की सफाई दिखाते हुए महाराज रघुभूषण ने सुबाहु के हृदय में आग्नेयास्त्र मारा। अस्त्र लगते ही वह गिरकर मर गया। शेष राक्षसों को उन्होंने "वायव्यास्त्र" से मार गिराया। इस प्रकार राक्षसों को मारकर और ऋषियों से पूजित हो, श्री रामचन्द्रजी इन्द्र की तरह शोभित हुए। यज्ञ समाप्त होने पर कौशिक मुनि उठे और चारों दिशाओं में शान्ति देख रामचन्द्र से बोले—हे महाबाहु! मैं कृतार्थ हुआ। तुमने गुरु का वचन पूरा किया और इस स्थान का सिद्धाश्रम नाम सत्य किया। इस प्रकार विश्वामित्र रामचन्द्र की प्रशंसा कर दोनों भाइयों के साथ सन्ध्योपासन करने लगे।

---

## इकतीसवाँ सर्ग

### जनक के धनुष-यज्ञ को देखने जाना

दोनों भाइयों ने प्रसन्न हो रात को उसी आश्रम में शयन किया। प्रातःकाल की क्रिया करके वे विश्वामित्र मुनि को प्रणाम कर बोले—महाराज! हम दोनों किंकर उपस्थित हैं। जो आज्ञा हो, करें। दोनों भाइयों की यह बात सुन विश्वामित्र मुनि और आश्रमवासी मुनि लोग बोले कि मिथिला-नरेश के यहाँ धनुर्यज्ञ है। हम लोग वहाँ जायँगे। आप भी हमारे संग चलिए और उस धनुष को देखिए। वह धनुष बहुत भारी और बड़ा तेजवाला है। वह धनुष देवताओं ने जनक को दिया है। उसके चढ़ाने में देवता, गन्धर्व, असुर और राक्षस कोई भी समर्थ नहीं—फिर मनुष्य की तो बात ही क्या है। उस धनुष के बज्र को जानने की इच्छा करते हुए आये तो बहुत से राजपुत्र, परन्तु उसको चढ़ा कोई न सका, अब आप उस धनुष-यज्ञ को चलकर देखिए।

हे रामचन्द्र! किसी समय राजा जनक ने यज्ञ किया। जब यज्ञ समाप्त हुआ तब राजा ने शत्रुओं को जीतने के लिए वही "सुनाभ" नामक धनुषरूप यज्ञ का फल देवताओं से माँगा और देवताओं ने प्रसन्न होकर दे दिया। इसलिए वही धनुष तरह-तरह की गन्ध और धूप से पूजता हुआ अब तक राजा के घर में है। फिर मुनियों को और राम-लक्ष्मण को साथ लेकर विश्वामित्र मुनि जनकपुरी को चल दिये। चलते समय उन्होंने वनदेवताओं से कहा कि तुम्हारा मङ्गल हो। मेरा यज्ञ सिद्ध हुआ। अब मैं इस सिद्धाश्रम से उत्तर की ओर, गङ्गा के तीर, हिमवान् पर्वत पर जाऊँगा। ऐसा कहकर वे उत्तर दिशा में उन सबको साथ लेकर चल दिये। कौशिक मुनि के चलते ही ब्रह्मवादी मुनियों के सैकड़ों छकड़े उनके पीछे चले। इन छकड़ों पर अग्निहोत्रादि का सामान था। उस सिद्धाश्रम के रहनेवाले मृग और पक्षी भी मुनि के पीछे-पीछे हो लिये; परन्तु विश्वामित्र ने उन सब पशु-पक्षियों को लौटा दिया। फिर उन्होंने कुछ दूर जाकर सन्ध्या समय शोणा नदी के तीर पर पहुँच, सूर्य्य अस्त होने पर, स्नान और होम

कर विश्वामित्र के साथ निवास किया। राम-लक्ष्मण मुनि के पास आ, बोले—भगवन्! यह कौन देश है? इसमें बड़े सुहावने वन हैं। मैं सुनना चाहता हूँ, कृपाकर कहिए। रामचन्द्र की यह बात सुनकर मुनि उस देश का वर्णन करने लगे।

---

## बत्तीसवाँ सर्ग

### विश्वामित्र के वंश का वर्णन

हे रामचन्द्र! ब्रह्मा के पुत्र कुश नामक राजा थे। वे बड़े तपस्वी, व्रत और धर्म्म में तत्पर तथा सज्जनों के पूजक थे। विदभ देश की कन्या उस महात्मा राजा की पतिव्रता धर्मपत्नी थी। उसी से कुशाम्ब, कुशनाभ, अमूर्तरजा* और वसु, ये चार पुत्र पैदा हुए। चारों ही बड़े तेजस्वी और बड़े उत्साही थे। कुछ दिन बाद जब ये बड़े हुए तब कुश ने क्षत्रिय धर्म्म बढ़ाने की इच्छा से पुत्रों से कहा—हे पुत्रो! तुम प्रजाओं का पालन करो। ऐसा करने से तुम्हें धर्म्म भी होगा। पिता की आज्ञा पाकर चारों पुत्रों ने ऐसा ही करने का विचार किया। कुशाम्ब ने "कौशाम्बी" नामक नगरी बसाई; कुशनाभ ने "महोदय" नामक नगर, अमूर्त्तरजा ने "धर्म्मारण्य" नामक पुर और वसु ने "गिरिव्रज" नामक नगर बसाया। इसका दूसरा नाम वसुमति भी है। हे रामचन्द्र! यह मागधी नदी—जो "शोणा" के नाम से प्रसिद्ध है मगध देश से आई है और इन सामनेवाले पाँचों पर्वतों के बीच माला की सी शोभा देती हुई पूब दिशा की ओर बह गई है। इसके चारों ओर अच्छे-अच्छे बहुत से अन्नों से भरे हुए जो खेत खड़े हैं ये सब महाराज वसु के हैं।

कुशनाभ ने घृताची अप्सरा से सौ कन्याएँ पैदा कीं। कुछ दिनों बाद गहने और कपड़े से सजी हुई वे रूपवती युवती कन्याएँ एक वाटिका में पहुँचीं। वहाँ वे गाने, बजाने और नाचने लगीं। उस समय वे ऐसी शोभित हो रही थीं जैसे वर्षा-काल में बिजली और मेघों के बीच तारों की शोभा होती है। उन रूप और यौवन से युक्त कन्याओं से, सब जगह रहनेवाला, वायु देवता बोला कि मैं तुमको चाहता हूँ। तुम मेरी स्त्री बनो। मनुष्य-धर्म को छोड़कर तुम बड़ी आयु पाओगी। क्योंकि यह यौवन चल है, और मनुष्य-जाति में तो यह बहुत ही थोड़े दिन रहता है। इसलिए तुम मेरी स्त्री होकर देवता बनो। ऐसा करने से तुम्हारा यौवन बहुत समय तक बना रहेगा।

वायु की यह बात सनकर वे हँसकर बोलीं—हे वायुदेव! आप तो सब प्राणियों के भीतर-बाहर चलते-फिरते हो। हम आपको खूब पहचानती हैं। आप हमसे ऐसा वचन क्यों कहते हैं? हम कुशनाभ की बेटियाँ हैं और तपस्या में लगी हुई हैं। इसलिए हम आपको दण्ड देने के लिए शाप देना नहीं चाहतीं। हे दुर्बुद्धि! वह समय न आवे कि हम पिता का अनादर करके अपने आप पति को वरें; क्योंकि पिता ही हमारे प्रभु और इष्टदेव हैं। वे जिस पुरुष को हमें सौंपेंगे वह हमारा पति होगा।

ऐसा कठोर वचन सुनकर वायु ने क्रुद्ध हो उनके शरीर में प्रवेश करके सब अंग भंग कर दिये। इस प्रकार वे सब लज्जित और व्याकुल होकर रोती हुई अपने घर आईं। अपनी प्यारी कन्याओं को दुःखी देख राजा घबराकर बोले—हे कन्याओ! यह क्या हुआ?

* अमूर्तरजा भी पाठ है।

किसने धर्म्म का अनादर कर तुमको कुबड़ी कर दिया ? तुम रोती क्यों हो ! हमसे अपना समाचार क्यों नहीं कहतीं ? ऐसा कहकर राजा ऊँची साँस लेकर चुप हो गये।

---

## तेंतीसवाँ सर्ग

### कुशनाभ की कन्याओं का विवाह

पिता के पूछने पर बड़ी नम्रता से वे कहने लगीं—हे पिताजी ! सर्वात्मा वायु देवता हमसे अधर्म के लिए हठ करता था। हमने उससे कह दिया कि "हम पिता के अधीन हैं। पिताजी हमको जिसे सौंपेंगे वही हमारा पति होगा। तुम भी हमारे पिता से कहो, शायद वे तुमको दे दें।" ऐसा कहने पर उस पापी वायु ने हमारे अंग भंग कर दिये।

कन्याओं की बात सुनकर राजा ने कहा—हे पुत्रियो ! क्षमावान् को जैसा करना चाहिए तुमने वैसा ही किया। तुमने अपने धर्म और कुल-मर्यादा की रक्षा के लिए बड़ा कठिन काम किया है। तुममें देवताओं से भी अधिक क्षमा है। हे पुत्रियो ! क्षमा बड़ी चीज है। क्षमा ही दान, क्षमा ही सत्य, क्षमा ही यज्ञ, क्षमा ही धर्म और क्षमा ही संसार का आधार है।

इस प्रकार उनको शान्ति देकर, उनके विवाह के लिए, राजा मन्त्रियों के साथ विचार करने लगा। इसी बीच में एक सदाचारी और ब्रह्मचारी "चूली" नामक बड़े तेजस्वी ऋषि ने ब्राह्मतप करना आरम्भ किया। उस समय उर्मिला की गन्धर्वी कन्या सोमदा उस ऋषि की सेवा करने लगी।

कुछ दिनों में उस कन्या की सेवा से प्रसन्न होकर ऋषि बोले—"मैं प्रसन्न हूँ, जो तू कहे सो मैं तेरा काम करूँ।" मुनि का यह वचन सुन वह गन्धर्वी बोली कि महाराज ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मैं ब्राह्म तेज से युक्त, ब्रह्मनिष्ठ और धार्मिक पुत्र चाहती हूँ। मैं अब तक बिना विवाही हूँ। इसलिए ब्राह्म-विवाह की रीति से मैं आपके पास आई हूँ। मुझे पुत्र दीजिए। यह बात सुनकर ऋषि ने प्रसन्न होकर उसको 'ब्रह्मदत्त' नामक मानस पुत्र दिया। वह काम्पिली नामक नगरी का राजा हुआ। कुशनाभ ने उसी को अपनी १०० कन्याएँ देने का विचार कर उसे बुलाया; और प्रसन्न हो उसको १०० कन्याएँ दान कर दीं। ब्रह्मदत्त ने उनको स्वीकार कर लिया। विवाह होते ही उन सबके टेढ़े-मेढ़े शरीर पहले की तरह ज्यों के त्यों सीधे हो गये। उनको वायु के बन्धन से छुटी देख महाराज कुशनाभ भी बड़े प्रसन्न हुए।

इस प्रकार महाराज ने कन्याओं का विवाह कर ब्रह्मदत्त के साथ उनको विदा किया और उनके साथ अनेक ब्राह्मण भी कर दिये। अपने पुत्र का यथायोग्य विवाह और अपनी पतोहुओं को देखकर सोमदा भी बड़ी प्रसन्न हुई।

---

## चौंतीसवाँ सर्ग

### गाधि की उत्पत्ति और मुनि के वंश की कथा

इस प्रकार विवाह हो जाने पर जब ब्रह्मदत्त चले गये तो राजा कुशनाभ ने, पुत्र के लिए, पुत्रेष्टि यज्ञ करने का विचार किया। यज्ञ प्रारम्भ होने पर ब्रह्मा

के पुत्र महाराज कुश ने अपने पुत्र कुशनाभ से कहा—हे पुत्र ! तुम्हारे गाधि नामक धार्मिक पुत्र होगा। उसके द्वारा संसार में तुम्हारी बड़ी कीर्त्ति होगी। यह कहकर राजा कुश, आकाश-मार्ग से, ब्रह्मलोक को चले गये। कुछ दिन बाद, राजा कुशनाभ के गाधि नामक परम धार्मिक पुत्र हुआ। हे रामचन्द्र, वही गाधि मेरे पिता हैं और मैं कुश के वंश में हूँ। इसी लिए मैं कौशिक कहलाता हूँ। मेरे एक जेठी बहिन सत्यवती थी। वह ऋचीक को ब्याही गई थी। वह अपने पतिव्रत धर्म के बल से, पति के साथ, शरीर-सहित स्वर्ग को गई। फिर पीछे से, लोक के हित के लिए, दिव्य और पवित्र जल-वाली कौशिकी नदी होकर हिमवान् पर्वत से निकली। हे रघुनन्दन ! इसी लिए मैं अपनी बहिन के स्नेह से हिमवान् के पास सुखपूर्वक रहता हूँ। उस कौशिकी नदी को छोड़ मैं यहाँ सिद्धाश्रम में यज्ञ करने के लिए आया और इस सिद्धाश्रम में आकर तुम्हारे तेज से मैं सिद्ध हुआ। हे राघव ! मैंने यह अपने वंश की उत्पत्ति और इस देश की कथा तुमसे कही। मुझको कथा कहते-कहते आधी रात हो गई। अब सो जाओ। कहीं ऐसा न हो कि नींद से मार्ग चलने में विघ्न हो। देखो, सब वृक्ष निश्चल हो गये। मृगों और पक्षियों की कुछ भी आहट नहीं मिलती। सब दिशाएँ अन्धकार से भर गईं। सन्ध्या ने धीरे-धीरे आकाश का त्याग कर दिया। सो यह आकाश चम-कीले नक्षत्रों से, हजार नेत्रों से इन्द्र की तरह, शोभित हो रहा है। सारे संसार के अँधेरे का नाश करनेवाला यह चन्द्रमा प्राणियों के मन को आनन्दित करता हुआ ऊपर को उठ रहा है। मांसभक्षी भयङ्कर निशाचर लोग इधर-उधर घूम रहे हैं। ऐसा कहकर कौशिक मुनि चुप हो गये। तब मुनि लोग साधु-साधु (वाह-वाह) कह मुनि की प्रशंसा कर बोले—यह कुशिक वंश सदा अति धर्म-तत्पर था और इस वंशवाले सभी महाराजा ब्रह्मर्षि तुल्य हुए। विशेष करके महायशस्वी आप इस वंश के भूषण हुए और नदियों में श्रेष्ठ इस कौशिकी ने आपके कुल का प्रकाश किया।

अब रात हुई और विश्वामित्र, राम, लक्ष्मण सब सो गये।

---

## पैंतीसवाँ सर्ग

### गङ्गा और पार्वती की कथा

रात्रि बीत जाने पर प्रभात ही विश्वामित्र ने राम-चन्द्रजी से कहा—हे राघव! उठिए, प्रातःसन्ध्या कर चलने की तैयारी कीजिए। इतना सुनते ही दोनों भाई झट उठे और सन्ध्यावन्दन से निपटकर चल दिये। रामचन्द्रजी ने कहा—हे मुनिजी ! यह शोणनद तो बड़ा गहरा है। इसे किस रास्ते से पार करेंगे ? विश्वामित्र ने कहा—जिस रास्ते से महर्षि लोग आते-जाते हैं उसी रास्ते से चलो। इस प्रकार चलते-चलते दोपहर के समय वे गंगा नदी पर पहुँचे। वहाँ हंस और सारसों को विचरते देखकर मुनि लोग बड़े प्रसन्न हुए। गङ्गातीर पर सब लोग ठहर गये। सबने स्नान-तर्पण कर अग्निहोत्र किया। फिर दोनों भाइयों के साथ मुनि लोग विश्वामित्र को घेरकर बैठ गये। रामचन्द्रजी ने विश्वामित्र से पूछा—महाराज ! यह गङ्गा नदी किस तरह से निकलकर समुद्र में जा मिली। इस प्रकार पूछने पर विश्वामित्र मुनि गङ्गा के जन्म की कथा इस प्रकार कहने लगे—

हे रामचन्द्र ! पर्वतों के राजा हिमाचल में तरह-तरह की धातुओं की खानें हैं। उस हिमाचल के दो रूपवती कन्याएँ थीं। उनकी माता का नाम मैना था। वह सुमेरु पर्वत की बेटी थी। हिमाचल को मैना बड़ी प्यारी थी। दोनों कन्याओं में से पहिली का नाम गङ्गा और दूसरी का उमा था। जब देवताओं ने अपने काम के लिए हिमाचल से गंगा को माँगा तब उसने लोक के हित की इच्छा से गंगा को दे दिया। देवता लोग गंगा को लेकर कृतार्थ हो, अपने-अपने स्थान को चले गये। अब रह गई दूसरी कन्या। वह बड़ा कठोर व्रत धारण कर तपस्या करने लगी। हिमाचल ने इस प्रकार कठिन तपस्या करती हुई पुत्री भगवान् महादेवजी को ब्याह दी। हे रामचन्द्र ! इस प्रकार ये दोनों गङ्गा और उमा देवियाँ विख्यात हिमालय की बेटियाँ हैं। गङ्गा, पहिले, आकाश-मार्ग को चली गई।

---

## छत्तीसवाँ सर्ग

### शिव की क्रीड़ा और देवताओं को शाप

यह कथा सुनकर दोनों भाई फिर पूछने लगे कि हे ब्रह्मन् ! आपने यह बड़ी अच्छी कथा कही। अब पर्वतराज की बड़ी पुत्री की कथा जरा विस्तार से कहिए। गंगा किस लिए तीन मार्गों से गई और इसका त्रिपथगा* नाम किस प्रकार से प्रसिद्ध हुआ ? तीनों लोकों में इसके और क्या-क्या चरित हैं ? यह सुनकर विश्वामित्रजी कथा कहने लगे—

हे रामचन्द्र ! पहले भगवान् शिव ने अपना विवाह किया और वे देवी के साथ विहार करने लगे। शिव को विहार करते-करते सैकड़ों वर्ष बीत गये; पर पुत्रोत्पत्ति न हुई। इससे ब्रह्मा आदि देवता घबड़ाने लगे कि उमा देवी से जो प्राणी पैदा होगा उसको कौन सहेगा ! ऐसा विचारकर देवता लोग शिव के पास गये और प्रणाम कर बोले—हे देव ! आप इस लोक के कल्याण करने में समर्थ हैं, इसलिए हम पर प्रसन्न हो जाइए। हे सुरोत्तम ! ये लोक आपका तेज धारण न कर सकेंगे। सो आप देवी के साथ ब्राह्म तपोबल से तपस्या कीजिए और लोक के हित के लिए अपने तेज को तेज से ही धारणकर इन लोकों को बचाइए। सब लोकों का नाश न कीजिए। इस पर शिव ने "बहुत अच्छा" कहा। वे बोले कि हम उमा के साथ तेज से तेज को धारण करेंगे। देवता लोग और पृथ्वी सुख से रहें। परन्तु यह तो कहो कि हमारा जो यह सर्वोत्तम तेज गिरा है उसको कौन धारण करेगा। यह सुन देवता बोले कि महाराज ! जो तेज गिरा है उसको पृथ्वी धारण करेगी। यह सुनकर शङ्कर ने तेज को छोड़ दिया। इससे वनों और पर्वतों-सहित पृथ्वी भर गई। फिर देवताओं ने अग्नि से कहा कि तुम वायु के साथ रुद्र के इस महातेज में प्रवेश करो। सो अग्नि के प्रवेश करने से वह तेज श्वेत पर्वत सा हो गया। अग्नि एवं सूर्य जैसा चमकीला दिव्य सरहरी का जङ्गल शरवण नाम से प्रसिद्ध हो गया। इसमें स्वामिकार्त्तिक पैदा हुए। तब देवता और ऋषि प्रसन्न मन से महाराज कैलासपति की स्तुति और पूजा करने लगे। इसके बाद भगवती उमा ने क्रोध से लाल नेत्र कर देवताओं को यह शाप दिया कि पुत्र की कामना से मैं पति से संयोग करती थी; पर उस संयोग में तुमने विघ्न डाला, इसलिए तुम अपनी स्त्रियों से सन्तान उत्पन्न न कर सकोगे। आज से तुम्हारी स्त्रियाँ

* तीन रास्तों से जानेवाली।

बिना सन्तान की होंगी। इस प्रकार देवताओं को शाप देकर देवी ने पृथ्वी को भी शाप दिया कि तू भी एक रूप से न रहेगी और बहुतों की स्त्री होगी। मेरे क्रोध से तुझे पुत्र का सुख न होगा; क्योंकि तूने मेरे पुत्र को नहीं चाहा। अब भगवान् रुद्र उन देवताओं को पीड़ित देख पश्चिम दिशा में गये। उस हिमाचल के उत्तर ओर हिमवत्प्रभव शिखर पर देवी के साथ वे तप करने लगे। हे रामचन्द्र! यह उमा देवी की कथा मैंने तुमसे कही। अब गङ्गा की उत्पत्ति सुनो।

---

## सैंतीसवाँ सर्ग

### स्वामिकार्त्तिक की उत्पत्ति

इस प्रकार जब शिव तपस्या करने लगे तब देवता लोग सेनापति की इच्छा से ब्रह्मा के पास गये और प्रणाम कर बोले—भगवन्! भगवान् शङ्कर ने पहिले हम लोगों से कहा था कि तुम्हारे लिए हम एक सेनापति देंगे। सो वे तो उमा देवी के साथ तप कर रहे हैं, इसलिए लोकों के हित के लिए जो करना हो कीजिए; आप ही हमारी परम गति हैं। देवताओं की यह बात सुनकर ब्रह्मा ने उनको मधुर वाणी से दिलासा दिया। फिर कहा—हे देवगण! उमा देवी ने तुमको जो शाप दिया है कि तुम्हारी स्त्रियों के सन्तान न होगी सो वह तो मिथ्या हो नहीं सकता; पर हाँ अग्नि इस आकाशगङ्गा से एक पुत्र पैदा करेगा। वही पुत्र तुम्हारा सेनापति होगा। उमा देवी भी उस पुत्र का आदर करेंगी और वह उनको बहुत ही प्यारा होगा। ब्रह्मा का ऐसा वचन सुनकर देवता कृतार्थ हुए। ब्रह्मा को प्रणाम कर वे चले गये। अब देवता लोग कैलास पर जाकर, पुत्र के लिए, अग्नि से बोले—हे अग्नि। शिव के तेज को तुम हिमाचल की पुत्री गङ्गा में छोड़ो। यह सुनकर अग्नि ने गङ्गा के पास जाकर कहा कि हे देवि! तुम इस गर्भ को धारण करो। अग्नि की बात सुनकर गङ्गा ने दिव्यरूप धारण किया। ऐसी महिमा देखकर अग्नि ने तेज छोड़ दिया जिससे गङ्गा के सब सोते पूर्ण हो गये। तब अग्नि से गङ्गा बोली कि हे अग्नि! मैं तुम्हारे तेज को धारण करने में असमर्थ हूँ। मैं इस तेज से भस्म हुई जाती हूँ। मेरा चित्त अत्यन्त व्याकुल हो रहा है। इस पर अग्नि ने कहा कि अच्छा, इस गर्भ को तुम हिमालय के पास रख दो। तब गङ्गा ने अपने सोतों से उस गर्भ को त्याग दिया। जब वह गर्भ भूमि पर गिरा तो बहुत चमकीला जाम्बूनद सुवर्ण हो गया। उस गर्भ की तेजी से ताँबा और लोहा हुआ; तथा उसके मैल से जस्ता और सीसा बन गया। इस प्रकार वह तेज भूमि पर तरह-तरह का धातुरूप होकर, फैल गया। गर्भ के छोड़ते ही सम्पूर्ण पर्वत और वहाँ का सारा वन, तेज से व्याप्त होकर, सुवर्णरूप हो गया। हे रामचन्द्र! रूप से उपजा हुआ यह सुवर्ण तब से जातरूप कहलाने लगा। और, उसकी अग्नि की सी कान्ति हो गई। हे राघव! उस तेज से कुमार उत्पन्न हुआ। उस बालक को दूध पिलाने के लिए देवताओं ने कृत्तिकाओं को नियुक्त किया। वे ठीक समय पर उसको दूध पिलाने लगीं और उसे अपना पुत्र समझने लगीं। कृत्तिकाओं के दूध पिलाने से देवताओं ने उस लड़के का नाम "कार्त्तिक" रखकर कहा कि यह पुत्र तीनों लोकों में विख्यात होगा। यह बालक गर्भ के स्राव से उत्पन्न हुआ इसलिए इसका नाम "स्कन्द" भी हुआ। हे रामचन्द्र!

अग्नि के सदृश वह बालक छः मुखों से छहों कृत्तिकाओं का दूध पीने लगा; इसी लिए वह "षडानन"* नाम से प्रसिद्ध हुआ। दूध पीकर, एक ही दिन में, उस सुकुमार बालक ने अपने पराक्रम से दैत्यों की सेना को जीत लिया। तब देवताओं ने मिलकर उसको अपना सेनापति बनाया। हे राम! यह गङ्गा का विस्तार और कुमार की उत्पत्ति मैंने तुमसे कही। हे राघव! इस स्वामिकार्त्तिक की पवित्र कथा को जो लोग भक्ति से सुनते और पढ़ते हैं वे आयुष्मान् और पुत्र-पौत्रों से युक्त होकर स्कन्दलोक को प्राप्त होते हैं।

---

## अड़तीसवाँ सर्ग

### गङ्गा की उत्पत्ति

इस कथा को कहकर महर्षि विश्वामित्र बोले—हे रामचन्द्र! अयोध्या के अधिपति सगर राजा बड़े धर्मात्मा और वीर थे। इनके दो स्त्रियाँ थीं पर सन्तान न थी। जेठी रानी का नाम "केशिनी" था। यह विदर्भदेश की कन्या बड़ी धर्म्मशीला थी। दूसरी का नाम "सुमति" था। यह अरिष्टनेमि की पुत्री और सुपर्णा की बहिन थी। महाराज सगर दोनों पत्नियों के साथ हिमवान् पर्वत के "भृगुप्रस्रवण" नामक प्रदेश में जाकर तप करने लगे। सौ वर्ष की तपस्या से भृगु मुनि ने प्रसन्न हो सगर को वर दिया कि राजन्! आपके सन्तान होगी। उससे आपकी कीर्त्ति फैलेगी। आपकी एक स्त्री एक पुत्र जनेगी। इससे आपका वंश बढ़ेगा और दूसरी साठ हजार (६०,०००) पुत्रों को पैदा करेगी। मुनि की यह बात सुन दोनों रानियाँ हाथ जोड़कर बोलीं—महाराज, एक पुत्र कौन जनेगी और बहुत से पुत्र किसके होंगे? कृपा करके आप हमको बताइए। ऋषि ने उत्तर दिया कि जैसी जिसकी इच्छा हो वैसा वर ले लो। तुममें से वंशकारक एक पुत्र कौन चाहती है। और कीर्त्तिमान् तथा महाबलवान् अनेक पुत्रों को कौन चाहती है? भृगु मुनि का यह वचन सुनकर केशिनी ने एक पुत्र चाहा और सुमति ने बहुत से। तब ऋषि को प्रणाम करके रानियों के साथ राजा अपने नगर को चला आया। फिर कुछ समय के बाद राजा की बड़ी स्त्री केशिनी ने तो असमञ्जस नामक पुत्र पैदा किया और सुमति ने साठ सहस्र पुत्रों का एक तूँबा। उसके फूटने से सब बालक निकल पड़े। उन बालकों को घी से भरे हुए कुण्डों में रख दाइयों ने पाला-पोसा। कुछ दिनों में वे साठ हजार बालक, महाराज सगर के पुत्र, सुन्दर रूप और यौवन से युक्त हो बलवान् हो गये। सगर का बड़ा पुत्र असमञ्जस छोटे-छोटे बालकों को पकड़-पकड़कर सरयू नदी में फेंक देता था; और जब वे डूबने लगते थे तब उनको देख-देखकर हँसता था। ऐसे दुष्ट, बालकों को पीड़ा देनेवाले तथा पुरवासियों को सतानेवाले पुत्र को राजा ने अपने नगर से निकाल दिया। परन्तु असमञ्जस का पुत्र अंशुमान सबको प्यारा था। वह लोगों का हितैषी और प्रिय बोलनेवाला था। कुछ काल के बाद महाराज को यज्ञ करने की इच्छा हुई। यह विचारकर उन्होंने पण्डितों के साथ यज्ञ का आरम्भ किया।

---

* छः मुँहवाला।

## उनतालीसवाँ सर्ग

### सगर का यज्ञ और पृथ्वी का खोदना

इतनी कथा सुनकर महाराज रामचन्द्र मुनि से बोले—भगवन्! इस कथा को और विस्तार से कहिए। मैं सुनना चाहता हूँ कि मेरे पूर्वज राजा सगर ने किस प्रकार से यज्ञ किया। इस पर विश्वामित्र हँसकर बोले—हे राघव! सुनिए, सगर की कथा मैं विस्तार से कहता हूँ।

शंकर के ससुर हिमाचल और विन्ध्याचल के बीच में उस यज्ञ का आरम्भ हुआ। ये दोनों पर्वत अपनी उँचाई के कारण मानों परस्पर देख से रहे हैं। यज्ञ करने के लिए इन्हीं दोनों पर्वतों के बीच की भूमि उत्तम मानी गई है। राजा का पौत्र, बड़ा धनुर्धर अंशुमान् उस यज्ञ में घोड़े की रक्षा के लिए नियत था। अश्वालम्भन के दिन इन्द्र ने, राक्षस का रूप धारण कर, उस यजमान राजा के यज्ञ के घोड़े को हर लिया। उस समय उपाध्याय लोगों ने राजा से कहा—महाराज! देखिए, पर्व के दिन यह घोड़ा चुरा लिया गया। आप उस चोर को मारकर घोड़ा लाइए। यज्ञ का विघ्न हम लोगों के लिए अच्छा नहीं। इसलिए आप ऐसा कीजिए जिससे यह निर्विघ्न हो जाय।

उस यज्ञ-सभा में उपाध्यायों की यह बात सुनकर राजा ने साठ हजार पुत्रों से कहा—हे पुत्रो! देखो, बड़े-बड़े मन्त्रशास्त्रियों ने इस यज्ञ की रक्षा की है, इतने पर भी यदि राक्षस लोग विघ्न करें तो उनकी चालाकी से हम पार नहीं पा सकते। अतः जाओ; तुम लोग समुद्र से घिरी हुई सम्पूर्ण पृथ्वी में एक-एक योजन करके उस घोड़े को और उसके हरनेवाले को खोजो। तब तक हम पौत्र और उपाध्यायों के साथ यज्ञ की दीक्षा में बैठे रहेंगे। इस प्रकार पिता की आज्ञा पाकर, वे सब प्रसन्न मन से चले। अब उन्होंने पृथ्वी को खोदना आरम्भ किया। उनमें एक-एक पुत्र वज्र के समान भुजाओं से योजन* भर पृथ्वी को एक बेर खोदता था। उस समय बड़े-बड़े शूलों से और बड़े-बड़े मजबूत हलों से खोदी जाने पर पृथ्वी बड़ा शब्द करने लगी। उसके खोदने में कितने ही नाग, दैत्य, राक्षस और अनेक प्रकार के जीवों का बड़ा भयङ्कर शब्द हुआ; क्योंकि इनमें से बहुत से मर गये और बहुत से पीड़ित हुए। हे रघुनन्दन! उन राजकुमारों ने साठ हजार योजन भूमि खोद डाली मानों रसातल में भी ढूँढ़ने की उनकी इच्छा थी। इस प्रकार वे पर्वतों-सहित इस जम्बूद्वीप को खोदते और घूमते थे। इससे दुःखी होकर देवता, गन्धर्व, दैत्य और नाग सब व्याकुल हो, ब्रह्मा के पास जाकर बोले—भगवन्! सगर के पुत्र सम्पूर्ण पृथ्वी खोदे डालते हैं। इससे अनेक जलचर प्राणियों का घात हो रहा है। "यह हमारे यज्ञ का विघ्नरूप है और यह घोड़ा लिये जाता है" ऐसा कहते हुए वे अनेक प्राणियों का संहार कर रहे हैं।

---

## चालीसवाँ सर्ग

### सगर के पुत्रों का भस्म होना

देवताओं का वचन सुन, भगवान् ब्रह्मा बोले—हे देवताओ! यह पृथ्वी जिस भगवान् माधव वासुदेव की पटरानी है वे प्रभु, कपिल का रूप धारण

* एक योजन चार कोस का होता है।

कर, सदा उसको धारण करते हैं। उनके कोपाग्नि से जलकर ये भस्म हो जायँगे। इस पृथ्वी का भेदन और इन अल्पायु सगरपुत्रों का नाश तो सनातन से प्रसिद्ध ही है। पितामह का यह वचन सुन, देवता प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानों को चले गये। इधर पृथ्वी खोदनेवाले सगर के पुत्रों का, पृथ्वी के शब्द के सहित, बड़ा भयंकर शब्द हुआ। फिर वे सब पृथ्वी को खोदकर और चारों ओर घूमकर, उत्साह-रहित हो, पिता के पास जाकर बोले—महाराज! हमने सब पृथ्वी ढूँढ़ डाली; बड़े-बड़े बलवान्, देवता, दानव, राक्षस, पिशाच और अनेक नागों को मार डाला। परन्तु उस घोड़े के ले जानेवाले का कहीं पता न मिला। कहिए, अब क्या करें? पुत्रों का वचन सुनकर सगर क्रुद्ध होकर बोले--हे पुत्रो! फिर भी पृथ्वी को खोदो और घोड़े के चोर को ढूँढ़कर ही मेरे पास आओ। पिता की आज्ञा से वे सब रसातल की ओर दौड़े और फिर खोदने लगे। खोदते-खोदते उन्होंने महापर्वताकार विरूपाक्ष नामक दिग्गज को देखा। वह पूर्व दिशा की ओर पृथ्वी को थामे था, उसका आदर कर वे उस दिशा को छोड़ दक्षिण दिशा में खोदने लगे। वहाँ महापर्वत के समान महापद्म नामक दिग्गज को देखा। वह मस्तक से पृथ्वी को धारण किये हुए था। उससे कुशल-प्रश्न पूछ पश्चिम में खोदने लगे। वहाँ सौमनस नामक दिग्गज को देखा। उसका आदर-सत्कार करके वे उत्तर दिशा में खोदने लगे। वहाँ भी अति श्वेतवर्ण भद्र नामक दिग्गज को देखा। उसी प्रकार उसका भी आदर-सम्मान कर वे ईशान कोन में क्रोध से खोदने लगे। हे रामचन्द्र! सगर के उन महात्मा और महाबली पुत्रों ने खोदते-खोदते वहाँ कपिलरूपधारी सनातन भगवान् वासुदेव को देखा। उनके निकट सगर के अश्वमेध का घोड़ा भी चर रहा था। यह देखकर वे खूब हर्षित हुए। भगवान् कपिल को यज्ञ का विघ्नकारक समझकर वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उन्होंने हाथों में फरसा, कुदारी, हल, वृक्ष और पत्थरों को लेकर कहा—"खड़ा रह, खड़ा रह, तूही हमारे यज्ञ के घोड़े को चुरा लाया है। अरे दुर्बुद्धि! देख हम सब सगर के पुत्र आ पहुँचे।"

हे रघुनन्दन! इस तरह उनका कठोर वचन सुन भगवान् कपिल ने क्रोध से जो "हुं" किया उसी से वे सब भस्म की ढेरी हो गये।

---

## इकतालीसवाँ सर्ग

### घोड़ा ढूँढ़ने को अंशुमान् का जाना और घोड़े को ले आना

जब बहुत दिन बीत गये और पुत्र न आये तब राजा सगर ने अपने पौत्र से कहा कि तुम शूर, विद्वान् और तेज में अपने पूर्वजों के तुल्य हो। इसलिए अब तुम जाओ। अपने चचाओं को खोजो और जिसने घोड़ा चुराया है उसको देखो। भूमि के भीतर अनेक विशाल और बलवान् जीव रहते हैं। उनसे अपनी रक्षा के लिए तलवार और धनुष धारण करो। जो प्रणाम के योग्य हैं उनको प्रणाम करो और जो मारने के योग्य हैं, अर्थात् विघ्नकारी हैं, उनको मारो और काम सिद्ध कर लौट आओ। अपने बाबा का वचन सुनकर अंशुमान् ने तलवार और धनुष ले, अपने चचाओं के खोदे हुए मार्ग से, भूमि में जल्द प्रवेश किया। वहाँ देव, दानव, राक्षस, पिशाच, पक्षी

और नागों से पूजित दिग्गज को देखकर उसकी कुशल पूछी। उससे अंशुमान् ने अपने पितरों का और घोड़े को ले जानेवाले का हाल पूछा। तब वह दिग्गज बोला—हे असमञ्जस के पुत्र अंशुमान्! तुम घोड़े के साथ जल्द लौटोगे। वह राजा का पौत्र इसी प्रकार सब दिग्गजों से पूछता चला और सबने उसकी बड़ाई कर वही बात कही। उन सबकी बात सुन वह जल्दी से चलकर वहाँ पहुँचा जहाँ पितरों की भस्म की ढेर पड़ी थी। उस भस्म को देखकर अंशुमान् अत्यन्त दुःखित हो विलाप करने लगा। वहीं पास चरते हुए उस घोड़े को भी उसने देखा। दुःख और शोक से पीड़ित होकर वह उन राजपुत्रों को तिलाञ्जलि देने के लिए वहाँ जल खोजने लगा परन्तु कोई जलाशय न मिला। फिर उसने गरुड़ को देखा। वह इसके पितरों का मामा था। गरुड़ ने अंशुमान् से कहा—हे वीर! चिन्ता न करो। इन लोगों का नाश लोक के लिए हितकारी होगा। भगवान् कपिल ने इनको भस्म किया है। इसलिए लौकिक जल से इनको जलाञ्जलि मत दो। हिमाचल की बड़ी पुत्री जो गंगा है उसके जल से इनकी जल-क्रिया करनी चाहिए। लोकपावनी गंगा के जल से जब इनका यह भस्म बहाया जायगा तब ये सब स्वर्गलोक को जायँगे। अब तुम यह घोड़ा लो और बाबा के यज्ञ को पूरा करो। गरुड़ का यह वचन सुन अंशुमान् घोड़ा लेकर शीघ्रता से यज्ञशाला में पहुँचे। राजा को उन्होंने पितरों का सब वृत्तान्त और गरुड़ का वचन कह सुनाया। अंशुमान् के उस घोर वचन को सुन राजा सगर चुप हो रहे और यज्ञ को यथाविधि समाप्त कर अपने नगर में चले गये। फिर गंगा को भूमि पर लाने का कुछ उपाय राजा को नहीं सूझा और इसमें बहुत काल बीत गया। तीस हजार वर्ष तक राज्य करके राजा सगर भी स्वर्ग को चले गये।

---

## बयालीसवाँ सर्ग

### गङ्गा के लाने के लिए सगरवंशी राजाओं की तपस्या

राजा सगर के परलोकवासी होने पर मन्त्री लोगों ने अंशुमान् को राजसिंहासन पर बैठाया। कुछ दिनों में राजा के दिलीप नामक पुत्र हुआ। तब अंशुमान् ने राज्य तो दिलीप को दिया और स्वयं हिमाचल के शिखर पर जाकर बड़ी कठिन तपस्या करनी आरम्भ की। बत्तीस हजार वर्ष तक तपस्या करके वह भी स्वर्ग को चले गये। अपने पितामह का भस्म होना सुनकर दिलीप भी अत्यन्त दुःखित हुए। वे कुछ निश्चय नहीं कर सके कि गंगा किस तरह आवेगी और किस तरह पितरों का तर्पण एवं उद्धार होगा। वह धर्मशील राजा सदा इसी बात की चिन्ता में लगा रहता था। कुछ दिन बाद राजा के भगीरथ नामक बड़ा धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुआ। महाराज दिलीप ने बहुत से यज्ञ किये और तीस हजार वर्ष तक राज्य किया। परन्तु ये उन पितरों के उद्धार का कुछ उपाय न कर सके। व्याधिग्रस्त होने से देहान्त होने पर अपने सुकर्म के बल से ये इन्द्रलोक को चले गये।

पिता के राज्य पर भगीरथ बैठे। इनके कोई सन्तान न थी। इसलिए इन्होंने मन्त्रियों को राज्य का भार सौंपकर गंगा को लाने के लिए, गोकर्ण तीर्थ में जाकर, कड़ी तपस्या करनी आरम्भ की। वे जितेन्द्रिय होकर, ऊपर को बाँह उठाकर, पञ्चाग्नि के बीच खड़े रहे; और

महीने-महीने में भोजन किया। इस प्रकार की घोर तपस्या करते-करते महाराज भगीरथ को जब हजार वर्ष बीत गये तब प्रजापति ब्रह्मा प्रसन्न होकर देवताओं को साथ ले, भगीरथ के पास आकर बोले—राजा भगीरथ! मैं इस तपस्या से प्रसन्न हूँ। वर माँगो। यह बात सुन राजा हाथ जोड़कर बोले—महाराज! जो आप प्रसन्न हैं और मेरी तपस्या का फल देना चाहते हैं तो मैं यही चाहता हूँ कि सगर के पुत्र मुझसे गंगा-जल पावें। इनकी भस्म गङ्गा के जल से बहाई जाय और ये स्वर्ग को प्राप्त हों। दूसरा वर यह दीजिए कि इक्ष्वाकु वंश नष्ट न हो। इसके लिए मुझे सन्तान भी दीजिए। राजा का वचन सुनकर पितामह मधुर वाणी से बोले—हे महारथ भगीरथ! यह तो तुम्हारा बड़ा मनोरथ है। अच्छा ऐसा ही होगा। परन्तु हिमाचल की बड़ी पुत्री, गङ्गा को धारण करने के लिए तुम शिवजी से प्रार्थना करो। जब गङ्गा आकाश से गिरेगी तो उसे पृथिवी न सह सकेगी। उसके थामने में शिव को छोड़ दूसरा कोई समर्थ नहीं।

इस प्रकार से भगीरथ को वर देकर ब्रह्मा ने गङ्गा को भूमि पर आने की आज्ञा दी। फिर देवताओं को साथ ले, वे अपने सत्यलोक को चले गये।

---

## तेंतालीसवाँ सर्ग

### गङ्गा का आना और सगर के पुत्रों का तरना

ब्रह्मा के जाने पर भगीरथ ने एक वर्ष पर्यन्त, एक अँगूठे के बल खड़े हो, शिव की आराधना की। वर्ष पूरा होने पर भगवान् उमापति ने राजा से कहा कि हे नरश्रेष्ठ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। तुम्हारा जो काम होगा वही मैं करूँगा और अपने मस्तक पर गङ्गा को धारण करूँगा। तदनन्तर भगवती गङ्गा आकाश से बड़े भारी वेग से शिव के मस्तक पर गिरीं। गिरते समय गङ्गादेवी ने मन में यह विचारा कि मैं अपनी धारा के वेग से शिव को भी लेकर पाताल को चली जाऊँगी। गङ्गा के गर्व को जानकर भगवान् शिव ने उसको अपनी जटा में रखने की इच्छा की। शिवजी के पवित्र मस्तक पर वह जा गिरी। महादेवजी की जटा-मण्डलरूप गुफा हिमाचल के समान थी। इसलिए अनेक उपाय करने पर भी गङ्गा भूमि पर न जा सकी। वह अनेक वर्षों तक उसी जटामण्डल में लगातार घूमती रही।

राजा भगीरथ ने गङ्गा को वहीं रुकी देखकर फिर कठोर तप करके शिव को प्रसन्न किया। तब शिव ने प्रसन्न हो हिमालय के पास, विन्दु नामक सरोवर पर, गङ्गा को छोड़ा। शिवजी के छोड़ते ही उसके सात सोते हो गये। इनमें ह्लादिनी, पावनी और नलिनी—ये तीन धाराएँ तो पूर्व की ओर गईं और सुचक्षु, सीता और महानदी—ये तीनों पश्चिम दिशा को। सातवीं धारा भगीरथ के रथ के पीछे-पीछे चली। उस समय दिव्य-रथ पर चढ़े हुए राजर्षि भगीरथ आगे-आगे चले जाते थे और गंगा उनके पीछे-पीछे आ रही थी। उस जल में मच्छ, कछुए और सूँस आदि जल-जन्तुओं के झुण्ड के झुण्ड गिरते-पड़ते चले जाते थे। उनसे भूमि की अद्भुत शोभा हो रही थी। देवता, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष और सिद्ध—सब बड़े-बड़े विमानों, घोड़ों, हाथियों और परिप्लव नामक विमानों पर सवार होकर, गंगा के उस अद्भुत अवतरण को देखने की इच्छा से, वहाँ इकट्ठे हो गये। उस समय देवताओं की और उनके

आभूषणों की प्रभा से आकाश की ऐसी शोभा हो रही थी मानों सैकड़ों सूर्य निकल रहे हों। सूसों (शिशुमार) सर्पों और चञ्चल मत्स्यों के झुण्ड के झुण्ड, जल के वेग से ऊपर को उछाले जाते थे। इनके उछलने से ऐसी शोभा हो रही थी मानों सैकड़ों बिजलियाँ चमचमा रही हों। जल के सफेद-सफेद फेन इधर-उधर, जगह-जगह, छितराकर फैल गये थे। उनकी ऐसी शोभा देख पड़ती थी जैसे हंसों के झुण्डों से युक्त शरत्काल के मेघों से भरे हुए आकाश की देख पड़ती है। वह जल कहीं ऊँचा होकर, कहीं टेढ़ा होकर, कहीं फैलकर और कहीं सिकुड़कर ठोकरें खाता, उछलता हुआ धीरे-धीरे चला जाता था। किसी स्थान में जल से ही जल की टक्कर हो जाती। फिर वह बारम्बार ऊपर को उछलकर पृथिवी पर गिर पड़ता था। इस प्रकार वह गंगाजी का जल, आकाश से शिव के मस्तक पर और वहाँ से भूमि पर आता हुआ अत्यन्त शोभा दे रहा था। वहाँ पर ऋषियों ने, गन्धर्वों ने और भूलोकवासी लोगों ने शिव की जटा से गिरे हुए उस पवित्र जल को छुआ। जो लोग शाप के कारण स्वर्ग से भूमि पर गिरे थे वे सब उस जल में स्नान कर, पापरहित हो, अपने-अपने लोक में चले गये। उस सुन्दर जल में स्नान करके लोग पाप-रहित हो गये। उस समय रथ पर सवार राजा भगीरथ आगे-आगे चले जाते थे और उनके पीछे-पीछे भगवती गंगा जा रही थीं। उसके पीछे देवता, महर्षिगण, दैत्य, दानव, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, बड़े-बड़े सर्प, अप्सराएँ और सब जलचर जन्तु अति प्रसन्न मन से चले जाते थे। जिस मार्ग से राजा जाते थे उसी मार्ग से गंगा की धारा भी बही चली जाती थी। चलते-चलते राजा वहाँ आ पहुँचे जहाँ महर्षि जह्नु यज्ञ कर रहे थे। वहाँ पर गंगा ने सब सामग्रीसहित यज्ञशाला को बहा दिया। तब तो गंगा का गर्व देख जह्नु ऋषि क्रुद्ध हो गये। वे गंगा का सब जल पी गये। जह्नु का ऐसा प्रभाव और पराक्रम देखकर देवता, गन्धर्व और ऋषि लोग चकित हुए। वे लोग उस महात्मा की स्तुति कर बोले कि आज से यह गंगा जह्नु की पुत्री हुई। तब जह्नु ने प्रसन्न होकर दोनों कानों से गंगा को निकाला। उस समय गंगा--जह्नु की पुत्री--"जाह्नवी" नाम से प्रसिद्ध हुई। फिर उसी तरह गंगा, भगीरथ के रथ के पीछे-पीछे, चल दी और सागर में जा पहुँची। उसके कार्य की सिद्धि के लिए वह रसातल में भी पहुँच गई। इस प्रकार महाराज भगीरथ बड़े यत्न से, गंगा को वहाँ ले गये जहाँ पितामहों की भस्म पड़ी थी। हे रामचन्द्र! गंगा ने अपने जल से उस भस्मराशि को बहा दिया। वे सब पाप से छूट कर, पवित्र हो, स्वर्ग-लोक को चले गये।

---

## चवालीसवाँ सर्ग

### भगीरथ की कुछ और कथा

इस प्रकार राजा भगीरथ गंगा को लिये पाताल में चले गये जहाँ कि वह भस्म थी। गंगा ने जब उस भस्म को बहा दिया तब सब लोक के स्वामी ब्रह्माजी राजा भगीरथ से बोले—हे नरश्रेष्ठ! तुमने इन सबको तार दिया। ये सब देवताओं के तुल्य स्वर्ग-लोक को गये। हे भगीरथ! जब तक इस सागर का जल संसार में रहेगा तब तक ये साठ हजार पितर स्वर्गवास करेंगे और यह गंगा तुम्हारी जेठी पुत्री होगी। तुम्हारे नाम पर इसका भी नाम "भागीरथी" होगा। इसके तीन नाम होंगे—गङ्गा, त्रिपथगा और भागीरथी।

हे राजन्! अब तुम यहाँ इस जल से अपने पितरों की जलक्रिया कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो। देखो, तुम्हारे पूर्वज बड़े यशस्वी और धर्मात्मा थे। उन्होंने बहुतेरे उपाय किये पर किसी का भी श्रम सफल नहीं हुआ। परन्तु तुमने, गंगा को लाकर, अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। अब तुम इस पवित्र जल में स्नान करो और पवित्र होकर पितामहों का जल से तर्पण करो। तुम्हारा मङ्गल हो। मैं जाता हूँ।

ब्रह्मा जब सत्यलोक को चले गये तब राजा भगीरथ, सगर के पुत्रों की जलक्रिया कर, पवित्र हो, अपने नगर में चले आये और राजकाज करने लगे।

हे रामचन्द्र! यह गंगा का विस्तार मैंने तुमसे वर्णन किया। यह गंगा की कथा धन, यश, पुत्र और स्वर्ग की देनेवाली है। ब्राह्मणों, क्षत्रियों और दूसरे वर्णों को जो यह कथा सुनाते हैं उनके पितर और देवता प्रसन्न होते हैं। गंगा की यह कथा आयु देनेवाली है। जो लोग इसको सुनते या पढ़ते हैं। वे संपूर्ण मनोरथों को पाते हैं। उनके सब पाप नष्ट हो जाते हैं और आयु, बल एवं कीर्त्ति की वृद्धि होती है।

---

## पैंतालीसवाँ सर्ग

### समुद्र-मथन

यह कथा सुनकर लक्ष्मण और रामचन्द्र को बड़ा अचरज हुआ। वे विश्वामित्र से बोले—हे ब्रह्मन्! यह गंगावतरण की पवित्र कथा और सागर का भरा जाना आपने खूब सुनाया। आपके मुँह से इस कथा को सुनते हुए हमें रात्रि क्षण के बराबर बीती। फिर श्रीरामचन्द्र प्रातःकाल उठकर नित्य-क्रिया से निश्चिन्त हुए और विश्वामित्र से बोले—हे महर्षि! रात्रि बीत गई; और कथा भी सुन ली। अब नदी के पार उतरना चाहिए। देखिए, इस नाव पर अच्छा बिछौना बिछाया गया है। आपको आया जानकर यह ऋषियों की नाव जल्द आ गई है। तब कौशिक ने सब ऋषियों को नाव पर चढ़ा दिया। दोनों भाइयों के साथ आप भी नाव पर चढ़कर पार उतर गये। तीर पर ऋषियों का सम्मान कर उन्होंने कुछ समय तक वहीं विश्राम किया। विशाला नामक नगरी को देख, दोनों भाइयों को ले, विश्वामित्र मुनि चले। तब रामचन्द्रजी हाथ जोड़कर बोले—हे महामुनि! कहिए, इस पुरी में कौन राज्य करता है? इस पर मुनि विशाला नगरी की पुरानी कथा कहने लगे।

हे राघव! इस देश में मैंने इन्द्र की जो कथा सुनी है वह सुनो। दिति और अदिति के पुत्र—अर्थात् दैत्य और देवता—बड़े वीर्य्यवान् और धर्मशील थे। पहिले, सत्ययुग में वे यह सोचने लगे कि किस उपाय से हम रोग, मृत्यु और दुःख से अलग हों। ऐसा विचार करते करते उनकी बुद्धि में यह विचार आया कि हम क्षीर समुद्र का मथन करें तो अमृतरस मिले। ऐसा निश्चय करके वे वासुकि नाग को तो मंथन की डोरी (नेती) और मंद्राचल को मंथनदण्ड (रही) बनाकर समुद्र को मथने लगे। हजार वर्ष होने पर, सर्प के मुख क्षण क्षण में विष उगलते थे। उसने दाँतों से शिलाओं को भी काटा। उससे अग्नि के समान हलाहल नाम महाविष उत्पन्न हुआ। वह सम्पूर्ण जगत् को भस्म करने लगा। तब देवता लोग भगवान् शंकर की शरण में जा "त्राहि-त्राहि" कहकर उनकी स्तुति करने लगे। देवता लोग स्तुति कर ही रहे थे कि वहाँ शङ्ख-चक्र धारण किये हुए भगवान् विष्णु प्रकट हुए। वे हँसकर

शिव से बोले—हे महादेव ! आप देवताओं के अगुआ हैं। इसलिए देवताओं के मथने से जो पहिले उत्पन्न हुआ है वह भी आप का है। अतएव आप इस विष-रूप पहली भेंट को ग्रहण कीजिए। यह कहकर विष्णु चले गये। शिवजी महाराज देवताओं को भयभीत देख और हरि का वचन सुनकर, उस विष को, अमृत की तरह, पीकर कैलास को चले गये।

देवता लोग फिर उसी प्रकार समुद्र को मथने लगे। जब मन्थनदण्ड—मन्दराचल—पाताल में धँसने लगा तब गन्धर्व और देवता लोग भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगे—हे प्रभु ! तुम सब प्राणियों की और विशेष करके देवताओं की गति हो। हे महाबाहो ! इस समय हमारी सहायता करो और इस पर्वत को उबारो। देवताओं की स्तुति सुनकर, भगवान् कच्छप का रूप धर कर समुद्र में जा पहुँचे। पीठ से पर्वत को और हाथ से पर्वत के आगे के सिरे को थामकर देवताओं के साथ खड़े हो आप भी समुद्र मथने लगे। तब, हजार वर्ष में, धन्वन्तरि नामक आयुर्वेदरूप पुरुष उत्पन्न हुआ। वह हाथ में दण्ड और कमण्डलु लिये था। फिर अप्सरायें निकलीं। इन साठ करोड़ अप्सराओं की असंख्य दासियाँ थीं। इन अप्सराओं को न तो देवताओं ने लिया और न दानवों ने। इसलिए वे सामान्य कहलाईं। फिर वरुण की कन्या वारुणी निकली। वह किसी पुरुष को ग्रहण किया चाहती थी। पर दिति के पुत्रों—दैत्यों—ने उसको नहीं लिया। इसलिए, सुरा को न लेने से, दैत्य तो 'असुर' कहलाये और उसको ग्रहण कर लेने से देवता 'सुर' नाम से प्रसिद्ध हुए। देवता लोग उस मदिरा को ले लेने से बड़े प्रसन्न हुए। तदनन्तर मथते-मथते उच्चैःश्रवा नामक एक उत्तम घोड़ा, कौस्तुभ नामक मणि और अमृत, ये पदार्थ निकले। हे रामचन्द्र ! अब अमृत के लिए बड़ी गड़बड़ी मची। अदिति के पुत्र दिति के पुत्रों से युद्ध करने लगे और दैत्य लोग राक्षसों से मिल गये। उस समय बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। बहुत से देवता और अनेक दैत्यों के मारे जाने पर भगवान् विष्णु ने मोहिनी माया फैलाकर अमृत का हरण किया। उस समय, युद्ध के अभिप्राय से, जो जो भगवान् विष्णु के सम्मुख गये वे सब पीसे गये। इस देवासुर-संग्राम में देवताओं ने दैत्यों को मारा। इस प्रकार इन्द्र दैत्यों को जीत कर, प्रसन्न हो, राज्य करने लगे।

---

## छियालीसवाँ सर्ग

### वायु की उत्पत्ति

अब पुत्रों के मारे जाने से दिति अत्यन्त दुःखित हुई। मरीच के पुत्र अपने पति कश्यप से वह बोली—भगवन् ! तुम्हारे बलवान् पुत्रों ने हमारे पुत्रों को मार डाला। इसलिए मैं बड़ी तपस्या के बल से ऐसा पुत्र चाहती हूँ जो इंद्र को मारे। मैं तपस्या करूँगी। आप मुझे ऐसा गर्भ दीजिए जो इंद्र को मार डाले। अपनी दुःखित पत्नी, दिति, की बात सुनकर कश्यप बोले—बहुत अच्छा, तू चिन्ता मत कर। तू ऐसे ही पुत्र को जनेगी परन्तु हजार वर्ष तक पवित्र रहना पड़ेगा। इंद्र के मारने की तो बात ही क्या है, तेरे त्रिलोकी को मारनेवाला पुत्र होगा। फिर हाथ से उसका मार्जन और आलिङ्गन किया। इसके बाद "स्वस्ति" कहकर कश्यप तपस्या के लिए चले गये। उनके जाने पर दिति बड़ी प्रसन्न

हुई। कुशप्लव नामक पूर्व देश के विशालाख्य तपोवन में जाकर वह अतिदारुण तपस्या करने लगी।

उसको तप करते देख इंद्र, बड़ी भक्ति से, उसकी सेवा करने लगा। अग्नि, कुश, काष्ठ, फल, मूल, जल और जिन जिन पदार्थों की समय समय पर आवश्यकता होती थी वे सब ला-लाकर वह उसको देने लगा। वह शरीर को दबाता, और पंखा आदि झलता था जिससे दिति के शरीर को सुख मिले और परिश्रम दूर हो जाय। हे रामचन्द्र! इस प्रकार तप करते करते जब हजार वर्ष में दस वर्ष कम रह गये तब दिति हर्षित होकर इंद्र से बोली—हे इंद्र! मुझे तपस्या करते दस कम हजार वर्ष बीते। सो दस वर्ष के बाद तू अपने भाई को देखेगा जिसको मैंने तेरे नाश के लिए चाहा था। वह तेरा सहायक होगा और उसके साथ तू त्रिलोकी का राज्य भोगेगा। वह ऐसा कहती ही थी कि दोपहर हो गया और उसे निद्रा ने आ घेरा। वह पैताने की ओर शिर करके लेट गई। उसको अपवित्र अवस्था में पाकर इंद्र हंसा और हर्षित हुआ। दिति के शरीर में घुसकर इंद्र ने वज्र से गर्भ के सात टुकड़े कर डाले। काटते समय गर्भ बड़े स्वर से रोने लगे। तब दिति जाग उठी। इंद्र ने "मत रो, मत रो" कह कर फिर भी एक एक के सात सात टुकड़े कर डाले। तब दिति बोली—"मत मारो, मत मारो।" माता का वचन सुनकर इन्द्र देह से निकल आया। वह हाथ जोड़कर बोला—हे देवी! तू सिरहाने की ओर पैर करके सोई थी, इसलिए मैंने, तुझे अपवित्र देख, अवसर पाकर अपने मारनेवाले के सात टुकड़े कर डाले। अब तू मुझे क्षमा कर।

---

## सैंतालीसवाँ सर्ग

### वायु की कथा और इक्ष्वाकु-वंश का वर्णन

अब गर्भ के कटने से परम दुःखित होकर दिति इन्द्र से विनयपूर्वक बोली—हे देवेन्द्र! मेरे अपराध से इस गर्भ के सात खण्ड किये गये। इसमें तुम्हारा कुछ भी अपराध नहीं। अब यह गर्भ तो बिगड़ गया परन्तु ऐसा करना चाहिए जिससे हमारा और तुम्हारा, दोनों का, हित हो। ये सात, उनचास वायुओं के स्थानपाल हों। दिव्य रूपवान् मेरे जो ये पुत्र हैं, सो ये वातस्कन्ध मारुत के नाम से प्रसिद्ध होकर आकाश में घूमें। उनमें से एक ब्रह्मलोक में रहे, दूसरा इन्द्रलोक में रहे, तीसरा दिव्य वायु नाम से विख्यात हो और शेष चार तुम्हारी आज्ञा से दिशाओं में घूमें। तुम्हारे ही रक्खे हुए "मारुत" नाम से ये प्रसिद्ध हों। माता का यह वचन सुन इन्द्र हाथ जोड़कर बोला—हे माता! जैसा तू चाहती है वैसा ही होगा। ये देवरूप तुम्हारे पुत्र आकाश में गमन करेंगे।

हे राघव! दोनों माँ-बेटे तपोवन में इस प्रकार निश्चय कर कृतार्थ हो, स्वर्ग को चले गये। मैंने ऐसा ही सुना है। हे रामचन्द्र! यह वही स्थान है जिसमें वे दोनों, माता और पुत्र, रहते थे। इन्द्र ने तप से सिद्ध माता की सेवा यहीं की थी। हे रघुनन्दन! इक्ष्वाकु के अलंबुषा से विशाल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। इस स्थान में उसने विशाला नामक पुरी बसाई थी। विशाल का पुत्र हेमचन्द्र हुआ, हेमचन्द्र का सुचन्द्र, सुचन्द्र का धूम्राश्व, उसका पुत्र सृञ्जय, सृञ्जय का सहदेव,

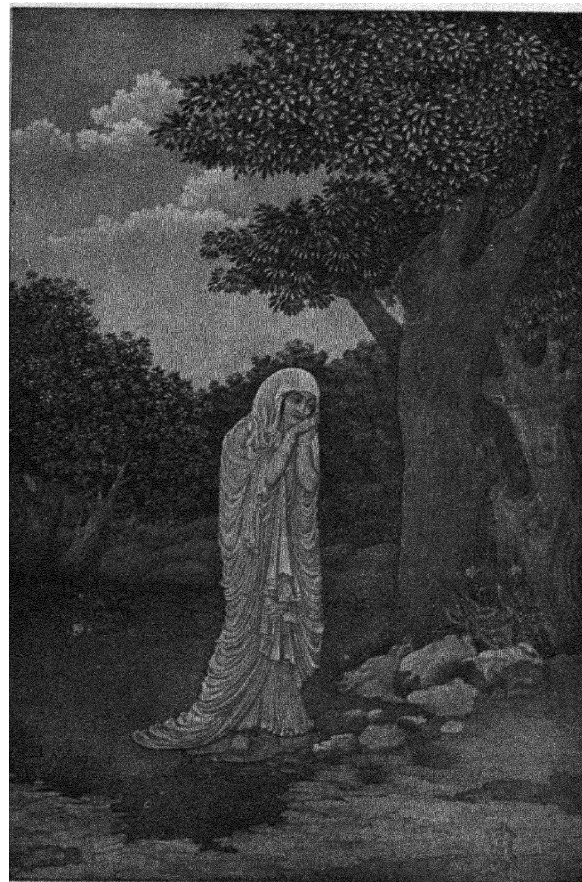

अभिशप्ता अहल्या [ पृष्ठ ४६

उसका कुशाश्व, कुशाश्व का पुत्र सोमदत्त और सोमदत्त का पुत्र ककुत्स्थ हुआ। अब, इस समय, ककुत्स्थ का पुत्र राजा सुमति इस विशाला पुरी में रहता है। इक्ष्वाकु के प्रसाद से विशाल के वंशवाले सभी राजा लोग दीर्घायु, महात्मा, वीर्यवान् और धार्मिक होते रहे हैं। हे रामचन्द्र! आज की रात हम यहीं सुख से बसेंगे। कल प्रातःकाल राजा जनक से भेंट करेंगे।

इस बीच में राजा सुमति विश्वामित्र के आने का समाचार पा, अपने उपाध्याय और भाई-बन्धुओं को साथ ले, उनसे आकर मिला। हाथ जोड़कर उसने कुशल पूछी। राजा ने कहा—हे मुनि! आज मैं धन्य और अनुग्रहीत हुआ; क्योंकि आप जैसे महात्मा ने मेरे देश में चरण रक्खे और उसको पवित्र किया।

---

## अड़तालीसवाँ सर्ग

### अहल्या की कथा

कुछ देर ठहरकर सुमति ने मुनि से बात-चीत करके पूछा—हे भगवन्! ये दोनों कुमार यहाँ किस तरह और किस लिए पैदल ही आये हैं। देवताओं के समान तो ये पराक्रमी हैं; गज और सिंह के समान इनकी चाल है और कमल के से नेत्र हैं; तलवार, तरकस और धनुष को धारण किये हुए हैं। रूप में ये अश्विनी-कुमार के तुल्य हैं। ऐसा जान पड़ता है मानों स्वर्ग से कोई देवता उतर पड़े हों। महाराज! ये किसके पुत्र हैं? ये अपनी शोभा से इस देश को ऐसा भूषित करते हैं, जैसे चन्द्र और सूर्य आकाश-मण्डल को। रूप और चेष्टा से तो ये हमें भाई भाई से जान पड़ते हैं। महाराज! ये दोनों महापुरुष किस लिए इस दुर्गम भूमि में आये हैं? मैं सुनना चाहता हूँ। कृपा कर आप कहिए।

राजा का वचन सुनकर विश्वामित्र ने दोनों भाइयों की कथा कह सुनाई। तब राजा ने प्रसन्न होकर उनकी खूब सेवा की। एक रात वहाँ बस कर वे लोग मिथिला को चले। मिथिला में पहुँचकर मुनियों ने उस पुरी को देखा। वे उसकी बड़ी बड़ाई करने लगे। रामचन्द्र ने मिथिला के उपवन में एक प्राचीन, निर्जन और रमणीक आश्रम देखकर मुनि से पूछा—भगवन्! यह खाली आश्रम किसका है? मुनि बोले—हे राम! मैं इस आश्रम की कथा कहता हूँ; सुनिए। पहले यह आश्रम महात्मा गौतम ऋषि का था। तब, देवता लोग भी इस आश्रम की पूजा करते थे। इस आश्रम में अहल्या के साथ वह मुनि तप करने लगे। उन्होंने बहुत काल तक तपस्या की। किसी समय इन्द्र ने आश्रम में मुनि को न देख, मुनि का वेष धारण कर, आश्रम में आ अहल्या से कहा—हे तपस्विनी! रति की इच्छा करनेवाले पुरुष ऋतुकाल की बाट नहीं जोहते। मैं तेरे साथ संग करना चाहता हूँ। हे रघुनाथ! उस दुष्टबुद्धि स्त्री ने मुनि का वेष बनानेवाले इन्द्र को पहचान कर भी रति के लोभ से उसकी बात को अङ्गीकार कर लिया। इन्द्र का मनोरथ उसने पूरा किया। फिर उसने इन्द्र से कहा—हे सुरश्रेष्ठ! यहाँ से जल्द चले जाओ और मुझको तथा अपने को गौतम से बचाओ। तब इन्द्र हँसकर बोला कि हे सुन्दरि! मैं प्रसन्न हुआ। अब जाता हूँ। ऐसा कह कर गौतम मुनि के भय से, ज्योंही वह उस कुटी से निकला त्योंही वहाँ आते हुए ऋषि दीख पड़े। उनको देव और दानव जीत

न सकते थे। वे तपोबल से युक्त थे, और तीर्थ के जल से उनकी देह भीगी हुई थी। अग्नि के तुल्य प्रकाशमान् गौतमजी हाथ में काष्ठ और कुश लिये हुए थे। ऐसे मुनि को देख अत्यन्त डरकर इन्द्र बड़ा दुःखी हुआ। मुनि ने देवराज को मुनिवेषधारी और दुराचारी देख क्रोध से कहा—रे दुष्ट! तूने मेरा रूप धर कर वह कर्म किया जो न करना चाहिए! इसलिए तू निष्फल (अर्थात् अण्डकोषरहित) हो जायगा। हे रामचन्द्र! गौतमजी के मुख से यह वचन निकलते ही इन्द्र के दोनों अण्डकोष कट कर गिर पड़े। फिर गौतम ऋषि ने अपनी स्त्री को भी शाप दिया कि तू इसी स्थान में हजारों वर्ष तक अनुताप करती हुई बास करेगी। तेरा भोजन केवल वायु होगा। तू किसी प्राणी को न देख पड़ेगी। जब दशरथ के पुत्र रामचन्द्र इस वन में आवेंगे तब तू लोभ और मोह से रहित हो उनका सत्कार करेगी और तभी इस दुष्ट कर्म्म के पाप से मुक्त हो, अपना पहला शरीर धारण कर, मेरे पास आवेगी। गौतम ऋषि ने इस दुष्टा स्त्री को इस प्रकार शाप दिया। फिर सिद्ध-चारणों से सेवित, रमणीय हिमाचल के शिखर पर जाकर वे तपस्या करने लगे।

---

## उनचासवाँ सर्ग

### अहल्या का तरना

इस प्रकार जब इन्द्र अंडकोषरहित हो गया, तब वह दुखित होकर सिद्ध, गन्धर्व और चारणों से कहने लगा कि देखो, मैंने गौतम ऋषि को क्रोध उत्पन्न करा उनकी तपस्या में विघ्न किया। इससे देवताओं का काम तो सिद्ध हो गया परंतु मैं निष्फल हो गया। देखो, मैंने गौतम से अहल्या को भी शाप दिलवाया। मैंने उनकी तपस्या हर ली, इसलिए आप लोग मुझे सफल (अंडकोषयुक्त) कीजिए। इंद्र का वचन सुनकर, अग्नि को आगे कर के, सब देवता पितृ-देवताओं के पास जाकर बोले कि इंद्र के अण्डकोष नष्ट कर दिये गये हैं। इसलिए इनको मेंढ़े के अंडकोष दीजिए। जो मनुष्य यज्ञ में अंडकोषरहित मेंढ़ा तुम्हारे लिए अपण करेंगे उनको तुम अक्षय और अनन्त फल देना।

अग्नि का यह वचन सुनकर पितृदेवों ने मेंढ़े का अंडकोष उखाड़ कर इन्द्र के लगा दिया। तब से, पितृदेवों के लिए बिना अंडकोष के मेंढ़े यज्ञ में दिये जाते हैं। उसी समय से इंद्र, गौतम के प्रभाव और तपोबल से, 'मेषांडकोष' प्रसिद्ध हुए। हे रामचन्द्र! महात्मा गौतम के आश्रम में आकर इस महाभागा अहल्या को तारो।

विश्वामित्र का वचन सुन उनके साथ रामचन्द्र आश्रम में गये। वहाँ उन्होंने उस तपस्विनी को देखा। वह तपस्या के तेज से प्रकाशित हो रही थी। उसे (शाप के कारण) सुर, असुर कोई भी नहीं देख सकता था। ब्रह्मा ने उसको बड़े प्रयत्न से रक्खा था। वह धुएँ से लिपटी हुई प्रदीप्त अग्नि की ज्वाला की तरह, और हिम से तथा कुछ मेघ से छिपी हुई पूर्ण चंद्र की प्रभा की तरह, और जल के बीच प्रकाशित सूर्य्य की प्रभा की तरह, देख पड़ती थी। क्योंकि वह गौतम के शाप से, जब तक रामचन्द्र का दर्शन न हो तब तक के लिए, छिप रही थी। उस वक्त उसके पाप दूर हुए और वह इन लोगों को देख पड़ी। तब राम और लक्ष्मण ने हर्ष से उसके चरणों को ग्रहण किया। उसने भी, गौतम के वचन को याद कर, राम के चरणों को छुआ और अतिथिसत्कार

अहल्योद्धार [पृष्ठ ५०

से इनकी पूजा की। उसकी पूजा को रामचन्द्र ने विधिपूर्वक स्वीकार किया। उस समय पुष्पों की वृष्टि हुई और देवताओं की दुंदुभि बजने लगी। गन्धर्व और अप्सरायें आनन्द में मगन हो गईं। देवता लोग अहल्या की स्तुति करने लगे। शाप से मुक्त होकर अहल्या गौतम ऋषि से जा मिली। अहल्या को पाकर गौतम मुनि भी सुखी हुए। विधिपूर्वक राम की पूजा कर वे तपस्या करने लगे। गौतम की पूजा को ग्रहण कर रामचन्द्र मिथिला को चले।

---

## पचासवाँ सर्ग

### मिथिला में पहुँचकर जनक से मिलना

जब विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को साथ ले, ईशान कोण की ओर चलकर, महाराज जनक की यज्ञशाला में पहुँचे तब रामचन्द्रजी मुनि से बोले कि जनक के यज्ञ की क्या ही अच्छी शोभा है। देखो, भिन्न भिन्न देशों के निवासी हजारों वेदपाठी ब्राह्मण यहाँ देख पड़ते हैं। अनेक ऋषियों के झुंड यहाँ विराजते हैं। हे ब्रह्मन्! हम लोगों के रहने के लिए ऐसा स्थान लीजिए जहाँ हम सुख से रहें। यह सुनकर महामुनि विश्वामित्र एकान्त में, एक जलयुक्त स्थान में जाकर ठहर गये।

विश्वामित्र के आने का समाचार पाकर राजा जनक अपने पुरोहित शतानन्द और अच्छे महात्मा ऋत्विजों के साथ आकर मुनि से नम्रतापूर्वक मिले। उन्होंने विधि से मुनि की पूजा की। पूजा को ग्रहण कर मुनि ने जनक से राज्य का कुशल और यज्ञ की निर्विघ्नता पूछी; शतानन्द आदि जो राजा के साथ आये थे उनसे भी कुशल-प्रश्न कर उन्होंने सब मुनियों से भेंट की। फिर राजा जनक हाथ जोड़ कर मुनि से बोले—महाराज! आप और अन्य मुनि लोग आसन पर बैठें। जनक की बात सुनकर विश्वामित्र मुनियों के साथ आसन पर बैठ गये। तब राजा जनक बोले कि हे महर्षि! आज देवताओं ने मेरे यज्ञ की समृद्धि सफल की। आज मैंने आपके दर्शन से यज्ञ का फल पा लिया। आज मैं धन्य और अनुगृहीत हुआ; क्योंकि मेरे यज्ञस्थान में मुनियों के साथ आकर आपने कृपा की। हे महर्षि! ऋत्विज लोग यज्ञदीक्षा के बारह दिन बतलाते हैं। उसके बाद अपना अपना भाग लेनेवाले देवताओं को आप देखेंगे। ऐसा कहकर, राजा हाथ जोड़कर मुनि से पूछने लगे—महाराज! ये दोनों कुमार कौन हैं? इनका पराक्रम देवताओं के तुल्य है। गज के समान इनकी चाल है। ये अच्छे वीर हैं। शार्दूल और वृषभ से इनकी समता हो सकती है। रूप में ये अश्विनी-कुमारों की भाँति हैं और युवावस्था में प्रवेश कर रहे हैं। ऐसा जान पड़ता है मानो साक्षात् देवलोक से कोई देवता धरती पर उतर आये हों। हे मुनिजी! ये अच्छे हथियार धारण करनेवाले कुमार किसके हैं और यहाँ पैदल क्यों आये हैं? महाराज जनक का यह वचन सुनकर मुनि बोले कि ये राजा दशरथ के पुत्र हैं।

फिर विश्वामित्र ने सिद्धाश्रम की कथा, राक्षसों का मारना, विशाला पुरी का दर्शन, अहल्या का तारना, गौतम से समागम—यह सब कह सुनाया और कहा कि ये हमारे साथ धनुष देखने की इच्छा से मिथिलापुरी में आये हैं।

---

## ५१वाँ सर्ग

### विश्वामित्र की कथा

विश्वामित्र के वचन सुनने और रामचन्द्र के दर्शन करने से गौतम ऋषि के ज्येष्ठ पुत्र शतानन्द को बड़ा आनन्द और आश्चर्य हुआ। वे विश्वामित्र से पूछने लगे—हे मुनिश्रेष्ठ! क्या रामचन्द्र को आपने मेरी तपस्विनी माता को दिखलाया? मेरी माता ने सब प्राणियों के पूजनीय रामचन्द्र का क्या फल मूल इत्यादि—वन के पदार्थों—से सत्कार किया! इन्द्र ने मेरी माता के विषय में जो दुराचार किया था वह प्राचीन वृत्तान्त आपने रामचन्द्र से कह दिया? रामचन्द्र के दर्शन के प्रभाव से मेरी माता अपने पति से जा मिली और मेरे पिता ने रामचन्द्र की पूजा की तथा उन्होंने मेरे पिता को प्रणाम किया? शतानन्द के ये प्रश्न सुनकर विश्वामित्र मुनि बोले—हे मुनिवर! जो कुछ करना था सो मैंने सब किया। भार्गव मुनि के साथ रेणुका जैसे मिली थी वैसे ही तुम्हारे पिता से तुम्हारी माता भी जा मिली। विश्वामित्र मुनि का वचन सुनकर शतानन्द रामचन्द्र से बोले—हे पुरुषोत्तम! आपका आना शुभ हो। आप जो विश्वामित्र मुनि के साथ आये यह बहुत ही आनन्द की बात है। ये ब्रह्मर्षि विश्वामित्र बड़े तपस्वी हैं। मैं इनको भली भाँति जानता हूँ। ये जगत् के परम हितकारी हैं। हे रामचन्द्र! संसार में आप धन्य हो जो कौशिक मुनि आपके रक्षक हैं। हे राघव! मैं विश्वामित्र का सब चरित आपसे वर्णन करता हूँ। आप सुनिए।

पहिले ये राजा थे। बहुत दिन तक ये धर्म से प्रजा का पालन करते रहे। प्रजापति के पुत्र कुश और कुश के कुशनाभ हुए। कुशनाभ के पुत्र गाधि और गाधि के पुत्र ही विश्वामित्र हैं। इन्होंने हजारों वर्ष तक पृथ्वी का पालन किया। किसी समय ये, विश्वामित्रजी, अक्षौहिणी, सेना लेकर नगरों और देशों की सैर करते करते नदी, पर्वत और ऋषियों के आश्रमों में घूमते घूमते वशिष्ठ के आश्रम में पहुँच गये। वह आश्रम तरह तरह के फल-फूलवाले वृक्षों और तरह तरह के बनैले जीवों से भरा हुआ था। उसमें अनेक सिद्ध, चारण, देव, गन्धर्व और किन्नर लोग रहते थे। वह आश्रम ब्राह्मण, ब्रह्मर्षि, सिद्ध और देवर्षि गणों से भरा हुआ था। वहाँ रहनेवाले तपस्वी केवल जल-पत्ते और वायु के ही सहारे जीते थे। वहाँ बड़े-बड़े जितेन्द्रिय ऋषि निवास करते थे। वहाँ, वे सदा तप और होम किया करते थे। इस प्रकार जप-तप में निरत बालखिल्य और वैखानस ऋषियों से युक्त उस आश्रम को विश्वामित्र ने देखा।

---

## ५२वाँ सर्ग

### वशिष्ठ मुनि के यहाँ विश्वामित्र का अतिथि-सत्कार

ऐसे आश्रम को देखकर विश्वामित्र अति प्रसन्न हुए। आश्रम में जाकर विश्वामित्र ने वसिष्ठ मुनि को नम्रतापूर्वक प्रणाम किया। वशिष्ठ मुनि ने "तुम्हारा स्वागत हो" कहकर बैठने के लिए राजा को आसन दिया। विश्वामित्र जब आसन पर बैठ गये तब वशिष्ठ ने फल-मूल लाकर भोजन के लिए आगे रक्खे। वशिष्ठ की पूजा को ग्रहण कर राजा ने तप,

अग्निहोत्र और शिष्यों के विषय में कुशल पूछा। वशिष्ठ मुनि ने सब का कुशल कहा। फिर वशिष्ठ मुनि बोले—हे राजन्! आप धर्म से प्रजाओं का पालन करते हैं न? आपके भृत्य लोग आपकी आज्ञा में तो रहते है? आपने सब शत्रुओं को जीत लिया है? आपकी सेना, कोश और मित्र तथा पुत्र-पौत्र कुशलपूर्वक तो हैं? यह सुनकर राजा विश्वामित्र ने सब का कुशल-मङ्गल कहा। फिर वे दोनों, बहुत देर तक, प्रेम से तरह तरह की बातें कहने लगे। अंत में वशिष्ठ मुनि हँसकर बोले—राजन्! मैं आपको और सेना को यथोचित भोज देना चाहता हूँ। आप उसको अङ्गीकार कीजिए; क्योंकि आप मेरे श्रेष्ठ अतिथि हैं। इसलिए आप विधि से पूजने योग्य हैं। इस बात को सुन विश्वामित्र बोले कि हे ऋषि! इस आदर-वचन ही से मेरा आदर सत्कार हो चुका। भगवन्! आपके आश्रम के फल-मूलों से, और विशेष कर आपके दर्शन से ही, मेरी पूजा हो गई। मैं अब आपको नमस्कार करता हूँ। अब मैं अपने स्थान को जाऊँगा। आप मेरे ऊपर कृपा बनाये रहिए। पर विश्वामित्र की बात ऋषि ने न मानी। न्योते को अङ्गीकार करने के लिए वे आग्रह करने लगे। तब विश्वामित्र ने कहा—बहुत अच्छा, मुझे वही करना चाहिए जिसमें आपकी प्रीति बनी रहे।

अब वशिष्ठ मुनि ने चितकबरी "शबला" नामक कामधेनु* से कहा—हे शबले! यहाँ आओ। मैं सेना के सहित इस राजर्षि विश्वामित्र की पहुनई करना चाहता हूँ। इसलिए तू, मेरे कहने से, उत्तम उत्तम भोजन से इनका सत्कार कर। जिसको जिस रस का पदार्थ चाहिए उसको वह सब तू दे। रस, अन्न, पान (पीने के), लेह्य (चाटने के), चोष्य (चूसने के) पदार्थ और अन्न का ढेर लगा दे।

---

# ५३वाँ सर्ग

## विश्वामित्र का पहुनई और कामधेनु का माँगना

हे रामचन्द्र! वशिष्ठ की आज्ञा पाते ही वह कामधेनु जिसको जो वस्तु दरकार थी उसको वह सब देने लगी। उस कामधेनु गौ ने अपने प्रभाव से वशिष्ठ के भोजन-मन्दिर में तरह तरह के भोजन-पदार्थों के ढेर के ढेर लगा दिये। उस भोजनशाला में उत्तम उज्ज्वल खीर, दाल, दही, दूध और तरह तरह की मिठाइयाँ मौजूद हो गईं। सभी चीजें ताजी गरमा-गरम थीं। तरह-तरह के भोजनों से विश्वामित्र और उनकी सारी सेना खूब तृप्त हो गई। जब सब भोजन कर चुके तब निपट-कर विश्वामित्र ने वशिष्ठ जी से कहा—महाराज! आपके सत्कार से हम बड़े प्रसन्न हुए। कृपा कर अब मेरी एक बात सुनिए। मैं चाहता हूँ कि आप मुझसे एक लाख गायें लेकर इस कामधेनु शबला को मुझे दे दीजिए। क्योंकि यह एक रत्न है और रत्न राजा ही के योग्य होते हैं। इसलिए, धर्म की रीति से भी, ऐसी गौ हमारे ही यहाँ होनी चाहिए। इसको मुझे दीजिए।

राजा विश्वामित्र की बात सुन मुनि ने कहा—राजन्! लाख गौ की तो बात ही क्या है, मैं इस गौ के बदले सौ करोड़ भी गायें नहीं लेना चाहता। यदि आप चाँदी का ढेर भी मुझे दें तो भी मैं इसे न दूँगा। जिस तरह

* "कामधेनु" गौ से जो वस्तु माँगी जाय उसे वह तुरन्त दे देती है। पुराणों मे कामधेनु का ऐसा ही प्रभाव लिखा है।

योगियों के पास से योगसिद्धि कभी अलग नहीं होती, इसी तरह यह भी मुझसे अलग नहीं हो सकती। इससे मेरे अनेक काम निकलते हैं। देव, ऋषि और पितरों की सेवा, अग्निहोत्र और तरह तरह के यज्ञ इसी की सहायता से होते हैं। राजन्! और मैं कहाँ तक कहूँ, मेरा तो सर्वस्व यही गौ है। इसलिए मैं इसे तो न दूँगा।

फिर विश्वामित्र ने ऋषि से कहा कि मैं आपको सोने के घंटे, सोने के गहनों और सोने के अंकुशवाले चौदह हजार हाथी; और चार-चार सुफेद घोड़ोंवाले, बड़े सुन्दर, सोने के आठ सौ रथ; और अच्छे अच्छे देशों में पैदा हुए, उम्दा नस्ल के, बड़े पराक्रमी ग्यारह हजार घोड़े और तरह तरह के रंगोंवाली बड़ी सुन्दर सुन्दर एक करोड़ गायें, और जितने रत्न सुवर्ण आप कहें वे सब दूँगा; परन्तु आप इसको तो मुझे दे ही दीजिए।

वशिष्ठजी ने जवाब दिया कि मेरा तो यही रत्न है; यही धन है; यही जीवन है। इसी से बहुत सी दक्षिणा-वाले मेरे यज्ञ पूरे होते हैं। इसलिए हे राजन्! बहुत कहने सुनने से क्या, मैं इस कामधेनु को कभी न दूँगा।

---

## ५४वाँ सर्ग

### गौ के लिए युद्ध

जब विश्वामित्र ने देखा कि वशिष्ठ इस तरह, माँगने से, गौ नहीं देंगे तब वे जबरदस्ती गौ को ले चले। चलती चलती कामधेनु मन में चिन्ता करने लगी कि महात्मा वशिष्ठजी ने मुझे क्यों त्याग दिया! मैंने तो उनका कुछ अपराध भी नहीं किया था। फिर मुझे निरपराध को वे क्यों छोड़ते हैं! इस तरह मन में सोच सोचकर, वह गौ उन आदमियों से छुड़ा कर भागी हुई वशिष्ठजी के चरणों में जा गिरी। बड़े जोर से रोती चिल्लाती हुई वह बोली—भगवन्, क्या आपने मुझे त्याग दिया, जो राजा के लोग मुझे तुम्हारे पास से लिये जाते हैं? यह सुन कर ब्रह्मर्षि बोले—हे शबले! न मैं तुझे छोड़ता हूँ और न तूने मेरा कुछ अपराध किया है। परन्तु यह राजा मुझसे अति बलवान् है इसलिए तुझे लिये जाता है। देख, राजा के बराबर मेरे पास सेना नहीं है। एक तो यह राजा है, दूसरे क्षत्रिय, तीसरे पृथ्वी का स्वामी है। इसके पास हाथी घोड़ों और रथों से पूर्ण यह अक्षौहिणी सेना है। इसलिए यह मुझसे बहुत बलवान् है।

यह सुन शबला ने बड़ी नम्रता से कहा—हे ब्रह्मर्षि! क्षत्रियों का बल कुछ भी नहीं, अति बली ब्राह्मण ही हैं, क्योंकि ब्राह्मणों का बल दिव्य बल है, इसलिए वह क्षत्रियों के बल से बहुत अधिक है। महाराज! आप में अतुल बल और अत्यन्त दुःसह तेज है। इसलिए विश्वामित्र आपसे अधिक बलवान् नहीं हो सकते। इस समय आप तो ब्रह्मबल से पूर्ण हैं। मुझको आज्ञा हो तो मैं इस दुष्टात्मा के अहंकार और बल का नाश कर डालूँ।

कामधेनु की बात सुन ऋषि ने कहा—बहुत अच्छा; तू ऐसी सेना पैदा कर जो शत्रु की सेना का नाश करे। ऋषि की आज्ञा पाते ही उस गाय ने "हुंभा" शब्द कर सैकड़ों पल्हव—एक प्रकार के म्लेच्छ—उत्पन्न किये। विश्वामित्र के देखते ही देखते जब वे सब सेना का नाश करने लगे तब विश्वामित्र ने क्रुद्ध होकर तरह तरह के शस्त्रों से पल्हवों को मार डाला। उनको

नष्ट हुए देख धेनु ने शक और यवन—दो जाति के—घोर म्लेच्छों को उत्पन्न किया। ये महावीर, बड़े प्रभावशाली थे। इनका रंग सुवर्ण और केसर के सदृश पीला था। ये उसी रंग के वस्त्रों को पहिने और पटा को हाथ में लिये थे। प्रदीप्त अग्नि के तुल्य ये सब विश्वामित्र की सेना पर जा टूटे। इन्होंने उसको भस्म कर दिया। तब तो बड़े तेजस्वी विश्वामित्र ने अस्त्रों को छोड़ा जिससे यवन, काम्बोज और बर्बर व्याकुल हो गये।

——

## ५५वाँ सर्ग

### विश्वामित्र और वशिष्ठ का युद्ध

अब उन सब को अस्त्रों से पीड़ित देख, वशिष्ठ ने आज्ञा दी कि हे कामधेनु, तू योगबल से सेना को फिर उत्पन्न कर। तब उसने हुंकार से काम्बोजों को रचा। वे सूर्य के सदृश थे। इसके बाद गौ के "अयन" से बर्बर पैदा हुए, जो हाथों में शस्त्रों को लिये हुए थे। योनिदेश से यवन, गुद-स्थान से शक और रोम के छिद्रों से हारीत और किरात, ये दो जाति के म्लेच्छ निकले। इन्होंने क्षण भर में विश्वामित्र के दल के पैदलों, हाथियों, घोड़ो और रथों को मार गिराया। इस प्रकार, अपनी सेना को मरते देखकर विश्वामित्र के सौ पुत्र तरह तरह के शस्त्र लेकर, क्रुद्ध हो, वशिष्ठ जी के ऊपर दौड़े। उनको आते देखकर महर्षि वशिष्ठ ने ऐसा "हुंकार" शब्द किया कि वे सब भस्म हो गये। विश्वामित्र के पास जो घोड़े, रथ और पैदल थे वे भी सब उन्हीं के साथ जल मरे।

जब विश्वामित्र ने देखा कि मेरी सारी सेना नष्ट हो गई और पुत्र भी मारे गये तब तो वे अति लज्जित हो चिन्ता करने लगे। वेगरहित समुद्र, दाँत तोड़े हुए सर्प और राहुग्रस्त सूर्य के समान वे तेजहीन हो गये। बिना पंखों के पक्षी की तरह दीन और उत्साहहीन होकर वे अति दुःखित हुए। फिर कुछ काल में विश्वामित्र अपने एक पुत्र को राज का भार सौंपकर आप वन में जा हिमाचल पर्वत के पास (जहाँ किन्नर और नाग रहते थे वहाँ) शिव को प्रसन्न करने के लिए तप करने लगे। कुछ काल के बाद वरदाता भगवान् शिव विश्वामित्र के सामने आकर बोले—राजन्! तुम किस लिए तप करते हो और क्या चाहते हो? शिव का वचन सुन, विश्वामित्र प्रणाम कर बोले—हे महादेव! जो आप प्रसन्न हैं तो अंग, उपांग, उपनिषद् और रहस्य सब विषयों से संयुक्त धनुर्वेद मुझे दीजिए। जो अस्त्र देव, दानव, महर्षि, गन्धर्व, यक्ष और राक्षसों में प्रसिद्ध हैं वे सब मेरे पास हो जायँ। देवदेव! आपके प्रसाद से यह मेरी इष्टसिद्धि हो। इस पर भगवान् शिव "एवमस्तु" (ऐसे ही हो) कहकर चले गये।

इधर अस्त्र पाकर विश्वामित्र बड़े गर्व में आ गये। पराक्रम में वे ऐसे बढ़े कि जैसे पर्वकाल में समुद्र बढ़ता है। उन्होंने अपने मन में समझा कि अब वशिष्ठ को मार लिया है। विश्वामित्र अपने मन में यह ठानकर वशिष्ठ के आश्रम में पहुँचे और अस्त्रों को छोड़ने लगे। उस समय ऋषि का तपोवन अस्त्र के तेज से भस्म होने लगा। आश्रमवासी सैकड़ों मुनि लोग, वशिष्ठ के शिष्य और वहाँ के सहस्रों मृग, पक्षी—सब भय से इधर उधर भाग चले। उस समय थोड़ी देर के लिए ऋषि का आश्रम शून्य, शब्दरहित और ऊजड़ हो गया। वशिष्ठ मुनि बराबर पुकारते जाते थे कि मत डरो, मत डरो; मैं इस विश्वामित्र को अभी ऐसे मारे

डालता हूँ, जैसे सूर्य कुहिरे को जला देता है। परन्तु उस समय इनकी बात कोई न सुनता था। केवल भागने में ही लोग लग रहे थे। तब वशिष्ठ ने क्रोध कर विश्वामित्र से कहा—हे कौशिक! तू ने मेरे बड़े पुराने इस आश्रम को नष्ट कर दिया, इसलिए तू बड़ा दुराचारी और मूर्ख है। देख, मैं अभी तुझे मारता हूँ। उन्होंने बड़ा क्रोध कर हाथ से झटपट, दूसरे यमदण्ड के सदृश, दण्ड उठाया। उस समय वशिष्ठ ऋषि क्रोध में महाप्रलय के अग्नि के समान देख पड़ते थे।

---

## ५६वाँ सर्ग

### युद्ध का वर्णन

विश्वामित्र ने ऐसा कठोर वचन सुनकर धनुष पर आग्नेयास्त्र* चढ़ाया और वशिष्ठ से 'खड़ा रह' 'खड़ा रह' कहा। तब वशिष्ठजी क्रोध से, कालदण्ड के समान, उस ब्रह्मदण्ड को उठाकर बोले कि अरे क्षत्रियाधम! मैं खड़ा हूँ। तू मुझे अपना बल दिखा। देख, मैं अभी तेरे अस्त्र और बल को नष्ट किये देता हूँ। अरे क्षत्रियकुलांगार! कहाँ तेरा क्षत्रियबल और कहाँ मेरा दिव्य ब्रह्मबल! वशिष्ठ मुनि के ऐसा कहते ही विश्वामित्र ने आग्नेयास्त्र मार ही तो दिया पर ब्रह्मदण्ड से वह उसी समय ऐसा शान्त हो गया जैसे जल से अग्नि का वेग नष्ट हो जाता है। फिर विश्वामित्र ने क्रुद्ध हो वारुण, रौद्र, ऐन्द्र, पाशुपत, ऐषीक, मानव, मोहन, गान्धर्व, स्वापन, जृम्भण, मोहन, सन्तापन, विलापन, शोषण, दारण, वज्र, ब्रह्मपाश, कालपाश, वरुणपाश, पिनाकास्त्र, शुष्कासनि, आर्द्राशनि, दण्डास्त्र, पैशाचास्त्र, क्रौञ्चास्त्र, धर्म्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र, वायव्यास्त्र, मथनास्त्र, हयशिरोस्त्र, दो प्रकार की शक्तियाँ, कंकाल, मुसल, वैद्याधरास्त्र, कालास्त्र, त्रिशूल, कपाल और कङ्कणास्त्र; इन सब अस्त्रों को ऋषि पर चलाया। परन्तु ब्रह्मा के पुत्र वशिष्ठ उन सभों को अपने दण्ड से शान्त करते गये। यह देखकर लोगों ने बड़ा आश्चर्य्य माना। विश्वामित्र ने देखा कि जिन जिन अस्त्रों को मैंने फेंका उनसे कुछ भी न हुआ—सब शान्त हो गये। इससे उन्होंने अब ब्रह्मास्त्र उठाया। उस समय सब देवता, ऋषि, गन्धर्व और नाग घबड़ा उठे। त्रिलोकी में बड़ा भय छा गया। परन्तु वशिष्ठ मुनि उस ब्रह्मास्त्र को भी ब्रह्मदण्ड से ही भक्षण कर गये। ब्रह्मास्त्र को ग्रास करते हुए वशिष्ठ का ऐसा भयंकर रूप हो गया कि तीनों लोक मूर्च्छित होने लगे। उनके रोमों के छिद्रों में से अग्नि की ऐसी चिनगारियाँ निकलने लगीं जैसे धूम से लिपटी हुई ज्वाला से चिनगारियाँ उचटती हैं। वशिष्ठ के हाथ का वह ब्रह्मदण्ड दूसरे यमदण्ड के तुल्य था। वह बिना धूएँ की कालाग्नि के समान बलने लगा। उस समय मुनि लोग वशिष्ठ की स्तुति कर कहने लगे—हे ब्रह्मन्! आप का बल अमोघ है। तेज को आप तेज ही से धारण करिए। आपने इस महाबली विश्वामित्र के बल का गर्व नष्ट कर दिया। इसलिए आपका बल अमोघ है। आप महाबली हैं। परन्तु अब ऐसा कीजिए जिससे लोक में शांति हो।

इस प्रकार ऋषियों के कहने से वशिष्ठ मुनि क्षमा कर शांत हो गये। विश्वामित्र जब सब तरह से निर्बल और पराजित हो गये तब ऊँची साँस लेकर बोले कि क्षत्रिय के बल को धिक्कार है! ब्रह्मतेज ही का बल

* जो अग्नि के समान जाकर शत्रु को भस्म कर दे वह आग्नेयास्त्र = अग्नि का अस्त्र है।

महाबल है। देखो, एक ही ब्रह्मदण्ड ने मेरे सब अस्त्रों को नष्ट कर दिया! इसलिए मैं भी इंद्रियों और मन को जीतकर ब्राह्मण होने के लिए कड़ी तपस्या करूँगा।

---

## ५७वाँ सर्ग

### ब्रह्मर्षि बनने की इच्छा से विश्वामित्र की तपस्या

इस प्रकार महाराजा विश्वामित्र उस हार से बड़े दुःखित हुए। बारम्बार ऊँची साँस लेकर, अपनी स्त्री के साथ, दक्षिण दिशा में जाकर वे घोर तप करने लगे। इन्द्रियों को अपने अधीन करके वे तपश्चर्या करने लगे। फल-मूल उनका आहार था। कुछ दिन बाद तप करते करते विश्वामित्र के हविष्यन्द, मधुष्यन्द, दृढ़नेत्र और महारथ ये चार पुत्र पैदा हुए। ये सत्यवादी और धर्म्मात्मा थे। फिर हजार वर्ष बीतने पर ब्रह्मा आये। उन्होंने विश्वामित्र से कहा—हे कुशिकनन्दन! तुमने तपस्या से राजर्षियों के लोकों को जीत लिया। इसलिए, इस तपोबल से, तुम राजर्षि हुए। ऐसा कहकर भगवान् ब्रह्मा तो देवताओं के साथ अपने लोक को चले गये और विश्वामित्र इस वर से लज्जित और दुःखित हुए। वे क्रोध कर बोले—देखो मैंने तो बड़ी तपस्या की, परन्तु देवताओं और ऋषियों ने मुझे "राजर्षि" ही कहा। सो इसको मैं तप का फल नहीं मानता। मन में यह निश्चय करके विश्वामित्र सावधान होकर फिर तपस्या करने लगे।

इक्ष्वाकुवंशी राजा त्रिशंकु सत्यवादी और जितेन्द्रिय थे। इसी बीच में उन्होंने वशिष्ठ मुनि को बुलाकर कहा—महाराज! मैं इसी शरीर से स्वर्ग जाना चाहता हूँ। इस पर वशिष्ठ मुनि बोले कि यह तो असम्भव है। वशिष्ठ के मना करने पर राजा दक्षिण दिशा में गये। वशिष्ठ के पुत्र वहाँ बहुत दिन से तपस्या कर रहे थे। वहाँ जाकर तप में लौलीन उन सौ गुरुपुत्रों को राजा ने देखा। कुछ लज्जा से नीचे को सिर कर और प्रणाम कर राजा हाथ जोड़कर बोला—हे गुरुपुत्रो! आप शरणागत की रक्षा करनेवाले हैं इसलिए मैं आपकी शरण में आया हूँ। मैं यज्ञ करना चाहता था परन्तु महात्मा वशिष्ठ ने मुझे रोक दिया। अब आप लोग मुझे सम्मति दीजिए। मैं आप लोगों को प्रसन्न करके, हाथ जोड़ कर, यह चाहता हूँ कि आप लोग मेरा यज्ञ करवा दीजिए। ताकि मैं इसी शरीर से स्वर्ग-लोक को जाऊँ। हे तपोधनो! गुरु वशिष्ठ ने मुझे मना कर दिया है इसलिए मैं गुरुपुत्रों के सिवा और किसी को ऐसा नहीं देखता जिसकी शरण जाऊँ। क्योंकि सभी इक्ष्वाकुवंशवाले राजाओं की परमगति पुरोहित ही हैं। अब, पुरोहित के बाद, मेरे देवरूप आप ही हैं।

---

## ५८वाँ सर्ग

### त्रिशंकु को शाप मिलना और विश्वामित्र के पास जाना

त्रिशंकु की बात सुनकर वशिष्ठ के सौ पुत्र क्रोध करके बोले—हे दुर्बुद्धि! देख, हमारे सत्यवादी पिता ने तुझे जिस बात को मना किया उसका

उल्लंघन कर तू दूसरे के पास क्यों आया ? सभी इक्ष्वाकुवंशवालों के पुरोहित वशिष्ठजी ही परमगति हैं। वे ही तुम्हारे सब के रक्षक हैं। उनके वचनों का उल्लङ्घन करना असम्भव है। जब भगवान् वशिष्ठ ने "असम्भव" कह दिया तब हम लोग किसी प्रकार से उस यज्ञ को नहीं करा सकते। हे नरश्रेष्ठ! तुम मूर्ख मत बनो। अपने नगर को जाओ। जब भगवान् वशिष्ठ ने मना कर दिया तब हम उनका अनादर नहीं कर सकते।

इस प्रकार क्रोधयुक्त वचन सुन राजा ने फिर कहा—अच्छा महाराज! भगवान् वशिष्ठ ऋषि ने भी मना किया और उनके पुत्र आप लोगों ने भी स्वीकार न किया। इसलिए अब हम तीसरे के पास जायँगे। आप नहीं कराते तो न कराइए। राजा का यह अनादर भरा वचन सुनकर ऋषिपुत्रों ने कहा कि "तू चाण्डाल हो जायगा।" फिर वे अपने आश्रमों में चले गये।

रात बीतने पर राजा चाण्डाल हो गया। उसका शरीर नीला पड़ गया। वस्त्र भी नीले हो गये और शरीर में रुखाई आ गई। शिखा झड़ गई। चिता की भस्म देह में लिपट गई। उसी स्थान की माला भी उसके गले में देख पड़ी। देह के सब आभूषण लोहे के हो गये। राजा को इस प्रकार चाण्डालरूप में देख मन्त्री लोग, पुरवासी जन और राजा के सब सेवक भाग गये। हे रामचन्द्र! तब अकेला राजा बहुत दुःखित हुआ। वह मन में धीरज धरकर विश्वामित्र के पास आया। इस लोक से और परलोक से भी भ्रष्ट हुआ त्रिशंकु राजा को चाण्डालरूप में देखकर विश्वामित्र को बड़ी दया आई। वे बोले—हे महाबल राजपुत्र! मेरे पास तुम किस लिए आये हो? मैं जानता हूँ कि तुम अयोध्या के राजा हो और इस समय शाप से चाण्डाल हो गये हो। विश्वामित्र की बात सुन राजा हाथ जोड़ कर बोला—महाराज! देखिए गुरु ने और गुरुपुत्रों ने मेरा उलटा किया, अर्थात् मैं तो चाहता था कि स्वर्ग को सदेह जाऊँ, पर उससे बिलकुल उलटा फल दिया। हे मुनि! मैंने जो सौ यज्ञ किये हैं उनका फल भी मुझे नहीं मिलता। मैं विपत्तियों में भी कभी झूठ नहीं बोला और न बोलूँगा। मैंने अनेक यज्ञ किये, प्रजाओं को धर्म से पाला और अपने शील तथा आचरण से महात्मा गुरु लोगों को प्रसन्न किया। फिर जब मैं इस प्रकार के यज्ञ की इच्छा करने लगा तो मेरे गुरुओं ने रुष्ट हो मेरा तिरस्कार कर दिया। अतएव हे मुने! भाग्य ही मुख्य है और पुरुषार्थ निरर्थक है। क्योंकि भाग्य ही सबको अपने वश में कर लेता है। इसलिए वही सबसे ऊपर है। हे कृपानिधे! मैं बड़ा दुःखी हूँ। आप मेरे ऊपर कृपा कीजिए। क्योंकि अब मैं दूसरे के पास न जाऊँगा और न कोई दूसरा मुझे इस योग्य देख पड़ता है। इसलिए आप अपने सामर्थ्य से मेरे दौर्भाग्य को दूर कीजिए।

---

## ५९वाँ सर्ग

### वशिष्ठ के पुत्रों को शाप

राजा का वचन सुनकर विश्वामित्र मधुर वाणी से बोले—हे राजन्! मैं तुझे जानता हूँ कि तू धर्म्मशील है; तू मत डर। मैं तुझे शरण दूँगा। यज्ञ कराने के लिए मैं अच्छे अच्छे पवित्र महर्षियों को न्यौता देकर बुलवाता हूँ। अब तू यज्ञ करना और गुरु के शाप से जो तेरा यह रूप हो गया है सो तू इसी रूप

से स्वर्ग को जायगा। जब कि तू शरणागत-वत्सल कौशिक मुनि के शरण आया तब तो स्वर्ग की प्राप्ति हाथ में ही आई समझो। फिर मुनि ने अपने परम धार्मिक पुत्रों को यज्ञ की तैयारी के लिए आज्ञा दी और सब शिष्यों को बुलाकर कहा कि मेरी आज्ञा से तुम सब ऋषियों को और वशिष्ठ के पुत्रों को भी बुला लाओ। इनमें से यदि कोई न्यौते का अनादर करे तो मुझसे सब हाल कहना। गुरु की आज्ञा से शिष्य लोग आश्रमों में जाकर सबको न्यौता देने लगे। अब देश देश से ब्रह्मवादी ऋषि लोग आने लगे।

कुछ काल बाद वे शिष्य लोग मुनि के पास आकर बोले—महाराज! सब लोगों को न्यौता दिया और सभों ने स्वीकार कर लिया। सब लोग धीरे धीरे चले आ रहे हैं। परन्तु महोदय नामक ऋषि ने और वशिष्ठ के पुत्रों ने न्यौता को स्वीकार नहीं किया और न वे यज्ञ ही से प्रसन्न हैं। उन्होंने जो कठोर वचन कहे सो सुनिए। उन्होंने कहा कि जिस यज्ञ में याजक क्षत्रिय और यजमान चाण्डाल है, उसमें देवर्षि लोग किस प्रकार से हवि ग्रहण करेंगे; और जो महात्मा ब्राह्मण विश्वामित्र के वश में हैं, वे उस यज्ञ में चाण्डाल का भोजन करके स्वर्ग को किस प्रकार जायँगे। महाराज! उन लोगों ने लाल लाल आँखें करके बातें कहीं हैं। शिष्यों की बातें सुनकर विश्वामित्र क्रोध से लाल आँखें करके बोले—देखो, मैं ऐसी उग्र तपस्या कर रहा हूँ फिर भी वे मेरा इस तरह तिरस्कार करते हैं! इसलिए वे दुष्टात्मा सब के सब भस्म हो जायँगे। इसमें कुछ सन्देह नहीं। वे आज ही कालपास से बँधकर यमपुरी में पहुँच जायँगे और सात सौ जन्म तक मृतपा नामक चाण्डाल योनि में पैदा होंगे। वहाँ केवल कुत्ते का मांस उन्हें खाने को मिलेगा और मुष्टिक उनका नाम होगा। वे निर्दय, घृणित और कुरूप होकर इधर उधर घूमेंगे। और उस दुष्टबुद्धि महोदय ने मुझे दोष लगाया, इसलिए वह भी सब लोगों से दूषित होकर निषाद योनि पावेगा और हिंसक तथा निर्दय हो बहुत काल तक मेरे क्रोध से दुर्गति भोगेगा। इस प्रकार ऋषि-मण्डली में कहकर विश्वामित्र चुप हो गये।

---

## ६०वाँ सर्ग

### त्रिशंकु का यज्ञ और सदेह स्वर्ग में जाना

विश्वामित्र ने योगबल से देखा कि महोदय और वशिष्ठ के सौ पुत्र मेरे शाप से मारे गये। ऐसा जानकर वे ऋषियों से फिर बोले—हे ऋषि लोगो! यह इक्ष्वाकुवंशी त्रिशंकु राजा है। यह धार्मिक और दानी मेरे शरण आया है। यह इसी शरीर से स्वर्ग को जाना चाहता है। इसलिए आप लोग मेरे साथ यज्ञ कीजिए। विश्वामित्र की बात सुनकर धर्म्म के जाननेवाले सब ऋषि लोग मन में कहने लगे कि यह कौशिक मुनि बड़े क्रोधी और साक्षात् अग्नि के तुल्य हैं। इसलिए जो यह कहते हैं वह अवश्य करना चाहिए; नहीं तो ये क्रोध से शाप दे देंगे। इसलिए ऐसा यज्ञ करो जिससे यह त्रिशंकु, विश्वामित्र के तेज से, स्वर्ग में सदेह पहुँच जाय। ऐसा कहकर वे ऋषि यज्ञ का आरम्भ करने लगे। उस यज्ञ में विश्वामित्र याजक हुए और ऋत्विक् लोग, जो मन्त्रों में पण्डित थे, मन्त्रों से सब काम यथाविधि करने लगे। फिर जब यज्ञ-भाग लेने के लिए विश्वामित्र ने देवताओं को बुलाया तो वे न आये। इससे विश्वामित्र क्रोध करके, स्रुवा उठा कर, राजा

त्रिशंकु से बोले—हे नरेश्वर ! तू मेरी तपस्या का पराक्रम देख। मैं अपने पराक्रम से तुझे स्वर्ग में पहुँचाता हूँ। यद्यपि स्वर्ग में सदेह जाना सहज नहीं तथापि मेरी तपस्या का जो कुछ फल हो उसके तेज से तू स्वर्ग को जा। तू शरीर सहित स्वर्ग चला जा। विश्वामित्र के यह कहते ही, मुनि लोगों के देखते देखते, राजा स्वर्ग को चला और वहाँ पहुँच गया।

त्रिशंकु को स्वर्ग में आते देखकर देवताओं के राजा इन्द्र ने कहा—"हे त्रिशंकु ! तू पृथ्वी ही पर जा। तू स्वर्ग में रहने योग्य नहीं। क्योंकि तुझे गुरु का शाप है। इसलिए तू नीचे को सिर कर भूमि पर गिर।" ऐसा कहते ही राजा गिरने लगा और "त्राहि त्राहि" कहकर विश्वामित्र को पुकारने लगा। विश्वामित्र ने ऊपर को आँख उठाकर देखा तो नीचे शिर और ऊपर को पैर किये गिरता हुआ त्रिशंकु दिखाई दिया। उससे ऋषि ने कहा—"तिष्ठ तिष्ठ" (ठहर ठहर)। ऐसा कहते ही राजा वहीं ठहर गया और विश्वामित्र ने वहीं, दक्षिण दिशा में, नये सप्तर्षिमण्डल की और नये ही तारागणों की रचना कर दी।

इस प्रकार से नक्षत्रमण्डल को बनाकर मुनि ने विचारा कि इन्द्र भी दूसरा बनाऊँ अथवा बिना इन्द्र ही का लोक रहे। क्रोध से उन्होंने दूसरे देवताओं को भी बनाना प्रारम्भ किया। तब तो देवता, दैत्य और ऋषि सब घबड़ाये और विश्वामित्र के पास आकर विनयपूर्वक बोले—हे महाभाग ! यह राजा गुरु के शाप से युक्त है इसलिए सशरीर स्वर्ग में जाने के योग्य नहीं। उनकी बात सुनकर विश्वामित्र बोले—हे देवताओ ! मैंने इस राजा को स्वर्ग में सदेह पहुँचाने की प्रतिज्ञा की है इसलिए मैं अन्यथा नहीं कर सकता। इस राजा के लिए सर्वकाल में स्वर्ग बना रहे और मेरे बनाये ये ध्रुव सहित नक्षत्र भी, और जब तक ये भूमि आदि लोक मौजूद रहेंगे तब तक ये सब, जो मेरे बनाये हैं, स्थिर रहें। मुनि की बात सुन देवता लोग बोले कि ऐसा ही होगा। आपके बनाये हुए ये तारागण इन पूर्व तारागणों के मार्ग से बाहर और उन्हीं में प्रकाशमान होकर स्थिर रहेंगे। अधोमुख यह त्रिशंकु राजा भी अमर के तुल्य सुख भोगता हुआ स्थिर रहेगा। ये सब तारागण इस राजा के वैसे ही अनुगामी होंगे जैसे स्वर्गगामी पुरुष के होते हैं।

इस प्रकार देवता लोग मुनि से बातचीत कर और उनकी स्तुति कर चुप हो गये। विश्वामित्र ने भी उनकी बात मान ली। फिर उस यज्ञ में जो देवता लोग और ऋषि लोग आये थे वे यज्ञ को यथाविधि समाप्त कर अपने अपने स्थान को चले गये।

---

## ६१वाँ सर्ग

### शुनःशेफ की कथा

हे रामचन्द्र ! उन महातेजस्वी ऋषि लोगों को जाते देख विश्वामित्र वहाँ के वनवासियों से बोले कि इस दक्षिण दिशा में तो मेरी तपस्या में यह विघ्न हुआ। इसलिए अब मैं पश्चिम दिशा में, पुष्कर तीर्थ पर जाकर सुख से तप करूँगा। वहाँ, पश्चिम में, बड़े-बड़े तपोवन हैं। वहाँ पहुँचकर विश्वामित्र फल मूल का आहार करके बड़ी कठिन तपस्या करने लगे।

उन्हीं दिनों अयोध्या के अम्बरीष राजा ने यज्ञ करना आरम्भ किया। पर उस राजा के यज्ञ के पशु को इन्द्र हर ले गया। तब पुरोहित ने कहा—राजन् !

आप ही के दोष से पशु नष्ट हो गया; क्योंकि जो न्याय से प्रजा की रक्षा नहीं करते उनको तरह-तरह के विघ्न होते हैं। इसलिए जब तक कर्म्म समाप्त नहीं हुआ है तब तक या तो आप पशु को खोजकर ले आइए या उसके बदले किसी मनुष्य को ला दीजिए। उपाध्याय की यह बात सुन उस पशु के बदले में देने के लिए हजारों गायें साथ ले राजा अम्बरीष यज्ञ-पशु खोजने के लिए निकले। देश, देशान्तर, नगर, वन और ऋषियों के पवित्र आश्रमों में उसको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वे पर्वत के भृगुतुङ्ग नामक शृङ्ग पर जा पहुँचे। ऋचीक नामक ऋषि वहाँ भार्या और पुत्रों के साथ रहते थे। वे वहाँ बड़ा तप कर रहे थे। उनको देखकर राजा अम्बरीष ने प्रणाम किया! कुशल-प्रश्न के बाद राजा ने कहा—हे भार्गव! मेरे यज्ञ में पशु बनाने लिए आप अपना पुत्र मुझे दे दीजिए और इसके बदले में मुझसे मूल्य ले लीजिए। ऋषि ने कहा—राजन! मैं बड़े बेटे को तो न बेचूँगा। फिर ऋषि की स्त्री ने कहा कि सबसे छोटा यह शुनक नामक पुत्र मुझको बड़ा प्यारा है। मैं इसे कभी न दूँगी। क्योंकि बड़ा पुत्र पिता को और छोटा माता को बहुत प्यारा होता है। इसलिए मैं छोटे को न दूँगी।

माता-पिता की इस तरह की बातें सुनकर ऋषि का मँझला बेटा शुनःशेफ आप ही बोल उठा कि बड़े को तो पिता नहीं बेचना चाहते और छोटे को माता नहीं देती। इसलिए राजन! आप मुझे ले चलिए। शुनःशेफ की बात सुन राजा ने बहुत सा सोना, रथ और लाख गायें ऋषि को दीं। फिर शुनःशेफ को रथ पर चढ़ाकर वे साथ ले चले।

---

# ६२वाँ सर्ग

## विश्वामित्र के उपदेश से शुनःशेफ की रक्षा

हे रामचन्द्र! इस प्रकार राजा अम्बरीष शुनःशेफ को लेकर चले। चलते-चलते वे पुष्कर-क्षेत्र में पहुँचे जहाँ विश्वामित्र तप करते थे। दोपहर हो जाने पर राजा वहाँ आराम करने के लिए कुछ देर ठहर गये। वहाँ शुनःशेफ ने अपने मामा विश्वामित्र को देखा जो बहुत से ऋषियों के समूह में बैठे तप कर रहे थे। उनको देखते ही वह प्यासा और थका हुआ शुनःशेफ विश्वामित्र की गोदी में गिरकर बोला—हे मुनिराज! न मेरे माता है और न पिता; न मेरे कोई भाई है न बन्धु। आप दयालु और सब के रक्षक हैं। कृपा कर ऐसा कीजिए कि जिससे राजा का भी काम हो जाय और मैं भी बहुत दिन जीकर स्वर्ग को जाऊँ। मैं अनाथ हूँ। आप मेरे धर्मात्मा नाथ हैं। जैसे पिता पुत्र की रक्षा करता है वैसे ही आप कृपा कर मेरी भी रक्षा कीजिए।

विश्वामित्र ने शुनःशेफ के दीन वचन सुनकर उसको बहुत कुछ ढाढ़स बँधाया और अपने पुत्रों से कहा—पुत्रो! सत्पुत्रों को जिस लिए पिता पैदा करते हैं और उनके द्वारा परलोक का भी हित चाहते हैं उसका समय आ पहुँचा है। देखो, यह मुनि का बालक मेरे शरण आया है। इसलिए इसके प्राणों की रक्षा कर तुम मेरा प्रिय काम करो। तुम सब पुण्यात्मा और धर्मात्मा हो; अतएव राजा के पशु होकर अग्नि को तृप्त करो। देखो, इसमें एक तो यज्ञ निर्विघ्न समाप्त होगा, दूसरे देवता तृप्त होंगे और तीसरे मेरे वचन का भी पालन होगा।

हे राम! मुनि की यह बात सुनकर विश्वामित्र के मधुच्छन्द आदि पुत्र अभिमान में आकर हँसी से कहने लगे कि हे विभो! आप अपने पुत्रों को छोड़कर दूसरे के पुत्र की रक्षा क्यों करते हैं? यह तो जीवों पर दया करने के लिए अपना मांस खाने के तुल्य अन्याय हम देखते हैं। पुत्रों की बात सुन क्रोध से लाल आँखें करके मुनि बोले—तुम लोग बड़े निर्भय और अधर्मी हो जो ऐसा कहते हो। अच्छा जाओ, तुम भी वशिष्ठ मुनि के पुत्रों की तरह चाण्डाल बनोगे। कुत्तों का मांस खाते हुए तुम हजार बरस तक इस पृथ्वी पर घूमते रहोगे।

इस प्रकार विश्वामित्र अपने पुत्रों को शाप देकर शुनःशेफ से बोले कि जब तुम अम्बरीष के यज्ञ में पवित्र फाँसी से वैष्णवस्तम्भ में बाँधे जाओगे और लाल माला तथा लाल चन्दन से भूषित होगे तब अग्नि के मन्त्रों से अग्नि की स्तुति करना और मैं तुम्हें जो दो स्तुतियाँ देता हूँ, इनको वहाँ गाना। इस उपाय से तुम स्वयं अपनी रक्षा कर सकोगे। तब शुनःशेफ ने उन दोनों स्तुतियों को मुनि से अच्छी तरह पढ़ लिया। फिर, अम्बरीष से कहा—हे राजसिंह! जल्द चलिए और दीक्षा लेकर यज्ञविधि कीजिए। ऋषिपुत्र की बात सुन राजा प्रसन्न हो जल्द अपने यज्ञस्थान को चले। वहाँ पहुँचकर सबकी सम्मति से शुनःशेफ को, पवित्र कर और लाल वस्त्र पहनाकर, राजा ने यज्ञ के स्तम्भ से बाँध दिया। तब शुनःशेफ विश्वामित्र की सिखाई हुई स्तुति करने लगा। उस स्तुति के प्रभाव से प्रसन्न होकर इन्द्र ने उसको दीर्घायु किया और राजा ने भी यज्ञ समाप्त कर अनेक फल पाये। इधर विश्वामित्र ने भी पुष्कर क्षेत्र में हजार वर्ष तक खूब तपस्या की।

---

## ६३वाँ सर्ग

### विश्वामित्र की तपस्या का और वर्णन

हे रघुनन्दन! जब तपस्या करते-करते मुनि को हजार वर्ष बीत गये तब, देवताओं को साथ ले ब्रह्मा ने आकर कहा—"हे विश्वामित्र! तुम अपने कर्मों से 'ऋषि' हुए।" ऐसा कहकर ब्रह्मा तो अपने लोक को चले गये और विश्वामित्र इधर फिर तपस्या करने लगे। तप करते-करते बहुत समय बीत गया। इसके बाद, किसी समय, मेनका अप्सरा पुष्कर क्षेत्र में स्नान करने को आई। घटा में बिजली की तरह चमकते हुए उसके रूप को देखकर मुनि काम से मोहित हो गये। वे उससे बोले—हे अप्सरे! तुम्हारा स्वागत हो। तुम मेरे आश्रम में रहो और मुझ पर अनुग्रह करो; क्योंकि मैं तुमको देखकर काम से मोहित हो गया हूँ। मुनि की बात मानकर मेनका उनके आश्रम में रहने लगी। उनकी तपस्या में यह एक विघ्न हुआ।

दस वर्ष बीतने पर विश्वामित्र लज्जित और शोक-युक्त हो, अपने मन में कहने लगे कि देखो यह देवताओं का काम है। इन्होंने ही अप्सरा को भेजकर मेरे तप का नाश किया है। दस वर्ष बात की बात में बीत गये। इस कामजाल में फँसकर बड़ा विघ्न हुआ। इस तरह पछताकर दुःखित हो, मुनि ने मेनका को मधुर वाणी से विदा किया। वह शाप के भय से डरती और काँपती हुई सामने ही हाथ जोड़े खड़ी थी।

अब विश्वामित्र उत्तर दिशा में, पर्वत पर, जाकर काम को जीतने की इच्छा से कौशिकी नदी के तीर पर मन लगाकर तप करने लगे। जब मुनि को हजार बरस बीते तब देवताओं को बड़ा डर हुआ। वे सब ब्रह्मा के

पास जाकर बोले—महाराज ! अब विश्वामित्र महर्षि का पद पावें। देवताओं का यह वचन सुन ब्रह्माजी मुनि के पास आकर मधुर वाणी से बोले—हे कौशिक ! हम तुम्हारे कठिन तप से प्रसन्न हुए। आज से तुम ऋषियों में भी मुख्य—अर्थात् "महर्षि"—हुए। पितामह का वचन सुन, विश्वामित्र हाथ जोड़ प्रणाम कर बोले—हे ब्रह्मन्, मेरे उत्तम कर्मों के द्वारा जो आप मुझे ब्रह्मर्षि पद दीजिए तो मैं अपने को जितेन्द्रिय समझूँ। ऋषि की इच्छा को सुनकर ब्रह्मा बोले कि अभी तुम जितेन्द्रिय नहीं हो, इसके लिए यत्न करो और तप करो। ऐसा कह वे सत्यलोक में चले गये और महामुनि विश्वामित्र ऊपर को बाँह उठाये हुए, सिर्फ वायु-भक्षण कर, फिर तपस्या करने लगे। ग्रीष्मऋतु में पञ्चाग्नि तापना, वर्षा में छाया छोड़कर खुले मैदान में रहना और शीतकाल में रात-दिन जलशयन करना उन्होंने आरम्भ किया। इस प्रकार तप करते-करते जब हजार वर्ष पूरे हुए तब देवताओं को और इन्द्र को भी बड़ा दुःख हुआ। अब इन्द्र ने मुनि की तपस्या में विघ्न करने के लिए रम्भा नाम की अप्सरा को बुलाया।

---

## ६४वाँ सर्ग

### रम्भा का शाप पाना

इन्द्र ने कहा—हे रम्भे ! देवताओं का यह एक बड़ा काम है कि कौशिक मुनि को काम से लुभाकर मोहित कर लिया जाय। यह तुमको अवश्य करना चाहिए। यह सुनकर रम्भा लज्जित हुई। वह हाथ जोड़कर बोली—हे सुरपते ! यह विश्वामित्र मुनि बड़े भारी तपस्वी हैं। वे मुझे भयङ्कर शाप अवश्य देंगे। इसलिए मैं डरती हूँ। कृपा कर इस काम में मुझे आप न डालिए। रम्भा का यह भययुक्त वचन सुनकर इन्द्र बोले—तू डर मत; मैं जो कहता हूँ सो कर। वसन्त ऋतु में मीठी बोली बोलनेवाला कोकिल पक्षी बनकर मैं स्वयं, कामदेव के साथ, सुन्दर वृक्ष के ऊपर तेरे पास ही रहूँगा। तू अपना बड़ा सुन्दर प्रकाशमान रूप बनाकर ऋषि को लुभाना। इन्द्र के कहने से, रम्भा अपना सुन्दर रूप सँवारकर मुनि के सामने, मोहित करने की इच्छा से, जा खड़ी हुई। उस समय विश्वामित्र मुनि कोकिल का मधुर शब्द सुनकर प्रसन्न हो, रम्भा की ओर देखने लगे। परन्तु उस कोकिल के कूकने और रम्भा का मनोहर गीत सुनने तथा उस अप्सरा को देखने से भी ऋषि को सन्देह हुआ। मुनि ने भाँप लिया कि यह सब काम इन्द्र का है। तब तो मुनि ने क्रुद्ध होकर कहा—हे रम्भे ! मैं तो काम और क्रोध को जीतने की इच्छा रखता हूँ और तू मुझे लुभाती है। इसलिए तू दस हजार वर्ष तक शिला होकर रहेगी। फिर, कोई तपस्वी ब्राह्मण, तेरा उद्धार करेगा। विश्वामित्र अपने क्रोध को सँभाल न सके। ऋषि के शाप से रम्भा शिलारूप हो गई। उस समय, महर्षि का ऐसा कोप का वचन सुनकर इन्द्र और कामदेव, दोनों, वहाँ से भाग गये फिर, जब कोप से ऋषि की तपस्या नष्ट हो गई और इन्द्रियों के जीतने से आत्मा की शान्ति भी न हुई तब मुनि के मन में बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने विचार किया कि अब न तो कभी ऐसा क्रोध ही करूँगा और न बोलूँगा; अथवा सैकड़ों बरसों तक श्वास न लेकर अपने शरीर को सुखा डालूँगा और जितेन्द्रिय बना रहूँगा। अपने तपोबल से जब तक मैं ब्राह्मणत्व को न पाऊँगा तब तक चाहे कितना ही समय बीत जाय, न मैं

साँस लूँगा और न भोजन करूँगा। ऐसा ही खड़ा रहूँगा। अब तपस्या से शरीर के नाश होने का मुझे कुछ भी भय नहीं है।

हे रघुनन्दन! इस प्रकार इन मुनिराज ने हज़ार वर्ष का नियम कर, अतुल प्रतिज्ञा ठान, फिर तप की इच्छा की।

---

## ६५वाँ सर्ग

### विश्वामित्र का ब्रह्मर्षि-पद पाना

हे राघव! ऐसी प्रतिज्ञा कर विश्वामित्र ने, उत्तर दिशा को छोड़, पूर्व दिशा में आकर दारुण तप करना आरम्भ किया। मौन धारण कर वे हज़ार वर्ष तक तप करते रहे। हज़ार बरस बीतने पर इनका शरीर काठ की तरह हो गया। इस बीच में भी तरह-तरह के विघ्न हुए। परन्तु क्रोध मुनि को बाधा न दे सका। उन्होंने उसे जीत लिया। फिर, दीक्षा की समाप्ति जानकर मुनि ने अन्न का भोजन करना चाहा। हे रामचन्द्र! जब पहले पहल इन्होंने खाने के लिए भोजन परोसा तब इन्द्र ने तुरन्त ही ब्राह्मण का रूप धारण कर मुनि से वह सिद्ध अन्न माँगा। मुनि ने वह सब अन्न उठाकर उसको दे दिया। आप भूखे ही रह गये; उससे कुछ भी न कहा। क्योंकि उन्होंने मौनव्रत धारण कर रक्खा था। मुनि मौनी तो थे ही अब श्वास को भी रोककर वे हज़ार बरस तक की दीक्षा ले फिर तप करने लगे। हे राघव! जिस समय मुनि ने श्वास लेना भी बन्द कर दिया था उस समय उनके मस्तक से धुआँ निकलने लगा। उससे तीनों लोक व्याकुल हो गये।

देवर्षि, गन्धर्व, सर्प, नाग और राक्षस—सभी इनकी तपस्या से चकित और इनके तेज से मन्द एवं मूर्छित होकर ब्रह्मा के पास जाकर के बोले—हे देव! यह महा-मुनि विश्वामित्र अनेक उपायों से लुभाये और क्रुद्ध किये गये; फिर भी ये तपस्या में बढ़ते ही जाते हैं। अब इनमें काम, क्रोध आदि दोष कुछ भी नहीं पाया जाता। यदि अब इनकी इच्छा पूरी न की जायगी तो ये तपस्या से सारे जगत् का नाश कर डालेंगे। देखिए, सब दिशाएँ प्रकाशरहित हो रही हैं। इनके तेज में सबका तेज ढक गया। समुद्र क्षोभ को प्राप्त होते हैं। पर्वत टूट-टूटकर गिरे पड़ते हैं। भूकम्प होता है और वायु चारों ओर से गड़बड़ बहता है। हे ब्रह्मन्! हम नहीं कह सकते कि लोगों की क्या दशा होगी। शायद लोग नास्तिक भी हो जायँ तो आश्चर्य नहीं क्योंकि इस समय जगत् भर मोहित हो रहा है; और सबका मन विस्मित देख पड़ता है। देखिए, महर्षि के तेज से सूर्य का भी प्रकाश मन्द पड़ गया। इसलिए हे देव! इस जगत् का नाश करने की मुनि जब तक इच्छा नहीं करते तब तक इनको प्रसन्न कीजिए। यह तो इस समय अग्निरूप हो रहे हैं। जैसे कालाग्नि त्रिलोकी को भस्म करता है वैसे ही ये भी जला रहे हैं। यदि ये देवताओं का राज्य अर्थात् इन्द्रासन चाहें तो वह भी इनको देकर इनका मनोरथ पूर्ण कीजिए।

अब देवताओं को साथ ले ब्रह्माजी मुनि के पास जाकर बोले—हे "ब्रह्मर्षि!" तुम्हारा स्वागत हो। हम तुम्हारे तप से सन्तुष्ट हुए। हे कौशिक! तुमने उग्र तप से ब्राह्मण पदवी पा ली। हम तुमको दीर्घायु—अर्थात् बहुत दिन तक जीवन भी देते हैं। तुम्हारा मङ्गल हो। अब तुम सुख से चले जाओ।

ब्रह्मा का वचन सुन महामुनि प्रसन्न हुए। वे प्रणाम

कर बोले—महाराज! जो मुझे ब्राह्मणपना और दीर्घायु प्रदान किया तो ओंकार, वषट्कार और वेदों को भी मुझे दीजिए। चारों वेदों को जाननेवाले ब्रह्मपुत्र वशिष्ठ भी मुझे "ब्रह्मर्षि" कहें तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो और देवता लोग अपने स्थान को जायँ। यह बात सुन, देवता लोगों ने वशिष्ठ मुनि के पास जाकर उनको प्रसन्न किया। तब वशिष्ठ मुनि ने विश्वामित्र के साथ मित्रता की और कहा कि "तुम ब्रह्मर्षि हो गये।" इसमें कुछ सन्देह नहीं। अब देवता भी अपने-अपने स्थान को चले गये और विश्वामित्र ने ब्राह्मणत्व पाकर बड़े आदर से वशिष्ठ मुनि की पूजा की और आप कृतार्थ हो सम्पूर्ण पृथ्वी पर घूमने लगे।

हे रामचन्द्र! इस प्रकार इन महात्मा ने ब्राह्मणत्व लाभ किया। हे रघुनन्दन! ये मुनिश्रेष्ठ तप की मूर्ति, धर्म्म में तत्पर और पराक्रम के घर हैं। यह कहकर शतानन्द चुप हो गये।

इसके बाद राजा जनक, राम और लक्ष्मण के सामने, शतानन्द का वचन सुन हाथ जोड़कर कौशिक मुनि से बोले—हे मुनिराज! आज मैं धन्य और अनुगृहीत हुआ; क्योंकि आप ऐसे योग्य राम और लक्ष्मण के साथ मेरी यज्ञशाला में आये हैं। आपके दर्शन से मैं पवित्र हुआ और मुझे अनेक प्रकार के गुणों का लाभ हुआ। मैंने रामचन्द्र के और सभावालों के साथ आपके तप और तेज का वर्णन विस्तार से सुना। महाराज कौशिक! आपके तप, बल और गुण असंख्य हैं। आपकी आश्चर्य-भरी कथाओं के सुनने से मुझे तृप्ति नहीं हुई। अब सूर्य्य का मण्डल अस्ताचल की ओर खिसक गया। सन्ध्योपासनादि कर्म्म का समय आ पहुँचा। हे जप करनेवालों में उत्तम, आपका स्वागत हो। अब मुझे आज्ञा दीजिए। मैं कल प्रातःकाल फिर आपका दर्शन करूँगा। इस प्रकार जनक का वचन सुनकर मुनि ने प्रसन्न हो उनको विदा किया। तब राजा उपाध्याय और बन्धुगणों के साथ मुनि की प्रदक्षिणा कर अपने घर को पधारे और विश्वामित्र भी राम और लक्ष्मण के साथ अपने निवास-स्थान में आ गये।

---

## ६६वाँ सर्ग

### जनक के धनुष मिलने की कथा

दूसरे दिन प्रातःकाल राजा जनक ने अपने नित्य-कर्म से निपटकर राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र को बुलवाया। फिर, विधि से इनका आदर-सत्कार और पूजन करके बोले—भगवन्! आपका स्वागत हो। मुझ अनुचर को जो आज्ञा हो सो करूँ। जनक का वचन सुन मुनि ने कहा—राजन्! ये दोनों विख्यात महाराज दशरथ के पुत्र आपके उत्तम धनुष को देखना चाहते हैं। इसलिए आप इनको वह दिखला दीजिए। धनुष देखने पर जैसी इनकी इच्छा होगी वैसा करेंगे; परन्तु इच्छा केवल देखने की ही है। मुनि का वचन सुन जनक बोले—मेरे घर में इस धनुष के रहने का कारण सुनिए। राजा निमि के बड़े पुत्र राजा देवरात थे। उनको यह धनुष, धरोहर की रीति से, मिला था। उसकी कथा इस प्रकार है—

पहले शिवजी दक्ष के यज्ञ का विध्वंस कर धनुष चढ़ा करके क्रोध से देवताओं से बोले—हे देवताओ! जब कि तुम मुझ भागार्थी के लिए यज्ञभाग नहीं देते हो तब मैं इस धनुष से तुम्हारे सिर उड़ाये देता हूँ। हे मुनि!

शिव का यह वचन सुनकर सब देवता दीन हो महाराज शिव की स्तुति और प्रार्थना करने लगे। तब महादेव ने प्रसन्न होकर वह धनुष देवताओं को दे दिया और देवताओं ने देवरात को सौंप दिया। यह वही धनुष है। किसी समय यज्ञकाल में खेत जोतने के लिए मैं हल चला रहा था। उस समय खोदी हुई भूमि में से एक कन्या निकली। उसका नाम मैंने सीता रक्खा। उस अयोनिजा कन्या को मैंने "वीर्य्यशुल्का"* की प्रतिज्ञा करके रक्खा। जब वह धीरे-धीरे बढ़ने लगी तब अनेक राजा लोग आ-आकर मुझसे कन्या को माँगने लगे। परन्तु उन्हें मैं यही उत्तर देता था कि यह कन्या वीर्य्यशुल्का है। तब सब राजा इकट्ठे होकर, अपने-अपने बल की परीक्षा के लिए, मिथिला में आये। उस समय मैंने शिव के धनुष को लाकर उनके सामने रख दिया। परन्तु वे उसे उठा भी न सके। इसलिए उन्हें निर्बल जानकर मैंने कन्या नहीं दी। उस समय राजा लोगों ने क्रोध करके मिथिला को घेर लिया और मुझे बड़ी पीड़ा दी; क्योंकि मैंने उनका अनादर किया था। इस घेराधारी में एक बरस बीत गया। इसमें मेरा बहुत सा खर्च हुआ। जब सब सामान चुक गया तब मैंने दुःखित हो तप से देवताओं को प्रसन्न किया। देवताओं ने प्रसन्न होकर मुझे सेना दी। जिन्होंने मिथिला को घेरा था, जो दुष्टता कर रहे थे और कुछ भी पराक्रमी न थे उनको और उनके मन्त्रियों को मैंने मार भगाया। हे मुनिश्रेष्ठ! वह यही परम तेजस्वी धनुष है। इसे मैं इन दोनों भाइयों को दिखाऊँगा। जो रामचन्द्र इस धनुष को उठा लेंगे तो मैं उनको अपनी सीता कन्या ब्याह दूँगा।

* वीर्य्यशुल्का अर्थात् जिसकी कीमत पराक्रम ही है।

---

## ६७वाँ सर्ग

### जनक का रामचन्द्र को धनुष दिखाना और रामचन्द्र का धनुष तोड़ना

राजा जनक की बात सुनकर मुनि ने कहा—राजन्! वह धनुष रामचन्द्र को दिखलाइए। तब राजा जनक ने अपने मन्त्रियों से कहा कि जो दिव्य धनुष गन्ध और मालाओं से सज रहा है, उसको ले आओ। राजा की आज्ञा से मन्त्री लोग मिथिलापुरी में जाकर उसके लाने का उपाय करने लगे। अच्छे-अच्छे बलवान् पाँच हजार मनुष्य उस धनुष के सन्दूक को बड़ी मुश्किल से खींचकर लाये। उस लोहे के सन्दूक में आठ पहिये लगे हुए थे। वहाँ लाकर मन्त्री ने जनक से कहा कि राजन्! लीजिए यह धनुष आ गया। तब राजा हाथ जोड़कर विश्वामित्र और रामलक्ष्मण से बोले—महाराज! यह वही धनुष है, जिसको राजा लोग नहीं चढ़ा सके। और मनुष्यों की तो बात ही क्या है, देवता, दैत्य, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर और नाग भी इस पर बाण चढ़ाने, हिलाने और उठा लेने तक में समर्थ नहीं। हे मुनि! यह धनुष मैंने मँगवाया है। राजपुत्रों को दिखलाइए। विश्वामित्र ने रामचन्द्र से कहा—हे वत्स! इस धनुष को देखो।

महर्षि का वचन सुन रामचन्द्र उठे। उन्होंने सन्दूक का ढकना खोला और धनुष को देखा। वे बोले कि मैं इस धनुष को हाथ से छूता हूँ। उसको मैं उठाकर चढ़ा सकूँगा। तब राजा और मुनि एक ही साथ बोल उठे—"बहुत अच्छा, जैसी इच्छा हो वैसा कीजिए।" रामचन्द्र ने हजारों मनुष्यों के देखते-देखते उसको बीच

रामचन्द्र का धनुष तोड़ना। [पृष्ठ ६६

से थाँमा और चट से उठा जेह खींचकर बीच में से तोड़, दो टुकड़े कर डाला। उस समय उसके टूटने का ऐसा घोर शब्द हुआ जैसा बिजली के गिरने में होता है। पृथिवी काँपने लगी। ऐसा मालूम पड़ता था मानों पर्वत टूटकर गिर पड़ा है! उस भयङ्कर शब्द से मुनि, राजा जनक और दोनों भाइयों को छोड़ बाकी सब लोग मूर्छित हो गिर पड़े। जब लोगों को चेत हुआ तब राजा जनक भयरहित हो मुनि से बोले—भगवन्! मैंने रामचन्द्र का अत्यन्त अद्भुत, अचिन्तनीय और मन में भी न आने योग्य पराक्रम देखा। मेरी पुत्री रामचन्द्र को पति पाकर जनकवंश की कीर्त्ति बढ़ावेगी। हे कौशिक! मेरी प्रतिज्ञा भी सच्ची हो गई। अब मैं आपकी सम्मति से प्राण से भी प्यारी सीता रामचन्द्र को दूँगा। मेरे मन्त्री लोग जल्द रथों पर चढ़कर अयोध्या में जायँ और सीता के विवाह का सब हाल राजा दशरथ से कह सुनावें और नम्र वचनों से राजा को यहाँ लिवा लावें। राम-लक्ष्मण, दोनों भाइयों का मङ्गल-समाचार उनको जल्द जाकर सुनावें।

मुनि ने कहा—बहुत अच्छा, जैसा आप चाहें वैसा करें। तब राजा ने मन्त्रियों को सब बात समझाकर अयोध्या को चलता किया।

---

## ६८वाँ सर्ग

### दूतों का अयोध्या में जाना और महाराज दशरथ से मिलना

राजा जनक के दूत आज्ञा पाकर चले। चौथे दिन वे राजभवन में पहुँच गये। देवता के समान वृद्ध राजा दशरथ को देख, हाथ जोड़कर वे बड़ी नम्रता से बोले—महाराज! मिथिलाधिपति राजा जनक ने बारम्बार बड़ी नम्रता से उपाध्याय और पुरोहित-सहित आपका कुशल-मङ्गल पूछा है। महामुनि विश्वामित्र की सम्मति से उन्होंने यह सन्देश कहा है कि महाराज को तो यह विदित ही होगा कि मेरी पुत्री वीर्य्यशुल्का है। इसके लिए बहुत से राजा लोग उत्साह-हीन होकर विमुख हो गये। सो मेरी इस कन्या को, विश्वामित्र के साथ अकस्मात् आकर, महाराज के पुत्र ने जीत लिया; क्योंकि मेरे उस धनुष को महात्मा रामचन्द्र ने सभा के बीच में तोड़ डाला। इसलिए मैं यह वीर्य्यशुल्का सीता रामचन्द्र को समर्पण कर अपनी प्रतिज्ञा से पार होना चाहता हूँ। अतएव आप भी इस विषय में मुझे आज्ञा दीजिए; और अपने उपाध्याय और मन्त्रियों के साथ आप जल्द आकर अपने पुत्रों को देखिए और मेरी प्रतिज्ञा को पूरी कीजिए। महाराज! राजा जनक ने यह शतानन्द और विश्वामित्रजी की सम्मति से कहा है।

दूतों की बात सुनकर महाराज दशरथ प्रसन्न हुए। उन्होंने वशिष्ठ, वामदेव और मन्त्रियों को बुलाकर कहा कि विश्वामित्र के साथ कौशल्यानन्दन रामचन्द्र और लक्ष्मण विदेह-नगर में ठहरे हुए हैं। इनका पराक्रम देख राजा जनक इनको अपनी कन्या देना चाहते हैं। आप लोगों को यदि यह बात रुचे तो हम लोगों को जल्द वहाँ जाना चाहिए। राजा का वचन सुन सब मन्त्री और महर्षि बोले—"बहुत अच्छी बात है।" तब राजा ने प्रसन्न होकर कहा कि अच्छा, कल चलना चाहिए। फिर मन्त्री लोगों ने बड़े आनन्द से वह रात बिताई।

——

## ६९वाँ सर्ग

### राजा दशरथ का मिथिला में पहुँचना और विवाह की तैयारियाँ

रात बीतने पर कुटुम्ब-सहित राजा दशरथ मगन होकर सुमन्त्र से बोले कि आज सब कोशाध्यक्ष (खजानची) लोग तरह-तरह के रत्न और बहुत-सा धन लेकर आगे चलें। मेरी चतुरंगिणी सेना को सजाकर और बढ़िया सवारी तैयार कर आगे से निकाल रक्खो वशिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप, मार्कण्डेय ऋषि और कात्यायन, ये सभी आगे-आगे चलें। मेरा रथ भी तैयार कराओ, देर न होने पावे। देखो, दूत जल्दी कर रहे हैं।

इस प्रकार, राजा की आज्ञा से, ऋषियों के साथ चतुरङ्गिणी सेना चली और पीछे से राजा भी चले। उस समय महाराज का रथ आगे और पीछे-पीछे सेना आदि चली जाती थी। इसी तरह चलते-चलते चार दिन में महाराज दशरथ विदेहनगर में जा पहुँचे। उधर राजा जनक ने इनका आना सुन सब तैयारियाँ कीं। खूब आदर-सत्कार किया। फिर राजा जनक वृद्ध राजा दशरथ से मिलकर बड़े प्रसन्न हुए और बोले—राजन्, आपका स्वागत हो। बड़ा आनन्द हुआ, जो आप आ गये। दोनों पुत्रों के पराक्रम को सुनकर आप बड़े प्रसन्न होंगे। हमारे बड़े भाग्य हैं जो—देवों के साथ इन्द्र की तरह—बहुत से ब्राह्मणों के साथ भगवान् वशिष्ठ मुनि भी आये। महाराज, आज रघुवंशियों के साथ सम्बन्ध होने से मेरा कुल प्रतिष्ठित हुआ। हे नरेन्द्र! कल प्रातःकाल, यज्ञ के अन्त में, इन ऋषियों से आप विवाह की रीति कराइए।

राजा जनक का वचन सुनकर, ऋषियों के बीच में बैठे हुए, महाराज दशरथ बोले—हे धर्मज्ञ! दान दाता के अधीन होता है। मैंने ऐसा ही सुना है। इसी लिए आप जैसा चाहेंगे वैसा ही हम लोग भी करेंगे। सत्य-वादी राजा दशरथ की ऐसी धर्म की बात सुनकर जनक मुसकुराये। फिर मुनि लोगों ने भी आपस में मिलकर बड़े आनन्द से रात में वहीं निवास किया। अपने दोनों पुत्रों को देखकर राजा बड़े प्रसन्न हुए और वहाँ ठहर गये। राजा जनक ने भी विवाह के पहले जो रीतियाँ की जाती हैं उनको करके विश्राम किया।

---

## ७०वाँ सर्ग

### राजा दशरथ की वंशावली

प्रातःकाल राजा जनक नित्य-कर्म से निपटकर और विवाह की रीतियाँ करके शतानन्द से बोले—हे मुनि! मेरे भाई कुशध्वज महातेजस्वी, महा-बलवान् और धर्मात्मा हैं। वे "साङ्काश्य" नाम की पवित्र नगरी में रहते हैं। उस नगरी में तरह-तरह की कलें हैं और वह बड़ी-बड़ी खाइयों से रक्षित है। पुष्पक विमान के समान वह पुरी इक्षुमती नदी के तीर पर आबाद है। मैं कुशध्वज को देखना चाहता हूँ। यज्ञ की रक्षा में वे मेरे सहायक होंगे और इस कन्या के विवाहोत्सव को भी देखेंगे।

इस प्रकार राजा जनक शतानन्द से कहते ही थे कि इतने में सामने से चट दूत आ गये। राजा ने उनको कुशध्वज के बुलाने की आज्ञा दी। राजा की आज्ञा पा वे बहुत फुर्तीले घोड़ों पर चढ़कर कुशध्वज

को बुलाने चले। दूतों ने कुशध्वज के पास पहुँचकर सब हाल कह सुनाया। तब कुशध्वज ने, जनक की आज्ञा से, मिथिला में पहुँच बड़े भाई को देखा और शतानन्द को प्रणाम किया। जनक को प्रणाम कर उनके दिये हुए आसन पर बैठ गये। फिर दोनों भाइयों ने सुदामा नामक प्रधान मन्त्री को बुलाकर महाराज दशरथ को बुलाने के लिए भेजा। उससे कहा कि तुम महाराज दशरथ के पास जाकर उनको पुत्रों और मन्त्रियों के साथ लिवा लाओ। राजा की आज्ञा पाते ही सुदामा दशरथ के पास पहुँचा। वहाँ उनको प्रणाम कर उसने कहा—हे अयोध्याधिपति! उपाध्याय और पुरोहित के साथ महाराज को मिथिला के राजा देखना चाहते हैं। दूत का वचन सुनते ही राजा, मंत्रियों और भाई-बन्दों को साथ लेकर, जनक के राजभवन में आये और उनसे बोले—महाराज! आपको तो मालूम ही होगा कि इक्ष्वाकुकुल के देवता भगवान् वशिष्ठ ऋषि सब कामों को जानते हैं। इसलिए ये वशिष्ठजी विश्वामित्र की सम्मति से सब ऋषियों के साथ हमारी गोत्रावली का वर्णन करेंगे। जब राजा चुप हो गये तब भगवान् वशिष्ठ पुरोहित के साथ जनक से बोले—हे राजन्! अव्यक्त ब्रह्म से भगवान् ब्रह्मा पैदा हुए जो सनातन, नित्य और अव्यय हैं। उनसे मरीचि, मरीचि से कश्यप, कश्यप से सूर्य्य और सूर्य्य से वैवस्वत मनु हुए जो पहले प्रजापति कहलाये। फिर मनु से इक्ष्वाकु हुए; यही इक्ष्वाकु अयोध्या के प्रथम राजा थे। इक्ष्वाकु के कुक्षि, कुक्षि के विकुक्षि और विकुक्षि के बाण हुए। बाण के अनरण्य, अनरण्य के पृथु, पृथु के त्रिशंकु, त्रिशंकु के धुन्धमार, धुन्धमार के युवनाश्व, युवनाश्व के मान्धाता और मान्धाता के सुसन्धि हुए। उनके दो पुत्र—ध्रुवसन्धि और प्रसेनजित्—हुए; ध्रुवसन्धि के भरत और भरत के असित हुए। इस राजा के हैहय, तालजङ्घ और शशबिन्दु; ये तीनों राजा शत्रु हुए। ये बड़े शूर थे। इन्होंने राजा असित को युद्ध में हराकर राज्य से निकाल दिया। तब राजा अपनी दोनों स्त्रियों को और थोड़ी सी सेना को लेकर हिमवान् पर्वत पर चले गये। वहीं उनका परलोकवास हुआ। उस समय उनकी दोनों स्त्रियाँ गर्भिणी थीं। एक ने, दूसरी को, गर्भ के नाश के लिए विष दे दिया।

उस समय, उस पर्वत पर, भार्गव "च्यवन" मुनि तप करते थे। उन स्त्रियों में से कालिन्दी नामक स्त्री उत्तम पुत्र चाहती थी। उसने मुनि के पास जाकर प्रणाम किया। तब ब्रह्मर्षि बोले—हे महाभागे! तेरी कुक्षि से महाबली, श्रीमान् और महातेजस्वी पुत्र, विष के साथ, जल्द पैदा होगा। तू कुछ भी चिन्ता मत कर। इस प्रकार, उस पतिव्रता राजपुत्री ने भार्गव च्यवन मुनि के आशीर्वाद के प्रभाव से पुत्र जना। वह पुत्र विषसहित पैदा हुआ। इसलिए उसका नाम सगर* हुआ। सगर के पुत्र असमञ्जस, उनके अंशुमान्, अंशुमान् के दिलीप, दिलीप के भगीरथ, उनके ककुत्स्थ, ककुत्स्थ के रघु, रघु के प्रवृद्ध नामक पुरुषाद अर्थात् राक्षस हुआ। पीछे से वही कल्माषपाद भी कहलाया। उसके शङ्खण, शङ्खण के सुदर्शन, सुदर्शन के अग्निवर्ण, उसके शीघ्रग, शीघ्रग के मरु, मरु के प्रशुश्रक, उनके अम्बरीष, अम्बरीष के नहुष, नहुष के ययाति, ययाति के नाभाग, नाभाग के अज, अज के महाराज दशरथ और महाराज दशरथ के राम और लक्ष्मण हुए। हे राजन्! मैंने इक्ष्वाकु-वंशवाले राजाओं के विशुद्ध वंश का वर्णन किया। इस वंशवाले राजा धर्म्मात्मा, वीर और सत्य-

* सगर = विषसहित। संस्कृत में गर विष को कहते हैं।

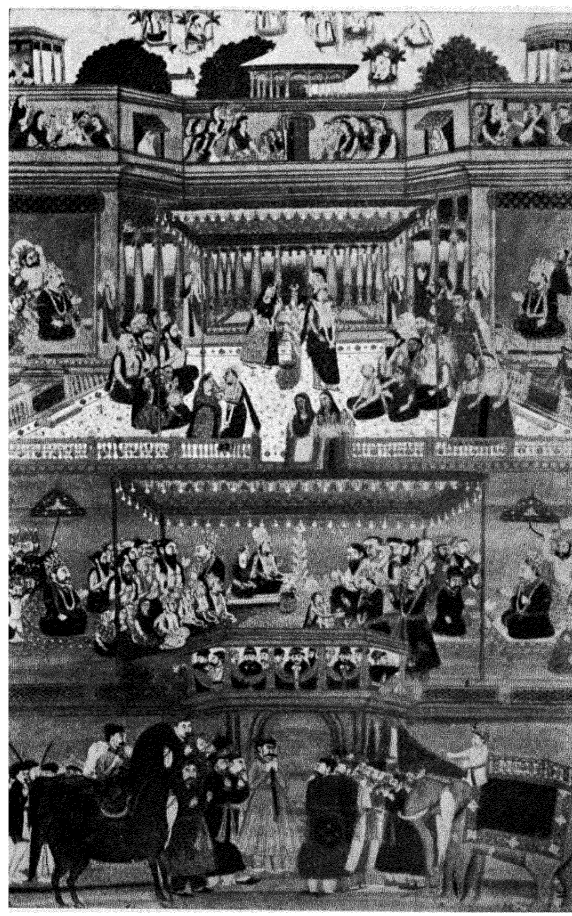

मैं बड़ी खुशी से ये कन्याएँ देता हूँ। [पृष्ठ ७०

आपके छोटे भाई ये जो कुशध्वज हैं, इनकी दो कन्याओं को भी जो बड़ी रूपवती हैं हम भरत और ये शत्रुघ्न के लिए माँगते हैं; क्योंकि महाराज दशरथ के चारों पुत्र बड़े सुन्दर लोकपालों के समान और देवतुल्य पराक्रमी हैं। हे राजेन्द्र। इन दोनों का विवाह और करके इस उत्तम इक्ष्वाकुकुल का सम्बन्ध कीजिए दोनों ऋषियों का यह वचन सुन राजा जनक हाथ जोड़कर बोले—हे महर्षि! इस कुल को मैं धन्य अवश्य मानता हूँ जिसके विषय में आप दोनों मुनि कुलसम्बन्ध को समान कहते हैं। बहुत अच्छा, आप लोग जैसी आज्ञा करते हैं वैसा ही होगा। भरत और शत्रुघ्न के लिए कुशध्वज की इन दोनों पुत्रियों को मैं दूँगा। हे महामुनि! एक ही दिन दशरथ के चारों पुत्र इन चारों बेटियों का पाणिग्रहण करें। कल फाल्गुनी नक्षत्र में—जिसका भग नामक देवता है—विवाह उत्तम होगा और पण्डित लोग भी इसी की प्रशंसा करते हैं। इतना कहकर राजा जनक खड़े हो गये। वे हाथ जोड़कर बोले कि मेरे लिए यह परम धर्म्म हुआ, आप दोनों ऋषि इन श्रेष्ठ आसनों पर बैठिए। प्रभुत्व के विषय में आपको महाराज दशरथ की जैसी अयोध्या वैसी मिथिला, और जैसी मेरी मिथिला वैसी अयोध्या समझनी चाहिए। दोनों जगह आपकी एक सी हुकूमत है। इसमें सन्देह नहीं। इसलिए जैसा उचित हो कीजिए। जनक का वचन सुनकर महाराज दशरथ ने प्रसन्न होकर कहा—हे मिथिलाधिपति! आप दोनों भाई अगणित गुणों से भरे हुए हैं। आप लोगों के सुन्दर गुणों से आपके कुल के पूर्व राजाओं ने आदर पाया है। आपका स्वस्ति हो। अब मुझे आज्ञा दीजिए, मैं जनवासे में जाकर विधिपूर्वक श्राद्धकर्म करूँगा। इस प्रकार जनक से विदा होकर राजा दशरथ, दोनों मुनियों के साथ, जनवासे में चले आये। प्रातःकाल उठकर राजा दशरथ ने पहले विधिपूर्वक श्राद्ध किया फिर गोदानकर्म किया और पुत्रों के गोदान के निमित्त ब्राह्मणों को अनेक गायों का दान दिया। इसके बाद सोने से मढ़े हुए सींगोंवाली बछड़े-समेत असंख्य गायें अनेक ब्राह्मणों को दीं। उस समय, उन पुत्रों से राजा दशरथ की शोभा ऐसी देख पड़ती थी जैसी लोकपालों से ब्रह्मा की होती है।

---

## ७३वाँ सर्ग

### राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न का विवाह

जिस दिन राजा ने गोदान किया उसी दिन केकयराज के पुत्र—भरत के मामा—युधाजित, राजा दशरथ के पास आये और कुशल पूछकर राजा से बोले—महाराज! केकयदेशाधिपति ने स्नेह से आपका कुशल-क्षेम पूछा है। हमारे देश में भी सब कुशल-मंगल है। उन्होंने बड़ी नम्रता से यह सन्देशा कहा कि भरत को राजा देखना चाहते हैं, इसलिए पहले मैं अयोध्या को गया था। वहाँ सुना कि वे आपके साथ मिथिला गये हैं इसलिए मैं यहीं चला आया। महाराज दशरथ ने उसकी बात सुनी और उसका खूब सत्कार किया। रात बीतने पर कुटुम्ब के साथ पूर्वाह्ण की सब क्रिया कर ऋषियों को साथ ले वे यज्ञस्थान में गये। अच्छे मुहूर्त में वशिष्ठ मुनि ने और सब ऋषियों के साथ, बड़े अच्छे-अच्छे गहने और कपड़ों से सजे हुए, भाइयों के साथ रामचन्द्र से सब विवाह की रीतियाँ कराईं, फिर, राजा जनक से बोले—हे राजन्! महाराज दशरथ सब

मंगलाचार करके अपने पुत्रों को साथ ले, तुम्हारी बाट देख रहे हैं सो आप विवाह का काम कीजिए। वशिष्ठ मुनि का वचन सुन राजा जनक बोले कि मेरा क्या कोई द्वारपाल है; और राजा किसकी आज्ञा की बाट देख रहे हैं? अपने घर में किस बात की रुकावट है? यह राज्य जैसा मेरा है वैसा आपका भी है। देखिए, मेरी चारों कन्याओं के विवाहोचित सब कौतुक-मंगल हो चुके हैं। ये वेदी के पास आकर बैठ गई हैं। इस समय मैं भी यहाँ वेदी के पास बैठा-बैठा आप ही की बाट देख रहा था। अब किस बात का विलम्ब है? जल्द निर्विघ्न सब काम कीजिए।

ऐसा कहते ही महाराज दशरथ सब ऋषियों और पुत्रों को विवाहमण्डप में ले गये। फिर विदेहाधिपति ने वशिष्ठ से कहा कि हे ऋषि! आप ऋषियों को साथ ले रामचन्द्र के विवाह-सम्बन्धी सम्पूर्ण काम करवाइए। तब वशिष्ठ ऋषि ने विश्वामित्र और शतानन्द को साथ लेकर यज्ञशाला में वेदी बनाई; फिर उसको चारों ओर से गन्ध और पुष्पों से भूषित किया और सुवर्ण के बनाये हुए पात्रों से, अंकुरयुक्त चित्र-विचित्र घटों और सुन्दर-सुन्दर पात्रों से, तथा घूपपात्र और शङ्ख के पात्रों से, स्रुवा, अर्घ्यपात्र और लावा से भरे छोटे-छोटे पात्रों से, और रँगे हुए अक्षतों से उस वेदी को सुशोभित किया। फिर, वशिष्ठ मुनि बराबर कुशों को विधिपूर्वक मन्त्रों से बिछाकर और वेदी पर अग्नि का स्थापन कर होम करने लगे। तब राजा जनक अनेक आभरणों से भूषित सीता को रामचन्द्र के सामने लाकर और अग्नि के पास बैठाकर बोले—

हे कौशल्यानन्दन! यह मेरी पुत्री सीता, पतिव्रतयुक्त और छाया के तुल्य सदा साथ रहनेवाली तुम्हारी सहधर्मचारिणी होगी। तुम इस भाग्यवती को ग्रहण करो। इसका पाणिग्रहण करो। राजा ने ऐसा कह मन्त्र से पवित्र जल छिड़का।

साधु साधु इमि भाषत, देव मुनिन्ह के वृन्द।
देखत परम उछाह अति, रामचन्द्र मुखचन्द॥
बाजत नभपथ दुन्दुभि तेहि खन।
बरषत सुमन देव हर्षित मन॥

इस प्रकार महाराज जनक सीता को देकर अति हर्ष से बोले कि हे लक्ष्मण! तुम भी शीघ्र आकर ऊर्मिला का पाणिग्रहण करो। फिर राजा ने भरत को माण्डवी का, और शत्रुघ्न को श्रुतकीर्ति का पाणिग्रहण करने को कहा।

राजा जनक का वचन सुन चारों भाइयों ने उन चारों कन्याओं के हाथ पकड़े; और वशिष्ठ मुनि की आज्ञा से पत्नियों को साथ ले अग्नि, वेदी और जनक तथा महात्मा ऋषियों की प्रदक्षिणा कर विधि से विवाह के सब होमादि कर्म किये। उस समय आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी और दुन्दुभी बजने लगी। गीत और बाजों के साथ अप्सराएँ और गन्धर्व लोग नाचने-गाने लगे। फिर चारों भाइयों ने अग्नि की तीन प्रदक्षिणा कर विवाह-कर्म समाप्त किया और अपनी पत्नियों के साथ डेरे पर चले आये। राजा दशरथ भी ऋषियों और परिवार को साथ ले जनवासे में आ गये।

---

## ७४वाँ सर्ग

### परशुराम का आना

दूसरे दिन, प्रातःकाल, महामुनि विश्वामित्र ने दोनों राजाओं से विदा होकर उत्तर की ओर यात्रा

की। फिर, राजा दशरथ ने भी अपनी राजधानी में जाने के लिए जनक से विदा माँगी। तब राजा जनक ने अनेक गायें, बहुत से उत्तम-उत्तम प्रकार के दुशाले, बेशुमार रेशमी वस्त्र और करोड़ों सूती वस्त्र दहेज में दिये। उन्होंने अच्छे गहनों से सजे हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, दासी और दासों सहित सौ कन्याएँ तथा सुन्दर सुवर्ण, मोती और मूँगे महाराज दशरथ को दहेज में दिये।

इस प्रकार राजा जनक उत्तम कन्या-धन दे प्रसन्न होकर महाराज दशरथ को विदा कर आप भी उनसे विदा मांगकर अपने राजभवन में आ गये।

फिर, महाराज दशरथ अपने पुत्रों और सेनाओं को साथ लिये, ऋषियों को आगे कर, अपनी पुरी को चले। उस समय चलते हुए राजा के मार्ग में चारों ओर भयङ्कर पक्षी बोलने लगे। बहुत से बुरे-बुरे शकुन होने लगे। तब महाराज दशरथ ने वशिष्ठ मुनि से पूछा—महाराज! एक ओर तो ये दुष्ट पक्षी शब्द कर रहे हैं और दूसरी ओर हरिण दाहिने जा रहे हैं। यह हृदय का उद्वेग करनेवाला क्या उत्पात है? क्योंकि मेरा मन बहुत चलायमान हो रहा है। दशरथ का वचन सुन महर्षि मधुर वाणी से बोले, सुनिए। पक्षी बताते हैं कि बड़ा भय आ पहुँचा; परन्तु ये हिरन शान्ति देते हैं कि सन्ताप मत करो, कोई चिन्ता नहीं।

इस प्रकार बातें हो ही रही थीं कि इतने में ऐसी आँधी चली कि भूकम्प होने लगे। बड़े-बड़े वृक्ष गिरने लगे। अन्धकार से सूर्य छिप गया। चारों ओर ऐसा अँधेरा छा गया कि किसी को दिशा का ज्ञान भी न रहा और धूल ऐसी उड़ी कि सब सेना तितर-बितर हो गई। उस समय वशिष्ठ, ऋषि गण, राजा और राजा के पुत्र तो सावधान रहे और बाकी सब लोग अचेत हो गये। सेना तो उस अन्धकार में भस्म से ढक सी गई।

इसके बाद राजा दशरथ ने भयङ्कर, जटामण्डल को धारण किये हुए; भृगुवंशी, जमदग्नि के पुत्र, परशुराम को देखा। क्षत्रियों का नाश करनेवाले परशुराम उस समय क्रोध के मारे बोलते हुए अग्नि के समान थे। वे कन्धे पर फरसा रक्खे हुए, बिजली की तरह चमकीले धनुष-बाण को लिये हुए थे। उस समय उनकी ओर किसी से न देखा जाता था। इस तरह उनको आते देख-कर वशिष्ठ आदि मुनि लोग आपस में कहने लगे कि कहीं पिता के मारने के क्रोध में ये क्षत्रियों का नाश करने के लिए तो नहीं आ रहे हैं। पहले तो इनका क्रोध शान्त हो गया था परन्तु अब इनको कहीं फिर तो क्रोध नहीं आ गया। ऐसा कहकर ऋषि लोग अर्घ्य-पात्र ले आगे से बढ़ "राम-राम" ऐसा मधुर वाक्य बोले। तब प्रतापी परशुराम ने ऋषियों की पूजा ग्रहण कर रामचन्द्र से कहा।

---

## ७५वाँ सर्ग

### रामचन्द्र और परशुराम की बातचीत

हे दाशरथे! तुम तो बड़े पराक्रमी जान पड़ते हो। मैंने धनुष के तोड़ने का हाल अच्छी तरह सुना। इस धनुष का तोड़ना कठिन काम था। इसलिए मैं यह दूसरा उत्तम धनुष ले आया हूँ। इस महाधनुष को लो और बाण चढ़ाकर मुझे अपना बल दिखाओ। तब, इस धनुष के चढ़ाने से, तुम्हारा बल देखकर मैं तुमसे द्वन्द्वयुद्ध करूँगा। परशुराम की यह

बात सुनकर राजा दशरथ बड़े दुखी हुए। वे बड़े दीन वचन से बोले—

हे भार्गव! आपने तो इस क्षात्र धर्म और क्रोध को त्याग दिया था। मेरे इन बालकों पर दया कीजिए। आपने तो भार्गव-वंश में, उत्तम मुनि के यहाँ, जन्म लिया है। इन्द्र के सामने प्रतिज्ञा करके आपने तो सब शस्त्र त्याग दिये थे। आप तो सब भूमि का राज्य कश्यप को देकर, वन में, पर्वत पर तप करने चले गये थे। हे महामुनि! आप क्यों मेरा सत्यानाश करने आ पहुँचे हैं? एक राम के मर जाने पर हममें से कोई भी जीता न बचेगा।

दशरथ की बात को सुनी अनसुनी कर परशुराम फिर रामचन्द्र से बोले—हे राम! सारे संसार में विख्यात और बड़े मजबूत ये दो धनुष विश्वकर्मा के बनाये हुए थे। इनमें से एक तो देवताओं ने शिवजी के लिए बनवाया था। उससे शिवजी ने त्रिपुर दैत्य को मारा था। सो तुमने उसे तोड़ डाला। यह दूसरा धनुष भी उसी की जोड़ का है। देवताओं ने यह विष्णु को दिया था। एक समय देवताओं ने ब्रह्मा से पूछा था कि इन दोनों धनुषों में कौन सा खूब मजबूत है? तब ब्रह्मा ने अपने तप के प्रभाव से उन दोनों में बड़ा विरोध पैदा कर दिया। अब क्या था, शिव और विष्णु में बड़ा घोर युद्ध हुआ। उस समय, लड़ते-लड़ते, शिवजी का धनुष ढीला पड़ गया। विष्णु ने शिव को स्तम्भित कर दिया। देवताओं ने जब उन दोनों की प्रार्थना की तब युद्ध शान्त हुआ। इस तरह देवताओं ने शिव के धनुष से विष्णु के धनुष को अधिक बलवान् समझा। फिर शिवजी ने वह अपना धनुष विदेह देश के राजर्षि देवरात को सौंप दिया और विष्णु ने भृगुवंशी ऋचीक को धरोहर की तरह अपना धनुष दे दिया। फिर ऋचीक ने अपने पुत्र जमदग्नि को दिया और जब मेरे पिता ने अस्त्र-शस्त्र त्याग दिये थे तब अर्जुन* ने उनको मार डाला।

पिता के इस तरह मारे जाने पर क्रुद्ध होकर मैंने कितनी ही बार क्षत्रियों को मारा। फिर, मैंने सब पृथ्वी यज्ञ की दक्षिणा में दान कर दी। तप करने के लिए मैं महेन्द्राचल पर चला गया। इतने में ही सुना कि तुमने महादेव के धनुष को तोड़ डाला है, इसलिए मैं जल्द अपने स्थान से चला आया हूँ। हे रामचन्द्र! तुम हमारे इस धनुष को चढ़ाकर इस पर बाण रक्खो और अपने क्षत्रियधर्म का पालन करो। फिर, मैं तुमको समर्थ जानूँगा तो तुमसे युद्ध करूँगा।

---

## ७६वाँ सर्ग

### रामचन्द्र का धनुष चढ़ाना और परशुराम को जीतना

परशुराम के वचन सुनकर रामचन्द्र कुछ धीरे से बोले—हे भार्गव! आपने जो-जो काम किये हैं उन सबको मैंने सुना है। पिता (जमदग्निजी) के मारने का जो बदला आपने लिया उसका हाल भी मैं सुन चुका हूँ परन्तु आप मुझे क्षत्रिय-धर्म से हीन और असमर्थ समझकर मेरे तेज का निरादर करते हैं इसलिए आप मेरा पराक्रम देखिए। अब रामचन्द्र ने क्रुद्ध हो, परशुराम के हाथ से झट धनुष और बाण ले लिया। वे धनुष को खींचकर उस पर बाण चढ़ा-

* सहस्रबाहु अर्जुन।

कर बोले—हे परशुरामजी! एक तो आप मेरे पूज्य ब्राह्मण हैं और दूसरे विश्वामित्र की बहिन के पौत्र (पोते) हैं, इसलिए वह बाण आपके प्राण हरने के लिए मैं नहीं छोड़ सकता। कहिए, अब या तो आप की गति को, अर्थात् चरणों को, यानी आकाश-गमन इत्यादि आपकी शक्ति को इस बाण से नष्ट कर दूँ, या आपके लोकों को—जिन्हें आपने तपस्या से पाया है—नष्ट कर दूँ? क्योंकि यह वैष्णव बाण अपने वीर्य से शत्रु के बल और अहङ्कार का नाश कर देता है। यह निष्फल नहीं जाता।

रामचन्द्र जब उस धनुष को हाथ में लिये और बाण चढ़ाये हुए परशुराम से ऐसी बातें कर रहे थे तब गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, चारण, किन्नर, यक्ष, राक्षस और नाग सब ब्रह्मा को आगे कर इस कौतुक को बड़े आश्चर्य से देख रहे थे। परशुराम भी वीर्य-हीन होकर राम की ओर देखने लगे। रामचन्द्र के तेज से परशुरामजी जड़ के समान और पराक्रम-हीन हो गये।

परशुरामजी धीरे से बोले—हे राघव! जब मैंने यह सम्पूर्ण पृथ्वी कश्यप मुनि को दे डाली थी तब उन्होंने मुझसे कहा था कि अब तुम मेरी भूमि में मत बसो। इस तरह गुरु का वचन सुन और उसे मानकर मैं रात को पृथ्वी पर नहीं बसता। अतएव हे वीर! मेरी गति का नाश मत करो। मैं मन के समान वेग से उत्तम महेन्द्र पर्वत पर जाऊँगा परन्तु मैंने, जिन लोकों को तप से इकट्ठा किया है, उनका तुम नाश कर डालो। इस धनुष के चढ़ाने से मैं आपको देवताओं के स्वामी विष्णु जानता हूँ। हे परन्तप! तुम्हारा कल्याण हो। देखिए, ये सब देवता आपको देख रहे हैं। आप त्रिलोकीनाथ हो, आपके हाथ से मेरा पराभव होना कोई लज्जा की बात नहीं। आप बाण छोड़िए। इसके साथ ही मैं महेन्द्राचल पर चला जाऊँगा। ऐसा सुन रामचन्द्र ने उस बाण को चलाकर परशुराम के सब लोक नष्ट कर दिये। अब रामचन्द्र की प्रदक्षिणा कर परशुराम महेन्द्राचल को सिधारे। उनके जाते ही सब दिशाएँ और विदिशाएँ अन्धकार-रहित हो गईं। देवता और ऋषि रामचन्द्र की स्तुति करने लगे।

---

## ७७वाँ सर्ग

### राजा दशरथ का अयोध्या में पहुँचना

परशुराम के चले जाने पर श्रीरामचन्द्र ने वह धनुष वरुण के हाथ में देकर वशिष्ठ आदि ऋषियों को प्रणाम किया। फिर, रामचन्द्र ने पिता को विकल देखकर कहा—"परशुराम तो चले गये, अब आप चतुरङ्गिणी सेना को अयोध्या की ओर चलने की आज्ञा दीजिए।" रामचन्द्र का वचन सुन राजा ने दोनों भुजाओं से उनसे लिपटकर उनका मस्तक सूँघा और परशुराम के जाने का समाचार पाकर पुत्र का और अपना पुनर्जन्म माना। सेना को आज्ञा देकर और स्वयं भी प्रस्थान कर वे अयोध्यापुरी में पहुँच गये।

ध्वजा और पताकाओं से अयोध्या की बड़ी शोभा हो रही थी। उसमें तरह-तरह के बाजे बज रहे थे। सड़कों पर उत्तम छिड़काव हो रहा था। वहाँ तरह-तरह की माङ्गलिक वस्तुएँ हाथ में लिये हुए पुरवासी लोग राजा के आने की बाट देख रहे थे। उस समय राजा का आना सुनकर पुरवासी ब्राह्मण लोग आगे से बढ़ राजा को लेने आये। हिमाचल के समान ऊँचे और प्रिय राजभवन में राजा पुत्रों के साथ आ गये।

फिर कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी और और भी राज-स्त्रियों ने आकर सीता, ऊर्मिला और कुशध्वज की दोनों कन्याओं को विधि से मङ्गलाचार और होम करवाकर ग्रहण किया। अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनकर राजबधुओं ने देवमन्दिरों में जाकर विधि से देवताओं का पूजन किया और उनको प्रणाम किया। वे अपने-अपने पतियों से आनन्दित होकर रहने लगीं।

इस प्रकार चारों भाई विवाह कर अपने मित्रों के साथ आनन्द करने और पिता की सेवा में रहने लगे। कुछ दिन बाद भूपति ने भरत से कहा—हे पुत्र! देखो ये केकयराज के पुत्र तुम्हारे मामा युधाजित टिके हुए है। ये तुमको बुलाने के लिए आये थे।

पिता का वचन सुनकर भरत, शत्रुघ्न को साथ ले पिता, रामचन्द्र और माताओं से विदा हो मामा के साथ चल दिये। भरत और शत्रुघ्न को साथ ले युधाजित प्रसन्न हुए और अपनी राजधानी को पधारे। भरत के चले जाने पर राम और लक्ष्मण, दोनों भाई, पिता की सेवा में रहने लगे। पिता की आज्ञा से रामचन्द्र अब कुछ राज-काज भी करने लगे। वे समय-समय पर माताओं की और गुरुओं की सेवा अच्छी तरह करते थे। रामचन्द्र का ऐसा चाल-चलन देखकर और व्यवहार की रीतियों को तथा उनके स्वभाव को देखकर महाराज, पुरवासी, ब्राह्मण लोग और वैश्य महाजन आदि बड़े प्रसन्न होते थे; क्योंकि ये मनुष्यों में ब्रह्मा के समान बड़े यशस्वी और सत्यपराक्रमी थे।

रामचन्द्र ने कितने ही वर्षों तक सीता के साथ विहार किया। सीता पर रामचन्द्र की जैसी प्रीति थी वैसी ही सीता की भी रामचन्द्र पर थी। इन दोनों में गुण और रूप के द्वारा दिन-दिन प्रीति बढ़ती ही जाती थी। ये बिना ही कहे एक दूसरे के मन की बात जान लेते थे। राजकुमारी सीता रूप और गुणों में लक्ष्मी के बराबर थी। उसके साथ रामचन्द्र आनन्दपूर्वक रहने लगे।

अनूदितो बालकाण्डः सोऽयं गोपालशर्मणा।
मुदे भूयात् भगवतोः श्रीसीतारामयोश्चिरम्॥

॥ पं० गोपाल शर्मा का कहा हुआ यह बालकाण्ड भगवान् सीताराम की प्रसन्नता के लिए हो; अर्थात् इससे रामचन्द्रजी प्रसन्न हों।

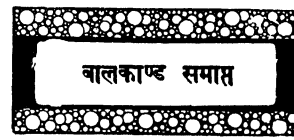


*

*

श्रीरामचन्द्राय नमः

# श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

(हिन्दीभाषानुवाद)

## अयोध्याकाण्ड

### भाषान्तरकार-कृत मङ्गलाचरण

श्लोकाः

देवानां कार्य्यसिद्ध्यै मनुजतनुधरो धर्म्मधैर्य्यानुयायी
पत्न्या भ्रात्रा समेतो वनवसतिरतो वन्यवृत्तिः सुवृत्तः ।
सन्धां सम्पालयन्यः पितुरनुभरतेनार्थितो राज्यलब्ध्यै
नोरीचक्रेऽप्यहं तं हरिमनिशमजं राममीशन्नमामि * ॥१॥

मंगलरूपां जानकीमपि शिरसा प्रणमामि ।
यत्कृपया ह्यनुवादने स्वमतिं साधु नयामि† ॥२॥

---

* देवताओं के काम सिद्ध करने के लिए जिन्होंने मनुष्य-देह धारण किया है, धर्म और धैर्य को जो कभी नहीं त्यागते, धर्मपत्नी और भ्राता के साथ जो सदाचारयुक्त मुनिवृत्ति धारण कर वन मे बसे, पिता की आज्ञा पालन करने के लिए जिन्होंने भरत के कहने से भी राजगद्दी स्वीकार न की, ऐसे अजन्मा प्रभु रामचन्द्रजी को मैं सदा प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

†जिनकी कृपा से ( इस वाल्मीकीय रामायण का ) अनुवाद करने मे मेरी बुद्धि अच्छी तरह लग रही है उन मङ्गलरूपिणी श्रीजानकीजी को भी मैं शिर झुकाकर, प्रणाम करता हूँ ॥२॥

# पहला सर्ग

## रामचन्द्र के गुणों का वर्णन और यौवराज्याभिषेक का विचार

पहले यह कथा हो चुकी है कि भरत अपने मामा के घर जाते समय शत्रुघ्न को भी साथ लेते गये थे। अब वहाँ वे, भाई के साथ, आनन्दपूर्वक रहने लगे। उनके मामा, अश्वपति, उन दोनों पर पुत्र के समान स्नेह रखते और सब प्रकार की वस्तुओं से उनका मनोरथ पूरा करते थे। फिर भी भरत और शत्रुघ्न अपने पिता राजा दशरथ को याद किया करते थे। इधर राजा दशरथ भी इन्द्र और वरुण के समान पुत्रों की याद करते रहते थे। क्योंकि वे चारों भाई शरीर से निकली हुई चार भुजाओं की तरह, राजा को प्यारे थे। इन चारों में भी रामचन्द्र पिता को बहुत प्यारे थे और उसी तरह राम सबके प्रीतिपात्र थे। क्योंकि रामचन्द्र तो रावण की मौत चाहनेवाले देवताओं की प्रार्थना से, साक्षात् सनातन भगवान् विष्णु का मनुष्य रूप धारण किये हुए थे। उस समय रामचन्द्र से कौशल्या की शोभा वैसी ही थी जैसे इन्द्र से अदिति की शोभा हुई थी। महावीर रामचन्द्र का रूप दिव्य था। उनमें ईर्ष्या न थी। उनके गुण बेजोड़ थे; वे पिता की तरह गुणवान् थे। वे बड़ी नर्मी से बातचीत करते थे। कड़वी बात सुनकर भी वे कठोर उत्तर न देते बल्कि चुप रह जाते थे। वे जरा सा भी उपकार करनेवाले पर सन्तुष्ट रहते थे और उनका कोई कितना ही नुकसान करे, पर वे उसको याद तक न रखते थे—बदला लेना तो दूर की बात है। अस्त्र चलाने का अभ्यास करने से जो समय बचता था उस छुट्टी के समय में वे सुशील, बूढ़े, ज्ञानी और सज्जनों से धर्मचर्चा करते थे। यद्यपि वे प्रियवादी, मधुरभाषी और स्वयं वीर थे फिर भी वीरता के घमण्ड से उद्धत न थे। वे सत्य का आदर करते थे और बड़े-बूढ़ों की पूजा। प्रजा पर उनका जैसा अनुराग था वैसा ही प्रजा भी उनको जी से चाहती थी। वे धर्म को जानते और ब्राह्मणों के भक्त थे। उनका अन्तःकरण पवित्र और चरित्र शुद्ध था। क्रोध को उन्होंने जीत लिया था। दीनों पर वे दया करते थे। कुलधर्म की रक्षा करने में उनका ध्यान रहता था। इसलिए वे क्षात्र-धर्म पर बहुत प्रेम रखते थे। अमङ्गल या अकार्य में उनकी रुचि न रहती थी। अधर्म की बातें उन्हें जरा भी न रुचती थीं। वाद-विवाद में वे बृहस्पति की तरह नई नई युक्तियों से काम लेते थे। वे खूब तन्दुरुस्त हट्टे-कट्टे, तरुण और अच्छे वक्ता थे। देश-काल को खूब पहचानते थे। वे मनुष्यों के भीतरी भाव को ताड़ लेते थे। वे अनोखे साधु थे। राजकुमार रामचन्द्र अपने श्रेष्ठ गुणों से प्रजा के (बाहर चलने-फिरनेवाले) प्राण से हो रहे थे। उन्होंने विधि से वेद और वेदाङ्ग पढ़कर समावर्तन किया था। अस्त्र-शस्त्रों पर उनका खासा अधिकार था। इस विद्या में वे पिता से बढ़कर थे। वे कल्याण के जन्मस्थान, सरल और सत्यवादी थे। धर्मार्थदर्शी वृद्ध ब्राह्मण उनके आचार्य थे। धर्म, अर्थ और काम के तत्त्व को वे जानते थे। जैसे वे स्मृतिमान् थे वैसे ही प्रतिभाशाली भी। लौकिक व्यवहारों में वे खूब सिद्धहस्त थे। वे बड़े नम्र थे। मतलब की बातों को खूब गुप्त रखते थे। वे प्रचुर सहाय-सम्पन्न थे। उनका क्रोध या हर्ष निष्फल न होता था। वे अर्थ वितरण करने और उपार्जन करने की विधि बहुत अच्छी जानते थे। वे गुरु लोगों के दृढ़ भक्त और स्थिर-प्रतिज्ञ थे। असद्वस्तु को ग्रहण करने की उन्हें कभी इच्छा ही

नहीं हुई। आलस्य उनमें नाम लेने को भी न था। वे अपने और दूसरों के दोषों को जानते थे। वे शास्त्रज्ञ और कृतज्ञ तो थे ही, दूसरों के मन तक की जान लेते थे। न्याय की रीति से वे दमन करने और दया दिखाने में भी कुशल थे। वे परिवारवालों का पालन और दुष्टजनों का शासन करने में चतुर थे। जिस तरह भौंरा पुष्पों से मधु सञ्चित करता है उसी तरह वे प्रजा से धन संग्रह करने में प्रवीण थे। अस्त्र-शस्त्रों में और नाटक आदि में उन्होंने श्रेष्ठता प्राप्त की थी। वे अर्थ और धर्म का संग्रह करके, अविरोध से कर्त्तव्य का पालन करते थे। विहार के लिए आवश्यक शिल्प—गीत, वाद्य, चित्र आदि—के वे ज्ञाता थे। वे खूब जानते थे कि कौन-कौन कामों में कितना खर्च करना चाहिए। हाथी-घोड़े आदि के सिखलाने में वे जैसे चतुर थे, वैसे ही पक्के सवार थे। वे धनुर्वेद में निष्णात अतिरथी थे। वे शत्रु के बल के हन्ता और चक्रादि व्यूह बनाने में निपुण थे। देवता लोग कुपित होकर भी युद्ध में उन्हें परास्त न कर सकते थे। क्रोध उनके काबू में था। घमण्ड उनमें नाम के लिए भी न था। वे दूसरों से डाह न करते थे। कोई भी उनकी अवज्ञा न कर सकता था और न वे समय के अधीन थे। ऐसे-ऐसे गुणों के कारण वे त्रिलोकी में पूजनीय थे। वे क्षमा में पृथ्वी की तरह, बुद्धि में बृहस्पति के सदृश और वीरता में इन्द्र के तुल्य थे। प्रजा को प्रिय और पिता को प्रीतिप्रद गुणों से श्रीरामचन्द्रजी किरणों से प्रदीप्त सूर्य की तरह शोभित हुए। ऐसे अनन्त गुणों के भाण्डार रामचन्द्रजी को पृथिवी ने अपना पति बनाना चाहा। उस समय वृद्ध और चिरञ्जीवी राजा ऐसे गुणी पुत्र को देखकर सोचने लगे कि मेरे जीते जी रामचन्द्र किस तरह राजा हों और मैं उन्हे राजपद पर अभिषिक्त देखकर प्रसन्न होऊँ। राजा के मन में यह इच्छा बढ़ती ही गई कि मैं अपने पुत्र को राजसिंहासन पर कब देखूँगा; क्योंकि रामचन्द्रजी लोगों की वृद्धि ही की इच्छा रखते, सब प्राणियों पर दया करते और मुझसे भी अधिक लोगों को प्रिय लगते हैं। पराक्रम में वे यम और इन्द्र के तुल्य हैं, बुद्धि में बृहस्पति के तुल्य, धीरता में पर्वत के तुल्य और गुणों में मुझसे भी अधिक हैं। सो इस प्रकार के पुत्र को, इस सम्पूर्ण पृथ्वी के राज्यासन पर बैठा देख मैं इस उम्र में स्वर्ग को जाऊँगा।

जो दूसरे राजाओं को दुर्लभ हैं ऐसे अगणित गुणों से युक्त पुत्र को देखकर महाराज दशरथ ने मन्त्रियों के साथ विचारकर रामचन्द्र को यौवराज्य देने का निश्चय किया। उस समय राजा ने मन्त्रियों से कहा—अब मैं बूढ़ा हो गया, बहुत दिन तक बचने की आशा नहीं। गगनमण्डल में ग्रह और नक्षत्र भी अनुकूल नहीं; इधर धरती पर भूकम्प आदि उत्पात होते हैं। ये सब अशुभसूचक हैं। इसलिए पूर्णचन्द्र सदृश आननवाले श्रीराम को मैं यौवराज्य देना चाहता हूँ। इसमें प्रजा की भी भलाई है और मेरी भी। फिर, राजा ने जल्द बहुत से नगरों और राष्ट्रों के प्रधान-प्रधान राजाओं को बुलवाकर इकट्ठा किया। अच्छी तरह से उनका सत्कार कर राजा ने स्वयं भी अच्छे वस्त्र और भूषणों से अलङ्कृत हो उनसे भेंट की। परन्तु राजा ने, जल्दी में केकयराज को और राजा जनक को, यह सन्देश न दिया। राजा ने अपने मन में यह भी सोचा था कि ये दोनों इस आनन्द समाचार को पीछे सुन लेंगे। इसके बाद राजा दशरथ आसन पर बैठ गये। फिर, और राजा लोग सभा में आ गये। महाराज ने सबको आसनों पर अपने सामने बैठाया। उस समय सामने बैठे हुए राजाओं और पुरवासी लोगों से

महाराज दशरथ, देवताओं में इन्द्र की तरह, शोभित हो रहे थे।

——

## दूसरा सर्ग

### रामचन्द्र को युवराज बनाने का विचार

उस समय महाराज दशरथ, हित और हर्ष देने-वाली बात दुन्दुभि के स्वर के तुल्य महागम्भीर, मनोहर और मेघ के तुल्य, रसीले स्वर से बोले—आप लोगों को तो मालूम ही है कि मेरे पुरखा राजाओं ने इस राज का पालन पुत्र के समान किया था। इसलिए मैं इस सारे राज भर की भलाई किया चाहता हूँ। देखो, मैं भी पहले राजाओं की तरह आलस्य छोड़कर नित्य प्रजा की रक्षा ही में तत्पर रहता हूँ; और इस लोक के हित के लिए, इस श्वेत छत्र के नीचे ही मैंने शरीर को जीर्ण कर डाला। अब मैं कई हज़ार वर्ष का हुआ। इस शरीर को अब मैं विश्राम देना चाहता हूँ। इस लोक के भारी धर्म्मभार को अजितेन्द्रिय नहीं उठा सकते। उसे ही ढोते-ढोते मैं थक गया हूँ। इसलिए अब मैं इन ब्राह्मणों की सम्मति लेकर पुत्र को प्रजाओं का हितकारी बनाकर विश्राम करना चाहता हूँ। यह पुत्र सब गुणों में श्रेष्ठ और सब प्रकार से मेरे तुल्य है और पराक्रम में इन्द्र के तुल्य है। इसलिए धर्म्मात्माओं में श्रेष्ठ, पुरुषोत्तम रामचन्द्र को कल प्रातःकाल ही पुष्य नक्षत्र-युक्त चन्द्रमा की तरह युवराज बनाऊँगा। वे लक्ष्मण के ज्येष्ठ भ्राता तुम्हारे योग्य स्वामी होंगे। उनसे त्रिलोकी भी सनाथ हो सकती है। इस प्रकार, इस पृथिवी को कल्याणयुक्त करके मैं क्लेश-रहित हो जाऊँगा। अब यदि मैंने यह विचार अच्छा और योग्य किया हो तो आप लोग इसमें सम्मति दें, अथवा बतलावें कि क्या करना चाहिए। यद्यपि इस विषय में मेरी प्रसन्नता है तथापि जो कोई और हित की बात हो तो आप लोग विचार के कहें, क्योंकि मध्यस्थ लोगों के परस्पर वाद-विवाद से अधिक हित होना सम्भव है।

राजा की इस बात का राजाओं ने इस प्रकार अनुमोदन किया जैसे वर्षाकाल में शब्द करते हुए मेघ का अनुमोदन मोर पक्षी अपनी बोली से करता है। इसके बाद लोगों ने इतना आनन्द प्रकट किया कि उनके आनन्द के शोर से मालूम पड़ने लगा मानों भूकम्प आ गया हो। फिर धर्मार्थ के जाननेवाले महाराज दशरथ के मन का अभिप्राय समझकर सब लोग सहमत हो, विचारकर राजा से बोले—राजन्! अब आप वृद्ध हो गये, इसलिए रामचन्द्र का यौवराज्याभिषेक कर दीजिए। हम चाहते हैं कि महाबाहु रामचन्द्र हाथी पर छत्र लगाकर चलें और हम उन्हें देखें। इतना सुनकर, उनके मन की बात जानने के लिए राजा अज्ञानी की तरह बोले—हे राजा लोगो! तुम्हारी यह बात सुनने से मैंने जाना कि तुम रामचन्द्र को स्वामी चाहते हो; परन्तु इसमें एक सन्देह है। उसको आप लोग ठीक-ठीक बतलाइए। पृथ्वी का पालन मैं तो धर्म्म से कर ही रहा हूँ फिर क्यों आप लोग युवराज बनाना चाहते हैं। राजा की बात सुनकर सबने कहा—हे नृप! आपके पुत्र के गुण बहुत और कल्याणकारी हैं। बुद्धिमान् और देवरूप रामचन्द्र के प्रिय और आनन्ददायक गुणों को हम कहते हैं; सुनिए—दिव्य गुणों के द्वारा रामचन्द्र इन्द्र के समान हैं इसलिए वे सब इक्ष्वाकुवंश के राजाओं से अधिक हैं। वे लोक में सत्पुरुष, सत्य में तत्पर, धर्म्म और लक्ष्मी की प्रतिष्ठा देनेवाले, प्रजा

को सुख देने में चन्द्र, क्षमा में पृथ्वी, बुद्धि में बृहस्पति, पराक्रम में इन्द्र, धर्म्मज्ञ, सत्यसन्ध, शीलवान्, ईर्ष्या-रहित, क्षमायुक्त, सरल, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय, कोमल, स्थिरचित्त, सदा सुन्दर, अनिन्दक, प्राणियों से प्रिय और सत्य बोलनेवाले, बहुश्रुत और वृद्ध ब्राह्मणों के उपासक हैं। इन गुणों के द्वारा इनकी अतुल कीर्त्ति, यश और तेज बढ़ता जाता है। देवता, असुर और मनुष्यों की सम्पूर्ण अस्त्रविद्याओं में ये निपुण हैं। इन्होंने अच्छी तरह विद्या पढ़ी है। गान्धर्वविद्या अर्थात् गानशास्त्र में भी ये निपुण हैं। ये कल्याणों की जन्मभूमि, साधु, दीनतारहित, महामति, श्रेष्ठ और धर्मार्थनिपुण तथा शिक्षित हैं। जब ये लक्ष्मण के साथ ग्राम वा नगर के लिए युद्ध करने जाते हैं तब बिना जीते नहीं लौटते। वहाँ से जब ये हाथी पर वा रथ पर चढ़े हुए आते हैं तब पुरवासियों से स्वजन की भाँति पुत्रों का, अग्नियों का, स्त्रियों का, दास और शिष्यों का, सबका क्रम से कुशल पूछते हैं, जैसे पिता पुत्रों से कुशल-क्षेम पूछता है। ये रामचन्द्र सदा हम लोगों से ऐसा पूछा करते हैं कि तुम्हारे वचन को शिष्यगण मानते और धर्म्म में तत्पर तो रहते हैं? ये मनुष्यों का दुख देख अत्यन्त दुःखी और उत्सवों में पिता के सदृश सन्तुष्ट होते हैं। ये सत्यवादी, महाधनुर्द्धर, वृद्धसेवी, जितेन्द्रिय, हँस के बोलनेवाले, सर्व प्रकार से धर्म्मसेवी, कल्याणों के सम्पादक, बिगाड़ की बात में चित्त न देनेवाले, उत्तरोत्तर युक्ति में बृहस्पति के तुल्य बोलनेवाले, अच्छी भौं, विस्तृत और रक्त नेत्र से साक्षात् विष्णु के तुल्य हैं। ये शूरता, वीरता और पराक्रम के द्वारा लोकप्रिय, प्रजा के पालन करने में तत्पर और विषयों की इच्छा से हीन हैं। केवल पृथ्वी की कौन कहे ये तीनों लोकों के पालन करने में समर्थ हैं। इनका क्रोध और प्रसाद कभी निरर्थक नहीं जाता। ये मारने योग्य को अवश्य मारते हैं और न मारने योग्य पर कभी क्रोध भी नहीं करते। ये जिस पर प्रसन्न होते हैं उसको धन से तृप्त कर देते हैं। ये दमयुक्त और प्रजा के प्यारे और स्वजनों को प्रीति देनेवाले हैं। ये गुणों से किरण-द्वारा सूर्य्य के समान शोभा देते हैं। इस प्रकार के गुणों से युक्त और लोकपालों के तुल्य रामचन्द्र को यह पृथ्वी अपना पति बनाना चाहती है। हे राघव! ये तुम्हारे पुत्र अच्छे गुणों से युक्त, मरीचि के पुत्र कश्यप की तरह तेजस्वी हैं। इनके लिए देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, राष्ट्र और पुर के भीतर और बाहर के स्त्री, वृद्ध और तरुण ये सभी सायङ्काल और प्रातःकाल हाथ जोड़ देवताओं से बल, आरोग्य और आयु माँगते हैं। हे राजन्! उनका यह माँगना तुम्हारे प्रसाद से सिद्ध हो। आपके पुत्र रामचन्द्र, जो नीलकमल के सदृश श्याम हैं, उनको हम लोग यौवराज्य के आसन पर बैठे देखें। महाराज दशरथ! हमारे हित के लिए आप अपने पुत्र का—जो देवता के तुल्य और सबके हित में तत्पर हैं—राज्यासन पर शीघ्र अभिषेक कर दीजिए।

---

## तीसरा सर्ग

### राजतिलक का सामान इकट्ठा करना

इस प्रकार हाथ जोड़कर वे लोग प्रार्थना कर रहे थे। उस प्रार्थना को आदर-पूर्वक सुनकर महाराज दशरथ प्यार और हित की बात बोले—अहा! मैं बड़ा प्रसन्न हूँ। मेरे बड़े भाग्य हैं जो आप लोग मेरे पुत्र को युवराज बनाना चाहते हैं। फिर उन्हीं के सामने, वशिष्ठ

और वामदेव इत्यादि ब्राह्मणों से वे कहने लगे कि इस श्रेष्ठ और पवित्र चैत्र मास में चारों ओर फूलों से जंगलों की शोभा हो रही है। इसी महीने में रामचन्द्र के यौवराज्य के लिए सब तैयारियाँ करो। ऐसा कहकर राजा जब चुप हो गये तब लोगों का बड़ा आनन्द-घोष हुआ। धीरे-धीरे जब कोलाहल शान्त हो गया तब वशिष्ठ मुनि से दशरथ बोले—भगवन्! रामचन्द्र के अभिषेक के लिए आज जो-जो काम और जो-जो सामग्री तैयार करनी चाहिए उसके लिए आप आज्ञा कीजिए।

मन्त्री लोग राजा दशरथ के आगे हाथ जोड़े हुए खड़े थे। राजा की बात सुनकर वशिष्ठ ने उन मन्त्रियों को आज्ञा दी कि सुवर्ण इत्यादि रत्न, पूजा-सामग्री, सब ओषधियाँ, श्वेतमाला, लावा, मधु, घृत, नवीन वस्त्र, रथ, सम्पूर्ण शस्त्र, चतुरङ्गिणी सेना, अच्छे लक्षणोंवाले हाथी, दो चँवर, ध्वजा, श्वेत छत्र, सुवर्ण के सौ कलश, (जो अग्नि के तुल्य चमकते हों) सुवर्ण से मढ़े हुए सींगोंवाले बैल, अखण्डित व्याघ्रचर्म्म और इसके सिवा जो कुछ चाहिए सो सब इकट्ठा कर प्रातःकाल राजा की अग्निशाला में लाकर रक्खो। अन्तःपुर के और सम्पूर्ण नगर के द्वारों को चन्दन-माला और मनोहर धूपों से पूजित करो, और कल प्रातःकाल मुख्य-मुख्य लक्ष ब्राह्मणों को सत्कारपूर्वक दही और दूध-युक्त भोजन करवाओ। इसके अतिरिक्त घी, दही और लावा जो कुछ उनको चाहिए सो सब दो और बहुत सी दक्षिणा दो। कल सूर्योदय में स्वस्तिवाचन होगा। इसलिए ब्राह्मणों को निमन्त्रण दे दो और उनके लिए आसन तैयार करो। पताका बाँधो और सड़कों पर खूब छिड़काव करो। तालजीवी लोग अर्थात् ताल बजाना जिनका काम है वे लोग और वेश्याएँ अच्छे वस्त्र और आभूषणों से अलङ्कृत होकर राजगृह की दूसरी ड्योढ़ी पर उपस्थित रहें। देवताओं के मन्दिरों में और चैत्यों के समीप अन्न और भक्ष्य द्रव्य, दक्षिणा और पूजा की सामग्री के सहित तैयार रहें। विशाल खड्गधारी सूर योद्धा लोग, शुद्ध वस्त्रों को पहिनकर, तैयार हो महाराज के आँगन में—जहाँ कि महोत्सव होगा—जावें।

दोनों मुनियों ने इस प्रकार आज्ञा देकर और सब कामों को ठीक ठाक कर दिया। फिर वे राजा के पास जाकर हर्ष-युक्त हो बोले कि महाराज, सब काम तैयार है। अब राजा ने सुमन्त्र से कहा कि रामचन्द्र को शीघ्र ले आओ। राजा की आज्ञा से सुमन्त्र जल्द गये और रामचन्द्र को रथ पर बैठाकर राजा के पास ले आये। उस समय पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण देश के राजा लोग म्लेच्छ आर्य्य अर्थात् मध्यदेशवासी और वन तथा पर्वत इत्यादि देशों के रहनेवाले महाराज की सभा में इस प्रकार बैठे थे जिस प्रकार इन्द्र की सभा में देवता बैठते हैं। उनके बीच में महाराज राजर्षि दशरथ इन्द्र की भाँति शोभा दे रहे थे। इतने में अटारी पर से गन्धर्वराज के तुल्य विख्यात पराक्रमी, दीर्घ बाहु महाबली, मत्त गजराज के सदृश गमन करनेवाले, चन्द्रमुख, प्रियदर्शन, रूप और उदारता के गुणों से लोगों की दृष्टि और चित्त को हर लेनेवाले पुत्र को आते देखकर महाराज प्रसन्न हुए। उनको देखकर प्रजा ऐसी आनन्दित होती थी जैसे घाम से पीड़ित प्राणी मेघ को देखकर प्रसन्न होता है। फिर सुमन्त्र ने रामचन्द्र को रथ पर से उतारा। जब वे पिता के पास चले तब सुमन्त्र हाथ जोड़कर पीछे-पीछे चला। फिर रामचन्द्र कैलास के एक शिखर के तुल्य ऊँची अटारी पर चढ़ गये। पिता के पास जाकर और अपना नाम सुनाकर उन्होंने राजा के चरणों में प्रणाम किया। उस

समय पुत्र को प्रणाम करते देख राजा दशरथ ने हाथ पकड़ लिया। फिर उनको गले से लगाकर मणि और सुवर्ण से जड़े हुए उच्च आसन पर बैठने की आज्ञा दी। पिता की आज्ञा पाकर रामचन्द्र ने उस आसन को ऐसे सुशोभित किया जैसे उदयकाल में सूर्य्य अपनी प्रभा से मेरु को सुशोभित करते हैं। उस समय रामचन्द्र से वह सभा ऐसी शोभित हुई जैसे शरत्काल का आकाश—जिसमें कि निर्म्मल ग्रह और नक्षत्र चमका करते हैं—चन्द्रमा के द्वारा सुशोभित होता है। पुत्र को देख राजा दशरथ ऐसे सन्तुष्ट हुए जैसे दर्पण में अपना भूषित प्रतिबिम्ब देखने से लोग प्रसन्न होते हैं। जिस प्रकार कश्यप मुनि इन्द्र से बोलते हैं उसी प्रकार राजा दशरथ रामचन्द्र से बोले—हे पुत्र! तुम मेरे ज्येष्ठ और योग्य पुत्र हो। इसके सिवा तुम गुणों में भी बड़े और मेरे अत्यन्त प्यारे हो। तुमने अपने गुणों से प्रजा को प्रसन्न कर रक्खा है, इसलिए तुम पुष्य नक्षत्र में यौवराज्य पद को प्राप्त करो। यद्यपि तुम स्वभाव ही से अच्छे गुणवान् हो तथापि स्नेह से मैं तुम्हारे हित की बात कहता हूँ। तुम विनयपूर्वक नित्य जितेन्द्रिय रहो और काम तथा क्रोध से उत्पन्न व्यसन को त्याग करो। परोक्ष विचार और प्रत्यक्ष विचार के द्वारा मन्त्री आदि को और सम्पूर्ण प्रजा को अपने वश में करो और प्रसन्न रक्खो। अन्न के भाण्डार और शस्त्रों के कारखानों को बहुत बढ़ाओ। देखो, प्रजा को प्रसन्न करके जो राजा पृथ्वी का पालन करता है उसके मित्र प्रसन्न होते हैं, जैसे कि अमृत पीने से देवता हर्षित होते हैं। अतः हे पुत्र! इस विषय में तुम सावधान रहो। मेरे वचन के अनुसार आचरण करो। राजा का वचन सुन रामचन्द्र के प्रियकांक्षी मित्रों ने शीघ्र ही यह बात कौशल्या से जा कही। यह खुशखबरी सुनानेवालों को कौशल्या ने सुवर्ण, गौ और तरह-तरह के रत्न दिये। अब, इधर, राजा को प्रणाम कर रामचन्द्र रथ पर चढ़ अपने निवास-स्थान को गये। पुरवासी लोग भी, राजा के वचन को सुन, राजा से विदा होकर अपने-अपने घर पर जाकर देवताओं की पूजा करने लगे।

—

## चौथा सर्ग

### दशरथ का रामचन्द्र को बुलाना और रामचन्द्र का माता के घर में जाना

अब पुरवासियों के चले जाने पर राजा ने मन्त्रियों के साथ फिर सलाह कर यह विचारा कि कल पुष्य नक्षत्र में राम को युवराजपद देना चाहिए। श्रीमहाराज ने घर पहुँचकर सुमन्त्र को बुलाया और रामचन्द्र को बुलाने की आज्ञा दी। राजा की आज्ञा से सुमन्त्र रामचन्द्र के मकान में गये। द्वारपालों ने रघुनन्दन को सुमन्त्र के आने की खबर दी। तब रामचन्द्र इनका फिर आना सुनकर शङ्कित हुए। सुमन्त्र को अपने पास बुलाकर वे कहने लगे कि तुम अपने आने का कारण कहो। मन्त्री ने कहा—आपको राजा देखना चाहते हैं। आगे आपकी इच्छा। सूत का वचन सुन फिर भी रामचन्द्र राजभवन में जल्द पहुँचे। इधर राजा ने भी रामचन्द्र का आना सुन जल्द भीतर बुला लिया। तब रामचन्द्र ने दूर से पिता को देख हाथ जोड़कर प्रणाम किया। महाराज ने भी पुत्र को गले लगाकर बैठने के लिए आसन दिया। महाराज ने कहा—हे रामचन्द्र! मैं अब बूढ़ा हो गया। मैंने बहुत कुछ

राजसुख भोग लिया और बहुत सी दक्षिणावाले सैकड़ों यज्ञ भी किये। तुम मेरे प्रिय पुत्र हो। हे पुरुष-श्रेष्ठ! मैंने दान दिये, यज्ञ किये और अध्ययन भी किया, इष्ट सुखों को भी भोगा। मैंने देवऋण, ऋषिऋण, पितृऋण, ब्राह्मणऋण और आत्मऋण से भी छुटकारा पाया। अब केवल तुम्हारे अभिषेक को छोड़ मुझको और कुछ भी करना नहीं है, इसलिए जो मैं तुमसे कहूँ सो करो। प्रजा के लोग तुमको राजा करना चाहते हैं। इसलिए मैं तुमको युवराज-पद का अभिषेक करूँगा। आज-कल मैं बुरे-बुरे स्वप्न देखता हूँ। आकाश में बड़ा शब्द करके वज्रपात के साथ बड़े-बड़े लुक्क गिरते हैं। मेरे जन्म-नक्षत्र को—सूर्य, मंगल और राहु इन—दारुण नक्षत्रों ने घेर लिया है। ज्योतिषी लोग ऐसा ही कहते है। अतएव इस प्रकार के दुष्ट निमित्तों के पैदा होने से बहुधा बड़ी विपत्ति में पड़कर राजा की मृत्यु होती है। सो हे राघव! जब तक मैं बना हूँ तब तक तुमको अपना अभिषेक करवा लेना चाहिए; क्योंकि प्राणियों की बुद्धि चञ्चल होती है। ज्योतिषी लोग कहते हैं कि आज पुनर्वसु है और कल, पुष्य होगा, सो पुष्य नक्षत्र में तुम अभिषिक्त हो जाओ। मेरा मन मुझे जल्दी करने के लिए कह रहा है। हे परन्तप! प्रातःकाल मैं तुम्हारा यौवराज्य पर अभिषेक करूँगा। इसलिए आज से तुम स्त्री-सहित इस रात्रि को ब्रह्मचर्य व्रत धारण करो। तुम्हारे मित्र लोग आज सावधानी से चारों ओर तुम्हारी रक्षा करें; क्योंकि इस प्रकार के कार्यों में बहुत विघ्न होते हैं। मैं यही चाहता हूँ कि जब तक भरत वहाँ से नहीं आते तब तक तुम्हारा अभिषेक हो जाय। यद्यपि तुम्हारे भाई भरत सज्जनों की रीति पर चलते हैं, ज्येष्ठ भ्राता के मनोऽनुसार काम करते हैं और धर्मात्मा, दयालु एवं जितेन्द्रिय हैं तथापि सज्जन और धर्मात्मा मनुष्यों का भी चित्त सदा स्थिर नहीं रहता।

राजा का वचन सुनकर और उनसे बिदा होकर रामचन्द्र माता के महल में गये। वहाँ जाकर माता को देखा। रेशमी वस्त्र पहने हुए वे मन्दिर में देवपूजन और राम के लिए राज्यलक्ष्मी की प्रार्थना कर रही थीं। वहाँ पर सुमित्रा और लक्ष्मण पहले ही से आकर बैठे थे। अभिषेक का समाचार सुन उन्होंने सीता को भी बुला लिया था। उस समय कौशल्या आँखें मूँदकर ध्यान कर रही थीं और ये लोग वहाँ बैठे-बैठे उनकी उपासना कर रहे थे। पुष्य नक्षत्र में पुत्र का यौवराज्याभिषेक होना सुनकर कौशल्या प्राणायाम से भगवान् का ध्यान कर रही थीं। उस समय रामचन्द्र ने उनको प्रणाम कर यह आनन्द की बात कही—अम्मा! पिता ने मुझे प्रजापालन के काम की आज्ञा दी है सो कल मेरा अभिषेक होगा। पिता की यही आज्ञा है। उपाध्याय लोगों की आज्ञा है कि मेरे साथ, आज की रात, सीता को भी उपवास करना चाहिए। पिताजी ने यही कहा है। सो कल के अभिषेचन में जो-जो मङ्गलकाम करने चाहिएँ वे सब मेरे और सीता के लिए तुम करो। जिस समाचार की बहुत दिन से बाट देखी जा रही थी उसको सुनकर कौशल्या, नेत्रों में आनन्द के आँसू भर, रामचन्द से बोलीं—हे वत्स रामचन्द्र! तुम चिरञ्जीव हो। तुम्हारे शत्रु नष्ट हों और तुम राज्यलक्ष्मी को पाकर मेरे और सुमित्रा के इष्टबन्धुओं को आनन्दित करो। बेटा! तुम अच्छे नक्षत्र में पैदा हुए जो तुमने अपने गुणों से पिता को प्रसन्न किया। मेरे लिए भगवान् पुरुषोत्तम की आराधना सफल हुई कि इक्ष्वाकुवंश की राज्यश्री तुमको मिलेगी।

लक्ष्मण पहले ही से हाथ जोड़े हुए बैठे थे। माता का वचन सुन रामचन्द्र कुछ मुसकराकर बोले—हे लक्ष्मण! तुम मेरे साथ इस पृथ्वी का पालन करो; क्योंकि तुम मेरी दूसरी आत्मा हो, इसलिए यह लक्ष्मी तुम्हारे पास आई है। तुम राज्य के फलों को यथेष्ट भोगो। तुम्हारे ही लिए मैं अपना जीवन और राज्य चाहता हूँ।

ऐसा कहकर रामचन्द्र ने दोनों माताओं को प्रणाम किया। उनसे विदा माँगकर और सीता को भी विदा कराकर वे अपने निवास-गृह को चले गये।

---

## पाँचवाँ सर्ग

### नियम सिखाने के लिए वशिष्ठ का रामचन्द्र के घर जाना

अब, इधर, महाराज दशरथ ने रामचन्द्र को उपदेश दे पुरोहित वशिष्ठ मुनि को बुलाकर कहा—हे तपोधन! आप रामचन्द्र के घर जाइए और उनसे तथा सीता से उपवास करने को कहिए। राजा का वचन सुन भगवान् वशिष्ठ ब्राह्म-रथ पर चढ़कर राम के भवन में गये। वह भवन श्वेत मेघमण्डल की भाँति चमक रहा था। वे तीन ड्योढ़ियों तक रथ ही में गये। तब रामचन्द्र ने मुनि के आने की खबर सुनी। सुनते ही वे बड़े आदर से वशिष्ठ के रथ के पास आये और उनको स्वयं रथ से उतारा। मुनि ने रामचन्द्र को बड़े प्यार और मीठे वचनों से कहा—हे राम! तुम्हारे पिता बहुत प्रसन्न हैं। कल तुम राज्य पाओगे इसलिए आज तुम सीता के साथ उपवास करो। प्रातःकाल राजा तुम्हारा यौवराज्याभिषेक करेंगे जैसे कि महाराज नहुष ने अपने पुत्र ययाति का किया था। फिर वे सीता से और रामचन्द्र से मंत्रयुक्त उपवास-विधि करवाकर और राम से पूजित हो, वहाँ से राजा के पास चले गये। रामचन्द्र भी अपने मित्रों से बातचीत करके, उनकी आज्ञा से, अपने घर में आ गये। उस समय रामचन्द्र के भवन में सब नर-नारी प्रसन्न हो रहे थे। उस भवन की ऐसी शोभा हुई जैसी मत्त भौंरों के द्वारा प्रफुल्ल कमलों से युक्त सरोवर की होती है। अब वशिष्ठ मुनि रामभवन से निकले तो क्या देखते हैं कि मार्ग लोगों से भर रहा है। सब सड़कों में, चारों ओर से, लोग रामचन्द्र का अभिषेकोत्सव देखने के लिए उत्कण्ठित हैं। झुण्ड के झुण्ड इकट्ठा होकर बड़ी भीड़ कर रहे हैं और आनन्द का ऐसा शब्द हो रहा है मानो समुद्र गरजता है। अयोध्या की सब गलियाँ सींची जा रही हैं। हर एक घर बड़ी-बड़ी लम्बी मालाओं से भूषित और ध्वजाओं से सुशोभित हो रहा है। स्त्री, बालक और वृद्ध सभी चाहते हैं कि कब सूर्य्य निकले और कब उस प्रजाओं के अलंकार-रूप, और आनन्द को बढ़ानेवाले अयोध्या के महोत्सव को देखें। इस प्रकार की भीड़ को देखते और उसको हटाते हुए राजपुरोहित धीरे-धीरे राजमहल में पहुँचे। श्वेत मेघ के शिखर की ऐसी अटारी पर चढ़कर वे महाराज दशरथ से ऐसे मिले जैसे इन्द्र से बृहस्पति मिलते हैं। उनको आते देख राजा ने अपना आसन छोड़ दिया। उनको जिस काम के लिए उन्होंने भेजा था उसकी बात पूछी। तब मुनि ने सब कह सुनाया। वहाँ सभा में जो और लोग बैठे थे वे आसन से उठ-उठकर ऋषि की बड़ाई करने लगे। इसके बाद महाराज, मुनि की आज्ञा से, उन सभासदों को बिदा कर

रनवास में चले गये—जैसे पर्वत की गुफाओं में सिंह चला जाता है। राजा का अन्तःपुर अनेक भूषित स्त्रियों से भरा हुआ था और इन्द्रगृह के समान सुशोभित था। उस समय उसकी ऐसी शोभा हुई जैसी चन्द्र के उदय से तारागण-युक्त आकाश की होती है।

---

## छठा सर्ग

### रामचन्द्र के नियमों का और अयोध्या के महोत्सव का वर्णन

अब, पुरोहित के चले जाने पर इधर रामचन्द्र पत्नी के साथ नियम से स्नान कर नारायण की उपासना में लग गये और हविष् के पात्र को नमस्कारपूर्वक विधि से ग्रहण कर जलते हुए अग्नि में भगवान् नारायण के मन्त्र से घी का होम करने लगे। शेष हवि को भोजन कर नारायण देव का ध्यान करते हुए कुश की चटाई पर वैदेही के साथ मौन हो और मन को रोककर विष्णु के मन्दिर में सो रहे। जब एक पहर रात बाकी रही तब रामचन्द्र ने उठकर अपने घर को तरह-तरह की वस्तुओं से सजाया। सूत, मागध और बन्दीजनों की सुखदायक वाणियों को सुनते हुए वे पूर्वसन्ध्या की उपासना कर, एकाग्र हो, जप करने लगे। फिर प्रणामपूर्वक भगवान् की स्तुति कर उन्होंने शुद्ध निर्मल रेशमी कपड़े पहने और ब्राह्मणों से पुण्याहवाचन कराया। उस समय ब्राह्मणों का गम्भीर और मधुर पुण्याहघोष, नगाड़े के शब्द से मिलकर, अयोध्या में भर गया।

अयोध्यावासी लोग सीतासहित रामचन्द्र के उपवास करने का समाचार पा बड़े प्रसन्न हुए और रात बीती जान नगरी को सजाने लगे। सफेद मेघ के शिखर के समान आभावाले देवमन्दिरों पर, चौराहों पर, गलियों में, चैत्यों पर और अटारियों पर, तरह-तरह के पदार्थों से भरी हुई दूकानों में, कुटुम्बी जनों के समृद्ध और श्रीयुक्त घरों में, सब सभाओं में, और प्रसिद्ध वृक्षों पर ध्वजाएँ फहराने लगीं। नट, नर्त्तक और गवैयों के सुन्दर गीतों को लोग सुनने लगे। उस समय जिसके मुख से देखो उसी के मुख से रामाभिषेक ही की बात सुन पड़ती थी। यहाँ तक कि चबूतरों पर, घरों में और घरों के द्वारों पर जो बालकों के झुण्ड खेल रहे थे वे भी आपस में यही कथा कह रहे थे। रामाभिषेक के समय पुरवासियों ने भी पुष्प, धूप और तरह-तरह की सुगन्धों से वासित कर राजमार्ग को खूब सजा दिया। लोगों ने सब गलियों के अगल-बगल दीपवृक्ष, अर्थात् पनसाखा, इत्यादि को प्रकाशित कर दिया कि कदाचित् रात रहते ही रामचन्द्र इधर से निकलें। पुरवासी लोग नगरी को इस प्रकार भूषित कर रामचन्द्र के यौवराज्याभिषेक की बाट देखते, झुण्ड के झुण्ड इकट्ठे हो, चबूतरों पर और बैठकों में बैठे-बैठे महाराज दशरथ की प्रशंसा करते थे—कि, देखो, इक्ष्वाकु कुलनन्दन महात्मा राजा दशरथ अपना बुढ़ापा देख राज्य पर राम का अभिषेक करेंगे। आज हम लोग अनुगृहीत हुए कि हम लोगों के राजा रामचन्द्र बहुत काल के लिए रक्षक होंगे। वे प्रजा के सब व्यवहारों को जानते हैं। वे गर्वहीन हैं, विद्वान् हैं, धर्मात्मा हैं और भ्रातृवत्सल हैं। भाइयों पर उनका जैसा प्रेम है वैसा ही हम पर भी है। धर्मात्मा और दोष-रहित महाराज दशरथ बहुत दिन तक जीवें जिनकी कृपा से हम राम को अभिषिक्त देखेंगे। पुरवासी लोग आपस में इस प्रकार की बातें कर रहे थे। इन्हें सुनकर इधर-उधर

से भी अनेक राष्ट्रवासी लोग वहाँ आकर इकट्ठे हो गये। पुरी भर गई। उस समय वहाँ उस जनसमूह के घूमने-फिरने और बातचीत इत्यादि करने से ऐसा शब्द होता था जैसे कि पर्वकालों में उछलते हुए सागर का शब्द सुन पड़ता है। इन्द्रपुरी जैसी उस पुरी को देखने की इच्छा से उस समय बहुत लोग वहाँ इकट्ठा हुए थे। उनसे उस पुरी की ऐसी शोभा हुई जैसी जल-जन्तु और मगर इत्यादि से समुद्र-जल की होती है।

---

## सातवाँ सर्ग

### मन्थरा का अटारी पर चढ़ नगर की शोभा देखना और आकर कैकेयी से कहना

कैकेयी के मायके से मन्थरा नाम की दासी आई थी। यह जन्म से ही कैकेयी के साथ रहती थी। आज यह अकस्मात् बड़ी ऊँची सफेद अटारी पर जा चढ़ी। वहाँ अटारी पर से अयोध्या की शोभा देखने लगी। उसने देखा कि चारों ओर ध्वजा-पताकाएँ फहरा रही हैं। सड़कों पर बड़ी सफाई के साथ चन्दन का छिड़काव हो रहा है। सब लोग सुन्दर वस्त्र आभूषणों से सजे हुए बड़े प्रसन्न हैं। ब्राह्मण लोग हाथ में माला और मोदक (लड्डू) लिये हुए बड़े प्रेम से वेदपाठ कर रहे हैं। देवताओं के मन्दिरों के दरवाजे खूब सज रहे हैं और वहाँ तरह-तरह के बाजे बज रहे हैं। रामचन्द्रजी के अभिषेक का उत्सव सुनकर अयोध्यावासी लोग बड़े मगन हो रहे हैं। हाथी, घोड़े और बैल खूब सज रहे हैं।

मन्थरा के समीप एक धाय श्वेत पट्टवस्त्र पहने हुए खड़ी थी। यह खूब प्रसन्न थी। नगरी की शोभा देखकर मन्थरा उससे पूछने लगी—रामचन्द्र की माता, किसी आनन्द में, इन लोगों को कुछ धन तो न बाँटेंगी? जान नहीं पड़ता कि इन लोगों को क्या हर्ष हुआ है। अथवा हर्षित होकर राजा कुछ विशेष कार्य्य करेंगे? तुम जानती हो तो कहो। वह धात्री मारे हर्ष के फूली नहीं समाती थी। वह उस दुष्टा कुब्जा की बातें सुनकर रामचन्द्र के श्रीलाभ का समाचार कहने लगी कि कल, पुष्य नक्षत्र में, राजा दशरथ रामचन्द्र का यौवराज्याभिषेक करेंगे। धात्री का वचन सुनकर कुब्जा अत्यन्त डाह से उस कैलासशिखर के समान ऊँचे महल पर से उतरी। उस समय वह पापिनी दासी क्रोध से जली जाती थी। उस समय कैकेयी सो रही थी। उसके पास जाकर वह कहने लगी कि हे मूढ़े! तू क्या पड़ी सोती है? उठ, तेरे लिए भय आ पहुँचा। तू दुःख से फँसी हुई अपने को नहीं जानती। हे सुन्दरि! तू अपने जिस सौभाग्य के भरोसे भूली रहती है, वह स्थिर नहीं है। वह तो ऐसा ही है जैसा ग्रीष्म ऋतु में नदी का सोता।

मन्थरा के कठोर वचन सुनकर कैकेयी को बड़ा दुःख हुआ। वह बोली—हे मन्थरे! कहो कहो, कुशल तो है? तूने ऐसा दुःख-भरा मुह किसलिए बनाया है और तू ऐसी दुःखित क्यों हो रही है? इस पर, बातें करने में बड़ी चतुर और उसकी बड़ी हितकारिणी मन्थरा अति दुःखित होकर उसके मन में भी दुख उपजाती और रामचन्द्र से स्नेह को छुड़ाती हुई बोली—हे देवि! तुम्हारे नाश का समय आ पहुचा। देखो, दशरथ राजा रामचन्द्र को यौवराज्य देना चाहते हैं। सो मैं अथाह भय में डूबी हुई दुःख और शोक से युक्त होकर आग से मानो जलाई जाती हुई तेरे हित के लिए यहाँ आई हूँ। हे कैकेयि! तेरे दुःख से मुझे दुख है और तेरी वृद्धि से मेरी वृद्धि है, इसमें सन्देह नहीं।

देख, तू बड़े राजा के कुल में पैदा हुई है फिर बड़े महाराज की पटरानी होकर तू राजधर्म्मों की गूढ़ बातों को क्यों नहीं समझती। देख, तेरा पति दिखलाने को तो धर्म्मवादी है परन्तु है भीतर से धूर्त्त। वह मुख पर बड़ी मीठी-मीठी बातें करता है परन्तु मन में बड़ा कठोर है और तू अन्तःकरण की शुद्ध है, इसीलिए ठगी गई। तुम्हारे पास जब राजा आते हैं तब मीठी-मीठी बातों से तुम्हारे मन को मोह लेते हैं। परन्तु देख, आज राजा कौशल्या ही का मनोरथ पूरा करेंगे। यह दुष्टात्मा राजा दशरथ तुम्हारे भाई-बन्धुओं के यहाँ भरत को भेजकर कल रामचन्द्र को अकण्टक राज्य पर बैठावेगा। यह राजा तेरा पति नहीं, यह तो शत्रु है। तूने इसे बे-जाने पति मान रक्खा है। जैसे माता हित की कामना से बालक का पोषण करती है और पीछे वह उसका नाशक होता है, और जैसे कोई साँप को कपड़े के धोखे से अपने शरीर में धारण करता है और पीछे वह काटकर उसे मार डालता है, और शत्रु या सर्प की बे परवाही करने से मनुष्य जिस दशा को पहुँचते हैं, वही दशा राजा दशरथ ने तेरी और तेरे बेटे की की। हे बाले! तू नित्य सुख भोगने के लायक है, सो पापी और झूठे राजा ने रामचन्द्र को राज्य पर बिठाकर तुझे इष्ट मित्रों सहित मारा। हे कैकेयि! इस समय तुझे अपने हित के लिए उपाय करना चाहिए। तू अपनी, पुत्र की, तथा मेरी रक्षा कर; और विस्मय की बात छोड़ दे।

मन्थरा की ये बातें सुनकर सुन्दरमुखी कैकेयी, शरत्काल के चन्द्र की तरह, हर्ष में भर कर अपनी शय्या से उठ बैठी। बड़ी प्रसन्न और आश्चर्य-युक्त होकर उसने कुब्जा को बड़े अच्छे-अच्छे गहने निकाल-कर दिये और कहा—हे मन्थरे! तूने यह बात तो मेरे आनन्द की सुनाई। इससे बढ़कर मेरा प्यारा क्या है। जो चीज तुझे प्यारी हो वह मुझसे माँग ले। मैं राम में और भरत में किसी बात का भेद नहीं देखती। इसलिए यदि रामचन्द्र को राजा राज्याभिषेक देते हैं तो मैं प्रसन्न हूँ। हे प्रिये! तूने जो रामाभिषेक की बात कही सो इस वचन-रूप अमृत से दूसरा कुछ भी मुझे प्यारा नहीं। इसलिए जो कुछ और तू वर माँगे वही मैं तुझे दूँ।

---

## आठवाँ सर्ग

### कैकेयी को मन्थरा का फिर समझाना

कैकेयी की बातें सुनकर मन्थरा बड़े क्रोध और दुःख से उसे झिड़ककर और उसके दिये हुए भूषण को फेंककर फिर बोली—हे मूर्ख! तू बे ठिकाने इतना हर्ष किसलिए कर रही है? अपने को तू शोक-समुद्र में डूबी हुई क्यों नहीं समझती? हे देवि! मैं तेरे दुःख से दुःखित होकर भी मन में तुझे हँसती हूँ। तू दुःख को पाकर, शोक करने के समय में भी, प्रसन्न है। मैं तेरी बुद्धि पर शोक करती हूँ। शत्रु-तुल्य सपत्नी के पुत्र की बढ़ती मृत्यु के समान है। उसको देखकर कौन पण्डिता स्त्री आनन्दित होगी? देख, एक राज्य के कारण राम को भरत से डर है। इसी बात को सोचकर मुझे बड़ा खेद है। क्योंकि बैरी से डर पैदा होता है। देख, लक्ष्मण सब तरह से राम के साथी हैं, इसी प्रकार शत्रुघ्न भरत के साथी हैं। ये दोनों तो, छोटे होने से, राज के अधिकारी ही नहीं। अब बचे राम और भरत, सो राज या तो राम को मिल सकता है या भरत को। हे भामिनि! इस क्रम से भी राज भरत को ही उचित

कैकेयी और मन्थरा [ पृष्ठ ८८

है। क्षत्रिय-धर्म के जाननेवाले, पण्डित, और समयानुकूल काम करनेवाले राम से मैं डरकर काँपती हूँ। मुझे तेरे पुत्र भरत का सोच है। इस समय कौशल्या धन्य है कि जिसका पुत्र कल, पुष्य नक्षत्र में, ब्राह्मणों के द्वारा यौवराज्याभिषेक पावेगा। कौशल्या सब पृथ्वी की स्वामिनी होगी और उसके शत्रु मारे जायँगे। तू दासी की नाईं हाथ जोड़े सामने खड़ी रहेगी। इस तरह तू और हम तो उसकी टहलनी, और भरत राम के टहलुआ होंगे। राम की स्त्रियाँ प्रसन्न होंगी और भरत की ऐसी दशा देखकर तुम्हारी पुत्रवधू अप्रसन्न रहेंगी।

मन्थरा की बातें सुनकर कैकेयी राम के गुणों की बड़ाई करने लगी। उसने कहा कि रामचन्द्र तो धर्म्मज्ञ, गुणवान्, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, सत्यवादी और पवित्र राजा के प्रथम पुत्र हैं। इसलिए वही राज्यासन के योग्य हैं। वे दीर्घायु भाइयों का ऐसा पालन करेंगे जैसे पिता पुत्रों का पालन करता है। हे कुब्जे! तू रामाभिषेक सुनकर दुखी क्यों होती है? भरत भी, सौ वर्ष के बाद, पितृ-पितामह का राज्य अवश्य पावेंगे। सो हे मन्थरे! इस उदयकाल में तू जली जाती है! इस होनेवाले कल्याण में तुझे दुःख क्यों होता है? मुझे तो जैसे भरत हैं वैसे ही वरन् उनसे भी बढ़कर रामचन्द्र प्यारे है; क्योंकि वे कौशल्या से भी अधिक मेरी सेवा करते हैं। यदि राम ही राज्य पावेंगे तो क्या चिन्ता है? वह राज्य भरत का भी है; क्योंकि रामचन्द्र अपने ही तुल्य भाइयों को भी मानते हैं।

कैकेयी का वचन सुनकर मन्थरा बड़ी दुःखित हुई। वह लम्बी गरम साँस लेकर फिर बोली—हे अनर्थदर्शिनी तू मूर्खता से नहीं जानती कि दुःख-सागर में किस तरह डूबी हुई है। देख, राम राजा होंगे; फिर राम का जो पुत्र होगा वह राज्य करेगा। हे कैकेयी! इस प्रकार राजवंश से भरत दूर किये जायँगे। हे भामिनि! राजा के सब पुत्र राज्यासन पर नहीं बैठते और जो सब बैठाये जायँ तो बड़ा अन्याय हो। इसलिए राजा लोग बड़े पुत्र को राज्य का भार सौंपते हैं। शायद कभी छोटा बेटा गुणवान् हो और बड़ा गुणहीन, तो छोटे को राज्य मिल जाता है। सो यह तुम्हारा पुत्र, अनाथ की नाईं, सुखों से और राजवंश से दूर किया जायगा। इसलिए मैं तेरे लिए आई हूँ; पर तू तो मेरी कुछ सुनती ही नहीं, उलटा सपत्नी की वृद्धि देख तू मुझे पारितोषिक देना चाहती है। तू भली भाँति समझ ले कि अकण्टक राज्य पाकर रामचन्द्र या तो भरत को देश से निकाल देंगे या मार डालेंगे। देख, तूने बालक भरत को मामा के घर भेज दिया। पास रहने से बेल और पेड़ों में भी प्रीति होती है, मनुष्यों का तो कहना ही क्या है। जैसे लक्ष्मण राम को प्यारे हैं उसी प्रकार शत्रुघ्न भी भरत को प्यारे हैं इसलिए वे भरत के सङ्ग चले गये। देखो, सुना जाता है कि वन में कोई वृक्ष था। वनवासी लोग उसको काटना चाहते थे। उसको ईषीका नामक कण्टक-वृक्षों ने घेरकर बचा लिया। लक्ष्मण जैसे राम के रक्षक हैं उसी प्रकार से रामचन्द्र लक्ष्मण के रक्षक है। इन दोनों में ऐसी प्रीति है जैसी अश्विनीकुमार भाइयों में है। लोक में ऐसी ही प्रसिद्धि है। इसलिए रामचन्द्र लक्ष्मण के विषय में कुछ भी घात न करेंगे; परन्तु भरत के विषय में अवश्य पाप बुद्धि करेंगे। इसलिए मेरी राय तो यही है कि राम वन को जायँ। इसमें तेरा भी बड़ा हित है। ऐसा करने से तेरे भाई-बन्धुओं का और कुटुम्ब का भी भला होगा। यदि भरत राज्य पा जायँगे तभी यह मनोरथ सिद्ध होगा, नहीं तो नहीं। और देख, तेरा सुखरूप बालक भरत राम का सहज शत्रु है। वह पृथ्वीपति राम के वश में नष्ट होकर किस प्रकार

से जियेगा। हे कैकेयि! वन में सिंह से झपटे गये हाथियों के झुण्ड की तरह तू राम से भरत को बचा। तूने पहिले अपने सौभाग्य के अहङ्कार से कौशल्या का अनादर किया था। राम की माता तुझसे क्या उसका बदला न लेगी? बड़े समुद्रों और पर्वतों से भरी हुई इस पृथ्वी को जब रामचन्द्र पावेंगे तब तू भरत के साथ अनादर का दुःख भोगेगी! राम जब राज्य पर बैठेंगे तब भरत अवश्य नष्ट होंगे। इसलिए जैसे बने वैसे ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे भरत को राज्य और राम को वनवास हो।

---

## नवाँ सर्ग

### कैकेयी का कोपभवन में जाना

जब मन्थरा ने इस प्रकार समझाया तब कैकेयी क्रोध से जल उठी। लम्बी और गरम साँस लेकर वह मन्थरा से बोली— आज ही मैं राम को वन में भिजवाती हूँ और भरत को यौराज्याभिषेक दिलवाती हूँ। परन्तु इस घड़ी वह उपाय देखना चाहिए जिसमें भरत ही राज्य पावें और रामचन्द्र किसी प्रकार से न पावें।

वह पापिनी दासी राम के लिए घात कर रही थी। वह कैकेयी का वचन सुनकर बोली—अच्छा देख, मैं वह उपाय बतलाती हूँ जिससे केवल भरत ही राज्य पावें। हे कैकेयि! क्या तुझे याद नहीं है या याद होने पर भी तू छिपाती है? तूने ही मुझसे कई बार वह बात कही थी। अच्छा, जो तू मेरे ही मुख से सुनना चाहती हो तो मैं कहती हूँ। ले सुन और कर। मन्थरा की बात सुन कैकेयी पलँग पर से उठकर कहने लगी— हे मन्थरे! मुझे वह उपाय बतला जिसमें भरत ही राज्यासन पावें—राम नहीं। कैकेयी की बात सुनकर वह दुष्टा बोली—पहले, देवासुर-युद्ध में तुम्हारे पति इन्द्र की सहायता के लिए गये थे। उनके साथ अनेक राजर्षि गये थे। राजा तुमको भी अपने साथ ले गये थे। दक्षिण दिशा में, दण्डक वन के पास, वैजयन्त नामक एक पुर था। वहाँ का राजा तिमिध्वज सैकड़ों तरह की माया जानता था। वह शम्बर नाम से प्रसिद्ध था। उसने देवताओं से और इन्द्र से युद्ध ठान दिया। उस महासंग्राम में जो पुरुष बाण आदि शस्त्रों से घायल होकर रात को सोते थे उनको राक्षस लोग बिस्तरे पर से खींचकर मार डालते थे। वहाँ पर राजा दशरथ ने उनके साथ महायुद्ध किया। उन लोगों ने भी इनको शस्त्रों से बहुत घायल कर डाला। जब ये मूर्छित हो गये तो तुम इनको संग्राम में से, बाहर ले गईं और जब वहाँ भी इन पर प्रहार होने लगे तब बड़े यत्न से तुमने इनकी रक्षा की। हे शुभदर्शने! उस समय राजा ने, सचेत होने पर, प्रसन्न होकर तुमको दो वर दिये, तब तुमने कहा—हे स्वामिन्! जब मैं चाहूँगी तब इन वरों को माँग लूँगी! राजा ने यह बात मान ली। यह हाल मैं तो जानती नहीं थी, परन्तु तुम्हीं ने मुझे सुनाया था। सो मैंने तुम्हारे स्नेह से यह बात मन में रख छोड़ी थी। अब तू हठ करके रामाभिषेक की सामग्री को पलटवा दे और उन दो वरों में से एक से तो भरत का अभिषेक माँग ले, और दूसरे से राम को १४ वर्ष का वनवास। जब तक चौदह वर्ष में राम लौटेंगे तब तक प्रजा का प्रेम हो जाने से तुम्हारे पुत्र का राज्य अटल हो जायगा। हे कैकेयि! तू क्रोध करके कोपभवन में चली जा। मैले कपड़े पहिन कर वहाँ धरती पर सो रह। बिछौने पर न सोना। राजा आवें तो उनको

देखकर उसी भूमि पर पड़ी पड़ी रोती रहना। उनकी ओर न तो देखना और न बोलना। तू सदा पति की प्यारी है इसमें मुझे कुछ भी संदेह नहीं। तेरे लिए तो महाराज आग में भी कूद सकते हैं। उनमें इतना सामर्थ्य नहीं कि तुझे नाराज करें और क्रोधयुक्त देखें। तेरी प्रीति के लिए महाराज प्राण तक त्याग सकते हैं। वे तेरे वचन को न टालेंगे। कैकेयि! तू अपने सौभाग्य के बल को तो देख। परन्तु देखना, राजा कितने ही मणि, मोती, सुवर्ण और तरह तरह के रत्न तुझे देने को कहें तो तू उसमें मन न देना। तुम उन्हीं दोनों वरों की ओर ध्यान रखना। उनको न भूलना। जब राजा तुम्हें उठाकर वर देने को तैयार हों तब यही दो वर अर्थात् "१४ वर्ष राम को वनवास और भरत को राज्य" माँगना। फिर जब तक राम वन से लौटेंगे तब तक भरत का राज्य जम जायगा और सदा यही राजा बने रहेंगे। हे देवि! तू राजा से राम के लिए वनवास माँग। इससे तेरे पुत्र के सब काम बन जायँगे। राम को वनवास हो जाने से प्रजा की प्रीति उन पर से हट जायगी और भरत शत्रुरहित निष्कण्टक राज्य करेंगे। जब तक राम वन से लौटेंगे तब तक भरत राज्य की जड़ को भीतर बाहर से दृढ़ कर लेंगे; क्योंकि तेरा पुत्र अपने सुहृदों के साथ नीति से सब मनुष्यों को वश में कर लेगा। इसलिए मैं तुझे बार बार यह बात सिखलाती हूँ और इस अनर्थ को तुझे अर्थरूप से ग्रहण करवाती हूँ।

छोटी लड़की को जैसे कोई बहका देता है उसी तरह मन्थरा से बहकाई गई कैकेयी उसकी बातों का विश्वास करके बड़ी प्रसन्न होकर बोली—हे श्रेष्ठ बोलनेवाली! मैं तेरी बुद्धि को नहीं जानती। पृथ्वी में जितनी कुब्जा दासियाँ हैं उन सबमें तू श्रेष्ठ है। तू ही मेरी हितकारिणी है। हे कुब्जा! मैं राजा का भीतरी कर्तव्य नहीं जानती कि वे क्या करना चाहते हैं। एक तुझे छोड़ कर सभी टेढ़े और अंग भंगयुक्त परम पापिष्ठ हैं। वायु से झुके हुए कमल की तरह तेरा रूप बड़ा प्रिय लगता है। तेरा वक्षःस्थल कन्धों तक मांस से भरा और ऊँचा है। सुन्दर नाभि से युक्त उदर, वक्षःस्थल से मानों लज्जित होकर, शान्त अर्थात् भीतर धँसा हुआ है। तेरी जङ्घायें भरी हुई और स्तन खूब मोटे हैं। तेरा मुख विमल चन्द्र के तुल्य है। अहो मन्थरे! तेरी क्या ही शोभा हो रही है। तेरी जङ्घायें निर्मल हैं और कटि करधनी से भूषित है। तेरी जङ्घायें कैसे सुन्दर ढंग से बनी हैं और उनके नीचे चरण कैसे सुन्दर देख पड़ते हैं। हे मन्थरे! तू जब रेशमी वस्त्र पहन कर मेरे आगे आगे चलती है तब अति शोभा देती है। शम्बर दैत्य के पास जो हजार माया थीं वे सब माया और, और और भी तेरे हृदय में वास करती हैं। तेरा यह कूबर बहुत उठा हुआ है। इसमें बुद्धि, माया और क्षत्रियों की विद्यायें बसती हैं। जब भरत का अभिषेक हो जायगा और राम वन को चले जायँगे तब मैं तुझे सुवर्ण की माला दूँगी और उत्तम सुवर्ण से तेरे इस मांस के गोले को ढक दूँगी। तेरे मुख पर सुवर्ण से निर्मित चित्र-वर्ण का तिलक करवाऊँगी और तेरे लिए अच्छे अच्छे भूषण बनवा दूँगी। उस समय तू अच्छे वस्त्रों को पहिन देवता की भाँति चलेगी। चन्द्र से डाह करनेवाले इस अनुपम मुख के द्वारा तू अपने शत्रुओं से गर्व करती हुई सुन्दर चाल से चलेगी। गहनों से सजी हुई अनेक कुबड़ी औरतें तेरे चरणों की सेवा करेंगी। जैसी कि तू मेरी सेवा करती है। इस प्रकार कैकेयी से बड़ाई पाकर कुब्जा ने अच्छी श्वेत शय्या पर, वेदी पर अग्नि की

ज्वाला के तुल्य, लेटी हुई कैकेयी से कहा—हे कैकेयि ! जल निकल जाने पर फिर पुल बाँधना कुछ फल नहीं देता। इसलिए तू उठ कर अपने कल्याण का कार्य्य कर और राजा जो अपना क्रोध दिखला। कैकेयी अपने सौभाग्य के घमण्ड में थी। दासी के समझाने और उत्साहित करने से उसने मन्थरा के साथ कोप-भवन में प्रवेश करके कई लाख के मोतियों के हार को और बढ़िया बढ़िया गहनों को त्याग दिया। वह भूमि पर बैठ गई और मन्थरा से बोली—हे कुब्जे ! या तो तू राजा से कहेगी कि 'कैकेयी कोपभवन में मर गई' या राम वन को जायँगे और भरत राज्य पावेंगे। मुझे अब सुवर्ण से, रत्नों से और भोजन से कुछ भी मतलब नहीं जो राम का अभिषेक होगा तो निश्चय ही मैं जीवित न रहूँगी।

रानी का ऐसा वचन सुनकर भी मन्थरा राम के विषय में अहितकारी बड़े कड़े वचनों का उपदेश कैकेयी को देने लगी। उसने कहा—हे कल्याणि ! मैं तुझे यह बात पक्की करके कहती हूँ कि जो राम राजा होंगे तो तू पुत्र सहित दुःख पावेगी। इसलिए ऐसा यत्न करना जिसमें भरत-अभिषेक हो। इस प्रकार कुब्जा के वचनरूप बाणों के द्वारा बारंबार बेधी गई कैकेयी हृदय पर हाथ रख कर विस्मित और क्रोधित हो करके बोली—हे कुब्जे ! या तो तू मुझे यहाँ यम के घर पहुँची देख कर राजा को खबर देगी या बहुत समय के लिए राम वन को जायँगे और भरत राजा होंगे। जो राम यहाँ से वन को न जायँगे तो मैं बिछौना, माला, चन्दन, अञ्जन, पान और भोजन कुछ भी ग्रहण न करूँगी और न अपना जीवन ही रक्खूँगी।

ऐसा कठोर वचन कह कर और अपने सब गहनों को फेंक कर, बिना ही बिछौने की भूमि पर—स्वर्ग से भूमि पर गिरी हुई किन्नरी की तरह—कैकेयि लेट रही। अब उस समय रानी ऐसी लगती थी जैसे बिना तारागणों का अन्धकार-पूर्ण आकाशमण्डल हो। क्योंकि उसके मुँह पर क्रोधरूप अन्धकार छाया हुआ था और उसने अपनी माला और सब भूषण उतार कर फेंक दिये थे।

---

## दसवाँ सर्ग

### राजा का कैकेयी के भवन में जाना और उसे समझाना

विंधे बाण से बींधी हुई किन्नरी की तरह कैकेयी उस पापिनी कुब्जा के उपदेश से भूमि पर लेटी लेटी और मन से काम का अच्छी तरह निश्चय कर धीरे धीरे मन्थरा से कहने लगी। उस समय मन्थरा के वचनों से मोहित होकर कैकेयी, नागिन की तरह, लम्बी गरम साँस लेती और कुछ अपने हित का विचार करती जाती थी। उसकी यह दशा देख कर मन्थरा ऐसी प्रसन्न हुई जैसे सिद्धि मिल जाने पर कोई प्रसन्न होता है। कैकेयी ज्यों ज्यों क्रोध कर अपनी भौंहें टेढ़ी करती जाती थी त्यों त्यों इस दुष्ट दासी को आनन्द होता जाता था। कैकेयी ने जिन दिव्य भूषणों को और चित्रमाला को भूमि पर डाल दिया था वे भूमि को ऐसे शोभित करते थे जैसे आकाश को नक्षत्र भूषित करते हैं। कैकेयी एक वेणी को धारण किये और मैले कपड़े पहने हुए भूमि पर पड़ी मूर्छित किन्नरी के तुल्य देख पड़ती थी।

इधर महाराज दशरथ ने रामचन्द्र के अभिषेक की आज्ञा देकर लोगों को बिदा किया और मन में यह ठान

राजा दशरथ कैकेयी के भवन में । [ पृष्ठ ९२

कर कि आज राम का अभिषेक निश्चित हुआ, वे अपनी प्रिया को प्रिय सन्देश सुनाने के लिए अन्तःपुर में गये। वे कैकेयी के सुन्दर महल में पहुँचे। चन्द्रमा जिस तरह सफेद बादलों से मण्डित ग्रहयुक्त आकाश में गमन करता है उसी तरह वहाँ राजा पहुँचे। वहाँ सुग्गे, मोर, क्रौञ्च और हंस बोल रहे थे। कहीं बाजों का शब्द हो रहा था। वहाँ चम्पक और अशोक वृक्षों से शोभित लतागृह और चित्रगृह अच्छे शोभायुक्त बनाये गये थे। उनमें हाथीदाँत की, चाँदी की और सुवर्ण की वेदिकायें थीं। वहाँ ऐसे ऐसे वृक्ष लगाये गये थे जो सब काल में फूलते और फलते थे। वहाँ अच्छी-अच्छी बावड़िया बनी हुई थीं। हाथीदाँत, चाँदी और सुवर्ण के बने हुए तरह तरह के आसन, चौकियाँ इत्यादि वहाँ बैठने के लिए रक्खी हुई थीं। वहाँ विविध अन्न, पान और भक्ष्य पदार्थ सुशोभित हो रहे थे। वह महल बड़े बड़े मूल्य के भूषणों से स्वर्ग की भाँति शोभा दे रहा था। वहाँ उत्तम शयन पर कैकेयी को न देख राजा पूछने और विषाद करने लगे। राजा उस समय कामबल से संयुक्त हो रति की इच्छा से वहाँ गये थे। राजा के उस समय को कैकेयी कभी टालती न थी। राजा भी कभी सूनसान घर में न आये थे। जब राजा ने स्वार्थ में तत्पर कैकेयी को पूछा तब द्वारपालिका डरती हुई हाथ जोड़कर बोली कि हे देव! रानी तो अत्यन्त क्रुद्ध हो कोपभवन में पड़ी हैं। यह सुनकर राजा बड़े दुःखित हुए। उस समय राजा की सब इन्द्रियाँ चञ्चल और व्याकुल हो गईं। जाकर देखा तो वह भूमि पर पड़ी है। उस समय निर्दोषी और निष्कपट वृद्ध महाराज दशरथ ने प्राणों से भी प्यारी और दुष्ट मनोरथ से भूमि पर पड़ी हुई उस तरुणी को देखा। उसे देख कर वे स्नेह से व्याकुल हो उठे। वह कटी हुई लता के समान पड़ी थी। वह स्वर्ग से ढकेली हुई किन्नरी के सदृश, पुण्यक्षय होने के कारण देवलोक से गिरी हुई अप्सरा की तरह, और मोहन करनेवाली माया की नाईं पड़ी थी। वह फन्दे से बँधी हुई हरिणी के तुल्य और वन में व्याध-विषबाण से बींधी हुई हथिनी के सदृश पड़ी थी। कामी राजा मन में डरते डरते महागज की तरह उसे हाथों से छू कर बोले—हे देवि! मैं नहीं जानता कि तू मेरे ऊपर किस लिए क्रुद्ध हो गई है? क्या किसी ने तेरी बराबरी की, अथवा किसी ने अनादर तो नहीं किया है जो तू मुझे दुःख देने के लिए पृथिवी पर सोती है? यदि मैंने कुछ भी अपराध नहीं किया है तो फिर क्यों धरती में सोकर मेरे मन को पीड़ा दे रही हो? जो तू किसी व्याधि से पीड़ित है तो हे भामिनि! मुझे बतला दे। मेरे पास अच्छे कुशल और सब प्रकार से सन्तुष्ट अनेक वैद्य हैं, वे तुझे नीरोग और सुखी कर देंगे। अथवा तू कह कि किसने तेरा अप्रिय काम किया है या किसका प्रिय किया जाय? बतला, कौन अपने प्रिय मनोरथ को और कौन अप्रिय वस्तु को पावे। हे देवि! तू न तो मतलब को छिपा और न अपनी देह को सुखा। केवल यह कह दे कि कौन मनुष्य मारा जाय जो कि मारने के योग्य नहीं है अथवा कौन छोड़ दिया जाय जो कि मारे जाने योग्य है? कौन दरिद्र धनी बनाया जाय, अथवा कौन धनी निर्धन किया जाय? देख, मैं और जितने मेरे लोग हैं वे सब तेरे वश में हैं और तेरे अनुचर हैं। कोई भी तेरे मन की बात को टाल नहीं सकता और न मैं ही तेरी बात टाल सकता हूँ। यहाँ तक कि मैं अपने प्राण भी देकर तेरे प्रिय मनोरथ सिद्ध करने को तैयार हूँ। इसलिए जो तेरे मन में हो सो कह। मेरे प्रेम को जान बूझकर भी तुझे ऐसी शंका करना उचित नहीं। देख, मैं अपने पुण्य की सौगन्द

खाकर कहता हूँ कि तेरे मन की बात करूँगा। देख, जहाँ तक सूर्य घूमता है वहाँ तक सारी पृथ्वी मेरे वश में है। उसमें भी द्राविड़, सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, दक्षिणापथ, वङ्ग, अङ्ग, मागध, मत्स्य, काशी, और कोशल देश मेरे ही अधिकार में हैं। इनमें अनेक द्रव्य, धन, धान्य, और सुन्दर भेड़-बकरियाँ (पशु) होती हैं। इनमें से जो तुझे दरकार हो सो माँग। हे सुन्दरि! तू क्यों श्रम करती है? उठ। हे कैकेयि! मुझसे ठीक ठीक बात कह और जिससे तुझे यह भय हुआ है सो मुझे कह सुना। उसको मैं उसी तरह दूर कर दूँगा जैसे सूर्य ओस को नाश कर देते हैं।

इस प्रकार से समझाई हुई कैकेयी ने शान्त होकर वह अप्रिय वचन कहना आरम्भ किया जिससे कि पति को बहुत पीड़ा हो।

---

## ग्यारहवाँ सर्ग

### कैकेयी का वर माँगना

इस प्रकार काम पीड़ित महाराज दशरथ की बातें सुनकर कैकेयी बड़ी कठोरता से बोली—हे देव! न किसी ने मुझे धिक्कारा है और न किसी ने मेरा अनादर किया है। पर मेरा एक मतलब है जो तुम्हारे करने लायक है। यदि आप उसको करना चाहते हो तो पहले प्रतिज्ञा कीजिए, तब मैं अपना मतलब कहूँगी।

कैकेयी का वचन सुन काम से व्याकुल महाराज दशरथ कुछ हँसकर भूमि पर बैठी हुई कैकेयी की चोटी के बालों को थाम कर बोले—कैकेयि! तू इस बात को नहीं जानती कि तुझसे अत्यन्त प्रिय—केवल रामचन्द्र को छोड़कर—मुझे दूसरा कोई नहीं। जो रामचन्द्र संग्राम में अजेय और मेरे प्राणों का सहारा है, मैं उसकी शपथ खाता हूँ। जो तेरे मन का अभीष्ट हो सो तू कह। देख जिसको देखे बिना मैं मुहूर्त्त भर भी नहीं जी सकता उस राम की सौगन्द है, मैं तेरा वचन अवश्य पूरा करूँगा। अपने से और अन्य तीनों पुत्रों से मैं जिसको अधिक मानता हूँ उस राम की मैं सौगन्द खाता हूँ कि तेरा मनोरथ सिद्ध करूँगा। हे भद्रे! इस दुःख से मेरे हृदय का उद्धार कर। तू ही अपने मन से विचार कर, तुझे जो अच्छा जान पड़े सो कह। तू तो जानती ही है कि तुझ से अन्य मुझे कोई भी प्रिय नहीं है इसलिए शङ्का छोड़ दे। मैं अपने पुण्य की शपथ करता हूँ कि तेरा कहा अवश्य करूँगा।

कैकेयी के जी में पाप तो छा ही रहा था। राजा को इस तरह मोहित देख कर उसने अपना काम बनाने का अच्छा अवसर समझा। वह प्रसन्न होकर आये हुए यम की तरह झट बोल उठी—राजन्! तुम मुझे सौगन्द खाकर वर देने को तैयार हो, इस बात को इन्द्र सहित तैंतीस कोटि देवता और चन्द्र, सूर्य्य, आकाश, ग्रह, रात्रि, दिन, दिशा, जगत्, पृथिवी, गन्धर्व, राक्षस, भूत, गृहदेवता, और और भी जो कोई प्राणी हों वे सुनें कि सत्यसन्ध महातेजस्वी धर्मज्ञ सत्यवादी और पवित्र महाराजा दशरथ मुझे वर देते हैं।

इस प्रकार राजा को चारों ओर से वचनरूपी फाँसी से बाँध कर और उनकी कुछ प्रशंसा भी करके कैकेयी बोली—हे राजन्! पूर्व वृत्तान्त को याद कीजिए। देवासुर-संग्राम में जब तुमको शत्रु ने मृतक तुल्य कर दिया था तब वहाँ जागती रह कर मैंने प्रयत्न से तुमको बचाया था। इस काम से प्रसन्न होकर तुमने मुझे दो वर दिये। हे देव! उन वरों को मैंने तुम्हारे पास धरोहर

रक्खा था। इसलिए अब मैं उनको आप से लेना चाहती हूँ। यदि प्रतिज्ञा करके आप मुझे वर न देंगे तो, आज ही, तुम्हारे इस अनादर से मैं अपने जीवन को त्याग दूँगी।

इस भाँति राजा को कैकेयी ने वाणी से ही बाँध डाला और राजा ने भी उसको स्वीकार कर लिया। जैसे मृग स्वयं ही जाल में फँस जाता है वैसे ही राजा भी अपनी प्रतिज्ञा से आप फँस गये। अब कैकेयी बोली कि राजन्! देखो मैं उन वरों को माँगती हूँ। पहिला वर तो यह है कि "राम के अभिषेक के लिए जो सामग्री तैयार की गई है उससे मेरे पुत्र भरत का राज्याभिषेक किया जाय" और दूसरा वर जो देवासुर-संग्राम में प्रसन्न होकर तुमने मुझे दिया था उसका यह समय आ पहुँचा कि "चौदह वर्ष पर्य्यन्त दण्डक वन में चीर और मृग-चर्म को धारण कर राम तपस्वी हों, और आज भरत अकण्टक यौवराज्य को पावें।" यही मेरा परम मनोरथ है। मैं आपही के दिये हुए वर माँगती हूँ। मैं आजही राम को वन जाते देखूँ। हे राजराजेश्वर! आप अपनी प्रतिज्ञा को पूरी कीजिए और कुल-शील की रक्षा कीजिए। ऋषि लोग कहते हैं कि सदा सच बोलना स्वर्ग में सुख का दाता होता है।

---

## बारहवाँ सर्ग

### महाराज का पश्चात्ताप करना, व्याकुल होना और कैकेयी को धिक्कारना

कैकेयी का यह दारुण वचन सुनकर महाराज को बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे कि मैं यह स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ, या मेरे चित्त को मोह हुआ है! या कुछ ग्रह-पीड़ा है या हमारा मन ही कुछ बिगड़ गया है। सोच विचार करने पर भी राजा को कुछ शान्ति न मिली। थोड़ी देर में राजा का चित्त कुछ ठिकाने हुआ। पर उस वाक्य से महाराज ऐसे दुखी और दीन हो गये थे जैसे सिंहनी को देख कर हिरन दीन हो जाता है। उस समय धरती पर बैठे हुए महाराज दशरथ ऐसी ऊँची साँस ले रहे थे कि जैसे यन्त्र-मण्डल में मन्त्र से जकड़ा गया महाविषधारी सर्प फुँफकारता है। उस समय राजा क्रोध से "अहो धिक्कार है!" यह वचन कह कर शोक से फिर मूर्च्छित हो गये। फिर कुछ देर में जब चेत हुआ तब अतिदुःखित हुए। फिर क्रुद्ध हो तेज से जलाते हुए कैकेयी से बोले—अरी क्रूर! दुष्ट कर्म करनेवाली! इस कुल का विनाश करनेवाली! राम ने या मैंने तेरा क्या अपराध किया है? राम तो सदा तुझसे माता के समान बर्ताव करते हैं। इस तरह से उसका अनर्थ करने के लिए तू क्यों उद्यत हुई? हा! मैंने तुझे अपने विनाश के लिए घर में रक्खा। मैं तो तुझे राजा की पुत्री जानता था। परन्तु मैंने यह नहीं समझा कि तू महाविषधर सर्पिणी है। जब कि सब लोग रामचन्द्र की प्रशंसा ही करते हैं तब मैं किस अपराध के लिए प्रिय पुत्र को त्यागूँ? मैं कौशल्या, सुमित्रा और राज्यलक्ष्मी को तथा प्राणों को भी त्याग सकता हूँ परन्तु पितृवत्सल राम को नहीं छोड़ूँगा। जिस ज्येष्ठ पुत्र को देखने से मुझे महा आनन्द होता है और जिसको देखे बिना मेरी चेतना नष्ट होने लगती है उसे मैं किस प्रकार दूर करूँ। लोक चाहे बिना सूर्य्य के रहें और धान्य तथा प्राण बिना ही जल के बच जायँ परन्तु राम के बिना मेरे शरीर में प्राण नहीं रह सकता। इस कारण हे पापिनी! बस कर,

अब इस निश्चय को छोड़ दे। मस्तक से मैं तेरे चरणों को छूता हूँ। तू मेरे ऊपर प्रसन्न हो। पापिनी! तूने किस लिए ऐसा परम-दारुण पाप मन में सोच रक्खा है? अथवा कदाचित् तू ने भरत पर प्रीति वा अप्रीति जानने के लिए मेरी परीक्षा ली हो। जो हो, तू ने भरत के लिए जो पहला वर माँगा उसे मैं मंजूर करता हूँ। रामचन्द्र मेरे ज्येष्ठ पुत्र और धर्मज्येष्ठ भी हैं। जान पड़ता है, राम की प्रशंसा तू सिर्फ मेरे मनो-रञ्जन के लिए किया करती थी। तभी तो अब उसके अभिषेक का मङ्गल वचन सुनकर दुखी हो मुझे भारी दुख दे रही है। शून्य घर में रहने से तू पिशाच इत्यादि के वश में तो नहीं हो गई जो इस तरह बकती है। हे देवि! नीति-मार्ग से चलनेवाले इक्ष्वाकु के कुल में यह बड़ा अन्याय हुआ जो तेरी बुद्धि ऐसी बिगड़ गई। परन्तु हे विशाल नेत्रोंवाली! तूने आज तक मेरा अयोग्य वा अप्रिय कभी नहीं किया था इसलिए मैं तेरी इस बात पर विश्वास नहीं करता। हे बाले! तू मुझ से प्रायः कहा करती थी कि रामचन्द्र भरत के तुल्य हैं। सो हे देवि! उसी धर्म्मात्मा यशस्वी राम-चन्द्र के लिए तू चौदह वष तक वनवास क्यों चाहती है। ऐसे सुकुमार रामचन्द्र के लिए अतिदारुण वनवास तू क्यों चाहती है? हे शुभलोचने! क्या कारण है कि ऐसे सुन्दर रामचन्द्र का घर से निकाल देना तुझे रुचता है! देख, रामचन्द्र तो तेरी सेवा किया करते हैं, और वे भरत से भी अधिक तेरी सेवा करते हैं, इसलिए मैं नहीं समझता कि तू रामचन्द्र की अपेक्षा भरत का विशेष आदर करती हो! तेरी सेवा, तेरा मान, तेरा प्रमाण और तेरे वचनों का मानना—यह सब पुरु-षोत्तम रामचन्द्र को छोड़ और कौन कर सकता है? देख, मेरे हजारों स्त्रियाँ और बहुत से नौकर हैं; परन्तु इनमें से कोई भी रामचन्द्र की निन्दा नहीं करता। राम शुद्धचित्त से सब देशवासियों को शान्ति देते और उनके कार्य्यों को वश में किये रहते हैं। और देख राघव नीति से लोगों को, दान से ब्राह्मणों को, सेवा से गुरु इत्यादि बड़े लोगों को, और संग्राम में धनुष से शत्रुओं को अपने अधीन करते हैं। सत्य, दान, तप, त्याग, मित्रता, शुद्धि, कोमलता, विद्या और गुरुसेवा, ये गुण रामचन्द्र ही में हैं। इस प्रकार के साधु, देवतुल्य और महार्षि के तुल्य तेजयुक्त रामचन्द्र के लिए तू क्यों ऐसा पाप का वचन कहती है? मैंने आज तक रामचन्द्र को किसी से कठोर या अप्रिय वचन बोलते नहीं सुना और न मुझे इसका स्मरण होता है। जब सुनते हैं तब प्रिय वचन ही। भला ऐसे राम से मैं, तेरे लिए, किस प्रकार यह अप्रिय वचन कहूँगा? जिसमें क्षमा, तप, त्याग, सत्य धर्म, कृतज्ञता और प्राणियों की अहिंसा आदि सब गुण मौजूद हैं उसके बिना मेरी क्या गति होगी? हे कैकेयि! मैं बूढ़ा हूँ, मेरा अन्त अब दूर नहीं, मैं कितनी हीनता से बातें कर रहा हूँ। मुझ तपस्वी पर तुझे दया करनी चाहिए। सारी पृथ्वी पर जो कुछ मिल सकता है वह सब मैं तुझे दूँगा। देख, तू मेरी मृत्यु का उपाय मत कर। मैं हाथ जोड़ता हूँ, यही क्यों, तेरे चरणों पर भी गिरता हूँ। तू राम के लिए शरण दे और मुझे भी अधर्म से बचा।

इस प्रकार दुःख से भरे, विलाप करते, मूर्च्छित घूमते, चिन्ता से भरे और शोक-समुद्र के पार जाने के लिए बारबार बक झक करते हुए महाराज दशरथ से कैकेयी फिर भी कठोर वचन कहने लगी—राजन्! यदि वर देकर आप पछताते हैं तो लोक में आपको कौन धर्मात्मा कहेगा? हे धर्मज्ञ! जब कि बहुत से राजर्षि लोग इकट्ठा होकर तुम से पूछेंगे तो क्या उत्तर दोगे? वहाँ

पर आपको यही कहना पड़ेगा कि मैं जिसकी कृपा से जीता हूँ और जिसने सदा मेरी रक्षा की उस कैकेयी की प्रतिज्ञा मैंने झूठ कर दी। राजन्! तुम वर देकर दूसरी बात बोलते हो। इससे इक्ष्वाकुवंश के राजाओं की निन्दा कराओगे। देखो, राजा शैव्य ने बाज पक्षी को अपना मांस देकर कबूतर को बचाया था। अलर्क ने अन्धे ब्राह्मण को अपनी आँखें निकाल कर दे दीं और देवताओं से प्रतिज्ञा करके सागर अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता। हे नराधिप! इन पूर्व वृत्तान्तों को याद कर अपनी प्रतिज्ञा को मिथ्या मत करो। हे दुर्मते! तुम सत्य धर्म को छोड़कर और राम को राज्याभिषेक देकर, कौशल्या के साथ विहार करना चाहते हो! अब चाहे अधर्म हो या धर्म, सत्य हो या मिथ्या, परन्तु तुम ने मेरे लिए जो प्रतिज्ञा की है वह उलट नहीं सकती। यदि तुम राम को अभिषेक करोगे तो इसी समय, तुम्हारे देखते ही देखते, विष खाकर मैं अपना प्राण त्याग दूँगी। मैं एक दिन भी जो कौशल्या को लोगों की प्रणाम लेते देखूँगी तो फिर अपने शरीर को न रक्खूँगी। हे मनुजाधिप! मैं भरत की और अपनी शपथ करके कहती हूँ कि बिना राम को वनवास दिये मैं और किसी बात से प्रसन्न न हूँगी।

यह कह कर कैकेयी चुप हो गई। राजा विलाप कर रहे थे, उनसे वह फिर कुछ भी न बोली। अब कैकेयी के उस क्रूर वचन (राम के वनवास और भरत के राज्य) को सुन कर राजा क्षण भर विकल हो, कैकेयी से न बोले। जो अप्रिय बोल रही थी उस प्रिया की ओर वे एकटक देखते रहे। हृदय को अप्रिय और दुःख-शोक से भरी हुई, वज्र के समान उस वाणी को सुन कर वे सुखी न हुए। उसका निश्चय अर्थात् राम को वन भेजना, और अपनी शपथ—इन दोनों की ओर ध्यान दे "राम" कहकर और ऊँची साँस लेकर वे कटे वृक्ष की तरह गिर पड़े। उस समय राजा ऐसे हो गये जैसा पागल तथा विपरीत बुद्धिवाला रोगी और मन्त्रबल से तेजहीन सर्प हो जाता है। कुछ देर में दीन और व्याकुल होकर राजा कैकेयी से कहने लगे—हे कैकेयी! यह अनर्थ तुझे अर्थ के समान जान पड़ता है, इसका उपदेश तुझे किसने दिया है? तू पिशाचग्रस्त की तरह बोलने में जरा भी नहीं लजाती? पहले बाल्यावस्था में तो तेरा स्वभाव ऐसा नहीं था जैसा मैं इस समय देखता हूँ। तुझे ऐसा भय कहाँ से पैदा हुआ जो तू ऐसा वर माँगती है कि "भरत को राज्य और राम को वनवास!" हे कैकेयि! यदि तुझे अपने पति की, लोगों की और भरत की भलाई करनी हो तो अब इस अभिप्राय को छोड़ दे। इस पाप से तू अपनी बुद्धि को हटा ले। अरी कठोर, पाप-सङ्कल्पवाली, नीच, पापिन! तू क्या मुझ में या राम में कोई अपराध देखती है? मैं तो जानता हूँ कि राम के बिना भरत कभी राजगद्दी न चाहेंगे, क्योंकि मैं उसको राम से भी अधिक धर्मशील मानता हूँ। जब मैं राम से कहूँगा कि तुम वन में जाओ तब, उस समय, मेरा वचन सुनकर उनका मुख राहु-ग्रस्त चन्द्र की नाईं हो जायगा। मैं उसको किस प्रकार देखूँगा। मैंने अपने मित्रों के संग जिस बात का निश्चय कर रक्खा है उसको बदल जाना—शत्रु से मारी हुई सेना की तरह—मैं किस प्रकार देखूँगा। ये राजा लोग दूर-दूर के देशों से आये हैं। ये मुझे क्या कहेंगे कि यह इक्ष्वाकुवंश का राजा बालक का सा व्यवहार करता है। इतने दिन तक यह राज्य का पालन कैसे करता था? और बहुत से गुणवान् वृद्ध जब राम को पूछेंगे तब मैं क्या कहूँगा? यदि मैं सच-सच कहूँगा कि कैकेयी से पीड़ित होकर मैंने राम को वनवास

दिया तो पहले दिन की राज्याभिषेकवाली बात झूठी हो जायगी। राम को वन भेजने से कौशल्या मुझे क्या कहेगी और मैं ही उसको क्या जवाब दूँगा? हे कैकेयि! देख, कौशल्या जब-जब दासी, सखी, पत्नी, बहिन, और माता के समान आकर प्रिय बोलती और सदा मेरे प्रिय की आकांक्षा करती हुई मेरे सामने आती थी, तब-तब मैं तेरी ही खातिर उसका सत्कार या मान नहीं करता था। जो बातें मैंने तेरा मन रखने के लिए और तेरे सन्तोष के लिए की थीं वे अब मुझे ऐसा दुःख दे रही हैं जैसे कि स्वाद के वश होकर व्यञ्जन-युक्त कुपथ्य भोजन करके रोगी दुःख पाता है। रामचन्द्र का वनवास, रूप, अनादर देखकर डरी हुई सुमित्रा किस तरह मेरा विश्वास करेगी! अरे बड़े खेद की बात है कि इन अप्रिय वचनों को वैदेही भी सुनेगी! अर्थात् एक तो मेरे मरने और दूसरा राम के वन जाने की बात सीता भी सुनेगी। खेद है, मेरे लिए शोक करती हुई वैदेही अपने प्राणों का त्याग वैसे ही करेगी जैसे हिमालय के पास किन्नर-रहित किन्नरी अपने प्राणों को नहीं रखती। राम को वन जाते और मैथिली को रोते देख मैं बहुत समय तक जीने का भरोसा नहीं रखता। अवश्य ही तू विधवा होकर पुत्र के साथ राज्य करेगी। हे देवि! राम के चले जाने पर मुझे जीने का उत्साह नहीं है। तेरे पहले कामों से मैं तुझे पतिव्रता जानता था, परन्तु इस काम से तो मैं तुझे अत्यन्त असती समझता हूँ; जैसे देखने में बहुत सुन्दर परन्तु विष मिली हुई मदिरा को पीकर पीछे उसका असर किसी को जान पड़े। तूने झूठे-झूठे वचनों से मुझे शान्ति देकर मेरा घात किया जैसे कि गीत से मोहित कर व्याध मृग का प्राण हर लेता है। भले आदमी मुझे पुत्र बेचनेवाला (क्योंकि लड़के को वनवास देने के एवज में स्त्री का सुख लिया) और पापी कहेंगे और गलियों में मेरी निन्दा करेंगे, जैसे शराबखोर ब्राह्मण की निन्दा होती है। बड़ा क्लेश है! अत्यन्त दुःख है जो मैं तेरी ऐसी-ऐसी बातें सहता हूँ। इस समय मैंने यह ऐसा दुःख पाया है जैसे कोई पूर्वजन्म-कृत पाप का फल पावे। हे पापिनि! जिस तरह कोई बिना जाने अपने गले की फाँसी की डोरी को सँभाले रहता है उसी तरह मुझ ऐसे पापी ने बहुत समय तक तेरी रक्षा की। जैसे बालक एकान्त में काले साँप के साथ खेलता है वैसे ही मैं तेरे साथ विहार करता हुआ तुझे अपनी मृत्यु नहीं जानता था। लोग मेरी निन्दा अवश्य करेंगे; क्योंकि मैंने उस महात्मा को बिना पिता के पुत्र की नाईं कर दिया! हा! लोग कहेंगे कि राजा दशरथ कामी और मूर्ख है जो स्त्री के कारण प्रिय पुत्र को वनवास देता है। एक तो राम ब्रह्मचर्य्यव्रत से दुर्बल हो ही रहा था, अब भोग-काल में भी फिर बड़ा दुःख पावेगा। हा! जब मैं कहूँगा कि वन को जा तब वह मेरा पुत्र "बहुत अच्छा" के सिवा दूसरी बात कदापि न बोलेगा। यदि वह मेरी इस आज्ञा को टाल दे तो मेरा बड़ा हित हो; परन्तु वह ऐसा न करेगा। क्योंकि राम का चित्त छल-रहित है। मेरे अभिप्राय को जाने बिना ही वह तुरन्त स्वीकार कर लेगा। राघव के वन जाने पर सब लोगों से धिक्कारे हुए मुझ असमर्थ को मौत यमपुरी में ले जायगी। फिर जब मैं मर जाऊँगा और राम वन चले जायँगे तब जो मेरे इष्ट लोग बचे हैं उनको तू न जाने क्या-क्या दुःख देगी। यदि कौशल्या मुझे, राम को या राम-लक्ष्मण को न देखेगी तो वह इस दुःख को न सह सकेगी—वह भी मेरे ही साथ प्राण त्याग देगी। यही हाल सुमित्रा का होगा। हे कैकेयि! तू कौशल्या, सुमित्रा और तीनों पुत्रों के साथ

मुझे नरक-तुल्य दुःख में डालकर सुख भोग। जिस इक्ष्वाकु-कुल को राम और हम छोड़ देंगे, जो गुणों से सदा सत्कृत रहा है और जो आज तक क्षोभ-रहित चला आता है उसे तू व्याकुल करके पालेगी। यदि राम का वन जाना भरत को प्रिय हो तो वह मेरी प्रेतक्रिया (दाह आदि) न करे। अरी दुष्टा मेरी शत्रु रूप कैकेयि! मेरे मरने और राम के वन जाने से तू पूर्ण-मनोरथ और विधवा होकर अपने पुत्र के साथ राज्य करना। हे राजपुत्रि! मेरे पूरे अभाग्य से तूने मेरे घर में निवास किया; इस कारण से लोक में पापी के तुल्य मेरी अपकीर्त्ति होगी। लोग धिक्कार देंगे और प्राणियों के सामने मेरी निन्दा हुई। जो राम रथ, हाथी और घोड़े पर सवार होकर चलते हैं वही महावन में पाँव-पाँव किस प्रकार चलेंगे? कानों में कुण्डल पहिने हुए रसोइया लोग जिसके भोजन के लिए* अहंपूर्वता से सुन्दर पान और भोजन बनाते थे वह मेरा पुत्र कसैले-तीते और कड़ुए जङ्गली भोजन को खाकर किस प्रकार समय बितावेगा? मेरा पुत्र जो अच्छे मूल्यवान् वस्त्रों को धारण करता था वह गेरुआ वस्त्र पहनकर भूमि पर निवास कैसे करेगा? हा! तेरे सिवा और कौन ऐसा कठोर वचन बोल सकता है कि "राम को वनवास और भरत को राजतिलक दो"। धिक्कार है स्त्रियों को जो धूर्त्त और स्वार्थतत्पर होती हैं। यह बात मैं स्त्री-जाति को नहीं कहता, केवल भरत की माता को कहता हूँ। अरी अनर्थ साधनेवाली, स्वार्थ में तत्पर, और मेरे पश्चात्ताप के लिए आग्रह करनेवाली! तू मुझमें अथवा राम में क्या बुराई देखती है? हे कैकेयि! राम को दुःख में मग्न देख, पिता पुत्रों को त्यागेंगे और भार्या प्रिय पतियों को त्याग देंगी। संसार में गड़बड़ मच जावेगी। देख, मैं उस देव-कुमार रूप अपने पुत्र को आते देख आनन्दित होता हूँ। उसके दर्शन से मैं बुढ़ापे में फिर युवा सा हो जाता हूँ। चाहे सूर्य के बिना संसार का काम चल जाय और इन्द्र के बिना बरसे जीवन-निर्वाह हो जाय, परन्तु राम को यहाँ से जाते देख कोई नहीं बचेगा। यह मेरा निश्चय है। हा! मैंने विनाश की इच्छा करनेवाली, अहित और शत्रुरूप तुझको अपनी मृत्यु की तरह घर में बसाया और बहुत दिनों तक महाविषवाली सर्पिणी को मोह से अपनी गोदी में रक्खा। इसलिए मैं मारा गया। अब मेरे, राम और लक्ष्मण के बिना अकेले भरत तेरे साथ सब बन्धुजनों को मारकर राज करें और तू मेरे शत्रुओं की मीठी-मीठी बातें सुन। अरी दुष्टाचारिणि, मेरे दुःख-काल में प्रहार करनेवाली! इस घड़ी तू जो वचन हठ से कहती है उसको कहते समय तेरे दाँत हजार टुकड़े होकर क्यों नहीं गिर पड़ते। भला देख तो सही कि रामचन्द्र कभी अहित या अप्रिय वचन बोलते हैं? या कभी कठोर वचन बोलते हैं? कभी नहीं। जो राम मनोहर वाणी बोलते और गुणों के द्वारा सदा सबसे मिले रहते हैं उनमें तू क्यों दोष लगाती है? अब तो चाहे तू जल जा या नष्ट हो जा या पृथ्वी में धँस जा या हजार टुकड़े होकर भूमि पर लोट जा; चाहे जो कर, परन्तु हे केकयराज-कुलकलङ्किनि! यह तेरा दारुण वचन मैं कदापि न मानूँगा। उसके मान लेने में मेरा अहित है। तेरा रूप देव-तुल्य है, तू सदा मिथ्या पर प्रिय बोलती है। भावना तेरी बुरी है और तू अपने कुल का नाश करनेवाली तथा प्राण-सहित हृदय को जलानेवाली है। मैं तेरा जीना नहीं चाहता। पुत्र

* अहंपूर्वता वह है कि जिस काम को लोग आपस में "पहिले मैं, पहिले मैं" ऐसा कहकर बड़े उत्साह से करने लगते हैं।

के बिना तो मेरा जीवन ही न रहेगा, सुख और प्रीति की बात कौन कहे। हे देवि! अब भी समझ जा और इस हठ को छोड़ दे। मैं तेरे चरणों को छूता हूँ। तू मेरे ऊपर प्रसन्न हो।

इस प्रकार अनाथ की तरह राजा विलाप कर कैकेयी के दोनों चरणों को बिना छुए रोगग्रस्त की तरह बीच ही में गिर पड़े।

---

## तेरहवाँ सर्ग

### राजा और कैकेयी की बातचीत

इस प्रकार भूमि पर सोते हुए और पुण्य का अन्त होने पर देवलोक से गिरे हुए ययाति के तुल्य दिखते हुए राजा दशरथ से अनर्थ-रूप, भय-रहित और भय दिखानेवाली कैकेयी उसी वर की बात कहने लगी। वह बोली--महाराज! आप तो सत्यवादी और दृढ़व्रत कहलाते हो, फिर मेरे वर को अपने पास क्यों रख छोड़ना चाहते हो?

यह सुनकर राजा क्षण भर के लिए व्याकुल हो क्रोध कर बोले--हा! अनार्ये! हे मेरी शत्रु! मैं मर जाऊँ, राम वन को चले जायँ और तू पूर्णमनोरथ होकर सुखी हो। स्वर्ग में भी देवता लोग जब मुझे धिक्कार देंगे कि स्त्री के लिए तुमने गुणवान् पुत्र का किस प्रकार त्याग किया, तब मैं उस तिरस्कार को किस प्रकार सहूँगा। यदि मैं सच-सच कहूँगा कि कैकेयी की प्रीति के लिए मैंने राम को वनवास दिया तो वह मिथ्या समझा जायगा; क्योंकि वे यही समझेंगे कि राजा ने काम के वश होकर राम को वनवास दिया। जब मेरे सन्तान न थी तब मैंने कितने बड़े श्रम से इस महाबाहु राम को पाया है, सो इसे मैं कैसे त्याग दूँ? शूर, विद्या-कुशल, जितक्रोध और क्षमावान् कमल-नयन राम को मैं किस भाँति यहाँ से निकालूँ? नीले कमल की तरह साँवले, लम्बी भुजाओंवाले और बड़े सुन्दर राम को मैं दण्डक वन में किस रीति से भेजूँगा। राम के दुःख को मैं किस प्रकार देखूँगा। यदि राम के दुख को बिना देखे ही मेरी मृत्यु हो जाती तो मैं मजे में रहता। अरी पापनिश्चयवाली! मेरे प्रिय राम को तू वनवास-दुःख से क्यों दुखी करती है? इससे लोक में मेरी बड़ी निन्दा होगी।

राजा को विलाप करते-करते दिन डूब गया और रात्रि हो गई। अब चन्द्रमण्डल से भूषित रात्रि भी विलाप करते हुए राजा के लिए सुखदायिनी न हुई। उस समय वृद्ध महाराज दशरथ गरम साँस लेकर और ऊपर को दृष्टि कर दुखिया की तरह विलाप करने लगे। राजा ने कहा--नक्षत्रों से भूषित हे रात्रि! मैं तेरा प्रभात-काल नहीं चाहता। हे भद्रे! तू मेरे ऊपर दया कर। देख, मैं तुझे हाथ जोड़ता हूँ। या जल्द बीत जा, क्योंकि मैं इस दुःखदायिनी, दयारहित, क्रूर कैकेयी को देखना नहीं चाहता।

ऐसा कहकर राजा फिर हाथ जोड़कर कैकेयी से बोले--हे भद्रे, देवि! धर्मात्मा, दीन, तेरे वश में पड़े हुए और थोड़े दिन जीनेवाले राजा पर तू प्रसन्न हो जा। हे बाले! मैंने रामाभिषेक की बात कुछ एकान्त में नहीं कही है, इसलिए तू अब भी मान ले। क्योंकि तू ऊँची-नीची बात को समझती है। देवि! प्रसन्न हो। तेरे दिये हुए अक्षय राज्य को राम पावें। हे कैकेयि! जो तू ऐसा करेगी तो तेरी खूब बड़ाई होगी। यह रामाभिषेक मुझको, राम को, लोक को और गुरु लोगों को

तथा भरत को भी प्रिय है। हे सुन्दरमुखी! इसलिए तू रामाभिषेक हो जाने दे।

इस प्रकार शुद्ध हृदय से रोदन करते और दुःख से लाल-लाल नेत्र किये हुए महाराज दशरथ विलाप और विनती कर रहे थे। परन्तु उस दुष्ट क्रूर कैकेयी ने पति के वचन को न माना। कैकेयी को असन्तुष्ट और उलटी-पुलटी बातें बोलती देख और अपने पुत्र के वनवास का दुःख याद कर राजा दुःखित, मूर्च्छित और चेष्टारहित हो भूमि पर गिर पड़े। पीड़ित राजा को वह रात्रि इस प्रकार से घोर श्वास छोड़ते-छोड़ते बीत गई। महाराज को जगाने के लिए प्रातःकाल जो बाजे बजाये जाते थे वे बजने लगे। परन्तु राजा ने बाजा बजाना और बन्दीजनों का गान बन्द करा दिया।

---

## चौदहवाँ सर्ग

### कैकेयी का रामचन्द्र को बुलाने के लिए सुमन्त्र को भेजना

इसके बाद उस पापिनी कैकेयी ने पुत्र के शोक से पीड़ित और भूमि पर बेहोश पड़े छटपटाते हुए राजा से फिर कहा—राजन्! आप मेरे लिए वर देने की प्रतिज्ञा करके भी दुखी होकर भूमि पर क्यों सोते हो? तुम तो ऐसे पड़े हो जैसे कोई पाप करके पश्चात्ताप करे। तुमको मर्यादा पर स्थिर रहना चाहिए। देखो, धर्म्मज्ञ लोग सत्य ही को परम-धर्म्म कहते हैं और मैंने भी सत्य ही का सहारा लेकर तुमको धर्म्म की प्रेरणा की। पहले राजा शैव्य ने प्रतिज्ञा कर पक्षी को अपनी देह देकर उत्तम गति पाई। उसी प्रकार तेजस्वी अलर्क ने एक अन्धे वेदपाठी ब्राह्मण के माँगने पर अपनी आँखें निकालकर दे दीं। ऐसा करने में वे तनिक भी उदास नहीं हुए। और भी देखिए, समुद्र सचाई के कारण अपनी मर्यादा को बिलकुल नहीं छोड़ता। देखो, सत्य ही ब्रह्म है और सत्य ही धर्म्म की परम अवधि है। सत्य ही वेद हैं और सत्य ही से परब्रह्म की प्राप्ति होती है। हे सज्जनश्रेष्ठ! यदि आपकी धर्म-बुद्धि है तो सत्य का पालन कीजिए और मेरे उस वर को सफल कीजिए; क्योंकि आप वरदानी हैं। अतएव आप धर्म्म के पालने के लिए और मेरे कहने से भी राम को वनवास दीजिए। यह बात मैं तीन बार आपसे कहती हूँ। हे आर्य! यदि मेरी बात को तुम न मानोगे तो इस अनादर से मैं तुम्हारे सामने ही अपना प्राण त्याग दूँगी। इस प्रकार निडर होकर कैकेयी ने जब फिर भी वही बात कही तब तो महाराज सत्य की फाँसी में फँस गये, वे इस धर्म्म-फाँसी को उसी तरह न काट सके जैसे कि वामन विष्णु के बन्धन को राजा बलि तोड़ न सके थे। उस समय राजा, रथ के दोनों पहियों के बीचवाली धुरी की तरह, अस्थिर हो गये। उनके मुँह का रंग फीका पड़ गया। नेत्रों में आँसू भर आने के कारण वे कुछ भी नहीं देख सकते थे। परन्तु क्लेश से अपने चित्त को ठहराकर वे कैकेयी से बोले—अरी पापिनी! अग्नि के सामने विवाह में मन्त्रों से मैंने जो तेरा हाथ पकड़ा था उस पाणिग्रहण को, और तेरे पुत्र भरत को भी मैं आज छोड़ता हूँ। हे देवि! रात बीत गई। अब सूर्योदय काल में गुरु लोग मुझसे अभिषेक के लिए जल्दी करने को कहेंगे। हा! रामाभिषेक के लिए जो सामग्री एकट्ठी की गई है उसी से, मेरे मरने पर, वशिष्ठ मुनि रामचन्द्र से मेरी प्रेत-क्रिया करावेंगे। हे अशुभाचार करनेवाली! जब कि तू रामाभिषेक का विघात करेगी तब, इसी कारण से, पुत्र-सहित तू मेरी जलक्रिया मत

करना। अब मैं राम का प्रसन्न मुख देखने में समर्थ नहीं। उसे मैंने पहले सुखी और हर्षित देखा था। इस घड़ी वह हर्ष और आनन्द से रहित तथा शोक से अधोमुख हो जायगा।

महाराज दशरथ के यों बोलते-बोलते वह पवित्र और चन्द्रतारायुक्त रात्रि बीत गई। सवेरा हो गया। बोलने में बड़ी चतुर वह पापाचारिणी कैकेयी क्रुद्ध होकर फिर भी कठोर वचन बोली—हे राजन्! आप विष के तुल्य ये बातें क्यों कहते हैं? इस घड़ी आप राम को बुलवाइए। इस समय मेरे पुत्र को राज्य पर बैठाइए और राम को वन भेजिए। मुझे बिना सौत की करके आप कृतार्थ होंगे।

कैकेयी से बार-बार सताये गये महाराज दशरथ की ऐसी दशा हुई जैसी तेज कोड़े से पीटे हुए बढ़िया घोड़े की होती है। राजा ने कैकेयी से कहा—मैं धर्म्म-बन्धन से बँध चुका हूँ। मेरा ज्ञान नष्ट हो गया है। अब मैं ज्येष्ठ और प्रिय पुत्र राम को देखना चाहता हूँ।

इतने में प्रातःकाल हो गया। सूर्योदय का समय आ पहुँचा। पुष्य नक्षत्र और मुहूर्त्त के ठीक समय पर भगवान् वशिष्ठ सामग्रियों को लेकर शिष्यों के साथ उस पुरी में पहुँचे। उस नगरी के मार्ग स्वच्छ किये जाकर सींचे गये थे। वहाँ उत्तम पताकाएँ फहरा रही थीं। सब मनुष्य प्रसन्न थे। हाट और दूकानें सब पदार्थों से पूर्ण थीं। बस्ती में तरह-तरह के उत्सव हो रहे थे। रामचन्द्र के लिए पुरवासी लोग उत्कण्ठित थे। चन्दन और अगर की धूपों से सुगन्धि फैल रही थी। आगे बढ़कर उन्होंने महाराज के अन्तःपुर को देखा जो ध्वजाओं से भूषित, वेदपारग ब्राह्मणों से भरा हुआ और श्रेष्ठ सभासदों से सुशोभित था। वहाँ से आगे बढ़कर ऋषियों को साथ ले वशिष्ठजी महाराज के द्वार पर पहुँचे। वहाँ, भीतर से निकलते हुए महाराज के प्रिय मन्त्री सुमन्त्र नामक सारथि को देखकर मुनि ने कहा कि तुम जल्द जाकर महाराज को मेरे आने का समाचार सुनाओ। उनसे यह भी कहो कि अभिषेक के लिए गंगाजल से और सागर के जल से भरे हुए सोने के घड़े तैयार हैं। इसके सिवा गूलर की लकड़ी की बनी हुई चौकी, सर्वौषधि, चन्दन, तरह-तरह के रत्न, शहद, दही, घी, लावा, कुशा, फूल, दूध, मनोहर आठ कन्याएँ, उत्तम हाथी, सुन्दर चार घोड़ों से जुता हुआ रथ, तलवार, बढ़िया धनुष, पालकी, सफेद छत्र, दो सफेद चँवर, सोने की झारी, सोने की माला पहने हुए बहुत बड़ा सफेद बैल, सुन्दर चार दाँतवाला सिंह या बड़ा बलवान् घोड़ा, उत्तम सिंहासन, बघछाला, समिधा' अग्नि, सब तरह के बाजे, गानेवाली रण्डियाँ, आचार्य, ब्राह्मण, गौ, सुन्दर हिरन, और पक्षी, सब सामान तैयार है। पुरवासी लोग अपने-अपने समुदायों को साथ लिये हुए, महाजन लोग, तथा और-और भी प्रिय बोलनेवाले बहुत से लोग राजाओं के साथ बाहर खड़े हैं। ये सब राम के अभिषेक के लिए आये है। महराज को जल्द बुला रहे हैं। महाराज से कहो कि शुभ मुहूर्त्त में रामचन्द्रजी को राजतिलक करें।

वशिष्ठजी का वचन सुनकर महाराज दशरथ की बड़ाई करता हुआ सुमन्त्र राजभवन में पहुँचा। उस समय द्वार-पाल लोग उस वृद्ध मन्त्री को नहीं रोक सके। भीतर जाने की उसके लिए मनाही न थी। राजा के समीप जाकर और उनकी उस अवस्था को न जानकर वह हाथ जोड़ मधुर वाणी से उनकी बड़ाई करने लगा। उसने कहा—महाराज! जैसे सूर्योदय में तेजस्वी सागर आनन्दित होता है उसी प्रकार से आप प्रसन्न होकर प्रसन्न मन से हम लोगों को आनन्दित कीजिए। इसी समय मातलि सारथि ने इन्द्र की स्तुति की थी,

तब इन्द्र ने सब दानवों को जीता। मैं भी आपको उसी प्रकार जगाता हूँ। जिस प्रकार अंग-सहित सब वेदविद्याएँ ब्रह्मा को जगाती हैं उसी प्रकार मैं भी आपको जगाता हूँ। जैसे सूर्य और चन्द्रमा सब जीवों को धारण करनेवाली पृथ्वी को इस समय जगाते हैं उसी तरह मैं भी आपको जगाता हूँ। उसी तरह उठिए महाराज और मंगल काम कीजिए जैसे मेरु से सूर्य उठते हैं। हे काकुत्स्थ! चन्द्र, सूर्य, शिव, वरुण, कुबेर, अग्नि और इन्द्र सब आपकी विजय करें। देखिए, यह रात्रि बीत गई और मंगलकारी दिवस निकल आया। हे राजर्षे! इस समय बड़ा काम है। राम के अभिषेक की सब सामग्री तैयार है। भगवान् वशिष्ठ, पुरवासी और देशवासी महाजनों को साथ लिये, खड़े हैं। राजन्! जल्द रामचन्द्र के अभिषेक की आज्ञा दीजिए। क्योंकि जैसे चरवाहे के बिना पशु, सेनापति के बिना सेना, चन्द्र के बिना रात्रि, और बैल के बिना गौ है उसी तरह राजा बिना राज्य है।

ये बातें सुनकर राजा शोक से व्याकुल हो गये। पुत्र के विषय में वे हर्षरहित हो गये थे, और शोक से उनके नेत्र लाल-लाल हो गये थे। वे आँखें खोलकर बोले—मेरे कलेजे को तू वचनों से फिर छेदने लगा? ऐसा करुण वचन सुनकर और राजा को दीन देखकर सुमन्त्र हाथ जोड़े हुए उस स्थान से कुछ हट गया। दीनता से जब राजा आप न बोल सके तब अपने कार्य-साधन में बड़ी चतुर कैकेयी सुमन्त्र से बोली—हे सुमन्त्र! राम के आनन्द से उत्कण्ठित होकर राजा रात भर जागे हैं। इस समय थककर निद्रा के वश हो सो गये है। अतः हे सूत! तू शीघ्र जा और रामचन्द्र को बुला ला। और कुछ विचार न कर। इस पर सुमन्त्र बोला—हे भामिनि! मैं राजा के बिना कहे कैसे जाऊँ? मन्त्री की बात सुनकर राजा बोले—हे सुमन्त्र! मैं राम को देखना चाहता हूँ, शीघ्र बुला ला। राजा की आज्ञा पाकर वह अपने मन में मंगल कार्य समझ आनन्दित हो शीघ्र वहाँ से निकला और यही विचारता जाता था कि अभिषेक के लिए ही राम बुलाये गये हैं। अब सुमन्त्र बड़े हर्ष से रामचन्द्र को देखने की इच्छा कर मनोहर अन्तःपुर में से निकला। वह अन्तःपुर सागर के मध्य के दह (हृद) के तुल्य था। सुमन्त्र ने बाहर निकल द्वार पर खड़े बहुत से पुरवासी लोगों को और महाजनों को देखा। द्वार देश पर इन लोगों की बड़ी भीड़ थी।

---

## पन्द्रहवाँ सर्ग

### सुमन्त्र का रामचन्द्र के घर जाना

रात बीतने पर वेदपाठी ब्राह्मण लोग पुरोहित के साथ राजद्वार में आ पहुँचे। सब मन्त्री लोग, सेनापति और बड़े-बड़े साहूकार लोग भी रामचन्द्र जी का अभिषेकोत्सव देखने के लिए इकट्ठे हो गये। सूर्य निकलने पर जब पुष्य नक्षत्र और कर्क लग्न का समय आ गया तब राम के राजतिलक के लिए ब्राह्मणों ने सब आवश्यक सामग्री तैयार कर दी।

अभिषेक की सामग्री इस प्रकार थी—जल से भरे हुए सोने के कलश, सुन्दर सिंहासन, खूबसूरत बघछाला बिछा हुआ रथ, गंगा-यमुना के संगम का जल और उत्तर-दक्षिण बहनेवाली अनेक नदियों, तालाबों, सरोवरों और समुद्रों का जल, शहद, दही, घी, लावा (धान की खीलें), कुशा, फूल, दूध, हाथी, सोने-चाँदी के ऐसे कलश जिनके मुँह पर दूधवाले वृक्षों की

टहनियाँ और कमल, और कुमुद के पत्र रक्खे थे, सफेद छत्र, चँवर, सफेद बैल, सफेद घोड़ा, राजा के चढ़ने के लायक सुन्दर हाथी, गहने-कपड़ों से सजी हुई आठ कन्याएँ, सब तरह के बाजे और भाट लोग।

इक्ष्वाकुकुल में जिस तरह अभिषेक की सामग्री इकट्ठी की जाती थी ठीक उसी तरह राम के लिए भी इकट्ठी की गई।

जब सब लोग राजद्वार में पहुँचे और वहाँ राजा दशरथ को न देखा तो कहने लगे कि राजा तक हमारी खबर कौन पहुँचावेगा। देखो, सूरज निकल आया। सब काम तैयार है। पर यहाँ राजा नहीं दीखते।

उनका वचन सुनकर सुमन्त्र बोला—मैं राजा की आज्ञा से रामचन्द्रजी के पास जल्द जा रहा हूँ। परन्तु आप लोग भी महाराज के और विशेष करके रामचन्द्र के आदरणीय हैं इसलिए फिर मैं लौटकर आप लोगों की बात अभी-अभी जागे हुए राजा से पूछता हूँ। फिर वह प्राचीन कथाएँ जाननेवाला सुमन्त्र अन्तःपुर के द्वार पर जाकर बेरोक-टोक घर के भीतर गया और महाराज के सोने के मकान में पहुँच गया। वहाँ केवल परदे का अन्तर छोड़कर गुणयुक्त आशीर्वचनों से वह राजा की बड़ाई करने लगा। वह बोला—हे काकुत्स्थ! चन्द्र, सूर्य, शिव, कुबेर, वरुण, अग्नि और इन्द्र आपको विजय दें। जैसे अंग-सहित वेद ब्रह्मा को जगाते हैं उसी प्रकार हे धीर! मैं आपको जगा रहा हूँ। हे पुरुषश्रेष्ठ! उठिए, रात्रि बीत गई। मंगलरूप दिन उपस्थित हो गया। उठिए और अब जो काम करना है उसे कीजिए। ब्राह्मण, सेनापति, साहूकार और राजा लोग आपका दर्शन किया चाहते हैं, उठिए।

यह स्तुति सुन राजा जागकर सुमन्त्र से बोले—हे सूत! कैकेयी ने तुमको आज्ञा दी है कि राम को ले आओ। सो क्या कारण है कि तुम मेरी आज्ञा को टालते हो? मैं सोता नहीं हूँ। जाओ, राम को जल्द बुला लाओ। राजा की यह आज्ञा पाकर सुमन्त्र जल्द राजभवन से निकला और पताका तथा ध्वजाओं से सुशोभित राजमार्ग की शोभा देखता-देखता एवं लोगों के मुँह से रामाभिषेक की कथाएँ सुनता हुआ चला। कुछ ही दूरी पर सुन्दर कैलास तुल्य चमकीले और इन्द्रभवन के समान मनोहर रामचन्द्रजी के महल को सुमन्त्र ने देखा। उसमें बड़े-बड़े किवाड़ लगे हुए थे, और सैकड़ों वेदिकाएँ थीं। उसके अगले हिस्से में सोने की मूर्त्तियाँ लगी हुई थीं। उसमें मणि और मूँगे के तोरण बँधे थे। वह शरत्काल के मेघसमूह के तुल्य साफ और मेरु-पर्वत की कन्दरा की तरह चमकीला था। वह अच्छी-अच्छी मालाओं से सुशोभित हो रहा था जिनमें कि बीच-बीच में बड़े-बड़े मणि लगे हुए थे। मोतियों और मणियों से सजा हुआ वह महल चन्दन और अगर से भूषित था एवं मनोहर सुगन्धों से दर्दुराचल* पर्वत के शिखर की नाईं सुगन्धित था। उसमें सारस और मयूर पक्षी क्रीड़ा कर रहे थे। सुवर्ण इत्यादि धातुओं से बने भेड़िये उसमें जगह-जगह पर मौजूद थे। तरह-तरह की उसकी कारीगरी को देखकर दर्शकों के मन और नेत्र मोहित हो जाते थे। अपने तीक्ष्ण तेज से वह चन्द्र और सूर्य के तुल्य चमकता था। रामचन्द्रजी का महल कुबेर और इन्द्र के भवन के समान समृद्धियुक्त तथा मेरुशृङ्ग के सदृश ऊँचा था। वहाँ अनेक राष्ट्रों के लोग भेंट लिये, हाथ जोड़े और रामाभिषेक की वार्ता से प्रसन्न होकर उत्कण्ठित भाव से खड़े थे। वह महामेघ के तुल्य विशाल, ऊँचा, सुन्दर और नाना रत्नों से भरा-

* मलयाचल का समीपवर्ती चन्दन-पर्वत।

पूरा था। उसमें अनेक नौकर-चाकर इधर-उधर घूम रहे थे। अब सुन्दर रथ लिये हुए सुमन्त्र, लोगों की भीड़ से भरे हुए राजमार्ग को अलङ्कृत और नगरवासियों के अन्तःकरण को पुलकित करता हुआ, महल में घुसा। महाधन से पूर्ण उस भवन में नाना प्रकार के मृग और मयूर सुशोभित थे। वह इन्द्रगृह के तुल्य था। उस महल की शोभा देखकर वह अति प्रसन्न हुआ। फिर कैलास और देवगृहों के सदृश विभूषित ड्योढ़ियों को लाँघकर वह राम के प्रिय एवं सम्मत अनेक पुरुषों को हटाता हुआ अन्तःपुर में पहुँचा। वहाँ उसने प्रसन्न-हृदय लोगों के मुँह से मङ्गलयुक्त रामाभिषेक की वार्ताएँ सुनीं। वहाँ परस्पर अभिषेक की ही चर्चा छिड़ी थी। रामचन्द्र का भवन रमणीय, मृग-पक्षिगणों से सेवित और प्रभा से प्रकाशमान ऊँचे मेरु के शिखर के तुल्य था। सुमन्त्र ने देखा कि उस गृह के द्वार पर भी कितने ही देशवासी नम्रतापूर्वक हाथों में भेंट लिये अपने-अपने वाहनों से उतरकर भूमि पर खड़े थे। इसके बाद सुमन्त्र ने रामचन्द्रजी की सवारी के शत्रुञ्जय नामक मतवाले हाथी को देखा जिसका आकार पर्वत की तरह और रंग काले मेघ का-सा था। अंकुश को यह सहन न करता था। वहाँ पर सुमन्त्र ने अच्छे सजे हुए घोड़े, रथ, हाथी और राम के प्रिय प्रधान मन्त्री को भी देखा। उनमें से गुजरता हुआ सुमन्त्र तरह-तरह के पदार्थों से भरे हुए पर्वत-शृंग के सदृश ऊँचे और सात खण्डोंवाले अन्तः-पुर में बेरोक चला गया जैसे कि जल-जन्तुओं से और रत्नों से पूर्ण समुद्र में मगर निधड़क प्रवेश करता है।

---

## सोलहवाँ सर्ग

### रामचन्द्र का राजा के पास जाना

अन्तःपुर का द्वार मनुष्यों से भरा हुआ था। उसको लाँघ कर सुमन्त्र भीतर की ड्योढ़ी पर पहुँचा जहाँ कोई अन्य पुरुष न था। वहाँ पर उसने उन स्वामिभक्त युवकों को देखा जो धनुष लिये और सुन्दर कुण्डल पहने हुए उस ड्योढ़ी की सदा सावधानी से रक्षा करते थे। फिर उस द्वार पर जो स्त्रियों के रक्षक वृद्ध पुरुष लाल कपड़े पहिने और लाल बेत लिये बैठे थे वे, राम की प्रिय कामना से, सुमन्त्र को आते देखकर झटपट आदर से उठ खड़े हुए। सुमन्त्र ने उनसे कहा कि तुम शीघ्र जाकर रामचन्द्र से कहो कि दरवाजे पर सुमन्त्र खड़ा है। तब उन्होंने राम के पास जाकर दूत का सन्देश कह सुनाया। समाचार सुनकर रामचन्द्र ने पिता के सारथि को वहीं बुलवा लिया। वहाँ रामचन्द्रजी सोने के पलँग पर कुबेर के सदृश भूषण पहने हुए बैठे थे। वे सुअर के रक्त की तरह लाल सुगन्धित चन्दन लगाये हुए थे। पास में बैठी हुई सीता हाथ में चँवर लिये उनकी सेवा कर रही थी। उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो चित्रा के साथ चन्द्रमा बैठे हों। तेज से प्रकाशमान सूर्य्य के तुल्य उन्हें देखकर सुमन्त्र ने नम्र होकर प्रणाम किया और रामचन्द्र का प्रसन्न मुख देखकर कहा—हे कौशल्या के सुपुत्र रामचन्द्र! पटरानी कैकेयी और तुम्हारे पिता तुमको देखा चाहते हैं। वहाँ चलिए, देर न कीजिए।

सुमन्त्र की बात सुनकर पुरुषसिंह रामचन्द्र सीता को आनन्दित करते हुए बोले—हे देवि! देव और देवी

दोनों मेरे अभिषेक के विषय की अवश्य कुछ बातचीत कर रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि राजा के अभिप्राय को जानकर मेरी हितैषिणी कैकेयी माता प्रिय कामना से मेरे लिए राजा से जल्दी करने को कह रही है। महाराज इस समय अपनी प्रिय पत्नी के साथ विराजमान हैं। बड़े आनन्द की बात है कि उन्होंने हमारे अर्थ के साधक सुमन्त्र दूत को भेजा। जैसी वहाँ की सभा है वैसा दूत भी आया है। अतएव राजा मुझे आज ही यौवराज्य देंगे। अब शीघ्र यहाँ से जाकर राजा को देखूँगा। तू सखियों के साथ सुख से रह और आनन्द कर। पति का आदर-युक्त वचन सुनकर मङ्गलाचार का ध्यान करती हुई सीता राम के पीछे-पीछे दरवाजे तक गई और बोली कि राजा आपको ब्राह्मणों से सेवित यौवराज्याभिषेक दें। फिर कुछ काल के अनन्तर राजसूयाभिषेक कर पूरा राज्य दे दें जैसा कि ब्रह्मा ने इन्द्र को दिया था। आपको दीक्षायुक्त, व्रतधारी मृगचर्म्म धारण किये हुए पवित्र और मृग के सींग को हाथ में धारण किये हुए देखने की मुझे बड़ी लालसा है। पूर्व दिशा में इन्द्र, दक्षिण में यम, पश्चिम में वरुण और उत्तर दिशा में कुबेर आपकी रक्षा करें। इस प्रकार मंगल वचन बोलती हुई सीता को विदा करके अभिषेक के लिए एवं मंगल का विधान कर रामचन्द्रजी सुमन्त्र के साथ घर से निकले। बाहर निकलते ही उन्होंने द्वार पर हाथ जोड़े हुए लक्ष्मण को खड़े देखा। फिर वे मध्य ड्योढ़ी पर जाकर सुहृद जनों से मिले और सब अर्थियों को यथोचित सम्बोधन कर अग्नि के तुल्य प्रकाशमान और व्याघ्रचर्म से वेष्ठित रथ पर सवार होकर चले। उस रथ का शब्द मेघ के तुल्य था। वह सूर्य्य की जैसी कान्ति से लोगों के नेत्रों को चकाचौंध करता जाता था और उसमें जो घोड़े जुते थे वे हाथी के बच्चों की तरह सपुष्ट, भारी और बलवान् थे। उस समय इन्द्र की नाईं शोभायुक्त रामचन्द्र आकाश के मेघ की भाँति रथनाद करते हुए राजभवन से ऐसे निकले जैसे महामेघ-मण्डल से चन्द्रमा निकलता है। उनके पीछे रथ पर चढ़ हाथ में चँवर ले लक्ष्मण भी चल दिये। इसके बाद राघव के साथ जन-समूह निकला। चारों ओर उस समूह का बड़ा शब्द हुआ। राम के रथ के पीछे सैकड़ों-हजारों उत्तम घोड़े और पर्वत-तुल्य हाथी चले। रघुनन्दन के आगे-आगे चन्दन और अगर से भूषित खड्ग और धनुष को धारण किये हुए और राम का शुभ मानाते हुए शूर लोग चले। इसके बाद मार्ग में बाजों के शब्द, बन्दिगणों के स्तुतिशब्द और शूरों के सिंह-नाद होने लगे। अटारियों और झरोखों में बैठी हुई अच्छे भूषणों से भूषित स्त्रियाँ चारों ओर से पुष्पों की वर्षा करने लगीं। अटारियों पर बैठी हुई सब की सब सुन्दरियाँ राम की मङ्गलकामना से स्तुति करने लगीं कि हे मातृनन्दन! तुमको पिता के राज्य पर बैठे देख तुम्हारी माता कौशल्या आनन्द पावेंगी। उस समय उन स्त्रियों ने राम की प्राणप्यारी सीता को सब सौभाग्य-वती स्त्रियों से उत्तम माना और समझा कि इस देवी ने पहले अवश्य कोई बड़ा तप किया है तभी तो रामचन्द्र से इसका सम्बन्ध हुआ। मार्ग में चलते-चलते रामचन्द्र ने उन स्त्रियों की और आनन्दरूप पुरवासियों की तरह-तरह की वाणी सुनी। लोग कह रहे थे कि आज राजा की कृपा से रामचन्द्र धनी लक्ष्मी पावेंगे और हमारे ये शासनकर्त्ता होंगे इसलिए हमारे भी मनो-रथ पूरे हो जायँगे। जनों के लिए यह बड़ा लाभ है कि राम इस राज्य को पावेंगे क्योंकि इनके राज्य-शासन में न तो किसी की बुराई होगी और न कोई दुःख पावेगा।

इस प्रकार की बातें सुनते हुए श्रीरामचन्द्र घोड़े, हाथी और जयजयकारक सूत मागध और बन्दीगणों के साथ और तरह-तरह के स्तुतिवचनों से प्रशंसित होते हुए तथा नगर के सब स्थानों को अच्छे-अच्छे जनों से भरे देखते हुए सुन्दर सजाये गये राजमार्ग में पहुँचे।

---

## सत्रहवाँ सर्ग

### रामचन्द्र का राजा के पास पहुँचना

रथ पर सवार श्रीरामचन्द्र अपने सुहृद लोगों को आनन्दित करते हुए मार्ग से चले जाते थे। रास्ता पताका और ध्वजाओं से सजाया गया, मनोहर और अगर धूप से धूपित था। उस रास्ते में खूब भीड़ थी। श्वेत मेघों के समान गृहों से सुशोभित नगर को रामचन्द्र देखते और राजमार्ग की शोभा देखते जाते थे। उत्तम चन्दनकाष्ठ और अगरकाष्ठ के समूहों की उस मार्ग में सुगन्धि महक रही थी। उत्तम-उत्तम द्रव्यों से, नाना पट्टवस्त्रों से, मोतियों की मालाओं से और उत्तम स्फटिकनिर्मित पदार्थों से वह मार्ग सुशोभित था। नाना प्रकार के योग्य द्रव्य और तरह-तरह के भक्ष्य पदार्थों से वह भरा पड़ा था। चौतरे प्रायः दही, घी, धूप, अगर, चन्दन, नाना प्रकार के पुष्प और अनेक सुगन्ध द्रव्यों से सुशोभित किये गये थे। लोगों के आशीर्वाद को ग्रहण करते और उनको यथोचित आदर और मान देते हुए रामचन्द्र बीच मार्ग से चले जाते थे। वहाँ अनेक लोग कहते थे कि आपके पितामह ने और प्रपितामहों ने जिस मार्ग से पालन किया है उसी धर्मपरम्परा से तुम भी अभिषिक्त होकर राज्य का पालन करो। जिस प्रकार से पुराने राजाओं ने हमारा लालन किया है उससे अधिक राम के राज्य में हम सुख पावेंगे। अभिषेक हो जाने पर पिता के घर से आते हुए राम का दर्शन हो जाय तो हम लोगों को इस लोक और परलोक के सुख से भी कुछ प्रयोजन नहीं। क्योंकि रामचन्द्र के राज्याभिषेक में हम लोगों को जो आनन्द होगा उससे प्रिय और सुखदायक और कुछ भी नहीं।

रामचन्द्र अपनी प्रशंसा की अनेक मङ्गलवार्त्ताएँ सुनते हुए चले जाते थे पर स्वयं हर्ष और विस्मय से अलग थे। अब उस समय रामचन्द्र के चले जाने पर भी लोग न उधर से मन हटाते थे और न आँखें। क्योंकि जो राम को न देखे और राम जिसको न देखें वह सब लोगों में निन्दित हो अपने आप को धिक्कार देता था। दूसरा कारण यह था कि रामचन्द्र चारों वर्णों पर यथोचित दया करते थे। इस प्रकार राजपुत्र चौराहों, देवमार्गों, चैत्यों और सभामण्डपों को दाहिनी ओर करते हुए राजकुल में जा पहुँचे। वह राजकुल मेघसमूह के समान, कैलास-शिखर के तुल्य और रत्नों से सजे हुए क्रीड़ालयों से सुशोभित था। वहाँ रामचन्द्र अपने पिता के घर में पहुँचे। वह घर पृथ्वी भर में श्रेष्ठ और इन्द्र के भवन के तुल्य था। वे तीन ड्योढ़ियों तक तो रथ पर ही चढ़े चले गये, फिर बाकी ड्योढ़ी पर रथ से उतर पैदल चलकर महाराज दशरथ के अन्तःपुर में पहुँचे। उस समय रामचन्द्र को पिता के पास जाते देख लोग बड़े प्रसन्न हुए। वहाँ से रामचन्द्र के लौटने की राह वे इस तरह देखते थे जैसे समुद्र चन्द्रोदय की बाट देखा करता है।

---

## अठारहवाँ सर्ग

### कैकेयी का रामचन्द्र को वन जाने की आज्ञा देना

अब रामचन्द्र ने वहाँ जाकर देखा कि राजा दशरथ कैकेयी के साथ दीन भाव से बैठे हुए हैं। मुख उनका सूख गया है। रामचन्द्र ने नम्रतापूर्वक पिता के चरणों में प्रणाम किया और फिर कैकेयी को प्रणाम किया। पुत्र को प्रणाम करते देख राजा नेत्रों में आँसू भरकर गद्गद वाणी से सिर्फ 'राम' कहकर चुप हो रहे। वे फिर न तो देख ही सके और न कुछ कह सके। उस समय पिता का भयङ्कर रूप देखकर रामचन्द्र को भी ऐसा भय हुआ जैसे कोई सर्प को पैर से छू करके भयाकुल हो जाय। उस समय पिता को दुखी, व्याकुल, शोक और सन्ताप से दुःखित एवं बार बार ऊँची साँस लेते हुए देखकर और उस महाशोक के कारण को न जानकर रामचन्द्र भी पर्वकाल में समुद्र की भाँति घबरा उठे। वे मन में विचारने लगे कि राजा और समय तो पहले क्रुद्ध भी हों पर मुझे देखते ही प्रसन्न हो जाते थे, परन्तु आज न तो मेरी ओर देखते हैं और न मुझसे कुछ कहते हैं। आज तो मुझे देख-देखकर उनको खेद होता है। इस प्रकार दीन, शोक से पीड़ित और विषादयुक्त रामचन्द्र कैकेयी को नमस्कार कर बोले—हे माता! भूल में मुझसे कुछ अपराध तो नहीं हुआ जिससे पिता कुपित हो गये? यदि हो गया हो तो वह मुझको बतलाकर इनको प्रसन्न करो। मैंने तो आज तक इनको अपने ऊपर कभी अप्रसन्न होते नहीं देखा था पर आज तो ये बोलते भी नहीं! देह में कोई व्याधि या चिन्ता तो इनको पीड़ा नहीं देती? क्योंकि प्राणियों को सदा सुख मिलना दुर्लभ है। प्रियरूप भरत का वा महापराक्रमी शत्रुघ्न का अथवा हमारी माताओं का तो कुछ अमङ्गल नहीं हुआ? अब मैं महाराज को बिना प्रसन्न किये वा बिना उनके वचन को माने मुहूर्त्त भर भी जीना नहीं चाहता क्योंकि पिता को प्रत्यक्ष देवता के तुल्य मानना चाहिए। भला हे माता! तुमने अभिमान से कोई कठोर वचन राजा को तो नहीं कहा जिससे राजा का मन पीड़ित हो गया है? हे देवि! जो मैं पूछता हूँ उसको ठीक-ठीक मुझे समझाकर कहो कि यह अपूर्व विकार राजा में किस कारण देख पड़ता है।

राघव का वचन सुनकर निर्लज्जा कैकेयी अपने हित के लिए ढिठाई से बोली—हे राम! राजा न तो क्रुद्ध हैं और न इनको कुछ दुःख है; परन्तु इनके मन में ऐसी कोई बात है जिसे ये तुम्हारे भय से नहीं कहते। क्योंकि तुम इनको बड़े प्यारे हो। तुमसे अप्रिय बात कहने के लिए इनकी वाणी नहीं खुलती। परन्तु तुमको वह अवश्य करनी चाहिए—उसके विषय में इन्होंने मुझसे प्रतिज्ञा कर रक्खी है। देखो, पहले ये मुझे आदरपूर्वक वर दे चुके और अब पीछे से नीच जन की तरह सन्ताप कर रहे हैं। जब ये मुँह से कह चुके कि मैं तुझे वर दूँगा तब पीछे से उसका बचाव सोचना तो पानी निकल जाने पर पुल बाँधने के विचार के तुल्य है। अतएव हे रामचन्द्र! ऐसा न हो कि तुम्हारे लिए राजा क्रोधवश होकर सत्य का त्याग कर दें; क्योंकि महात्माओं में यह बात प्रसिद्ध है कि सत्य ही धर्म का मूल है। भला यदि तुमसे राजा शुभ वा अशुभ कुछ भी करने को कहेंगे तो तुम करोगे? जो तुम करना अंगीकार करो तो मैं कहूँ। राजा स्वयं न कहेंगे, उनकी कही हुई बात मैं ही कहूँगी। उसे तुम निष्फल तो न करोगे?

कैकेयी का वचन सुनकर रामचन्द्र पीड़ित हो राजा के सम्मुख बोले—हा ! धिक्कार है। हे देवि ! तुम ऐसे वचन कहने के योग्य नहीं। मैं तो राजा के वचन से अग्नि में कूदने को और विष खाने को या जल में डूबने को भी तैयार हूँ; क्योंकि एक तो ये पिता और दूसरे राजा हैं। भला इनकी आज्ञा मैं किस भाँति टाल सकता हूँ ? इसलिए राजा की जो इच्छा है सो तू मुझे बतला। मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि उसको अवश्य करूँगा। क्योंकि राम दो बातें नहीं बोलता।

तब तो वह अधम कैकेयी सत्यवादी और कोमल बचन बोलनेवाले रामचन्द्र से अति कठोर बात बोली। उसने कहा—हे राघव ! पहले, देवासुर-संग्राम के समय, तुम्हारे पिता बाणों से बिंध गये थे। उस समय इनको मैंने महारण में बचाया था। तब इन्होंने मुझे दो वर दिये थे। उनमें एक वर से तो मैंने भरत का अभिषेक और दूसरे से आज ही तुम्हारा दण्डकवन में गमन माँगा है। अब हे नरश्रेष्ठ ! यदि तुम पिता को और अपने को भी सत्यप्रतिज्ञ करना चाहते हो तो मैं जो कहती हूँ उसे सुनो। पिता की प्रतिज्ञा का पालन करने में तत्पर होकर तुम दण्डकारण्य में जाओ और वहाँ चौदह वर्ष तक वास करो। तुम्हारे अभिषेक के लिए राजा ने जो यह सामग्री इकट्ठी कर रक्खी है उससे भरत का राज्याभिषेक हो और तुम इस अभिषेक का त्याग करके जटा और चीर को धारण करो। भरत कोशलपुर में रहें और तरह-तरह के रत्नों से और हाथी-घोड़ों से भरी हुई इस पृथ्वी का शासन करें। इसी कारण राजा करुणा से भरे हुए हैं और शोक से उनका मुख कुम्हला गया है। इसी से वे तुम्हारी ओर देख भी नहीं सकते। हे रघुनन्दन ! तुम राजा के इस वचन को मानो और सत्य का पालन कर इनका उद्धार करो।

उस समय कैकेयी के कठोर वचनों को सुनकर रामचन्द्र को जरा भी शोक न हुआ; परन्तु पुत्रक्लेश से सन्तप्त राजा बड़े दुखी हुए।

---

## उन्नीसवाँ सर्ग

### रामचन्द्र का पिता के पास से जाकर माता के घर जाना

कैकेयी के वचन मरण के तुल्य थे। उनको सुनकर भी शत्रुहन्ता रामचन्द्र जरा भी पीड़ित न हुए। उन्होंने कहा—"बहुत अच्छा, मैं जटा और चीर धारण कर राजा की प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए वन में जाऊँगा। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि महाराज पहले मेरे साथ जैसा बर्त्ताव करते थे वैसा अब क्यों नहीं करते ? इसका क्या कारण है ? हे देवि ! तू क्रोध मत कर; मैं तेरे सामने कहता हूँ कि जटा-चीरधारी होकर वन जाऊँगा। तू प्रसन्न हो; क्योंकि महाराज मेरे हितकारी, गुरु, पिता, कृतज्ञ और राजा भी हैं। इनकी प्रीति के लिए मैं सब कुछ कर सकता हूँ। मेरे हृदय को एक यही दुःख जला रहा है कि भरत के अभिषेक के विषय में राजा स्वयं मुझसे क्यों नहीं कहते। मैं तो सीता, राज्य, प्राण और धन को भी आप ही से प्रसन्नतापूर्वक भरत को दे दूँ। फिर राजा से प्रेरित होकर तेरी प्रीति के लिए प्रतिज्ञापूर्वक देने की बात ही क्या है ? अब तू महाराज को समझा दे। और यह क्या बात है कि राजा लज्जा से नीचे मुँह करके आँसू बहा रहे हैं। महाराज की आज्ञा से दूत लोग इसी समय तेज घोड़ों पर चढ़कर भरत को बुलाने

के लिए मामा के घर जावें। मैं अभी, इसी समय, पिता के वाक्य को बिना विचारे ही चौदह वर्ष के लिए दण्डकारण्य में जाता हूँ।"

इस प्रकार रामचन्द्र का वचन सुन कैकेयी प्रसन्न होकर राम के जाने के लिए जल्दी करने लगी और बोली कि बहुत अच्छा, दूत लोग अभी भरत को बुलाने के लिए जावें और हे राम! तुम जो वन जाने के लिए तैयार हो तो देर मत करो। वन की यात्रा शीघ्र करो और राजा जो यह बात अपने मुँह से नहीं कहते सो इसका कारण लज्जा ही है। सो यह कुछ बात नहीं है, इसके लिए तुम कुछ खेद मत करो। जब तक तुम इस नगरी से वन जाने के लिए जल्दी न निकलोगे तब तक तुम्हारे पिता न स्नान करेंगे और न कुछ खायँगे।

यह बात सुनकर राजा अति शोक से पीड़ित हो 'धिक् धिक्' कहकर ऊँची साँस ले उस सुवर्णभूषित पलँग पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। तब रामचन्द्र ने पिता को उठाया। कैकेयी का वह वचन तो घोड़े को कोड़े की भाँति उन्हें लग ही चुका था इसलिए वे वन जाने के लिए जल्दी करने लगे। यद्यपि उस दुष्टा का वचन अति दारुण था तथापि रामचन्द्र को उसकी कुछ भी पीड़ा न हुई। वे बोले—हे देवि! मैं धन के लोभ से संसार में नहीं रहना चाहता। मुझे तो तू ऋषियों के तुल्य धर्म में स्थित जान। महाराज का जो कुछ प्रिय कार्य हो उसको मैं प्राणों को परित्याग करके भी करने को तैयार हूँ और उसको किया ही जान। क्योंकि पिता की सेवा और वचन के पालन के तुल्य तो दूसरा धर्माचरण ही नहीं है। राजा मुझसे न भी कहेंगे तो केवल आप ही के कहने से मैं चौदह वर्ष वनवास करूँगा। हे कैकेयि! तुमने मेरे गुण को न जाना। तुम मेरी स्वामिनी होकर भी राजा से यह बात कहने गईं। खैर, जो हुआ सो हुआ। अब मैं माता से बिदा होकर और सीता को समझा-बुझाकर दण्डकारण्य की यात्रा करूँगा। परन्तु देखो तुम ऐसा करना जिससे भरत अच्छी तरह राज्य का पालन और पिता की सेवा करें क्योंकि यही सनातन धर्म है।

राम की ये बातें सुनकर अति दुःखित पिता दशरथ आँसुओं को न रोक सके। वे बड़े स्वर से रोने लगे। फिर रामचन्द्र ने बेहोश पिता के और उस अधम कैकेयी के भी चरणों को प्रणाम कर उनकी प्रदक्षिणा की। अन्तःपुर से निकलकर उन्होंने अपने सहृदय लोगों को देखा। रामचन्द्र के पीछे-पीछे आँखों में आँसू भरे हुए अत्यन्त क्रुद्ध लक्ष्मण भी चले। (लक्ष्मण ने सोचा कि राम के बिना जीने में मुझे उत्साह हो नहीं सकता इसलिए मैं भी इनके संग वन में वास करूँगा।) अब रामचन्द्र अभिषेक के पात्र की प्रदक्षिणा कर शीघ्र वन जाने की चिन्ता से दृष्टि को स्थिर करके चले। उस समय राज्य के नाश ने रामचन्द्र के शरीर की कान्ति को जरा भी नहीं बिगाड़ा, जैसे कि चन्द्र की कला का नाश उसकी कान्ति को नहीं हरता। राज-पाट को छोड़कर वन जाने के लिए उद्यत रामचन्द्र के चित्त में जीवनमुक्त के समान कुछ भी विकार न हुआ। अब उन्होंने सुन्दर अलंकृत चमरों को और पंखे को त्याग दिया। उन्होंने स्वजनों और पुरवासी जनों को बिदा कर रथ को छोड़ दिया। मन में दुख रखकर और इन्द्रियों का निग्रह करके वे उस अप्रिय बात को सुनाने के लिए माता के घर में गये। लोगों ने श्रीमान् सत्यवादी रामचन्द्र के मुख पर कुछ भी उदासी नहीं देखी। महाबाहु रामचन्द्र ने अपने स्वाभाविक हर्ष को नहीं त्यागा जैसे कि शरत् का चन्द्र अपने तेज को नहीं छोड़ता। उस

समय रामचन्द्र मधुर वाणी से सबका आदर करते हुए माता के समीप गये। रामचन्द्र के सुख-दुःख के समान भागी लक्ष्मण भी उस दुःख को मन में लिये हुए भाई के पीछे हो लिये। अब राघव आनन्दपूर्वक माता के घर पहुँचे। आई हुई विपत्ति को जानकर भी उन्होंने मन को इसलिए नहीं बिगाड़ा कि कहीं सुहृद लोगों को कष्ट न हो।

---

## बीसवाँ सर्ग

### वन जाने की खबर सुनकर कौशल्या का विलाप करना

जब रामचन्द्र हाथ जोड़े हुए वहाँ से निकले तो अन्तःपुर की स्त्रियों में बड़ा हाहाकार मच गया। स्त्रियाँ विलाप करके कहने लगीं कि जो राम, पिता के बिना कहे ही, सब अन्तःपुर के शरण और गति थे वे आज वन को जायँगे! वे कहने लगीं कि जो राम जन्म से ही जैसे कौशल्या से व्यवहार करते वैसा ही हम सबसे भी करते थे। वे आज वन को जायँगे; और जो कठोर वचन कहने पर भी क्रोध नहीं करते और न किसी को कुपित करते थे वरन् क्रोध करनेवालों को भी प्रसन्न करते थे वे पुत्र आज वनवास पावेंगे! यह हमारे राजा बुद्धिहीन हो इस जीवलोक का विनाश कर रहे हैं क्योंकि जो रामचन्द्र सब प्राणियों की गति हैं उन्हीं का वे त्याग करते हैं। इस प्रकार वे रानियाँ वत्सरहित धेनु की नाईं पति को कोस-कोसकर ऊँचे शब्द से रोने लगीं। उस समय पुत्रशोक से सन्तापित राजा अन्तःपुर के उस घोर आर्त्त शब्द को सुनकर अपने आसन पर गिर पड़े। अब इधर रामचन्द्रजी स्वजनों का दुःख देख खिन्न थे। गज की तरह साँस लेते हुए वे भाई के साथ माता के अन्तःपुर में पहुँचे। वहाँ द्वार पर, परमसत्कृत एक वृद्ध पुरुष को बैठे देखा। वहाँ और भी अनेक लोग खड़े थे। वे सब के सब राम को देख सम्मुख आये और जय-जयकार शब्द से बढ़ती मनाने लगे। रामचन्द्र ने पहली ड्योढ़ी लाँघकर दूसरी में राजपूजित और वेदसम्पन्न वृद्ध ब्राह्मणों को देखा। उन्हें प्रणाम कर आगे बढ़ उन्होंने तीसरी ड्योढ़ी में स्त्री, बालक और वृद्धों को देखा। वे द्वार की रक्षा कर रहे थे। वहाँ की स्त्रियों ने प्रसन्न होकर राम को आशीर्वाद दिया। फिर वे शीघ्रता से घर में जाकर राम की माता को इनके आने की खबर सुनाने गईं। कौशल्या देवी रात्रि को नियम से रहकर प्रातःकाल पुत्र की हितकामना से विष्णु का पूजन कर रही थीं। वे क्षौम (अलसी के रेशे से बने हुए) वस्त्र धारण किये हुए हर्षित मन से मंगलाचार करके मन्त्रों से अग्नि में होम कर रही थीं। उस समय रामचन्द्र ने आकर देखा तो माता होम कर रही हैं और देवकार्य्य के निमित्त दही, अक्षत, घी, मोदक, होमद्रव्य, लावा, श्वेत माला, खीर, तिल, भात, समिधा और पूर्ण घट यह सब पदार्थ भी वहाँ रक्खे हैं। वे स्वयं जल से देवता का तर्पण कर रही हैं और व्रत के क्लेश से कृश हो रही हैं। उस समय पुत्र को आते देख कौशल्या प्रसन्न हो झट दौड़ी आईं और रामचन्द्र को गले से लगाकर और उनका मस्तक सूँघकर बोलीं—हे पुत्र! तुम वृद्ध और धर्मशील महात्मा राजर्षियों की आयु, बल, कीर्त्ति और कुल के उचित धर्म को प्राप्त हो। देखो, तुम्हारे पिता सत्यप्रतिज्ञ हैं, वे धर्मात्मा महाराज आज ही तुमको यौवराज्याभिषेक देंगे। ऐसा कहकर माता ने बैठने को आसन दिया और कहा कि बेटा! कुछ भोजन कर लो।

रामचन्द्र तो स्वभाव से ही नम्र थे पर इस समय और भी अधिक नम्र होकर और आसन को छूकर हाथ जोड़ करके वे दण्डकारण्य में जाने के लिए विदा माँगते हुए बोले—हे देवि ! तुम आये हुए इस महाभय को नहीं जानतीं ? तुम्हारे लिए, वैदेही के लिए और लक्ष्मण के लिए यह अत्यन्त दुःख हुआ कि मैं दण्डकारण्य की यात्रा करूँगा। अब यह आसन मेरे किस काम का ? मैं तो कुशासन के योग्य हूँ। यह समय ऐसा ही है। मैं चौदह वर्ष तक निर्जन वन में, मुनियों की तरह, वास करूँगा और वहाँ मूल और फलों से अपनी जीविका करूँगा; क्योंकि भरत को महाराज यौवराज्य देते हैं और मुझे तापस बनाकर दण्डकारण्य में भेजते हैं। इसलिए अब मैं चौदह वर्ष तक वन में बसूँगा और वन-फलों ही का सेवन करूँगा।

राम का वचन सुनते ही कौशल्या, कुल्हाड़ी से काटे हुए वृक्ष की नाईं और स्वर्ग से गिरी हुई देवी की तरह, भूमि पर झट गिर पड़ी। उस समय माता कौशल्या केले के पेड़ की तरह गिरकर अचेत हो गई थी। उसको रामचन्द्र ने उठाया। भूमि पर से लोटकर उठी हुई परिश्रान्त घोड़ी की नाईं उसके सम्पूर्ण अङ्ग में धूलि लग गई थी। उसको रामचन्द्र ने हाथ से झाड़कर साफ किया। तब तो कौशल्या चेतन होकर रामचन्द्र को सम्मुख बैठे देखकर लक्ष्मण के सामने बोली—हे पुत्र ! यदि तुम न होते तो मैं सन्ततिहीन रहती, पर मुझे यह दुःख तो न होता। हे पुत्र ! वन्ध्या स्त्री के मन में एक यही दुःख होता है कि मेरे कोई सन्तान नहीं। उसे कोई दूसरा दुःख तो नहीं सताता। हे राम ! पति के पौरुष से मैंने कोई मङ्गल या सुख नहीं पाया। मेरे मन में यह आशा थी कि पुत्र होने पर मैं कुछ सुख पाऊँगी, सो वह भी न हुआ। अब मैं हृदय को काटनेवाली सौतों के कठोर वाक्य सुनूँगी और बड़ी होकर भी अनादर सहूँगी। मेरे लिए यह जैसा अनन्त शोक और विलाप उपस्थित हुआ है इससे अधिक दुःख स्त्रियों को और क्या होगा ! देखो, तुम्हारी उपस्थिति में तो मेरा अनादर होता ही था और जब तुम चले जाओगे तब का क्या कहना है। हे तात ! अब मेरा मरणकाल आ गया। देखो मैं धिक्कारित और पति की अप्रिय हूँ और कैकेयी की शुश्रूषा में तत्पर रहती हूँ, सो न जाने कैकेयी की दासी के तुल्य भी मेरी गणना है अथवा उससे भी नीच समझी जाती हूँ। जो कोई मेरी सेवा करता अथवा मेरे अनुसार व्यवहार करता है वह कैकेयी के पुत्र को देखकर मुझसे बोलता भी नहीं। जो कैकेयी नित्य क्रोधयुक्त रहती और कठोर वचन बोलती है उसका मुख मैं किस प्रकार देख सकूँगी। हा ! मेरी बड़ी दुर्गति हुई। हे राम ! तुम्हारा यज्ञोपवीत हुए आज सत्रह वर्ष हो गये तभी से मैं अपने इस दुःख का नाश चाहती थी सो अब इस अक्षय दुःख को बहुत काल तक मैं न सह सकूँगी। इस बुढ़ापे में मुझसे सपत्नियों का अनादर न सहा जायगा। मैं तेरे चन्द्रमुख को बिना देखे अपने दीन जीवन को किस प्रकार बिताऊँगी ? मैंने उपवास, योग और बहुत परिश्रमों से तुम्हारा लालन-पालन किया था सो सब निष्फल हुआ। मैं अपने हृदय को बड़ा कठोर समझती हूँ जो इस समय फट नहीं जाता, जैसे वर्षाकाल में नवीन जल से नदी का कगारा विदीर्ण हो जाता है। हा ! मुझे मौत नहीं आती और न यमपुरी में मेरे लिए जगह है; मुझे इसी घड़ी मृत्यु क्यों नहीं हर लेना चाहती ! मेरा हृदय अवश्य लोहे का है जो इस दुःख से नहीं फटता। यह बात सही है कि अकाल में मरण नहीं होता। मैंने सन्तति की कामना से जो व्रत, दान, संयम और तपस्या की थी वह सब

अनर्थक हुई, जैसे ऊसर में बोया हुआ बीज निष्फल हो जाता है। यदि कोई महादुःखपीड़ित मुँहमाँगी मौत पाता होता तो मैं अवश्य तुम्हारे बिना यमपुरी को चली जाती। हे चन्द्रमुख! अब तो मेरा जीवन वृथा है। मैं तुम्हारे साथ ही वन को चलूँगी।

बँधे हुए अपने पुत्र को देखकर जिस तरह किन्नरी दुखी होती है उसी तरह उस दुःख को न सहकर देवी कौशल्या भी विलाप करने लगी।

---

## इक्कीसवाँ सर्ग

### रामचन्द्र का कौशल्या और लक्ष्मण को धर्मोपदेश करना

इस तरह विलाप करती हुई कौशल्या से लक्ष्मण दीन होकर समयोचित वचन बोले कि हे आर्ये! यह बात तो हमको भी नहीं भाती कि एक स्त्री के कहने से रामचन्द्र राजलक्ष्मी को त्यागकर वन को जायँ। राजा की तो बात ही निराली है! एक तो बुढ़ापे से उनकी बुद्धि उलटी हो गई है; दूसरे विषयों ने उनको जीत लिया है और तीसरे वे काम के वश में हैं। स्त्री की प्रेरणा से वे क्या न कहेंगे? मैं राम का न तो कोई अपराध देखता हूँ और न वैसा कोई दोष, जिस कारण ये राज्य से बाहर वन में निकाल दिये जायँ। मुझे ऐसा कोई मित्र या शत्रु भी नहीं दीख पड़ता जो पीछे भी राम को दोषी ठहरावे। भला देखो तो इस प्रकार के देवतुल्य, सीधे और शत्रु के लिए भी प्रिय पुत्र को बिना कारण कौन धर्मात्मा पुरुष त्यागेगा? इसलिए बालक की-सी बुद्धि रखनेवाले राजा के इस वचन को कौन पुत्र, जो कि राजा के व्यवहार को जानता है, मन में लावेगा? हे भ्राता! इस बात को जब तक कोई न जाने तब तक मेरे साथ इस राज्य को आप अपने वश में कर लीजिए। हे राघव! जब मैं काल के तुल्य धनुष को लेकर सहायता के लिए तुम्हारे पास खड़ा रहूँगा तब किसकी शक्ति है जो कुछ अप्रिय कर सके? यदि अयोध्यावासी लोग कुछ अप्रिय करने को तैयार होंगे तो मैं सारी अयोध्या को निर्जन कर डालूँगा। जो भरत के पक्ष के हैं अथवा जो उसके हित की कामना रखते हैं उन सबको मैं मार डालूँगा; क्योंकि सीधे ही को सब दबाते हैं। हमारे पिताजी को कैकेयी ने उभाड़ा है, वे उस पर खूब सन्तुष्ट हैं, यदि वे शत्रु के पक्ष पर हो जायं तो निश्शङ्क होकर या तो उनको पकड़ लेना चाहिए या उनका वध कर डालना चाहिए। क्योंकि गुरु अर्थात् पिता इत्यादि बड़े लोग यदि भीतर से अहङ्कार रखते हों और कार्य-अकार्य को न जानकर कुमार्ग पर चलते हों तो उनका भी शासन करना चाहिए। हे पुरुषोत्तम! यह राजा किस न्याय के बल से या किस कारण तुम्हारा राज्यासन कैकेयी को देना चाहते हैं? हे शत्रुनाशन! तुम्हारे और हमारे साथ वैर कर भरत को राज्यलक्ष्मी देने की इनको क्या शक्ति है? हे देवि! मैं सत्य, धनुष, दत्त* और इष्ट† की शपथ करता हूँ और ठीक-ठीक कहता हूँ कि मैं सच्चे मन से भाई पर प्रीति रखता हूँ। हे देवि! चाहे रामचन्द्र जलते हुए अग्नि में अथवा जङ्गल में जहाँ प्रवेश करेंगे वहाँ तू मुझे पहिले पैठा जान। माता! देख, मैं अपने पराक्रम से तेरे दुःख को हरे लेता हूँ और इसी घड़ी तुम और रामचन्द्र मेरी वीरता को देखना। वृद्ध पिता जो लड़कपन कर रहे हैं और इस

* दान। † यज्ञ

बुढ़ौती में भी अपने को निन्दित बना रहे हैं उनको मैं अभी दूर करूँगा।

लक्ष्मण का यह वचन सुन शोक से रोती हुई कौशल्या राम की ओर देखकर बोली—हे पुत्र! तुमने अपने भाई लक्ष्मण की बातें सुनीं? अब जो कुछ तुम्हें ठीक रुचता हो सो करो। मेरी सौत के इस अधर्मयुक्त वचन को सुनकर तुम्हें वन को न जाना चाहिए। शोक से विह्वल मुझे छोड़कर तुमको जाना उचित नहीं। हे धर्मज्ञ, हे धर्मशील! तुम जो धर्माचरण करना चाहते हो तो यहीं रहकर मेरी सेवा करो। तुम्हारे लिए यही उत्तम धर्म है। देखो, कश्यप ऋषि अपने घर में नियम और तपस्या करके माता की सेवा करते रहे और अन्त में स्वर्ग को गये। जिस प्रकार गुरुभाव से राजा तुम्हारे पूज्य हैं वैसे ही मैं भी तो हूँ। मैं तुम्हें वन जाने की आज्ञा नहीं देती। तुम्हारे वियोग में मुझे न तो जीवन से कुछ प्रयोजन है और न सुख से। तुम्हारे साथ मुझको तृण भक्षण करके भी रहना मंगलरूप है। जो तुम मुझे छोड़कर वन चले जाओगे तो मैं भोजन करना त्याग दूँगी और भूखों मरकर फिर जीवन भी न रख सकूँगी। मुझे इस प्रकार के दुख देने से तुमको नरक मिलेगा जैसे कि अधर्माचरण से समुद्र को ब्रह्महत्या लगी थी।

इस प्रकार से विलाप करती हुई माता को देखकर रामचन्द्र धर्मयुक्त वचन बोले—हे देवि! मुझमें शक्ति नहीं कि मैं पिता के वचन को टाल सकूँ। मैं प्रणाम करके तुमको मनाता हूँ और वन जाने की इच्छा करता हूँ। देखो, कण्डु नामक ऋषि व्रतचारी और पण्डित था। उसने जान-बूझकर पिता की आज्ञा से गोवध किया था। हमारे कुल में पिता सगर की आज्ञा से साठ सहस्र पुत्रों ने धरती खोदते-खोदते मृत्यु को गले लगाया था और जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने वन में, पिता की आज्ञा से, अपनी माता रेणुका को फरसा से काट डाला था। हे देवि! इन लोगों ने, तथा और भी कितने ही देवतुल्य लोगों ने दृढ़ता से पिता का वचन माना है। इसलिए मैं भी पिता का हित करूँगा। कुछ मैं अकेला ही पिता की आज्ञा नहीं मानता हूँ किन्तु जिनके नाम मैंने पहले कहे हैं उन लोगों ने भी पिता का वचन माना है। सो यह मेरा अवश्य कर्त्तव्य है। अब इसमें कुछ इधर-उधर नहीं किया जा सकता; क्योंकि पिता के वचन का पालन करनेवाला पुरुष धर्म से कदापि नहीं गिरता।

इस प्रकार रामचन्द्र अपनी माता से कहकर फिर लक्ष्मण से बोले—हे लक्ष्मण! मैं जानता हूँ कि मेरे ऊपर तुम्हारा बड़ा स्नेह है; और तुम्हारे बल, पराक्रम और दुर्द्धर तेज को भी मैं जानता हूँ। हे शुभलक्षण! सत्य और शान्ति के अभिप्राय को न जानने से मेरी माता को यह दुःख बड़ा असह्य जान पड़ता है। हे वीर! लोक में धर्म ही श्रेष्ठ है और धर्म ही में सत्य की स्थिति है। पिता का यह वचन भी धर्मसंयुक्त और उत्तम है। जो धर्म का आश्रय करनेवाले हैं वे पिता के, माता के अथवा ब्राह्मण के वचन को पालने की प्रतिज्ञा करके उसे वृथा नहीं करते। उसको न मानना बड़ा अनुचित काम है। अतः मैं पिता के इस वचन का उल्लंघन न कर सकूँगा। कैकेयी ने भी पिता ही के वचन से मुझे प्रेरणा की है। हे लक्ष्मण! तुम इस दुष्ट और क्षत्रियधर्मयुक्त बुद्धि को छोड़ो और तीक्ष्णता को त्यागकर धर्म का आश्रय करो तथा मेरी बुद्धि के अनुसार चलो।

इस प्रकार भाई को समझाकर रामचन्द्र फिर कौशल्या को हाथ जोड़ प्रणाम कर बोले—हे देवि!

अब मुझे वन जाने के लिए आज्ञा दो। तुझे मेरे प्राणों की शपथ है, तू मेरे लिए मंगलाचार कर। मैं प्रतिज्ञा से पार होकर पुरी में फिर लौट आऊँगा जैसे किसी कारण स्वर्ग से भूमि पर गिरकर ययाति फिर स्वर्ग को गये थे। माताजी! अब इस शोक को हृदय में रक्खो और चिंता को छोड़ दो। मैं पिता के वचन का पालन कर फिर यहाँ आऊँगा। मुझे, तुम्हें, सीता को, लक्ष्मण को और सुमित्रा को पिता की आज्ञा में रहना चाहिए, यही सनातन धर्म है। अम्मा! अब तुम अभिषेक की सामग्री उठा डालो और मेरे वनवास में मन लगाओ।

जो माता मृतक के ऐसी हो गई थी वह रामचन्द्र की धर्म और धीरतायुक्त तथा कादरता-रहित बातें सुनकर सचेत हो राम की ओर देखकर बोली—हे पुत्र! स्वधर्म से और सौहार्द से तुम्हारे लिए जैसे पिता मान्य हैं वैसे ही मैं भी हूँ। मैं तुमको वन जाने की आज्ञा नहीं देती। इसलिए मुझे दुःखित छोड़कर तुम्हें वन जाना उचित नहीं। तुम्हारे बिना न तो मुझे जीवन से, न लोक से, न स्वधा और न अमृत से कुछ प्रयोजन है। मुहूर्त्त भर भी तुम्हारे पास रहने में ही मेरा मंगल है और सम्पूर्ण जीव-लोक मेरे लिए व्यर्थ हैं। उस समय फिर भी माता का करुणायुक्त विलाप सुनकर रामचन्द्र को कुछ तो क्रोध और कुछ सन्ताप हुआ जैसे कि रात्रि को हाथ में लुक्क लिये हुए लोगों से भगाया गया मत्त गज अन्धकार में पड़कर दुःख और क्रोध से सन्तप्त हो जाता है। उस समय माता अचेत-सी हो गई थी, और लक्ष्मण पीड़ा तथा सन्ताप से युक्त थे। उनको समझाने के लिए रामचन्द्र ने वह बात कही जो उस समय वे ही कह सकते थे। उन्होंने कहा—हे लक्ष्मण! मैं तुम्हारी भक्ति और पराक्रम को जानता हूँ; परन्तु इस घड़ी मेरे अभिप्राय को बिना समझे तुम और माता मुझे व्यर्थ पीड़ित कर रहे हो। हे तात! लोक में धर्म-फलों के उदय में अर्थात् सुखप्राप्ति में धर्म, अर्थ और काम—यही तीनों कारण हैं। ये तीनों केवल धर्माचरण से ही प्राप्त हो सकते हैं, जैसे कि एक ही भार्या पति के वश में होकर धर्म को, प्रिया होकर काम को और सुपुत्रा होकर अर्थ को सम्पादन करती है। इसलिए जिस काम से इन तीनों की प्राप्ति में बाधा हो उसको छोड़ दे और जिससे धर्म का लाभ हो उसी को आरम्भ करे; क्योंकि केवल अर्थतत्पर मनुष्य लोक में प्रीतिपात्र नहीं होता, वह द्वेष के योग्य हो जाता है। काम में तत्पर होना तो सर्वथा निन्दित ही है। देखो एक तो राजा हमारे गुरु हैं, दूसरे पिता हैं और तीसरे वृद्ध हैं। ये क्रोध से, हर्ष से या काम से भी जो आज्ञा दें तो भी उसे धर्म की ओर दृष्टि करके हमें करना चाहिए। ऐसा कौन सुबुद्धि पुत्र है जो पिता की प्रतिज्ञा को टाल दे? हे तात! मैं तो वचन से टल नहीं सकता। पिता की सम्पूर्ण आज्ञा को यथोचित किये बिना मैं नहीं टाल सकता; क्योंकि वे मेरे सब विषयों में आज्ञा देने-वाले हैं और देवी कौशल्या के भी भर्त्ता एवं गति और धर्मरूप हैं। ये जो मेरे संग चलने को कहती हैं सो यह भी ठीक नहीं; क्योंकि धर्मराज के तुल्य और अपने मार्ग पर वर्तमान राजा के जीते जी देवी मेरे साथ यहाँ से किस प्रकार विधवा स्त्री की तरह चल सकती हैं? हे देवि! मेरे वन जाने में अनुमति देकर मेरे लिए स्वस्त्ययन करो, जिससे मैं प्रतिज्ञा समाप्त करके फिर लौट आऊँ, जैसे सत्य के बल से ययाति फिर स्वर्ग को प्राप्त हुए थे। मैं केवल राज्य के कारण इस महायश को पीठ नहीं दे सकता। हे देवि! मैं थोड़े काल के जीवन में अधर्म से इस पृथ्वी को नहीं लेना चाहता।

नरश्रेष्ठ रामचन्द्र ने इस प्रकार माता को प्रसन्न कर अपने पराक्रम से दण्डक वन में जाना चाहा। लक्ष्मण को समझा-बुझाकर उन्होंने माता की प्रदक्षिणा की।

---

## बाईसवाँ सर्ग

### रामचन्द्र का लक्ष्मण को समझाना

लक्ष्मण दीन हो रहे थे और उस दुःख को न सह सकते थे। वे साँप के समान श्वास को छोड़ते और क्रोध से आँखें फैलाये हुए थे। उनको देखकर और अपना प्रिय भ्राता और सुहृद समझकर श्रीराम ने धीरता से अपनी चिन्ता को रोका और कहा—हे भाई, अब तुम क्रोध और शोक को रोककर केवल धीरज धरो और इस अनादर को मन से मिटाकर आनन्दित हो। मेरे अभिषेक के लिए जो यह तैयारी की है इसको शीघ्र हटाओ। इसके अनन्तर जो कार्य हो उसको निर्विघ्नता से करो। हे सौमित्रे। मेरे अभिषेक के लिए जो सामग्री का उत्साह था वह मेरे अभिषेक की निवृत्ति के लिए हो। मेरे अभिषेक से जिसका मन सन्तप्त हो रहा है वह माता जिस प्रकार से शंकारहित हो जाय वही काम करो। हे सौमित्रे! मुहूर्त्त भर भी उसके मन के शंकारूप दुःख को न मैं सह सकता हूँ और न देख सकता हूँ। मैंने कभी, जान में या अजान में, माता या पिता का कुछ भी अपराध नहीं किया। सत्यप्रतिज्ञ और परलोक के भय से डरे हुए महाराज दशरथ निर्भय हो जायँ। "बिना इस अभिषेक-सम्भार को निवृत्त किये मेरा यह वचन सत्य होगा या नहीं" ऐसा उनके मन में सन्देहरूप ताप होगा और वह ताप मुझे सन्तप्त करेगा। इसलिए हे लक्ष्मण! इस अभिषेक-सामग्री को जहाँ की तहाँ ठिकाने लगाकर शीघ्र ही मैं वनयात्रा करना चाहता हूँ। क्योंकि आज ही मेरे वन चले जाने से कैकेयी कृतार्थ हो जायगी। फिर पीछे से सावधानी से भरत का अभिषेक करेगी। जब मैं चीर, मृगचर्म और जटामंडल को धारण कर वन को चला जाऊँगा तब उसके मन को सुख होगा। जिसने कैकेयी को ऐसी बुद्धि दी और इस प्रकार मन फेरा उस विधाता को क्लेश न देना चाहिए। अब मैं शीघ्र ही जंगल को प्रयाण करूँगा। अब ऐसा करो जिसमें विलम्ब न हो। हे सौमित्रे! मेरे वनवास में, और दिये हुए राज्य की निवृत्ति में, केवल दैव ही को कारण जानो; क्योंकि जो दैव उसके मन के अभिप्राय को ऐसा न कर देता तो वह किस लिए मुझे ऐसी पीड़ा देती? हे साधो! तुम तो जानते ही हो कि माताओं पर मेरी विषम दृष्टि कभी नहीं हुई। आज तक कैकेयी का मुझमें और भरत में कुछ भी अन्तर देखने में नहीं आया परन्तु इस घड़ी उसने मेरे अभिषेक की निवृत्ति के लिए और मेरे प्रवास के लिए कैसे-कैसे दुष्ट और उग्र वचन कहे! इसलिए इस विषय में दैव के सिवा दूसरा हेतु नहीं हो सकता। नहीं तो ऐसी सुन्दर प्रकृति-वाली और ऐसी गुणयुक्त होकर भी वह राजपुत्री नीच स्त्री की तरह पति के सम्मुख मुझे पीड़ा देने के लिए ऐसी बात क्यों बोलती! वह दैव ब्रह्मादिक को भी दुर्निवार्य है। उसी ने मुझमें और उसमें इस प्रकार भेद कर दिया। हे सौमित्रे! कौन पुरुष उस दैव के साथ युद्ध करने का उत्साह करेगा जिसका थोड़ा भी ग्रहण नहीं हो सकता, क्योंकि कर्म के सिवा दूसरा पदार्थ ही नहीं देख पड़ता। देखो सुख, दुःख, भय, क्रोध, लाभ, हानि, जन्म और मरण और और जो कुछ इनके तुल्य हैं वे

सब दैव के काम हैं। बड़े-बड़े उग्र तपस्वी ऋषि लोग दैव से पीड़ित होकर अपने तीव्र नियमों को छोड़ देते और काम तथा क्रोध से भ्रष्ट हो जाते हैं। यह दैव ही का कर्म है कि असंकल्पित वस्तु अकस्मात् आप से आप ही मिल जाती है और प्रारब्ध आप ही से निवृत्त हो फिर प्रकाशित होता है। इस प्रकार की तत्त्व-बुद्धि से अपने ही से अपने को दृढ़ कर अभिषेक के नष्ट होने पर भी मैं सन्ताप नहीं करता। इसलिए तुम भी सन्ताप को छोड़ मेरा अनुसरण करो और इस अभिषेकक्रिया को दूर करो। हे लक्ष्मण! अभिषेक के लिए जो ये घड़े भरे हुए रक्खे हैं इनसे तापस-अवस्था में मेरा व्रतस्नान होगा अथवा इस राज्य-द्रव्यरूप पदार्थ से मुझे क्या काम! मेरे हाथ से भरा हुआ जल व्रताधिकार का सम्पादन करेगा। हे लक्ष्मण! इस राज्य-लक्ष्मी के उलट-फेर में तुम सन्ताप मत करो। या तो राज्य या वनवास—यही दो तो हैं। उनमें वनवास महोदय रूप है। हे लक्ष्मण! इस राज्य-प्राप्ति के विघ्न होने में मेरी छोटी माता कैकेयी हेतु है, यह शङ्का कदापि न करना; क्योंकि दैव के वश में होकर लोग अनिष्ट भाषण करते हैं। तुम तो दैव का प्रभाव जानते ही हो।

---

## तेईसवाँ सर्ग

### लक्ष्मण का महाक्रोध

अब तक लक्ष्मण नीचे को मस्तक किये हुए थे। रामचन्द्र का ऐसा वचन सुनकर उनके मन में दुःख और हर्ष दोनों व्याप्त हो गये। भृकुटी को टेढ़ी कर वे मारे क्रोध के बिल में सर्प की नाईं श्वास लेने लगे। उस समय क्रुद्ध सिंह के मुख के समान उनका मुख भयङ्कर हो गया। अब लक्ष्मण हाथी की सूँड़ के तुल्य अपने हाथ को कँपाकर और मस्तक को तिरछा और ऊपर हिलाकर तथा भाई की ओर टेढ़ा देखकर बोले—हे रामचन्द्र! भला धर्म-दोष के प्रसङ्ग से और लोक की शंका छोड़ जिस पुरुष को भ्रम हो वह ऐसा कहे तो कहे परन्तु तुम्हारे ऐसा प्रकृतिस्थ पुरुष ऐसा नहीं कह सकता। तुम क्षत्रियश्रेष्ठ और समर्थ होने पर भी असमर्थ की तरह अशक्त और दीन होकर दैव की प्रशंसा कर रहे हो। क्या तुमको उन पापियों के विषय में शंका नहीं होती? हे साधो, धर्मात्मन्! इस लोक में धर्मच्छली भी बहुत लोग हैं। उनको तुम क्यों नहीं जानते? देखो, जो स्वार्थ के लिए धूर्तता से तुम ऐसे धर्मात्मा पुरुष को त्यागना चाहते हैं उन दोनों का यदि ऐसा अभिप्राय न होता तो इस वर का देन-लेन उन्होंने पहले ही से कर डाला होता। अब इस घड़ी इन दोनों ने जो यह लोक का अहित, भरत का अभिषेक आरम्भ किया है इसको तो मैं नहीं सहूँगा। हे वीर! इस विषय में मेरा अपराध क्षमा कीजिए। हे महामते! जिस धर्म के द्वारा तुम्हारी बुद्धि इस प्रकार की है वह धर्म भी मुझे मान्य नहीं। क्योंकि तुमको उसके प्रसंग से मोह हो गया है; तुम सामर्थ्यवान् होकर भी कैकेयी के वशवर्ती पिता का अधर्मनिष्ठ और निन्दित वचन किस प्रकार पूरा करोगे? अभिषेक के रोके जाने को तुम कपट नहीं समझते हो, बस यही मुझे दुःख होता है। ऐसी धर्म्मतत्परता भी किस काम की जो निन्दित हो। देखो तुम्हारा यह धर्मसंयोग इस लोक में निन्दा के योग्य है; क्योंकि तुमको छोड़ ऐसा और कौन होगा जो उन दोनों कामी, और माता-पिता रूप शत्रुओं का कहना मन से भी करे? यद्यपि तुम्हारा यह मत है कि उन दोनो ने भी जो यह

बात की सो दैव ही के कारण समझनी चाहिए, तथापि हमको यह बात नहीं भाती। तुम इस मत को छोड़ दो। देखो, जो पुरुष लोक में अप्रसिद्ध है और वीर्यहीन है वही दैव का अनुसरण करता है और जो लोग वीर हैं, जिनका शौर्य और पराक्रम लोक में प्रसिद्ध है और जो स्तुति के योग्य हैं वे दैव की उपासना कदापि नहीं करते। जो अपने पौरुष से दैव के बाँधने को समर्थ है उस पुरुष का दैव कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता; और न वह कभी दुखी होता है। लोग आज दैव और पुरुष का सामर्थ्य देखेंगे कि इनमें से कौन प्रबल है। दैव बली है कि मनुष्य ? यह आज ही स्पष्ट हो जायगा। आज मेरे पौरुष से मारे हुए दैव को वे लोग देखेंगे जिन्होंने दैव से नष्ट हुए तुम्हारे राज्याभिषेक को देखा है। जो दैव उस उद्दण्ड हाथी की नाईं है कि जो अंकुश को नहीं मानता, जिसके मद बह रहा है और जो इधर-उधर दौड़ रहा है, ऐसे दैव को मैं आज अपने पौरुष से निवृत्त करता हूँ। हे राम! तुम्हारे राज्याभिषेक का नाश न तो लोकपाल कर सकते हैं और न तीनों लोकों के निवासी। फिर पिता की सामर्थ्य ही क्या है जो इसको हटा सकें। हे राजन्! जिन लोगों ने तुम्हारा अरण्यवास कराया है अब वे ही चौदह वर्ष पर्य्यन्त अरण्य में वास करेंगे। जो तुम्हारे राज्याभिषेक का विनाश करके अपने पुत्र को राज्य देना चाहते हैं उन पिता-माता की इस आशा को मैं भस्म कर डालूँगा। मेरे बल से विरोधी लोगों के लिए दैवबल वैसा दुःखदायक न होगा जैसा कि मेरा उग्र पौरुष दुःखकारक होगा। हजार वर्ष के बाद जब तुम वनवास को जाओगे तब तुम्हारे पुत्र राज्य का पालन करेंगे। पूर्वराजर्षियों की रीति से पुत्र की नाईं प्रजा को पालने के लिए पुत्र को राज्यासन देकर वनवास करना उचित है। हे राम! यदि तुम राजा के वचन का विरोध करके राज्य लेने में राज्य की गड़बड़ की शङ्का से ऐसा नहीं चाहते हो तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं समुद्र की वेला की नाईं जो तुम्हारे राज्य को न बचाऊँ तो मुझे वीरों के लोक न मिलें। तुम मङ्गलपूर्वक अपना अभिषेक करवाकर उस काम में लगो। मैं अकेला ही विरोधी राजाओं को पराक्रम से हटाने में समर्थ हूँ। मेरी ये बाँहें कुछ शोभा के लिए नहीं हैं; न धनुष भूषण के लिए हैं, न खड्ग केवल बाँधने के लिए और न बाण किसी के रोकने के लिए; किन्तु मेरी ये चारों चीजें शत्रुओं के मथने के लिए हैं। जो मेरा शत्रु है उसको मैं अपने सामने कुछ भी नहीं गिनता। जब मैं बिजली के तुल्य चमकीले और पैनी धारवाले खड्ग को हाथ में लूँगा तब इन्द्र को भी अपने सामने कुछ न समझूँगा इस खड्ग के प्रहार से काटे हुए हाथी, घोड़े, रथ, हाथ, जंघा और मस्तकों से भूमि को ऐसी कर दूँगा कि जाने-आने के मार्ग बन्द हो जायँगे। मेरी खड्गधारा से कटे हुए और रुधिर से भरे प्रदीप्त पर्वत की नाईं शत्रु लोग ऐसे गिरेंगे जैसे बिजली के साथ मेघ गिरते हैं। जब मैं गोधाङ्गुलित्राण* को बाँधकर हाथ में धनुष लूँगा तब देखूँगा कि कौन शूराभिमानी मेरे सम्मुख ठहर सकता है। मैं अनेक बाणों से शूरों को गिराकर पीछे से पैदल, घोड़ों और हाथियों को मारूँगा। आज मेरे अस्त्र का प्रभाव भी देख पड़ेगा। प्रभो! राजा की प्रभुता का नाश कर मैं तुम्हारी प्रभुता स्थापित करूँगा। हे राम! मेरी ये बाँहें चन्दनलेप, आभूषण-धारण और धन का दान करने तथा सुहृदों का पालन करने के योग्य

*धनुष की जेह से बचाने के लिए गोह के चमड़े का दस्ताना।

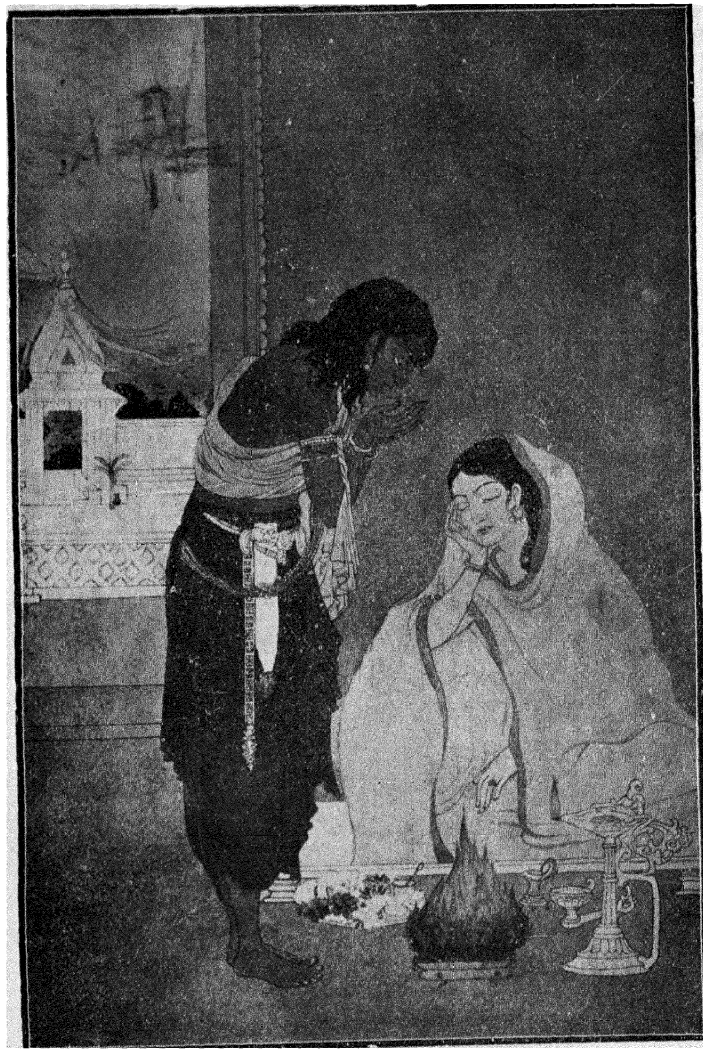

रामचन्द्र को वन जाने के लिए कौशल्या का आज्ञा देना। [पृष्ठ ११६

हैं। आज ये तुम्हारे अभिषेक में विघ्न करनेवाले पुरुषों के निवारण के लिए काम करेंगी। हे रामचन्द्र! मैं आपका किङ्कर हूँ। मुझे बतलाइए और आज्ञा दीजिए कि आपका शत्रु कौन है जिसको मैं इसी क्षण प्राण, यश और सुहृज्जनों से पृथक् कर दूँ और यह वसुधा आपके वश में हो जाय।

लक्ष्मण का ऐसा क्रुद्ध वचन सुनकर रामचन्द्र आँखों से आँसू बहाकर और बहुत प्रकार से आश्वासन देकर बोले—हे सौम्य! मैं तो माता और पिता के वचन में स्थित हूँ क्योंकि यही सन्मार्ग है, यही धर्म-मार्ग है और यही सत्पुरुषों के करने योग्य काम है।

———

## चौबीसवाँ सर्ग

### रामचन्द्र को वन जाने के लिए कौशल्या का आज्ञा देना

इसके अनन्तर कौशल्या रामचन्द्र को पिता की आज्ञा पालने में तत्पर देख आँसुओं से गद्गद हो धर्म-युक्त वचन बोली—हे राम! जिसने कभी दुःख नहीं देखा और जो धर्म में तत्पर तथा सबसे प्रिय वचन बोलता है, वह ऋषिवृत्ति से अपनी जीविका किस प्रकार करेगा? जिसके मृत्यु और दास सुन्दर मिष्ट अन्न का भोजन करते हैं वह राम वन में किस भाँति फल-मूल का आहार करेगा? और यह बात सुनकर कि गुणवान् और राजा का प्रिय राम वन में निकाल दिया गया है, कौन विश्वास करेगा और किसको भय न होगा? इसलिए दैव ही को बलवान् और सर्वकर्त्ता कहना चाहिए; क्योंकि हे सुन्दर रामचन्द्र! तुम वन में जाओगे। हे रामचन्द्र! मेरे मन से यह शोकरूप महान् अग्नि उत्पन्न हुआ है। यह तुम्हारे अदर्शनरूप वायु से बढ़कर विलाप-दुःखरूप ईंधन से और रोने के आँसू-रूप घृत से प्रदीप्त किया जाकर चिन्ता और श्रम-रूप धूम से पूर्ण है। यह मुझे वैसे ही भस्म कर देगा जैसे शीतकाल के अनन्तर तृण, लता इत्यादि को सूर्य जला देते हैं। देखो, जैसे अपने वत्स के पीछे गौया दौड़ी जाती है उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे जहाँ तुम जाओगे वहाँ चलूँगी।

माता की ये बातें सुनकर रामचन्द्र बोले कि देखो, राजा कैकेयी से छले गये हैं और जब कि मैं वन में चला जाऊँगा और तुम भी उनको छोड़ दोगी तब उनके बचने की आशा नहीं। और फिर भर्त्ता का परित्याग स्त्री के लिए केवल दुष्ट कर्म है। अतएव ऐसा निन्दित कर्म तुमको मन से भी न करना चाहिए। जब तक पृथ्वी-पति मेरे पिताजी जीते हैं तब तक तुम उनकी सेवा करो। यही सनातन धर्म है।

जब रामचन्द्र ने ऐसा समझाया तब कौशल्या उस बात को मानकर प्रसन्न हुई। तब रामचन्द्र माता के अंगीकार वचन को सुनकर फिर बोले—हे देवि! हमको और तुमको पिता का वचन अवश्य करना चाहिए। क्योंकि राजा भर्त्ता, गुरु, श्रेष्ठ और सबके स्वामी तथा प्रभु हैं। मैं वन में प्रसन्नतापूर्वक इन चौदह वर्षों को बिताकर शीघ्र आऊँगा और तेरे वचन पर स्थिर रहूँगा।

पुत्र का यह वचन सुन आँखों में आँसू भर कर परम दीन हो कौशल्या फिर बोली—हे काकुत्स्थ! यदि तुम पिता के वचन से वन जाना चाहते हो तो बनैली मृगी की भाँति मुझे भी संग ले चलो, क्योंकि मुझे इन सौतों के बीच रहना उचित नहीं है। इस प्रकार विलाप करते करते बातें करती हुई कौशल्या से रामचन्द्र रोकर

बोले—हे माता! जीवित स्त्री के भर्त्ता ही देवता और प्रभु हैं। इसलिए तुम्हारे और हमारे प्रभु राजा ही हैं। लोकनाथ और बुद्धिमान् राजा के रहते हम लोग अनाथ नहीं हो सकते। भरत भी धर्मात्मा और प्रिय बोलनेवाले हैं। वे अवश्य तुम्हारा अनुसरण करेंगे। ऐसा करना जिसमें मेरे चले जाने पर राजा पुत्रशोक से क्लेश न पावें क्योंकि राजा वृद्ध है और यह शोक बड़ा दारुण है। देखना सावधानी से राजा के हित में तत्पर रहना। जो परम उत्तम स्त्री व्रत और उपवास में तत्पर रहती है और पति की सेवा नहीं करती वह पापियों की गति को प्राप्त होती है। जो देवों के नमस्कार और पूजन से निवृत्त है अर्थात् जो किसी देवता को नहीं मानती, परन्तु केवल अपने पति की सेवा ही करती है वह उत्तम गति प्राप्त करती है। स्त्री को यही उचित है कि पति के प्रिय और हित में तत्पर होकर उसकी सेवा किया करे। यही धर्म सनातन वेद और लोक में प्रसिद्ध है। हे देवि! तू मेरे लिए हवन इत्यादि अग्निकार्यों में पुष्पों से देवताओं का पूजन और व्रतधारी ब्राह्मणों का भी सम्मान और सत्कार करके मेरे आने के काल की बाट देखना और नियम से नित्याहार हो पति की सेवा में रहना। जब मैं लौट आऊँगा और जो धर्मधारियों में श्रेष्ठ राजा जीते रहेंगे तो तू बड़े मनोरथ को पावेगी।

इस प्रकार राम से समझाई हुई कौशल्या आँखों में आँसू भर और पुत्रशोक से पीड़ित होकर बोली—हे पुत्र! तुम्हारी गमन की बुद्धि को तो मैं रोक नहीं सकती; क्योंकि काल दुर्लंघ्य है। इसलिए तुम्हारा सदा कल्याण हो। तुम एकाग्र हो जाओ, फिर तुम्हारे आने से मैं दुःखरहित हूँगी। जब तुम लौट आओगे और कृतार्थ हो पिता के ऋण से मुक्त होगे तब मैं परम सुख को प्राप्त होऊँगी। हे पुत्र! दैव की गति बड़ी दुर्लंघ्य है—कुछ जानी नहीं जाती। क्योंकि वह मेरे वचन को भी हटाकर तुमको प्रेरणा करती है। हे पुत्र! तुम जाओ और कुशलपूर्वक लौट आओ और शुद्ध चित्त से मुझे आनन्दित करो। मैं शीघ्र उस समय को चाहती हूँ कि जिस समय वन से लौटकर आये, जटा और वल्कल को धारण किये हुए, तुम्हें मैं देखूँ।

इस प्रकार उस समय देवी कौशल्या राम से, जो वनवास का निश्चय कर चुके थे, यह वचन कहकर स्वस्तिवाचन करने लगी।

---

## पचीसवाँ सर्ग

### रामचन्द्र की वनयात्रा के लिए कौशल्या का मंगलाचार करना

अब कौशल्या उस पुत्रशोक को त्यागकर पवित्र जल का आचमन करके राम के लिए मंगलाचार करने लगी। उन्होंने कहा—हे रघूत्तम! अब मैं तुम्हें नहीं रोक सकती। तुम जाओ और शीघ्र वहाँ से लौटकर सज्जनों के मार्ग का अनुसरण करो। हे राघव, जिस आर्य-धर्म को तुम धीरता और नियम से पालते हो वह धर्म तुम्हारी रक्षा करे। चतुष्पथ में और देवमन्दिरों में तुम जिनको प्रणाम करते हो वे महर्षियों के साथ वन में तुम्हारी रक्षा करें। विश्वामित्र ने तुमको जो अस्त्र दिये हैं वे सदा तुम्हारी रक्षा करें। हे महाबाहो! पिता और माता की सेवा से और सत्य से रक्षित होकर तुम चिरंजीव हो। हे नरोत्तम! समिधा, कुश, पवित्र वेदी, देवमन्दिर, ब्राह्मणों के नियम, शयन, वेदिका, शैल, वृक्ष, जलाशय, आश्रम, पक्षी, सर्प और सिंह तुम्हारी

रक्षा करें। साध्य, विश्वेदेव, वायु, महर्षि, धाता, विधाता, पूषा, भग, अर्यमा, इन्द्र इत्यादि लोकपाल, छहों ऋतु, मास, संवत्सर, रात्रि, दिन और मुहूर्त्त सदा तुम्हारा मंगल करें। हे पुत्र! सम्पूर्ण नक्षत्र, ग्रह, देवता, श्रुति, स्मृति और धर्म ये सब प्रकार से तुम्हारा पालन करें। भगवान् स्कन्द, चन्द्र, देव, इन्द्र, बृहस्पति, सप्तर्षि और नारद सर्वदा तुम्हारी रक्षा करें। हे पुत्र! जिनकी मैंने स्तुति की है वे सिद्ध और अपने स्वामियों सहित सब दिशाएँ तुम्हारी रक्षा करें। सम्पूर्ण पर्वत, समुद्र, कुबेर, राजा, वरुण, स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी, वायु, चर, अचर, दिन, रात्रि और सन्ध्या, वन में तुम्हारी रक्षा करें। कला और काष्ठा, अर्थात् कला का एक अंश, तुमको सुख दे। मुनि का वेश धारण करके वन में फिरते समय तुम्हारे लिए देवता और दैत्य सुखदाता हों। हे पुत्र! राक्षसों, पिशाचों और क्रूरकर्म करनेवाले दैत्यों तथा सम्पूर्ण क्रव्यादों से तुमको भय न हो। वानर, बिच्छू, वनमक्षिका, मच्छड़, सर्प तथा और और कीड़े उस वन में न हों जहाँ कि तुम रहोगे। महागज, सिंह, व्याघ्र, भालू जिनके भयंकर दाँत हैं और भैंस जिनके सींग तीक्ष्ण और भयदायक हैं, तुमसे द्रोह न करें, जो और सर्प मनुष्य का मांस खाते और भयकारक हैं वे मुझसे पूजित हो तुम्हारी हानि न करें। तुम्हारे मार्ग मङ्गलरूप हों, पराक्रम सिद्ध हों और सब सम्पत्ति अर्थात् वन के फल-मूल की बढ़ती हो। हे पुत्र रामचन्द्र! स्वस्तियुक्त तुम वन को जाओ। आकाश और पृथ्वी के पदार्थों से, सम्पूर्ण देवताओं से और जो तुम्हारे अहित चाहनेवाले हैं उनसे बार-बार तुम्हारी रक्षा हो। शुक्र, चन्द्र, सूर्य, कुबेर और यम, ये सब पूजित होकर दण्डकारण्यवासी तुम्हारी रक्षा करें। अग्नि, वायु, धूम और ऋषियों के मुख के मन्त्र वन के व्यवहारकाल में तुम्हारी रक्षा करें। सब लोकों के प्रभु और चराचर के कर्त्ता ब्रह्मा, ऋषि लोग तथा और और देवता वनवास में तुम्हारी रक्षा करें।

इस प्रकार मंगल-वचन कहकर यशस्विनी कौशल्या ने पुष्प, गन्ध और स्मृतियों से देवताओं की पूजा की और अग्नि का स्थापन कर राम के मंगल के लिए महात्मा ब्राह्मण से विधिपूर्वक होम करवाया। घृत, श्वेत पुष्प, समिधा और श्वेत सर्षप लाकर वेदी के पास रख दिये। उपाध्याय ने विधिपूर्वक होम कर शान्ति और आरोग्य के लिए, बचे हुए होम के द्रव्य से होम-स्थान से बाहर लोकपालों को बलि अर्थात् भाग दिया। इसके अनन्तर कौशल्या ने मधु, दधि, अक्षत और घृत से ब्राह्मण द्वारा स्वस्तिवाचन करवा कर राम की वनयात्रा के लिए स्वस्त्ययन करवाया। इसके अनन्तर कौशल्या उस ब्राह्मण को यथेष्ट दक्षिणा दे रामचन्द्र से बोली—हे राम! जो मंगल वृत्रासुर के नाश के समय इन्द्र को हुआ था वह मंगल तुम्हारे लिए हो। विनता ने गरुड़ के लिए, अमृत की खोज में जाते समय, जो मंगल किया था वह मंगल तुमको हो। अमृत मथने के समय जब इन्द्र दैत्यों का घात कर रहे थे उस समय अदिति ने जो मगल इन्द्र को दिया था वह मंगल तुमको मिले। तीन पाद से लोकों को नापने के लिए अतुल तेज स्वी भगवान् विष्णु को जो मङ्गल हुआ था वह मङ्गल तुम्हारे लिए हो। हे महाबाहो! ऋषि, सागर, द्वीप, वेद और दिशाएँ तुम्हारे लिए मङ्गल करें।

कौशल्या ने इस प्रकार से मंगल वचन कहे और फिर पुत्र के मस्तक पर* सिद्धार्थ विशल्यकरणी नाम

* मनोरथ को पूरा करनेवाली और बाण की पीड़ा को दूर करनेवाली।

ओषधि और अक्षत रखकर और राम को गन्ध से लेपित कर रक्षा के मन्त्र जपे। कौशल्या यद्यपि दुःखित थी तथापि हर्षित हो केवल वाणी ही से नहीं वरन् मन से भी गद्गद हो राम का मस्तक सूँघकर और गले से लगाकर यह वचन बोली—हे राम! सिद्धार्थ और सुखपूर्वक तुम जाओ। फिर मैं रोगरहित और पूर्ण मनोरथ हुए और अयोध्या में लौटे हुए तुम्हें राजमार्ग में देखूँ। उस समय मैं सुख और हर्ष में प्रफुल्लित मुख होकर वन से लौटे हुए तुमको पूर्णचन्द्र की भाँति उदित देखूँगी। जब कि तुम पिता की प्रतिज्ञा से उत्तीर्ण हो फिर आओगे तब मैं मंगलरूप भद्रासन पर बैठे हुए तुम्हे बार-बार देखूँगी। तुम मंगलों से युक्त हो वनवास से आकर मेरी पुत्रवधू के मनोरथों की नित्य वृद्धि करो। हे राघव! गमन करो। मैंने शिव इत्यादि देवगणों की, महर्षियों की, भूतिगणों की और दिव्य सर्पों की पूजा की है। ये सब और सब दिशाएँ चिरकाल पर्यन्त वनयात्रा करते हुए तुम्हारा हित करें।

इस प्रकार कौशल्या ने आँखों में आँसू भर यथाविधि स्वस्त्ययन की समाप्ति कर राम की प्रदक्षिणा की और पुत्र को बार-बार देख आलिंगन किया। उस समय माता से प्रदक्षिणा किये जाने पर रामचन्द्र उस मंगलाचार की शोभा से प्रज्वलित रूप हो उठे। वे माता के चरणों में बार-बार प्रणाम कर सीता के घर को चले।

—

## छब्बीसवाँ सर्ग

### रामचन्द्र का सीता को वन जाने का सन्देश और घर पर रहने की सलाह देना

अब रामचन्द्र कौशल्या को प्रणाम कर और स्वस्त्ययन को प्राप्त हो, धर्म्ममार्ग से वन जाने के लिए तैयार हुए। वे माता के घर से राजमार्ग में आये। वहाँ बड़ी भीड़ थी। अपनी शोभा से उसको भूषित करते हुए राम ने लोगों के मन को गुणवत्ता से मथन कर लिया। अभी तक ये बातें तपस्विनी वैदेही ने नहीं सुनी थीं। उनके मन में तब तक यौवराज्याभिषेक ही खेल रहा था। वह राजपुत्री देवकार्य कर प्रसन्न मन से बाट देख रही थी। क्योंकि वह राजधर्मों को भली भाँति जानती थी। इतने में लज्जा से कुछ नीचे मुख किये रामचन्द्र सुन्दर विभूषित और प्रहृष्ट जनों से भरे हुए अपने घर में आये। इसके अनन्तर सीता ने पति को देखा कि वे शोक-सन्तप्त और चिन्ता से व्याकुलेन्द्रिय हो रहे हैं। तब वह धर्मात्मा रामचन्द्र सीता को देख अपने मन के शोक को न छिपा सके। तब तो पति का बिगड़ा हुआ मुँह, देह में पसीना और शोक धारण करने में उनको असमर्थ देख दुःखसन्तप्त होकर सीता बोली—हे प्रभु! यह क्या है? हे राघव! पण्डित ब्राह्मण लोग कहते हैं कि आज बृहस्पति देवतायुक्त पुष्य नक्षत्र के चन्द्रमा हैं। सो आज तुम किस लिए ऐसे उदास हो रहे हो? आज सौ शलाकाओं से युक्त और जलफेन के सदृश छत्र से युक्त तुम्हारा सुन्दर मुख विराजमान मैं नहीं देखती! चन्द्र और हंस के सदृश चामरों से यह तुम्हारा कमलनेत्र मुख नहीं देख पड़ता। हे नरश्रेष्ठ! आज बंदीजन प्रहृष्ट हो तुम्हारी

स्तुति नहीं करते, और न सूत मागध मंगल पढ़ते हैं! जिस पर अभिषेक हुआ है ऐसे तुम्हारे मस्तक पर वेदपारग ब्राह्मण लोग मधु और दधि विधि से नहीं देते; और आज मंत्री लोग, सभासद, पुरवासी और राष्ट्रवासी लोग वस्त्र इत्यादि से सज-धजकर तुम्हारे पीछे-पीछे नहीं चलना चाहते। आज वेगयुक्त और कांचन-भूषित, चार मुख्य घोड़ों से युक्त उत्सव-रथ तुम्हारे आगे-आगे क्यों नहीं चलता? आज श्रीमान् सर्वलक्षणपूजित, काले मेघ और पर्वत के समान हाथी तुम्हारे प्रयाण में आगे नहीं देख पड़ते। आज काञ्चन-रचित और अति सुन्दर तुम्हारा भद्रासन नहीं देख पड़ता जिसको लेकर तुम्हारा सेवक आगे चलता था। जब कि तुम्हारा अभिषेक उपस्थित है तब तुम्हारे मुख का रंग ऐसा अपूर्व क्यों देख पड़ता है? हर्ष क्यों नहीं लक्षित होता। यह क्या बात है?

सीता के दुःख-पूर्ण वचनों को सुनकर रघुनन्दन बोले—हे सीते! पूज्य पिता हमको वनवास देते हैं। हे जानकि! इसे बड़े धर्मज्ञ और धर्म्मचारी कुल में मुझे जिस हेतु से यह वनवास प्राप्त हुआ उसे मैं कहता हूँ। सुन। मेरे पिता सत्यप्रतिज्ञ महाराज दशरथ ने पहले मेरी माता कैकेयी को दो वर दिये थे। सो उसी कैकेयी ने मेरे अभिषेक के समय में उस समय की बात निकाल धर्ममार्ग से राजा को अपने वश में कर लिया और "चौदह वर्ष पर्य्यन्त मुझे दण्डकारण्य का वास तथा भरत को यौवराज्याभिषेक"—वे दो वर महाराज से माँग लिये। सो अब मैं वन को जाता हूँ। यहाँ तो केवल तुझे देखने के लिए आया हूँ। तू भरत के सामने कभी मेरी प्रशंसा मत करना; क्योंकि समृद्धियुक्त पुरुष दूसरे की स्तुति नहीं सह सकते। इसलिए भरत के आगे कभी मेरे गुणों का वर्णन न करना। भरत के राज्य में उसी के अनुसार अपनी स्थिति करना; क्योंकि वह तुम्हारा विशेष रूप से भरण-पोषण न करेंगे किन्तु जैसे और और भाई-बन्धुओं का सामान्य रूप से पालन करेंगे वैसे ही तुम्हारा भी करेंगे। उनको राजा ने सनातन यौवराज्य दिया है। इसलिए तुमको ऐसा करना चाहिए कि उनकी प्रसन्नता बनी रहे। विशेष करके वही राजा होंगे। अब मैं पिता की प्रतिज्ञा पालने के लिए इसी समय वन जाऊँगा। सो तू स्थिर हो। हे कल्याणि! हे दोषरहिते! जब मैं वन में चला जाऊँ तब तू व्रत, उपवास और नियमों से अपना समय बिताना। प्रातःकाल उठना और देवताओं का यथाविधि पूजन कर मेरे पिता राजा दशरथ को प्रणाम करना और मेरी माता कौशल्या—जो वृद्ध हैं और सन्ताप से पीड़ित हैं और धर्म-पूर्वक तेरे मानने के योग्य हैं—उसकी भी वन्दना करना; मेरी और माताएँ भी स्नेह, प्रेम और पालन के द्वारा कौशल्या ही के तुल्य हैं। इन सबका सत्कार करना। भरत और शत्रुघ्न मेरे प्राणों के तुल्य प्रिय हैं, इनको भाई और पुत्र की दृष्टि से देखना। हे वैदेहि! ऐसा काम न करना जो भरत को प्यारा न लगे, क्योंकि वह देश का और कुल का भी राजा है। देखो, शील से आराधन किये गये और प्रयत्न से सेवन किये गये राजा लोग प्रसन्न रहते हैं और ऐसा न करने से क्रुद्ध होते हैं। स्पर्श करने से हाथी, सूँघने से सर्प, हँसने से राजा और आदर करने से दुष्ट जन घात करते हैं। राजा लोग अपने अहितकारी पुत्रों को भी छोड़ देते हैं और जिनसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है उनको भी राज्य का हितकारी देख ग्रहण करते हैं। सो हे कल्याणि! तुम राजा भरत की हितकारिणी होकर धर्म और सत्यरूप व्रत में तत्पर होकर यहाँ रहो। हे भामिनि! मैं अब

वन को जाता हूँ और तू मेरे वचन को मान किसी का बुरा न चाहना।

---

## सत्ताईसवाँ सर्ग

### सीता का अयोध्या में न रहने का हठ करना

रामचन्द्र का ऐसा वचन सुनकर प्रिय बोलने-वाली वैदेही क्रुद्ध होकर पति से बोली—हे राम! यह क्या हलकी बात कहते हो। जिसको सुनकर मुझे हँसी आती है। यह अनुचित और अकीर्तिकारी तुम्हारा वचन वीर और शस्त्र-अस्त्र में निपुण राजपुत्र के सुनने के भी योग्य नहीं है। आर्य्यपुत्र! पिता, माता, भ्राता, पुत्र और पुत्रवधू, ये सब अपने अपने पुण्यों को भोग करते और अपने अपने भाग्य का भोग करते हैं। परन्तु स्त्री तो केवल पति ही के किये हुए कर्म्मों के फलों को भोगती है। इसलिए राजा की मुझे भी वनवास की आज्ञा हो चुकी। क्योंकि स्त्री की गति पिता, पुत्र और आत्मा, माता और सखियाँ ये कोई भी इस लोक में वा परलोक में नहीं हैं। उसके लिए सदा गतिरूप पति ही है। यदि तुम आज ही वन को प्रस्थान करोगे तो मैं भी तुम्हारे आगे कुश और काँटों को मर्दन करती हुई चलूँगी। हे वीर! ईर्ष्या और रोष को छोड़, शंकारहित हो मुझे साथ ले चलो; क्योंकि मुझमें छोड़ने लायक कोई भी पाप नहीं है। सुख-दुःख और मोह इत्यादि अवस्थाओं को प्राप्त स्त्रियों के लिए पति की पाद-सेवा का सुख भूलोक और स्वर्गलोक के सुख से अधिक है और अणिमा इत्यादि अष्टसिद्धि के सुख से भी बढ़कर है। मुझे जो करना उचित है उसके विषय में मुझे माता और पिता ने नाना प्रमाणों के द्वारा यथेष्ट शिक्षा दे रक्खी है। इसलिए अब अधिक सिखाने का कुछ प्रयोजन नहीं है। आपके साथ मैं निर्जन और वनैले जीवों से भरे हुए वन में अवश्य चलूँगी। हे स्वामिन्! मैं सुख से वन में वैसे ही निवास करूँगी जैसे पिता के घर में रहती थी। मैं केवल पातिव्रत-धर्म का विचार करती हुई तीनों लोकों के सुख की चिन्ता छोड़ दूँगी। हे वीर! मैं नियम और ब्रह्मचर्य से नित्य आपकी सेवा करती हुई आपके साथ उन मधु-गन्ध-युक्त वनों में विहार करूँगी। हे आदर देनेवाले रामचन्द्र! तुम तो वन में बहुतों की रक्षा करने में समर्थ हो, क्या मेरी ही रक्षा न कर सकोगे? हे महाभाग! मैं अवश्य आपके संग वन जाने के लिए बिलकुल तैयार हूँ। अब आप मना मत कीजिए। मैं नित्य फल और मूल ही से अपने भोजन कर निर्वाह करूँगी। आपको दुःख न दूँगी। मैं आपके आगे आगे चलूँगी और जब आप भोजन कर लिया करेंगे तब मैं भोजन किया करूँगी। नदियों को, पर्वतों को, छोटे छोटे तालाबों को और सरोवरों को मैं निर्भयता से देखूँगी। जब तुम स्वामी साथ में हो तो मुझे डर ही क्या है? आपके संग सुखपूर्वक हंस और कारंडव पक्षियों से संयुक्त सुन्दर फूली हुई कमलिनियों को मैं देखना चाहती हूँ। मैं उन तलैयों में नित्य स्नान करूँगी। वहाँ मैं परम आनन्द से आपके संग जलक्रीड़ा भी करूँगी। इस प्रकार आपके संग चाहे हजार वर्ष भी क्यों न बीत जायँ मुझे कुछ दुःख न जान पड़ेगा, वरन् स्वर्ग का सुख भी मुझे इष्ट नहीं है। यदि आपके बिना मुझे स्वर्ग-निवास भी मिले तो मैं उसको भी नहीं चाहती। मैं उस दुर्गम, मृगयुक्त और बानर, हस्ती इत्यादि पशुओं से पूर्णवन में चलूँगी और आपके चरणों की सेवा करती हुई पिता के घर की तरह वन में निवास करूँगी। मैं

तुमको छोड़ दूसरे को नहीं जानती और तुम्हीं में मेरा चित्त अनुरक्त है। तुम्हारे विरह से मैं प्राण-त्याग करने को तत्पर हूँ। मुझे अपने साथ ले चलो। मेरी प्रार्थना पूरी करो। तुमको मेरा कुछ भी भार न होगा।

इस प्रकार गिड़गिड़ाती हुई सीता को राम ने बहुत समझाया और वन के दुःख भी सुनाये और वन को साथ ले जाना न चाहा।

---

## अट्ठाईसवाँ सर्ग

### रामचन्द्र का सीता को समझाना और वनवास के दुःखों का वर्णन करना

रामचन्द्र वन के दुःखों को सोचकर सीता को संग ले जाना नहीं चाहते थे। तब रामचन्द्र ने आँखों में आँसू भरे हुए सीता को वन में न जाने के लिए कहा कि हे प्यारी सीते! तू बड़ी कुलीन और धर्म में तत्पर है। इसलिए यहाँ ही रहकर धर्माचरण कर जिसमें मेरे मन को सुख हो। हे सीते! मैं जैसा तुझसे कहता हूँ वैसा ही कर। वन में बड़े-बड़े दोष हैं। मैं उनको कहता हूँ। तू उन्हें सुन, और इस वनवास की इच्छा को त्याग। वन में बहुत दोष हैं इसी लिए वह कान्तार, अर्थात् जाने के अयोग्य, कहलाता है। मैं तेरे हित के लिए कहता हूँ कि वन कभी सुख नहीं देता, किन्तु दुःखकारी ही है। देख, पर्वत के झरनों से निकले पर्वत-कन्दरावासी सिंह के शब्द ही बड़े दुःखदायी हैं। इस कारण हे प्रिये, वन में केवल दुःख ही है। फिर निर्जन वन में क्रीड़ा करनेवाले नाना प्रकार के मृग, मनुष्यों को देखकर, घात करने को दौड़ते हैं, इसलिए वन क्लेशकारी है। हे सीते! नदियों में बड़े-बड़े ग्राह रहते हैं और कीचड़ के मारे उनमें पार उतरना बड़ा कठिन होता है और मत्त हाथी भी उसमें खेलते रहते हैं, इसलिए वन में बड़ा दुख है। देखो वहाँ के मार्ग लता के काँटों से बिछे और कुक्कुट के शब्दों से नादित और जल-रहित मिलते हैं। इसलिए वन क्लेशदायक है। हे प्रिये! देख, वनवासी पुरुष श्रम से खिन्न रहता है; अपने हाथ से पत्तों को तोड़ और भूमि पर बिछाकर वहाँ सोता है, इसलिए वन दुःखकारक है। हे सीते! दिन हो वा रात्रि, वृक्षों से गिरे हुए फलों ही से नियम-पूर्वक सन्तोष करना पड़ता है; इसलिए वन में दुःख ही है। हे मैथिलि! वहाँ यथाशक्ति उपवास करना, जटा बनाना और छाल का वस्त्र पहिनना पड़ता है देवता, पितर और समय पर आये हुए अतिथि का विधि-पूर्वक पूजन करना पड़ता है और जो नियमाचरण करनेवाले हैं उनको नित्य तीन बार स्नान करना पड़ता है, इसलिए वन में अति दुःख है। हे सीते! वहाँ अपने हाथ से फलों को तोड़ वानप्रस्थ की विधि से वेदी-पूजा करनी पड़ती है, इसलिए वन में केवल दुःख ही है। वनचारियों को यथालाभ सन्तोष करना पड़ता है, इस-लिए वन दुःख देनेवाला है। हे जानकि! वहाँ अत्यन्त वायु बहा करता और अन्धकार छाया रहता है और नित्य अधिक भोजन की इच्छा हुआ करती है और बड़े बड़े भय भी उत्पन्न होते हैं इसलिए वन में अति दुःख है। हे भामिन! वहाँ अनेक रूपवाले बहुत साँप फिरा करते हैं, इस हेतु वन अति दुःखदायी है। नदी में रहनेवाले साँप नदी ही के समान टेढ़े-मेढ़े चलते हैं, वे मार्ग को रोक सम्मुख खड़े हो जाते हैं, इस कारण वन में अति दुःख है। कण्टक, वृक्ष, कुश और काश की शाखाओं से सम्पूर्ण वन भरा रहता है, इसलिए वह

दुःखद है। बिच्छू, कीड़े, डस और मच्छड़ सब वहाँ नित्य बाधा देते हैं। हे अबले! इसलिए वन में केवल दुःख है। और फिर वनवास में शरीर-क्लेश बहुत करने पड़ते और नाना प्रकार के भय उत्पन्न हुआ करते हैं, इसलिए वन में दुःख है। हे जनकनन्दिनि! वहाँ क्रोध और लोभ को छोड़ तप में मन लगाना और भयस्थान में भी भय को त्यागना पड़ता है इसलिए वन दुःखद है। हे प्रिये! इसलिए तुम वन की इच्छा का त्याग करो। तुम्हारे योग्य वन नहीं है; क्योंकि मैं विचार करके देखता हूँ तो वन में मुझे बहुत दोष देख पड़ते हैं।

इस प्रकार जब रामचन्द्र ने उसको वन में न ले जाना ही चाहा तब तो सीता रामचन्द्र के उस वचन को अंगीकार न कर और अति दुःखित होकर बोली।

——

## उन्तीसवाँ सर्ग

### रामचन्द्र के साथ वन जाने के लिए सीता का हठ करना

इस प्रकार रामचन्द्र का वचन सुनकर सीता बड़ी दुःखित हुई। वह आँखों में आँसू भरकर धीरे से बोली—हे रामचन्द्र! तुमने वनवास के जो दोष कहे वे सब तुम्हारे स्नेह के कारण मेरे लिए गुणरूप हैं। हे राघव! मृग, सिंह, गज, शार्दूल, शरभ, चमर, सृमर और और जो वनचारी जन्तु हैं वे सब तुम्हारे इस अपूर्व रूप के देखने से भाग जायँगे; क्योंकि तुमसे सब डरते हैं। हे राम! बड़े लोगों की आज्ञा है कि तुम्हारे सङ्ग मुझे अवश्य चलना चाहिए। नहीं तो तुम्हारे वियोग से प्राण त्याग देना होगा। जब कि मैं तुम्हारे निकट रहूँगी तब इन्द्र की भी शक्ति नहीं कि अपने पराक्रम से मुझे दुखी कर सके। हे राम! पतिहीन स्त्री नहीं जी सकती। यह बात तुम्हीं ने बताई है, क्योंकि तुमने यह बात कही है कि भरत के चित्तानुसार व्यवहार करती हुई उन्हीं के वश में तुमको रहना चाहिए, सो तो करना सर्वथा अशक्य है। क्योंकि मेरे तुल्य स्त्री पर-पुरुष के वश में नहीं रह सकती। हे महाप्राज्ञ! पिता के घर मैंने ब्राह्मणों के मुख से यह बात सुनी थी कि मुझे अवश्य वन में रहना पड़ेगा, सो ऐसे लक्षणज्ञ ब्राह्मणों के मुख का यह वचन जब से मैंने सुना तब से मैं वन-वास के लिए नित्य उत्साह रखती हूँ। सो मुझे वनवास की आज्ञा अवश्य मिलनी चाहिए। इसलिए हे प्रिय! मैं तुम्हारे सङ्ग चलूँगी। इस बात में इधर-उधर न होगा। तुम्हारे सङ्ग चलने से वह आदेश पूरा होगा और उसका समय भी आ गया है। मेरे चलने से वह ब्राह्मण भी सत्यवचन हो जायगा। हे वीर! वनवास में बहुत प्रकार के दुःख होते हैं, यह मैं भी जानती हूँ। परन्तु जो पुरुष अजितेन्द्रिय हैं वे ही उन दुःखों को पाते हैं और पिता के घर में जब मैं कन्या थी तब, एक भिखारिणी के भी मुख से, अपनी माता के सामने इस वनवास की बात मैंने सुनी थी और कई बार वनविहार के लिए तुमसे भी मैं प्रार्थना कर चुकी हूँ सो हे राघव, मैं चलने की बाट देख रही हूँ। और वनवास में तुम्हारी सेवा मुझे रुचती है। हे शुद्ध चित्त, मैं प्रेम भाव से तुम्हारे पीछे गमन करती हुई पापरहित हो जाऊँगी; क्योंकि पति ही मेरे देव हैं, और परलोक में भी तुमसे मेरा साथ होगा। ऐसा वेद-वचन यशस्वी ब्राह्मणों के मुख से सुना है। पिता जिस स्त्री को हाथ में जल लेकर जिस पुरुष को दे देता है, परलोक में भी वही स्त्री उस पुरुष

की होती है सो तुम अपनी सुशील और पतिव्रता को किस कारण वन ले चलना नहीं चाहते ? हे काकुत्स्थ ! भक्त, पतिव्रता, दीन, सुख और दुःख में एकरस और तुम्हारे समान सुख-दुःख का भोग करनेवाली मुझे अपने सङ्ग ले चलिए। यदि मुझे न ले चलोगे तो मैं विष से या अग्नि से या जल से अपना प्राण त्याग दूँगी।

इस प्रकार वन में साथ चलने के लिए सीता बहुत प्रार्थना कर रही थी परन्तु रामचन्द्र ने यह बात अङ्गीकार न की। शोकसंतप्त और गरम-गरम आँसुओं को गिराती हुई क्रोधित सीता को रामचन्द्र ने बहुत समझाया।

---

## तीसवाँ सर्ग

### वन जाने के लिए सीता की प्रार्थना स्वीकार करना

सीता बहुत प्रकार से समझाई गई तो भी वनवास के लिए पति से फिर कुछ प्रेम और कुछ अभिमान के वचन बोली—हे राम ! भला मेरे पिता जनक तुमको क्या कहेंगे कि हमारे जमाई हैं तो पुरुष, परन्तु स्त्री के तुल्य व्यवहार करते हैं। और लोग भी अज्ञान से ऐसी मिथ्या बात कहेंगे कि राम सूर्य के समान तेजस्वी तो देख पड़ते हैं परन्तु इनमें तेज नहीं है। हे राम ! किस लिए तुम्हें इतना विषाद हो रहा है, अथवा किस बात से तुम डरते हो जो मुझ दुखिया को छोड़ जाना चाहते हो ? द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान के वश में जिस प्रकार सावित्री थी उसी तरह मुझे भी अपने वश में जानो। मैं तुमको छोड़ दूसरे को मन से भी न देखूँगी। जैसे कुलनाशिनी स्त्री अन्यरत होती हैं वैसी मैं नहीं हूँ। इसलिए मैं तुम्हारे साथ चलूँगी। हे राम ! कौमारावस्था में तुमने मेरा पाणिग्रहण किया है और बहुत काल तक मैं तुम्हारे घर रही हूँ और पतिव्रता हूँ, नट की भाँति आप मुझको दूसरे के अधीन किया चाहते हो ? हे दोषरहित रामचन्द्र ! तुम जिसका हित चाहते हो और जिसके लिए तुम्हारा राज्याभिषेक रोका गया है, तुम उसके वश में हो और आज्ञाकारी भी हो, पर मैं उसके वश में होना नहीं चाहती। इसलिए मुझे साथ लेकर वन में चलो। चाहे तप हो वा वन हो अथवा स्वर्ग हो सभी अवस्थाओं में मुझे तुम्हारा सङ्ग करना उचित है। वन में मुझे कुछ भी परिश्रम न होगा। मैं तुम्हारे पीछे-पीछे चली चलूँगी। जैसे तुम्हारे साथ मुझे विहार और शयन में यहाँ सुख होता है वैसा ही वहाँ भी होगा। हे राम ! तुम्हारे साथ मुझे कुश, काश, पत्तलों और सींक और और भी जो कण्टक वृक्ष हैं वे रुई और मृगचर्म्म के तुल्य कोमल जान पड़ेंगे। हे प्रिय ! महावात से उड़ी हुई जो धूल मेरे शरीर पर आकर गिरेगी उसको मैं उत्तम चन्दन के तुल्य समझूँगी। जब वहाँ कोमल और हरे-हरे तृणों पर मैं शयन करूँगी तो उसको चित्र-कम्बल (गलीचे) के तुल्य मानूँगी और पत्र या मूल या फल, थोड़े-बहुत, जो कुछ तुम लाकर मुझे दोगे उसको अमृतरस के तुल्य जानूँगी। वहाँ जिस ऋतु में जो फूल या फल होते हैं उनका उपभोग करती हुई न मैं माता-पिता को याद करूँगी और न घर को। मेरे लिए तुम्हारा कुछ भी नापसन्द न होगा और न शोक बाधा देगा। तुमको मुझे खिलाने का भार न होगा। हे रामचन्द्र ! तुम्हारे साथ रहना ही मुझे स्वर्ग है। जो तुम्हारे बिना है यही मेरे लिए नरक है ऐसा समझकर

मुझे साथ ले चलो। यदि मुझे छोड़ वन को चले जाओगे तो मैं इसी घड़ी विष खाकर मर जाऊँगी, परन्तु शत्रुओं के वश में न पड़ूँगी। क्योंकि हे नाथ! पीछे से भी तो मैं दुःख से मर ही जाऊँगी। इसलिए इसी घड़ी मरना अच्छा है, क्योंकि इस शोक को मैं जब मुहूर्त्त भर भी नहीं सह सकती तब चौदह वर्ष किस प्रकार से सहूँगी।

इस प्रकार शोक से सन्तप्त होकर और बहुत विलाप कर वह सीता पति से लिपटकर बड़े स्वर से रोने लगी। उस समय अनेक वचनों से बींधी गई भी वैदेही बहुत काल से रोके हुए आँसुओं को गिराने लगी जैसे अरणी काष्ठ अग्नि को पैदा करता है। जानकी के नेत्रों से सफेद आँसुओं की बूँदें गिरने लगीं जैसे कमलों से पानी गिरता है उस समय जल से निकाले हुए कमल के समान, पूर्णचन्द्र की तरह प्रकाशित और बड़ी-बड़ी आँखोंवाली सीता का चेहरा मुरझा गया।

सीता को इस प्रकार दुःखित और अचेत देखकर रामचन्द्र ने दोनों भुजाओं से आलिंगनकर विश्वास देते हुए कहा कि हे देवि, तेरे दुःख के कारण मुझे स्वर्ग भी नहीं भाता। मुझे भय कुछ भी नहीं है। जैसे ब्रह्मदेव निर्भय हैं वैसा ही तू मुझे भी जान। हे सुन्दर मुखि! तुम्हारे अभिप्राय को बिना जाने मैं वनवास की सलाह नहीं देता था। यद्यपि मैं रक्षा करने में शक्तिमान् हूँ, तथापि तुम्हारे चित्त का विषय बिना जाने, साथ ले चलने का उत्साह नहीं करता था। यदि तुम मेरे साथ वनवास के लिए बनाई गई हो तो मैं तुमको न छोड़ जाऊँगा, जैसे आत्मवान् लोग दया का त्याग नहीं करते। हे गजगामिनि! सज्जनों ने जैसा पहले धर्माचरण किया है, उस धर्म का मैं भी अनुसरण करूँगा। उसी प्रकार तू भी मेरा अनुसरण कर। सुवर्चला देवी जैसे भगवान् सूर्य की अनुवर्त्तिनी है वैसे ही तू भी मेरी अनुगामिनी है। हे जनकनन्दिनि, यदि सत्ययुक्त पिता का वचन मुझे प्रेरणा न करता तो मैं कभी वन में न जाता। हे सुश्रोणि! पिता और माता की आज्ञा का पालन करना ही धर्म है। उस आज्ञा का उल्लंघन कर मैं जीने का उत्साह नहीं करता। जो देवता अपने अधीन नहीं है, अर्थात् प्रत्यक्ष नहीं देख पड़ता, उसकी सेवा कोई किस प्रकार से कर सकता है? परन्तु पिता, माता और गुरु तो प्रत्यक्ष हैं, इसलिए इनके वचन को उल्लंघन न करना चाहिए। जिनके आराधन से अर्थ, धर्म और काम ये तीनों मिल सकते हैं और जिनके आराधन से तीनों लोक आराधित होते हैं उनकी आराधना के तुल्य पवित्र दूसरा पृथ्वी पर कुछ भी नहीं है। इसलिए मैं इनका आराधन करता हूँ। हे सीते! सत्य, दान, मान और दक्षिणायुक्त यज्ञ वैसा परलोकसाधन नहीं कर सकते जैसा कि पिता की सेवा कर सकती है। गुरु लोगों के मन के अनुसार चलने से स्वर्ग, धन, धान्य, विद्या, पुत्र और सुख कुछ भी दुर्लभ नहीं। जो महात्मा लोग माता और पिता की सेवा में तत्पर रहते हैं वे देवलोक, गन्धर्वलोक, गोलोक, ब्रह्मलोक और और भी लोकों को प्राप्त करते हैं। इसलिए, सत्य धर्ममार्ग पर स्थित पिताजी जैसी आज्ञा करें मैं वैसा ही करना चाहता हूँ। यही सनातन धर्म है। हे सीते! तू जो वनवास के लिए मेरे साथ चलने को तैयार है तो मेरी भी इच्छा है कि तुझे दण्डक वन में ले चलूँ। हे सुन्दरांगि! मैंने तुझे वन चलने के लिए आज्ञा दी। तू मेरे पीछे चल और मेरी सहधर्मचारिणी हो। हे सीते! मेरे साथ तेरा चलना मेरे और मेरे कुल के लिए योग्य ही है। हे

गुरुओंगि ! अब वनवास की तैयारी कर। हे सीते ! इस समय तुम्हारे बिना हमको स्वर्ग भी नहीं रुचता। सो तुम याचक ब्राह्मणों को सब रत्न दान करके और याचक भिक्षुकों को भोजन देकर शीघ्रता करो। विलम्ब न होने पावे। ब्राह्मणों को देने के बाद अच्छे-अच्छे वस्त्र और भूषण, क्रीड़ा के रमणीय पदार्थ, और बिछौने इत्यादि शयन की सामग्री और वाहन अर्थात् पालकी, घोड़े इत्यादि और और भी जो मेरी वस्तुएं हैं वे सब सेवकों को दे डालो।

रामचन्द्र के कहते ही सीता तुरन्त उठी और प्रसन्न हो-होकर धन, रत्न आदि अपनी सब चीजें धर्मात्मा ब्राह्मणों को दान करने लगी।

---

## इकतीसवाँ सर्ग

### लक्ष्मण को साथ ले जाने के लिए रामचन्द्र का अङ्गीकार करना

राम और सीता बातचीत कर ही रहे थे कि इतने में आँसुओं से भरे हुए लक्ष्मण आ गये। वे उस शोक को नहीं सह सकते थे। उन्होंने भाई के चरणों में प्रणाम कर सीता और रामचन्द्र से कहा—यदि आप वन चलने के लिए उद्यत हुए हैं तो मैं भी आपके आगे-आगे धनुष लेकर चलूंगा। उन रमणीय वनों में पक्षी और मृग चारों ओर से नाना प्रकार के शब्द करेंगे। वहाँ आप मेरे साथ विचरना। हे रामचन्द्र ! आपके बिना न तो मैं स्वर्ग चाहता हूँ न अमरत्व और न लोकों का ऐश्वर्य।

लक्ष्मण की बातें सुनकर रामचन्द्र ने वन जाने के लिए बहुत निषेध किया, परन्तु उसको न मानकर लक्ष्मण ने कहा—भाई ! पहिले तो आपने मुझे आज्ञा दी थी फिर इस समय आप वन जाने के लिए क्यों मना कर रहे हैं ? मैं इसका कारण जानना चाहता हूँ। मुझे सन्देह है।

हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए और यात्रा के लिए पहिले से तैयार खड़े हुए लक्ष्मण का वचन सुनकर रामचन्द्र बोले—हे लक्ष्मण ! तुम मेरे स्नेही, धर्मतत्पर, वीर, नित्य, सन्मार्ग में स्थित, प्राण के तुल्य प्रिय, भ्राता और मित्र भी हो। अब यदि तुम भी मेरे साथ चलोगे तो कौशल्या और सुमित्रा का भरण-पोषण कौन करेगा ? देखो, महाराज तो कामवश हो रहे हैं। नहीं तो वे सब मनोरथों से सबका भरण-पोषण करते ही थे, जैसे मेघ पृथ्वी को वृष्टि से आनन्दित करता है। वह अश्वपति की पुत्री कैकेयी राज्य को पाकर अपनी सपत्नियों के विषय में अच्छा बर्ताव न करेगी। न तो वह कौशल्या को याद करेगी और न सुमित्रा को; और राज्य पाकर भरत भी कैकेयी ही की आज्ञा से चलेंगे। हे सौमित्रे ! इसलिए तुम मेरा कहना मानो और यहाँ रहकर राजा के अनुग्रह से कौशल्या का भरण-पोषण करो। ऐसा आचरण करने से मेरे विषय में तुम्हारी भक्ति भी कहलावेगी और धर्मज्ञ पिता की सेवा में अतुल यश और बड़ा पुण्य भी होगा। हे सौमित्रे ! तुम मेरे लिए यह काम करो; क्योंकि हम लोगों के न रहने से माता को सुख न होगा।

राम का वचन सुनकर लक्ष्मण मधुर वाणी से बोले—हे वीर ! तुम्हारे ही तेज और बल से भरत कौशल्या को और सुमित्रा को भी नियम से मानेंगे। इसमें सन्देह न करना चाहिए। और यदि दुष्ट भरत इस उत्तम राज्य को पाकर दुष्ट मन से, गर्व से, इनकी

रक्षा न करेगा तो मैं उस दुष्टमति क्रूर को निःसन्देह मारूँगा। उसके पक्ष पर जो लोग हैं, या त्रिलोकी ही क्यों न हो, सबका घात करूँगा। हे आर्य! कौशल्या स्वयं मेरे ऐसे हजारों का भरण-पोषण कर सकती है, क्योंकि जिसके भृत्य हजारों गाँववाले हैं क्या वह अपना वा मेरी माता अथवा मेरे ऐसों का पालन नहीं कर सकती? इसलिए आप मुझे अपना अनुचर बनाइए। इसमें कुछ भी विरुद्ध धर्म नहीं है। इसमें मैं भी कृतार्थ होऊँगा और आपका भी अर्थसाधन होगा। मैं धनुष, पृथिवी खोदने का शस्त्र, पिटका अर्थात् फल, मूल इत्यादि रखने के लिए बाँस की पिटारी लिये हुए आपके आगे-आगे मार्ग दिखलाता चलूँगा और नित्य मूल, फल और और वन्य पदार्थ जो कि तपस्वियों के होम के योग्य हैं, आपको ला-लाकर दिया करूँगा। आप वैदेही के संग पर्वतों के शिखरों पर विहार करियेगा। चाहे जागते रहें वा सोते, मैं सब कुछ कर दिया करूँगा।

इस प्रकार लक्ष्मण के वाक्य से रामचन्द्र प्रसन्न होकर बोले कि अच्छा, अपने मित्र लोगों से बिदा हो आओ और यज्ञ में राजा जनक को वरुण ने जो रौद्ररूप और दिव्य दो धनुष, अभेद्य और दिव्य दो तरकस जिनके बाण कभी क्षय नहीं होते और सूर्य के तुल्य विमल और सुवर्ण-भूषित दो खड्ग दिये थे वे और अन्य सब पदार्थ, जो कि राजा जनक ने हमको विवाह-काल में दिये थे, वे सब आयुध आचार्य के घर सत्कार-पूर्वक रक्खे हैं उन सबको लेकर तुम शीघ्र आओ। ऐसा रामचन्द्र का वचन सुन वनवास का निश्चय कर लक्ष्मण सुहृद्वर्गों से बिदा हुए और इक्ष्वाकुवंश के गुरु के घर जाकर आयुधों को, जो अच्छी तरह रक्खे और पुष्पों से भूषित थे, लेकर रामचन्द्र के पास आकर सब दिखलाये। तब रामचन्द्र प्रसन्न होकर बोले—हे लक्ष्मण! तुम ठीक समय पर आये। अब मैं अपने धन को तुम्हारे साथ तपस्वी ब्राह्मणों को देना चाहता हूँ। यहाँ बहुत से ब्राह्मण भक्तिपूर्वक गुरुकुल में रहते हैं। उनको और मेरे भृत्य गणों को और वशिष्ठ के पुत्र सुयज्ञ को, जो सब ब्राह्मणों में श्रेष्ठ हैं, तुम शीघ्र बुला लाओ। मैं इन सबका और और ब्राह्मणों का सत्कार और पूजन कर वन की यात्रा करूँगा।

---

## बत्तीसवाँ सर्ग

### रामचन्द्र का ब्राह्मणों को धन बाँटना

इस प्रकार भ्राता की आज्ञा पाकर लक्ष्मण पहले सुयज्ञ के घर गये। वहाँ अग्निशाला में जाकर सुयज्ञ को प्रणाम कर उन्होंने कहा—हे सखे! आओ; राज छोड़कर वनयात्रा का कठिन काम करनेवाले रामचन्द्र के घर को देखो।

लक्ष्मण का वचन सुन वे मध्याह्न-सन्ध्योपासन कर लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र के भवन में आये। उस समय रामचन्द्र ने उस तेजस्वी ब्राह्मण को आते देखकर सीता के साथ हाथ जोड़कर उसका सत्कार किया। अच्छे-अच्छे सोने के गहने, सुन्दर-सुन्दर कुण्डल, सुवर्ण सूत्र से गुँथी हुई मणियों की माला, केयूर अर्थात् एक प्रकार के बाहु-भूषण, कङ्कण; ये सब भूषण और और बहुत से रत्न दान कर उन्होंने उसका पूजन किया। इसके अनन्तर रामचन्द्र सीता के कहने से सुयज्ञ से बोले—हे सौम्य! यह तुम्हारी सखी सीता हार, सुवर्ण-सूत्र, क्षुद्र घण्टिका, चित्र, विजायठ और सुन्दर केयूर,

ये भूषण तुम्हारी स्त्री को देना चाहती है। मनोहर विस्तरे-सहित और नाना रत्नों से विभूषित यह पलँग भी वह तुम्हीं को देने की इच्छा करती है। हे द्विजश्रेष्ठ यह शत्रुञ्जय नामक हस्ती मुझे मेरे मामा ने दिया था। मैं उसको उन्हें बहुत सी दक्षिणा के साथ देता हूँ।

इस प्रकार रामचन्द्र के दिये हुए सब पदार्थों को लेकर सुयज्ञ ने राम, लक्ष्मण और सीता को शुभ आशीर्वाद दिया। इसके अनन्तर लक्ष्मण से रामचन्द्र बोले—जैसे ब्रह्मा इन्द्र से बोलते हैं—हे सौमित्रे! अगस्त्य और विश्वामित्र के पुत्र इन दोनों उत्तम ब्राह्मणों को भी बुलाकर रत्नों से इस प्रकार पूजित करो जैसे धान्य का क्षेत्र जल से सींचा जाता है। इनको हजार सुवर्ण, रजत और महामूल्य मणियों से तृप्त करो। तैत्तिरीय शाखा पढ़नेवाले ब्राह्मणों का यह आचार्य है। यह बड़ा योग्य और वेद का ज्ञाता है। यह कौशल्या को बड़ी भक्ति से आशीर्वाद दिया करता है। इसको यान, दासी और रेशमी वस्त्र दो, जिसमें यह ब्राह्मण सन्तुष्ट हो जाय। यह चित्ररथ नामक सूतों का मन्त्री है। इसको बहुमूल्य रत्न, वस्त्र और धन देकर सन्तुष्ट करो। इसको बकरी, भैंस इत्यादि पशु और अनेक गायें भी दो। ये बहुत से कठशाखाध्यायी और कलापशाखाध्यायी माणव (ब्रह्मचारी) कहलाते हैं और नित्य अपने स्वाध्याय को छोड़ दूसरा काम नहीं करते। ये आलस्य-युक्त हैं और स्वादु भोजन के आकांक्षी हैं, परन्तु बड़े लोगों के सम्मत और आदरणीय हैं। इनको अस्सी ऊँट और रत्न देओ। सहस्र बैलों पर भद्रक* नाम अन्न लदवाकर दो और व्यञ्जन अर्थात् दधि, दुग्ध, घृत इत्यादि के लिए अनेक गायें भी दे डालो। देखो, यह ब्रह्मचारियों की बड़ी भीड़ कौशल्या के पास उपस्थित है। इनमें प्रत्येक को सहस्र गायें और सहस्र निष्क* सुवर्ण दो। जिस प्रकार से मेरी माता कौशल्या इनको दक्षिणा देने से आनन्दित हो उसी प्रकार से इन ब्राह्मणों की पूजा करो।

रामचन्द्र का वचन सुनकर लक्ष्मण ने उन ब्राह्मणों को यथोक्त धन दिया, जैसे कुबेर देते हैं। रामचन्द्र के उपजीवी लोग रोते हुए खड़े थे। उनमें से प्रत्येक को उन्होंने जीविका के लिए बहुत द्रव्य देकर कहा कि जब तक वन से मैं न आ जाऊँ तब तक लक्ष्मण का और मेरा घर शून्य न रहने पावे। फिर सब दासों को दुःखित देखकर उन्होंने धनाध्यक्ष से धन मँगवाया। आज्ञा पाते ही सब उपजीवी लोगों ने राम का धन लाकर ढेर लगा दिया। उस समय वह धन का बड़ा ढेर अत्यन्त शोभायुक्त देख पड़ता था। अब पुरुषसिंह रामचन्द्र लक्ष्मण के साथ ब्राह्मण, बालक, वृद्ध और दीनों को वह धन बँटवाने लगे। वहाँ पर एक त्रिजट नाम गर्ग कुल का पिङ्गल वर्ण ब्राह्मण था। निर्धनता के कारण वह नित्य कुठार, कुदारी और लांगल से जंगली फल, मूल इत्यादि लाकर अपना कुटुम्ब-पोषण करता था। उस वृद्ध की तरुणी भार्या दारिद्र्य से पीड़ित थी। वह छोटे-छोटे लड़कों को लाकर ब्राह्मण से बोली कि तुम इस कुल्हाड़ी और कुदारी को फेंककर मेरा कहना करो। तुम रामचन्द्र के पास इसी समय जाओ। तुमको वहाँ कुछ मिल जायगा। स्त्री का वचन सुन वह पुराने वस्त्र लपेटकर राम के घर की ओर चला। वहाँ जाकर और पाँचों ड्योढ़ियों को लाँघकर वह भीतर चला गया जहाँ बहुत लोग इकट्ठा हुए थे। भृगु और अङ्गिरा ऋषि

* भद्रक = चना, मूँग इत्यादि।

* निष्क तौल में ४ मासे का होता है।

के तुल्य उस ब्राह्मण का तेज देख उसे किसी ने रोका भी नहीं। वह ब्राह्मण रामचन्द्र के समीप जाकर बोला—महाशय राजपुत्र! मैं निर्धन हूँ और बहुत सी मेरे सन्तान हैं। मैं वन्य फल-मूलों से जीवन बिताता हूँ। मेरी ओर भी दृष्टि कीजिए। तब रामचन्द्र परिहास-पूर्वक बोले कि ये हजारों गायें हैं। इनका दान अभी तक मैंने नहीं किया है, सो इनके ऊपर से तुम अपनी लाठी फेंको। जितनी गायों को तुम्हारी लाठी पार कर जायगी, उतनी गायें तुमको मिलेंगी। यह सुनकर उस ब्राह्मण ने अपने जीर्ण वस्त्र से कमर कसी और सारे बल से लाठी घुमाकर फेंकी। वह लाठी कई हजार गायों को लाँघती हुई सरयू के पार साँड़ों के पास जा गिरी। उस समय रामचन्द्र ने वहाँ से सरयू पार तक जितनी गायें थीं वे सब उस त्रिजट के आश्रम पर भिजवा दीं और उस ब्राह्मण से बोले—हे ब्रह्मदेव! क्रोध मत करना। मैंने केवल हँसी में ऐसा कहा था। तुम्हारे इस दुरत्यय तेज के जानने की इच्छा से मैंने यह बात तुमसे कही थी। तुम्हें जो और कुछ माँगने की इच्छा हो सो माँगो। मैं सब दूँगा। मैं सत्य कहता हूँ। तुमको किसी बात की रोक नहीं है। मेरा धन ब्राह्मणों ही के लिए है। आप लोगों को देने से वह धन प्रीति और यश उत्पन्न करता है। फिर त्रिजट नामक महा-मुनि उन गायों को ले, प्रसन्न हो, यश, बल, प्रीति और सुखवर्द्धक आशीर्वाद देने लगा।

इस तरह धर्म से इकट्ठा किये हुए धन को रामचन्द्र ने बड़े आदर से सुहृज्जनों को बाँट दिया। उस समय ऐसा कोई दीन, दुखिया और दरिद्री भिखारी नहीं था कि जिसका सत्कार रामचन्द्र ने न किया हो।

---

# तैंतीसवा सर्ग

## राम, लक्ष्मण और सीता का दशरथ के पास जाना

इस प्रकार ब्राह्मणों को बहुत-सा धन देकर सीता और दोनों भाई पिता को देखने चले। उस समय वे आयुध अत्यन्त शोभित हो रहे थे। वे सेवक के हाथ में थे और सीता ने उनको पुष्प-मालाओं से भूषित किया था। उस समय पुरवासी लोग देवताओं के मन्दिरों पर, अटारियों पर और सात खण्ड की अटारियों पर, चढ़कर उदासीन मन से इन तीनों को देखते थे; क्योंकि गलियाँ आदमियों से भर गई थीं। उस समय रामचन्द्र को लोग पैदल और छत्ररहित देखकर, अत्यन्त शोकित हो, अनेक प्रकार की बातें कह रहे थे कि देखो जिसके पीछे यात्रा में चतुरंगिणी सेना चलती थी, उसके पीछे केवल सीता के साथ लक्ष्मण चलते हैं! देखो, ऐश्वर्य के रसज्ञ और कामों के काम को पूर्ण करनेवाले रामचन्द्र धर्म के गौरव से पिता का वचन मिथ्या नहीं करना चाहते। देखो, आकाशचारी प्राणी भी जिस सीता को नहीं देख सकते थे उसको राजमार्ग के लोग देख रहे हैं! जो सीता रक्तचन्दन और उबटन लगाने के योग्य है उसका वर्ण वर्षा, गर्मी और शीत से बदल जायगा। हम जानते हैं कि दशरथ को कोई पिशाच लगा है, नहीं तो ऐसे प्रिय पुत्र को वे कभी वनवास न देते। लोग तो निर्गुण पुत्र को भी घर से नहीं निकाला करते, फिर जिसके सदाचार से यह लोक जीत लिया गया है उसका तो कहना ही क्या है। देखो अहिंसा, दया, शास्त्र, शील, दम और शम; ये छहों गुण पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्र में हैं। इस समय

रामचन्द्र के दुःख से प्रजा ऐसी पीड़ित हो रही है जैसे ग्रीष्मकाल में जल सूख जाने से जल-जन्तु पीड़ित होते हैं। इस जगत्पति की पीड़ा से सम्पूर्ण जगत् को पीड़ा हो रही है जैसे जड़ में विकार होने से सम्पूर्ण फूल-फल-सहित वृक्ष कम्पित हो जाता है। यह रामचन्द्र धर्म के सार और महा कान्तिमान् हैं; यह मनुष्यों के मूलरूप हैं और बाकी सब लोग इनके पुष्प, फल, पत्र और शाखा-रूप हैं। सो हे भाइयो! हम लोग अपनी पत्नियों को साथ ले और अपने-अपने भाइयों के सहित राघव के साथ जायँगे जैसे कि लक्ष्मणजी जाते हैं। हम लोग वाटिका, क्षेत्र और घरों को छोड़कर रामचन्द्र के समान सुखी-दुःखी हो उनके पीछे-पीछे चलेंगे। हमारे छोड़े हुए घरों को कैकेयी भोगे। उन घरों के धन निकाल लिये जायँगे अँगने ध्वस्त हो जायँगे, अन्न और धन नष्ट हो जायँगे और रमणीयता मारी जायगी। वे घर धूलि से भर जायँगे, उनको देवता छोड़ देंगे, उनमें मूस दौड़ेंगे और चारों ओर उन्हीं के बिल देख पड़ेंगे। उन घरों में जल का नाम न रहेगा, वे धूम और स्वच्छता से रहित हो जायेंगे और उनमें बलिकर्म, होम, यज्ञ तथा जप नहीं देख पड़ेगा। उनमें बासन-बर्तन फूटे-फाटे पड़े रहेंगे, मानो दुष्काल विपत्ति से उनकी दुर्दशा हो रही है। जहाँ राम जायँगे वह वन ही नगर हो और हम लोगों का त्यागा हुआ यह नगर वन हो। हमारे भय से भीत होकर सर्प आदि बिलों को, मृग और पक्षी पर्वत के शृङ्गों को और हाथी और सिंह वनों को छोड़ इस पुर में आकर रहें। इस पुर में केवल तृण, मांस और फल मिल सकें और यह साँपों, मृगों और पक्षियों से भरा हो। इस प्रकार के पुर का भोग कैकेयी अपने पुत्र और बन्धुजनों के साथ करे और हम सब सुख से राम के साथ वन में रहें।

लोगों के इस तरह के अनेक वचनों को सुनकर राम के मन में कुछ भी खेद न होता था। अब रामचन्द्र ने पिता के महल में प्रवेश किया। वह कैलाश के शृङ्ग के समान शोभित था और उसमें वीर लोग नम्रतापूर्वक खड़े थे। उन्होंने वहाँ सुमन्त्र को देखा जो दीन मुख किये पास ही खड़ा था। वहाँ के दीन जनों को देखकर उन्होंने कुछ हँसमुख हो, पिता को देखने की इच्छा से आगे पैर बढ़ाया। सुमन्त्र को देखकर वे अपना सन्देश देने के अभिप्राय से उ.रा ठहर गये और सुमन्त्र से बोले कि राजा को मेरे आने की खबर दो।

---

## चौंतीसवाँ सर्ग

### दशरथ और रामचन्द्र की बातचीत

रामचन्द्र का वचन सुनकर सूत की इन्द्रियाँ सन्ताप से व्याकुल हो गईं। वह साँस पर साँस लेता हुआ महाराज के पास गया। वहाँ राजा को राहुग्रस्त सूर्य के तुल्य, भस्म से आच्छादित अग्नि के समान और जल रहित तड़ाग की नाईं, देख आदर से हाथ जोड़ और जयरूप आशीर्वाद का वचन बोल, डरते-डरते मन्द वाणी से मधुर वचन बोला—महाराज, ये पुरुषव्याघ्र तुम्हारे पुत्र द्वार पर खड़े हैं। ये ब्राह्मणों को और उपजीवियों को सब धन देकर और सब सुहृदों से विदा हो, आपको देखने की इच्छा से आये हैं। हे पृथ्वीनाथ, ये वन को जायँगे। सो इनको आप देखिए। ये सम्पूर्ण राजगुणों से युक्त हैं। सुमन्त्र का वचन सुन सत्यवादी, धर्म्मात्मा, गम्भीरता में समुद्र के तुल्य और आकाश के सदृश निर्मल, महाराज दशरथ बोले—हे सुमन्त्र, इस घर में जितनी मेरी स्त्रियाँ हैं उन

सबको बुलाओ। मैं उनके साथ राघव को देखूँगा। यह आज्ञा पाकर सुमन्त्र शीघ्र जाकर स्त्रियों से बोला कि महाराज तुमको बुलाते हैं, शीघ्र चलो। पति की आज्ञा पाकर वे साढ़े तीन सौ स्त्रियाँ, जिनके नेत्र राम के दुःख से लाल हो रहे थे, कौशल्या के साथ धीरे-धीरे राजा के पास आईं। तब राजा उन सबको आई हुई देखकर बोले कि हे सुमन्त्र, मेरे पुत्र को लाओ। तब वह राम, लक्ष्मण और सीता को लेकर शीघ्र राजा के पास चला। उस समय दूर ही से हाथ जोड़े आते हुए पुत्र को देख राजा आर्तरूप से स्त्री-जनों के साथ शीघ्र आसन से उठकर राम के सम्मुख वेग से दौड़े, परन्तु राम तक न पहुँचकर बीच ही में दुःखार्त्त हो, मूर्च्छा खाकर गिर पड़े। उस समय राम और लक्ष्मण ने शीघ्र दौड़कर राजा को दोनों भुजाएँ थामकर, सीता के साथ रोते-रोते, पलँग पर लिटा दिया। राजा उस समय दुःख और शोक से चेष्टारहित से हो गये थे। अब राजभवन में भूषणों के शब्द से मिश्रित, सहस्रों स्त्रियों का अति वेगयुक्त "हा हा राम" इस प्रकार का महानाद हुआ। इसके अनन्तर, दो घड़ी बाद, जब राजा सचेत हुए तब रामचन्द्र हाथ जोड़कर, शोक-समुद्र में डूबे हुए राजा से बोले—महाराज, मैं आपसे विदा माँगने आया हूँ। आप हमारे सब के ईश्वर हैं। अब मैं दण्डक वन के लिए प्रस्थान करता हूँ। मुझे कुशल से देखिए; और लक्ष्मण और सीता को भी मेरे साथ जाने की आज्ञा दीजिए। मैंने बहुत से कारण दिखाकर इन दोनों को मना किया परन्तु ये रहना ही नहीं चाहते। सो हे मानद, आप शोक को त्यागकर हम सबको आज्ञा करिए जैसे कि प्रजापति प्रजा को आज्ञा देते हैं। यह सुन राजा दशरथ अनुज्ञा की प्रतीक्षा में तत्पर रामचन्द्र से बोले—हे राघव, मैं तो कैकेयी के वरदान से मोहित हूँ सो तुम मुझे बाँधकर एक ओर डाल दो और अपने पराक्रम से अयोध्या के राजा हो जाओ।

यह बात सुनकर धर्मधारियों में श्रेष्ठ रामचन्द्र हाथ जोड़कर पिता से बोले—हे नृपते, आप हजारों वर्ष पर्यन्त पृथ्वी के अधिपति रहें। मैं आपको मिथ्यावादी न करूँगा। मैं अवश्य वन में वास करूँगा। वन में चौदह वर्ष तक विचर कर प्रतिज्ञा को पूरी करके फिर आपके चरणों की वन्दना करूँगा। सत्यरूप पाश से बँधे हुए राजा ने रामचन्द्र का वचन सुन और फिर कैकेयी से प्रेरित होकर रोते रोते रामचन्द्र से कहा—हे तात! कल्याण, वृद्धि और पुनरागमन के लिए एकाग्र होकर दुःख और भयरहित मार्ग में यात्रा करो। हे रघुनन्दन, तुम सत्य में तत्पर और धर्म-सम्पादन में दत्तचित्त हो रहे हो। अब मेरी बुद्धि किसी प्रकार से तुमको निवृत्त नहीं कर सकती, परन्तु आज ही की रात रह जाओ। भला एक दिन भी तो तुम्हारे साथ मैं भोजन और कर लूँ। मेरी ओर और अपनी माता की ओर देखो और आज की रात रहो। सब पदार्थों से तृप्त होकर कल प्रातःकाल चले जाना। हे पुत्र, तुम सर्वथा दुष्कर कर्म्म करते हो जो मेरी प्रीति के लिए अपनी प्रीति छोड़ निर्जन वन में गमन करते हो। हे पुत्र, मैं सत्य की शपथ करता हूँ कि मुझे यह प्रिय नहीं है। परन्तु मैं क्या करूँ, भस्म से छिपे हुए अग्नि के तुल्य इस स्त्री ने मुझे विचलित कर दिया और इससे मैं ठगा गया। उस ठगाई को तुम इस कुलाचारनाशिनी के कहने से पार करना चाहते हो। हे पुत्र! यह कुछ बड़ा आश्चर्य नहीं है जो तुम मेरे ज्येष्ठ पुत्र होकर मुझको सत्यवादी करना चाहते हो।

ऐसा वचन सुन रामचन्द्र और लक्ष्मण दीन होकर बोले—हे पिताजी! आज मैं जिन पदार्थों का भोग

करूँगा वे पदार्थ कल मुझे कौन देगा ? इसलिए, उनके बदले मैं अब यहाँ से जाना ही चाहता हूँ; और राष्ट्र, जन, धन और धान्यों से भरी हुई इस पृथ्वी को मैं छोड़ जाता हूँ। इसका स्वामी भरत को बनाइए। वन-वास के लिए मेरी बुद्धि उद्यत है, वह न विचलेगी; क्योंकि हे वरद ! आपने सन्तुष्ट हो कैकेयी को ऐसा ही वर दिया है, सो आप मुझे आज्ञा दीजिए और सत्यव्रत हूजिए। मैं आपके आदेश का पालन करने के लिए चौदह वर्ष तक वन में वास करूँगा। भरत को राज्य देने का विचार कुछ भी मत बदलिए। क्योंकि मुझे न तो वैसे राज्य की चाहना है और न वैसा सुख ही प्यारा है जैसा कि आपके वचन का पालन करना प्रिय है। आपका दुःख दूर हो और आप अपने नेत्रों को आँसुओं से न भरिए। देखिए, नदियों का पति समुद्र ऐसा दुर्धर्ष है कि कभी क्षुभित नहीं होता। देखिए, मैं राज्य, सुख, मैथिली, भोग और स्वर्ग की तो बात ही क्या अपने जीवन को भी नहीं चाहता। मैं तो आपको मिथ्या-भाषण से छुड़ाकर सत्यवादी करना चाहता हूँ। मैं इस विषय में सत्य और सुकृत की शपथ करता हूँ। हे तात, हे प्रभो, मैं अब क्षण भर भी नहीं ठहर सकता। इसलिए आप इस शोक को छोड़ दीजिए, क्योंकि अब मैं बदल नहीं सकता। जब कि कैकेयी ने मुझे कहा 'हे राघव, तुम वन जाओ तो मैंने जाना स्वीकार कर लिया है। उस सत्य का मैं पालन करता हूँ। हे देव ! आप उत्कण्ठा मत कीजिए। हम लोग प्रशान्त हरिणों से भरे और नाना पक्षियों के शब्दों से नादित वन में विहार करेंगे। हे तात ! पिता तो देवताओं के भी देवता होते हैं। इसलिए मैं आपको परम देवता समझ आपका वचन पालूँगा। नरसत्तम, चौदह वर्ष बीत जाने पर फिर आप मुझे यहीं आया जानिए। इसलिए आप इस सन्ताप को छोड़ दीजिए। ये लोग जो मेरे लिए आँसू बहा रहे हैं इन्हें आप समझावें। हे पुरुषसिंह, आप क्यों दुखी हो रहे हैं ? मैं पुर राष्ट्र और पृथ्वी को छोड़े जाता हूँ, इसे आप भरत को दीजिए। मैं आपकी आज्ञा का पालन करता हुआ बहुत काल तक वनसेवन के लिए जाऊँगा और भरत मेरी छोड़ी हुई पृथ्वी का शासन करें। आपकी जैसी आज्ञा है वैसा ही होना चाहिए। हे राजन्, मैं बड़ी बड़ी भोग्य वस्तुओं में और अपने प्रिय पदार्थों में वैसा मन नहीं लगाता; मैं तो साधु-सम्मत आपकी आज्ञा का पालन करने में मन लगाता हूँ। अतएव मेरे लिए जो आपको दुःख है उसको दूर कीजिए। हे राजन् ! आज आपको मिथ्यावादी करके मैं न अक्षय राज्य चाहता हूँ, न सर्व-भोग्य वस्तु, न पृथ्वी और न अपना जीवन ही माँगता हूँ। मैं तो यही चाहता हूँ कि आप सत्यव्रत हूजिए। सो मैं फल मूलों को भक्षण करता हुआ और पर्वत, नदी और सरोवरों को देखता हुआ वन में जाकर सुखी होऊँगा जहाँ कि चित्र-विचित्र वृक्ष शोभित हो रहे हैं। आप आनन्द से रहें।

उस समय क्लेशित, ताप और दुःख से पीड़ित राजा दशरथ पुत्र को गले से लगाकर अचेत हो भूमि पर गिर पड़े। उनकी सब सुध-बुध जाती रही। उस समय एक कैकेयी को छोड़ सबकी सब राजपत्नियाँ (जो वहाँ इकट्ठी हुई थीं) विलाप करने लगीं और सुमन्त्र भी रोदन करता हुआ मूर्छित हो गया। चारों ओर से हाहाकार मच गया।

——

## पैंतीसवाँ सर्ग

### सुमन्त्र का कैकेयी से कटु-वचन कहना

इसके अनन्तर सुमन्त्र सचिव सिर हिलाकर, और अनेक बार ऊँची साँस लेकर हाथ पटकने लगे। दाँत कटकटा कर और लाल लाल आँखें किये, क्रोधवश हो वे बड़े दुखी हुए। राजा की ऐसी अवस्था देख सुमन्त्र चुप न रह सका। वह अति कठोर वचन रूपी बाणों से कैकेयी के हृदय को कँपाता हुआ और वज्रतुल्य वाक्यों से उसके मन को फाड़ता हुआ बोला—हे देवि! तूने चराचर जगत् के भर्त्ता और अपने पति राजा दशरथ का त्याग किया तो अब तुझे न करने योग्य और कौन काम रह गया? इसलिए मैं तुझे पतिनाशिनी और कुलघातिनी भी मानता हूँ। अरे! जो महाराज इन्द्र के समान अजेय पर्वत के सदृश स्थिर और समुद्र की तरह अक्षोभ्य हैं उन्हें तू अपने दुष्ट कर्मों से सन्ताप दे रही है! हे कैकेयि, तू ऐसे वर देनेवाले पति दशरथ का अनादर न कर; क्योंकि स्त्रियों के लिए पति की इच्छा के अनुसार व्यवहार करना करोड़ पुत्रों से कहीं बढ़कर है। देख, पुत्र पौत्र इत्यादि अपने वय के अनुसार राजा के मरने के बाद सिंहासन पर बैठते हैं सो तू महाराज इक्ष्वाकुकुल के नाथ के जीते ही उस रीति को नष्ट करना चाहती है। अच्छी बात है तेरा पुत्र भरत पृथ्वी का शासन करे; परन्तु हम लोग तो वहीं जायँगे कि जहाँ राम जायँगे। हे देवि! तू ऐसा मर्यादा-रहित काम करती है कि तेरे यहाँ कोई ब्राह्मण न बसेगा। मैं बड़े आश्चर्य से देखता हू कि इस प्रकार का तेरा दुष्ट आचरण देख पृथ्वी क्यों नहीं फट जाती? जो तू राम को वनवास देने में तत्पर हो रही है तो महा ब्रह्मर्षि-कल्पित प्रदीप्त और भयंकर धिक्कार रूप वचन-दण्ड तेरा घात क्यों नहीं करते? कौन ऐसा होगा जो कुल्हाड़ी से आम के पेड़ को काटकर नीम का सेवन करेगा? क्योंकि वह तो दूध से सींचने से भी मीठा न होगा। मैं तो यह मानता हूँ कि जैसा तेरी माता का चाल-चलन था वैसा ही तुझ में भी है, क्योंकि लोक में यह बात प्रसिद्ध है कि नीम में से मधु नहीं स्रवता। तेरी माता के असत्कर्म्म को मैं जानता हूँ। मैंने पहले सुना है किसी ऋषि ने तेरे पिता को यह वर दिया था कि तुम सब प्राणियों की भाषा समझ सकोगे। सो राजा सब पक्षियों की बातें समझने लगे। किसी समय शयन-काल में राजा, दिव्य कान्तियुक्त जृम्भ नाम पक्षी का शब्द सुनकर और उसका आशय समझकर बहुत हँसे। उस समय तेरी माता क्रुद्ध हो, मृत्यु चाहती हुई, बोली—हे राजन्! मैं तुम्हारे हँसी का कारण जानना चाहती हूँ। तब राजा बोले—हे देवि जो मैं इस हँसने के हेतु को कह दूँगा तो इसी क्षण मर जाऊँगा। यह बात सुन तेरी मा ने तेरे पिता केकय से कहा—हे राजन्! चाहे तुम जियो चाहे मरो परन्तु इसका भेद मुझे जरूर बताओ नहीं तो फिर भी तुम मेरा उपहास करोगे।

हे देवि! अपनी स्त्री की यह बात सुन तेरे पिता राजा केकय ने उस वर देनेवाले ऋषि को यह समाचार जा सुनाया। राजा की बात सुनकर वह साधु बोला—हे महीपते! वह स्त्री, मर भले जाय, परन्तु तुम ऐसा काम मत करना। हे कैकेयि! ऐसा सुनकर राजा ने तेरी माता को निराश कर दिया और आप कुबेर की नाईं विहार करने लगा। उसी प्रकार तू भी मोह से दुर्जनों के मार्ग पर पैर रखकर राजा को असत्कर्म में डालती है, इसलिए केवल तू पापिनी है। लोक में प्रसिद्ध यह

कहावत सत्य है कि लड़के पिता के स्वभाव के अनुसार चलते हैं और लड़कियाँ माता के चाल-चलन का अनुसरण करती हैं। तू अब भी मान जा और राजा जो कहते हैं उसको कर। अपने पति की इच्छा के अनुसार चलकर दुःख से हम लोगों का उद्धार कर और पापों के वश में होकर—इन्द्र के तुल्य और लोक के स्वामी—अपने पति से असत्कर्म मत करा। क्योंकि राजा दशरथ ने तेरे लिए जो प्रतिज्ञा कर रक्खी है उसे ये श्रीमान् मिथ्या नहीं कर सकते। हे देवि! जेठे, दाता, कर्मों में कुशल और अपने धर्म और जीव लोक के रक्षक राम का अभिषेक होने दे। हे रानी, यदि रामचन्द्र पिता को छोड़ वन चले जायँगे तो इस लोक में तेरी बड़ी निन्दा फैलेगी; इसलिए राघव को अपना राज्य सम्हालने दे और तू सन्तापरहित हो जा। इस नगरी में राम के सिवा तेरा कल्याण-कारक और कोई न होगा। राम जब यौवराज्य के अधिकारी हो जायँगे तब राजा दशरथ पूर्व राजाओं के अनुसार आप ही वन को चले जावेंगे।

राजा की सभा में सुमन्त्र ने इस प्रकार आश्वासन से और तीक्ष्ण वचनों से कैकेयी को बराबर हिलाया डुलाया और हाथ भी जोड़े, परन्तु वह चट से मट भी न हुई और न उसके मुख का रंग ही बदला।

---

## छत्तीसवाँ सर्ग

### राजा दशरथ, कैकेयी और प्रधान मन्त्री की बातचीत

इसके अनन्तर अपनी प्रतिज्ञा से पीड़ित महाराज दशरथ आँसू बहाते हुए, ऊँची साँस ले सुमन्त्र से बोले—हे सूत! रत्नों समेत चतुरंगिणी सेना राम के साथ जाने के लिए तैयार करो; बातचीत करने में चतुर वेश्याएँ और महाधनिक व्यापारी बनिए लोग अपनी बिक्री की चीजें फैलाकर कुमार की उस सेना को भूषित करें। जो राम के सेवक हैं और जिन लोगों के पराक्रम से रामचन्द्र प्रसन्न रहते हैं उनको भी बहुत धन देकर इनके साथ कर दो। मुख्य मुख्य शस्त्र और छकड़े इनके साथ भेजो। पुरवासी लोग और जंगलों के जानकार व्याध लोग इनके पीछे पीछे जायँ। वन में जाकर ये मृगों और हाथियों का शिकार करके और मधुपान करके तथा नाना प्रकार की नदियों को देख राज्य का स्मरण न करेंगे। मेरा धान्यकोश और धनकोश भी राम के साथ जाय। वहाँ ये ऋषियों से मिलकर, पवित्र स्थनों में यज्ञ करें और सुख से रहें। यहाँ भरत अयोध्या का पालन करें। राम को सब पदार्थों से पूर्ण करना चाहिए।

राजा के मुख से यह बात निकलते ही कैकेयी डर गई। उसका मुख सूख गया और गले का स्वर रुक गया। वह कैकेयी बड़ी दुःखी हो, डर कर, राजा से बोली—हे साधो जिसका सारांश खींच लिया गया है ऐसे स्वादहीन मद्य की तरह, धनहीन और शून्य राज्य को भरत न लेगें। जब वह लज्जा छोड़कर ऐसा कठोर वचन बोली तब राजा ने कहा—अरे नीच, मेरी बैरिन, मेरे ऊपर वनवास-दान का बोझा लादकर मुझे अब क्यों सता रही है? जब तैने वर माँगा था तभी यह बात भी क्यों न माँग ली कि "राम बिना ही कुछ लिए अकेले वन को जायँ।" राजा की यह बात सुन कैकेयी दूना क्रोध कर बोली कि हे राजन्, देखो तुम्हारे ही वंश में राजा सगर ने अपने पुत्र असमंजस को अकेला ही अर्थात् बिना ही भोजन-वस्त्र का प्रबन्ध किये निकाल दिया था। उसी प्रकार ये भी जायँ।

उसका वचन सुन महाराज दशरथ बोले कि "हा, धिक्कार है।" जो लोग वहाँ बैठे थे वे तो लज्जित हो गये परन्तु उसको कुछ भी ज्ञान न हुआ। तब सिद्धार्थ, जो कि राजा का प्रधान मंत्री और उनका परम सम्मत था, कैकेयी से बोला—हे देवि, असमंजस तो मार्ग में खेलते हुए लड़कों को पकड़कर सरयू में फेक देता था; और इस काम से प्रसन्न होता था। इससे नगरवासियों ने क्रुद्ध होकर राजा से कहा था कि आप केवल असमंजस ही को नगर में रखना चाहते हैं या हम लोगों को भी। राजा ने कहा, तुमको यह डर क्यों हुआ? तब प्रजा ने उत्तर दिया कि यह कुँवर हमारे लड़कों को पकड़ के सरयू में फेककर मूर्खता से बड़ा आनन्दित होता है। इस पर राजा ने प्रजा की प्रसन्नता के लिए उस दुष्ट पुत्र को त्याग दिया। यह "जीवन भर के लिए निकाला जाता है" ऐसी आज्ञा दे उसको भार्या और वनसामग्री के साथ शीघ्र निकाल दिया। तब वह कुदारी और बाँस की पिटारी ले पवतों पर और वनों में घूमने लगा। जैसा उसने पाप कर्म किया था वैसा ही उसको फल मिला।

बड़े धार्मिक राजा सगर ने इस प्रकार अपने पुत्र को, अपराध करने के कारण, देश से निकाल दिया था। परन्तु राम ने कौन पाप किया है जो इस दशा को पहुँचाये जाते हैं? हम तो राम में कुछ भी दोष नहीं देखते। इनमें तो दोष ऐसा दुर्ल्लभ है जैसे कि चन्द्रमा में मलिनता। वे देवि, भला तुमने राम में कुछ दोष पाया हो तो कहो, तब राम को वनवास दिया जाय। हे रानी, देखो जो पुरुष दुष्ट नहीं है और जो सन्मार्ग में तत्पर है उसका त्याग करना इन्द्र की लक्ष्मी को भी भस्म कर देता है क्योंकि यह धर्मविरुद्ध कर्म्म है। इसलिए तू व्यर्थ राम की श्री का विघात मत कर। हे सुन्दरमुखि, तू लोकापवाद से अपने को बचा।

सिद्धार्थ नामक मंत्री का वचन सुन राजा बहुत धीमे स्वर से और शोक से पीड़ित होकर कैकेयी से बोले—हे पापरूपे, सिद्धार्थ ने जो कहा उसे तू करना नहीं चाहती। तू न तो अपना हित जानती है और न मेरा। दुष्ट मार्ग पर जम कर तू सन्मार्ग से गिर रही है। इसलिए मैं राज्य, सुख और धन को छोड़कर राम के साथ वनयात्रा करूँगा और तू राजा भरत के संग सुखपूर्वक राज्य करना।

---

## सैंतीसवाँ सर्ग

### कैकेयी का रामचन्द्र को चीर देना और वशिष्ठ का कैकेयी को समझाना

अब रामचन्द्र उस मंत्री का वचन सुन नम्रतापूर्वक राजा दशरथ से बोले—हे राजन्! जब मैंने भोगों को छोड़ दिया है और वन के पदार्थों से अपनी जीविका करना अङ्गीकार कर लिया है तब मुझे उस सेना से क्या प्रयोजन है जिसका मैं परित्याग कर चुका हू? जैसे कि किसी ने हाथी दे डाला हो तो उस पुरुष को हाथी के पेट में बाँधी जानेवाली डोरी को पास रखने से क्या लाभ है? इसलिए हे सज्जनों में श्रेष्ठ! हे जगत्पते! मुझे अब सेना से कुछ प्रयोजन नहीं। मैंने सब पदार्थ भरत को दे डाले। मेरे लिए तो बल्कल और चीर मँगवा दीजिए; खोदने का औजार और बाँस की पिटारी भी मुझे दीजिए क्योंकि चौदह वर्ष वनवास के लिए यही चीजें चाहिएँ। रामचन्द्र के मुख से इतना

निकलते ही कैकेयी आप ही उठकर चीर-वल्कल ले आई और सबके सामने, लज्जा छोड़कर राम से बोली—लो यह लो, पहिन लो। तब पुरुषोत्तम रामचन्द्र ने कैकेयी से लेकर चीर पहिन लिया और जिन राज-वस्त्रों को पहिने हुए थे उन्हें उतार कर धर दिया। लक्ष्मण ने भी उदास हो सुन्दर वस्त्रों का त्याग कर तापस वस्त्र पहिन लिये। सीता रेशमी वस्त्र पहने थी। अपने पहिरने के लिए उस चीर को देख वह ऐसी डरी जैसे व्याधा के जाल को देख मृगी डरती है। परन्तु लज्जित होकर दुखित मन से, उन चीरों को उठा कर और आँखों में आँसू भर के वह गन्धर्वराज के तुल्य अपने पति से बोली—महाराज! वनवासी मुनि लोग किस प्रकर से चीर बाँधते हैं? ऐसा कहकर वह बार बार घबरा उठती थी क्योंकि उसके लपेटने की रीति भला राजकुमारी क्या जाने। सीता एक चीर को गले में और दूसरे को हाथ में ले लज्जित हो, वहाँ खड़ी हो रही। इतने में रामचन्द्र ने शीघ्र आकर उस रेशमी वस्त्र के ऊपर ही उस चीर को लपेट दिया। उस समय, राम-चन्द्र को सीता के शरीर में चीर लपेटते देख अन्तःपुर की सब स्त्रियाँ रोने लगीं और अत्यन्त खिन्न होकर बोली—हे वत्स, ऐसा मत करो क्योंकि इस मनस्विनी सीता को वनवास की आज्ञा नहीं दी गई। पिता की आज्ञा मानकर तुम तो वन को जाते ही हो परन्तु इसको मत ले जाओ। तुम्हारी अनुपस्थिति में इसी के दर्शन से हम अपना जीवन सफल करेंगी। हे पुत्र! देखो, लक्ष्मण तो तुम्हारे सहायक हैं ही, उनको तुम वन ले जाओ परन्तु यह कल्याणी तापस-बन्धन में रहने के योग्य नहीं है। हे राम! यदि आप धर्म में तत्पर होकर नहीं रहना चाहते तो हमारी इतनी ही प्रार्थना मान लो कि सीता को यहीं छोड़ जाओ।

रामचन्द्र ने उन स्त्रियों की यह बात सुनकर भी सीता को चीर पहिना ही दिया। इस प्रकार जब सीता ने चीर ओढ़ लिया तब राजा के गुरु वशिष्ठ से न रहा गया। वे बोले—अरी कैकेयी! राजा को ठग कर तू अपने को बड़ी सदाचारिणी समझती है। सीता वन को न जायगी और राम के राज्यासन पर बैठेगी; क्योंकि सब गृहस्थों की स्त्रियाँ अपने आत्मा के तुल्य हैं। इसलिए यह राम की आत्मा ही पृथ्वी का पालन करेगी। यदि जानकी राम के साथ जायगी तो हम लोग सब नगरवासी और सब अन्तःपुर के रक्षक भी वहाँ जायँगे जहाँ राम वन में वास करेंगे। जितने उप-जीवी, अधिकारी भृत्य और दास हैं वे अपने अपने भोजन, द्रव्य और वस्त्र इत्यादि पदार्थों को लेकर राम के पीछे चले जायँगे। भरत भी शत्रुघ्न के साथ चीर धारण कर, वनवासी बन कर राम की उपासना करेंगे। तब पृथ्वी निर्जन और शून्य हो जायगी। तू अकेली वृक्षों से परिपूर्ण पृथ्वी को प्रजा की हितका-रिणी होकर पालन करना। क्योंकि जहाँ राम भूपति नहीं हैं वह राष्ट्र ही न रहेगा; बल्कि वह वन राष्ट्र बन जायगा जहाँ राम वास करेंगे। भरत यदि राजा से उत्पन्न हुए होंगे तो पिता की बिना दी हुई पृथ्वी का कभी शासन न करेंगे और न तेरे साथ पुत्र के तुल्य व्यवहार करेंगे। यदि तू भूमि से आकाश में उड़ जायगी तो भी पिता के वंश के चरित्र को जाननेवाले भरत कभी अन्यथा न करेंगे। इसलिए तूने पुत्र के स्नेह से जो यह काम किया है सो वह पुत्र के लिए भी अहित है। लोक में ऐसा कोई भी नहीं जो राम का अनुगामी न हो। हे कैकेयि, इसी घड़ी तू देखेगी कि जो रामचन्द्र के प्रेम में लीन हैं, ऐसे पशु, सर्प, मृग, पक्षी और वृक्ष भी राम के साथ चले जाते हैं कि नहीं। इसलिए, हे देवि,

इस चीर को ले और सीता को आभरण दे। क्योंकि इसके लिए चीर उचित नहीं है।

इस प्रकार वशिष्ठ उसे चीर-वस्त्र देने का निषेध कर फिर बोले—हे केकयराजपुत्रि, केवल राम के ही लिए तूने वनवास माँगा था और किसी के लिए नहीं; इसलिए जानकी शृंगार और भूषणों से युक्त होकर राम के साथ वन में वास करे। इसके संग सवारी, दास और दासियाँ जायँ और विधानपूर्वक संपूर्ण वस्त्र भी इसको दिये जायँ; क्योंकि वरदान के समय इसका नाम तूने नहीं लिया था। राजगुरु की ये बातें सुनकर भी सीता ने उस चीर को नहीं त्यागा क्योंकि वह तो पति के मत के अनुसार व्यवहार करना चाहती थी।

---

## अड़तीसवाँ सर्ग

### राजा का कैकेयी से कठोर वचन कहना और बन जाते समय माता के विषय में पिता से रामचन्द्र की प्रार्थना

सीता को अनाथ की तरह चीर पहिनते देख, जो लोग, वहाँ बैठे थे वे, निन्दापूर्वक बोले कि हे दशरथ, तुम्हें धिक्कार है! इस प्रकार महा-कोलाहल से दुःखित हो राजा ने अपने जीवन में, धर्म में, और यश में श्रद्धा छोड़ दी; और गरम साँस लेकर कहा—हे कैकेयि, सीता कुशचीर पहनकर वन जाने के योग्य नहीं है। यह सुकुमारी बाला नित्य सुख भोगने लायक है और मेरे गुरु ने जो यह कहा कि यह वन के अयोग्य है सो ठीक कहा। जो इस जनसमूह में चीर को पहिने भिखारिणी की भाँति चेष्टारहित खड़ी है, यह राजपुत्री भी भला किसी का कुछ बिगाड़ करती है? मैंने यह प्रतिज्ञा नहीं की है कि जनकपुत्री भी चीरों को पहिने, इसलिए यह राजपुत्री संपूर्ण रत्नों से भरपूर होकर वन को जाय। मैंने तो अपने मरने के लिए शपथपूर्वक ऐसी दुष्ट प्रतिज्ञा की और तूने मूर्खता से ऐसा कर्म्म आरम्भ किया है जो मुझे वैसे ही भस्म कर देगा जैसे कि बाँस को उसका फूल भस्म कर देता है। हे पापिनि, हे अधमे, भला राम ने जो कुछ तेरा बिगाड़ा हो सो बिगाड़ा हो परन्तु वैदेही ने तेरा क्या अपकार किया है। मृगी के तुल्य इसके प्रफुल्लित नेत्र, कोमल स्वभाव और शुद्ध चित्त है, यह बेचारी तेरा क्या अपकार कर सकती है? अरी पापिनि, राम को वनवास देना ही तेरे नरकवास के लिए बहुत है। अब और इन दुष्ट कर्म्मों को करके न जाने तेरी क्या दशा होगी। हे देवि, तूने जो कहा सो मैंने प्रतिज्ञा-पूर्वक किया और जब राम मेरे पास अभिषेक कराने आये तब तूने केवल इन्हीं को वन जाने के लिए कहा था, कुछ सीता का नाम नहीं लिया था। अब उस बात को छोड़कर तू किस नरक में जाना चाहती है जो सीता को मुनिवस्त्र पहिनाकर वन में भेजती है?

इस प्रकार राजा विलाप करते हुए और अपने शोक का अंत न देख अत्यन्त पीड़ित हो, भूमि पर गिर पड़े और पुत्र के दुःख में डूब गये।

इसके अनन्तर पिता के उस वचन को सुन रामचन्द्र सिर नीचा कर बोले—हे धार्मिक, यह यशस्विनी मेरी माता कौशल्या वृद्धा हैं, स्वभाव इनका उत्तम है, (यद्यपि आपने मुझे वनवास की आज्ञा दी है तो भी) ये आपकी निन्दा भी नहीं करतीं। इससे पहिले इन्होंने कभी दुख भी नहीं देखा। अब मेरे बिना ये शोकसागर में डूब जायँगी। आप पूज्य हैं, ऐसा करिए जिसमें इनको पुत्र-शोक न हो, और आपके द्वारा इनका आदर होता रहे।

कहीं ऐसा न हो कि यह तपस्विनी मेरी चिन्ता से प्राण त्याग दें। हे नरेन्द्र, इस पुत्रवत्सला मेरी माता को इस प्रकार से रखिएगा कि जिसमें शोक से कर्षित होकर यह यमपुरी को न चली जाय।

---

## उनतालीसवाँ सर्ग

### कौशल्या का सीता को उपदेश

अब महाराज दशरथ रामचन्द्र का वचन सुनकर और उनका मुनि-वेष देख रानियों के साथ अचेत और दुःख से संतप्त होकर राम की ओर न तो भली भाँति देखते और न कुछ बोल सकते थे। अब महीपति मुहूर्त्त भर चेष्टा-रहित हो फिर राम का स्मरण कर, विलाप करने लगे। हा! जान पड़ता है, मैंने बहुत गायों को वत्स-हीन कर दिया होगा या प्राणियों की हिंसा की होगी। जो ऐसा न होता तो यह दुःख मुझे किस लिए होता? बिना काल आये शरीर से प्राण भी नहीं निकलते। हा! कैकेयी मुझे इतना दुःख दे रही है पर मेरे लिए मृत्यु नहीं है। हा! मैं अग्नि के तुल्य प्यारे राम को आगे खड़ा और राज-वस्त्र त्याग कर मुनिवस्त्र को पहिने देख रहा हूँ! हा! एक कैकेयि अपने स्वार्थ के लिए यत्न कर रही है और दुष्ट मार्ग पर आरूढ़ है, उसके लिए इतने लोग क्लेश पा रहे हैं!

ऐसा कह कर राजा नेत्रों में आँसू भर एक बेर "राम" कहकर फिर न बोल सके। इसके अनन्तर कुछ देर में महाराज को चेत हुआ। उनकी आँखों में आँसू भरे थे। वे सुमन्त्र से बोले—हे सूत, क्रीड़ा-रथ जोतकर ले आओ और उस पर चढ़ा कर महाभाग रामचन्द्र को देश से बाहर पहुँचाओ। साधु और वीर पुत्र पिता माता के द्वारा वन में निकाला जाता है इससे मैं मानता हूँ कि गुणवान् के गुणों का यह फल है। यह राज-शासन पाकर सुमन्त्र शीघ्रता से रथ में घोड़े जोत लाया और उस सुवर्णभूषित रथ को राम के पास खड़ा कर, हाथ जोड़ के बोला—हे राजन्, रथ तैयार है। तब देश और काल के ज्ञाता राजा ने कोश के अधिकारी को बुला कर कहा कि सुन्दर सुन्दर वस्त्र और बहुमूल्य भूषण ले आओ और चौदह वर्ष तक पहनने के लिए जानकी को दो। राजा की आज्ञा पाकर उस अधिकारी ने कोशगृह से सब भूषण और वस्त्र सीता को ला दिये। सीता ने उन विचित्र वस्त्रों और आभूषणों से अपने शरीर को भूषित कर लिया। उस समय जानकी ने भूषित होकर उस राजगृह को ऐसा शोभित किया जैसे उदयकाल में सूर्य की प्रभा आकाश को विभूषित करती है।

इसके अनन्तर कौशल्या सीता को गले लगाकर और उसके मस्तक को सूँघ कर बोली—हे सीते, इस लोक में जिन अपतिव्रता स्त्रियों का सर्वदा प्रिय पदार्थों से सत्कार किया जाता है वे विपत्तिकाल में पति को नहीं मानतीं। यह स्त्रियों का स्वभाव ही है कि पहले सुख को भोग कर भी जहाँ थोड़ी भी विपत्ति पाई कि पति को दूषण देने लगती हैं बल्कि उसका त्याग भी कर देती हैं। ये युवतियाँ प्रायः असत्यशील, विकार-युक्त, क्षुद्रहृदयवाली, पापसंकल्प और क्षण-मात्र में बिगड़ जानेवाली होती हैं। इन दुष्ट स्त्रियों के मन को न कुल हरण कर सकता है न उपकार, न दिये हुए भूषण इत्यादि और न पदार्थों का संग्रह ही कुछ कर सकता है क्योंकि उनका चित्त बड़ा अस्थिर होता है। जो पतिव्रता हैं और जो अपने शील, सत्य और धर्म

पर स्थिर हैं उनके लिए एक पति ही परम पवित्र और सबसे श्रेष्ठ है। अतएव वनवास के लिए उद्यत मेरे पुत्र का तू अनादर न करना; क्योंकि चाहे वह सधन हो वा निर्धन परन्तु तेरे लिए तो देवतुल्य है। इस प्रकार सास का धर्म्मयुक्त वचन सुन सीता हाथ जोड़कर बोली कि हे आर्य्ये, आप जैसा मुझे सिखलाती हैं मैं वैसा ही करूँगी। मैं जानती भी हूँ कि पति के साथ पत्नी को कैसा व्यवहार करना चाहिए; क्योंकि मैंने स्त्री-धर्म्म की सब बातें पहले ही से सुन रक्खी है। हे आर्य्ये, आप मुझे असज्जन स्त्रियों के तुल्य न समझें। मैं धर्म्म से कभी नहीं बिचल सकती जैसे चन्द्र की प्रभा चन्द्र से जरा भी टलने में समर्थ नहीं। जैसे बिना तार की वीणा और बिना चक्र का रथ किसी काम का नहीं इसी प्रकार बिना पति के स्त्री को भी सुख नहीं प्राप्त होता, चाहे उसके सौ पुत्र ही क्यों न हों। पिता, भ्राता और पुत्र, ये सब थोड़े-थोड़े सुख के देनेवाले हैं परन्तु पति अतुल सुख का दाता है। उसके द्वारा स्त्री इस लोक में और परलोक में भी अपरिमित सुख भोगती है। तो कौन स्त्री उस पति का आदर न करेगी? मैंने सम्पूर्ण धर्म की बातें सुन रक्खी हैं। मैं पति का अनादर क्यों करूंगी, क्योंकि भर्ता ही स्त्रियों का देवता है।

इस प्रकार सीता के मनोहर वचन सुन कौशल्या ने दुःख और हर्ष दोनों प्रकार के आँसू बहाये। सब मातृमण्डली में पूजित माता को हाथ जोड़ रामचन्द्र बोले—हे माता, तुम दुःखित हो मेरे पिता की ओर न देखना; क्योंकि वनवास का अन्त शीघ्र ही हो जायगा। तू सोती रहेगी और चौदह वर्ष बीत जायँगे और मित्रों से युक्त मुझे यहीं देखेगी।

माता से यह कहकर आर्त्त हो और हाथ जोड़कर सब रानियों से बोले कि हे माताओ, एक साथ रहने के कारण जो कुछ मुझसे अपराध हुआ हो उसको क्षमा करना। यह मेरी प्रार्थना है। राम के मुख से यह वचन निकलते ही वे सबकी सब उच्च स्वर से रोने लगीं। शोकसागर में तो पहले से मग्न थीं ही। अब उनके रोने का महानाद ऐसा हुआ जैसा क्रौञ्च पक्षी की माताओं का शब्द होता है। जिस राजभवन में पहले मृदंग, ढोलक और मेघ नाम बाजों का शब्द होता था वह उस समय विलाप, रुदन और दुःख से भर गया।

---

## चालीसवाँ सर्ग

### रामचन्द्र की वनयात्रा

अब राम, सीता और लक्ष्मण ने हाथ जोड़ राजा के चरणों में प्रणाम कर प्रदक्षिणा की। उनसे बिदा होकर रामचन्द्र ने माता को प्रणाम किया। इसके अनन्तर लक्ष्मण ने कौशल्या को प्रणाम कर अपनी माता सुमित्रा के चरणों को ग्रहण किया। तब सुमित्रा रोती और पुत्र का हित चाहती हुई लक्ष्मण का मस्तक सूँघकर बोली—हे पुत्र, तुम यद्यपि सुहृज्जनों में अनुरक्त हो तथापि मैंने तुमको वनवास के लिए पैदा किया है। देखो, तुम्हारे भाई वन को जाते हैं, किसी बात की भूल न करना। चाहे यह विपन्न हों चाहे समृद्ध, परन्तु यही तुम्हारी गति हैं। लोक में सज्जनों का यही धर्म है कि ज्येष्ठ के वश में होकर रहें। इस कुल का यही सनातन धर्म है कि दान दे, यज्ञों में दीक्षा ले, और संग्राम में शरीर त्यागे। हे तात! माता, पिता, गृह और देश के छूट जाने से कदापि खेद न करना। देखो, राम को महाराज दशरथ के तुल्य, जानकी को मेरे तुल्य और वन को अयोध्या के तुल्य जानना।

इस प्रकार वन जाने के लिए तैयार लक्ष्मण को सिखाकर और "जाओ, जाओ" कहकर सुमित्रा बोली—हे लक्ष्मण ! अर्थ के लाभ के लिए, कुशल के निमित्त, विजय के लिए, शत्रुओं के विनाश के लिए और फिर लौट आने के लिए जाओ।

अब सुमन्त्र हाथ जोड़कर रामचन्द्र से बोले कि हे महायशस्विन् राजपुत्र, रथ पर चढ़िए और जहाँ चलने की आज्ञा हो वहाँ मैं शीघ्र पहुँचाऊँ। आपको चौदह वर्ष वनवास करना है; कैकेयी की ऐसी ही प्रेरणा है। सो आज से उसका आरम्भ कीजिए। तब सीता प्रसन्न मन से और अपने को भूषित कर उस सूर्यप्रभ रथ पर चढ़ी। महाराज दशरथ ने, वनवास के समय की गणना कर सीता को वस्त्र और आभूषण दिये थे। राम और लक्ष्मण के लिए भी बहुत से शस्त्र, कवच और उत्तम-उत्तम दृढ़ ढालें दी गई थीं। इन सब चीजों को रथ में रखकर राम और लक्ष्मण भी सवार हुए। अब सुमन्त्र ने तीनों को रथ पर बैठे देख हवा से बातें करनेवाले घोड़ों को चलाया। रामचन्द्र का प्रयाण होते ही नगर मूर्च्छित हो गया और सेना के हस्ती इत्यादि तिर्य्यक्* प्राणी भी मूर्च्छा से न बचे। वहाँ सब लोग घबरा गये। इधर हाथी बिगड़ गये और घोड़े अतिवेग से हिन-हिनाने लगे। उस समय मारे शब्द के वह नगर गूँज उठा। उस पुरी के युवा, बालक और वृद्ध सबके सब अत्यन्त पीड़ित हो राम के पीछे ऐसे दौड़े जैसे कि गरमी से पीड़ित जीव जल की ओर दौड़ते हैं। उस समय कोई तो रथ के अगल-बगल और कोई पीछे लटक रहे थे। सबकी आँखों से आँसू टपक रहे थे। बड़े जोर से वे सारथि से चिल्लाकर कहने लगे कि हे सूत, घोड़ों की रास को थाम लो; रथ धीरे-धीरे चलाओ। हमको रामचन्द्र का मुख देखने दो, क्योंकि इनका दर्शन हमको दुर्लभ हो जायगा। हम जानते हैं; राम की माता का हृदय अवश्य लोहे का है; तभी तो इस प्रकार के देवसमान पुत्र को वन जाते देख फट नहीं जाता। इस घड़ी वैदेही कृतार्थ हो गई जो छाया की तरह पति के संग वन को जाती है और धर्म में तत्पर होकर पति को नहीं छोड़ती जैसे कि सूर्यप्रभा मेरु को नहीं छोड़ती। हे लक्ष्मण, तुम भी कृतार्थ हुए, जो सदा प्रियवादी और देवतुल्य भाई की सेवा करोगे। यही तुम्हारी बड़ी बुद्धि, यही महान् अभ्युदय और यही स्वर्ग का मार्ग है कि तुम इनके अनुगामी हुए। इस प्रकार कहते हुए वे लोग इक्ष्वाकु-नन्दन के पीछे चले जाते थे। वे अपने आँसुओं को न रोक सकते थे।

अब दीन राजा दीन स्त्रियों के साथ यह कहते हुए घर से निकले कि "मैं अपने प्रिय पुत्र को देखूँगा।" सामने रोती हुई स्त्रियों का महा-नाद सुन पड़ा जैसा कि गजेन्द्र के आबद्ध हो जाने पर हथिनियों का होता है। तब तो महाराज दशरथ ऐसे पीड़ित हुए जैसे परिपूर्ण चन्द्र राहुग्रस्त होकर त्रस्त होता है। इतने में रामचन्द्रजी ने सूत से कहा कि रथ जल्द चलाओ। अब इधर तो राम कहते थे कि चलो और उधर लोग पुकारते थे कि खड़ा करो। सुमन्त्र बेचारा क्या कर सकता था। उस समय जब रामचन्द्र चले तब पुरवासी लोगों के आँसुओं से, उड़ती हुई, धूल दब गई। राम के प्रयाण के समय वह पुर आँखों के आँसुओं से विकल, हाहाकार से युक्त और अचेत हो गया। उस समय स्त्रियों के नेत्रों से आँसुओं की ऐसी धारा बह रही थी कि जैसे मछलियों की हलचल से हिले हुए कमलों के द्वारा जल टपकता है। सम्पूर्ण

* मनुष्य को छोड़कर पशु इत्यादि जीवगण।

नगर की यह दशा देख राजा मारे दुःख के, कटे वृक्ष की तरह, भूमि पर गिर पड़े। उस समय राम के पीछे राजा की यह अवस्था देख पुरवासियों में बड़ा कोलाहल मचा। उस समय अन्तःपुर समेत राजा को चिल्लाते और रोते देख कोई तो हा राम, और कोई हा कौशल्या कहकर विलाप करने लगे। जाते हुए रामचन्द्र ने पीछे देखा कि माता और पिता दोनों विषादयुक्त और भ्रान्तचित्त होकर आ रहे हैं; परन्तु रस्सियों से बँधा हुआ बछेड़ा जैसे माता को नहीं देख सकता वैसे ही धर्म के बन्धन में पड़े रामचन्द्र इनको प्रत्यक्ष नहीं देख सकते थे। रामचन्द्र ने देखा कि जिन्होंने कभी दुःख नहीं देखा और जो कभी पाँव-पाँव नहीं चले वे आज पैदल चले आते हैं। तब सारथी से कहा कि रथ को शीघ्र चलाओ, हम इस प्रकार दुःखयुक्त माता और पिता को देख नहीं सकते। उस समय अंकुश से ताड़ित गज की नाईं रामचन्द्र की दशा हो रही थी। घर में बछड़ा बँधा रहने के कारण जिस प्रकार गाय दौड़ती आती है उसी तरह कौशल्या "हा राम! हा सीते! हा लक्ष्मण!" चिल्लाती और आँखों से आँसू बहाती हुई रथ के पीछे दौड़ी जाती थी। इधर राजा पुकारते थे—खड़े रहो, खड़े रहो, और उधर रामचन्द्र कहते थे कि चले चलो। दो दलों के बीच में फँसे हुए योधा की जैसी दशा होती है वैसी दशा में बेचारा सुमन्त्र पड़ा अर्थात् उसका चित्त डावाँडोल हो गया। तब रामचन्द्र ने सुमन्त्र से कहा कि जब तुमसे राजा पूछें या तुमको धमकावें या उलहना दें कि हमारे कहने से तूने रथ क्यों नहीं खड़ा किया तब कह देना कि मैंने सुना नहीं; क्योंकि ठहर जाने से मुझे और भी दुःख का दृश्य देखना पड़ेगा। तब राम के वचन को मान और पुरवासियों को लौटने की आज्ञा देकर सुमन्त्र घोड़ों को शीघ्र हाँकने लगा। उस समय राजसम्बन्धी जन राम की प्रदक्षिणा कर शरीर से तो अलग हट गये परन्तु मन से नहीं हटे। पुरवासी लोग सब के सब, न मन से लौटे और न शरीर से। तब मन्त्रियों ने राजा से कहा कि महाराज, जिसका पुनरागमन चाहे उसको पहुँचाने के लिए दूर तक न जाय। यह सर्वगुणयुक्त वचन सुनकर स्त्रियों के साथ, पुत्र की ओर दृष्टि दिये, राजा वहीं ठहर गये। वे पसीने से लथपथ और विषाद से दीन हो रहे थे।

---

## इकतालीसवाँ सर्ग

### अयोध्यावासियों के दुःख और विलाप का वर्णन

इस प्रकार जब रामचन्द्र चले गये तब अन्तःपुर की स्त्रियों ने बड़ा हाहाकार मचाया। वे इस प्रकार विलाप करने लगीं—जो इन अनाथ, दुर्बल और तपस्वी जनों की गति और शरण था वह नाथ कहाँ जाता है? जो मिथ्या बात सुनकर भी क्रोध नहीं करता और जिसने क्रोध को त्याग ही दिया था, जो क्रुद्ध को प्रसन्न करता था, वह समदुःख अर्थात् दुःखित को देख दुःखयुक्त होनेवाला कहाँ जाता है? जो अपनी माता की तरह हम लोगों को भी मानता था वह महात्मा कहाँ यात्रा करता है? कैकेयी से क्लेशित होकर जिसे राजा ने वनवास के लिए प्रेरित किया है वह इस जगत् के जनों का रक्षक कहाँ जाता है? अहो, हमारे राजा निर्बुद्धि हैं, जो धर्मात्मा और सत्यवादी राम को वनवास दे रहे हैं।

इस प्रकार सब रानियाँ वत्सरहित धेनु की भाँति दुःखार्त्त हो रोने और बड़े शब्द से चिल्लाने लगीं।

एक तो राजा पुत्रशोक से वैसे ही सन्तप्त हो रहे थे, दूसरे अन्तःपुर के उस घोर आर्त्तनाद को सुनकर और भी अधिक दुःखित हुए। उस समय नगरी में न तो अग्निहोत्र का हवन होता था और न गृहस्थ लोग स्वाध्याय करते थे। दिन रहने पर भी सूर्य अन्तर्द्धान हो गये। हाथियों ने अपना भोजन छोड़ दिया। गायों ने अपने बछड़ों को दूध न पिलाया। त्रिशंकु, मंगल, बृहस्पति, बुध, शनि और शुक्र इत्यादि क्रूर ग्रहों ने चन्द्रमा को घेर लिया। नक्षत्र प्रभाहीन और ग्रह तेजहीन होकर विपथ में धूमयुक्त प्रकाश करते थे। वायु के वेग से आकाश में मेघाडम्बर उत्पन्न हुआ और समुद्र की तरह दीखने लगा। नगर कम्पित हो गया। दसों दिशाएँ अन्धकार से छा गईं। आकाश में न नक्षत्र देख पड़ते थे और न ग्रह। अकस्मात् सम्पूर्ण नगरवासियों में उदासी फैल गई। वहाँ के किसी पुरुष का मन न आहार पर चलता था और न विहार पर। जितने अयोध्यावासी थे सभी अति शोक से सन्तप्त हो, लम्बी साँस ले, दशरथ के ऊपर क्रुद्ध हुए। जिसको देखो वही आँसू बहाता देख पड़ता था। कहीं हर्ष का नाम न था। सर्वत्र शोक फैल गया। उस समय न शीतल पवन बहता था, न चन्द्रमा सुहावना लगता था और न सूर्य तपता था। इस प्रकार सारा जगत् आकुल हो गया। उस समय न पुत्र माता-पिता से, न पति अपनी स्त्रियों से और न भाई अपने भाइयों से कुछ प्रयोजन रखते थे। वे केवल एक रामचन्द्र की चिन्ता में डूब रहे थे। उनको अपनी कुछ सुध-बुध ही न रही थी। जो राम के मित्र थे वे शोक से ऐसे मूढ़ हो गये थे कि निद्रा तक उनकी छूट गई। जिस अयोध्यापुरी को महात्मा रामचन्द्र ने छोड़ दिया था वह, इस प्रकार इन्द्र-रहित पृथ्वी की नाईं, भय और शोक से सन्तप्त हो कम्पित हो गई। वहाँ हाथी, योद्धा और घोड़े भी व्याकुल हो गये।

---

## बयालीसवाँ सर्ग

### राजा के शोकसन्ताप का वर्णन

जब तक राम के रथ की धूल देख पड़ी तब तक महाराज ने उधर से अपने नेत्र न हटाये। जब तक धूल दीखती रही तब तक राजा का शरीर मानो बढ़ता था; पर जब धूल भी अदृश्य हो गई तब राजा आर्त्त और विषादयुक्त होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उस समय कौशल्या ने राजा को उठाया और दहने कन्धे को आप और बायें को कैकेयी थामकर उन्हें नगर को ले चलीं। तब नीति-निपुण धर्मात्मा और विनयी राजा कैकेयी को देख थरथराकर बोले—हे पापनिश्चये कैकेयी, तू मेरे अंगों को मत छू। मैं तुझे देखना नहीं चाहता। क्योंकि न तो तू मेरी भार्या और न बान्धवी है और जो तेरे भृत्य हैं वे न कोई मेरे और न मैं कोई उनका हूँ। और मैं तुझे, जो तूने केवल स्वार्थ में तत्पर होकर धर्म का त्याग किया है, त्याग देता हूँ और अग्नि को साक्षी देकर जो मैंने तेरा पाणिग्रहण किया है और तेरे साथ अग्नि की प्रदक्षिणा की है, उन सबको इस लोग में और परलोक में भी त्याग कर देता हूँ। यदि भरत इस अक्षय राज्य को पाकर तेरी सम्मति में होगा तो वह पिता के लिए जो दे सो मुझे परलोक में न पहुँचे।

अब शोक से कर्शित कौशल्या उस प्रकार धूलि-धूसर राजा को उठाकर घर को लौटीं और पुत्र की याद करके धर्मात्मा दशरथ बड़े दुखी हुए। जैसे कोई कामना-

पूर्वक ब्राह्मण का घात करके अथवा हाथ से अग्नि को छूकर दुखी होता है वैसे ही राजा भी बड़े दुखी हुए। अब राजा फिर-फिर, घूम-घूमकर रथ के मार्गों की ओर देखते थे। वे ऐसे तेजहीन और हतप्रभ देख पड़ते थे जैसे राहुग्रस्त सूर्य होता है। राजा ने जब समझा कि मेरा पुत्र नगर के बाहर पहुँचा होगा तब अति दुःखार्त्त होकर और पुत्र को याद करके विलाप करना आरम्भ किया।

देखो, मेरे पुत्र की सवारी के मुख्य वाहनों के पद-चिह्न देख पड़ते हैं, परन्तु वह महात्मा नहीं देख पड़ता। मेरा पुत्र श्रेष्ठ चन्दन से भूषित हो तकिया लगाकर सुख से सोता था, उत्तम-उत्तम अलङ्कारों से सजी स्त्रियाँ उसको पङ्खा करती थीं। वही मेरा पुत्र आज किसी वृक्ष के नीचे काष्ठ या पत्थर सिर के नीचे रख-कर सोवेगा! प्रातःकाल भूमि पर से दीन और ऊँची साँस लेता हुआ मतंग की तरह उठेगा। उसकी देह भर में धूल लगी होगी। वहाँ वनचर लोग लोकनाथ राम को वहाँ से उठकर इस प्रकार चलते देखेंगे जैसे कि कोई अनाथ जाता हो। जनक की प्रिय पुत्री सदा सुख भोगने लायक है, वह काँटे गड़ने से पीड़ित हो वन में चलेगी। वनों की व्यवस्था को सीता नहीं जानती। गम्भीर और रोमाञ्च कर देनेवाले व्याघ्र इत्यादि के गर्जन सुनकर वह डरेगी। हे कैकेयी! तू पूर्णमनोरथ हो और विधवा होकर राज्य कर। मैं तो उस पुरुषव्याघ्र के बिना जीने का उत्साह नहीं रखता।

इस प्रकार विलाप करते महाराज जन-समूह के साथ बड़े कष्ट से पुर में आये, मानों किसी के मरने पर स्नान करके आये हों। उस पुरी के चबूतरे और घर शून्य थे, हाट चारों ओर से बन्द थी। पीड़ित, दुर्बल और दुःखार्त्त जनों से वह भरी पड़ी थी। उसके राजमार्ग जनरहित हो गये थे। ऐसी पुरी को देखकर और राम का स्मरण कर राजा विलाप करते, मेघ-मण्डल में सूर्य की तरह (राम, सीता और लक्ष्मण से विहीन) घर में गये। अब राजा विलाप करते हुए दीन वचन बोले कि मुझे शीघ्र कौशल्या के घर पहुँचाओ, क्योंकि अन्यत्र मेरे हृदय का आश्वासन न होगा। राजा की आज्ञा पाकर द्वारपालों ने नम्रतापूर्वक उन्हें कौशल्या के घर पहुँचा दिया। वहाँ राजा पलँग पर बैठे सही परन्तु उनके मन का खेद शान्त न हुआ। दोनों पुत्रों और पुत्रवधू से हीन गृह को चन्द्रहीन आकाश की नाईं देख राजा भुजा उठाकर उच्च स्वर से चिल्ला उठे कि "हा राम! हमें छोड़े जाते हो।" वे लोग सुखी होंगे जो उस समय तक जीते रहकर वन से लौटे हुए राम को देखेंगे और गले से लगावेंगे। अब कालरात्रि के तुल्य रात्रि प्राप्त होने पर अर्द्ध रात्रि के समय राजा ने कहा—हे कौशल्ये! मैं तुझे नहीं देखता, क्योंकि राम के पीछे जो मेरी दृष्टि चली गई है वह अब तक नहीं लौटती, इसलिए तू मुझे हाथ से छू। राजा का यह वचन सुनकर और राम ही के स्मरण में उन्हें तत्पर देख कौशल्या राजा की शय्या के पास जा बैठी। वह अधिक पीड़ित हो और ऊँची साँस लेकर महाविलाप करने लगी।

---

## तेंतालीसवाँ सर्ग

### कौशल्या का विलाप

शय्या पर शोक से पीड़ित राजा को देख कौशल्या पुत्र-शोक से पीड़ित हो बोली—हे राजन्,

रामचन्द्र पर विष डालकर, केंचुली उतरी हुई और टेढ़ी चलनेवाली सर्पिणी की भाँति कैकेयी विहार करेगी। अब रामचन्द्र को निकाल, मनमाना करके एकाग्रचित्त हो दुष्ट सर्पिणी के समान वह मुझे घर में दुःख दिखलावेगी। यदि वह ऐसा वर माँगती कि रामचन्द्र नगर में भिक्षा माँगकर भोजन करते और घर में रहते अथवा उन्हें अपना दास ही बना लेती तो भी मेरा भला ही था। परन्तु उसने तो राम को इस प्रकार दूर कर दिया * जैसे अग्निहोत्री पर्वकाल में राक्षसों का भाग निकालकर फेंक देता है। अब तो गजेन्द्र के तुल्य वीर, महाबाहु धनुर्द्धर रामचन्द्र भार्या और लक्ष्मण के साथ वन में प्रवेश करते हैं। देखो तो, जिन लोगों ने कभी दुःख नहीं देखा उनको तुमने कैकेयी की सम्मति से बाहर निकाल दिया है। भला उनकी क्या अवस्था होगी? अब वे सम्पूर्ण पदार्थों से हीन और सुख भोगने के समय में वनवासी बनाये गये। वे किस प्रकार से फल-मूल भोजन करके वहाँ रहेंगे? अब मैं उस शोकनाशक और मंगलरूप समय की बाट जोहती हूँ कि जब भार्या और भ्राता-सहित राम को फिर देखूँ। यह अयोध्या राम और लक्ष्मण का आना सुनकर यश से पूर्ण और हृष्ट जनों से संयुक्त तथा बड़ी ध्वजाओं की माला से भूषित कब होगी? कब उन दोनों नरश्रेष्ठों को आये हुए सुनकर यह पुरी, पर्वकाल में समुद्र की नाईं, हर्षित होगी और कब वह महाभुज वीर इस अयोध्या में सीता को रथ पर लिये आवेंगे? राजमार्गों में प्रवेश करते हुए मेरे दोनों पुत्रों पर कब सहस्रों जन खीलों (लावों) की वृष्टि करेंगे और कब मैं उन दोनों को, सुन्दर कुण्डल पहिने और (शृंगयुक्त पर्वतों के तुल्य) खड्ग इत्यादि शस्त्र लिये हुए अयोध्या में प्रवेश करते देखूँगी? किस दिन वे पुरी में प्रवेश करते समय कन्याओं के और ब्राह्मणों के दिये हुए फल-फूल ग्रहण करेंगे और नगरी की सैर करेंगे। धर्मात्मा और परिपक्व बुद्धिवाला मेरा तरुण पुत्र—वर्षाकाल की जलधारा की भाँति—कब आकर प्रसन्न करेगा? निःसंशय मैंने पूर्व जन्म में, अधम बुद्धि से, बच्चों के पीने के समय उनकी माताओं के स्तनों को कटा डाला था जिससे कि मैं इस समय वैसे ही बिना वत्स की कर दी गई जैसे कि बछड़े को हरण कर सिंह गाय को विवत्सा कर देता है। हे पुरुषसिंह! कैकेयी ने, छोटे बच्चेवाली गौ की नाईं, मुझे हठ से बिना वत्स की कर दिया। मेरा पुत्र सर्वगुणयुक्त और सर्वशास्त्र-विशारद था। अब मैं उसके बिना जीने का उत्साह नहीं करती और न मुझे जीने में कुछ सामर्थ्य देख पड़ती है। क्योंकि न मैं उस प्रिय पुत्र को देखती हूँ और न उस महाबली लक्ष्मण को। यह पुत्र-शोक-रूप अग्नि मुझे उसी तरह जला रहा है जैसे ग्रीष्म काल में भगवान् सूर्य्य अपनी किरणों से पृथ्वी को जलाते हैं।

---

## चवालीसवाँ सर्ग

### सुमित्रा का कौशल्या को समझाना

स्त्रियों में उत्तम कौशल्या को इस प्रकार विलाप करते देख सुमित्रा धर्म-युक्त वचन बोली—हे देवि! तुम्हारा पुत्र अच्छे गुणों से युक्त और पुरुषों में उत्तम है। उसके लिए तुम क्यों दीन होकर इतना भारी विलाप और रोदन कर रही हो? हे आर्य्ये! तुम्हारे पुत्र राम अपने पिता को सत्यवादी बनाने के

* यज्ञ करनेवाले लोग पर्वकाल में धान इत्यादि अन्न की भूसी राक्षसों के लिए फेंक देते हैं।

लिए राज्य छोड़कर वन को गये हैं। उन्होंने वह काम किया है जो धर्मात्माओं को करना चाहिए। ऐसे ही धर्म से इस लोक और परलोक दोनों लोकों में सुख मिलता है। अतएव राम के लिए कभी शोक करना उचित नहीं और सब प्राणियों में दयावान् लक्ष्मण ने जो राम की सेवा स्वीकार की सो वह भी अति उत्तम किया। इससे महात्मा राम को सुख होगा। और देखो, वैदेही ने वनवास का दुःख जानकर भी रामचन्द्र का साथ दिया। सो उसके लिए भी चिन्ता व्यर्थ है। जगत् में कीर्त्ति-रूपी पताका को फहराता हुआ सत्यरूप व्रत-धारी तेरा पुत्र किस कल्याण को प्राप्त नहीं हुआ? ऐसा करने में उनकी भलाई ही भलाई है। राम की शुद्धि और माहात्म्य जानकर भगवान् सूर्य अपनी किरणों से उनको सन्ताप न देंगे। मंगलरूप वन का वायु हर समय उचित शीतलता और उष्णता से युक्त हो राघव की सेवा करेगा। हे कौशल्ये, जब रात्रि को वे शयन करेंगे तब चन्द्रमा, पिता की भाँति, शीतल किरणों से उनको आनन्दित करेगा। तेरे जिस महापराक्रमी पुत्र ने दानव-श्रेष्ठ तिमिध्वजक* के पुत्र को मारा, और तब ब्रह्मा ने जिसे दिव्य अस्त्र दिये वही तेरा शूर पुत्र अपने बाहुबल के आश्रय से भयरहित होकर वन में, घर की तरह, निवास करेगा। जिसके बाण के लक्ष्य बनकर शत्रु लोग नष्ट हो जाते हैं उसकी आज्ञा में यह पृथ्वी क्यों न रहेगी? राम में जैसी श्री, शूरता और कल्याणरूप बल है उससे प्रकट है कि वह शीघ्र वनवास को समाप्त कर अपना राज्य पावेगा। हे देवि, वन में वा पुर में जो सूर्य का भी सूर्य, अग्नि का अग्नि, प्रभु का प्रभु, श्री की श्री, कीर्त्ति की कीर्त्ति, क्षमा की क्षमा, देवों का देव, और प्राणियों का उत्तम प्राणी है उसमें कौन से गुण नहीं हैं? उस पुरुष-श्रेष्ठ रामचन्द्र का पृथ्वी, सीता और राज्यलक्ष्मी तीनों के साथ राज्याभिषेक होगा। पराजित न होने पर भी जो जटा-वल्कल धारण कर वनवासी हो गया और जिसके पीछे सीता लक्ष्मी सी गई है उसको क्या दुर्लभ है? जिसके आगे-आगे धनुष-बाण और खड्ग आदि लिये लक्ष्मण चलते हैं उसको क्या दुर्लभ है? हे देवि! तू शोक और मोह को छोड़ दे। मैं सत्य कहती हूँ कि वनवास से निवृत्त होकर आये हुए रामचन्द्र को तू फिर देखेगी। हे दोषरहित कल्याणि, तेरे इन चरणों को मस्तक से प्रणाम करते हुए और चन्द्र के तुल्य उदय को प्राप्त अपने पुत्र को तू फिर देखेगी। अयोध्या में आये, अभिषेक को प्राप्त और राज्यलक्ष्मी से युक्त अपने पुत्र को देख तू फिर नेत्रों से आनन्द-जल शीघ्र बहावेगी। हे देवि, तू न शोक कर और न दुःख कर। क्योंकि राम के विषय में कुछ भी अमंगल नहीं देख पड़ता। तू शीघ्र ही सीता और लक्ष्मण के साथ अपने पुत्र को देखेगी। हे देवि, तुझे तो इन सबको समझाकर सुखी करना चाहिए; सो तू क्यों इस घड़ी हृदय में ऐसा खेद कर रही है? हे देवि, तू शोक करने के योग्य नहीं है, तेरे तो रामचन्द्र सा पुत्र है। क्योंकि लोक में राम के सिवा कोई सन्मार्ग पर स्थित नहीं है। राम जब वन से आकर अपने सुहृदों के साथ तुझे प्रणाम करेंगे तब तू उन्हें देख आनन्द से वैसे ही अश्रुपात करेगी जैसे कि मेघ की पंक्ति जल बरसाती है। फिर वह तेरा पुत्र शीघ्र अयोध्या में आकर अपने कोमल स्थूल हाथों से तेरे चरण छूवेगा। उस समय तू अपने पुत्र को मित्रों के साथ

* यह मत वाल्मीकि-रामायण के टीकाकार कतक का है। परन्तु कोई टीकाकार इस प्रकार अर्थ करते हैं कि—"राक्षस के पुत्र सुबाहु के मारे जाने पर, प्रसन्न होकर, ब्रह्मनिष्ठ विश्वामित्र मुनि ने रामचन्द्रजी को अनेक अस्त्र दिये थे।"

प्रणाम करते देख अपने आनन्द के आँसुओं से सींचेगी, जैसे मेघ अपनी बूँदों से पर्वत को सींचते हैं। इस प्रकार सुमित्रा तरह-तरह के वचनों से कौशल्या को समझाकर चुप हो रही। उन वाक्यों से राम की माता शान्त हुई। उसका सब शोक नष्ट हो गया, जैसे शरत्काल में थोड़े जलवाला मेघ शीघ्र हट जाता है।

---

## पैंतालीसवाँ सर्ग

### रामचन्द्र और पुरवासियों में परस्पर लौटाने की बातचीत

जो पुरवासी लोग रामचन्द्र के रथ के पीछे-पीछे प्रेम से चले जाते थे वे लौटे नहीं। यह रामचन्द्रजी के गुणों की महिमा थी। यद्यपि राजा दशरथ को, सुहृद्धर्म के अनुसार, राम के पीछे न जाने दिया गया तथापि नगरवासी न लौटे। अयोध्यावासियों को पूर्ण चन्द्र के तुल्य रामचन्द्र प्रिय लगते थे। वे लोग रामचन्द्र से प्रार्थना करते जाते थे कि अयोध्या को लौट चलिए; परन्तु रामचन्द्र अपने पिता को सत्यवादी करने के लिए वन ही की ओर चले जाते थे। वे लोग राम को ऐसे स्नेह से देखते थे जैसे प्यासे जीव जल की ओर देखते हैं। तब रामचन्द्र स्नेह से प्रजा के लोगों से इस प्रकार बोले जैसे कोई अपने पुत्रों से कहता है—हे प्रजागण, तुम जैसी प्रीति और जैसा आदर मेरे ऊपर करते हो वह प्रीति और आदर, मेरी प्रसन्नता के लिए, अब भरत पर करो; क्योंकि उस कैकेयी के पुत्र के आचरण मंगलरूप अर्थात् हितकारी हैं। वह तुम्हारा यथोचित प्रिय और हित करेगा। देखो, भरत यद्यपि बालक है, बड़ा ज्ञानी और पराक्रमी है तथापि उसका स्वभाव कोमल है। वही तुम्हारा भय दूर करेगा और वही योग्य स्वामी होगा; क्योंकि वह राजगुणों से युक्त है। इस बात में वह मुझसे भी श्रेष्ठ है। राजा ने उसको युवराज ठहराया है। हम सबको राजा की आज्ञा का पालन करना चाहिए। हे पुरवासियो, मेरी प्रिय कामना से तुम लोगों को ऐसा करना चाहिए जिसमें मेरे वनवास के शोक से राजा को पीड़ा न हो।

उस समय रामचन्द्र ज्यों ज्यों धर्म में तत्पर होते थे त्यों-त्यों पुरवासी राम ही को अपना स्वामी करना चाहते थे। अब उस समय प्रजा के लोगों की आँखों में आँसू भरे थे। वे दीन-मुख होकर राम के गुणरूप डोरियों से बँधे मानों खिंचते चले जाते थे। उनमें कोई तो ज्ञानवृद्ध, कोई वयोवृद्ध और कोई तपोवृद्ध* थे। जो वयोवृद्ध थे और बुढ़ापे से जिनका मस्तक काँप रहा था वे दूर से ही बोले—अच्छी नसल के हे फुर्तीले घोड़ों, लौट आओ; अब आगे मत जाओ। तुम स्वामी के हित का काम करो। जितने प्राणी हैं उन सबके कान हैं, पर घोड़ों में सबसे अधिक सुनने की शक्ति रहती है, सो तुम हमारी प्रार्थना सुनो और लौट आओ। देखो तुम्हारे स्वामी धर्मशील, विशुद्धात्मा, वीर और सुन्दर दृढ़व्रतधारी हैं; इसलिए इनको बस्ती में ले चलना चाहिए न कि बस्ती से वन में भेजना चाहिए। दीन होकर गिड़गिड़ाते हुए उन वृद्ध ब्राह्मणों का इस प्रकार आर्त शब्द सुनकर और उन्हें पीड़ित देख रामचन्द्र झट उतर पड़े। सीता और लक्ष्मण सहित वे पैदल चलने लगे, और जब तक वे लोग पास नहीं आ गये तब तक बहुत धीरे-धीरे चले क्योंकि

* वयोवृद्ध = उम्र में बड़े। ज्ञानवृद्ध = ज्ञान में बड़े। तपोवृद्ध = तप करने में बड़े।

सदाचारी और दयावान् रामचन्द्र उन पैदल चलनेवाले ब्राह्मणों को, रथ को तेजी से दौड़ाकर, दूर नहीं करना चाहते थे। अब ब्राह्मणों ने देखा कि रामचन्द्र किसी प्रकार से लौटना नहीं चाहते और चले ही जाते हैं, तब वे अत्यन्त व्याकुल और परम सन्तप्त होकर बोले—हे ब्राह्मणों के हितैषी रामचन्द्र, तुम्हारे पीछे-पीछे ये ब्राह्मणों के झुण्ड ही नहीं आते हैं वरन् इनके कन्धों पर चढ़े हुए ये अग्नि भी तुम्हारे पीछे-पीछे चल रहे हैं। देखो, तुम्हारे पीछे-पीछे ये वाजपेय-यज्ञ-लब्ध छत्र आ रहे हैं जो शरत्काल के मेघ की भाँति सफेद हैं। इन छत्रों से हम तुम्हारे ऊपर छाया करेंगे, जिसमें छत्र न होने के कारण तुमको सूर्य की किरणों से ताप न हो। हे वत्स! जो हमारी बुद्धि निरन्तर वेद-मन्त्रों का विचार किया करती थी उसे हमने तुम्हारे वनवास की चिन्ता में लगा रक्खा है। हमारे परम धनरूप वेद तो हमारे हृदय ही में है और हमारी पत्नियाँ अपने-अपने पातिव्रत धर्म से रक्षित हो अपने घरों में रहेंगी। अब हम लोगों को फिर किसी बात का निश्चय करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हमने तो तुम्हारे साथ चलने ही पर बुद्धि दृढ़ कर रक्खी है। परन्तु जब तुम्हीं धर्म को छोड़ दोगे अर्थात् ब्राह्मणों के वचन का उल्लङ्घन करोगे, तब धर्ममार्ग पर स्थिति क्या कहलावेगी अर्थात् सब लोग धर्म का उल्लङ्घन कर देंगे। इसलिए हे दृढ़धर्म, हम लोग हंस की भाँति सफेद केशों से युक्त अपने मस्तकों को पृथ्वी में टेककर प्रार्थना करते हैं कि तुम लौट चलो। प्रारम्भ किये हुए यज्ञों को अधूरे छोड़कर यहाँ बहुत से ब्राह्मण तुम्हारे साथ चले आये हैं। सो हे वत्स, उन यज्ञों की समाप्ति तुम्हारे लौटने के अधीन है। जो लौट चलो तो समझो कि उन यज्ञों को तुम्हीं ने पूर्ण किया। न केवल हमीं लोग तुम्हें लौटाना चाहते हैं किन्तु ये पशु, पक्षी और वृक्ष इत्यादि भी भक्ति-पूर्वक तुम्हारी प्रार्थना कर रहे हैं। सो भला इन भक्तों पर तो कृपा करो। देखो, इन ऊँचे-ऊँचे वृक्षों की जड़ें भूमि में गड़ी हैं, इसी से वेगहीन हो ये तुम्हारे पीछे-पीछे चलने में असमर्थ हैं; पर वायु के वेग से प्रचलित होकर ये तुम्हारे लौटने के लिए चिल्ला रहे हैं। देखो, इन पक्षियों ने भी चलना-फिरना त्याग दिया और खाना-पीना भी छोड़ दिया है। ये अपने स्थान—वृक्ष—पर बैठे हुए तुमको सब प्राणियों पर दया करनेवाले समझ कर प्रार्थना कर रहे हैं।

इस प्रकार राम को लौटाने के लिए ब्राह्मण चिल्लाते जाते थे कि तमसा नदी दिखाई देने लगी। ऐसा मालूम होता था मानों अपने टेढ़े प्रभाव के द्वारा वह राघव को आगे जाने के लिए मना कर रही थी। इसके अनन्तर सुमन्त्र ने थके हुए घोड़ों को रथ से खोल दिया। जब वे लोट चुके तो नहलाये गये और फिर उन्हें दाना-चारा दिया गया।

---

## छियालीसवाँ सर्ग

### तमसा नदी पर रामचन्द्र का रात्रि में निवास और प्रातःकाल पुरवासियों को छोड़कर वन की ओर यात्रा करना

इसके अनन्तर राघव उस रमणीय तमसा के तीर पर पहुँचकर सीता की ओर देख लक्ष्मण से बोले—भैया, हम लोगों के वनवास की यह पहली रात्रि है। हमें घबराना नहीं चाहिए। देखो, निर्जन वन में पशु-पक्षी अपने-अपने स्थानों पर शब्द कर रहे हैं। हमें

देखकर ये वन मानो इस तरह रो रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि पिताजी की राजधानी अयोध्या नगरी आज पुरुष और स्त्रियोंसहित हमारे लिए शोक करेगी। क्योंकि सब मनुष्य अनेक गुणों के द्वारा अनुराग-युक्त हैं, इसलिए वे राजा के लिए और हमारे, तुम्हारे और शत्रुघ्न तथा भरत के लिए अवश्य शोक करेंगे। मुझे माता-पिता का बहुत सोच है। ये दोनों हमारे लिए विलाप करते-करते कहीं अन्धे न हो जायँ। परन्तु भरत धर्मात्मा हैं, इसलिए धर्म्म, अर्थ और काम-युक्त वाक्यों से वे पिता-माता को ढाढ़स बँधावेंगे। हे महाभुज लक्ष्मण, भरत के कोमल शील का स्मरण करके पिता-माता के विषय में मुझे शोक नहीं है। हे नरश्रेष्ठ तुमने बड़ा काम किया जो हमारे साथ यहाँ चले आये; नहीं तो वैदेही की रक्षा के लिए मुझे कोई न कोई सहायक खोजना ही पड़ता। हे सौमित्रे, यद्यपि वन में नाना प्रकार के फल-मूल हैं तथापि आज की रात्रि में जल ही पीकर यहाँ रहना चाहिए। यही हमको भाता है। फिर रामचन्द्र ने सुमन्त्र से कहा कि हे सौम्य, तुम घोड़ों को खबरदारी से रक्खो। तब सुमन्त्र सूर्य्यास्त होने पर घोड़ों को बाँधकर और उनके सामने बहुत-सी घास रखकर उनकी रक्षा में तत्पर हुआ। अब सन्ध्योपासन कर रात्रि हुई देख सुमन्त्र ने, लक्ष्मण के साथ, राम के शयन करने के लिए स्थान बना दिया। तब रामचन्द्र ने तमसा के तीर पर वृक्षों के पत्तों से निर्मित शयन-स्थान को देख, लक्ष्मण और भार्या के साथ उस पर विश्राम किया। बड़े भाई और सीता को शयन करते देख लक्ष्मण उनके गुणों की प्रशंसा सूत से करने लगे। इस प्रकार राम का गुणानुवाद करते उन दोनों को रात्रि बीत गई। वहीं तमसा के तीर पर, जहाँ गायों का झुण्ड था वहाँ, रामचन्द्र के साथ आई हुई प्रजा ने भी उस रात्रि में डेरा डाला था। अब रामचन्द्र प्रातःकाल उठे और उस प्रजा-पुञ्ज की ओर देख लक्ष्मण से बोले—देखो, ये प्रजा के लोग अपना घर-द्वार छोड़े कैसे हमारे पीछे आ रहे हैं और इस घड़ी कैसे वृक्षों के नीचे सो रहे हैं। हम जानते हैं कि ये पुरवासी लोग हमारे लौटाने के लिए महाप्रयत्न कर रहे हैं सो ये अपने प्राणों का नाश भले कर डालेंगे परन्तु अपना निश्चय न छोड़ेंगे। इसलिए जब तक ये सोते हैं उससे पहले ही हम लोग रथ पर चढ़ शीघ्रता से निकल चलें, जिसमें ये पुरवासी इस प्रकार—हमारे साथ-साथ—वृक्षों की जड़ों पर न सोवें। राजपुत्रों को उचित है कि पुरवासियों को दुःख से छुड़ा दें न कि उनको भी अपने दुःख का साथी बना लें। रामचन्द्र की यह बात सुन लक्ष्मण बोले कि हे प्राज्ञ, हमको भी यही ठीक जँचता है, सो शीघ्र रथ पर चढ़िए। तब रामचन्द्र ने सूत से कहा कि तुरन्त रथ जोतो, मैं यहाँ से शीघ्र वन को चलूँगा। सूत ने चटपट रथ में घोड़े जोत दिये। फिर हाथ जोड़कर राम से निवेदन किया कि हे महाबाहो, आपका रथ तैयार है। सीता और लक्ष्मण के साथ आप इस पर शीघ्र चढ़िए। तब लक्ष्मण और सीता के साथ रामचन्द्र रथ पर चढ़े और उस भँवरोंवाली नदी को पार कर कण्टक और भयरहित सुन्दर राजमार्ग में जा पहुँचे। अब रामचन्द्र पुरवासियों को बहकाने के लिए सूत से बोले कि हे सारथे! क्षण भर तू उत्तरमुख शीघ्र रथ को चलाकर फिर लौटा ले जिसमें ये नगर-वासी यह न जानें कि राम किधर गये हैं। राम की आज्ञा से सारथि ने वैसा ही किया और फिर तपोवन के मार्ग में रथ हाँका। इस प्रकार मंगल-सूचक निमित्त के दर्शन के लिए सूत पहले उत्तर ओर और फिर दक्षिण की ओर रथ ले चला।

## सैंतालीसवाँ सर्ग

### पुरवासियों का रामचन्द्र के लिए विलाप और अयोध्या को लौट आना

अब प्रातःकाल वे पुरवासी, राम को न देख शोक के मारे चेष्टा-रहित और अचेत हो गये। शोक के आँसुओं से भीगे हुए वे लोग इधर-उधर देखते थे। राम के गमनमार्ग के कुछ भी चिह्न न पाकर वे बड़े दुःखित हुए। राघव के बिना विषादयुक्त, आर्त्तमुख और दीन होकर वे करुणायुक्त वचन बोले कि धिक्कार है हमारी उस निद्रा को जिससे हम अचेत हो इस घड़ी विशाल वक्षःस्थलवाले महाभुज राम को नहीं देखते। रामचन्द्र कैसे सफल काम करनेवाले हैं कि हम भक्तों को छोड़ वनवास को चले गये। जो अपने पुत्रों की नाईं सदा हमको पालते थे वह रघुश्रेष्ठ क्यों हमको छोड़ वन को गये? अब तो हम यहीं प्राण त्यागेंगे अथवा महाप्रस्थान (मरण) की इच्छा से उत्तराभिमुख गमन करेंगे; क्योंकि राम के बिना हमको अपना जीवन कैसे हितकारी होगा? यहाँ पर सूखे-सूखे और बड़े-बड़े बहुत काष्ठ पड़े हैं, लाओ इनसे चिता बनावें और उसमें आग लगाकर हम भस्म हो जायँ; क्योंकि हम घर चलकर क्या कहेंगे? हम लोग किस प्रकार कह सकेंगे कि महाबाहु, ईर्ष्या-रहित और प्रियवादी राम को वन में पहुँचा आये। यह बात कहने के योग्य नहीं। हम लोगों को रामचन्द्र के बिना ही लौटे देख उस दीन नगरी के स्त्री, बालक, युवा और वृद्ध आनन्दरहित हो जायँगे। हम लोग घर से तो महात्मा वीर राम के संग नित्य-गमन के लिए निकले थे; अब उससे रहित हो किस प्रकार उस पुरी को फिर देखेंगे? इस प्रकार वे लोग अपनी बाँह उठाकर, दुःख से पीड़ित हो, अनेक प्रकार के वचनों से विलाप करने लगे। वे ऐसे पीड़ित हुए जैसे वत्सरहित धेनु पीड़ित होती है। फिर वे मार्ग के अनुसार कुछ दूर गये और आगे मार्ग का पता न पा महाविषादयुक्त हो रथ के मार्ग के अनुसार पीछे लौटकर कहने लगे कि यह क्या चमत्कार है। आगे तो रथ का मार्ग नहीं दीख पड़ता। अब हम क्या करें? हा! दैव ने हमें मार डाला। इसके अनन्तर वे अति पीड़ित-चित्त हो, जिस मार्ग से आये थे उसी मार्ग से फिर अयोध्या को लौट आये। वहाँ नगरी को देख, क्षीण और व्याकुल-चित्त होकर, शोक-पीड़ित नेत्रों से आँसू बहाने लगे। वे बोले कि देखो, राम से रहित यह नगरी कुछ भी शोभा नहीं पाती। जिस नदी के महाभुजंग को गरुड़ ने हरण कर लिया है उसके तुल्य यह नगरी हीन हो रही है। फिर वे, चन्द्रहीन आकाश और जलहीन समुद्र की तरह, आनन्द-हीन नगर को देख अपने अति उत्तम घरों में बड़े दुःख से गये। अब उस समय उनका हर्ष नष्ट हो रहा था। वे ऐसे अचेत थे कि न अपने घर के लोगों को पहचान सकते थे और न पराये लोगों को।

---

## अड़तालीसवाँ सर्ग

### पुरवासियों की स्त्रियों का विलाप

वे पुरवासी विषादयुक्त और अतिपीड़ित थे। उनके नेत्रों में आँसू भरे हुए थे। मृत्यु की इच्छा करते हुए वे मृतकतुल्य हो गये थे। अपने-अपने घर आकर पुत्रों और स्त्रियों के साथ वे आँसू गिराने लगे। उस समय पुरवासियों में कोई हृष्ट और आनन्दित न देख पड़ता था। बनियों ने अपनी-अपनी दुकानें बन्द कर दीं, और पंसारियों ने खरीदना-बेचना छोड़

दिया, इसलिए हाट की शोभा जाती रही। गृहस्थों के यहाँ रसोई नहीं बनी। न कोई अपने नष्ट धन के लाभ से प्रसन्न होता था और न विपुल धन की प्राप्ति से। पहले पुत्र को पाकर माता भी आनन्दित न होती थी। घर-घर यह दशा थी कि स्त्रियाँ घर में आये हुए अपने पति को, दुःख से आर्त्त हो, वचन-बाणों से धिक्कारती थीं जैसे हाथियों को हाथीवान अंकुश से बींधता है। वे स्त्रियाँ अपने-अपने पति से कहती थीं कि जब राम के दर्शन दुर्लभ हैं तब तुम लोगों को गृह, दारा, धन, पुत्र अथवा सुख से क्या प्रयोजन है। इस लोक में एक लक्ष्मण ही सत्पुरुष हैं जो सीता के संग राम की सेवा करते वन को चले गये। उन पद्मयुक्त नदियों ने और सरोवरों ने बड़ा पुण्य किया है जिनके पवित्र जल में राम स्नान करेंगे। रमणीय वन, सुन्दर घाटवाली नदियाँ और सुन्दर शृंगयुक्त पर्वत राम को शोभित करेंगे। वन अथवा पर्वत जहाँ कहीं राम जायँगे, प्रिय अतिथि के समान इनका सत्कार किये बिना न रहेंगे। जिन वृक्षों के मस्तक पुष्पों से भूषित हैं, जो बहुत सी मञ्जरियों को धारण किये हैं और जिन पर भ्रमर गूँज रहे हैं वे भी राम को अपना स्वरूप दिखलावेंगे। वहाँ के पर्वत राम की प्रीति के लिए, असमय में भी उत्तम-उत्तम पुष्प और फल देंगे और निर्मल जल बहावेंगे। राम के लिए वे अनेक विचित्र झरने प्रकट कर देंगे। पर्वत के अग्रभागों में वहाँ के वृक्ष, रामचन्द्र को विहार करावेंगे। जहाँ राम हैं वहाँ न भय है न पराजय। रामचन्द्र अब भी बहुत दूर न निकल गये होंगे इसलिए चलो चलें, क्योंकि वैसे महात्मा के पैरों की छाया हमको सुख देगी। वही हमारे स्वामी, गति और आधार रूप हैं। हम सब सीता की और तुम लोग राम की सेवा करना।

इस प्रकार पुरवासियों की स्त्रियाँ दुःख से पीड़ित हो अपने-अपने पतियों से कहकर फिर बोलीं—देखो, राघव तुम्हारा योगक्षेम करेंगे और श्री सीताजी हमारी अभाव-पूर्ति करेंगी। ऐसा कौन जन होगा जो इस भयानक नगर में निवास करेगा? यदि यह राज्य धर्ममार्ग से विरुद्ध होकर, अनाथ की तरह, कैकेयी के अधीन होगा तो हमको जीवन से, पुत्रों से अथवा धन से क्या प्रयोजन है? अहो! कुलनाशिनी कैकेयी ने ऐश्वर्य्य के हेतु पुत्र और पति को छोड़ दिया। भला यह दूसरे का त्याग क्यों न कर देगी? हम अपने पुत्रों की शपथ करके कहती हैं कि जीते जी हम इस राज्य में, कैकेयी की दासी बन के, तो न रहेंगी। उसने निर्दय होकर राजेन्द्र दशरथ के पुत्र को वनवास दिया है। उस दुष्टाचारिणी के वश में रहकर कौन जीता बचेगा? यह समूचा राज उपद्रवयुक्त, निराधार और स्वामिहीन होकर केवल कैकेयी के हेतु नष्ट हो जायगा; क्योंकि राम के चले जाने से राजा न बचेंगे और जब राजा का शरीर छूटा तब अवश्य ही सब लोप हो जायगा। इसलिए अब हम लोग त्यागपूर्ण और अतिदुःखित हैं, सो लाओ विष घोलकर पी लें, अथवा राम के पीछे चलें। या ऐसे स्थान में चलें कि जहाँ कैकेयी का नाम भी किसी को न सुनाई दे। देखो, भार्या और लक्ष्मण के साथ राम व्यर्थ ही वन भेजे गये और हम लोग भरत के हाथ ऐसे सौंप दिये गये, जैसे घातक को पशु दे दिये जाते हैं। देखो तो रामचन्द्र आजानुबाहु, कमलनयन, मिलते ही पहले बोलनेवाले, कोमल सत्यवादी, महाबली, सीधे और चन्द्रमा के तुल्य प्रियदर्शन, पुरुषश्रेष्ठ, मत्तगजेन्द्रगामी, और महारथ हैं। वे जिन जंगलों में विहार करेंगे उन्हें शोभित कर देंगे।

इस प्रकार नगर की स्त्रियाँ विलाप करती हुई

बड़े स्वर से ऐसे चिल्लाने लगीं जैसे कोई मृत्यु के भय से चिल्ला-चिल्लाकर रोता है। उनके रोते-रोते दिन छिप गया और रात आ पहुँची। उस समय होम, ब्राह्मणों का अध्ययन और पवित्र कथा शान्त हो गई। वह नगरी अन्धकार से आच्छादित सी देख पड़ी। बनियों की दूकानें बन्द हो गईं। हर्षरहित और आधारहीन की तरह अयोध्या ऐसी शोभा-हीन हो गई जैसे तारा-रहित आकाश हो जाता है। जैसे कोई पुत्र या भ्राता के लिए—देशनिकाला होने पर—विलाप करे उसी प्रकार राम के लिए बहुत विलाप कर वे स्त्रियाँ अचेत हो रोने लगीं। क्योंकि राम उन्हें पुत्र से भी अधिक प्रिय लगते थे। उस समय उस नगरी में न कहीं गीत, न उत्सव, न नृत्य और न वाद्य का शब्द सुन पड़ता था। सर्वत्र हर्ष-रहित हो, अपनी-अपनी हाटों को बन्द कर, बनिये चुपचाप बैठे थे। उस नगरी में ऐसी हलचल मच गई जैसे समुद्र जल से क्षोभित होकर खलबला उठा हो।

---

## उनचासवाँ सर्ग

### वनयात्रा का वर्णन

अब उधर रामचन्द्र चलते-चलते बहुत दूर निकल गये। जब प्रातः-सन्ध्या का समय हुआ तब वे सन्ध्योपासन कर अपने कोशलदेश की सीमा के अन्त में जा पहुँचे। वहाँ के सुन्दर-सुन्दर जोते हुए खेतों को और पुष्पित वनों को देखते और उन ग्रामों के मनुष्यों की बातें सुनते हुए रामचन्द्र रथ पर बैठे चले जाते थे। वहाँ के मनुष्य कहते थे कि देखो, इस क्रूर कैकेयी को धिक्कार है जिसने ऐसा निन्दित कर्म्म किया। राजा दशरथ काम के वश में हैं, उन्हें धिक्कार है। हा! पापिनी कैकेयी ने पाप के हेतु कैसी क्रूरता की, कैसी मर्यादा तोड़ डाली और कैसा कठोर कर्म किया कि ऐसे धार्मिक राजपुत्र को वनवास दे डाला। क्या ऐसे महापण्डित, दयाशील और जितेन्द्रिय को वनवास देना उचित है? और देखो, जनक-नन्दिनी महाभागा सीता सर्वदा सुख से घर में निवास करती थी यह किस प्रकार दुःख का अनुभव करेगी? अहो! राजा दशरथ का पुत्र पर स्नेह नहीं है; नहीं तो ऐसे दोषरहित पुत्र को क्यों त्यागते।

इस प्रकार ग्रामीणों के अनेक वचन सुनते हुए रामचन्द्र कोशल देशों को पारकर आगे चले। फिर वेदश्रुति नाम महानदी के उस पार दक्षिण दिशा में चले और बहुत देर तक मार्ग चलकर गोमती नदी के पार उतरे। उस नदी का जल बड़ा शीतल था। उसके किनारे-किनारे बहुत सी गायें चर रही थीं। इसके अनन्तर स्यन्दिका नाम नदी देख पड़ी। उसके तीर पर मयूर और हंस शब्द कर रहे थे। रामचन्द्र उसके भी पार गये। जो भूमि पहले राजा मनु ने इक्ष्वाकु को दी थी और जो बहुत बढ़ी हुई थी और नाना राष्ट्रों से घिरी हुई थी राम उसे सीता को दिखलाने लगे और सूत से बोले कि हे सारथे, वे दिन कब आवेंगे जब मैं लौटकर फिर माता-पिता से मिलूँगा और सरयू के पुष्पित-वनों में मृगया के लिए पर्य्यटन करूँगा? परन्तु मैं इस हिंसा-कर्म की इच्छा नहीं करता, यद्यपि राजा लोग अपनी प्रीति के लिए यह काम करते हैं। मैं जीवों को नहीं मारना चाहता।

---

# पचासवाँ सर्ग

## रामचन्द्र का शृङ्गवेरपुर में पहुँचना और गुह से मिलना

अब रामचन्द्र कोशल देशों से निकलकर अयोध्या की ओर देख हाथ जोड़कर बोले—ककुत्स्थ-वंशी राजाओं से पालित हे अयोध्यापुरी, तुझसे और जो देवता तुझमें वास करते हैं और तेरा पालन करते हैं उनसे भी मैं विदा होता हूँ। वनवास से निवृत्त हो और राजा के ऋण से मुक्त होकर मैं लौटकर तुझे देखूँगा और माता-पिता से मिलूँगा। फिर रामचन्द्र ने दक्षिण भुजा उठाई। नेत्रों में आँसू भरकर और दीन होकर उन्होंने उन देशवासी लोगों को समझाया जो उनको घेरे हुए रथ के साथ चले जाते थे;—आप लोगों ने मेरे ऊपर यथोचित दयाभाव किया। अब बहुत समय तक मेरे साथ रहने से आपको अत्यन्त दुःख होगा, इसलिए आप लोग अपने-अपने घर को जाइए और अपना कार्य कीजिए। तब विलाप करते हुए वे लोग राम को प्रणाम कर अपने घर को लौटे, तब तो रामचन्द्र ने रथ को दौड़वा दिया। उनकी दृष्टि से वे ऐसे दूर हो गये जैसे सायङ्काल में सूर्य छिप जाते हैं।

रामचन्द्र कोशल देश की सीमा को लाँघ गये। जाते-जाते उन्होंने देखा कि वह देश धन-धान्य से परिपूर्ण है। आबादी अच्छी है। वहाँ दाता बहुत रहते हैं। स्थान-स्थान पर चैत्य (देवताधिष्ठानवृक्ष) और यूप शोभित हैं। वहाँ बाग और आमों के बगीचे बहुत हैं। निर्मल पानी से भरे हुए विपुल जलाशय हैं। वहाँ के अधिवासी हृष्ट-पुष्ट हैं। स्थान-स्थान पर गो-कुल की अपूर्व शोभा है। ये स्थान राजाओं के लिए भी दर्शनीय हैं। सर्वत्र वेदध्वनि होती है। रथ में बैठे रामचन्द्र ऐसे कोशल देश को धीरे-धीरे देखते चले जाते थे। बीच में और नरेशों का राज्य मिला। अब आगे जाकर गङ्गा नदी को देखा। वह तीन मार्गों से बहती, दिव्य शीतल जल से संयुक्त और ऋषियों से सेवित है। पास-पास बने हुए ऋषियों के शोभायुक्त आश्रमों से गङ्गा शोभित है। वहाँ अप्सराएँ स्नान करने के लिए आती हैं। देव, दानव, गन्धर्व, किन्नर, नागपत्नियाँ और गन्धर्व-पत्नियाँ उसका सदा सेवन करती हैं। इसने देवताओं के लिए आकाश-मार्ग से गमन किया है और वहाँ देवपद्मिनी अर्थात् सुवर्ण-कमलवाली नाम से विख्यात है। वहाँ इसके किनारे देवताओं के क्रीड़ा करने के लिए सैकड़ों स्थान और वाटिकाएँ हैं। जल की टक्करों से कहीं यह अट्टहासयुक्त और उग्र है और कहीं निर्मल हास्यरूप फेन से भूषित है। कहीं वेणी के ऐसे जलप्रवाह से शोभित है और कहीं तरङ्गों के घूमने से भँवरयुक्त है। कहीं स्थिर और गम्भीर जलविशिष्ट है और कहीं जल के गम्भीर शब्द से और कहीं भयंकर शब्द से नादित है। कहीं देवता स्नान करते हैं। कहीं श्वेत कमल खिल रहे हैं। गङ्गा कहीं ऊँचे-ऊँचे करारों से और कहीं निर्मल बालुका से सुशोभित है और वहाँ हंस और सारस बोल रहे हैं और चक्रवाक विहार कर रहे हैं। सर्वदा मत्त पक्षियों के शब्दों से नादित और कहीं तीर के वृक्षों से माला की नाईं शोभित हो रही है। कहीं फूली-फूली कोइयों से आच्छादित और कहीं कमल-वनों से भरी है। कहीं कोई की कलियों से शोभित और कहीं नाना पुष्पों के रज से विराजित और निर्मल नीरयुक्त है। इसका जल निर्मल मणि के सदृश मनोहर

हो, यदि दशरथ जीते रहें और हम लोग वनवास से लौटकर फिर उनको देखें, और सत्यप्रतिज्ञ राम के साथ हम लोग कुशलपूर्वक वनवास से निवृत्त होकर फिर अयोध्या में पहुँचें।

इस प्रकार विलाप करते हुए दुःखार्त्त लक्ष्मण को खड़े-खड़े वह रात्रि बीत गई। लक्ष्मणजी की इन सत्य बातों को सुनकर गुह अत्यन्त पीड़ित हो रोने लगा।

---

## ५२वाँ सर्ग

### रामचन्द्रजी का सुमन्त्र को बिदा करना और गङ्गा पार उतरना

अब प्रातःकाल राघव ने लक्ष्मणजी से कहा—हे तात, यह सूर्योदयकाल हुआ। रात बीत गई। देखो, ये सुन्दर कोयल पक्षी कूक रहे हैं। इधर वन में मयूरों का नाद भी सुन पड़ता है। हे सौम्य, अब गङ्गापार उतरना चाहिए।

राम के सामने खड़े हुए लक्ष्मणजी ने गुह से कहा और गुह ने अपने मन्त्रियों को बुलाकर कहा कि अच्छे डाँड़वाली, कर्णधार संयुक्त, सुख से पार उतारने लायक दृढ़ नाव को घाट पर शीघ्र ले आओ। गुह की आज्ञा से उसके मन्त्री ने शीघ्र ही नाव लाकर गुह से निवेदन किया। तब वह हाथ जोड़कर राम से बोला कि हे देव, नाव तैयार है, और क्या आज्ञा है। इस नौका पर चढ़कर आप शीघ्र पार हो जाइए।

तब रामचन्द्रजी गुह से बोले कि आपने हमारा सब काम किया। अब हमारा सामान तुरन्त इस पर चढ़ा दो। फिर दोनों भाई कवच धारण कर, तरकस और तलवार को बाँधे, किनारे की ओर चले। तब राम के पास आकर सूत नम्र हो, हाथ जोड़, बोला—भगवन्, अब मुझे क्या आज्ञा है? रामचन्द्रजी ने दहिने हाथ से सुमन्त्र को छूकर कहा—हे सुमन्त्र, अब तुम राजा के पास जाओ और बहुत सावधानी से रहो। अब लौट जाओ। हमारा इतना ही काम था सो तुमने किया। अब हम रथ छोड़कर पैदल ही वन में जायँगे। राम से लौटने की आज्ञा पाकर वह सारथि अपने को भी रामचन्द्र से छूटा जान दुखी हो बोला—प्रभो, जिस दैव ने भ्राता और भार्या के साथ तुमको नीच जन की तरह वनवास दिया है उसका उल्लंघन किसी ने नहीं किया। तुम्हें ऐसा क्लेश भोगना पड़ा इससे मैं न तो ब्रह्मचर्य में और न स्वाध्याय, कोमलता और सुशीलता में कुछ भी फल मानता हूँ! हे राघव! आप भाई और सीता के साथ वन में वास कर बड़ाई पावेंगे जैसा कि तीनों लोकों के जीतने से कोई पाता है। हे राम, आपसे अलग होते ही अब हम मरे। अब हम उस पापकारिणी कैकेयी के वश में प्राप्त हो दुःख के भागी होंगे।

यह कहता हुआ सुमन्त्र राम को दूर जाने के लिए तैयार देख, दुःखार्त्त हो, बहुत काल तक विलाप करता रहा। फिर उसने जल से आचमन किया। तब रामचन्द्र ने बार-बार कहा कि हे सुमन्त्र, इक्ष्वाकु-वंश का तुम्हारे तुल्य मित्र मैं नहीं देखता; सो तुम अब ऐसा करना जिसमें राजा मेरे लिए शोक न करें। क्योंकि एक तो राजा शोक से व्याकुल हैं, दूसरे वृद्ध हैं, और तीसरे काम-भार से पीड़ित हैं; इसलिए मैं यह बात कहता हूँ। कैकेयी की प्रीति के लिए वह महात्मा महीपति जो-जो जिस प्रकार से आज्ञा करें उसको अवश्य करना। राजा लोग राज्य का शासन इसी लिए करते हैं जिसमें कि वे सब कार्य बे-रोक-

केवट से रामचन्द्र की बातचीत । [ पृष्ठ १५८

टोक कर सकें। इसलिए ऐसा करना जिसमें राजा किसी बात से अप्रसन्न न हों और न शोक से ग्लानि को प्राप्त हों। महाराज ने कभी दुःख नहीं देखा है, उन्हें प्रणाम कर तुम मेरी ओर से कहना—राम, लक्ष्मण और सीता ने यह बात कही है कि हम अयोध्या से दूर हो गये; हमें वन में रहना पड़ा; इसका हमको कुछ भी शोक नहीं है। हम चौदह वर्ष बिताकर शीघ्र आवेंगे और आप हमको देखेंगे। इस प्रकार तुम राजा से, मेरी माता से, और और देवियों से तथा कैकेयी से भी बार-बार कह देना। कौशल्या से मेरा, सीता का और लक्ष्मण का आरोग्य और चरणवन्दना कहना। महाराज से कहना कि शीघ्र भरत को बुलवाकर यौवराज्याभिषेक कर दीजिए। तब आपको राम, लक्ष्मण और सीता के वनवास का दुःख न खटकेगा। भरत से कहना कि तुम जैसे राजा को मानते हो वैसे ही सब माताओं से व्यवहार करो और सब पर एक सी दृष्टि रक्खो। जिस प्रकार तुम्हारी माता कैकेयी है वैसी ही सुमित्रा और मेरी माता कौशल्या को मानो। पिता की प्रीति को निबाहते और यौवराज्य के अधिकार का यथोचित पालन करते रहो। इससे तुम दोनों लोकों में सुख पाओगे।

इस प्रकार सुमन्त्र को समझा-बुझाकर जब रामचन्द्र बिदा करने लगे तब फिर सुमन्त्र स्नेहपूर्वक बोला—हे रामचन्द्र, स्नेह से विवश होकर मैं जो बातें शिष्टता का विचार छोड़कर कहता हूँ उनके लिए मुझे, भक्त समझकर, क्षमा कीजिए। हे तात, आपके वियोग से जो पुरी पुत्रशोकाकुल के समान हो रही है उसमें, आपके बिना मैं कैसे जाऊँगा? प्रभो, उस समय जिन लोगों ने आपको इस रथ में बैठा देखा है वे आपके बिना इस रथ को देख किस दशा को प्राप्त होंगे और क्या वह पुरी फट न जायगी! प्रभो, इस खाली रथ को देख वह नगरी ऐसी हो जायगी जैसे रथीहीन और केवल सारथीयुक्त रथ को देखकर सेना पीड़ित होती है। यद्यपि आप इतनी दूर हैं तथापि जिनके मन से मानो आगे ही खड़े हो, वे प्रजा के लोग आपके बिना मुझे लौटा देख अवश्य भोजन करना छोड़ देंगे अर्थात् अनशन व्रत कर मर जायेंगे। आपने चलते समय प्रजा की दशा देखी ही थी कि वह आपके शोक में किस प्रकार जोर से रोती-चिल्लाती थी। वे लोग उस समय खाली रथ देखकर क्या उससे सौ-गुना रोदन और दुःख न करेंगे? मैं यदि तुम्हारी माता से कहूँ कि मैंने तुम्हारे पुत्र को मामा के घर पहुँचा दिया, तुम सन्ताप मत करो, तो मैं मिथ्या भी नहीं कह सकता; और सत्य कहूँ कि वन में भेज आया तो ऐसी अप्रिय बात किस प्रकार से कह सकूँगा? ये घोड़े आपके स्वजनों को वहन करते हैं, आपके बिना इस रथ को ये किस प्रकार ले चलेंगे? हे दोषरहित, मैं आपके बिना अयोध्या में न जा सकूँगा; इसलिए मुझे भी अपने साथ वनवास में चलने की आज्ञा दीजिए। यदि आप इतना गिड़गिड़ाना सुनकर भी मेरा त्याग ही करेंगे तो मैं रथ-समेत अग्नि में जल मरूँगा। अतएव मुझे साथ ले लीजिए। हे राघव, वन में आपके तप में विघ्न करनेवालों को मैं रथ के द्वारा दूर किया करूँगा। हे रघुनन्दन, आप ही के कहने से मैंने इस रथ को चलाने का सुख पाया है। अब मैं आप ही के द्वारा वनवास का भी सुख पाऊँगा। इसलिए आप प्रसन्न हो मुझे भी वन में अपना दास बनाइए और प्रसन्न होकर मुझे आज्ञा कीजिए। बस, आपके वचन ही की देरी है, मेरी रक्षा कीजिए और ये घोड़े भी वनवास में आपकी सेवा करेंगे तो परम गति पावेंगे! मैं अपने मस्तक से आपकी सेवा करूँगा। आपके लिए मैं सब प्रकार से अयोध्या तो क्या देवलोक को भी त्याग दूँगा। हे वीर, अब आपके

बिना अयोध्या जाना मेरे लिए शोभा नहीं देता। जैसे इन्द्र की राजधानी में पापी नहीं जा सकते इसी तरह मैं भी अयोध्या नहीं जा सकता। मेरी यही इच्छा है कि वनवास की समाप्ति होने पर फिर इसी रथ पर आपको चढ़ाकर पुरी में पहुँचाऊँ। आपके साथ रहने से ये चौदह वर्ष मुझे क्षण के तुल्य बीतेंगे, नहीं तो सैकड़ों वर्ष के तुल्य मैं कष्ट पाऊँगा। हे भृत्यवत्सल! देखिए, मैं सदा आपके मन के अनुसार आचरण करता आया हूँ; मैं भक्त हूँ और भृत्य के तुल्य प्रार्थना करता हूँ। इसलिए आपको मेरा त्यागना उचित नहीं है।

इस प्रकार सुमन्त्र को बहुत प्रार्थना करते देख भक्तवत्सल रामचन्द्रजी बोले—हे स्वामिभक्त, मैं जानता हूँ कि तुम मेरे परम भक्त हो। परन्तु तुम्हें तो मैं एक विशेष कारण से लौटाता हूँ। जब तुम नगरी में पहुँचोगे तब मेरी माता कैकेयी तुमको देखकर विश्वास कर लेगी कि राम वन में पहुँच गये और फिर वह मेरे वनवास से सन्तुष्ट होगी। उस समय वह राजा को धार्मिक जानेगी कि ये मिथ्यावादी नहीं हैं—जो इन्होंने कहा था वही किया भी। मेरा मुख्य प्रयोजन यह है कि कैकेयी को भरतपालित राज्य प्राप्त हो। इसलिए हे सुमन्त्र, मेरी प्रसन्नता के लिए और राजा की भी प्रसन्नता के लिए तुम पुरी को लौट जाओ। जिस-जिसके लिए मैंने जो-जो सन्देशा तुमसे कहा है वह सब उन लोगों से कह देना।

रामचन्द्र इस प्रकार सूत से कहकर और बार-बार समझाकर गुह से बोले—हे गुह, इस समय हमारा ऐसे वन में रहना ठीक नहीं जिसमें कि मनुष्य हों। हमें आश्रम में रहना चाहिए, क्योंकि ऐसी ही रीति लिखी है। इसलिए पिता की हित-कामना से और लक्ष्मण-सीता की अनुमति से मैं नियमपूर्वक तपस्वी लोगों के भूषणरूप जटा बनाकर गमन करूँगा। इसके लिए तुम बरगद (बड़) का दूध ला दो। तब गुह वट का दूध ले आया। राम ने उस दूध में अपनी और लक्ष्मण की जटाएँ बनाकर धारण कीं। उस समय वे दोनों भाई चीर पहने और जटामण्डल धारण किये हुए ऋषि के समान शोभित हुए। इसके अनन्तर लक्ष्मण के साथ रामचन्द्रजी वानप्रस्थ मार्ग पर स्थित हो, व्रत को ग्रहण कर, गुह से बोले—हे गुह! तुम सेना, कोश, दुर्ग और राष्ट्र पर सावधानी से दृष्टि रखकर राज्य का पालन करो; क्योंकि राज्य की रक्षा करना बहुत ही कठिन काम है।

इक्ष्वाकुनन्दन इस प्रकार गुह को समझा करके सीता और लक्ष्मण के साथ चले। इसके अनन्तर, तीर पर नाव देख, रामचन्द्रजी लक्ष्मण से बोले—हे नरश्रेष्ठ, इस नाव पर तुम धीरे से सीता को चढ़ाओ और स्वयं चढ़ो। तब पहले सीता को नाव पर बैठाकर पीछे से दोनों भाई नाव पर चढ़े। अब गुह ने अपने सेवकों को आज्ञा दी कि नाव चलाओ। रामचन्द्रजी नाव पर चढ़कर ब्राह्मण और क्षत्रियों के योग नावारोहण वेदमन्त्र को जपने लगे। इसके अनन्तर, लक्ष्मणजी ने और सीता ने यथाशास्त्र आचमन कर गङ्गा को प्रणाम किया। तब रामचन्द्रजी ने सुमन्त्र और ससैन्य गुह को विदा कर मल्लाहों को नाव चलाने के लिए कहा। आज्ञा पाकर मल्लाहों ने नौका को चलाया। पतवार और डाँड़ों के वेग से नाव, शीघ्रता से चलकर, मध्यधारा में पहुँच गई। तब सीता ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि हे गंगे! यह महाराज दशरथ के पुत्र, तुम्हारी रक्षा से, पिता की आज्ञा का पालन करें और चौदह वर्ष वनवास कर फिर लक्ष्मण के और मेरे साथ कुशल-क्षेम से लौट आवें। हे देवि, तुम मनोरथ पूर्ण

करती हो। लौटकर मैं तुम्हारी पूजा करूँगी। हे त्रिपथगे, तुम ब्रह्मलोक पर्य्यन्त व्याप्त हो रही हो और राजा समुद्र की भार्या हो। हे देवि, मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ, तुम्हारी स्तुति करती हूँ। जब रामचन्द्र मंगलपूर्वक फिर लौट आवेंगे और राज्य पर बैठेंगे तब मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिए लक्ष गौ, वस्त्र और सुन्दर अन्न ब्राह्मणों को दूँगी। पुरी में आकर मैं सहस्र घट सुरा और मांस-मिश्रित भात से तुम्हारी पूजा और बलिदान करूँगी, जिससे तुम हमारे ऊपर प्रसन्न हो। तुम्हारे तीर पर जो-जो देवता वास करते हैं और जो-जो तीर्थ और प्रसिद्ध देवस्थान हैं, उन सबको मैं यथाविधि पूजूँगी। हे अनघे, मेरी प्रार्थना है कि यह महाबाहु रामचन्द्रजी, मेरे और लक्ष्मण के साथ, वनवास से लौटकर कुशल-मंगल से फिर अयोध्या में प्रवेश करें। इस प्रकार गंगा से प्रार्थना करती हुई सीता शीघ्र तीर पर जा पहुँचीं। अब नरश्रेष्ठ रामचन्द्रजी ने तीर पर उतरकर घिरनई छोड़ दी। भाई और वैदेही के साथ उन्होंने वहाँ से प्रस्थान किया और लक्ष्मणजी से कहा कि देखो, चाहे निर्जन स्थान हो अथवा सजन हो, तुम रक्षा-कार्य में सचेत रहना। हमको निर्जन वन में अवश्य रक्षा करनी चाहिए। हे सौमित्रे, तुम आगे चलो और तुम्हारे पीछे सीता चलें। तुम दोनों के पीछे सावधानी करता हुआ मैं चलूँगा। हे पुरुषर्षभ, हमको परस्पर रक्षा करनी चाहिए। क्योंकि इस समय तक हम किसी दुखदाई काम में नहीं फँसे। आज ही वैदेही वनवास के दुःख को जानेगी, क्योंकि इस वन में न कोई मनुष्य देख पड़ता है, न खेत और न वाटिकाएँ दृष्टि आती हैं। भूमि नीची-ऊँची है और बड़े-बड़े गड्ढे देख पड़ते हैं। ऐसे वन में आज सीता प्रवेश करेगी।

रामचन्द्रजी का वचन सुन लक्ष्मणजी आगे-आगे, उनके पीछे सीता और सबके पीछे रघुनन्दन चले। अब इधर सुमन्त्र ने राम को गंगापार पहुँचे देख उधर से अपनी दृष्टि को कठिनता से हटाकर नेत्रों से आँसू बहाये। इस प्रकार महात्मा रामचन्द्रजी उस महानदी [illegible] क्षण भर में—समृद्ध, धानों से भरे और हर्षित—वत्स नामक देशों में जा पहुँचे। अब वहाँ जाकर दोनों भाई, चार पवित्र महामृगों को मारकर और उनके मांस को लेकर सायंकाल में वृक्ष के नीचे जाकर टिके *।

---

## ५३वाँ सर्ग

### रात्रि में राम और लक्ष्मण का संवाद

अब रामचन्द्र उस वृक्ष के नीचे ठहरकर और सायं-सन्ध्योपासन कर, लक्ष्मण से बोले—भाई, आज की यह रात्रि हम लोगों को देश से बाहर हुई और यहाँ सुमन्त्र भी नहीं है, सो घबड़ाना मत और न घर की सुधि करना। देखो, यह वन अत्यन्त निर्जन और हिंसक जन्तुओं के नाद से पूरित, नाना भययुक्त और झिल्लिकागण—एक प्रकार के जंगली झींगुरों—से नादित है। आज से प्रत्येक रात्रि में हमें आलस्य छोड़कर जागना चाहिए, क्योंकि सीता का योगक्षेम हमारे अधीन है। हे सौमित्रे, हम तृण बटोरकर भूमि पर बिछाकर लेटें और किसी प्रकार आज की रात बितावें।

* मालूम होता है किसी मांसाहारी महापुरुष ने, अपने स्वार्थ के लिए, पीछे से यह श्लोक बनाकर मिला दिया है। कहाँ मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी का पावन चरित और कहाँ यह महावृणित लीला! शिव! शिव! —प्रकाशक

श्रीरामचन्द्र तृणशय्या पर लेटकर लक्ष्मण बोले—हे सौमित्रे, आज महाराज अवश्य दुःख से सोये होंगे परन्तु कैकेयी कृतार्थ हो सन्तुष्ट हुई होगी। ऐसा न हो कि कैकेयी भरत को आया देख, राज्य के हेतु से, राजा को प्राणों से भी दूर करा दे। राजा अनाथ, मुझसे दूर और कामी हैं। कैकेयी के वश में हो वे क्या कर सकेंगे? मैं इस दुःख को देख और राजा के बुद्धि-भ्रम को विचार कर अर्थ और धर्म दोनों से काम ही को अत्यन्त अधिक समझता हूँ; नहीं तो कौन ऐसा अविद्वान् पुरुष होगा जो स्त्री के लिए मेरे ऐसे 'आज्ञाकारी पुत्र को त्याग देगा? विद्वान् ऐसा क्यों करने लगा। अकेला कैकेयी का पुत्र अपनी पत्नी के साथ सुखी होगा और राजा होकर कोशल प्रदेशों का भोग करेगा। क्योंकि पिता की तो आयु बीत गई और मैं वन में चला आया। जो राजा अर्थ और धर्म छोड़, केवल काम का अनुसरण करता है उसकी दशा महाराज दशरथ की ऐसी होती है। हे सौम्य, यह कैकेयी दशरथ के अन्त के लिए, मेरे वनवास के लिए और भरत को राज्य दिलाने के लिए ही राजा के घर में प्राप्त हुई है। मैं यह निश्चय जानता हूँ कि अपने सौभाग्य से मोहित कैकेयी मेरे कारण कौशल्या और सुमित्रा को सतावेगी। हे लक्ष्मण, मेरी माता और सुमित्रा दोनों दुःख पावेंगी। इसलिए तुम कल ही अयोध्या को फिर लौट जाओ और मैं अकेला सीता के साथ दण्डक वन में जाऊँगा। तुम उस अनाथ कौशल्या के रक्षक हो। वह नीचकर्मकारिणी कैकेयी कदाचित् द्वेष से अन्याय करे और तुम्हारी और हमारी माता को विष दे दे तो उसका क्या ठिकाना। हे लक्ष्मण, मेरी माता ने पूर्व जन्म में अवश्य स्त्रियों को पुत्रहीन कर दिया था, उसी का फल अब इस जन्म में यह उपस्थित हुआ है। जिसने मुझको चिरकाल में पुष्ट किया और स्वयं दुःख सहकर पाला-पोसा उस माता को फल-काल में मैंने त्याग दिया! मुझको धिक्कार है! मैं माता को अनन्त दुःख दे रहा हूँ। अतः मेरे ऐसे पुत्र को कोई सीमन्तिनी स्त्री न उत्पन्न करे। हे लक्ष्मण, मैं जानता हूँ कि मेरी अपेक्षा वह मैना भली है जिसका यह वाक्य मेरी माता सुनती है कि "हे सुग्गे, शत्रु के पैर को काट।" हा! वह बेचारी माता शोक में पड़ी होगी और मुझसे उसका कुछ भी उपकार नहीं बन पड़ता। उसके लिए मेरा होना किस काम का? इस घड़ी उस पुत्र-रहित कौशल्या के लिए मुझे क्या करना चाहिए? इस समय वह पुत्र-वियोग के दुःख से परम पीड़ित और शोक-सागर में निमग्न होगी। हे लक्ष्मण, मैं अकेला ही क्रुद्ध होकर अयोध्या को और पृथिवी को भी बाणों से आक्रमण कर सकता हूँ परन्तु इसमें पराक्रम निरर्थक है। हे लक्ष्मण, एक तो मैं अधर्म से और दूसरे परलोक से भी डरता हूँ, इसलिए अपना अभिषेक नहीं करवाता।

इस प्रकार उस निर्जन वन में अनेक प्रकार से विलाप कर रामचन्द्र आँसुओं से पूर्णमुख और दीन हो चुप हो गये। जब राम विलाप कर चुके और ज्वाला-रहित अग्नि के तुल्य, वेग-रहित समुद्र के सदृश, शान्त भाव को प्राप्त हुए तब लक्ष्मण समझाते हुए बोले—हे राम, जिस अयोध्यापुरी से तुम निकल आये हो, वह आज बिना चन्द्रवाली रात्रि की तरह देख पड़ती होगी। हे रामचन्द्र, तुमको ऐसा सन्ताप करना उचित नहीं है क्योंकि इससे मुझे और सीता को भी दुःख होता है, और तुम्हारे बिना न तो सीता मुहूर्त्त भर भी जी सकती हैं और न हमीं जी सकते हैं। जल के बिना मछलियाँ क्षण भर भी प्राण धारण नहीं कर सकतीं। वही हाल आपके बिना हमारा

भी है। हे शत्रु के ताप देनेवाले, तुम्हें छोड़कर मैं न तो पिता, न शत्रुघ्न और न सुमित्रा को ही देखने की इच्छा करता हूँ। आपके बिना मुझे स्वर्ग भी नहीं सुहाता।

इस प्रकार बातचीत कर वे वट-वृक्ष के नीचे सो रहे। लक्ष्मण के अति उत्तम और गौरवयुक्त वचन सुन रामचन्द्र ने, आदरपूर्वक धर्म को अंगीकार कर, वनवास के सम्पूर्ण वर्ष बिताने में मन लगाया। तब उन महाबली दोनों भाइयों ने उस निर्जन वन में भय और उद्वेग-रहित हो निवास किया। जैसे पर्वत के शिखर पर रहनेवाले दो सिंह बेखटके रहते हैं इसी तरह वे भी रहने लगे।

---

## ५४वाँ सर्ग

### रामचन्द्रजी का भरद्वाज मुनि के आश्रम में जाना और मुनि से चित्रकूट पर निवास का उपदेश पाना

वे तीनों उस महावृक्ष के नीचे रात बिताकर प्रातःकाल, सूर्योदय होने पर, वहाँ से चले। जहाँ यमुना नदी गंगा से मिलती है उस देश की ओर, महावन को लाँघते, वे चले जाते थे। मार्ग में नाना भूमिभागों को, अनेक प्रकार के अपूर्व और मनोहर देशों को और नाना प्रकार के पुष्पित वृक्षों को देखते जाते थे। अब दिन के समाप्त होने पर रामचन्द्र बोले—हे सौमित्रे, देखो यह अग्नि का चिह्न (धूम) प्रयाग के चारों ओर छा रहा है। इससे मैं जानता हूँ कि मुनि भी पास ही होंगे और हम गंगा-यमुना के संगम पर आ पहुँचे, क्योंकि दो नदियों की धारा के टकराने का शब्द सुन पड़ता है। यहाँ के वनवासी लकड़हारों ने लकड़ियाँ काटी हैं इसलिए इस आश्रम में नाना प्रकार के वृक्ष कटे देख पड़ते हैं।

इस प्रकार बातचीत करते हुए वे दोनों धनुर्द्धर, सूर्य के छिपते-छिपते, गंगा-यमुना के संगम पर मुनि के आश्रम में पहुँच गये। अब रामचन्द्रजी आश्रम में केवल स्वरूप मात्र से उस वन के मृगों और पक्षियों को त्रास देते हुए चलकर भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँच गये। तदनन्तर सीताजी सहित दोनों वीर मुनि के दर्शन की इच्छा से थोड़ी दूर ही ठहरकर फिर आश्रम में गये। वहाँ जाकर शिष्यों के साथ उन मुनि को प्रणाम किया और बोले हे भगवन्, हम दशरथ के पुत्र हैं, नाम राम और लक्ष्मण है और यह मेरी भार्य्या जनक की पुत्री वैदेही है। यह भी मेरे साथ तपोवन में आई है। पिता ने मुझे वनवास दिया है, और यह सुमित्रा के पुत्र मेरे प्रिय छोटे भाई भी, व्रत को धारण कर, मेरे पीछे हो लिये हैं। भगवन्, हम पिता की आज्ञा से तपोवन में प्रवेश करेंगे और वहाँ फल-मूल खाकर धर्माचरण करेंगे।

रामचन्द्रजी का वचन सुनकर धर्मात्मा भरद्वाज ऋषि ने सत्कार-पूर्वक पूजा की सामग्री और जल लाकर राम के आगे भेट रक्खी। उनके भोजन के लिए नाना प्रकार के वनैले फल-मूल रूप अन्न और रस दिये और निवास के लिए स्थान दिया। महर्षि के चारों ओर मृग, पक्षी और मुनि बैठे थे। उन सबके साथ महर्षि ने रामचन्द्रजी की स्वागत शब्द से पूजा की। ऋषि की पूजा ग्रहण कर जब रामचन्द्रजी बैठ गये तब भरद्वाज मुनि धर्मयुक्त वचन बोले—हे काकुत्स्थ, तुम बहुत दिन बाद इस आश्रम में आये। मैंने सुन लिया है कि तुमको अकारण वनवास हुआ

है। सो तुम इन दोनों नदियों के सङ्गम पर सुख से निवास करो। यह अति एकान्त पवित्र और रमणीय प्रदेश है। भरद्वाज का वचन सुन सर्वहितकारी रामचन्द्र बोले—हे भगवन्, पुरवासियों और राष्ट्रवासियों के लिए हमारा यहाँ का स्थान बहुत पास पड़ेगा, इसलिए लोग मुझको और सीता को देखने सुखपूर्वक चले आया करेंगे। इस कारण, यहाँ का रहना हमको नहीं रुचता। मेरे लिए कोई दूसरा स्थान एकान्त बतला दीजिए, जो सीता के चित्त को प्रसन्न करनेवाला हो। रामचन्द्रजी के सुन्दर वचन सुन भरद्वाज मुनि बोले—हे तात, यहाँ से दस कोस पर तुम्हारे निवास के योग्य एक पर्वत है। वह महर्षिगण से सेवित, पवित्र और सुन्दर है; लंगूर, बन्दर और भालुओं से सुशोभित है। वह चित्रकूट नाम से प्रसिद्ध है। उसकी शोभा गन्धमादन पर्वत की तरह है। जो मनुष्य चित्रकूट के शृङ्गों को देखते हैं वे पुण्यकर्मा होते हैं। उनका मन मोह में नहीं फँसता। वहाँ बहुत से ऋषि (जिनके मस्तक मुर्दे की खोपड़ी की भाँति शुष्क थे) सैकड़ों वर्ष पर्यन्त विहार कर फिर तपोबल से स्वर्ग को चले गये। इसलिए हे राघव, वह स्थल आपके निवास के लिए बहुत अच्छा है। अथवा, आपकी इच्छा हो तो यहीं मेरे साथ रहिए। इस प्रकार मुनि ने सपत्नीक रामचन्द्रजी का और लक्ष्मण का आतिथ्य किया। प्रयाग में महर्षि भरद्वाज के समीप अनेक कथाएँ कहते-कहते पवित्र रात्रि हुई। रामचन्द्रजी की वह रात्रि सुखपूर्वक बीती। रामचन्द्रजी, सीताजी और लक्ष्मणजी वहाँ सुख से रहे।

अब प्रातःकाल मुनि के पास जाकर रामचन्द्रजी बोले—हे सत्यशील, भगवन्, आपके आश्रम में हम सुख से रहे। अब आप कृपा करके हमको वासस्थान में जाने की आज्ञा दीजिए। तब भरद्वाज ने कहा—हे रामचन्द्र, चित्रकूट पर्वत पर तुम्हारा निवास ठीक होगा। वहाँ के मूल-फलों में मधु के समान स्वाद है। वहाँ पर नाना प्रकार के वृक्ष हैं। वहाँ किन्नर और नाग निवास करते हैं। वह पर्वत मयूर के शब्द से नादित और गजराजों से सेवित है। आप वहाँ जाइए। वह स्थान अति पवित्र, रमणीय और नाना प्रकार के मूल और फलों से युक्त है। तुम वहाँ कुक्कुरों और मृगों के झुण्डों को चरते देखोगे। वहाँ की नदियाँ, झरने, शिखर और कन्दराओं को देख तुम्हारा मन आनन्दित होगा। वहाँ टिटिहरी और कोकिल के स्वर तुमको प्रसन्न करेंगे; मृग और हाथी—जिनके कि मद बहता है—रमणीयता दिखलावेंगे। इसलिए हे रामचन्द्र, तुम वहीं जाकर वास करो।

---

## ५५वाँ सर्ग

### रामचन्द्रजी की चित्रकूट-यात्रा

इस प्रकार दोनों भाई उस रात्रि को प्रयाग में निवास कर प्रातःकाल उठे और मुनि को प्रणाम कर चित्रकूट को चले। उनकी यात्रा के समय महर्षि ने उसी प्रकार मङ्गलाशीर्वाद दिया जैसे पिता पुत्रों का स्वस्त्ययन करता है। फिर रामचन्द्रजी से कहा—हे मनुजश्रेष्ठ! इस गङ्गा-यमुना के संगम से, जहाँ यह यमुना नदी पश्चिममुख बही है उस घाट पर जाकर काष्ठ से घरनई बनाना और यमुना से पार होना। इसके अनन्तर आपको नदी पार एक वटवृक्ष मिलेगा। वह बहुत वृक्षों से घिरा श्यामवर्ण का और सिद्धों से

सेवित है। चाहो तो वहाँ वास करना या आगे को यात्रा करना, वहाँ सीता आशीर्वाद के लिए प्रार्थना करे। उसके अनन्तर कोस भर पर नीला वन देख पड़ेगा। उसमें साल और बेर के बहुत पेड़ हैं। यमुना किनारे और भी तरह-तरह के पेड़ हैं। वही चित्रकूट का मार्ग है। कई बार मैं उसी मार्ग से चित्रकूट को गया हूँ। वह मार्ग रमणीय, मृदुतायुक्त और वनाग्नि से रहित है।

इस प्रकार मार्ग दिखलाकर मुनि लौट आये और रामचन्द्रजी ने भी उनको प्रणाम कर विदा किया। अब मुनि के लौट जाने पर रामचन्द्रजी बोले कि हे सौमित्रे, हम पुण्यवान् हैं। देखो, भरद्वाज मुनि भी हमारे ऊपर दया करते हैं। इस प्रकार दोनों भाई बात-चीत करते हुए सीता को आगे कर यमुना नदी की ओर चले और वहाँ पहुँचकर पार जाने के लिए विचार करने लगे, तब उन्होंने लकड़ियाँ एकट्ठा कर एक घरनई बनाई। उस पर सूखी लकड़ियाँ बिछाई और उस पर खस बिछा दिया। फिर लक्ष्मण ने बेंत की और जामुन की शाखाएँ लाकर उस पर सीताजी के बैठने के लिए सुन्दर आसन बना दिया। अब रामचन्द्र ने लक्ष्मी के समान सीता को (जो कुछ लज्जायुक्त थी) उठाकर उस घरनई पर बैठा दिया। उन्हीं के पास उनके वस्त्र और आभूषण रखकर अपने खोदने का शस्त्र और बाँस की पिटारी भी रख दी। फिर दोनों भाइयों ने उसको चलाया। जब घरनई बीच धारा में पहुँची तब सीता ने नदी को प्रणाम कर प्रार्थना की कि हे देवि, मैं मंगलपूर्वक तुम्हारे पार जाती हूँ। यदि मेरे पति वनवास-व्रत को कुशलपूर्वक समाप्त करेंगे तो मैं सहस्र गौ (या बैल)* और सुरा-पूर्ण सौ घटों से आपका पूजन करूँगी। आपकी कृपा से मेरे पति फिर लौटकर अयोध्यापुरी में आवें। इस प्रकार प्रार्थना करती हुई सीता दक्षिण तीर पर जा पहुँची। वे यमुना नदी के पार हो, घरनई छोड़कर, यमुना-तीर के वन से चले। फिर उस श्याम-वर्ण वटवृक्ष के पास पहुँचे। उसके पत्ते हरे और शीतल छाया थी। तब सीताजी ने उस वृक्ष को प्रणाम कर प्रार्थना की कि हे महावृक्ष, आपको मैं नमस्कार करती हूँ। मेरे पति इस व्रत को पूरा करें और हम कुशलपूर्वक कौशल्या और सुमित्रा को देखें। इस प्रकार सीता ने प्रार्थना कर उस वृक्ष की प्रदक्षिणा की। तब रामचन्द्रजी लक्ष्मण से बोले—हे भरतानुज, तुम सीता को लेकर आगे चलो; मैं शस्त्र लिये पीछे-पीछे आता हूँ। जनक-पुत्री जिस-जिस फल को और जिस-जिस पुष्प को चाहे वह इसको देते रहो जिससे इसका मन प्रसन्न हो। अब सीता प्रत्येक ऐसे वृक्ष, गुच्छे और पुष्पित लता को, जिसको कभी न देखा था, राम से पूछती थी और लक्ष्मण शीघ्रता से उनको ला देते थे। उस नदी के बालुकामय तीर थे, और निर्मल जल था। उसके किनारे हंस और सारस मनोहर शब्द कर रहे थे। उसको देखकर सीताजी प्रसन्न होती जाती थीं। अब दोनों भाई कोस भर चलकर और बहुत से मृगों को मारकर उसी वन में विचरने लगे। उस वन में मयूर शब्द कर रहे थे और हाथी और वानर विचरते थे। वहाँ दोनों भाई विहार कर नदी के किनारे जाकर निर्भय हो, टिक रहे।

---

*यह भी पूर्ववत् पीछे से किसी की मिलावट जान पड़ती है। क्योंकि यदि यह बात सत्य होती तो क्या सीता-जी लौटकर अपनी प्रतिज्ञा को पूरी न करतीं? —प्रकाशक

# ५६वाँ सर्ग

## रामचन्द्रजी का चित्रकूट पर पहुँचना और वहाँ कुटी बनाकर निवास करना

अब रामचन्द्रजी रात्रि बीतने पर धीरे से बोले—हे लक्ष्मण, सुनो। ये वन्य मृग-पक्षी कैसे मधुर स्वर से बोल रहे हैं; यह समय चलने का है। हमको अब प्रस्थान करना चाहिए। भ्राता का वचन सुन लक्ष्मण निद्रा, आलस्य और परिश्रमजन्य क्लेश को छोड़कर उठ खड़े हुए। उसके अनन्तर वे नदी के पवित्र उत्तम जल से आचमनादि कर ऋषियों से सेवित उस चित्रकूट के मार्ग पर चल पड़े। तब रामचन्द्रजी सीता से बोले कि इन वृक्षों को देखो। पुष्पों से ये प्रज्वलित हो रहे हैं। इस वसन्तकाल में ये टेसू के पुष्प कैसी शोभा दे रहे हैं। देखो, ये भिलावे के और बेल के वृक्ष फल-फूलों के भार से कैसे झुक गये हैं कि इन्हीं से हमारे जीवन का साधन हो सकता है। किसी ने इनके फल नहीं तोड़े। हे लक्ष्मण, देखो प्रत्येक वृक्ष में मधुमक्खी के छत्ते लटक रहे हैं। इनमें प्रायः प्रत्येक में २० सेर से कम शहद न होगा। देखो, यह जलकौवा कैसा बोल रहा है। इसका शब्द सुनकर यह मयूर भी प्रतिशब्द करता है। इस रमणीय वन-प्रदेश की भूमि फूलों से बिछ गई हैं। यह कैसी शोभा दे रही है। अब देखो, यह उच्च शिखरोंवाला चित्रकूट देख पड़ता है जहाँ हाथियों के झुण्ड विचर रहे हैं और चिड़ियाँ चहक रही हैं। हम इस चित्रकूट के वन में समभूमि, सुन्दर वृक्ष और पवित्र रमणीय स्थल देखकर निवास और विहार करेंगे।

इस प्रकार सीता को साथ लिये दोनों भाई बातचीत करते चले जाते थे और थोड़े समय में उस मनोहर और रमणीय पर्वत के निकट पहुँच गये जहाँ कि नाना प्रकार के पक्षी, फल, मूल और निर्मल जल से भरे जलाशय शोभा दे रहे थे। तब रामचन्द्रजी ने कहा कि हे लक्ष्मण, देखो वह मनोहर पर्वत कैसा रमणीय दीख पड़ता है। वह नाना प्रकार के वृक्ष, लता, फल और मूल से भरा हुआ है, यहाँ पर हमारी भली भाँति जीविका हो सकेगी। महात्मा मुनि लोग भी यहाँ निवास करते हैं। हे तात, अब हम यहीं रहें।

इस प्रकार राम, लक्ष्मण और सीता ने सोचा और वहाँ जाकर महर्षि वाल्मीकि को हाथ जोड़ प्रणाम किया। तब इनको देख महर्षि ने हर्षित हो पूजा की; बैठने को आसन देकर स्वागत किया और कहा कि हे रघुश्रेष्ठ, आपके आने का कारण मैंने जान लिया; ऋषि लोगों के निकट आप निवास कीजिए। इस प्रकार ऋषि की आज्ञा पाकर, प्रसन्न हो, रामचन्द्र हाथ जोड़कर बोले कि बहुत अच्छा, जैसी आपकी आज्ञा होगी वैसा ही मैं करूँगा। इसके अनन्तर रामचन्द्रजी ने कहा—हे लक्ष्मण, सुन्दर दृढ़ लकड़ियाँ लाकर कुटी बनाओ, क्योंकि यहीं रहने को मेरा मन चाहता है। तब, लक्ष्मण नाना प्रकार के वृक्ष काटकर काष्ठ ले आये और पत्तों की कुटी बनाने लगे। बना चुकने पर रामचन्द्रजी से कह दिया। तब रामचन्द्र उस सुन्दर पर्णशाला को देखकर प्रसन्न हुए। पर्णशाला में खिड़कियाँ थीं और छप्पर भली भाँति बनाया गया था। किवाड़ भी लगे थे। रामचन्द्र ने कहा—हे लक्ष्मण, हिरण का मांस लाकर इस शाला में होम करना चाहिए, क्योंकि दीर्घायु होने की इच्छा करनेवाले पुरुष को अवश्य वास्तुशान्ति करनी चाहिए। हे लक्ष्मण, मृग को मारकर तुम यहाँ ले आओ क्योंकि शास्त्र की रीति से विधि करनी है। भ्राता का वचन

सुनकर लक्ष्मण काले मृग को मार लाये। अब रामचन्द्र बोले—अच्छा, इस मांस को पकाओ तो हम यज्ञ करें। हे सौम्य, शीघ्रता करो। यह मुहूर्त्त सुन्दर है और दिन भी अच्छा है। तब लक्ष्मण ने आग जलाकर उस मारे हुए मृग को उसमें डाल दिया। जब वह भुन गया—उसका रुधिर शुष्क हो गया—तब लक्ष्मण ने राम से कहा कि हे देवतुल्य, मैंने इस सम्पूर्ण अङ्गसहित कृष्ण मृग को पकाया है, अब इससे आप देवयज्ञ कीजिए। रामचन्द्र ने नियमपूर्वक स्नान करके जप किया; फिर सम्पूर्ण यज्ञमन्त्र पढ़कर यज्ञ का आरम्भ किया। इस प्रकार देवगणों को पूजकर उन्होंने उस कुटी में प्रवेश किया। इसके अनन्तर वैश्वदेवबलि, रौद्रबलि और वैष्णवबलि करके वे वास्तुशान्ति के मङ्गलवचन पढ़ने लगे। फिर यथोचित जप कर नदी में यथाविधि स्नान किया और पापनाशक उत्तम बलि किया। आठों दिशाओं में बलि-हरण के लिए वेदिस्थलों को और गणपति-मण्डप और विष्णु इत्यादि के स्थानों को आश्रम के अनुरूप स्थापन किया और यथोचित फल और मांस से भूतों को तृप्त कर उस शाला में प्रवेश करने की इच्छा की। इस प्रकार उस मनोहर और वायुरहित पर्णशाला में रामचन्द्र ने सीता और लक्ष्मण के साथ प्रवेश किया जैसे कि देवता लोग सुधर्मा नामक सभा में प्रवेश करते हैं। इसी विधि से सुन्दर और रमणीय चित्रकूट में सुन्दर घाटयुक्त माल्यवती नदी को पाकर रामचन्द्र हर्षित हुए। वहाँ के मृगों और पक्षियों को देखकर उन्होंने अयोध्या से आने के दुःख को त्याग दिया। रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण अयोध्यापुरी से निकलकर तीन दिन तक तो केवल जल पीकर रहे, चौथे दिन उन्होंने फलाहार किया और पाँचवें दिन गङ्गा से पार हो चित्रकूट पर्वत पर जाकर वे पर्णशाला में निवास करने लगे।

## ५७वाँ सर्ग

### सुमन्त्र का अयोध्या में पहुँचना, राजा को सन्देश देना और राजा का मूर्च्छित होना

अब इधर गुह दुःखित हो सुमन्त्र के साथ बहुत देर तक बातचीत करता रहा और जब रामचन्द्रजी उस पार उतर गये तब वह अपने घर को चला गया। अब सुमन्त्र भी अत्यन्त पीड़ित हो और दुःखित मन से रथ जोतकर, अयोध्या को चला परन्तु वहाँवालों के द्वारा उसने सुन लिया था कि रामचन्द्र प्रयाग में भरद्वाज के आश्रम में गये और वहाँ से सत्कारपूर्वक मुनि की अनुमति से चित्रकूट को गये हैं। अब सुमन्त्र सुगन्धित वनों को और नदी, सरोवर, ग्राम और नगरों को देखता हुआ चला जाता था। दूसरे दिन वह सन्ध्या समय अयोध्या में पहुँचा तो नगरी को आनन्द-रहित पाया। उस नगरी को शून्य और शब्दरहित पाकर परम उदास और शोकित हो, सुमन्त्र मन में चिन्ता करने लगा कि यह नगरी हाथियों, घोड़ों, जनों और राजा के भी साथ राम के सन्ताप, दुःख और शोकाग्नि से भस्म तो नहीं हो गई! इस प्रकार चिन्ता करता हुआ वह सूत नगर के बाहरी दरवाजे पर पहुँचा।

जब सुमन्त्र को नगर में आता देखा तब सैकड़ों सहस्रों पुरवासियों ने दौड़कर उसको घेर लिया। सब पूछने लगे—राम कहाँ हैं? सुमन्त्र ने कहा कि गंगा के तीर पर पहुँचकर रामचन्द्रजी ने मुझे लौटने की आज्ञा दी। यह सुनकर वे लोग राम को गंगा-पार

उतरे जान आँखों में आँसू भरकर और "अहो धिक्कार है!" कहकर ऊँची साँस ले, बड़े स्वर से, रोने लगे। उस समय उन झुण्डों से यही शब्द सुन पड़ता था—"हा! हम लोग मारे गये।" यहाँ राम को नहीं देखते हैं। अब हम दान, यज्ञ, विवाह और बड़े-बड़े समाजों में रामचन्द्रजी को न देखेंगे। हा! रामचन्द्रजी पिता की भाँति नगर का परिपालन करते थे और सदा सोचते रहते थे कि प्रजा के लिए क्या करना चाहिए, किस प्रकार प्रजा सुखी रहेगी और इसे क्या प्रिय है।

इसी प्रकार हाट की अटारियों के झरोखों में बैठी स्त्रियों का विलाप सुनता हुआ सुमन्त्र राज-मार्ग में अपना मुख ढककर राजा दशरथ के घर की ओर चला। वहाँ पहुँच, रथ से उतरकर वह राजगृह में गया। वहाँ महाजनों से भरी सात ड्योढ़ियों को लाँघ गया। जो स्त्रियाँ बड़ी-बड़ी अटारियों पर चढ़ी थीं, वे सुमन्त्र को आते देख हाहाकार करने लगीं और बड़े-बड़े विमल नेत्रों में आँसू भरकर परस्पर देख अत्यन्त दुखी हुईं। इसके अनन्तर इधर-उधर के राजगृहों में राजा दशरथ की जो स्त्रियाँ रामशोक से तापित थीं उनका इस प्रकार का आलाप सुन पड़ता था कि यह सुमन्त्र राम के साथ गया था और राम के बिना लौट आया है; अब रोती हुई कौशिल्या को किस प्रकार से ढाढ़स बँधावेगा। हा! यह जीवन दुःख के लिए है। देखो, रामचन्द्र राज्य छोड़ वन को चले गये फिर भी कौशल्या जीती है। इस प्रकार उन राजस्त्रियों के सत्य वचन सुनता-सुनता सुमन्त्र शोक में दग्ध हो राजा के घर में पहुँचा। आठवीं ड्योढ़ी को लाँघ राजा के गृह में जाकर उसने देखा कि राजा दीन, आतुर और पुत्र-शोक से उद्विग्न हो रहे हैं। सुमन्त्र ने वहाँ जाकर राजा को प्रणाम कर रामचन्द्र का सब समाचार कह सुनाया। तब राजा कुछ भी न बोले। सन्देश सुनकर अति व्याकुल हुए और मूर्छित हो गिर पड़े। उस समय राजा की यह दशा देख अन्तःपुर की स्त्रियाँ हाथ उठा-उठाकर रोने लगीं। सुमित्रा और कौशल्या ने राजा को उठाकर कहा—हे महाभाग, महाकठिन काम करनेवाले रामचन्द्र का यह दूत वन से लौटकर आया है, इससे आप क्यों नहीं बोलते? रामचन्द्र के विषय में ऐसा अन्याय करके अब क्यों लजा रहे हो? उठो, तुम्हारा सत्यपालनरूप पुण्य सिद्ध हो। अब अपने शोक से और लोगों को क्यों शोकित करते हो? हे देव, जिसके भय से तुम इस सरथि से राम की बात नहीं पूछते वह कैकेयी यहाँ नहीं है। आप निर्भय होकर इससे बातचीत कीजिए। इस प्रकार के वचन कहकर कौशल्या अत्यन्त शोक-पीड़ित हो गद्‌गद वचन बोलती हुई भूमि पर गिर पड़ी। इस प्रकार विलाप करती और पृथ्वी पर गिरी कौशल्या को और इसी अवस्था में पति को भी देख वे स्त्रियाँ चारों ओर से रुदन करने लगीं। उस समय अन्तःपुर से रोने की आवाज सुनकर, उस पुर के जितने वृद्ध और तरुण पुरुष और स्त्रियाँ थीं वे सब चारों ओर से रोने लगे। सम्पूर्ण नगरी में कोलाहल मच गया।

---

## ५८वाँ सर्ग

### सुमन्त्र का राजा को रामचन्द्र के सब समाचार विस्तारपूर्वक सुनाना

जब राजा की मूर्छा दूर हो गई तब राम के समाचार सुनने के लिए सूत को बुला भेजा।

महाराज राम ही का स्मरण कर रहे थे । उनके समीप सूत हाथ जोड़कर खड़ा हुआ। राजा एक तो वृद्ध, दूसरे परम दुःखित थे। पहले पहल बन्धन में पड़े बीमार हाथी की तरह हाँफते हुए महाराज दशरथ आर्त्त के तुल्य थे। समीप खड़े हुए सूत से उन्होंने कहा—हे सूत, धर्मात्मा रामचन्द्र वृक्ष के नीचे कहाँ वास करेंगे और अत्यन्त सुख के योग्य वह क्या भोजन करेंगे ? हे सुमन्त्र, बड़े दुःख की बात है कि वह दुःख से बचने योग्य और पलँग पर शयन करने के योग्य राजपुत्र किस प्रकार अनाथ की भाँति भूमि पर शयन करेंगे। जिनकी यात्रा के समय पैदल, रथ और हाथी चलते थे वही राम उस निर्जन वन में किस प्रकार रहेंगे ? जो वन नाना प्रकार के सर्प, अजगरों और मृगों से भरा है उसमें ये दोनों कुमार सीता के संग कैसे रहते होंगे ? हे सुमन्त्र! सुकुमारी तपस्विनी सीता को लेकर ये दोनों राजपुत्र किस प्रकार रथ से उतरकर गये होंगे ? हे सूत ! तू ही कृतार्थ है कि जिसने मेरे दोनों पुत्रों को वन में प्रवेश करते देखा, जैसे अश्विनीकुमार मन्दराचल पर प्रवेश करते हैं। हे सुमन्त्र, वन में पहुँचकर रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता ने क्या कहा था ? हे सूत, राम के बैठने, सोने और भोजन करने का वर्णन करो। भला इतना ही सुनकर मैं भी जीऊँगा, जैसे कि साधु-समागम से ययाति राजा जिये थे। राजा की आज्ञा पाकर सुमन्त्र वाष्पगद्-गद वाणी से बोला—महाराज, रामचन्द्रजी ने हाथ जोड़ मस्तक से प्रणाम कर कहा है कि हे सूत, धर्मिष्ठ महाराज पिता के चरणों को मेरे वचन द्वारा प्रणाम करना और सम्पूर्ण रनिवास से भी मेरा यथोचित अभिवादन कह आरोग्य कह देना। मेरी माता कौशल्या से भी प्रणाम कहना और कुशल का सन्देश देकर कहना कि धर्म में तत्पर हो यथोचित काल में अग्निहोत्र करती रहना। और यह कहा है कि हे अम्ब, राजा के चरणों को देवता के तुल्य मानना, तथा अभिमान और मान को छोड़कर हमारी सब माताओं से व्यवहार करना। राजा कैकेयी के अनुगत हैं, अतः उसके आदर और सम्मान में तत्पर रहना और कुमार भरत से राजा की भाँति व्यवहार करना। यद्यपि भरत ज्येष्ठ नहीं हैं तथापि राजधर्म का स्मरण करना चाहिए। हे प्रभो, रामचन्द्रजी ने कहा है कि भरत से मेरा कुशल कहकर कहना कि सब माताओं के साथ यथान्याय व्यवहार करो और तुम यौराज्यासन पर बैठकर महाराज पिता की आज्ञा का पालन करो। राजा की अब अन्तिम अवस्था है इसलिए लोभ से राज्यासन की आकांक्षा मत करना किन्तु राजा की आज्ञा में रहकर अपने ही पद से सन्तोष करना। रामचन्द्रजी ने अत्यन्त आँसू बहाकर फिर भी मुझसे कहा कि देखो भरतजी से यह बात कह देना कि हमारी माता को अपनी माता के तुल्य देखें। महाबाहु, कमलनयन, रामचन्द्रजी मुझसे इस प्रकार सन्देशा कहकर रोने लगे। लक्ष्मणजी तो अत्यन्त क्रोध कर और ऊँची साँस लेकर बोले कि यह राजकुमार किस अपराध से वन में निकाल दिये गये। भला राजा ने तो कैकेयी की एक छोटी सी बात के लिए प्रतिज्ञा की परन्तु यह उचित किया या अनुचित ? इससे हम लोग अत्यन्त पीड़ित हुए। हम तो जानते हैं कि रामचन्द्रजी के वनवास का कारण केवल कैकेयी का लोभ है और राजा ने जो वरदान के निमित्त यह काम किया सो बड़ा दुष्कर्म किया। भला यह कर्म तो राजा ने किया सो इसमें ईश्वर हेतु हो सकता है; परन्तु रामचन्द्रजी के परित्याग में मुझे कुछ भी कारण नहीं जान पड़ता। जो हो परन्तु ओछी बुद्धि से बिना विचारे जो यह काम राजा ने किया है सो अवश्य दुःख उत्पन्न करेगा। मैं तो

महाराज में पिता का धर्म कुछ भी नहीं देखता, मेरे भ्राता, स्वामी, बन्धु और पिता जो कहो रामचन्द्रजी ही हैं। भला कहो तो सही, ऐसे सब लोगों के प्रिय और सब लोगों के हित में तत्पर रामचन्द्रजी का जिसने परित्याग कर दिया उस पर प्रजा किस प्रकार अनुराग करेगी? ऐसे धार्मिक और प्रजा के मनोहर राम को त्याग करके महाराज दशरथ सर्वलोक के विरोधी हो, किस प्रकार से राजा कहलावेंगे? महाराज, जानकी तो ऊपर-नीचे साँस लेती हुई—भूतबाधा से व्याकुल प्राणी की नाईं—विस्मित हो टकटकी बाँधे केवल खड़ी ही रह गई। उस राजपुत्री ने कभी भी इससे पहले दुःख नहीं देखा था। इसलिए उस दुःख में मुख से कुछ न कह केवल विलाप करती थी। शुष्क मुख से पति की ओर देखती हुई पति का वन की ओर प्रयाण देख वह आँसू बहाने लगी। उसी प्रकार रामचन्द्रजी अश्रु-मुख हो, हाथ जोड़, वही पूर्वोक्त वचन बोले और सीताजी तो केवल रोती हुई रथ की ओर और मेरी ओर देखती रहीं।

---

## ५६वाँ सर्ग

### फिर भी सूत का कुछ कहना, राजा का पछतावा और विलाप

हे महाराज, रामचन्द्रजी के वनगमन के अनन्तर जब मैं लौटा उस समय ये घोड़े मार्ग में रुक गये और गरम-गरम आँसू बहाने लगे। दोनों भाइयों को प्रणाम कर मैंने उस दुःख को हृदय में धारण किया। किसी प्रकार रथ चलाया और उस स्थान पर गुह के साथ बहुत समय तक मैं इस आशा से ठहरा रहा कि कदाचित् रामचन्द्रजी मुझे फिर भी पुकारें। महाराज, आपके देश के वृक्ष भी दुःख से कर्षित हो पुष्प, अंकुर और कलियों सहित कुम्हला रहे हैं; नदी, पुष्करिणी और सरोवरों का जल सूख रहा है। वन और उपवन सब सूखे जाते हैं। जीवों ने सञ्चार करना छोड़ दिया और सर्प अपने स्थान से हिलते भी नहीं। इस प्रकार राम के शोक से वह वन भी निःशब्द के समान देख पड़ता है। नदियों को देखिए तो उनका पानी गँदला और कमल संकुचित देख पड़ते हैं। जिन पुष्करिणियों में कमल ही कमल होते हैं वहाँ अब वे मुरझा रहे हैं। मच्छ और पक्षी जहाँ के तहाँ लीन हो रहे हैं। हे प्रभो, जल और स्थल के पुष्पों में अल्प सुगन्ध रह गई है और फलों में भी स्वाद घट गया है। ये चीजें पहले के सदृश शोभा नहीं देतीं। यहाँ के उपवन भी पक्षियों का सञ्चार न होने से शून्य से जान पड़ते हैं। हे मनुजश्रेष्ठ, यहाँ की वाटिकाओं को भी मैं सौन्दर्य्य-हीन देखता हूँ। मैं जब इस नगर में आया तब किसी को अनुमोदन करते न पाया। लोग राम को न देखकर बार-बार लम्बी-लम्बी श्वास लेते हुए देख पड़े। हे देव, इस राजरथ को रामजी से रहित देख राजमार्ग के लोग दूर ही से अश्रुमुख देख पड़े और राम के दर्शन बिना जो स्त्रियाँ कृशित हो रही हैं वे महल, विमान और प्रासादों पर से रथ को रामहीन देख हाहाकार करती हुई आँसुओं-भरे नेत्रों से परस्पर मुख देखने लगीं। इस समय शत्रु, मित्र और उदासीन—तीनों की आर्तता छोड़ और कुछ भी विशेषता नहीं देख पड़ती। महाराज, इस समय यह अयोध्या नगरी ऐसी हो रही है कि इसमें न तो मनुष्य हर्षयुक्त हैं, न हाथी और न घोड़े प्रसन्न देख पड़ते हैं।

जहाँ देखो वहीं रोना-पीटना, मलिनता और शोक-विलाप ही देख पड़ता है। मुझे तो यह पुरी आनन्द-रहित और राम की वनवास-यात्रा से पीड़ित पुत्रहीन कौशल्या की तरह दीखती है। इस प्रकार सूत का वचन सुन राजा परम दीन होकर गद्गद वाणी से बोले—हे सूत, मैं इस पापिनी कैकेयी की प्रेरणा से जब वर देने को तैयार हुआ उस समय मैंने न तो विचार-चतुर और वयोवृद्ध मन्त्रियों से, न सुहृदों से, न अपने प्राचीन मन्त्रियों से और न स्वदेशीय महाजनों से ही कोई बात स्थिर की या पूछी। केवल मूर्खता से स्त्री के हेतु शीघ्र ही यह बात कर डाली। हे सूत, भवितव्यता के कारण इस कुल के विनाश के लिए यह महादुःख अकस्मात् आ गया। हे सूत, मैंने जो तेरा कुछ उपकार किया हो तो उसके बदले तू मुझे राम के पास पहुँचा; मेरे प्राण निकलने के लिए जल्दी कर रहे हैं। यदि अभी तक भी मेरी आज्ञा से रामचन्द्रजी को लौटा सके तो तू ही जाकर उनको लौटा ला। क्योंकि राम के बिना मैं मुहूर्त्त भर भी न जी सकूँगा। और जो वह महाबाहु दूर निकल गये हों तो मुझे ही रथ पर चढ़ाकर शीघ्र राम को दिखलाओ कि वे महाधनुर्द्धर लक्ष्मण के ज्येष्ठ भ्राता कहाँ वनवास करते हैं। यदि मैं तब तक जीता रहूँगा तो सीता के साथ उनको अवश्य देखूँगा। हा! इससे अधिक दुःख क्या है कि मैं इस अवस्था में पड़ा हूँ, पर राम को नहीं देखता। हा राम! हा लक्ष्मण! हा तपस्विनी सीते! तुम लोग नहीं जानते कि इस दुःख से मैं अनाथ की तरह मर रहा हूँ। मैं राम के बिना इस अपार शोकसागर में डूब रहा हूँ। हे कौशल्या देवी, इसको मैं जीते-जी पार न कर सकूँगा। इस घड़ी मैं लक्ष्मण-सहित राम को देखना चाहता हूँ पर देखने नहीं पता, यह बड़े दुःख की बात है। इस प्रकार विलाप करते-करते महाराज झट मूर्च्छित हो पलँग पर गिर पड़े। राम के लिए विलाप करते हुए राजा जब मूर्च्छित हो गये तब तो राम की माता को दूना भय उत्पन्न हुआ।

---

## ६०वाँ सर्ग

### सूत का कौशल्या को समझाना

पिशाचग्रस्त की तरह भूमि पर पड़ी हुई कौशल्या काँप रही थीं। वे सूत से बोलीं—हे सूत! जहाँ राम, लक्ष्मण और सीता हैं वहाँ हमको पहुँचाओ। क्योंकि उनके बिना मैं जीने का क्षणभर भी उत्साह नहीं करती। इसलिए शीघ्र रथ को फेरकर मुझे दण्डक वन में पहुँचाओ। जो मैं अब उनके पास न जाऊँगी तो यमपुरी को प्रस्थान करूँगी। तब तो सूत आँसू बहाकर हाथ जोड़ गद्गद वाणी से बोला—हे देवि! तुम शोक, मोह और दुःख के उद्वेग को त्यागो। क्योंकि राघव सन्ताप-रहित हो वन में वास करेंगे और लक्ष्मण भी राम के चरणों की सेवा करते हुए धर्मपूर्वक और जितेन्द्रिय हो, अपने परलोक का सुधार कर रहे हैं। सीता भी उस निर्जन वन में घर की भाँति राम में मन लगाकर, भय को छोड़, विश्वासपूर्वक व्यवहार करती है। उसमें थोड़ी भी दीनता नहीं देख पड़ती। मुझको तो वह परदेश में रहने के योग्य जान पड़ती है। जिस प्रकार वह यहाँ नगर के उपवन में जाकर विहार करती थी वैसे ही उस निर्जन वन में भी करती है। जैसे कोई लड़की

खेलती है वैसे वह पूर्ण-चन्द्रमुखी सीता राम की ओर चित्त दिये, अदीन हो, क्रीड़ा किया करती है। क्योंकि उसका मन तो सम्पूर्ण रूप से राम के अधीन हो रहा है; उसका जीवन भी उन्हीं के वश में है। अब तो राम-हीन अयोध्या उसको वन के सदृश जान पड़ेगी। वह जानकी राम और लक्ष्मण से मार्ग के ग्रामों, नगरों, नदियों और नाना प्रकार के वृक्षों को पूछा करती है। अयोध्या से कोस भर पर जो विहारस्थल है उसके तुल्य वह वन उसके लिए हो रहा है। सीता के इन्हीं वृत्तान्तों का मुझे स्मरण होता है। कैकेयी के विषय में जो उसने कहा वह कुछ भी मुझे याद नहीं आता।

इस प्रकार भूल से जो कैकेयी का नाम ले लिया उसको छोड़ सुमन्त्र ने फिर भी कौशल्या के आनन्द-दायक वचन कहे—हे देवि, सीता की चन्द्र-सदृश प्रभा मार्ग के श्रम से, वायु के वेग से, उद्वेग से, या गरमी से भी नहीं बदलती है। कमल और पूर्णचन्द्र के तुल्य उसका मुख मलिन नहीं होता। यद्यपि उसके चरण रँगे हुए नहीं हैं तो भी वे अब तक कमल की तरह लाल-लाल देख पड़ते हैं। वह अपने नूपुरों के द्वारा हंस इत्यादि के गमन को जीतती हुई मजे में चली जाती है। इस समय भी उसने पति की प्रीति के लिए अपने भूषणों को नहीं त्यागा। वन में हाथी, सिंह और व्याघ्र को देखकर वह डरती भी नहीं। क्योंकि रामचन्द्र-जी की भुजा के आश्रय से वह निर्भय रहती है। इस-लिए हे देवि, तुम उन तीनों के निमित्त या अपने विषय में अथवा राजा के लिए कुछ भी शोक मत करो। यह चरित अनन्त काल पर्यन्त विख्यात होकर प्रतिष्ठा पावेगा। वे तो शोक को दूर कर, प्रसन्न मन से महर्षि लोगों के मार्ग पर स्थित हो, वनवास में तत्पर होकर वन्य फलों का भोजन करते हुए पिता की आज्ञा का पालन कर रहे हैं। इस प्रकार उचितभाषी सूत ने कौशल्या को बहुत कुछ समझाया परन्तु पुत्र-शोक से पीड़ित होकर उसने चिल्लाना नहीं छोड़ा। हे प्रिय, हे पुत्र, हे राघव! इस तरह वह बार-बार कहती रही।

---

## ६१वाँ सर्ग

### फिर कौशल्या का विलाप करना और राजा के प्रति कटु वचन कहना

अब रोती हुई कौशल्या पीड़ित होकर पति से बोली—हे महाराज, यद्यपि तीनों लोकों में आपका यश विख्यात है कि राजा दयालु, दाता और प्रियवादी हैं तथापि हे नरश्रेष्ठ, भला कहो तो कि वे दोनों पुत्र, सीता-सहित—जिनका कि सुख से पालन-पोषण किया गया है—दुःखित होकर किस प्रकार से दुःख सहेंगे? तरुणी, श्यामा और सुकुमारी सीता सुखों के योग्य है, वह किस प्रकार से शीत और उष्णता सह सकेगी। फिर जो अच्छे व्यञ्जनों के साथ सुन्दर भोजन करती थी वह किस प्रकार से जङ्गली चावल खावेगी? जो गीत और वाद्य की ध्वनि सुनती थी वह अब वन में किस प्रकार से मांसाहारी सिंहों का भयङ्कर शब्द सुनेगी? जो इन्द्रध्वज के तुल्य, महाभुज और महाबली हैं वे अपनी विशाल भुजा को सिर के नीचे रखकर कहाँ शयन करते होंगे? कमल के तुल्य, सुन्दर केशों से भूषित, कमल-गन्धयुक्त और कमल-नयन उस मुख को अब मैं कब देखूँगी? हा! अवश्य मेरा हृदय वज्र

का है क्योंकि उस मुख को न देखने से इसके सहस्र टुकड़े नहीं हो जाते। महाराज, आपने जो मेरे प्यारों को राज्य से अलग करके निकाल दिया, यह बड़ा निर्दय काम किया। देखो, वे बेचारे सुख के योग्य होकर भी इस समय दीन हो वन में भटक रहे हैं। यदि पन्द्रहवें वर्ष राघव वन से लौटे भी तो भरत राज्य और कोश को छोड़ देंगे—इस बात का मुझे कुछ भी भरोसा नहीं है। देखो, कोई-कोई लोग श्राद्ध में अच्छे विद्वान् ब्राह्मणों को निमन्त्रण देकर पहले अपने ही (वयगुण-हीन) बन्धुजनों को भोजन करवा देते हैं और पीछे से उन निमन्त्रित ब्राह्मणों को भोजन के लिए बुलाते हैं; तो क्या उन ब्राह्मणों में जो गुणवान् और विद्वान् होते हैं वे उन अमृत-तुल्य भोजन-द्रव्यों का अनादर नहीं करते? वे तो वैसे भोजन का परित्याग ही करते हैं। ब्राह्मणों ही के भोजन से बचे हुए अन्न को उत्तम और पण्डित ब्राह्मण अङ्गीकार नहीं कर सकते। क्योंकि उसको अंगीकार कर लेने में वे बैल के शृंगच्छेदन के तुल्य अनादर समझते हैं। इसी प्रकार हे पृथ्वीपते, छोटे भाई के भोगे हुए राज्य का, ज्येष्ठ और श्रेष्ठ भ्राता क्यों न अनादर करेगा? जैसे व्याघ्र दूसरे पशु के मारे हुए जन्तु को खाना नहीं चाहता उसी प्रकार वह नरव्याघ्र रामचन्द्रजी परायी भोगी हुई वस्तु को कदापि अंगीकार न करेंगे। हे प्रभो, जैसे हवि, घृत, पुरोडाश, कुश और खैर के खम्भे (यूप) एक यज्ञ में से लेकर दूसरे यज्ञ में नहीं बर्ते जाते उसी भाँति रामचन्द्रजी इस पराधीन राज्य को, निःसत्व सुरा और सोमरहित यज्ञ की भाँति, कभी ग्रहण न करेंगे। जैसे बलवान् सिंह अपनी पूँछ का खिंचवाना नहीं सह सकता वैसे ही रामचन्द्र इस प्रकार के असत्कार को न सहेंगे। देखो, क्या महासंग्राम में सम्पूर्ण लोक उससे नहीं डरते? परन्तु जो धर्मात्मा अधर्मियों को धर्म सिखलाता है वह किस प्रकार अधर्म करे? हे राजन्, वह महाभुज और महापराक्रमी रामचन्द्र सुवर्णभूषित बाणों से युगान्त की नाईं प्राणियों को और सागरों को भस्म कर सकता है। वह अपने पिता ही के द्वारा ऐसे मारा गया जैसे मत्स्य अपने बच्चों को भक्षण कर डालता है। महाराज! जो आप सनातन, द्विजों के आचरित धर्म को सत्य मानते तो ऐसे धर्मनिष्ठ पुत्र को कभी वनवास न देते। स्त्रियों को पति, पुत्र और बान्धव का ही बड़ा सहारा है; चौथी गति तो है ही नहीं। सो आप तो मेरे हैं ही नहीं, और राम को वन भेज दिया है और मैं वन में भी नहीं जा सकती हूँ। हा! सब प्रकार से हमको आपने मारा। हे राजन्, आपने राष्ट्रसहित राज्य को, मन्त्रियों को, अन्तःपुर की सब स्त्रियों को, पुत्रसहित मुझको और सब पुरवासियों को भी चौपट कर दिया। एक आपका पुत्र भरत और कैकेयी भार्य्या, ये ही दो आनन्दित हुए।

इस प्रकार की दारुण वाणी सुन महाराज दशरथ "हा राम!" कहकर दुःखित हो, मूर्च्छित हो गये और शोकसागर में डूबने लगे। उस समय राजा को अपनी करतूत का स्मरण करके बड़ा दुःख हुआ।

---

## ६२वाँ सर्ग

### राजा और कौशल्या की बातचीत

जब कौशल्या ने क्रोध से इस प्रकार के कठोर वचन कहे तब राजा कुछ काल पर्यन्त चिन्ता कर मूर्च्छित हो गये। उनकी इन्द्रियाँ भी व्याकुल हो गईं।

इसके अनन्तर बहुत देर बाद राजा को चेत हुआ। वे लम्बी उष्ण साँस ले, कौशल्या को पास बैठी देख-कर कुछ सोचने लगे। सोचते-सोचते उनको अपने दुष्ट कर्म का स्मरण हुआ जो पूर्व काल में अज्ञान से उन्होंने तपस्वी को शब्दवेधी बाण मारा था। राम के शोक से तो राजा व्याकुल थे ही, अब यह दूसरा शोक भी प्राप्त हुआ।

उस समय दोनों शोकों से जलते हुए महाराज दशरथ काँपते हुए और नीचे मस्तक किये, कौशल्या को प्रसन्न करने के लिए हाथ जोड़कर बोले—

हे कौशल्ये, मैं तेरी विनती करता और हाथ जोड़ता हूँ। तू तो अपने शत्रुओं पर भी दया-भाव दिखाती और कोमल व्यवहार करती है। हे देवि, यह बात विख्यात है कि धर्म के अनुसार व्यवहार करने-वाली स्त्रियों के लिए पति ही प्रत्यक्ष देवता है, चाहे वह गुणवान् अथवा निर्गुण ही क्यों न हो। तुम तो सदा धर्म में तत्पर और लोक में ऊँच-नीच बात की जाननेवाली हो। ऐसा अप्रिय वचन बोलना तुम्हें शोभा नहीं देता। यद्यपि तू दुःखित है तथापि मुझे भी अति दुःखित जानकर ऐसा वचन कहना तुझे उचित नहीं।

इस प्रकार राजा का करुणा-युक्त वचन सुन कौशल्या अपनी आँखों से आँसू बहाकर, राजा के जुड़े हुए हाथों को अपने मस्तक पर रखकर रोती हुई घबराती सी बोली—

हे देव, आप प्रसन्न हों। मैं आपके चरणों में सिर रखकर प्रणाम करती हूँ। आपने मेरी विनती की, यह बड़े अन्याय की बात हुई। इससे मुझे मरण के तुल्य क्लेश हुआ। मैंने तो ऐसा अपराध किया है कि आपको क्षमा करना उचित नहीं है। उस स्त्री की तो कुलीन स्त्रियों में गिनती ही नहीं जिसको पति (जो कि दोनों लोकों में प्रशंसनीय है) विनती करके प्रसन्न करे। हे धर्मज्ञ, मैं धर्म्म जानती हूँ और आपको भी सत्यवादी समझती हूँ। परन्तु उस घड़ी मैंने जो कुछ कहा सो केवल पुत्रशोक से पीड़ित होकर कहा क्योंकि धीरता, शास्त्र-ज्ञान और सब बातों का शोक नाश कर देता है। शत्रु के हाथ का प्रहार तो सह लिया जा सकता है परन्तु थोड़ा भी शोक नहीं सहा जा सकता। देखो, राम के वनवास की आज पाँचवीं रात्रि है। ये पाँच रातें मेरे लिए पाँच वर्ष हो गईं। उसकी चिन्ता करने से मेरे हृदय में शोक बढ़ता है जैसे नदियों के वेग से समुद्र का जल बढ़ता है।

इस प्रकार कौशल्या बातें कर ही रही थी कि सूर्य छिप गया और रात हो गई। शोक से पीड़ित महाराज दशरथ कौशल्या के मधुर वचनों से आह्लादित हुए। उन्हें नींद आने लगी।

---

## ६३वाँ सर्ग

### राजा का कौशल्या से अपने शब्द-वेधी बाण चलाने की कथा कहना

अब महाराज की तनिक आँख खुली कि राम और लक्ष्मण को वनवास देने के शोक ने उनको फिर आ घेरा। महाराज ने उस समय अपने उस दुष्कृत कर्म को कौशल्या से कहने की इच्छा की।

अब रामचन्द्र के वनवास की छठवीं रात्रि को अर्द्ध रात्रि के समय राजा, अपनी उस पाप-कहानी को सोच कौशल्या से बोले—हे कल्याणि, यह मनुष्य चाहे पुण्य-कर्म करे और चाहे पाप, परन्तु उसका फल अवश्य पाता है। इसलिए इस लोक और परलोक के कर्मों के आरम्भ में जो मनुष्य फल के विषय में गुरुता, लघुता अथवा केवल दोष नहीं जानता वह सर्वथा मूर्ख कहलाता है। जैसे कोई पुरुष आम के वन को काटकर (ढाक) पलाश-वृक्षों को सींचे और फिर पुष्पों को देख फल चाहे तो वह फल के न पाने से शोकित होता है। इसी प्रकार फल को बिना जाने जो कर्म का आरम्भ कर देता है वह फल के समय शोक से वैसे ही व्याकुल होता है, जैसे वह पलाश का सींचने-वाला दुखी होता है। हे देवि, मैंने दुष्ट मति से आम के वन को काटकर पलाश को सींचा—फल-लाभ के समय राम को त्याग करके पीछे से सन्ताप कर रहा हूँ।

हे कौशल्ये, मैंने अपनी कुमारावस्था में ऐसी प्रतिष्ठा चाही "यह कुमार शब्द-वेधी बाण चलानेवाला है," और इसी नामवरी के लिए मैं यह पाप-कर्म्म कर बैठा। हे देवि, अपने हाथ से किये कर्म का फल मुझे मिला। हे कौशल्ये, मैंने ऐसा काम किया कि जैसे मूढ़ता से बालक विष खा लेता है। कोई पुरुष जैसे पलाश के पुष्पों से मोहित हो जाता है उसी प्रकार मैंने अनजाने इस शब्द-वेधी कर्म का फल पाया। हे देवि! सुनो, जिस समय मैं युवराज था और तुम्हारे साथ विवाह नहीं हुआ था उस समय, मेरे काम का वर्द्धक वर्षा-काल आया। सूर्य्य ने भूमि के रसों को सोख लिया और अपनी किरणों से जगत् को तपाकर दक्षिण दिशा की ओर अपना रथ चलाया—अर्थात् दक्षिणायन सूर्य्य हो गया। ग्रीष्म का प्रभाव अन्तर्द्धान होकर स्निग्ध मेघ दीख पड़ने लगे; मण्डूक, हरिण, चातक और मयूर हर्षित हुए। पक्षियों के पक्ष जल से भीग गये थे, उन्होंने वृष्टि के वायु से कम्पित वृक्षों पर बड़े क्लेश से अपना निवास किया।

उस समय बरसे हुए और बार-बार बरसते हुए जल से आच्छादित और मत्त हरिणयुक्त पर्वत समुद्र की नाईं सुन्दर दीख पड़ने लगे। पर्वतों की धातुओं से मिले हुए अनेक सोते, भुजङ्ग की भाँति, टेढ़े-मेढ़े बह निकले। इनमें कोई पाण्डुवर्ण, कोई रक्तवर्ण कोई और निर्मल थे। अब मैं उस सुखदायक समय में अहेर (शिकार) की इच्छा से धनुष और बाण लेकर रथ पर सवार हो सरयू नदी के तट पर गया। रात्रि के समय नदी-किनारे जहाँ भैंसा, हाथी, मृग, तेंदुआ और चीता इत्यादि जन्तु पानी पीने आते थे वहाँ उन्हें मारने के लिए मैं तैयार बैठा था। इसी समय, अन्धकार में, कोई जल भरने लगा। उसके घड़े का शब्द सुन मैंने जाना कि हाथी गर्ज रहा है। बस, मैंने प्रज्वलित सर्प के तुल्य बाण तरकस से निकाल उस हाथी को बेधने की इच्छा से, शब्द को लक्षित कर, चलाया। वह समय प्रातःकाल का था।

उस समय बाण के चलाते ही पहले तो हा-हा शब्द सुन पड़ा, क्योंकि बाण से उस तपस्वी के मर्म छिद गये थे और वह जल में गिर पड़ा था। जब वह धरती पर गिर पड़ा तब इस प्रकार मनुष्य की वाणी सुन पड़ी कि हा! मेरे ऐसे तपस्वी को क्यों ऐसे शस्त्र लगा। मैं तो रात्रि में नदी को एकान्त पाकर जल भरने आया था। किसने मुझे बाण मारा और किसका मैंने अपराध किया? अहो! जिस ऋषि ने दण्ड का त्याग कर दिया और जो वन में फल-मूल इत्यादि से

अपनी जीविका कर रहा है उसका वध क्यों किया जाता है ? अरे मैंने तो जटाभार धारण कर वल्कल और मृगचर्म को अपना वस्त्र बनाया है। इस प्रकार की अवस्था में भी कौन मेरे वध से अपना अर्थ-साधन करना चाहता है ? अथवा किसका मैंने अपराध किया है ? यह कर्म तो निष्फल है और केवल अनर्थ उत्पन्न करनेवाला है। गुरु की शय्या पर सोनेवाले मनुष्य की जैसे इस लोक में और परलोक में भी कुगति होती है वैसे ही इसे भी कोई भला न कहेगा। मैं अपने मरने की चिन्ता नहीं करता, क्योंकि वृद्ध माता-पिता का मैंने बहुत काल पर्यन्त भरण-पोषण किया। पर अब मेरे मरने से उनकी गुजर किस प्रकार होगी ? हा ! किस दुर्बुद्धि मूर्ख ने एक ही बाण मारकर मेरा संहार कर दिया। मेरे मर जाने से मेरे वृद्ध माता-पिता भी मारे गये !

हे कौशल्ये, इस प्रकार की करुण वाणी सुनकर मैं ऐसा पीड़ित हुआ कि मेरे हाथ से बाण-सहित वह धनुष भूमि पर गिर पड़ा। उस रात में ऋषि के विलाप से मैं उद्विग्न और शोक के वेग से अचेत हो गया।

इसके अनन्तर दीन और उदास होकर मैंने सरयू के तीर पर जाकर देखा कि बाण से घायल एक तपस्वी पड़ा है। उसकी जटाएँ बिखरी हुई हैं और एक ओर उसका घड़ा पड़ा है। उस बाण के धँस जाने से, रुधिर और धूल से उसका शरीर भर गया है। उस समय वह तपस्वी मुझको देखकर अपने नेत्राग्नि से मुझको भस्म सा करता हुआ कठोर वचन बोला—हे राजन्, मैं वनवासी हूँ। अपने माता-पिता के लिए मैं जल भरने आया था। मैंने भला तुम्हारा ऐसा क्या अपराध किया कि तुमने मुझको मारा। हा, देखो यह एक ही बाण मेरे मर्मस्थल में धँसा है, इससे मैं तो मर ही जाऊँगा पर मेरे माता-पिता भी न बचेंगे। वे दुर्बल और अन्धे हैं, और मेरी बाट देखते प्यासे बैठे होंगे। हा ! बहुत देर से लगी हुई प्यास को वे दोनों क्लेश से आशापूर्वक धारण किये होंगे। हा ! तपस्या का या अध्ययन किये हुए शास्त्र का कुछ भी सम्बन्ध न ठहरा। मैं यहाँ भूमि पर पड़ा हूँ और पिता को इसकी कुछ खबर नहीं और वे जान करके भी क्या कर सकते हैं, क्योंकि वे तो चलने में भी असमर्थ हैं। किसी उपद्रव से छिन्न होते वृक्ष को जैसे दूसरा वृक्ष नहीं बचा सकता इसी प्रकार वे भी मेरी रक्षा नहीं कर सकते।

हे राघव, तुम शीघ्र जाकर मेरे पिता को यह समाचार दो; नहीं तो वे क्रोध में भरकर तुमको भस्म कर डालेंगे जैसे कि अग्नि वन को जला देता है। हे राजन्, यह जो पगडंडी देख पड़ती है यही मेरे पिता के आश्रम तक चली जाती है। इसी मार्ग से जाकर तुम मेरे पिता को प्रसन्न करो, नहीं तो क्रोध कर वे तुमको शाप देंगे। हे राजन्, मेरे मर्मस्थल में जो यह बाण धँसा है इसको निकाल लो। मेरे कोमल मर्मस्थान को यह बाण उसी प्रकार पीड़ा दे रहा है जैसे जलकामय ऊँचे तट को नदी के जल का वेग काट देता है।

हे कौशल्ये, उस समय मुझे यह चिन्ता हुई कि जब तक बाण छिदा है तब तक यह मुनि क्लेश पाता है; और यदि मैं बाण खींच लूँगा तो इसके प्राण निकल जायँगे। इस प्रकार उस बाण के निकालने में मुझे बड़ी चिन्ता हुई। मैं शोक से व्याकुल हो गया। मुझे चिन्ताग्रस्त और सन्तप्त देखकर ऋषि बोला। वह शास्त्रज्ञ मुनि मेरे तात्पर्य को जान गया था। उसने कहा—हे राजन्, यद्यपि मैं पीड़ित हूँ, मेरी आँखों में विकार हो गया है, कष्ट के मारे मैं छटपटाता हूँ

और चेष्टा-रहित हो गया हूँ तथापि अपने धैर्य्य से शोक को रोककर सचेत होता हूँ। हे राजन्, सुनो—मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, इसलिए आप ब्रह्महत्या के पाप का भय न कीजिए और अपने मन की व्यथा दूर कर दीजिए। हे भूपाल, मैं वैश्य पिता और शूद्र माता से उत्पन्न हुआ हूँ।

हे देवि ! इस प्रकार बड़े क्लेश से उस ऋषि-पुत्र के बोलते ही मर्मान्तक पीड़ा से उसकी दोनों आँखें घूमने लगीं। वह चेष्टा-रहित होकर काँपने लगा। उसकी यह दशा देख मैंने बाण खींच लिया; और बाण के निकालते ही उस ऋषि-पुत्र ने मेरी ओर देखा और डरकर प्राणों को त्याग दिया।

हे भद्रे, उस समय जल से भीगा हुआ वह तपस्वी प्राण-रहित होकर सरयू में पड़ा था। उसको देखकर मुझे अत्यन्त विषाद हुआ।

---

## ६४वाँ सर्ग

### मुनि-पुत्र की कथा सुनाते-सुनाते राजा दशरथ का प्राण त्यागना

इस प्रकार महाराज दशरथ कौशल्या से उस मुनि-पुत्र के वध की बात कहते और विलाप करते जाते थे। राजा फिर बोले—हे देवि, मैं अज्ञान से उस महापाप को करके व्याकुल हो, अकेला सोचने लगा कि अब मैं क्या करूँ जिससे कुछ कल्याण हो। सोच-विचारकर, मैं उस मुनि-पुत्र के घड़े को जल से भरकर उसी पगडण्डी से मुनि के आश्रम में गया। हे कौशल्ये, वहाँ जाकर देखा तो, बिना पङ्ख के दो पक्षियों की तरह, उसके माता-पिता वृद्ध और दुर्बल, दीन और अकेले बैठे हैं। वे अपने पुत्र की चर्चा करते और जल की आशा कर रहे थे। पर मेरे हाथ से उनका आशा-तरु छिन्न हो चुका था। मैं शोक से व्याकुल और भय से त्रस्त तो था ही परन्तु अब आश्रम में जाकर और भी अधिक शोकग्रस्त हो गया। मेरे पैरों की आहट सुनकर वह मुनि बोला :—

हे मेरे पुत्र, क्यों विलम्ब करते हो ? शीघ्र जल ले आओ। हे तात, तुम इतनी देर तक जल में खेले इसलिए यह तुम्हारी माता उत्कण्ठित हो रही है। शीघ्र आश्रम में आओ और जो हम दोनों ने तुम्हारा कुछ अप्रिय किया हो तो उसको अपने मन में मत रक्खो। हे पुत्र, हम गति-रहित और नेत्रहीन हैं, तुम हमारी गति और नेत्र हो। तुम्हीं में हमारे प्राण लग रहे हैं। भला तुम बोलते क्यों नहीं ?

हे देवि, उस मुनि ने व्यञ्जनाक्षर-रहित अस्पष्ट और गद्गद वाणी से वह बातें कहीं। तब मैंने मन की कर्मचेष्टाओं से अपनी वाणी के बल को थामकर उस मुनि को पुत्र-दुःख का भय इस प्रकार कह सुनाया—भगवन्, मैं आपका पुत्र नहीं; मैं दशरथ नामक क्षत्रिय हूँ। मैंने अपने निन्दित और पाप कर्म का दुःख पाया। भगवन्, मैं हाथ में धनुष लेकर सरयू-तट पर आया था। मेरी इच्छा थी कि यदि नदी के जल-युक्त तट पर कोई व्याघ्र या हाथी आवे तो उसे मारूँ। इतने में मैंने घड़े में जल भरने का शब्द सुन, हाथी का शब्द समझकर, बाण मारा और तीर पर जाकर देखा कि भूमि में एक प्राण-रहित तपस्वी पड़ा है जिसका हृदय

बाण से छिन्न-भिन्न हो गया है। तब, उसी के कहने से, अत्यन्त ताप देनेवाले बाण को मैंने उसकी छाती से निकाल लिया। बाण के खींचते ही वह स्वर्ग को सिधारा और मरने के पहले उसने अपने वृद्ध माता-पिता के लिए विलाप किया।

भगवन्, मैंने अज्ञान से आपके पुत्र को मारा। अब जो होना था सो हो गया। आप मुनि हैं। मेरे ऊपर कृपा कीजिए। हे कौशल्ये, इस प्रकार मेरे मुख से क्रूर वचन सुनकर वह भगवान् ऋषि मुझे, अपने आप ही अपराध सुना देने के कारण, तीव्र शाप न दे सके। अस्तु, वे दोनों रोने और निःश्वास छोड़ने लगे, फिर मूर्च्छित होकर मुझसे बोले—

राजन्, जो तू अपने इस कर्म को मेरे सामने आप ही न कहता तो तेरे मस्तक के हजार टुकड़े हो जाते। राजन्, जो क्षत्रिय ज्ञानपूर्वक वानप्रस्थाश्रमी का वध करे तो—चाहे वह इन्द्र क्यों न हो,—स्थान से च्युत हो जाय, और जो मुनि तपस्या करता हो और ब्रह्मवादी हो, उस पर जो जान-बूझकर शस्त्र चलावे तो उसके सिर के सात टुकड़े हो जायँ। तू ने अज्ञान से यह काम किया है इसी से अब तक जीता है, नहीं तो इस घड़ी रघु के कुल का नाश हो जाता; तुम्हारी तो बात ही क्या है। हे नृप, अब तू मुझे वहाँ पहुँचा जहाँ मेरा बेटा पड़ा है। मैं उस पुत्र का अन्तिम दर्शन करना चाहता हूँ कि किस प्रकार से वह रुधिर से भरा है; कैसे उसके वस्त्र और मृगचर्म तितर-बितर हो गये हैं। वह किस तरह कहाँ पड़ा है।

हे कौशल्ये, उन दोनों दुखियों की बात सुनकर मैं उनको उस लड़के के पास ले गया। उन्होंने उसे हाथ से छुआ। तब तो वे दोनों तपस्वी उस मृतक की देह पर गिर पड़े। उसका पिता बोला—हे वत्स, तू क्यों नहीं मुझे प्रणाम करता? क्यों नहीं मुझसे बोलता? क्यों भूमि पर सो रहा है? क्या तू मेरे ऊपर क्रुद्ध है? हे पुत्र, जो मैं तुझे अप्रिय हो गया हूँ तो अपनी धर्मिष्ठ माता को देख! तू इस समय क्यों नहीं आलिङ्गन करता! हे पुत्र, सुकुमार वचन बोल। अब मैं पिछली रात्रि में शास्त्र पढ़ने का, किसका मधुर और मनोहर शब्द सुनूँगा? अब कौन सन्ध्योपासन, स्नान और हवन कर मेरे पास आ मुझे उबटन लगा नहलावेगा-धुलावेगा? मैं इस समय पुत्र-शोक भय से पीड़ित हूँ। मेरे ऐसे कर्म्महीन और अनाथ को प्रिय अतिथि की भाँति कन्दमूल-फल लाकर कौन भोजन देगा और इस अन्धी तपस्विनी, पुत्रस्नेहवती तेरी वृद्धा माता को मैं किस प्रकार पालूँगा? हे पुत्र, ठहर जाओ। कल मेरे साथ अपनी माता को लेकर यमपुरी को प्रस्थान करना। आज मत जाओ। हम दोनों शोकपीड़ित, अनाथ, दीन और तुमसे रहित होकर शीघ्र ही यमराज के स्थान को जायँगे और कहेंगे कि हे धर्मराज, मेरा अपराध क्षमा कीजिए। हमको ऐसी अक्षय और अभय दक्षिणा दीजिए कि यह बालक हम दोनों का पालन करे। आप धर्मात्मा और महायशस्वी लोकपाल हैं। मुझ अन्धे अनाथ को आप इस प्रकार दे सकते हैं। हे पुत्र, इस पापी ने तेरे प्राण ले लिये। तू तो पापरहित है, इसलिए तू अपने सत्यबल से उस लोक को जा जिसमें कि अस्त्रों से मारे गये लोग जाते हैं। हे पुत्र, संग्राम में मुँह न मोड़नेवाले शूर लोग, शत्रु के हाथ से मारे जाने पर, जिस गति को प्राप्त होते हैं, उस उत्कृष्ट गति को तू प्राप्त हो। हे पुत्र! सगर, शैव्य, दिलीप, जनमेजय, नहुष और धुन्धुमार जिस गति को प्राप्त हुए उस गति को तू प्राप्त हो। हे पुत्र, स्वाध्याय और तप से जो गति सब प्राणियों की होनी है वह तुझे प्राप्त हो। हे वत्स!

भूमिदाता, अग्निहोत्री, एक-पत्नीव्रत, सहस्र गौ देनेवाले, गुरुसेवक और महा प्रस्थान से शरीर त्यागनेवाले लोग जिस गति को जाते हैं, उस गति को तू भी जा। क्योंकि इस कुल में ऐसा कोई नहीं हुआ जो नीच गति को प्राप्त हुआ हो। पाप-गति तो उसी दुष्ट की होगी जिसने तुमको मारा है।

इसी प्रकार बार-बार कहते और करुणा करते हुए उस मुनि ने अपनी भार्या के साथ पुत्र को जलाञ्जलि दी। इतने में वह मुनिपुत्र अपने सुकर्म के बल से दिव्यरूप होकर इन्द्र के साथ स्वर्ग को गया। उसने पिता से कहा—हे पिता, आप दोनों की शुश्रूषा करने से मैं बड़े पद को प्राप्त हुआ हूँ। आप भी शीघ्र मेरे पास आवेंगे। यह कहकर वह जितेन्द्रिय मुनि-पुत्र, बहुत सुन्दर दिव्य विमान पर चढ़कर स्वर्ग को प्राप्त हुआ।

हे कौशल्ये, मैं हाथ जोड़े खड़ा था। वह तापस भार्या के साथ पुत्र की जलक्रिया कर अब मुझसे बोला—राजन्, इसी क्षण तुम मुझे भी मार डालो। मुझे मरने में अब पीड़ा न होगी; क्योंकि तुमने मुझको बिना पुत्र का कर दिया। मेरा एकमात्र वही पुत्र था। हे राजन्, यद्यपि तुमने अज्ञान से मेरे पुत्र को मारा है, तथापि मैं तुमको कठोर शाप देता हूँ। इस समय मुझको जैसा यह पुत्र-दुःख हुआ है इसी प्रकार के पुत्रशोक से तुम्हारी भी मृत्यु हो। हे नराधिप, तुमने अज्ञान से मुनि का घात किया है इसलिए तुमको ब्रह्म-हत्या नहीं लगी परन्तु इसी प्रकार का घोर दुःख तुमको भी होगा और वही तुम्हारे जीव का अन्त करेगा। हे देवि, इस प्रकार मुझे शाप देकर उन दोनों ने बहुत विलाप किया, फिर चिता जलाकर भस्म हो वे स्वर्ग को चले गये।

अब इस चिन्ता के द्वारा उस पाप का मुझे स्मरण हुआ, जिसे मैंने अपनी मूढ़ता से शब्दवेधी बाण के द्वारा किया था। हे देवि, उस कर्म का विपाक इस तरह आकर उपस्थित हुआ है जैसे अपथ्य पदार्थों के साथ खाये हुए अन्न से व्याधि उत्पन्न होती है। हे भद्रे, उस उदार मुनि की वह बात इस समय उपस्थित है। महाराज दशरथजी रुदन कर और त्रस्त होकर, भार्या से बोले—हे कौशल्ये, मैं पुत्रशोक से अब प्राण-त्याग करना चाहता हूँ, नेत्रों से मुझे तू देख नहीं पड़ती। तू मुझे छू। यमराज के पास जाते समय मरणासन्न प्राणियों को आँखों से नहीं सूझता। हा! इस घड़ी जो कहीं राम मुझे छुएँ, या धन अथवा यौवराज्य प्राप्त करें तो मैं अवश्य बच जाऊँ। हे देवि, राम के विषय में जो मैंने किया वह योग्य नहीं है, परन्तु जो उन्होंने मेरे साथ किया है वह सर्वथा उचित है। देखो, ऐसा कौन होगा जो दुराचारी पुत्र को भी त्याग करेगा, और कौन ऐसा पुत्र होगा जो घर से निकाले जाने पर पिता की निन्दा न करे? हे कौशल्ये, मैं तुमको नेत्रों से नहीं देखता। मेरी स्मरण-शक्ति नष्ट होती चली जाती है। ये यमराज के दूत मुझे ले जाने के लिए शीघ्रता कर रहे हैं। अब इससे बढ़कर दुःख और क्या है कि मैं प्राणनाश के समय भी उस सत्य-पराक्रमी धर्मज्ञ राम को नहीं देख सकता। हे देवि, उस पुत्र को न देखने का शोक मेरे प्राणों को सोख रहा है, जैसे कि गरमी जल को सुखा देती है। वे मनुष्य नहीं किन्तु देवता हैं, जो पन्द्रहवें वर्ष—मनोहर कुण्डल धारण किये—राम के मुख को देखेंगे। हे कौशल्ये, धन्य हैं वे लोग जो उस समय कमल-नेत्र, सुन्दर भ्रुकुटि और मनोहर नासिकायुक्त राम के चन्द्रमुख को देखेंगे। वे लोग सुखी होंगे जो वनवास से फिर अयोध्या में आये राम को देखेंगे, जैसे पिंजड़े से उड़ गये सुग्गे को फिर

लौट आया देखकर लोग आह्लादित होते हैं। हे कौशल्ये, चित्त के मोह से हृदय में अत्यन्त पीड़ा हो रही है—फटा सा जाता है। इस पीड़ा से शब्द, स्पर्श और रसों का ज्ञान जाता रहा है। हे देवि, जैसे तैलहीन दीपक का प्रकाश क्षीण होता है, उसी प्रकार चित्त के नाश से मेरी इन्द्रियाँ नष्ट हो रही हैं। हे भद्रे, जिस प्रकार नदी का वेग तट को तोड़ता है उसी प्रकार, अपने शरीर ही से उत्पन्न हुआ यह शोक मुझ अनाथ और अचेतन का घात कर रहा है। हा महाबाहो! हे राघव! हा! मेरे श्रम को दूर करनेवाले, हा! पिता के प्रिय, हे मेरे नाथ, हा! मेरे पुत्र, तुम चले गये! हा! कौशल्ये, अब मुझे नहीं सूझता। हा! तपस्विनी सुमित्रे, हा! क्रूरे, मेरी शत्रुरूप कुलनाशिनि, कैकेयि!!!

इस प्रकार महाराज दशरथजी राम की माता और सुमित्रा के समीप विलाप तथा शोक करते-करते अपने जीवन के अन्त को प्राप्त हुए। प्रिय पुत्र के वनवास से व्याकुल, अत्यन्त दुःख से पीड़ित और दीन राजा अर्द्धरात्रि के समय प्राणों को त्याग कर स्वर्गलोक को सिधारे।

---

## ६५वाँ सर्ग

### राजा के लिए अन्तःपुर की स्त्रियों का विलाप

स्तुति-पाठक और मागध लोग अच्छी तरह वंश की परम्परा को जानते थे और सूत लोग व्याकरण इत्यादि शिक्षा से शिक्षित और गवैये भी थे। ये लोग प्रातःकाल उस राजभवन में आकर उपस्थित हो पृथक्-पृथक् अपनी-अपनी वाणियों का उच्चारण करने लगे। ये लोग ऊँचे स्वर से राजा की स्तुति कर रहे और आशीर्वाद दे रहे थे। इनकी आवाज से सम्पूर्ण राजभवन भर गया। इसके अनन्तर ताली बजाने में बड़े निपुण वाणिवादक लोग, ताली बजा-बजाकर राजा के प्राचीन और अद्भुत कर्मों का वर्णन करने लगे। तालियों के उस शब्द से शाखा-वासी, और पींजरे में रहनेवाले (राजा के पालतू) पक्षि-गण, जाग उठे और चहचहाने लगे।

उस समय उनके मधुर शब्दों से, वीणा की ध्वनि और आशीर्वाद-वाक्यों से, गान और इतिहास इत्यादि गाथाओं से वह राजभवन भर गया। इसके अनन्तर शुद्ध व्यवहारवाली, राजसेवा में चतुर स्त्रियाँ और नपुंसक (हीजड़े) लोग प्रति दिन की रीति के अनुसार आकर उपस्थित हुए। महाराज के स्नान करनेवाले लोग स्नान-शिक्षा में बड़े दक्ष थे। वे सुवर्ण के घड़ों में हरिचन्दन मिश्रित जल भरकर समय पर विधि से ले आये। तदनन्तर पवित्र कुमारियों के साथ उत्तम स्त्रियों ने प्रातःकाल राजा के छूने योग्य, आचमन एवं भक्षण करने योग्य पदार्थ और दर्पण, वस्त्र, आभरण इत्यादि लाकर रक्खे। इस प्रकार महाराज की सारी प्रातःसामग्री इकट्ठी हुई जो कि सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त, विधिपूर्वक पूजित, सर्वगुणयुक्त और सर्वशोभायुक्त थी। सूर्योदय पर्यन्त सब लोग महाराज को देखने की इच्छा से उत्कण्ठित थे कि क्या कारण है जो अब तक महाराज नहीं जागे।

अब कोशलेन्द्र राजा दशरथजी के शयनस्थान की रक्षा करनेवाली स्त्रियाँ, पास जाकर, उनको जगाने लगीं। जो स्त्रियाँ राजा को छू सकती थीं, उन्होंने उस समय विनय और नीति के अनुसार राजा को हाथ

लगाकर देखा तो जीव की कुछ चेष्टा न पाई। वे सब की सब नींद के लक्षणों को भली भाँति जानती थीं। उन्होंने राजा की नाड़ी देखी, धुकधुकी की जाँच की, पर कुछ न पाया। तब वे काँपने लगीं और राजा के प्राणों के विषय में शङ्कायुक्त हो गईं। उस समय वे स्त्रियाँ ऐसी काँप रही थीं जैसे नदी के सोतों में बेत काँपा करते हैं। इस प्रकार राजा को देखकर उन स्त्रियों को जिस बात का सन्देह हुआ था, उसका उन्होंने निश्चय किया। पुत्र-शोक से ग्रस्त कोशल्या और सुमित्रा उस समय सो रही थीं। कान्ति-रहित, वर्ण-हीन, पीड़ित और शोकयुक्त कौशल्या उस समय अन्धकार से घेरी हुई तारा की नाईं देख पड़ती थी।

अन्तःपुर की इन दोनों रानियों को सोती देख और राजा को निद्रितावस्था ही में प्राणहीन समझ, वे स्त्रियाँ जोर से रोने लगीं, जैसे कि वन में बिना हाथी के हथिनियाँ चिल्लाती हैं। इतने में, उनके रोदन-शब्द से कौशल्या और सुमित्रा जाग उठीं। पति की वैसी दशा देख जोर से "हा भर्त्ता" कहकर वे भूमि पर गिर पड़ीं। कौशल्याजी भूमि पर लोट रही थीं और धूलि से धूसर हो गई थीं। उस समय वे आकाश से गिरी हुई तारा की नाईं दिखाई देती थीं। राजा को प्राणहीन और कौशल्या को भूमि पर गिरी देख कैकेयी-प्रमुख सब रानियाँ रोती हुईं, शोक से सन्तप्त और मूर्च्छित होकर, भूमि पर गिर पड़ीं।

उन स्त्रियों के रोने का इतना शब्द हुआ कि वह सम्पूर्ण राजमहल नादित हो गया। उस समय महाराज दशरथ का भवन त्रासयुक्त और व्याकुल उत्कण्ठित जनों से भर गया; चारों ओर महा कोलाहल हुआ; परिताप से पीड़ित बन्धु-जनों से वह भर गया और आनन्द-रहित हो गया। सब राज-पत्नियाँ राजा को घेरकर अत्यन्त रोने लगीं और अनाथ की तरह विलाप करने लगीं।

---

## ६६वाँ सर्ग

### रानियों का विलाप

अब कौशल्या ने राजा को शान्त अग्नि के तुल्य, जलरहित समुद्र के सदृश और प्रभाहीन सूर्य की भाँति प्राणहीन देखकर रोते-रोते महाराज के मस्तक को गोदी में लेकर कहा—हे कैकेयी, अब तू कृतार्थ होकर अकण्टक राज्य को भोग। हे क्रूरे, दुष्टाचारिणि, राजा को छोड़ अब तू एकाग्र हो। राम तो मुझे छोड़ चले ही गये थे, अब पति भी स्वर्ग को गये। अब मैं किसी प्रकार जीने का उत्साह नहीं करती। हा! ऐसी कौन स्त्री होगी कि जो अपने देवता स्वरूप पति को छोड़ जीना चाहेगी। एक कैकेयी ने अपना धर्म छोड़ दिया है। इसके सिवा ऐसा कर्म कोई स्त्री न करेगी। देखो कुब्जा के कहने से कैकेयी ने रघुवंशियों के कुल का नाश किया जैसे कि लोभी किम्पाक नाम विष को भक्षण करके उसके दोषों का विचार नहीं करता*। हा! जब जनक राजा सुनेंगे कि अनुचित रीति से दबाये जाकर महाराज दशरथ ने रामचन्द्रजी को और सीताजी को वनवास दिया तब उनको कैसा सन्ताप होगा। हा! रामचन्द्र, जीते ही यहाँ से अदृश्य हो गये। वे मुझको आज अनाथ और विधवा न जानेंगे और विदेह-राज की कन्या, जो तपस्विनी और

*दूसरी बात यह भी कही जाती है और वह ठीक भी है कि पराया माल मारने के लिए लोभी, दूसरे को विष देकर, हत्या के दोष की परवा नहीं करता।

दुःख के अयोग्य है, वन में उद्वेग पावेगी। जब सीता रात्रि में भयङ्कर नाद करते मृग और पक्षियों के शब्द को सुनेगी तब डरकर रामचन्द्रजी का सहारा लेगी। हा! जनक राजा की केवल कन्या ही सन्तति है। वे वृद्ध भी हैं। उस वैदेही की याद कर वे शोक से व्याकुल हो, प्राण त्याग देंगे। जो हो, मैं पतिव्रता आज ही मरूँगी और महाराज के शरीर का आलिङ्गन कर अग्नि में प्रवेश करूँगी।

इस प्रकार विलाप करती कौशल्या को व्यवहार-चतुर कर्मचारियों ने राजा के शरीर से अलग किया और लाश को दुर्गन्ध इत्यादि दोषों से बचाने के लिए तेल से भरे कड़ाह में रख दिया। राजाज्ञानुसार वे सब काम (शोक मनाना आदि) करने लगे। मन्त्री लोग धर्म्मज्ञ थे अतः पुत्र के बिना वे राजा का दाहादि कर्म न कर सके। मन्त्रियों ने जिस समय तेल से भरे कड़ाह में राजा को रक्खा उस समय स्त्रियाँ राजा का मरण निश्चय जान, "हा! महाराज, अन्तकाल को प्राप्त हुए" कहकर अत्यन्त विलाप करने लगीं। अपनी भुजाएँ उठा-उठाकर वे नेत्रों से आँसू बहाने और शोक-सन्तप्त हो विलाप करने लगीं। हा! महाराज, सत्य-सन्ध और प्रियवादी रामचन्द्रजी से तो हम बिछुड़ ही गईं, अब आप क्यों हमको छोड़े जाते हो? हम राम-चन्द्रजी से बिछुड़कर, इस दुष्ट स्वभाव की कैकेयी के समीप विधवा होकर कैसे रहेंगी? रामचन्द्रजी तो हमारे और आपके जीवन के नाथ थे। सो वे राजश्री छोड़ वन को चले गये। अब हम तुम्हारे और उनके बिना दुःखमोहित होकर, कैकेयी के तिरस्कार को सहती हुई किस प्रकार रहेंगी! जिसने राजा को, राम-लक्ष्मणजी को और सीता को भी छोड़ दिया, वह किसी को न छोड़ेगी?

दशरथ की रानियाँ इस प्रकार आँसू बहाती, महा शोकग्रस्त और आनन्द-रहित हो छटपटाने लगीं। उस समय वह अयोध्यापुरी नक्षत्रहीन रात्रि की नाईं और पतिहीन स्त्री की नाईं शोभा-रहित देख पड़ती थी। जहाँ देखो वहीं लोग रो रहे हैं। स्त्रियाँ हाहाकार मचा रही हैं। चौतरे और घर शून्य तथा शोभा-रहित हो रहे हैं। इस प्रकार स्त्रियों के रोते-रोते सूर्य्य अस्त हुआ और रात हो गई। पुत्र के बिना राजा की और्द्ध्व-दैहिक क्रिया करना उचित न समझ मंत्रियों ने उस मृत शरीर को तेल से भरे कड़ाह में रख दिया।

उस महात्मा राजा के बिना वह पुरी ऐसी तेजरहित और प्रभाहीन देख पड़ती थी जैसे कि सूर्य्य के बिना आकाश और नक्षत्रों बिना रात्रि देख पड़ती है। पुरुषों और स्त्रियों के झुण्ड के झुण्ड इधर-इधर इकट्ठे हो भरतजी की माता की निन्दा करते हुए कुछ भी सुख न पाते थे।

---

## ६७वाँ सर्ग

### वशिष्ठ इत्यादि सभासदों का राज्य के विषय में विचार करना

अब किसी प्रकार रोते-पीटते वह रात बीती और प्रातःकाल हुआ, तब सूर्योदय के समय राजाधिकारी ब्राह्मण लोग इकट्ठे होकर सभा में आये। मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, काश्यप, कात्यायन, गौतम और जाबालि ने सब मन्त्रियों के साथ राज-पुरोहित वशिष्ठ की ओर देखकर कहा—यह रात हमारे लिए सौ वर्ष के तुल्य बीती। पुत्र के शोक से महाराज तो स्वर्ग

को पधारे और रामचन्द्रजी वन को गये । लक्ष्मणजी भी उन्हीं के साथ चले गये। भरतजी और शत्रुघ्न दोनों भाई केकय देश में अपने नाना के घर हैं । इसलिए, इक्ष्वाकुवंश के किसी पुरुष को राज्यासन पर स्थापित करना चाहिए; नहीं तो राजा के बिना हमारा राष्ट्र नष्ट हो जायगा। देखिए, जिस देश में राजा नहीं होता वहाँ विद्युन्मालायुक्त मेघ महास्वन से पृथ्वी पर दिव्य जल नहीं बरसाते; न बीज बोया जाता है, न पुत्र पिता के वश में रहता और न भार्या पति के वश में रहती है। राजरहित देश में न धन रहता और न भार्या रहती है। जब ऐसी महा भयङ्कर व्यवस्था है तब और-और व्यवहारों में सत्यता कहाँ से पाई जायगी ? देखिए, राजरहित राष्ट्र में प्रजा-जन न तो सभा का, न रमणीय वाटिका का और न पवित्र गृहों का निर्माण करते हैं और न कठोर-व्रतयुक्त ब्राह्मण लोग यज्ञों तथा सत्रों का आरम्भ करते हैं। अराजक देश में धन-सम्पन्न होने पर भी ब्राह्मण लोग यज्ञों में ऋत्विजों को उचित दक्षिणा नहीं देते। नट और नर्तक हर्षयुक्त नहीं रहते; उत्सव और समाज—जिनसे कि देश को हर्ष होता है—वृद्धि को प्राप्त नहीं होते। राजहीन देश में व्यवहार-वालों का—दूकानदारों का—मनोरथ पूर्ण नहीं हो सकता; कथा कहनेवाले लोग कथा-प्रिय लोगों को अनुराग के साथ कथा-पुराण नहीं सुना सकते। अराजक राष्ट्र में सुवर्ण के आभूषणों से भूषित कुमारि-काएँ एकत्र होकर सायंकाल में वाटिका और उपवन में क्रीड़ा करने को नहीं आ-जा सकतीं। अराजक राष्ट्र में धनवान् और जो खेत और गौ इत्यादि की रक्षा करने-वाले हैं वे, अपने द्वार खुले छोड़ सुख की नींद नहीं सो सकते। अराजक जन-पद में कामी लोग, अपनी-अपनी स्त्रियों को लेकर सवारी में बैठ जङ्गल में विहार करने नहीं जा सकते। अराजक राष्ट्र में बड़े दाँतोंवाले साठ-साठ बरस के हाथी घण्टों को घनघनाते हुए राज-मार्गों से नहीं चल सकते। अराजक देश में बाण चलानेवालों के अभ्यास-समय हस्ततल का शब्द नहीं सुन पड़ता अर्थात् कोई धनुर्विद्या का अभ्यास नहीं करता। अराजक राष्ट्र में दूर जानेवाले व्यापारी लोग विक्रय-सामग्री लेकर कुशलपूर्वक मार्ग में नहीं चल सकते । अराजक देश में अकेले अपने आत्मा से आत्मा की भावना करनेवाले अर्थात् ब्रह्म का ध्यान करनेवाले जितेन्द्रिय, और जिस स्थान में सन्ध्याकाल हो जाय वहीं ठहर जानेवाले मुनि लोग नहीं चल-फिर सकते। अराजक देश में न अप्राप्य वस्तुएँ प्राप्त हो सकती हैं और न प्राप्य वस्तुओं की रक्षा ही हो सकती है। संग्राम में सेना शत्रु का सामना भी नहीं कर सकती। अराजक देश में मनुष्य बढ़िया घोड़ों पर या रथों पर सवार हो, भूषित होकर, एकाएकी बाहर नहीं निकल सकते। अराजक देश में शास्त्रज्ञ लोग वनों या उपवनों में निधड़क शास्त्र का विचार नहीं कर सकते । अराजक देश में देवपूजक लोग देवताओं के लिए माला, मोदक और दक्षिणा प्रस्तुत नहीं कर सकते । राजा-रहित राष्ट्र में राजपुत्र लोग चन्दन और अगर से सुगन्धित हो ऐसे शोभित नहीं होते जैसे कि वसन्त ऋतु में वृक्ष सुहावने हो जाते हैं । जैसे बिना जल की नदी, बिना तृण का वन और बिना चरवाहे की गायें शोचनीय हैं, वैसे ही बिना राजा का देश है। रथ का चिह्न ध्वजा और अग्नि का चिह्न धूम है। राजकर्मचारियों के और हम लोगों के ध्वजारूप जो राजा थे, वे देवयोनि को प्राप्त हो गये । राज-रहित देश में कोई किसी का नहीं हो सकता । लोग परस्पर एक दूसरे को भक्षण करने लगते हैं जैसे कि बड़ी मछली छोटी को खा जाती है। जो लोग शास्त्रमर्यादा

को छोड़ बैठे हैं, नास्तिक हैं पर राजदण्ड के भय से दबे हैं, वे भी अराजक देश में शङ्कारहित होकर अपनी प्रभुता प्रगट करते हैं। दृष्टि-जैसे शरीर के हित-साधन और अहित-निवारण में सदा प्रवृत्त रहती है इसी प्रकार राजा सत्य और धर्म की रक्षा कर प्रजा की भलाई करता है। राजा ही सत्य, धर्म और कुलीनों का कुल है। राजा ही माता-पिता और नरों का हितकारी है। यम, कुबेर, इन्द्र और वरुण, इन सबसे राजा बड़ा है, यदि वह महा-मर्यादा का पालन करता है। अहो! देखो, जो राजा उचित और अनुचित का विभाग करके इस लोक का पालन न करे तो सब अन्धकारमय हो जाय और कुछ न सूझ पड़े। हे ब्रह्मन्, जब महाराज दशरथ जीते थे तब भी हम लोग आपके वचन का उल्लङ्घन नहीं करते थे, जैसे कि समुद्र अपनी मर्यादा को नहीं त्यागता। इसलिए आप विचारकर इस राष्ट्र में—जो राजा के बिना जङ्गल के तुल्य हो रहा है—किसी कुमार को चाहे वह इक्ष्वाकुवंश का हो या और किसी का, राज्यासन पर अभिषिक्त कर दीजिए।

---

## ६८वाँ सर्ग

### वशिष्ठ का भरत को बुलाने के लिए दूतों को भेजना

अब वशिष्ठ मुनि—उनके वचन सुन—मित्रों, मन्त्रियों और उन ब्राह्मणों से बोले कि भरत अपने मामा के यहाँ शत्रुघ्न के साथ सुख और हर्षपूर्वक निवास कर रहे हैं। राजा ने उन्हीं को राज्य समर्पण किया है। इसलिए, जल्द चलनेवाले घुड़सवार दूत भेजे जायँ जो उन दोनों भाइयों को लिवा लावें। इसमें दूसरा विचार हम क्या करें। वशिष्ठ की यह बात सब लोगों ने स्वीकार की। तब वशिष्ठ बोले कि हे सिद्धार्थ, विजय, जयन्त और अशोकनन्दन, तुम सब यहाँ आओ और एक बात सुनो। तुम वेगवान् घोड़ों पर चढ़कर, शीघ्र उस राजधानी में जाओ और शोक-रहित होकर, भरत को मेरी यह आज्ञा सुनाओ कि पुरोहित और मन्त्रियों ने तुम्हारा कुशल-संवाद पूछा है और कहा है कि बहुत आवश्यक कार्य है, इसलिए तुम शीघ्र चले आओ। तुम न तो उन्हें राम के वन-वास का समाचार सुनाना और न राजा की मृत्यु का संदेसा देना। राजा और भरत के लिए ये राजवस्त्र और भूषण लेकर शीघ्र जाओ।

इस प्रकार वशिष्ठ का वचन सुनकर और मार्ग के लिए भोजन लेकर दूत लोग अपने-अपने घर गये। वहाँ से अच्छे वेगवान् घोड़ों पर सवार होकर वे तुरन्त केकयराजधानी की ओर चले। अपरताल नामक देश के पश्चिम भाग से प्रलम्ब देश के उत्तर भाग की ओर, मालिनी नदी के मध्य से, यात्रा कर हस्तिनापुर में गङ्गा के पार हो पश्चिम ओर चल निकले। वे पाञ्चाल देश में जाकर कुरुजाङ्गल देश के मध्य-मार्ग से प्रफुल्लित सरोवरों को और विमल नदियों को देखते हुए कार्यवश शीघ्र ही मार्ग को तय करते चले जाते थे। आगे जाकर उन्होंने नाना प्रकार के पक्षियों से सेवित और निर्मल जल से युक्त शरदण्डा नाम नदी को देखा। उसके पश्चिम तीर पर सत्योपयाचन नामक एक महावृक्ष मिला। वह वृक्ष लोगों को वन्दनीय था। फिर वे कुलिङ्गा पुरी में गये। इसके अनन्तर, आगे चलकर, अभिकाल नामक ग्राम मिला। उसके आगे योधिवन को लाँघ उन्होंने इक्ष्वाकुवंश की पितृपितामह-सम्बन्धिनी इक्षुमती नदी को पार किया। अञ्जलि-मात्र

जल पीकर रहनेवाले वेदपारङ्गत ब्राह्मणों को देखकर दूतों ने वाह्लीक देशों के बीचोबीच से जाकर सुदामा नाम पर्वत पर विष्णु के चरणचिह्न का दर्शन किया। फिर विपाशा और शाल्मली नदियों को और बावली, तड़ाग और सरोवरों को, तथा अनेक प्रकार के सिंह, व्याघ्र, मृग और हस्तियों को देखते हुए वे बड़े मार्ग से चले जाते थे।

इस प्रकार वे दूत घोड़ों पर चढ़े हुए गिरिव्रज नाम केकय-राज के पुर में शीघ्र ही जा पहुँचे। अब स्वामी के प्रिय के लिए, कुल की रक्षा के लिए, और स्वामी की वंशवृद्धि के हेतु वे दूत बड़ी सावधानी से रात ही को वहाँ पहुँच गये।

---

## ६९वाँ सर्ग

### भरतजी का अमङ्गल स्वप्न देखना

जिस रात को वे दूत पुरी में पहुँचे उसी रात को भरत ने एक अमङ्गल और अप्रिय स्वप्न देखा। प्रातःकाल होते ही उस स्वप्न को याद करके भरत को अत्यन्त सन्ताप हुआ। जिन मित्रों की आयु भरत की आयु के बराबर थी और जो प्रियवादी थे, वे भरत के सन्ताप को देखकर इनको प्रसन्न करने के लिए सभा में नाना प्रकार की कथाएँ कहने, अनेक बाजे बजाने तथा नाच कराने लगे। कोई-कोई नाटक दिखलाने और नाना प्रकार की हास्य-कथाएँ कहने लगे, परन्तु भरत हर्षित न हुए। तब, भरतजी का एक अत्यन्त प्रिय मित्र बोला कि हे मित्र, तुम आनन्दित क्यों नहीं होते? उसकी बात सुनकर भरतजी ने कहा—हे प्रिय मित्र, जो दीनता मुझे आकर प्राप्त हुई है, उसका कारण सुनो। मैंने स्वप्न में पिता को मलिन रूप में देखा है। मैंने देखा है कि उनके सिर के बाल खुले हैं। पर्वत के शृङ्ग से मैंने उन्हें काले गोबर के गड्ढे में गिरते, उसी में तैरते और फिर अञ्जलि से तेल पीते तथा बार-बार हँसते देखा है। इसके अनन्तर देखा कि राजा तिल से मिले हुए भात को खाकर, बार-बार मस्तक नीचे किये और सर्वाङ्ग में तेल लगाये तेल ही में डूब रहे हैं। यह तो प्रथम स्वप्न हुआ। अब दूसरा स्वप्न सुनो। मैंने देखा कि समुद्र सूख गया और चन्द्रमा भूमि पर गिर पड़ा; सम्पूर्ण पृथिवी अन्धकार से आच्छादित हो गई। जिस हाथी पर राजा सवार थे उसके दाँत टुकड़े-टुकड़े हो गये। जलती हुई अग्नि झट बुझ गई। नाना प्रकार के वृक्ष सूख गये। पर्वत चूर चूर और धूमयुक्त हो गये। काले लोहे के आसन पर राजा बैठे और काले वस्त्र को धारण किये हैं। उन्हें काली-काली और पीली-पीली स्त्रियाँ मार रही हैं। धर्मात्मा महाराज देह में रक्त-चन्दन लगाये और लाल पुष्पों की माला पहने गधों के रथ पर चढ़े दक्षिण दिशा में चले गये। एक बड़ी विकराल राक्षसी लाल वस्त्र पहने है, वह हँसती हुई राजा को पकड़ के खींच रही है। अतएव, इस स्वप्न से मुझे अनुमान होता है कि या तो मैं या राम या राजा या लक्ष्मणजी मरण को प्राप्त होंगे। क्योंकि जो मनुष्य स्वप्न में गधे पर सवार देख पड़ता है, उसका धुआँ थोड़े ही समय में चिता में देख पड़ता है। इसी कारण मैं आज दीन हूँ और आप लोगों के वचन का अनुमोदन नहीं करता। मेरा कण्ठ सूखा जाता है। मेरा मन स्वस्थ नहीं है। यद्यपि भय की कोई बात नहीं देख पड़ती; पर भय का तो निश्चय होता है। देखो, मेरे कण्ठ का स्वर बिगड़ गया और मुख का वर्ण बदल

गया है। मेरा मन आत्मा की निन्दा कर रहा है पर कारण कुछ भी नहीं देख पड़ता।

ऐसे बुरे स्वप्न की मैंने पहले कभी कल्पना तक नहीं की। जिन राजा के दर्शनों की मुझे चिंता भी नहीं थी उन्हीं का स्मरण करके मेरे हृदय से अब भयङ्कर भय नहीं हटता।

---

## ७०वाँ सर्ग

### अयोध्या के लिए भरत की यात्रा

इस प्रकार भरतजी कह ही रहे थे कि वे दूत लोग राज-भवन में आ पहुँचे। उन्होंने राजा और राजपुत्र से भेंट करके राजा के चरणों में प्रणाम किया और भरतजी से कहा कि पुरोहित ने और मन्त्रियों ने आपका कुशल-मङ्गल पूछा है और शीघ्र बुलाया है। वहाँ बड़ा आवश्यक कार्य है। हे विशालाक्ष, ये महा-मूल्य वस्त्र और आभरण लीजिए और अपने मामा को दे दीजिए। इनमें बीस करोड़ राजा के लिए और दस करोड़ आपके मामा के लिए हैं। दूतों का वचन सुनकर भरत ने वे पदार्थ ले लिये। उन दूतों का आदर-सत्कार कर भरतजी बोले—हे दूत, मेरे पिता राजा दशरथ तो कुशल से हैं? राम और लक्ष्मणजी तो भले-चंगे हैं? धर्मज्ञा और धर्मवादिनी राम की माता कौशल्या तो अच्छी-भली हैं? लक्ष्मण और शत्रुघ्न की माता सुमित्रा रोग-रहित हैं न? स्वार्थ में तत्पर, कर्कशा, क्रोधिनी और अपने को बड़ी बुद्धिवाली समझनेवाली मेरी माता तो कुशल से हैं? चलती बेर कुछ सँदेसा कहा है? इस तरह महात्मा भरतजी का वचन सुन दूत बोले कि हे नरश्रेष्ठ, जिन-जिन का आप कुशल चाहते हैं वे सब कुशल से हैं क्योंकि आपके मुख आदि अंगों में ऐसी शोभा देख पड़ती है कि जिससे कुछ भी अमङ्गल की शङ्का नहीं हो सकती। अब आप रथ जुतवावें। दूतों का वचन सुन, भरत बोले—अच्छा, मैं महाराज से कहता हूँ कि दूत लोग शीघ्रता कर रहे हैं। अपने नाना के पास जाकर भरतजी यह बात बोले—हे राजन्, अब मैं अपने पिता के पास जाऊँगा क्योंकि दूत लोग शीघ्र चलने को कह रहे हैं। जब आप मुझे याद करेंगे तब मैं फिर आ जाऊँगा।

भरत का वचन सुन केकयराज ने उनका मस्तक सूँघकर कहा—हे तात, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, तुम जाओ। अपने माता-पिता से और पुरोहित तथा उत्तम ब्राह्मणों से और उन महाधनुर्द्धर दोनों भाई राम-लक्ष्मणजी से भी मेरा कुशल कह देना। फिर राजा ने भरतजी को उत्तम-उत्तम हाथी, चित्र-विचित्र कम्बल और मृगचर्म प्रभृति वस्तुएँ सत्कारपूर्वक दीं। फिर विशाल रूप के कुत्ते भेंट में दिये। ये अन्तःपुर में ही पले थे और बल-वीर्य में व्याघ्र के तुल्य थे। डाढ़ें इनकी बड़ी-बड़ी थीं। राजा ने भरत को दो सहस्र सुवर्ण के निष्क अर्थात् गले के भूषण और सोलह सौ घोड़े दिये; बहुत से दीवान—जो राजा के इष्ट, विश्वासपात्र और गुणवान् थे—भरतजी को पहुँचाने के लिए नियत हुए। इन्द्रशिर नामक देश में उपजे हुए, ऐरावत की नस्ल के सुन्दर हाथी और शीघ्रगामी खच्चर मामा ने दिये। इन पदार्थों को लेकर जल्दी के मारे भरतजी प्रसन्न न हो सके। उनके मन में एक बड़ी चिन्ता यह थी कि दूत इतनी शीघ्रता क्यों करते हैं और स्वप्न की चिन्ता तो पहले से थी ही।

इन वस्तुओं को ले, भरतजी घर से निकलकर

राजमार्ग में आये और वहाँ से अन्तःपुर में जाकर नाना और मामा से विदा हो शत्रुघ्न के सहित रथ पर चढ़ चले। उस समय सैकड़ों भृत्य ऊँटों, बैलों, घोड़ों और खच्चरों पर चढ़कर इनके पीछे चले। अब महात्मा भरत उस सेना के सहित और अपने तुल्य मन्त्रियों से युक्त हो, भाई को साथ ले—इन्द्रलोक से सिद्ध की तरह—राजगृह से अपने घर की ओर सिधारे।

---

## ७१वाँ सर्ग

### भरत का अयोध्या में पहुँचना और नगरी की ओर देख चिन्ताग्रस्त होना

अब भरत अपने मामा के घर से पूर्व की ओर चले। मार्ग में सुदामा नदी के पार हो, उन्होंने ह्लादिनी नदी को देखा। यह नदी बड़ी और चौड़ी थी, तथा पश्चिम की ओर बहती थी। उसको पार कर फिर शतद्रु नदी के पार उतरे। इसके अनन्तर ऐलधान नामक ग्राम में ऐलधानी नदी के पार हो, अपर-पर्वत नामक राष्ट्रों में पहुँचे। वहाँ शिलवहा नदी थी। इस नदी में जो भी वस्तु डालो वही पत्थर हो जाती थी। उसके पार जाकर उन्होंने शल्यकर्षण नगर देखा। वहाँ पर भरतजी स्नानादि से पवित्र हो, शिलवहा नदी को देखकर आगे बढ़े। अनेक पर्वतों को लाँघते हुए वे चैत्ररथ नाम वन के पास पहुँचे। वहाँ से सरस्वती और गङ्गा के सङ्गम पर होकर वीरमत्स्य नामक देशों के उत्तर भागों को देखते हुए वे भारुण्ड वन में आ पहुँचे। इसके अनन्तर वेगवती और हर्ष देनेवाली कुलिङ्ग नदी के पार उतर, वे यमुना-तीर पर पहुँचे। यहाँ सेना को विश्राम करने की आज्ञा दी। थके घोड़ों को शीतल कर और विश्राम देकर आपने भी स्नान और जलपान किया। इसके अनन्तर, उस निर्जन महा-वन में जाकर भरतजी भद्र जातिवाले हस्ती पर सवार हो उस वन से बाहर हुए। तदनन्तर अंशुधाम ग्राम के पास भागीरथी नामक महा-नदी को पार करना कठिन जानकर वे प्रागवट नामक विख्यात पुर में आ बड़े उपाय से पार हुए और कुटिकोष्टिका नदी पर पहुँचे और सेना-सहित उसके भी पार हो गये। धर्मवर्द्धन नामक ग्राम में पहुँचकर वे तोरण नामक ग्राम के दक्षिण भाग जम्बूस्थ ग्राम में पहुँचे। फिर वरूथ ग्राम के वन में वास कर पूर्व की ओर चले। उज्जिहाना नामक नगरी के उपवन में प्रियक के वृक्ष लगे थे। वहाँ पहुँचने पर रथ में शीघ्रगामी घोड़े जोते गये। सेना को पीछे से आने की आज्ञा दे, भरतजी शीघ्र चलने लगे। फिर सर्वतीर्थ नामक ग्राम में ठहरे। वहाँ से उत्तरगामिनी नदी के पार हो और और नदियों को भी पहाड़ी टट्टुओं की सवारी से पार किया। इसके अनन्तर हस्तिपृष्ठक नगर में कुटिका नदी को, और लोहित्य नगर की कपीवती नदी को और एकसाल नगर में स्थाणुमती नदी को तथा विनतनगर में गोमती नदी को लाँघकर कलिङ्ग नगर के सलुआ के जङ्गल में आये। घोड़ों को थका देख रात को वे वहीं टिक रहे। जब रात बीत गई और अरुणोदय हुआ तब भरत ने यात्रा कर दूर से अयोध्यापुरी को देखा। यात्रा से आठवें दिन भरत को अयोध्या नगरी देख पड़ी।

अब नगरी को देखकर भरत बोले—हे सारथे! इस पुरी में अच्छे समृद्ध यज्ञकर्त्ता गुणियों और वेदपारङ्गत ब्राह्मणों का निवास है; यह पवित्र वाटिकायुक्त और यशस्विनी नगरी मुझे भली नहीं देख पड़ती। दूर से

केवल पीली मिट्टी की ढेरी सी जान पड़ती है। देखो, पहले चारों ओर नर-नारियों का बड़ा कोलाहल सुनने में आता था, वह इस समय मुझे कुछ भी नहीं सुन पड़ता। यहाँ के उपवनों में, सायङ्काल के समय, क्रीड़ा से निवृत्त होकर बहुत लोग चारों ओर दौड़ते देख पड़ते थे, वे उपवन मुझे और ही तरह के दीख रहे हैं। ऐसा लगता है मानो कामी लोगों के परित्याग से वे रोदन कर रहे हैं। हे सारथे! यह पुरी तो मुझे जङ्गल के समान मालूम पड़ती है। देखो, पहले यहाँ हाथियों पर और घोड़ों पर सवार पुरवासी लोग निकलते दीख पड़ते थे और वाटिकाएँ प्रफुल्लित दीखती थीं। इस समय तो सब आनन्द-रहित दीख पड़ते हैं। मार्ग में सब वृक्ष पत्तों से रहित हो, मानो रोते और चिल्लाते से दीख पड़ते हैं। देखो, मत्त-मृग और पक्षी पहले मधुर और मनोहर बोली बोलते थे, उनका अब तक भी शब्द नहीं सुन पड़ता। हे सारथे! पहले इस नगरी में चन्दन और अगर से मिश्रित धूप के गन्ध से आमोदित वायु चलता था, वह आज क्यों नहीं बहता! यहाँ आज भेरी, मृदंग और वीणा का शब्द क्यों बन्द है! मैं बड़े बुरे-बुरे शकुन देख रहा हूँ, इसलिए मेरा मन बहुत दुःखित हो रहा है। जान पड़ता है कि मेरे बन्धु-जनों में कुशल नहीं है। इसी कारण, मोह-रहित स्थान में भी मेरा मन मूढ़ हो रहा है।

इस प्रकार कहते हुए भरत ने विषादयुक्त और व्याकुलेन्द्रिय होकर, इक्ष्वाकुपालित उस अयोध्यापुरी में प्रवेश किया। भरत जब वैजयन्त नामक द्वार से प्रवेश करने लगे उस समय द्वारपालों ने खड़े होकर रीति के अनुसार भरत से विजय का प्रश्न किया। यद्यपि उस समय भरतजी का चित्त ठिकाने न था तथापि उसका अनुमोदन कर वे केकयराज के सारथि से बोले—हे सूत! किसलिए मैं यहाँ बिना कारण जल्दी बुलाया गया। देखो, मेरा मन अमङ्गल की शङ्का कर रहा है और मेरा शील नष्ट होता जाता है। हे सारथे नृपतियों के नाश होने के जैसे चिह्न मैंने सुने हैं उन सब चिह्नों को मैं यहाँ देख रहा हूँ। देखो, कुटुम्बियों के घर बिना झाड़े-बुहारे, रूखे पड़े हैं। किवाड़ खुले हुए हैं। ये घर लक्ष्मी-रहित, बलि-कर्म्म-वर्जित तथा धूप-गन्ध रहित हैं, ये भूखे और प्रभा-हीन जनों से भरे और शोभा-रहित से दीख पड़ते हैं। कोई भी घर माला आदि से सँवारा नहीं गया, और न अँग-नाइयाँ बुहारी गई हैं। मन्दिरों में न तो कहीं देवताओं का पूजन और न यज्ञशालाओं में अर्चन देख पड़ता है। पुष्पमाला की दूकानों में सन्नाटा छाया है और बनियों के बाजार शोभा-हीन हो रहे हैं। देवताओं के मन्दिरों में और ग्राम के चैत्य इत्यादि स्थानों में पक्षी और मृग दीन और चिन्ता से व्याकुल हो निश्चेष्ट से घूम रहे हैं। मैं स्त्रियों और पुरुषों को मलिन, आँखों में आँसू भरे, दीन, चिन्ताग्रस्त और उद्विग्न देख रहा हूँ। इस प्रकार भरतजी उस सूत से कहकर दीन मन हो उन अनिष्टों को देखते देखते राजमहल की ओर चले।

इन्द्रपुरी के सदृश उस नगरी के चौराहे, घर और गलियाँ सूनी पड़ी हैं, किवाड़ और किवाड़ों के कील-काँटे धूलि से धूसर हो रहे हैं। यह देखकर भरतजी दुःख से भर गये। जो कभी नहीं देखे थे, ऐसे-ऐसे अप्रिय चिह्न देखकर भरतजी नीचा मस्तक किये, दीन मन और हर्ष-रहित हो, पिता के घर पहुँचे।

———

## ७२वाँ सर्ग

### भरतजी का कैकेयी के भवन में पहुँचना और पिता की मृत्यु का समाचार सुनना

अब भरतजी पिता के भवन में उनको न देखकर माता को देखने के लिए उसके घर में गये। वहाँ कैकेयी बहुत दिन में आये पुत्र को देख, अपने सुवर्ण के आसन को छोड़, आगे को दौड़ी। भरतजी ने माता के घर को शोभा-हीन पाया। उन्होंने माता के चरण छुए। उनको गोद में लेकर और मस्तक सूँघकर कैकेयी पूछने लगी—हे पुत्र, आज तुमको नाना का घर छोड़े कै दिन हुए? तुम रथ पर चढ़कर शीघ्र आये हो सो मार्ग के श्रम से कोई कष्ट तो नहीं हुआ? हे वत्स, तुम्हारे नाना और युधाजित मामा तो कुशल से हैं? हे पुत्र, अपने प्रवास के सब सुख-दुःख मुझे कह सुनाओ। इस प्रकार कैकेयी के पूछने पर भरतजी वहाँ का वृत्तान्त कहने लगे—हे माता, मुझे नाना का घर छोड़े आज सातवीं रात्रि बीती; मेरे नाना और मामा कुशल से हैं। नाना ने मुझे जो रत्न-धन दिये हैं वे मार्ग में हैं, पीछे से आवेंगे। दूतों के शीघ्रता करने से मैं पहले ही चला आया हूँ। अब मैं जो पूछना चाहता हूँ वह मुझसे कह कि यह तेरा सुवर्ण-भूषित पलँग सूना क्यों पड़ा है? ये इक्ष्वाकु-वंश के लोग हर्षित क्यों नहीं दीख पड़ते? राजा बहुधा तेरे ही घर में बैठते-उठते दीख पड़ते थे सो उनको यहाँ मैं नहीं देखता! उन्हीं के दर्शनों के लिए मैं यहाँ आया था। मैं उनके चरणों को ग्रहण करूँगा। मुझे बतला कि महाराज कौशल्या के घर में तो नहीं हैं? तब तो राज्य के लोभ में मोहित कैकेयी प्रीति-पूर्वक घोर और अप्रिय वचन (जिसको कि भरतजी नहीं जानते थे) बोली। उसने कहा—हे पुत्र, महात्मा, तेजस्वी और सज्जनों के शरणदाता तुम्हारे पिता महाराज दशरथ उस गति को प्राप्त हो गये जो कि सब प्राणियों की होती है।

कैकेयी का यह वचन सुनते ही भरत पिता के शोक से पीड़ित हो "हा! मैं मारा गया" ऐसी दीन वाणी कहकर, हाथों को छितराकर, भूमि पर गिर पड़े। अचेत, व्याकुल और पिता के मरण के शोक से व्याप्त होकर वे विलाप करने लगे। हा! पिताजी की यह शय्या पहले ऐसी शोभा देती थी, जैसे शरत्काल में चन्द्रमा से आकाश की शोभा होती है। उनके बिना यह शय्या वैसी ही फीकी लगती है जैसे कि चन्द्र के बिना आकाश और जल के बिना सागर शोभा नहीं देता।

अपने मुख को वस्त्र से ढककर और आँसुओं को बहाते हुए भरत अत्यन्त पीड़ित हो, गद्गद स्वर से विलाप करते थे। उस समय भरतजी परशु से काटी हुई वन के साखू की डार की तरह भूमि पर पड़े थे। अत्यन्त शोक-पीड़ित देख उनको उठाकर कैकेयी बोली—हे महायशस्वी पुत्र, उठो उठो। भूमि पर क्यों पड़े हो। तुम्हारे ऐसे सज्जन और सभ्य लोग शोक नहीं करते। हे बुद्धिमान, देखो दान और यज्ञ की अधिकारिणी तथा शील, श्रुति और तप की अनुगामिनी तुम्हारी बुद्धि सूर्य की प्रभा की तरह शोभा देती है। माता के इस प्रकार समझाने पर भी भरत बहुत देर तक रोते और भूमि पर लोटते रहे। तदनन्तर बोले कि हे माता, मैंने तो यह समझा था कि राम का महाराज अभिषेक करेंगे और आप यज्ञ करेंगे, इसलिए मैंने प्रसन्न हो नाना से शीघ्र विदा माँगी थी। सो यहाँ और का और ही हो गया। मेरा मन इसलिए विदीर्ण हो

रहा है कि मुझे पिता के दर्शन नहीं हुए। वे मेरे हित और प्रिय में सर्वदा तत्पर थे। हे अम्ब, ऐसे किस रोग से राजा का परलोक हुआ जो मैं उनकी जीवितावस्था में न आ सका। इस समय राम इत्यादि धन्य हैं जिन्होंने पिता की और्ध्वदैहिक क्रिया की होगी। हा! महाराज नहीं जानते हैं कि मैं आ गया हूँ, नहीं तो अवश्य मेरे मस्तक को झुकाकर सूँघते। हा! महाराज का वह सुख-स्पर्श हाथ कहाँ है जो मेरे धूलि-धूसर शरीर को बार-बार झाड़ देता था। भला हे भद्रे, अब उन राम को मुझे शीघ्र बतला जो कि मेरे भ्राता, पिता और बन्धु भी हैं, और जिनका मैं दास हूँ। वे कहाँ हैं? आर्य धर्मज्ञ जन का ज्येष्ठ भ्राता पिता के तुल्य होता है। मैं उनके चरणों को ग्रहण करूँगा, इस समय वही मेरी गति हैं। हे आर्य्ये, मेरे पिता धर्मज्ञ, धर्मशील, महाभाग, दृढ़व्रत और सत्यपराक्रमी राजा थे; उन्होंने मेरे विषय में क्या कहा। मैं अपने विषय में राजा का, अन्तकाल के समय का, सन्देश सुनना चाहता हूँ।

भरत के इस प्रकार पूछने पर कैकेयी, ठीक-ठीक जो बात थी, कहने लगी—हे पुत्र, महाराज 'हा राम! हा सीते! हा लक्ष्मण!' ऐसा विलाप करते हुए परलोक को सिधार गये। जब वे महाराज की भाँति कालपाश से घिरे थे तब अन्तिम बात उन्होंने यही कही कि 'वे नर पूर्ण-मनोरथ होंगे जो सीता-सहित राम और लक्ष्मण को फिर लौट आया देखेंगे।' हे वत्स! तुम्हारे पिता की यही पिछली वाणी है। अब इस दूसरी अप्रिय वाणी को सुनते ही भरत अधिक विषाद को प्राप्त हो फिर पूछने लगे—हे अम्ब, वे धर्मात्मा कौशल्यानन्दवर्द्धन इस घड़ी सीता और लक्ष्मण के साथ कहाँ हैं? इस प्रकार पूछने पर कैकेयी ने, प्रिय कार्य समझ, यथा-न्याय सब कथा कहनी शुरू कर दी। हे पुत्र, वह राज-कुमार चीर को धारण कर वैदेही और लक्ष्मण के साथ, दण्डक वन में चले गये।

ऐसा वचन सुनकर भ्राता के सदाचार के विषय में शङ्कायुक्त हो, भरत बड़े भयभीत हुए। क्योंकि वे अपने वंश के माहात्म्य को जानते थे। वे फिर माता से पूछने लगे—हे अम्ब, रामचन्द्रजी ने किसी ब्राह्मण का धन तो नहीं छीन लिया? अथवा बिना अपराध किसी धनाढ्य वा दरिद्र को मार तो नहीं डाला? उन्होंने किसी पर-स्त्री पर तो दृष्टि नहीं डाली? मेरे भ्राता किस कारण वन में निकाल दिये गये? कैकेयी अपने को बड़ी पण्डिता समझती थी; अब वह हर्षित होकर बोली। वह स्वभाव ही से चञ्चल थी, इसलिए अपना कर्म्म ठीक ठीक, स्त्री-स्वभाव के वश होकर, कहने लगी—

हे पुत्र, रामचन्द्रजी ने न किसी ब्राह्मण का धन हरा, न किसी धनिक या दरिद्र को बिना अपराध के मारा और न किसी पर-स्त्री को आँख उठाकर देखा ही। हे पुत्र, मैंने राम के अभिषेक की बात सुनकर तुम्हारे पिता से तुम्हारे लिए राज्य और राम को वनवास माँगा था। तब, तुम्हारे पिता ने अपनी सत्यता का परिपालन करने लिए वैसा ही किया। हे पुत्र, राम को सीता और लक्ष्मण के साथ वनवास दिया और जब वे चले गये तब उनको न देखकर, महिपाल शोक से पीड़ित हो मृत्यु को प्राप्त हुए। अब हे धर्मज्ञ, तुम राज-काज को सँभालो। तुम्हारे ही लिए मैंने यह काम किया है। हे पुत्र, तुम न तो शोक करो और न सन्ताप करो। तुम तो धैर्य धारण करो; क्योंकि यह नगरी और उपद्रव-रहित राज्य तुम्हारे ही अधीन है। इसलिए हे पुत्र, तुम वशिष्ठ इत्यादि उत्तम ब्राह्मणों के साथ विधिपूर्वक

राजा की और्ध्वदैहिक क्रिया करके राज्य पर अपना अभिषेक करवाओ।

---

## ७२वाँ सर्ग

### भरतजी का माता को धिक्कारना

पिता का वृत्तान्त और दोनों भाइयों का वनवास सुनकर भरतजी दुःख से सन्तप्त हो, बोले—हाय, अब मैं मारा गया। पिता और पिता के तुल्य भ्राता से मैं बिछुड़ गया। अब इस समय मुझे राज्य से क्या काम है। तूने मुझे दुःख में दुःख दिया और मेरे घाव पर नमक छिड़का क्योंकि तूने राजा को तो मार ही डाला और राम को तापस बनाया। कुल के नाश के लिए तू काल रात्रि की भाँति प्राप्त हुई। हाय, मेरे पिता ने जलते हुए अङ्गारों को भेटकर भी न जाना। हे पापदर्शिनि, मेरे पिता को तूने मार डाला। हे कुलघातिनि, तूने मोह से इस कुल के सुख का घात किया। सत्य-सन्ध और महायशस्वी मेरे पिता तुझको पाकर कठोर दुःख से सन्तप्त हो, मरण को प्राप्त हुए। मेरे धर्मवत्सल पिता महाराज को तूने किसलिए विनष्ट किया और किसलिए तूने राम को वनवास दिलवाया? राम किसलिए वन को गये? हा! अब तेरे सामने कौशल्या और सुमित्रा का पुत्रशोक से पीड़ित होकर जीना बहुत कठिन है। अरी पापिनि, धर्मात्मा रामचन्द्रजी भी तो तुझ पर वैसी ही प्रीति रखते थे जैसे कि अपनी माता पर। क्योंकि रामचन्द्रजी यह भली भाँति जानते हैं कि गुरुजन के साथ कैसा व्यवहार करना होता है। मेरी ज्येष्ठ माता कौशल्या, कालान्तर में तेरे द्वारा आनेवाली विपत्ति को जानती थी फिर भी वह धर्मपूर्वक तुझसे भगिनी के तुल्य व्यवहार करती रही है। उसी बेचारी के महात्मा पुत्र को चीर और वल्कल पहनाकर तूने वन में निकलवा दिया और तू शोकरहित निधड़क बैठी है! हे क्रूर, सुन तो सही, अपापदर्शी, शूर और यशस्वी राम को चीर पहना वन में निकलवा देने से तू क्या फल पावेगी? तूने मुझे न पहचाना कि मैं रामचन्द्रजी पर कैसी भक्ति रखता हूँ, इसी लिए तूने लोभयुक्त होकर राज्य के लिए यह महा अनर्थ कमाया। उन पुरुषश्रेष्ठ राम और लक्ष्मण को बिना देखे मैं किस शक्ति-प्रभाव से राज्य की रक्षा करने के लिए उत्साह कर सकता हूँ। मेरी तो बात ही क्या है, महाराज दशरथ भी उसी बलवान् और महा पराक्रमी का भरोसा रखते थे। इस महाभार को मैं किस पराक्रम से सह सकूँगा जिसको कि महा धुरन्धर ने अपने ऊपर लिया था। अथवा युक्ति और बुद्धि-बल से जो मैं उठा भी सकूँ तथापि मैं तेरा मनोरथ कदापि पूर्ण न करूँगा। तू पुत्र के राज्य की अभिलाषा करती है, हा! क्या करूँ, जो राम की तेरे ऊपर माता के समान दृष्टि न होती तो मेरी ऐसी इच्छा थी कि तुझ पापनिश्चया को मैं अवश्य त्याग देता। अरी पापदर्शिनि, हे पाप बुद्धिवाली, किसलिए या किस प्रकार से तुझे यह बुद्धि उत्पन्न हुई? ऐसी बुद्धि हमारे पुरुषाओं के लिए महा निन्दित है। इस कुल की यही रीति है कि सब भाइयों में जो बड़ा होता है, वही राज्य पर बैठता है और सब भाई उसके अधीन हो, उसी के अनुसार व्यवहार करते हैं। अरी घातिनि, मैं जानता हूँ कि तेरी दृष्टि राजधर्म की ओर नहीं है और न तू राजधर्मों के सनातन फलों को जानती है। राजपुत्रों में जो ज्येष्ठ होता है, वही सदा

राज्याभिषेक पाता है। यही रीति सब राजाओं में है, परन्तु इक्ष्वाकु-कुलवालों में विशेष करके इस बात का आग्रह है। आज तेरे कारण से इक्ष्वाकुवंशवालों का वह चारित्र्य-विषयक अभिमान जाता रहा। हे महाभागे, तू भी तो बड़े कुल की थी, फिर तुझे यह कुबुद्धि कहाँ से आ गई? हे पापनिश्चये, चाहे जो हो, परन्तु मैं तेरा मनोरथ कभी पूरा न करूँगा। तूने मेरे प्राणों के अन्त करनेवाले प्रपञ्च का आरम्भ किया है। देख, इस समय मैं तेरे अप्रिय के लिए अपने भाई को वन से लौटाकर उनका दास बनूँगा।

इस प्रकार अनेक कठोर-कठोर बचनों से उसको पीड़ा देकर और शोक से बहुत खिन्न होकर भरत ऊँचे स्वर से बड़े दुःखभरे वचन कहने लगे।

---

## ७४वाँ सर्ग

### माता को कटुवचन कहकर भरत का विलाप करना और रोना

इस प्रकार माता को डाँटकर भरत फिर भी अत्यन्त क्रोधयुक्त होकर बोले—हे घातिनि, हे दुष्टाचारिणि कैकेयि, तू राज्य से भ्रष्ट हो; क्योंकि तू अधर्म करनेवाली है। अब मैं मरता हूँ। तू मेरे लिए रोना मत*। अरी दुष्टे, राम ने तेरा क्या बिगाड़ा है? अथवा परम धर्मात्मा राजा ने ही तेरा क्या अपराध किया था कि जिनके मृत्यु और वनवास दोनों तेरे कारण साथ ही हुए। रे कैकेयि, तुझे गर्भहत्या लगी क्योंकि तूने इस कुल का विनाश किया। अब तू नरक में जा। मेरे पिता के लोक में जाने का तुझे अधिकार नहीं, क्योंकि तूने अपने घोर कर्म से इस प्रकार का पाप किया कि जो सबको प्रिय है उसे त्याग करके मेरे लिए भी भय उत्पन्न कर दिया। तेरे लिए मेरे पिता स्वर्ग प्राप्त हुए और राम को वनवास हुआ। दुनिया में तूने मुझे बुरा बना दिया। हे मातारूप मेरी वैरिणि, हे घातिनि, हे राज्यलोभिनि, हे दुष्टचारित्रे, हे पतिघातिनि, तू मुझसे बोलने योग्य नहीं है। देख, कौसल्या और सुमित्रा आदि मेरी सब माताएँ तुझ कुलदूषिणी के कारण महा दुःख से पीड़ित हुई। अरे, तू उस धर्मराज और बुद्धिशाली अश्वपति की कन्या नहीं है। मैं जानता हूँ कि तू उस कुल में राक्षसी और पिता के कुल की नाशिनी उत्पन्न हुई है। धार्मिक रामचन्द्र नित्य सत्य में तत्पर रहते हैं, उनको तूने वन में निकलवा दिया और पिता को परलोक-गमन करवाया। यह पाप किया तो तूने और उसका फल मुझे भोगना पड़ा; मैं पिता से हीन, दोनों भाइयों से परित्यक्त और सब लोगों का अप्रिय हुआ। अरे पापनिश्चये, हे नरकगामिनि, तू धर्मयुक्त कौशल्या को पुत्र से वियोग करवाकर अब किस लोक को प्राप्त होगी। हे क्रूरे, क्या तू नहीं जानती है कि रामचन्द्र नियम से बन्धुओं के आधार हैं, ज्येष्ठ भ्राता हैं और इस कारण पिता के तुल्य हैं, वे कौशल्या की आत्मा से उत्पन्न हैं। देख, माता के प्रत्येक अंग और हृदय से पुत्र उत्पन्न होता है, इसलिए वह उसको अत्यन्त प्रिय होता है। और और जो बन्धु लोग हैं वे साधारण प्यारे होते हैं। सुन, यह इतिहास धर्मज्ञ लोगों के मुख का कहा हुआ है,—पहले किसी समय देवताओं की पूज्य सुरभि नाम की गाय के दो पुत्र पृथ्वी पर हल में जुते अचेत और मध्याह्न

* अथवा मृत पुत्र के लिए रोदन करने का तुझे अधिकार नहीं है।

के समय श्रम से थक गये थे। सुरभि ने उन्हें ऐसी दशा में देखा। उनके दुःख को वह सह न सकी और रोने लगी। उसी समय किसी प्रयोजनवश भूलोक में देवराज यात्रा करते-करते आये। उनके शरीर पर सुरभि के आँसुओं की वे सुगन्धित और सूक्ष्म बूँदें गिर पड़ीं। तब इन्द्र चौंक पड़े और ऊपर देखने लगे तो आकाश में खड़ी अत्यन्त दुःखित सुरभि गौ को रोते देखा। उस समय इन्द्र को बड़ा उद्वेग हुआ। तब हाथ जोड़कर, सुरराज ने सुरभि से कहा—हे हित की चाहनेवाली! हम लोगों के विषय में तू कोई महा भय तो नहीं देखती कि जिस कारण तुझे यह शोक उत्पन्न हुआ है? तू क्यों रोती है? अपने शोक का कारण कह।

इन्द्र का यह वचन सुनकर सुरभि बोली—"हे देवराज, यह बात नहीं है। तुम लोगों के विषय की कुछ बात नहीं है। मैं तो अपने इन पुत्रों को, दुःख में पड़े और सूर्य की किरणों से तापित तथा दुष्ट किसान से पीटे जाते देखकर शोक कर रही हूँ क्योंकि ये दोनों बैल मेरे शरीर से उत्पन्न हुए हैं। ये इस समय कैसे भार से पीड़ित और दुःखित हो रहे हैं। इनको देखकर मुझे बहुत सन्ताप होता है क्योंकि पुत्र के सदृश दूसरा प्रिय कोई भी नहीं।" हे दुष्टे, देख जिसके सहस्रों पुत्रों से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है उस सुरभि को रोती देखकर इन्द्र भी पुत्र से अधिक प्रिय दूसरा पदार्थ नहीं मानते।

इन्द्र ने उस गाय के आँसू अपने शरीर पर गिरते देखकर उसको सबसे उत्तम माना क्योंकि वह गाय लोक के अनुग्रह की कामना से सबके साथ समान बर्ताव रखती है और मनोरथ पूर्ण करने का सामर्थ्य रखती है। उसमें सत्यरूप मुख्य गुण है। उसके स्वभाव की इसी प्रकार की चेष्टा से इन्द्र ने उसे सबसे उत्तम जाना। हे कैकेयी, देख, उस धेनु के सहस्रों पुत्र हैं। जब वह केवल दो पुत्रों को दुःखित देखकर शोक और रोदन करने लगी तब जिसके एक ही पुत्र रामचन्द्रजी हैं वह कौशल्या उस पुत्र के बिना कैसे जीवेगी। हा! एक पुत्र वाली और पतिव्रता को तूने बिना पुत्र की कर दिया। हे पापिनि, इस कारण तू सदा इस लोक और परलोक में दुःख पावेगी; और मैं तो अब भाई का और पिता का सम्पूर्ण रूप से सम्मान और यश की वृद्धि करूँगा। उन महाबाहु और महाबलशाली कोशलेन्द्र को वन से लौटाकर मैं मुनि-सेवित वन में प्रवेश करूँगा; क्योंकि हे पापिनि, रोते हुए पुर-वासियों की दृष्टि के सामने मैं तेरे किये हुए पाप को धारण नहीं कर सकता। तेरे लिए तो अब यही उचित है कि तू अग्नि में प्रवेश कर, अथवा दण्डकवन में चली जा या अपने गले में फाँसी लगा ले, क्योंकि अब मरणान्त प्रायश्चित्त किये बिना तेरी दूसरी गति मैं नहीं देखता। जब रामचन्द्रजी यहाँ आवेंगे तभी मैं कृतार्थ और पाप-रहित हूँगा।

इस प्रकार, तोमर और अंकुश से बेधे हुए हाथी की तरह और निःश्वास छोड़ते हुए सर्प की तरह भरत महा क्रुद्ध होकर भूमि पर गिर पड़े। उस समय भरत के नेत्र लाल और वस्त्र शिथिल हो गये। सम्पूर्ण शरीर के भूषण भी तितर-बितर हो गये।

---

## ७५वाँ सर्ग

### भरत का कौशल्या से भेंट करना और अपनी निर्दोषता के लिए शपथ खाना

अब बहुत देर में भूमि से उठकर भरत सचेत हुए। नेत्रों में आँसू भरे हुए वे माता को दीन देख फिर भी मन्त्रियों के सामने उससे कठोर वचन बोले—

हे कैकेयि, मैं कभी राज्य की इच्छा न करूँगा और न इस विषय में तुझसे कुछ कहूँगा। अभिषेक की बात भी मैं नहीं जानता कि जिसका विचार राजा ने किया था। क्योंकि उस समय मैं शत्रुघ्न के साथ दूर देश में था। इसी लिए राम, लक्ष्मण और सीताजी का वनवास भी मैं नहीं जानता कि वह किस प्रकार हुआ।

इस प्रकार रोते और चिल्लाते हुए भरतजी के शब्द को पहचानकर कौशल्या ने सुमित्रा से कहा—हे देवि, मुझे जान पड़ता है कि उस क्रूर कैकेयी का पुत्र भरत आया है। मैं उसको देखना चाहती हूँ; क्योंकि वह बहुत विचारवान् है। कौशल्या का मुख शोक से कान्तिहीन हो गया था। वह काँपती हुई और अचेत सी भरतजी की ओर चली। इधर भरतजी भी शत्रुघ्नजी को साथ ले कौशल्या के घर की ओर चले और कौशल्या को दुःखसागर में निमग्न तथा अचेतन सी देखकर अति दुःखित हो दोनों भाई उससे लिपटकर रोने लगे। तब रोती हुई कौशल्या ने भरत से कहा कि हे पुत्र, जिसकी तुमको आकांक्षा थी वह राज्य, कैकेयी के क्रूर कर्म से शीघ्र ही अकण्टक रूप से, प्राप्त हुआ। हा! बड़े खेद की बात है कि यह क्रूरदर्शिनी कैकेयी मेरे पुत्र को चीर पहनाकर और वनवासी करके क्या फल चाहती है! अब कैकेयी हमको भी वनवास दे दे तो अच्छा है। मैं भी अपने पुत्र के पास चली जाऊँ। अथवा मैं आप ही सुमित्रा को साथ ले और अग्निहोत्र को आगे कर वहाँ चली जाऊँगी जहाँ राघव हैं। अथवा तू ही मुझे वहाँ पहुँचा दे जहाँ वह पुरुष-श्रेष्ठ मेरा पुत्र तप करेगा। यह राज्य धनधान्य से भरा और हाथी-घोड़ों तथा रथों से सम्पूर्ण है; यह तेरे लिए कैकेयी ने इकट्ठा कर दिया। तू इसका भोग कर। इस प्रकार कठोर-कठोर अनेक ताने मारने से भरत को ऐसी व्यथा हुई जैसे किसी को घाव में सुई चुभोने से वेदना होती है। तब भरतजी बहुत सा विलाप करके उसके चरणों में अचेत हो गिर पड़े। कुछ देर में सचेत होकर और हाथ जोड़कर उन्होंने कौशल्या से कहा—मैं तो बिलकुल अनजान और दोष-रहित हूँ, मुझे तुम किसलिए निन्दित कर रही हो? तुम तो जानती भी हो कि मैं रामचन्द्रजी पर कैसी प्रीति रखता हूँ। हे माता, जिसकी सलाह से वे सत्यसन्ध और सज्जनों में श्रेष्ठ रामचन्द्रजी वन गये हों उसकी बुद्धि अभ्यास किये हुए शास्त्र को भूल जावे; जिसकी सम्मति से राम को वनवास हुआ हो वह पापियों का दास हो, सूर्य के समीप मल-मूत्र का त्याग करे और सोती हुई गाय को पैर लगाकर जगावे। हे देवि, जिसकी अनुमति से यह बात हुई हो उसको वह अधर्म लगे जो उस स्वामी को लगता है जो भृत्य से कोई बड़ा काम करवाकर उसको वेतन नहीं देता। हे माता, जिसके विचार से राम को वनवास हुआ हो वह उस पाप को भोगे जिस पाप को पुत्र की तरह प्रजा-पालन करनेवाले राजा का द्रोही भोगता है। जिसकी अनुमति से आर्य वन को गये हों उसको वह अधर्म हो जो, छठा अंश कर लेकर भी प्रजा का पालन न करने से, राजा को होता है। हे आर्ये, यज्ञ में ऋत्विजों को दक्षिणा देने की प्रतिज्ञा करके जो दक्षिणा नहीं देता उसको जो पाप लगता है वह पाप उसको हो जिसकी अनुमति से राम को वनवास हुआ हो। हे भद्रे, जिसकी सम्मति से राम वन को गये हैं वह पुरुष ऐसे संग्राम में जहाँ—हाथी, घोड़े और रथों के झुण्ड में शस्त्र-प्रहार हो रहे हैं—सद्वीरों के धर्म का पालन न करे। जिसकी सलाह से राम को वनवास हुआ है वह दुष्टात्मा, अच्छे बुद्धिमान् गुरु के यत्नपूर्वक उपदेश किये हुए, शास्त्र को भूल जावे। हे माता,

जिसकी अनुमति से राम देश से निकाले गये हैं वह पुरुष राम को राज्य पर बैठा न देखे, अर्थात् तब तक जीता न रहे। जिसकी अनुमति से राम वन को चले गये हैं उसे वह प्रायश्चित्त करना पड़े जो कि श्राद्धादि निमित्त के बिना निर्लज्ज होकर खीर और तिल-मूँग मिला हुआ, भात और बकरे का मांस खानेवाले मनुष्य को लगता है। हे माता, जिसकी अनुमति से आर्य को प्रवास करना पड़ा है वह पुरुष पैर से गौ को छुए, गुरु की निन्दा करे और मित्र से अत्यन्त द्रोह करे। जिसके समीप विश्वास से किसी का कुछ दोष कहा गया वह दुष्टा मा उस दोष को प्रकाश कर दे जिसकी अनुमति से राम वन को गये हों। हे देवि, वह पुरुष लोक में उपकार न करे और किये हुए उपकार को न माने तथा सज्जनों से त्यक्त, निर्लज्ज और सबका वैरी हो जिसकी अनुमति से आर्य वन को गये हों। वह पुरुष पुत्र, स्त्री और भृत्यों से युक्त होकर भी अकेला किसी मिष्ट पदार्थ का भोजन करे जिसकी सम्मति से राम वन को सिधारे हैं। हे भद्रे, राम को वनवास देने के लिए जिसने सम्मति दी हो, वह जन अपने अनुरूप पत्नी को न पाकर सन्ततिहीन हो और अग्निहोत्र इत्यादि धर्ममार्गानुसार कर्म का साधन किये बिना ही मर जाय। जिसकी अनुमति से आर्य वन में गये हों वह पुरुष अपनी पत्नी में सन्तति को बिना देखे दुःखित होकर आयुष्य की सम्पूर्णता को न पहुँचे। हे माता, जिसकी अनुमति से राम को वनवास हुआ है उसको वह पाप लगे जो कि राजा, स्त्री, बालक और वृद्ध का वध करने से लगता है और जो पाप भृत्य को त्याग देने से होता है। हे माता, वह पुरुष लाक्षा, मद्य, मांस, लोहा और विष को बेच-बेचकर सर्वदा अपने कुटुम्ब का पोषण करे जिसकी अनुमति से आर्य को वनवास हुआ हो। जिस पुरुष की अनुमति से आर्य वन को गये हैं वह संग्राम में शत्रु का भयङ्कर दल देखकर भागता हुआ मारा जाय। जिस पुरुष की अनुमति से आर्य वन को गये हों वह हाथ में ठीकरा ले, मलिन चिथड़े धारण किये, उन्मत्त की नाईं पृथ्वी पर भीख माँगता फिरे। जिसकी अनुमति से राम वन को गये हों वह पुरुष मद्य में आसक्त, स्त्री-लम्पट, नित्य द्यूतसेवी हो और काम-क्रोध से सदा सताया जाय। हे माता, जिसकी अनुमति से राम गये हों वह पुरुष स्वधर्म में मन न देकर अधर्म का सेवन करे और अपात्र में दान दे तथा उस मनुष्य के संचय किये हुए नाना प्रकार के द्रव्य को चोर लूट लेवें। जिसकी अनुमति से राम वन को गये हों उसको वह पाप हो जो कि दोनों सन्ध्याओं में सोनेवाले मनुष्य को होता है। हे देवि, आग लगानेवाले को, गुरु की शय्या पर सोनेवाले को और मित्र-द्रोही को जो पाप लगता है वह उस पाप का भागी हो जिसकी अनुमति से राम वन को गये हों। जिसकी अनुमति से राम वन को गये हों वह देवताओं की, पितरों की और माता-पिता की सेवा न कर सके; वह पुरुष इसी समय सज्जनों के लोक से, सज्जनों की कीर्ति से और सत्कर्म से शीघ्र पतित हो जाय। हे माता, जिसकी अनुमति से राम वन को गये हों वह मनुष्य माता की सेवा को छोड़कर स्त्री इत्यादि के वश में हो जाय; वह बहु कुटुम्बी होकर दरिद्र और ज्वर रोग से ग्रसित हो क्लेश भोगे। जिसकी अनुमति से राम वन को गये हों वह पुरुष दीन की और उसके मुख की ओर कुछ लाभ की आशा से देखनेवाले याचकों की आशा को पूर्ण न कर सके। जिसकी अनुमति से राम वन को गये हों वह पुरुष छलप्रिय और इधर का उधर लगानेवाला, अपवित्र

और सर्वदा राजभय से भीत रहे। जिसकी अनुमति से राम वन को गये हों वह दुष्टात्मा पुरुष ऋतुस्नात और ऋतुकालानुसारिणी पतिव्रता भार्या को अङ्गीकार न करे। सन्ततिवाली स्त्री को छोड़ देने अथवा उस प्रकार की स्त्री को अन्नादि न देकर नष्ट करने से ब्राह्मण को जो पाप होता है उस पाप का भागी वह मनुष्य हो जिसकी अनुमति से राम प्रवासी हुए हैं। ब्राह्मण की प्रतिष्ठा का नाश करने और बाल-वत्सवाली गाय को मर्यादा से अधिक दुहनेवाले अजितेन्द्रिय पुरुष को जो पाप होता है वह पाप उसे प्राप्त हो जिसकी अनुमति से राम वन को गये हों। जिसकी अनुमति से राम वन को गये हों वह पुरुष धर्म-मर्यादा को छोड़, अपनी पत्नी को त्यागकर, पर-स्त्री का सेवन करे। हे देवि, जल में विष इत्यादि घोल देने से जो पाप होता है तथा विष देने में जो पाप होता है ये दोनों पाप उस पुरुष को लगें जिसकी अनुमति से राम को प्रवास हुआ हो। जिसकी अनुमति से राम को प्रवास हुआ हो वह पुरुष उस पाप का भागी हो जो जल मौजूद रहने पर भी प्यासे को न देने से लगता है। भक्ति से अपने शास्त्रों का विचार करके जो विवाद कर रहे हैं उनके बीच में बोलनेवाले को जो पाप होता है वह पाप उसको हो जिसकी अनुमति राम के वनवास में रही हो।

इस प्रकार कौशल्या को विश्वास कराते-कराते भरत दुःख से पीड़ित हो गिर पड़े। भरत इस प्रकार की शपथ खा रहे थे और अचेत हो रहे थे। उनसे कौशल्या बोली—हे पुत्र, यह फिर भी मुझे दुःख उत्पन्न होता है जो तुम शपथों से मेरे प्राणों को पीड़ा दे रहे हो। हे वत्स, बड़े आनन्द की बात है कि तुम्हारी आत्मा सुन्दर लक्षणों के साथ धर्म से च्युत नहीं है, इसलिए तुम सत्य-प्रतिज्ञ होकर सज्जनों के लोक में प्राप्त होगे। यह कहकर कौशल्या भरत को गोद में लेकर अत्यन्त दुःख से रोने लगी।

इस प्रकार दुःख से पीड़ित और रोते हुए भरत का मन मोह और शोक के वेग से क्षुब्ध हो गया। अब भरत को इसी प्रकार विलाप करते और अचेत हो भूमि पर लोटते-पोटते तथा बार-बार निःश्वास लेते हुए सारी रात बीत गई।

---

## ७६वाँ सर्ग

### राजा दशरथ की अन्त्येष्टि-क्रिया

भरत को शोक से सन्तप्त देख भगवान् वशिष्ठ ऋषि बोले—हे महायशस्वी राजपुत्र, अब तुम्हारा शोक व्यर्थ है। इस समय राजा के ले चलने की तैयारी करो। तब वशिष्ठ का वचन सुनकर भरत ने राजा के प्रेतकर्मों का आरम्भ किया। राजा को उस तेल से भरे कड़ाह से बाहर निकाला और रत्न-भूषित सुन्दर रथी पर लिटा दिया। उसकी ओर देख भरत विलाप करने लगे:—

हे राजन्, आपके मन का क्या अभिप्राय था कि मेरे बिना आये ही धर्मज्ञ रामचन्द्र और लक्ष्मण को वनवास दे दिया? महाराज, पुरुषसिंह रामचन्द्र से रहित इस दुःखित जन को छोड़कर कहाँ जाओगे? हे तात, अब आपकी इस पुरी की राज्य-व्यवस्था को व्यग्रता-रहित होकर कौन सँभालेगा? क्योंकि आपने तो स्वर्ग की और राम ने वन की यात्रा की है। हे राजन्, आपके बिना यह विधवा पृथ्वी शोभा नहीं देती और यह नगरी चन्द्रहीन रात की तरह दिखाई पड़ती है।

इस प्रकार भरत को विलाप करते देख वशिष्ठ मुनि फिर बोले—हे महाबाहो अब तुम व्यग्रता छोड़कर राजा का क्रिया-कर्म करो; और सब विचार छोड़ दो। तब मुनि की बात मानकर भरत ने ऋत्विज, पुरोहित और आचार्य्यों से शीघ्रता करने को कहा। ऋत्विज और याचक लोग नरेन्द्र के अग्निहोत्र को अग्नि में विधि-पूर्वक हवन करने लगे। तदनन्तर परिचारक लोग राजा को पालकी पर सुलाकर रोते हुए, उदास मन होकर ले चले। उस पालकी के आगे-आगे लोग सुवर्ण और चाँदी लुटाते चले जाते थे। नगर के बाहर चिता बनाकर ऋत्विजों ने उस पर राजा को लिटा दिया। उस चिता पर चन्दन, अगर, गुग्गुल-सरल, पद्मक और देवदार आदि काष्ठ और नाना प्रकार के सुगन्ध-द्रव्य डाले गये। ऋत्विज लोग चिता पर अग्नि का हवन कर जप करने और यथा-शास्त्र सामगायक लोग सामवेद का गान करने लगे। इसके अनन्तर राजा की स्त्रियाँ पालकियों पर और यथोचित सवारियों पर चढ़कर नगरी के बाहर निकल, चिता के पास जाकर राजा की प्रदक्षिणा करने लगीं और ऋत्विजों ने भी प्रदक्षिणा की।

उस समय वहाँ कौशल्या आदि शोक सन्तप्त सहस्रों स्त्रियों का, क्रौञ्च पक्षियों की तरह, रोदन शब्द सुन पड़ता था। इसके अनन्तर विलाप करती हुई उन स्त्रियों ने सरयू के तीर पर, सवारियों से उतर भरत के साथ जलाञ्जलि दी। मन्त्री और पुरोहितों ने भी राजा को जलाञ्जलि दे, पुर में रोते हुए प्रवेश किया और दश दिवस-पर्यन्त भूमि पर दुःख से अपना समय बिताया।

---

# ७७वाँ सर्ग

## दशरथ का श्राद्ध

जब दश दिन बीत जाने पर भरतजी शुद्ध हुए तब बारहवें दिन श्राद्ध-कर्म्म किया और ब्राह्मणों को धन, रत्न, अन्न, चाँदी की सामग्री, गाय, दास, दासी, यान और बड़े-बड़े घर—राजा के और्द्ध्वदैहिक कर्म के लिए—दिये। इसके अनन्तर, तेरहवें दिन प्रातःकाल भरतजी शोक से मूर्च्छित हो विलाप करने लगे और चिता-शोधन अर्थात् अस्थिसञ्चयन के लिए चिता के पास जाकर गद्गद वाणी हो दुःख से कहने लगे—

हे तात, आपने जिसके भरोसे हमको छोड़ा था उन राम को, वन में भेजकर मुझे सूना ही कर दिया। हे तात, जिस अनाथा का पुत्र वन में निकाल दिया गया उस माता कौशल्या को त्यागकर तुम कहाँ चले गये! उस समय चिता पर पिता के शरीर का भस्म रूप अस्थि-स्थान-मण्डल देख भरतजी जोर-जोर से रोदन कर और विषाद-युक्त होकर भूमि पर गिर पड़े। भरत को गिरा देख मन्त्रियों ने दौड़कर उनको उठाया। भरतजी को शोक-सन्तप्त देख शत्रुघ्नजी भी राजा को याद कर, अचेत हो, भूमि पर गिर पड़े। पिता के गुणों का स्मरण कर वे उन्मत्त की तरह विलाप करने लगे। उस समय मन्थरा के द्वारा उत्पन्न और कैकेयीरूप ग्राह से संयुक्त वरदानरूप अचल सागर में शत्रुघ्न डूबने लगे। उन्होंने कहा—हे तात, जिस सुकुमार बालक का तुमने सर्वदा दुलार किया उन भरतजी को छोड़कर तुम कहाँ चले गये? देखो, वे विलाप कर रहे हैं। हे तात, आप हमको भोजन के योग्य पदार्थ, वस्त्र और आभूषण—सब पदार्थ देते थे सो अब कौन देगा?

हे तात, इस समय आप जैसे महात्मा और धर्मज्ञ राजा से विहीन होने से यह पृथ्वी फट क्यों नहीं जाती ? अब पिता तो स्वर्ग को गये और राम वन को। अब मुझे जीने का क्या सामर्थ्य है, इसलिए मैं अग्नि में प्रवेश करूँगा। हे तात, मैं अब भाई और पिता दोनों से हीन हो गया। इसलिए इस शून्य, इक्ष्वाकु-पालित अयोध्या में न जाकर तपोवन के लिए यात्रा करूँगा।

उन दोनों भाइयों का इस प्रकार विलाप सुनकर और वह क्लेश देखकर सब अनुचर अत्यन्त दुखी हो गये। विषादयुक्त और श्रान्त होकर वे दोनों भाई भूमि पर लोटने लगे। उस समय प्रकृतिनिष्ठ बुद्धिमान् महाराज के पुरोहित वशिष्ठ मुनि भरतजी को उठाकर बोले—हे विभो, तुम्हारे पिता के मरने का यह तेरहवाँ दिन है और यह अस्थियों का निचय करना अवशिष्ट रह गया है। भला तुम विलम्ब क्यों कर रहे हो ? देखो ये छः बातें तो (अर्थात् क्षुधा, पिपासा, शोक, मोह, जरा, मरण) सब प्राणियों में सामान्य रूप से होती हैं। इनको दूर करना कठिन है। इससे तुमको ऐसा शोकाक्रान्त न होना चाहिए।

इस प्रकार वशिष्ठ ने भरतजी को समझाया और उधर सुमन्त्र ने भी शत्रुघ्न को उठाया और प्रसन्न करके, सब प्राणियों की उत्पत्ति और विनाश-धर्म समझाकर धीरज बँधाया। तब दोनों भाई उठे। दोनों भाई आँसुओं को पोंछते और दीन वचन बोलते थे। आगे की क्रियाएँ करने के लिए मन्त्री लोग इनसे शीघ्रता करने को कहने लगे।

——

## ७८वाँ सर्ग

### शत्रुघ्न का कुब्जा को पकड़कर भूमि पर घसीटना

भरतजी शोक से सन्तप्त होकर रामचन्द्र के पास जाने का विचार कर रहे थे। उनसे लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न ने कहा—हे भ्राता, जो रामचन्द्र सब प्राणियों से गतिरूप और सामर्थ्ययुक्त होकर भी स्त्रीसहित वन में निकाल दिये गये तो अपने दुःखों की क्या कथा है। भला बलवान् और वीर्यसम्पन्न लक्ष्मण ने पिता का निग्रह करके उनको बचाया क्यों नहीं ? क्योंकि जो राजा नारी के वश में होकर अन्याय मार्ग पर आरूढ हुए थे तो नीति-अनीति का विचार करके पहले ही उनका निग्रह करना योग्य था।

शत्रुघ्न इस प्रकार भरत से बातें कर ही रहे थे कि इतने में पूर्व द्वार पर कुब्जा आकर खड़ी हुई। वह सम्पूर्ण भूषणों से भूषित थी। देह में श्रेष्ठ चन्दन लगाये थी और राजवस्त्र धारण किये थी। वह अनेक प्रकार के राजा के आभरणों से सुशोभित कटिभूषण और और चित्र-विचित्र भूषणों के खचित थी। उस समय भरत भी उसी द्वार पर खड़े थे। उन्होंने उस महापापकारिणी को देख निर्दय होकर पकड़ लिया और शत्रुघ्न के अधीन करके कहा—हे शत्रुघ्न, जिसके कारण राम को वनवास हुआ और पिता के प्राण गये वह यही पापिनी और घातिनी कुब्जा है। अब तुम इसके विषय में जो इच्छा हो सो यथोचित करो।

भरत की बात सुनकर शत्रुघ्न सब अन्तःपुरचारियों को सुनाकर बोले—देखो, जिसने हमारे सब भाइयों और पिता के महादुःख को उत्पन्न किया यह वही घात करनेवाली अपने कर्म्म का फल पावे। इस तरह

कहकर शत्रुघ्न ने कुब्जा को बड़े जोर से पकड़ लिया। वह अपनी सखियों से घिरी खड़ी थी। पकड़े जाने से वह ऐसी चिल्ला उठी कि उसकी आवाज से सब घर भर गया। उसकी सब सखियाँ शत्रुघ्न को क्रोधयुक्त जान वहाँ से भाग गईं और दूर जाकर परस्पर कहने लगीं कि देखो, ऐसा जान पड़ता है कि यह शत्रुघ्न हम सबको निःशेष कर डालेगा। इसलिए चलो हम सब उस दयाशील धर्मज्ञ और यशस्विनी कौशल्या की शरण में चलें। वही हमारी गति है। इधर कुब्जा चीत्कार शब्द कर रही थी। उसे भूमि पर पटककर क्रोधयुक्त शत्रुघ्न घसीटने लगे। उसके घसीटे जाने से कुब्जा के चित्र-विचित्र गहने तितर-बितर हो गये और टूट-फूटकर चारों ओर फैल गये। उस समय उन बिखरे हुए गहनों से वह राजभवन ऐसा सुशोभित देख पड़ता था जैसे तारागणों से भूषित शरत्काल का आकाश दिखाई देता है।

उस समय पुरुषश्रेष्ठ शत्रुघ्न कुब्जा को यथोचित दण्ड दे रहे थे। उन्होंने कैकेयी के मना करने को न माना, और उसको डपटकर अनेक प्रकार के कठोर वचन कहे। तब, शत्रुघ्न के कठोर वचनों से कैकेयी अत्यन्त दुःखित होकर और उनके भय से डरकर अपने पुत्र के शरण गई। शत्रुघ्न को क्रुद्ध देखकर भरत ने कहा कि हे भ्राता, स्त्रियों को मारना किसी को भी उचित नहीं; इसलिए क्षमा करना चाहिए। यदि रामचन्द्र जी मुझे मातृ-घातक समझकर क्रोध न करते तो मैं इस पापिनी और दुष्टाचारिणी कैकेयी को निश्चय मारता। यदि इस कुब्जा का भी ताड़न रामचन्द्रजी सुन पावेंगे तो वे न हमसे भाषण करेंगे और न तुमसे।

घसीटे जाने से कुब्जा मूर्च्छित हो गई थी, अब भरत का वचन सुन शत्रुघ्नजी ने उसको छोड़ दिया। कैकेयी कैकेयी के चरणों में जाकर मन्थरा गिर पड़ी और बड़ी दुःखार्त्त हो ठण्ढी साँस लेती हुई विलाप करने लगी। उस समय भरत की माता ने कुब्जा को शत्रुघ्नजी की झपट से अचेत और पीड़ित, जालपाश में बँधी क्रौञ्ची पक्षिणी की तरह देखकर धीरे-धीरे समझाया।

---

## ७९वाँ सर्ग

### भरत का राज्य को स्वीकार न करके राम के पास चलने के लिए मन्त्रियों को आज्ञा देना

अब चौदहवें दिन प्रातःकाल के समय राजकाज-कर्ता लोग इकट्ठे होकर भरत से बोले—हे प्रभो, महाराज दशरथ हमारे श्रेष्ठतर गुरु थे। वे ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्रजी को और लक्ष्मणजी को वनवास देकर स्वर्ग को सिधार गये। इसलिए हे महायशस्वी, राजपुत्र, अब आप हमारे राजा हों। क्रमानुसार इसमें आप अपराधी न ठहरेंगे। यह राज्य इस समय बिना स्वामी का हो रहा है। हे राघव, देखो अभिषेकसामग्री लिये लोग आपकी अनुमति की बाट देख रहे हैं। हे नरश्रेष्ठ भरत, पिता-पितामह के इस राज्य को आप ग्रहण कीजिए और अपना अभिषेक करवाकर हमारी रक्षा कीजिए।

उन सबकी यह बात सुन भरत उन अभिषेक-पात्रों की प्रदक्षिणा करके सबसे बोले—देखो, हमारे कुल में सदा से बड़े भाई को ही राज्य मिलता आया है इसलिए आप लोग इस बात को अच्छी तरह से जान करके भी मुझसे ऐसी बात न कहिए। रामचन्द्रजी हमारे ज्येष्ठ भ्राता हैं, वे ही राजा होंगे। मैं तो चौदह वर्ष तक वन में निवास करूँगा, इसलिए मेरी चतुर-

चतुरङ्गिणी सेना को तैयार कर लाओ। मैं ज्येष्ठ भ्राता राघव को वन से फेर लाऊँगा और यह जो अभिषेक-सामग्री है उसको यहाँ लाओ। मैं इसको लेकर वन में चलूँगा और वहीं अभिषेक करके राम को यहाँ ले आऊँगा। मेरी माता केवल नाम की माता है, मैं कदापि इसका मनोरथ पूर्ण न करूँगा। मैं दुर्गम वन में वास करूँगा और राम राज्य करेंगे। मेरे वचन से शिल्पी लोग मार्ग बनावें और विषम भूमि को सम करते चलें। उनके पीछे वे रक्षक लोग गमन करें जो दुर्गम मार्ग का विचार करते हैं।

भरत के इस प्रकार कहने पर सब लोग बोले—हे प्रभो, आपका यह वचन उत्तमोत्तम है। अपने ज्येष्ठ भ्राता को आप पृथिवी देना चाहते हैं, अतएव आपके समीप पद्मा लक्ष्मी निवास करे। उस समय, उस स्थान पर, जितने लोग खड़े थे उन सबने भरत के वचन सुनकर अपने नेत्रों से आनन्द के आँसू बहाये। वहाँ पर जो मन्त्री लोग थे वे भी सभासदों के साथ प्रसन्न-मन होकर और शोक को त्यागकर बोले - हे नरश्रेष्ठ, आपके वचन के अनुसार रास्ते की मरम्मत करने के लिए शिल्पियों को आज्ञा दे दी गई।

---

## ८०वाँ सर्ग

### भरत की यात्रा के लिए सड़क तैयार होना

अब वे लोग आगे से रवाना हुए जो भूमि के भेदों के ज्ञाता, अच्छे गृहों के बनाने में चतुर और सुरङ्ग इत्यादि के कामों में तत्पर हैं। वे लोग आगे चले जो खोदने में चतुर और सेतु इत्यादि से जलप्रवाहों के रोकने में समर्थ हैं। रथ इत्यादि बनानेवाले, यन्त्र-रचना में चतुर, बढ़ई, मार्गों के ज्ञाता और रक्षक, मार्ग के वृक्षों को काटने-वाले, रसोइये, रस इत्यादि द्रव वस्तुओं के निर्माण-कर्त्ता और बाँस और चर्म्म के काम करनेवाले वैतनिक कारीगर आगे बढ़े। जिन लोगों ने पहले से उस मार्ग को देख रक्खा है वे सब आगे से ही चल दिये।

वह जनों का समूह हर्ष से चला जाता था। वह ऐसा शोभायमान देख पड़ता था जैसे पर्वकाल में समुद्र का महावेग सुशोभित देख पड़ता है। वे सब चतुर लोग अपने-अपने झुण्डों को साथ लेकर और नाना प्रकार के कर्म्मसाधक शस्त्रों को ग्रहण कर भरत के पहले ही चले। वे मार्गों को शुद्ध और स्वच्छ करने के लिए लता, वल्ली, गुच्छे, ठूँठ, पत्थर और नाना प्रकार के वृक्षों को—जो मार्ग में पड़ते थे—काटते जाते और वृक्षरहित स्थानों में नये पौदे रोपते जाते थे। कुछ लोग कुल्हाड़ी और टाँकियों से मध्य मार्ग के वृक्ष, पत्थर इत्यादि को तोड़ते-हटाते जाते और कुछ लोग खस के पौदों को उखाड़ते जाते थे। क्योंकि उनसे मार्ग रुका था। कुछ लोग दुर्गम स्थलों को सुगम करते चले जाते थे। कितने ही लोग मार्ग-रोधक कूपों को और बहुत से गड्ढों को मिट्टी से पाटते और नीची भूमि को धूलि से पूर कर सम करते चले जाते थे। अनेक लोगों ने कई एक पुल बाँधे और मार्ग के अनेक ढूहों और टीलों को चूर कर दिया। जल बहने के लिए जहाँ-तहाँ नाले बना दिये और कई एक स्थानों के जलाशयों को, थोड़े ही काल में, खोदकर सागर की तरह अगाध जलयुक्त और निर्जल देशों में अनेक जलाशय खोदकर वेदिकायुक्त कर दिया।

इस प्रकार शिल्पी मनुष्यों ने उस सेना के गमन-मार्ग को चूने की गचों से ठीक कर दिया और ऐसे वृक्ष लगा दिये जिन पर पक्षी रात-दिन बोला करते थे। चन्दन के जल के छिड़काव से और नाना पुष्प लताओं की रचनाओं से वह मार्ग देवमार्ग की तरह सुशोभित कर दिया। इसके अनन्तर अधिकारी मनुष्य, आज्ञानुसार, रमणीय और अत्यन्त स्वादुयुक्त फल-वाले स्थानों में भरत के मनोभीष्ट निवासस्थल बनाने और उनको नाना प्रकार की सामग्री से भूषित करने लगे। वहाँ पर ज्योतिषियों ने अच्छे नक्षत्रयुक्त मुहूर्त्त में भरत के निवासस्थानों को चारों ओर मिट्टी के घूसों से और जलयुक्त खाइयों से घिरवा दिया। वे निवास-स्थल इन्द्रनील मणि की प्रतिमाओं से खचित, उत्तम-उत्तम प्रकार के दालानों से शोभित, ऊँचे-ऊँचे गृहों और अटारियों से वेष्ठित तथा पताकाओं से भूषित थे। वहाँ पर सात-सात खनों के गृहों के ऊपर कपोत-पालिका* ऐसी शोभा देती थीं मानों आकाश में देवताओं के निवासस्थान बने हों। उस समय उन ऊँचे-ऊँचे घरों की ऐसी छवि देख पड़ती थी मानों इन्द्र की पुरी हो। भरत के लिए जो राजमार्ग, गंगा नदी तक निर्माण किया गया था और जिसको शिल्पी लोगों ने नाना प्रकार की रचनाओं से सँवारा था, वह ऐसी शोभा देता था जैसे रात्रि के समय चन्द्र और तारा-गणों से भूषित निर्मल आकाश, शोभित होता है।

---

* कबूतर के पालने की छतरी।

## ८१वाँ सर्ग

### सभा का वर्णन

उस आनन्द की रात में सूत और मागध लोग मङ्गलयुक्त स्तुतियों से भरत की स्तुति करने लगे। याम-दुन्दुभि* सुवर्ण के दंडों से बजाई गई। शंखध्वनि होने लगी और नाना स्वरयुक्त सैकड़ों बाजे बजने लगे। उन बाजों की आवाज आकाश को पूर्ण करती हुई, शोकसन्तप्त भरत को शोक से और भी पीड़ित करने लगी। इसके अनन्तर भरत जाग कर कहने लगे—सुनो, इन बाजों का कुछ प्रयोजन नहीं क्योंकि मैं राजा नहीं हूँ। इस प्रकार उस शब्द को बन्द करवाकर वे भाई से बोले—हे शत्रुघ्न! देखो, कैकेयी ने इस लोक का बड़ा अपकार किया। उसी के कारण राजा दशरथ इन दुःखों को मेरे ऊपर छोड़-कर चले गये। उन धर्मराज की यह राजलक्ष्मी ऐसी ठोकरें खाकर घूम रही है जैसी बिना पतवार की नौका घूमती है क्योंकि रामचन्द्रजी हमारे महानाथ हैं उनको भी इस कैकेयी ने धर्मत्याग कर, वनवास दिलवा दिया।

भरत को इस प्रकार विलाप करते देख सब स्त्रियाँ, दीन हो, बड़े स्वर से रोने लगीं। इतने में राजधर्म के ज्ञाता वशिष्ठ मुनि ने इक्ष्वाकुनाथ की सभा में प्रवेश किया। रमणीय मणिसुवर्णों से भरी, और सुधर्मा नाम देवसभा की तरह सुशोभित, सभा में वे अपने गणों के साथ आये। वहाँ सोने के सिंहासन पर

* एक पहर रात रहने पर राजाओं के जगाने के लिए जो दुन्दुभि (नक्कारा) बाजा बजाया जाता है उसको याम-दुन्दुभि "पहर की दुन्दुभि" कहते हैं।

स्वस्तिकाकार बिछौना बिछा था, उस पर वे जा बैठे और दूतों को आज्ञा दी कि ब्राह्मणों, क्षत्रियों, योद्धाओं और सेनापतियों को भी शीघ्र ले आओ, हमको अत्यन्त आवश्यक कार्य है। राजपुत्रों सहित शत्रघ्न और भरत को, युधाजित्, और सुमन्त्र को तथा और वहाँ जो हितू लोग हों उनको भी शीघ्र बुलाओ। दूतों द्वारा बुलाये जाने पर लोग रथों, घोड़ों और हाथियों पर चढ़-चढ़ कर आने लगे। उनके आने से एक प्रकार का महा शब्द हुआ। इसके बाद उस सभा में इन्द्र के समान भरत को आते देख देवताओं के तुल्य मन्त्री लोग ऐसे हर्षयुक्त हुए जैसे महाराज दशरथ के सभाप्रवेश का अनुमोदन करते थे। उस समय भरत से उस सभा की ऐसी शोभा हुई जैसे जलजन्तुओं और जलहस्थियों से भरे हुए स्थिर जल, मणि और शङ्ख से संयुक्त समुद्र की होती है। उस समय ऐसा जान पड़ता था कि मानो महाराज दशरथ ही सभा में आकर बैठे हैं।

---

## ८२वाँ सर्ग

### भरतजी का वशिष्ठजी के वचन को न मानकर वनयात्रा के लिए आज्ञा देना

उस समय भरतजी ने उन आर्यगणों से और वशिष्ठ इत्यादि महात्माओं से शोभित सभा को पूर्णचन्द्र से युक्त रात्रि की तरह देखा। आसनों पर यथायोग्य बैठते हुए आर्य लोगों के वस्त्रों और अङ्गराग की प्रभा से प्रकाशित तथा विद्वानों से भरी वह उत्तम सभा शरत्काल में पूर्णचन्द्र युक्त रात की तरह देख पड़ती थी। उस समय धर्मज्ञ पुरोहित वशिष्ठजी राजा के सब प्रधानों को देख भरतजी से मधुर वचन बोले—हे तात, धन-धान्य-युक्त और वृद्धि को प्राप्त यह पृथिवी तुम्हें देकर महाराज दशरथ धर्माचरणपूर्वक स्वर्ग को प्राप्त हुए। रामचन्द्रजी ने सत्यमार्ग में तत्पर होकर और सज्जनों के धर्म का स्मरण कर अपने पिता की आज्ञा को नहीं त्यागा। इसी लिए पिता और भ्राता के दिये हुए इस अकंटक राज्य को तुम भोगो; अपना अभिषेक करके अपने प्रधान और मन्त्रियों को हर्षित करो। उत्तर, पश्चिम, दक्षिण और पूर्व देशवाले तथा द्वीपवासी राजा लोग और नौका-व्यापारी लोग आपके लिए करोड़ों रत्नों की भेंट लेकर उपस्थित हों।

वशिष्ठजी का वचन सुनकर भरतजी शोक से सन्तप्त हुए। धर्म की आकांक्षा से, मन में राम को याद कर, आँखों में आँसू भरकर वे विलाप करने लगे। उन्होंने पुरोहित से कहा—ब्रह्मन्, आप सर्वज्ञ होकर मुझे ऐसे अनुचित कर्म में क्यों प्रवृत्त करते हैं। देखिये तो सही, ऐसे ब्रह्मचर्यनिष्ठ, विद्या के पारङ्गत, बुद्धिमान् और धर्म में तत्पर पुरुष के राज्य को कौन सँभाल सकता है? दशरथजी से उत्पन्न हुआ मनुष्य राज्य का हरण किस प्रकार कर सकता है? हे धर्मज्ञ, राज्य और मैं दोनों रामचन्द्र जी के हैं। इसलिए यहाँ पर आपको धर्मानुसार वचन कहना चाहिए। हे ब्रह्मर्षे, जैसे महाराज दशरथजी, दिलीप और नहुष के तुल्य, इस राज्य के अधिकारी थे उसी प्रकार ज्येष्ठ और श्रेष्ठ धर्मात्मा रामचन्द्र ही इस राज्य के योग्य हैं। इस राज्याधिकार रूप पाप से आर्य लोग घिन करते हैं और इस पाप से स्वर्ग-लाभ की रुकावट होती है। यदि मैं यह पाप करूँ तो लोक मे इक्ष्वाकु-कुल का घातक कहलाऊँगा। मेरी माता ने जो पाप किया वह मुझे नहीं रुचता। मैं यहाँ से हाथ जोड़ वनवासी राम को प्रणाम करता हूँ और उन्हीं क

अनुगामी होता हूँ। वही नर-श्रेष्ठ राजा हैं। और वे तो तीनों लोकों के राज्यशासन के योग्य हैं; इस पृथ्वी की क्या कथा है। सभासदों का मन राम में लगा था। वे भरतजी का ऐसा धर्मयुक्त वचन सुन हर्ष के आँसू बहाने लगे।

फिर भरतजी बोले कि यदि मैं आर्य को वन से लौटा न सकूँ तो उसी वन में लक्ष्मणजी की तरह निवास करूँगा। देखिए, मैं आप लोगों; साधुओं और गुणियों के सामने उनके लौटाने के लिए सब प्रकार के उपाय करूँगा। सेंत काम करनेवाले और द्रव्य लेकर काम करनेवाले और मार्ग शोधन में चतुर लोगों को मैंने पहले ही भेज दिया है। अब इस समय मुझे यात्रा ही अच्छी लगती है। इस तरह कहकर भरतजी ने सुमन्त्र से कहा कि तुम शीघ्र जाओ और मेरी ओर से यात्रा की आज्ञा दे, सेना लाओ। भरतजी का यह वचन सुन सुमन्त्रने हर्षित हो, भरतजी की आज्ञा के अनुसार सब काम किया। राम को लौटाने के लिए यात्रा की आज्ञा सुनकर प्रधान और सेनापति लोग बहुत प्रसन्न हुए। योद्धाओं की स्त्रियाँ अपने अपने पतियों की यात्रा के लिए शीघ्रता करने लगीं। सेतापति लोग अपनी अपनी स्त्रियों को साथ ले रथों को सजाने की आज्ञा देने लगे।

इस प्रकार सेना को तैयार देख भरतजी ने गुरु के समीप सुमन्त्र को आज्ञा दी कि मेरा रथ लाओ। तब सुमन्त्र ने अच्छे घोड़े जोत कर भरतजी के सम्मुख रथ खड़ा कर दिया। इसके बाद फिर भरतजी बोले कि हे सुमन्त्र, तुम सेनापतियों को सेना इकट्ठी करने की आज्ञा दो। तब सुमन्त्र ने भरतजी के वचनानुसार सेना तैयार करने की आज्ञा दे दी। ब्राह्मण इत्यादि चारों वर्ण भी अपनी अपनी मण्डलियों में ऊँट, रथ, खच्चर, हाथी और अच्छे अच्छे घोड़ों को, यात्रा के लिए, तैयार करने लगे।

---

## ८३वाँ सर्ग

### भरतजी का गङ्गा-तट पर पहुँचना

अब भरतजी प्रातःकाल के समय उठकर राम के दर्शन की आकांक्षा से, रथ पर चढ़ शीघ्रता से चले। उनके आगे आगे सब मन्त्री और पुरोहितों ने अच्छे अच्छे रथों पर चढ़ कर यात्रा की। अच्छे सजे हुए नौ हजार हाथी, साठ हजार रथ, ? (जिन पर नाना प्रकार के शस्त्रों को धारण किये धनुर्द्धर लोग चढ़े थे) और एक लाख घुड़-सवार भरतजी के साथ चले। कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी, सभी अच्छी सवारियों पर चढ़ कर चलीं और आर्य लोगों के झुंड के झुंड राम-लक्ष्मण को देखने के लिए चले। लोग उन्हीं की चित्र विचित्र कथा कहते और प्रसन्न होते जाते थे कि हम लोग उस मेघ-श्याम, महाबाहु, स्थिरपराक्रम, दृढ़-व्रत और जगत् के शोकनाशक राम को कब देखेंगे, क्योंकि जैसे सूर्य उदय होते ही लोक का अन्धकार नष्ट कर देता है, वैसे ही दर्शन-मात्र से रामचन्द्रजी हमारे शोक को दूर कर देंगे।

इस प्रकार कथाएँ कहते और मारे हर्ष के परस्पर गले से गले भेटते हुए नगरवासी लोग चले जाते थे। वहाँ राज-सम्मत, प्रधान बनिये और और सब झुंड हर्षित हो रामचन्द्रजी के पास चले। उनमें कोई मणि के काम में चतुर था, कोई घर बनाने की कला में निपुण था, कितने ही नाना प्रकार की सूती चीजें बनाने

वाले थे और कितने एक शस्त्र की जीविका और आरा चलानेवाले थे । कितने ही वेध करनेवाले, काँच और धातुओं के काम करनेवाले, तथा हाथीदाँत पर काम करने में निपुण थे; कोई रसोई बनानेवाले, गन्धी, सोनार, कम्बल बनानेवाले, स्नान करानेवाले, देह मलनेवाले और धूप देने में दक्ष थे। कितने ही मद्य बनानेवाले, धोबी, रँगरेज, दरजी, मोटे ताजे अहीर, नट और मल्लाह थे। वे अपनी-अपनी स्त्रियों को साथ ले भरत के पीछे हो लिये। शील और चारित्र्य में प्रसिद्ध और वेदपारग सहस्रों ब्राह्मण गाड़ियों पर चढ़ चढ़ भरत के पीछे हो लिये। बहुत से लोग सुन्दर वेषों को और सुन्दर वस्त्रों को धारण किये रक्तचन्दन से भूषित हो विमल सवारियों पर चढ़े धीरे धीरे भरत के पीछे चले। इसी प्रकार सेना हर्षित और आनन्दयुक्त हो भरत के साथ चली जाती थी। इस प्रकार चल कर वे शृङ्गवेरपुर के पास गङ्गा के तट पर पहुँचे, जहाँ रामचन्द्रजी का मित्र गुह अपने जातिवालों के साथ सावधानी से उस देश का पालन करता हुआ निवास करता था।

गंगा-तीर पर जब सेना पहुँची तब भरत अपने प्रधानों से बोले कि मेरी सेना को ठहराओ। आज विश्राम करके कल पार उतरेंगे। मैं स्वर्गवासी महाराज दशरथ को, और्द्धदैहिक क्रिया के निमित्त, इस पवित्र नदी का जल देने की इच्छा करता हूँ। भरत का ऐसा वचन सुन मन्त्री लोगों ने, अपनी अपनी इच्छा के अनुसार, सेना को अलग अलग टिका दिया। भरतजी ने भी उस सेना को टिका कर रामचन्द्रजी के लौटाने की चिन्ता करते हुए, निवास किया।

---

# ८४वाँ सर्ग

## गुह से भरत की भेंट और भरत का सत्कार

अब सेना को टिकी हुई देख निषादराज अपने जातिवालों से बोले कि देखो यहाँ पर यह बड़ी सेना समुद्र के तुल्य देख पड़ती है इसका विचार करके भी मैं अन्त नहीं पाता हूँ। मुझे जान पड़ता है कि भरत मन में बुरा विचार कर आपही आये हैं क्योंकि यह महाविशाल कचनाराकार का ध्वज रथ पर देख पड़ता है। यह ध्वज इक्ष्वाकु-कुल का चिह्न है। नहीं जान पड़ता, यह हमको बाँधेंगे कि मारेंगे? जिन रामचन्द्र को पिता ने वनवास दिया उनकी ओर यह जा रहे हैं। सो उनको मारने के लिए निष्कण्टक राज्य की इच्छा से तो ये नहीं जाते? रामचन्द्रजी मेरे स्वामी और मित्र भी हैं। देखो, तुम लोग राम के कल्याण के लिए, यहीं गङ्गा के तट पर, तैयार खड़े रहो; और फल, मूल और मांस खा करके इन पाँच सौ नावों पर—प्रत्येक में सौ सौ जवान मल्लाह—रक्षा करते रहो। जो भरत राम के विषय में मुझे सन्तुष्ट देख पड़ेंगे तो इनकी सेना कुशल से पार उतरेगी।

यह कह कर गुह भेंट में देने के लिए मत्स्य-मांस और मधु लेकर भरत से मिलने चला। अब सूत के पुत्र ने निषादराज को आते देखकर भरत से नम्रतापूर्वक निवेदन किया कि यह वृद्ध निषाद अपने सहस्रों जाति भाइयों सहित आपके भाई का मित्र है। यह दण्डकारण्य को भलीभाँति जानता है। यह निषादों का स्वामी गुह आपका दर्शन करे। राम, लक्ष्मण जहाँ निवास करते होंगे उस स्थान को यह अवश्य जानता होगा। सुमन्त्र का ऐसा वचन सुनकर भरत बोले

कि अच्छा, गुह से कहो कि शीघ्र आवे और मुझसे मिले।

भरत की आज्ञा पाकर गुह अपने बंधुगणों के साथ, हर्षित होकर नम्रता-पूर्वक बोला—प्रभो, यह देश आपके घर की वाटिका के तुल्य है। पहले से यात्रा का संदेश न मिलने के कारण हम लोग चकित हो गये हैं। यह संपूर्ण राज्य आपही का है। हम सब आपके दास हैं, इसलिए आप अपने दास के घर निवास कीजिए। निषाद लोगों ने नाना प्रकार के फल मूल आदि ला कर आपके लिए इकट्ठा कर रक्खे हैं। मैं चाहता हूँ कि सेना इसी का भोजन करके आज की रात यहाँ रहे, और हम लोग आपकी यथोचित सेवा करें। फिर कल प्रातःकाल आप सेना को लेकर यात्रा करें।

---

## ८५वाँ सर्ग

### गुह के साथ भरत का वार्त्तालाप करना और राम की चिन्ता से दुखी होना

गुह की बातें सुन कर भरतजी बोले—हे ज्येष्ठ भ्राता के मित्र, यह तो तुम्हारा बड़ा भारी मनोरथ है जो तुम हमारी इतनी बड़ी सेना की पहुनाई करना चाहते हो। हे निषादराज, भला हम किस मार्ग से भरद्वाज के आश्रम में जायँगे? क्योंकि यह गंगा के तीर का प्रदेश बड़ा दुर्गम है।

भरतजी का वचन सुनकर वनवासी गुह ने हाथ जोड़कर कहा—प्रभो, ये नौकर लोग इस देश को भली भाँति जानते हैं। ये आपके साथ जायँगे और आपका अनुचर होकर मैं भी साथ चलूँगा। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि राम के पास आप दुष्टबुद्धि से तो नहीं आये हैं? क्योंकि यह सेना देखकर मेरे मन में शंका होती है। भरतजी, तो आकाश की तरह निर्मल और निर्दोष थे। वे मधुर वचन बोले—हे गुह, वह समय न आवे जिसमें मेरी ऐसी पापबुद्धि हो। तुमको भी मेरे विषय में ऐसी शंका करना उचित नहीं क्योंकि मेरे ज्येष्ठ भ्राता रामचन्द्रजी मेरे पिता के तुल्य हैं। मैं उनको लौटाने के लिए जाता हूँ। हे गुह, मेरी बुद्धि अन्य प्रकार की नहीं है और न मुझे अन्यथा करना योग्य है। मैं तुमसे सच कहता हूँ। तब गुह हर्षित होकर बोला—हे भरतजी, आप धन्य हैं। इस पृथिवीतल पर आप के तुल्य मैं किसी को नहीं देखता। बिना ही प्रयत्न से पाये हुए राज्य का आप त्याग करना चाहते हैं। हे भरतजी! आप क्लेशित और दुःख का प्राप्त राम को लौटाना चाहते हैं—आप की यह कीर्ति सनातन लोक में प्रचलित रहेगी।

भरतजी से इस प्रकार गुह कह ही रहे थे कि इतने में सूर्य अस्ताचल को प्राप्त हुआ। रात हो गई। तब भरतजी अपनी सेना को टिका कर और गुह से संतुष्ट हो अपने शयन-स्थान पर आये। शत्रुघ्न साथ ही थे। परन्तु राम के चिन्तारूप शोक ने उस धर्म्मात्मा को घेर लिया। भीतर का शोकरूप अग्नि भरतजी को ऐसे जलाने लगा जैसे वनाग्नि से शुष्क वृक्ष को कोटर का अग्नि जलाता है। भरतजी के शरीर से पसीना बह निकला। यह पसीना दुःख के कारण निकला था। वे दुःखरूप पर्वत से हृदय में अत्यन्त पीड़ित हुए। उस पर्वत में राम का ध्यान ही बड़े-बड़े पत्थर हैं, ऊँची साँस रूप धातुएँ हैं और दीनता वृक्ष समूह है। उस दुःखरूप पर्वत में शोक, श्रम और मन की

पीड़ा ही शृङ्ग, और मोह ही अनन्त जन्तु एवं संताप ओषधि और बाँस हैं।

उस समय भरतजी ऊँची साँस लेकर उदास और अचेत हो, बड़े दुःखी हुए। हृदय के शोकज्वर से वे अत्यन्त व्यथित थे। उस समय गुह ने और उसके परिवारवालों ने बहुत समझाया परन्तु भरतजी को कुछ भी शान्ति न हुई।

---

## ८६वाँ सर्ग

### गुह का लक्ष्मणजी की प्रशंसा करना

अब गुह लक्ष्मणजी की सज्जनता का भरतजी से वर्णन करने लगे कि हे प्रभो, भाई की रक्षा के लिए जब हाथ में धनुर्बाण ले लक्ष्मण जागते थे तब मैंने कहा—हे तात, आप के सोने के लिए यह शय्या तैयार है। आप सुख से इस पर शयन कीजिए। क्योंकि हम लोग सब दुःख सह सकते हैं और आप सुख के योग्य हैं। इनकी रक्षा के लिए हम जागते रहेंगे। इस भूमि पर मुझे राम से अधिक प्रिय कोई नहीं। मैं आपसे सत्य कहता हूँ। इन्हीं के प्रसाद से मैं इस लोक में बड़े यश, धर्मलाभ और अर्थ-काम की आशा रखता हूँ। हे लक्ष्मणजी, प्रिय मित्र रामचन्द्रजी सीता सहित सो रहे हैं, मैं धनुष लेकर अपने साथियों सहित इनकी रक्षा करूँगा। इस प्रान्त में मुझसे कोई वस्तु छिपी नहीं है। मैं इस वन में सदा घूमता ही तो रहता हूँ। कदाचित् चतुरङ्गिणी सेना भी आ जाय तो मैं उसको भी रोक लूँगा। प्रभो, हमारा यह वचन सुनकर महाधर्मात्मा लक्ष्मण विनयपूर्वक बोले—हे गुह, महाराज रामचन्द्र सीता सहित भूमि पर सो रहे हैं उन्हें ऐसी अवस्था में छोड़ मुझे किस प्रकार सुख से सोना चाहिए? ऐसी अवस्था में मुझे जीवन अथवा सुख भोगना कहाँ तक उचित है? हे निषादराज, जो युद्ध में देवासुरों को भी सहने में अशक्य हैं, वे ही सीता सहित घास पर शयन कर रहे हैं। हे गुह, बड़े तप और बहुत परिश्रम से अपने समान लक्षणयुक्त इस पुत्र को महाराज दशरथ ने पाया है। मैं जानता हूँ कि इनको वनवास होने से राजा बहुत दिन तक न ठहरेंगे और शीघ्र ही यह पृथ्वी विधवा होगी। देखो, स्त्रियाँ ऊँचे से रोते-रोते थक कर चुप हो रही होंगी और आज राजभवन शब्द रहित हो गया होगा। कौशल्या, राजा और मेरी माता—कोई आज की रात जीते न बचेंगे। कदाचित् मेरी माता शत्रुघ्न की बाट देखती हुई बच जाय तो बच जाय, परन्तु हे गुह, वीरमाता कौशल्या तो इस दुःख से विनष्ट ही हो जायगी। कितने एक दिनों से राजा का यह मनोरथ था कि राम को राज्य-सिंहासन पर बैठावें। हा! उस मनोरथ के पूर्ण हुए बिना ही मेरे पिता नष्ट हो जायँगे। मेरे पिता के शान्त हो जाने पर जो लोग उनके प्रेतकार्य संस्कार में योग देंगे, वे सिद्धमनोरथ होंगे। मेरे पिता की राजधानी में चौतरे और बैठके रमणीय हैं। वहाँ वे लोग सुखी होकर विचरेंगे। उस राजधानी में मनोहर राजमार्ग और अच्छे अच्छे घर सुशोभित हैं। वह नाना रत्नों से भूषित है। उसमें हाथी, घोड़ों और रथों की भीड़ रहती है; तरह तरह के बाजे बजते रहते हैं। वह सब कल्याणों से परिपूर्ण और हृष्ट पुष्ट जनों से भरी, वाटिका और उपवनों से भूषित है। वह राजधानी समाज और उत्सवों से सदा आह्लादित रहती है। जो वहाँ रहेंगे वे ही सुखी हैं। हे गुह, सत्यप्रतिज्ञ

होकर हम भी कुशल से राम के साथ इस समय के निवृत्त्य होने पर—सुखपूर्वक उस नगरी में प्रवेश करेंगे।

हे भरत, लक्ष्मणजी को इस प्रकार विलाप करते और जागते वह रात बीत गई। प्रातःकाल सूर्योदय के समय, दोनों भाइयों ने जटा बनाई और मैंने इसी घाट पर उनको पार उतारा। मस्तक पर वे जटा धारण किये थे। वृक्ष के बक्कल पहिने थे। इस प्रकार वे तरकस और धनुष लिये, सीता के साथ गजराज की भाँति चले गये।

---

## ८७वाँ सर्ग

### गुह का वचन सुनकर भरत का मूर्च्छित होना और खेद करना

गुह से ऐसा अप्रिय वचन सुन कर भरत सोच में पड़ गये। महाभुज, कमलनेत्र और मनोहर दर्शनवाले भरतजी दो घड़ी बाद जब कुछ सचेत हुए तब दुःखित मन होकर अंकुश से विद्ध हस्ती की तरह, परम दुखी हुए।

भरतजी को मूर्च्छित देख, गुह का मुँह मलिन हो गया। भूमिकम्प से वृद्ध की तरह काँप कर वह बहुत दुखी हुआ। भरतजी की ऐसी दशा देख कर शत्रुघ्नजी अत्यन्त शोकित और संज्ञाहीन हो, उनके शरीर से लिपट कर ऊँचे स्वर से विलाप करने लगे। भरतजी की सब मातायें उपवास से कृश और पति के मरण से शोकित थीं। रोदन सुन कर वे वहाँ दौड़ आईं और भरतजी को धरती पर पड़े देख, रोती हुई चारों ओर से घेर कर खड़ी हो गईं। भरत जी के पास आकर कौशल्या उनको गले से लगा कर रोती हुई बोली—हे पुत्र, तुमको कोई व्याधि तो पीड़ा नहीं देती है? देखो, आज इस राजकुल का जीवन तुम्हारे ही अधीन है। हे पुत्र, लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र तो चले ही गये, अब मैं तुम्हीं को देख कर जीती हूँ। अब महाराज दशरथ के अनन्तर, तुम्हीं एक हमारे आधार हो। हे वत्स, लक्ष्मण के विषय में तो तुमने कुछ अप्रिय बात नहीं सुनी? अथवा मेरे पुत्र के विषय में तो कुछ भय की बात नहीं सुनी? तुम इतने व्याकुल क्यों हो गये?

जब भरतजी की मूर्च्छा दूर हुई तब, रोती हुई कौशल्या को धीरज देकर वे गुह से बोले—हे निषादराज, मुझे बताओ, मेरे दोनों भाइयों ने और जनकनन्दिनी सीता ने रात को कहाँ निवास किया और किस स्थान में शयन किया? उन्होंने क्या भोजन किया था? भरत के इस वचन से हर्षित हो, निषादों का स्वामी गुह, रामचन्द्रजी के व्यवहार का वर्णन करने लगा—हे राजपुत्र, रामचन्द्रजी के भोजन के लिए मैंने सब प्रकार के अन्न, भक्ष्य और फल मूल समीप लाकर रक्खे परन्तु उन्होंने क्षत्रिय धर्म्म का स्मरण कर कुछ भी ग्रहण नहीं किया। उन्होंने कहा—हे मित्र, हम कुछ भी नहीं ले सकते। ऐसा कह कर और हम लोगों को समझा कर उन्होंने लक्ष्मणजी का लाया हुआ केवल जल-पान किया। वे सीता सहित उपवास करके रह गये। इसके अनन्तर लक्ष्मणजी ने भी बचे हुए उसी जल को पी लिया। फिर वे तीनों मौन हो संध्योपासन में तत्पर हुए। तदनन्तर लक्ष्मणजी ने रामचन्द्रजी के सोने के लिए कुश लाकर बिछा दिये और जब रामचन्द्रजी ने तथा सीता ने उस पर शयन किया तब उन दोनों के चरण धोकर लक्ष्मणजी वहाँ से हट गये। हे भरतजी, यही वह इंगुरी

का वृक्ष और यही वह घास है। इसी पर उस रात को उन दोनों ने शयन किया था। धनुष बाण लिये लक्ष्मण-जी पीठ पर तरकस बाँधे और गोधांगुलित्राण को धारण किये रात भर उनके चारों ओर पहरा देते रहे। मैं भी अपने ज्ञातिभाइयों के साथ धनुषबाण ले, आलस्यरहित होकर, यहाँ रात भर सावधानी से जागता रहा।

---

## ८८वाँ सर्ग

### राम का शयनस्थान देख कर भरतजी का अत्यन्त खेद करना

ये बातें सुन कर भरतजी मन्त्रियों के साथ उस इंगुदी वृक्ष के नीचे आये। वहाँ वे राम की शय्या को देखने लगे और अपनी माताओं से बोले कि देखो, उस महात्मा ने रात को यहीं शयन किया था। ये तृण उनके शरीर से मर्दन किये हुए हैं। ऐसे कुलीन महाभाग और बुद्धिशाली रामचन्द्रजी महाराज दशरथ के कुँवर होकर भूमि पर लेटने के योग्य नहीं हैं। हा! जो अच्छे मृगचर्मयुक्त सुन्दर बिछौने पर शयन करते थे वे भूमि पर किस प्रकार सोते हैं। रामचन्द्रजी महल के सातवें मञ्जिल पर और भवन के सबसे ऊपरवाले हिस्से पर सदा शयन करते रहे हैं। उनके महलों की गच सोने चाँदी की है। उन महलों में पलँगों पर अच्छे बिछौने पड़े रहते हैं। उनके महलों की दीवारों पर चित्र अंकित हैं। वे महल चन्दन और अगर की सुगन्धि से सुगन्धित हैं। उन महलों की आभा सफेद आकाश की भाँति है। उनमें तोतों की बोली गूँजती रहती है। नाना प्रकार की सुगन्धि और गीतों की तान से वे सदैव परिपूर्ण रहते हैं। उन महलों की दीवारें सुवर्णमय हैं और वे महल मेरुपर्वत के समान ऊँचे हैं—ऐसे उत्तम महलों में रामचन्द्रजी दिन रात रहते थे। ऐसे सुन्दर राजमहलों में रामचन्द्रजी निवास करके गान और श्रेष्ठ मृदङ्ग आदि वाद्यों के शब्द सुना कर जगाये जाते थे। समय समय पर बहुत से सूत, मागध और बन्दीगण नाना प्रकार की सुन्दर गाथाओं और स्तुतियों से जिनकी वन्दना करते थे, उनकी यह दुःखावस्था विश्वास के योग्य और मुझे सत्य नहीं जान पड़ती। इसका विचार करने में मेरा मन मोह में पड़ जाता है। इसलिए मैं जानता हूँ कि यह स्वप्न है। काल से अधिक बलवान दैव नहीं है। क्योंकि यह एक ऐसा काल प्राप्त हो गया कि जिसमें दशरथ के पुत्र रामचन्द्रजी ऐसी अवस्था में भूमि पर सो रहे हैं। हा! विदेहराज की पुत्री ऐसी सुन्दरी, प्रीतपात्र और दशरथ की पुत्रवधू थी; वह भी भूमि पर सोती है। हे माता, देखो यह मेरे भ्राता की शय्या है। इस पर उन्होंने शयन किया और शरीर से इन कठोर तृणों का मर्दन किया है। मुझे जान पड़ता है कि सीता भूषण पहने हुए सोई थी क्योंकि जहाँ तहाँ ये सुवर्ण के दाने उलझे हुए देख पड़ते हैं। माता, मुझे अनुमान होता है कि यहाँ पर उस तपस्विनी सीता का दुपट्टा उलझा था क्योंकि यहाँ रेशम के धागे देख पड़ते हैं। मैं जानता हूँ कि पति की शय्या स्त्रियों को सदा सुखदायिनी हो जाती है, चाहे वह कोमल हो या कठोर। देखो, उस बाला तपस्विनी पतिव्रता ने ऐसी सुकुमार होने पर भी इसे क्लेश नहीं समझा। हा! मैं बड़ा घातक ठहरा, जिसके कारण राम अनाथ की तरह इस प्रकार की शय्या पर सोये। सार्वभौम के कुल में उत्पन्न होकर, सबके लिए सुखदाता और सबके प्रियकारी होकर भी,

वे ऐसे राज्य से हीन किये गये। हा! नीलकमल के समान श्यामल, प्रियदर्शन और सुखभागी रघुनाथजी धरती पर किस प्रकार सोये! इस समय लक्ष्मणजी को बड़भागी कहना चाहिए जो ऐसे कठिन समय में राम के अनुगामी हुए और वैदेही भी कृतार्थ हुई। क्योंकि वह भी राम की अनुगामिनी हुई। उस महात्मा से हीन होकर हम सब कैसे डावाँडोल हुए। इस समय महाराज दशरथजी के स्वर्ग जाने और राम के वनवासी होने से मुझे यह पृथ्वी बिना कर्णधार की नौका की तरह शून्य देख पड़ती है। रामचन्द्रजी यद्यपि वन में रहते हैं तथापि यह पृथ्वी उन्हीं के बाहु-पराक्रम से रक्षित है क्योंकि इसे कोई दूसरा मन से भी नहीं चाहता। देखो, यह राजधानी प्राकार की रक्षा से हीन और घोड़े, हाथी आदि के संयम से रहित है। इसके पुरद्वार भी खुले पड़े हैं। यहाँ की सेना हर्ष-रहित हो रही है और रक्षा-हीन होने से न्यून हो रही है। इस प्रकार अव्यवस्था में पड़ी इस राजधानी को शत्रु लोग नहीं चाहते। हे माता, अब आज से मैं भूमि पर या तृणों पर सोऊँगा; फल-मूल खाऊँगा और जटा-चीर धारण करूँगा। राम के मिलने पर मैं सुख से वन में रहूँगा। ऐसा करने से रामचन्द्रजी की प्रतिज्ञा मिथ्या न हो सकेगी। मेरे साथ शत्रुघ्न भी वन में रहेंगे। रामचन्द्रजी लक्ष्मण के साथ अयोध्या का पालन करेंगे। ब्राह्मण लोग अयोध्या में राम का अभिषेक करेंगे। मैं तो यही जानता हूँ कि देवता लोग मेरे मनोरथ को सत्य करेंगे। मैं अपने सामर्थ्य भर बहुत प्रकार से, मस्तक नवाकर, उनकी प्रार्थना करूँगा। जो वे न मानेंगे तो मैं भी उसी वन में रह जाऊँगा। रामचन्द्रजी भक्तवत्सल हैं। वे कभी मेरा त्याग न करेंगे।

---

## ८९वाँ सर्ग

### भरत का गङ्गा-पार उतरना और प्रयाग में पहुँचना

भरतजी रात भर वहीं रहे। प्रातःकाल उठकर बोले—हे शत्रुघ्न, अब क्या सोते हो? उठो, निषाद-राज गुह को शीघ्र बुलाओ। वह हमारी सेना को पार उतार दे। यह सुनकर शत्रुघ्न बोले कि हे भ्राता, मैं भी तो जागता हूँ। जैसे आप आर्य की चिन्ता कर रहे हैं वैसे मैं भी उन्हीं का ध्यान कर रहा हूँ।

दोनों भाई ये बातें कर ही रहे थे कि गुह आया और हाथ जोड़कर बोला—हे काकुत्स्थ, आप इस नदी के तीर पर सुख से तो रहे? सेना को और आपको किसी प्रकार का क्लेश तो नहीं हुआ? गुह का ऐसा स्नेहयुक्त वचन सुनकर भरत, राम का स्मरण करते हुए, बोले—हे गुह, यह रात हमें सुख से बीती और तुमने हमारा सत्कार भी किया। अब तुम्हारे मल्लाह हमें पार उतार दें। भरतजी की यह आज्ञा पाकर गुह ने नगर में जा अपने जाति-भाइयों से कहा—भाइयो, उठो, सदा तुम्हारा मङ्गल हो। नाव लाओ, सेना को पार उतारना है।

निषादराज का वचन सुनकर मल्लाह पाँच सौ नावें तैयार कर ले आये। इनके सिवा और भी स्वस्तिक नामक नौकाएँ आईं, जिन पर बड़े-बड़े घण्टे टँगे थे, पताकाएँ फहरा रही थीं और अच्छे-अच्छे मल्लाह नियुक्त थे। वे बड़ी सुन्दरता और दृढ़ता से बनाई गई थीं और अत्यन्त शोभित थीं। उनमें मङ्गल-बाजे भी बजते थे। राजा के चढ़ने के योग्य स्वस्तिक नाम की नौका गुह ले आया। उन पर पहले पुरोहित और उत्तम-

उत्तम ब्राह्मण लोग चढ़े। तदनन्तर भरत, शत्रुघ्न, कौशल्या, सुमित्रा और राजपत्नियाँ सवार हुईं। दूसरी नावों पर छकड़े रक्खे गये और हाटवाले बनियें, अपनी बेचने की सामग्री लेकर, चढ़ गये। उस समय जो लोग अपनी-अपनी छावनी फूँक रहे थे और बड़े-बड़े पात्रों को पानी में फेंक रहे थे उनका ऐसा शब्द हुआ कि आकाश तक गूँज गया। वे पताकावाली नावें लोगों को लेकर बड़े वेग से चली जाती थीं। मल्लाह लोग सावधानी कर रहे थे। कितनी एक नावें तो स्त्रियों और कितनी ही घोड़ों से भरी थीं। कई एक पर गाड़ी, छकड़े तथा कीमती बैल, घोड़े और खच्चर आदि थे। अब लोगों और सब पदार्थों को उस पार उतारने के लिए ये नावें चलीं। मल्लाह लोग खेने लगे। महावत ध्वज-सहित हाथियों को तैराकर पार ले चले। उस समय वे हाथी सपक्ष पर्वत की तरह देख पड़ते थे। कितने एक लोग तो नावों से, कितने ही तृण-काष्ठ से बनाये हुए प्लवों और घरनई से और कुछ लोग तैरकर पार हुए। इस प्रकार मल्लाहों ने सेना को गङ्गा-पार उतारा। वह सेना सूर्योदय से तृतीय मुहूर्त्त में प्रयाग के वन में जा पहुँची। तब भरत ने सेना को सावधानी से टिकाकर भरद्वाज मुनि के दर्शनों के लिए ऋत्विक् और सभासदों को साथ ले प्रस्थान किया। देव-पुरोहित महात्मा ब्राह्मण के आश्रम में पहुँचकर सबने उनकी रमणीय पर्णशाला और वन को देखा।

---

## ९०वाँ सर्ग

### भरतजी का भरद्वाज मुनि से भेंट करना और उन्हीं से राम के निवास-स्थान का समाचार पाना

भरद्वाज के आश्रम के पास पहुँचकर भरतजी ने कोस भर पर सेना ठहरा दी। आप मन्त्रियों को साथ ले और राजसी ठाट त्यागकर, पट्ट वस्त्र पहन, पुरोहित को आगे कर मुनि से भेंट करने को पैदल चले। तदनन्तर भरद्वाज के निवास-स्थान के पास मन्त्रियों को ठहराकर आप पुरोहित के पीछे-पीछे चले। इसके अनन्तर वशिष्ठ को देख भरद्वाज मुनि शीघ्र आसन से उठे, और शिष्यों को अर्घ्य लाने के लिए आज्ञा देकर उनसे मिले। तब भरतजी ने मुनि को प्रणाम किया। मुनि ने, उनको दशरथ का पुत्र जानकर उनके लिए भी अर्घ्य-सामग्री मँगवाई और अर्घ्य-पाद्य से दोनों की पूजा की। फिर भोजन के लिए फल दिये। क्रमपूर्वक उनके कुल का कुशल-प्रश्न किया और अयोध्या में स्थित सेना, कोश, मित्र और मन्त्रियों का कुशल-मङ्गल पूछा। वे दशरथ की मृत्यु का समाचार जानते थे, इसलिए उनका नाम नहीं लिया। इसके अनन्तर भरत और वशिष्ठ दोनों ने मुनि के शरीर, अग्नि, शिष्य, वृक्ष, मृग और पक्षियों के विषय में कुशल-प्रश्न किया। तब मुनि ने अपना आनन्द-मङ्गल सुनाकर रामचन्द्रजी के स्नेह में भरतजी से कहा—हे राजकुमार, तुम तो राज्य-शासन कर रहे हो। भला यहाँ तुम्हारे आने का क्या प्रयोजन है? अनुग्रह करके मुझसे कहिए क्योंकि मेरा मन शुद्ध नहीं होता। स्त्री के कहने पर राजा ने राम को भार्या-सहित चौदह वर्ष का वनवास दिया। उस निष्पाप के विषय में और उसके अनुज के विषय में, अकण्टक राज्य भोगने की इच्छा से, आप कुछ पाप-बुद्धि तो नहीं करना चाहते?

जब भरद्वाज मुनि ने ऐसा कहा तब भरतजी दुःख से आँखों में आँसू भरकर गद्गद वाणी से बोले कि यदि भगवान् ऐसा समझते हैं तो मैं मारा गया। मेरा जन्म व्यर्थ हुआ। मुझे शङ्का होती है कि इस वनवास के विषय में मुझसे कोई दोष तो नहीं हो गया? इसलिए

हे ब्रह्मन्, मुझे ऐसा कठोर वचन न कहिए। मेरी माता ने मेरे विषय में जो चाहा था वह भी मेरा इष्ट नहीं था। इससे मैं सन्तुष्ट भी नहीं। मैं उसकी बात भी नहीं मानता हूँ। मैं तो उन नरश्रेष्ठ को, प्रसन्न करने, अयोध्या में लौटा लाने और उनके चरणों को प्रणाम करने जाता हूँ। इसलिए हे भगवन्, मेरा यह अभिप्राय जानकर आप मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिए और मुझे बतलाइए कि इस समय रामचन्द्रजी कहाँ रहते हैं।

अब वशिष्ठ इत्यादि ऋत्विजों ने भी मुनि से इसी बात के लिए प्रार्थना की। तब मुनि प्रसन्न होकर भरतजी से बोले कि हे पुरुषश्रेष्ठ, गुरु के विषय में इस प्रकार का व्यवहार करना, जितेन्द्रिय होना और साधुओं का अनुगामी होना, ये तीनों बातें आपके ही लायक हैं, क्योंकि रघुवंशियों में ये तीनों आचरण प्रायः देखे जाते हैं। मैं जानता हूँ कि आपके मन में यही बात है। मैं यही चाहता हूँ कि आप का यही विचार दृढ़ रहे। मैंने आपसे यह प्रश्न केवल आपकी कीर्त्ति के बढ़ाने के लिए किया था; मेरा कुछ और अभिप्राय नहीं है। मैं जानता हूँ, रामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मण-सहित चित्रकूट पर्वत पर ठहरे हुए हैं। अपनी मण्डली के साथ आप कल उस स्थान पर जाइएगा। आज यहीं निवास कीजिए। हे प्राज्ञ, यही मेरी कामना है। तब भरतजी ने ऋषि का वचन मानकर रात भर ऋषि के आश्रम में ही रहने की इच्छा प्रकट की।

——

# ९१वाँ सर्ग

## भरद्वाज का दिव्य सामग्री से भरतजी की सेना का अतिथि-सत्कार करना

वहाँ भरतजी के टिकने का निश्चय करने पर मुनि ने उनको आतिथ्य का न्योता दिया। तब भरतजी ने कहा—हे महर्षि! आपने पाद्य, अर्घ्य और वन के फल-फूलों से मेरा यथोचित अतिथि-सत्कार किया। यही बहुत है। भरतजी का यह वचन सुनकर मुनि ने हँसकर कहा—मैं जानता हूँ कि आपका मन थोड़े ही पदार्थ से सन्तुष्ट हो जाता है, परन्तु हे पुरुषश्रेष्ठ! मैं अपनी प्रीति के योग्य आपकी इस सेना को भोजन कराना चाहता हूँ और आप इसके योग्य हैं। सेना को आप दूर क्यों छोड़ आये? तब भरतजी ने हाथ जोड़कर कहा—भगवन्, आप ही के डर से मैं सेना को वहाँ नहीं लाया। हे महर्षे, राजा को या राजपुत्र को यही उचित है कि वे तपस्वियों की निवास-भूमि में कुछ गड़बड़ न होने दें—वहाँ से दूर रहें। भगवन्! बड़े-बड़े घोड़े, मनुष्य और मतवाले हाथी बहुत सी भूमि में फैलकर मेरे साथ चलते हैं। वे आपके आश्रम के वृक्ष, जल, भूमि और पर्णशाला आदि का विनाश न करें—इस आशङ्का से मैं यहाँ अकेला ही आया हूँ। भरत की यह बात सुनकर महर्षि बोले—नहीं-नहीं, आप अपनी सेना को यहाँ बुलवाइए। महर्षि की आज्ञा से भरत ने अपनी सेना को बुलवाकर वहाँ टिकने की आज्ञा दी।

अब इधर महर्षि ने अपनी अग्निशाला में जाकर आचमन किया और अतिथि-सत्कार के लिए विश्वकर्मा का आवाहन करने के लिए कहा—आतिथ्य करने के लिए, देवताओं के घर इत्यादि बनानेवाले विश्वकर्मा को,

मैं बुलाता हूँ। तीनों लोकपाल अर्थात् यम, वरुण और कुबेर को, और पूर्व सोतावाली और वक्र सोतावाली नदियों को भी (जो पृथिवी और आकाश में बहती हैं) बुलाता हूँ। उन नदियों में कोई तो मैरेय नामक एक प्रकार के मद्य को और कोई सुरा नाम उत्तम मद्य को और कोई ऐसे शीतल जल को बहाकर प्रकट करें जिसका स्वाद ऊख के रस के तुल्य है। मैं विश्वावसु और हाहा-हूहू गन्धर्वों को, तथा अन्य गन्धर्वों के साथ घृताची, विश्वाची, मिश्रकेशी, अलम्बुषा नागदत्ता, हेमा और पर्वतवासिनी सोमा को बुलाता हूँ और इन्द्र की तथा ब्रह्मा की सभा में जो नाचती हैं उन सब अप्सराओं को तुम्बुरु-समेत पुकारता हूँ। उत्तर कुरुदेश में जो कुबेर का वन है—जिसके वृक्षों के पत्ते दिव्य वस्त्र और दिव्य भूषणरूप हैं और जिसके फल दिव्य नारी-रूप हैं—वह यहाँ प्रकट हो जाय। भगवान् चन्द्र मेरे लिए उत्तम-उत्तम अन्न—भक्ष्य, भोज्य, चोष्य और लेह्य—नाना प्रकार के पदार्थ और चित्र-विचित्र पुष्प (जो वृक्षों से टपके हुए पड़े हैं) यहाँ उपस्थित कर दें। सुरा इत्यादि पीने के योग्य पदार्थों को और विविध मांसों को चन्द्र-देव शीघ्र ही प्रस्तुत और उपस्थित कर दें।

व्रतधारी भरद्वाज मुनि समाधियुक्त और अनुपम तेज से संयुक्त होकर इस प्रकार शिक्षा और स्वरसंयुक्त वचन बोले। पूर्व को मुँह करके उन्होंने हाथ जोड़े। तब, ध्यान करते ही, वे देवता अलग-अलग आकर उपस्थित हुए। उस समय मलय और दर्दुर पर्वतों को स्पर्श करता हुआ प्रतीकारक मङ्गलरूप वायु शीतल, मन्द, सुगन्ध होकर सुखरूप बहने लगा। मेघ दिव्य पुष्पों की वर्षा करने लगे। देवताओं की दुन्दुभि का शब्द सब दिशाओं में सुन पड़ने लगा। अप्सराएँ नाचने लगीं। देव-गन्धर्वों का गान होने लगा। वीणाओं के स्वर सुन पड़ने लगे। नाना प्रकार के मधुर, सम और लययुक्त शब्द आकाश और भूमि में व्याप्त होकर प्राणियों के कानों में प्रवेश करने लगे। इस प्रकार इधर ये मनोहर शब्द हो ही रहे थे कि भरत की सेना ने विश्वकर्मा की रचना को देखा। पाँच योजनपर्यन्त भूमि चारों ओर से सम, और नील तथा पन्ने के तुल्य घास से आच्छादित दीख रही है। उसमें बेल, कैथ, कटहल, बिजौरे नींबू, आँवले और आम के वृक्ष फलों से लदे दीख पड़ने लगे। स्वर्गीय लोगों के उपभोग के योग्य वन भी उत्तर कुरु देशों से आ गया। सुन्दर-सुन्दर नदियाँ आ पहुँचीं। उनके तीरों पर वृक्ष भी खूब लगे थे। सफेद रङ्ग के चौबारे, हाथी और घोड़ों के रहने की शालाएँ महल और अटारियों से संयुक्त मङ्गलरूप मनोहर तोरण दीख पड़ने लगे। वहाँ के स्थान सुन्दर तोरणयुक्त और सफेद मेघ के सदृश सफेद मालाओं से भूषित थे। वे दिव्य गन्ध से सींचे हुए, चौकोर, विस्तीर्ण और उत्तम-उत्तम प्रकार की शय्या, आसन और सवारियों से भरे-पूरे थे। उन स्थानों में दिव्य रस, दिव्य भोजन और वस्त्र मौजूद थे। निर्मल पात्रों में सब प्रकार का अन्न भरा रक्खा था। यथोचित स्थान पर आसन और सुन्दर पलँग बिछे हुए थे। ये स्थान मनोहर थे। इस प्रकार के बने और रत्नों से पूर्ण उस राजभवन में, महर्षि की आज्ञा पाकर, महाबाहु भरत ने प्रवेश किया। उनके पीछे मन्त्री लोग और पुरोहित वहाँ गये। उस शिल्प को देखकर वे आनन्द में मग्न हो गये।

वहाँ जो दिव्य राजासन, छत्र और चमर था उसकी प्रदक्षिणा भरत ने मन्त्रियों के साथ की। फिर रामचन्द्र को प्रणाम और उस आसन की पूजा कर वे

छोटे पंखे को हाथ में ले मन्त्री के आसन पर बैठ गये। उनके बैठते ही मन्त्री, पुरोहित, सेनापति और भवनरक्षक सभी क्रम से अपने-अपने स्थान पर बैठ गये। इसके अनन्तर थोड़ी ही देर में भरद्वाज मुनि की आज्ञा से वहाँ खीर से भरी हुई नदियाँ बहने लगीं। इन नदियों के किनारों पर सफेद चूने से पुते अनेक रमणीय गृह दीख पड़ने लगे। उसी मुहूर्त्त में ब्रह्मा की भेजी हुई, दिव्य भूषण पहने, बीस हजार स्त्रियाँ आईं। इसके सिवा कुबेर की भेजी बीस हजार स्त्रियाँ भी वहाँ आ पहुँचीं। वे सुवर्ण, मणि, मोती और मूँगों से शोभित थीं। अब नन्दन वन से भी बीस हजार ऐसी अप्सराएँ आईं जिनके दर्शन से ही मनुष्य उनके वश में हो जाता और बेसुध-सा हो जाता है। नारद, तुम्बुरु और गोप आदि गन्धर्वराज सूर्य्य के तुल्य प्रकाशमान् हैं। वे भी वहाँ आये और भरत के आगे गाने लगे। भरद्वाज की आज्ञा पाकर अलम्बुषा, मिश्रकेशी, पुण्डरीका और वामना, भरत के आगे नाचने लगीं। जो पुष्प देवताओं की वाटिकाओं में और जो चैत्ररथ नामक वन में देख पड़ते हैं वे, भरद्वाज के तेजोबल से, प्रयागराज में देख पड़ने लगे। उस समय मुनि के तेज से एक बड़ा चमत्कार यह हुआ कि बेल के वृक्ष मृदङ्ग बजाने लगे, बहेड़ों के वृक्ष एक प्रकार का ताल (शम्पा) देने लगे और पीपल के पेड़ नाचने लगे। इसके अनन्तर देवदारु, ताड़, तिलक और तमाल के वृक्ष हर्षित हो कुबड़े के और बौने पुरुष के रूप को धारण करके उपस्थित हुए और शीशम, आँवला, जामुन और अन्य जङ्गली लताओं ने स्त्री का रूप धारण करके भरद्वाज के आश्रम में निवास किया। सभी ने भरत को प्रसन्न करने की चेष्टा की।

अब वे लतारूप स्त्रियाँ पुकार-पुकार कर कहने लगीं कि जिन्हें सुरा पान करना हो वे आवें, सुरा पीवें। जिन्हें भूख लगी हो वे खीर खावें और सुन्दर पवित्र मांस भक्षण करें जो जिस पदार्थ को चाहें उसका भोजन करें।

अब सात-सात आठ-आठ स्त्रियाँ मिलकर एक एक पुरुष को उबटन लगाने और मनोहर नदियों के तीरों पर नहलाने लगीं। विशाल नेत्रोंवाली अनेक स्त्रियाँ उन पुरुषों के शरीरों को मलने और कितनी एक उनकी देहों को पोंछकर सुधातुल्य पदार्थ उन्हें पिलाने लगीं। वहाँ जो लोग सवारी के अधिकारी थे वे अपने हाथी, घोड़े, ऊँट और बैलों को ऊख की गड़ेरी, मधु और लावा (खील) इत्यादि (उनके खाने के योग्य पदार्थ) यथाविधि खिलाने लगे और दूसरों को खिलाने के लिए पुकारने लगे। उस समय भरत की सेना में न घोड़ा बाँधनेवाले को घोड़ों की खबर थी और न हाथी बाँधनेवाले को हाथियों की। उस समय वह सेना मतवाली और हर्षित दीख पड़ती थी। सेना के लोगों की सब कामनाएँ तृप्त की गईं। रक्तचन्दन से भूषित और अप्सराओं से संयुक्त होकर लोग कहने लगे कि अब हम न अयोध्या जाना चाहते हैं और न दण्डक वनों में। भरत का भला हो और रामचन्द्रजी सुखी रहें। इस प्रकार सिपाही, हाथीवान्, घुड़सवार और इन वाहनों के बाँधनेवाले जो गरीब लोग थे वे सब यह आनन्द पाकर इसी प्रकार कहने लगे।

भरत के हजारों आदमी अत्यन्त हर्षनाद करने और कहने लगे कि भाइयो, यह स्वर्ग है। सहस्रों सैनिक मालाएँ पहनकर नाचने, हँसने और चारों ओर दौड़ने लगे। जो लोग उस अमृत तुल्य अन्न का भोजन कर चुके थे उनको भी उन दिव्य पदार्थों को देखकर फिर भोजन करने की इच्छा हुई। उस सेना में जितने दास,

दासी, स्त्री और कर्मकारिणी थीं, सबकी सब अत्यन्त तृप्त हुईं। वे नये-नये वस्त्रों से विभूषित हो गईं। मुनि के दिये हुए पदार्थों से हाथी, खच्चर, ऊँट, बैल, घोड़े, मृग और पक्षी अच्छी तरह तृप्त हुए। उस समय ऐसा कोई भी नहीं देख पड़ता था जो मैले कपड़े पहने हो या भूखा हो अथवा जिसके केश मैले हों। वहाँ भेड़ों, बकरों और शूकरों के मांसों से अच्छे-अच्छे ढेरों व्यञ्जन बनाये गये थे। वे फल के रसों में भी पकाये गये थे। गन्ध रसयुक्त दालों से और उत्तम-उत्तम प्रकार के भात से भरे हुए हजारों पात्रों को देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। इन पात्रों में शोभा के लिए पुष्पों से बनी हुई ध्वजाएँ खड़ी की गई थीं। वन के पास के कुओं में खीर भरी हुई थी। जितनी गायें थीं, सब कामधेनु थीं। वृक्षों से मधु (शहद) चू रहा था। नाना प्रकार के यन्त्रों-द्वारा खींचे गये मैरेय आदि मद्य से बावलियाँ भरी पड़ी थीं। मृग, मयूर और कुक्कुट का मांस केवल अग्नि पर पकाया और कुछ खपरियों में भूना गया था। वह लाखों थालियों में भरा रक्खा था। अनगिनती सुवर्ण के पात्र, व्यञ्जनों से पूर्ण हजारों-लाखों थालियाँ, करोड़ों लोटे और सुगन्धित, पीले, अच्छे मट्ठे और दधि से पूर्ण दधिमन्थन-पात्र वहाँ रक्खे थे। वहाँ किसी तालाब में एक खास तक्र, किसी में दही, किसी में दूध और किसी में शक्कर ही शक्कर थी। नदियों के घाटों पर आँवला इत्यादि के पीसे हुए चूर्ण, सूखे मसाले और देह में लगाने के उचित मसाले भी नाना प्रकार के पात्रों में भरे रक्खे थे। मुँह धोने के लिए सफेद और चमकीली दतौनें रक्खी थीं। कटोरों और कटोरियों में सफेद चन्दन भरा रक्खा था। हजारों निर्मल दर्पण, ढेरों कपड़े, पादत्राण, खड़ाऊँ, सुरमादानी, कङ्घे (डाढ़ी-मूँछ सँवारने के लिए), छाते, धनुष, कवच, विचित्र-विचित्र पलँग और आसन यथा-स्थान रक्खे थे। ऐसे तालाब थे जिनके पानी में खाये हुए अन्न को पचाने की शक्ति थी। गदहा, ऊँट, हाथी और घोड़ों के नहलाने के लिए सुख से उतरने योग्य सुन्दर घाटवाले, मनोहर-मनोहर कमलों से भरे अनेक निर्म्मल जलाशय दीख पड़ते थे। पशुओं के खाने के लिए सुन्दर हरी-हरी घास की ढेरियाँ लगी थीं। स्वप्न के तुल्य इन चमत्कारों को देखकर, सब मनुष्य अत्यन्त विस्मित हुए। इस प्रकार भरद्वाज की अतिथि-सेवा से सेना के सब लोग, नन्दन वन में देवताओं की तरह, सुख भोग करने लगे।

प्रातःकाल वे अप्सराएँ और गन्धर्व, मुनि से बिदा हो, अपने-अपने स्थान को चले गये परन्तु भरत के सैनिक वैसे ही मतवाले बने रहे। उनकी देहों में चन्दन और अगुरु उसी प्रकार लगा रहा, और फूलों की तरह-तरह की बढ़िया मालाएँ वहाँ बिखरी पड़ी और रौंदी जाती रहीं।

---

## ९२वाँ सर्ग

### माताओं-सहित भरतजी का मुनि से बिदा होना और सेना-सहित यात्रा करना

भरतजी ने रात भर उस आश्रम में टिककर सेना-सहित अतिथि-सत्कार ग्रहण किया। प्रातः-काल होते ही रामचन्द्रजी के दर्शन की इच्छा से वे मुनि के पास गये। तब भरद्वाज मुनि ने भरतजी को आते और प्रणाम करते देखकर कहा—हे राजपुत्र, कहो रात को सेना-सहित मेरे स्थान में आप सुख से तो रहे? सबका यथोचित सत्कार हुआ न? तब भरतजी

हाथ जोड़कर बोले—भगवन्, मैं और मेरे सैनिक इस आश्रम में सुख से रहे। आपने बहुत अच्छी तरह तृप्त किया। क्लेश और सन्ताप से हीन होकर मैं अच्छे-अच्छे स्थानों में रहा। अब हे ऋषिश्रेष्ठ, भाई के पास जाने के लिए मैं आपसे आज्ञा माँगता हूँ। आप कृपा-दृष्टि से मुझे देखिए और यह बताइए कि उनके आश्रम में जाने का कौन सा मार्ग है और कितनी दूर है।

रामचन्द्रजी के दर्शन के लिए भरतजी को उत्कण्ठित देखकर मुनि बोले—हे भरतजी! दस कोस पर, निर्जन वन में, जहाँ टूटे-फूटे पत्थरोंवाला वन दीख पड़ेगा वही, चित्रकूट पर्वत है। उसके उत्तर ओर, पुष्पित वृक्षों से घिरी और रमणीय जङ्गलों से मनोहर, मन्दाकिनी नदी बहती है। उस नदी के पार चित्रकूट है। उसी पर पर्णकुटी में तुम दोनों भाइयों को रहते पाओगे। अब आपको यमुना के दक्षिण मार्ग से कुछ दूर जाने पर, दो मार्ग मिलेंगे—एक बाईं ओर और एक दाहिनी ओर। दाहिनी ओर के मार्ग से आप अपनी सेना ले जाइए।

इधर यह बातचीत हो ही रही थी, उधर महाराज दशरथजी की स्त्रियाँ यात्रा का विचार सुन—अपनी-अपनी सवारी छोड़—ऋषि को घेरकर खड़ी हो गईं। उनमें से काँपती हुई कौशल्या ने सुमित्रा के साथ आकर मुनि के चरणों को पकड़ लिया। कैकेयी के मनोरथ अपूर्ण रह गये थे। वह लोक में निन्दित भी थी। वह लज्जित होकर, ऋषि के चरणों को पकड़कर और उनकी प्रदक्षिणा करके भरतजी के पास ही खड़ी हो गई। तब भरद्वाज मुनि बोले कि हे राघव, मैं तुम्हारी माताओं के नाम सुनना चाहता हूँ। तब भरत ने हाथ जोड़कर कहा—भगवन्! यह जो दीन, शोक और उपवास से कृश हो रही है, यह कौशल्या है; यह मेरे पिता की मुख्य पटरानी है। हे महर्षि, जैसे अदिति ने प्रजापति को उत्पन्न किया उसी प्रकार इसने नरश्रेष्ठ रामचन्द्रजी को उत्पन्न किया है। इसके बाईं ओर जो उदास और दुःख से पीड़ित सी खड़ी है वह राजा की मँझली रानी है। वह ऐसी देख पड़ती है जैसे वन में कर्णिकार वृक्ष की पुष्प-रहित शाखा हो। लक्ष्मण और शत्रुघ्न इसी के देवतुल्य पुत्र हैं। हे मुनि, वे दोनों नरश्रेष्ठ जिसके कारण जीव-नाश के तुल्य विपत्ति में फँसे और वनवास को गये और जिसके कारण महाराज दशरथजी पुत्र-वियोग के दुःख से स्वर्ग को पधारे वही यह क्रोधिनी, अकुशल बुद्धिवाली मेरी माता कैकेयी है। यह गर्वयुक्त, अपने को भाग्यवती माननेवाली, ऐश्वर्य्य की कामना करनेवाली आर्य्यधर्म-रहित होकर भी आर्य्य के तुल्य रूपवाली, क्रूर और पापनिश्चया है। इसी के कारण मैं इस महादुःख में पड़ा हूँ। यह कहते-कहते भरतजी के नेत्र लाल हो गये। वे क्रुद्ध नाग की नाईं श्वास लेने लगे।

तब भरद्वाज मुनि ने भरतजी से अर्थयुक्त बात कही—हे भरतजी, तुम कैकेयी को दोष मत लगाओ। रामचन्द्रजी का यह वनवास आगे के लिए सुखकारक होगा। देखो, इस वनवास से देव, दानव और बड़े-बड़े महर्षियों का कल्याण होगा। यह सुनकर भरतजी ने ऋषि को प्रणाम किया और प्रदक्षिणा की। वहाँ से बिदा होकर उन्होंने सेना को कूच करने की आज्ञा दी।

भरतजी की आज्ञा पाकर सब सेनावाले घोड़ों पर और सुवर्ण-भूषित रथों पर चढ़कर चले। कोई हथिनी और कोई सुवर्ण-रचित पताकायुक्त हाथी पर चढ़कर वर्षाकाल के मेघ की तरह शब्द करते हुए चले। इसके अनन्तर नाना प्रकार की छोटी-बड़ी सवारियाँ और

पैदल सेना चली। अब कौशल्या आदि स्त्रियाँ, उत्तम-उत्तम यानों पर सवार होकर, राम के दर्शन की इच्छा से मगन होती हुई चली जाती थीं। इसके अनन्तर सूर्य-चन्द्र के तुल्य प्रभायुक्त पालकी पर चढ़कर भरतजी चले।

वह सेना दक्षिण दिशा को ढकती हुई, बड़े मेघ की घटा की तरह, आगे बढ़ी। उस समय वह सेना मृग-पक्षियुक्त वनों को लाँघती, गङ्गा के पश्चिमी तीर के पर्वतों, नदियों और वनों में चलती तथा वनों के मृग-पक्षियों को त्रास देती चली जाती थी।

---

## ९३वाँ सर्ग

### भरतजी का चित्रकूट पर पहुँचना और शत्रुघ्न से वन का कुछ वर्णन करना

बनैले हाथियों के झुण्ड उस सेना से अत्यन्त पीड़ित होकर इधर-उधर भागने लगे। वनों और पर्वतों में तथा नदियों के तट पर भालू, तेंदुए और रुरु-मृग, पीड़ित देख पड़ते थे। धर्मात्मा भरतजी उस चतुरङ्गिणी सेना के साथ इस प्रकार आगे बढ़े। सागर के तुल्य वह भरतजी की सेना पृथ्वी के बड़े खण्डों को आच्छादन करती इस तरह चली जाती थी जैसे वर्षा-काल में मेघ आकाश को ढाँककर विचरते हैं। घोड़ों और बड़े-बड़े हाथियों से वहाँ की भूमि आच्छादित होकर बहुत समय तक देख न पड़ती थी।

भरतजी ने दूर पहुँचकर वाहनों को थके-माँदे देख वशिष्ठजी से कहा—हे महर्षि, मुनि ने जैसा हमको बताया था वैसा ही इस स्थान का स्वरूप देख पड़ता है। इसलिए मैं समझता हूँ कि हम लोग ठीक उसी स्थान पर आ गये। देखिए यही चित्रकूट पर्वत है। यही मन्दाकिनी नदी और यही वन है जो दूर से नीले मेघ की तरह देख पड़ता है। मेरे पर्वताकार हाथी चित्रकूट के शृङ्ग को मर्दित कर रहे हैं। देखिए, पर्वत के शृङ्ग पर वृक्ष यों पुष्पों की वृष्टि कर रहे हैं जैसे वर्षा समय में मेघ जल बरसाते हैं। हे शत्रुघ्न! देखो, इस पर्व पर किन्नरों के सञ्चार करने का स्थान देख पड़ता है चारों ओर इस पर घोड़े ही घोड़े देख पड़ते हैं जैसे क्षि समुद्र में मकर नामक जल-जन्तु बहुतायत से देख पड़ते हैं। देखो, ये मृग कैसे वेग से दौड़ रहे हैं जैसे शरत्काल में हवा के जोर से मेघ आकाश में इधर-उधर दौड़ते देख पड़ते हैं। ये वृक्ष अपने-अपने मस्तकों पर ऐसे सुगन्धित फूलों के गुच्छे धारण किये हैं जैसे दक्षिणी मनुष्य मेघ के तुल्य ढाल बाँधे रहते हैं। हे शत्रुघ्न! देखो, यह घोर वन पहले कैसा शब्द-रहित था परन्तु इस समय सेना के लोगों से दूसरी अयोध्या के तुल्य देख पड़ता है। खुरों से उड़ाई हुई धूल आकाश को छा रही है। उसको वायु शीघ्र ही हटा क्या देता है मानो मुझे प्रसन्न कर रहा है। (धूल को हटाकर मुझे चित्रकूट के दर्शन करा रहा है।) हे शत्रुघ्न! देखो, घोड़े रथों को लिए इस वन में कैसी शीघ्रता से दौड़ रहे हैं। सुन्दर-सुन्दर मोर भागकर इस पर्वत पर अपने अपने स्थानों में जा रहे हैं। हे अनघ, यह देश हमको अत्यन्त मनोहर जान पड़ता है। मुझे साफ मालूम होता है कि यह तपस्वियों का निवास-स्थान है। देखो इस वन में ये पृषत नामक बहुत से हिरन हिरनियों के साथ कैसे भले देख पड़ते हैं मानो पुष्पों से इनकी चित्र विचित्र रचना बनाई गई है। (इस जाति के हिरनों पर कुछ छींटे से रहते हैं।) अब यहाँ पर सेना के लोग जा

और भली भाँति खोजें कि वे दोनों पुरुष-श्रेष्ठ कहाँ रहते हैं।

भरतजी की आज्ञा पाकर वे शूर-वीर हाथ में अपने-अपने शस्त्र लेकर उस वन में रामचन्द्र को खोजने लगे। कुछ दूर जाने पर उनको धुआँ देख पड़ा। तब वे आकर भरतजी से कहने लगे—प्रभो, इस स्थान में मनुष्य के बिना आग नहीं हो सकती। इसलिए वे दोनों भाई यहीं रहते हैं। अथवा वे दोनों न होंगे तो उनके ऐसे कोई और तपस्वी यहाँ रहते होंगे। उनकी यह निश्चित बात सुनकर भरतजी उनसे बोले—अच्छा, अब तुम सावधानी से यहीं पर ठहरो; सुमन्त्र और धृति के साथ हम आगे जायँगे। भरतजी की आज्ञा से वे वहीं ठहर गये और भरतजी उस धुएँ की ओर देखने लगे। सेना को भरतजी ने वहीं ठहरा दिया था इसलिए वे लोग आगे की ओर देखते रहे और शीघ्र रामचन्द्रजी से मिलने की बाट जोहते रहे।

---

## ९४वाँ सर्ग

### रामचन्द्रजी का सीताजी को वन की शोभा दिखलाना

इधर रामचन्द्रजी बहुत दिन तक उस पर्वत पर ठहरे रहे। सीता का मन बहलाने और अपने चित्त को भी प्रसन्न करने के लिए वे सीताजी को चित्रकूट की शोभा इस तरह दिखलाने लगे मानो इन्द्राणी को स्वयं इन्द्र सैर कराते हों।

रामचन्द्रजी ने सीताजी से कहा—हे भद्रे, इस रमणीय पर्वत को देखो। इसके देखने से राज्य का नाश और मित्रों का वियोग मेरे मन को दुख नहीं देता। देखो, इस पर्वत में नाना प्रकार के पक्षी हैं। इसके ऊँचे-ऊँचे शिखर आकाश को स्पर्श करते हैं और नाना धातुओं से युक्त हैं। इसके धातु-विभूषित स्थान कैसी शोभा दे रहे हैं। इनमें से कोई तो चाँदी के तुल्य, कोई लाल, कोई पीला और मजीठ के रङ्ग का देख पड़ता है। कोई श्रेष्ठ मणियों की प्रभा से चमकीले, कोई पुष्पराग के तुल्य, कोई स्फटिक सदृश, केवड़े के सदृश और कोई तारे की तरह चमकते हैं और कोई पारे की तरह देख पड़ते हैं। हे भामिनि, इस पर्वत में नाना प्रकार के मृग बहुतायत से हैं। इस पर छोटी और बड़ी जाति के व्याघ्र और भालू देख पड़ते हैं। तपस्वियों के प्रभाव से वे यहाँ दुष्टताहीन होकर विहार कर रहे हैं। भद्रे! देखो, इस पर अनेक प्रकार के पक्षी भी अपने घोंसले बनाकर रहते हैं। इस पर आम, जामुन, विजयसार, लोध, मेवा, कटहर, ककोल, भव्य, तिनिश नामक एक प्रकार के वृक्ष और बेल, तेंदू, बाँस, खम्भार, नीम, साखू, महुआ, तिलक, बैर, आँवला, कदम्ब, बेंत, इन्द्रयव और अनार आदि बहुत बीजवाले फलों के वृक्ष हैं। ये फूलते-फलते तो हैं ही, छायादार और मनोहर भी हैं। इनसे इस पर्वत की शोभा है। हे प्रिये, इसके शिखरों पर इन कामवर्द्धक स्थानों को देखो। वहाँ ये किन्नर अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ आनन्द करते हैं। देखो, उन्हीं के ये खड्ग और सुन्दर-सुन्दर वस्त्र शाखाओं पर लटक रहे हैं। इन विद्याधरों की स्त्रियों के मनोहर क्रीड़ा-स्थानों को देखो। स्थान-स्थान पर बहनेवाले इन झरनों और भूमि के सोतों को देखो जिनके द्वारा यह पर्वत मद बहानेवाले गजेन्द्र की नाईं शोभा दे रहा है। पवन इसकी गुफा को छूता हुआ नाना पुष्पों की सुगन्ध लेकर बह रहा है। यह किसके

मन को हर्षयुक्त नहीं करता ? हे सीते, यदि मैं तुम्हारे और लक्ष्मणजी के साथ अनेक वर्ष तक यहाँ रहूँ तो भी मुझे कुछ शोक-सन्ताप न होगा। हे भामिनि, इस पर्वत पर बहुत फल-फूल हैं। इसके रमणीय, विचित्र शृङ्ग हैं। पक्षी भी खूब रहते हैं। इस पर्वत पर रहने से मेरा मन बड़ा प्रसन्न हुआ। इस वनवास से मुझे दो फल मिले। एक तो धर्मतः पिता के ऋण से मैं उऋण हुआ और दूसरा यह कि भरत जी का प्यार हो गया। हे वैदेहि, यह जो तरह-तरह के पदार्थ मन, वाणी और शरीर को सम्मत हैं, इन्हें तुम मेरे साथ देखकर इस चित्रकूट पर प्रसन्न-चित्त तो हो ? हे देवि, इस प्रकार नियमपूर्वक वन में रहने को ही हमारे पूर्वज, स्वर्गवासी मन्वादि पुरुषों ने संसार से निवृत्त होने का साधन बतलाया है।

हे प्रिये, देखो, इस शैल की सैकड़ों शिलाएँ नीली, पीली, सफेद और लाल रंग की हैं। चारों ओर ये कैसी शोभा दे रही हैं। इस पर्वत पर उगी हुई सहस्रों ओषधियाँ अपनी चमकीली शोभा से सुशोभित हैं। रात के समय वे अग्नि की ज्वाला की तरह प्रकाश करती हैं। हे भामिनि, देखो, इस पर्वत पर कोई स्थान तो घर के सदृश, कोई वाटिका के तुल्य और कोई स्थान एक शिलाकार शोभा दे रहे हैं। भद्रे, ऐसा जान पड़ता है मानो वह चित्रकूट पर्वत भूमि को फाड़कर निकला है। इसके ऊपर का अग्रभाग चारों ओर से कैसा सुहावना देख पड़ता है। प्रिये, इस पर कामी लोगों के बिछौनों को देखो, जिनके नीचे तो कमलों के पत्ते और ऊपर कूट, पुन्नजीवक और भोजपत्र की छालें बिछी हैं। उन पर मर्दन की हुई कमलों की टूटी हुई मालाएँ और कामियों के भोजन किये हुए अनेक प्रकार के फल देख पड़ते हैं। बहुत मूल, फल और जल से संयुक्त इस चित्रकूट पर्वत ने अपनी शोभा से कुबेर की वस्त्रौकसारा नाम पुरी को, इन्द्र की नलिनी नामक पुरी को और उत्तम कुरुदेशों को भी जीत लिया है।

हे सीते, तुम्हारे और लक्ष्मण के साथ यदि मैं सज्जनों के मार्ग पर स्थिर होकर, श्रेष्ठ नियमों के अनुसार, ये चौदह वर्ष बिता सकूँ तो अपने कुल और धर्म की उन्नति कर सुखी हो सकूँगा।

---

## ९५वाँ सर्ग

### रामचन्द्रजी का मन्दाकिनी नदी का वर्णन करना और सीताजी को दिखलाना

रामचन्द्रजी पर्वत की सैर कराकर मैथिली को रमणीय मन्दाकिनी नदी दिखलाने लगे। वे बोले कि हे वैदेहि, इस विचित्र तटवाली, रमणीय मन्दाकिनी नदी को देखो। इसमें हंस और सारस किलोलें कर रहे हैं। पुष्प भी इसमें खूब हैं। नाना प्रकार के फल-फूलों से लदे हुए वृक्ष इसके तीर पर खड़े हैं। उनसे इसकी ऐसी शोभा हो रही है जैसी कि सौगन्धिका नामक कुबेर की नदी की है। हे सीते! देखो, इस समय मृग-यूथों ने इसके जल को पीकर मलिन कर दिया है, परन्तु इसके घाट ऐसे रमणीय हैं कि मेरे मन को हरण किये लेते हैं। हे प्रिये, जटा और मृगचर्म को धारण किये तथा छाल को पहिने ऋषि लोग अपने समय पर इस मन्दाकिनी नदी में स्नान करते हैं। हे विशालाक्षि, ये दूसरे मुनि लोग तीक्ष्ण व्रत करते हैं। ये नियम से ऊर्द्ध्वबाहु होकर यहाँ सूर्य का उपस्थान करते हैं। देखो, हवा के झोंके लगने से ये वृक्ष हिल रहे हैं। इनके हिलने से यह पर्वत नाचता सा मालूम

देता है। हिलते हुए पेड़ इस नदी के चारों ओर पुष्पाञ्जलि की तरह फूल बरसा रहे हैं। कहीं तो इसका जल मणि के तुल्य चमकता है, कहीं-कहीं पृथिवी दीखने लगती है और किसी-किसी जगह सिद्धों की भीड़ है। हे तनुमध्यमे! देखो, पुष्पों के समूहों को वायु ने छितरा दिया है, पानी में ये कैसे तैर रहे हैं। हे कल्याणि, ये चक्रवाक पक्षी मीठी बोली बोलते हुए तट पर चढ़ रहे हैं। हे शोभने, तुम्हें देखने और बस्ती में रहने से मुझे जो सुख मिलता था उसकी अपेक्षा अधिक सुख मुझे इस चित्रकूट और मन्दाकिनी के दर्शन से मिलता है। हे सीते, अब तुम इस नदी में मेरे साथ स्नान करो। यहाँ तप, शम और दम से संयुक्त पाप-रहित सिद्ध लोग स्नान करते हैं। हे सीते, तुम इस जल में सफेद और लाल कमल छोड़कर मेरी सखी की तरह स्नान-क्रीड़ा करो। हे प्रिये, तुम इन साँपों को पुरवासी जन, पर्वत को अयोध्या और मन्दाकिनी को सरयू नदी मानो। देखो, यह धर्मात्मा लक्ष्मण मेरी आज्ञा में तत्पर हैं और तुम भी सदा मेरी आज्ञा में रहती हो, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। यहाँ त्रिकाल-स्नान और तुम्हारे साथ मधु, मूल और फलों का भोजन करता हुआ मैं न तो अयोध्या की आकांक्षा करता हूँ और न राज्य की। इस नदी के जल को हाथियों के झुण्ड आलोड़ित करते हैं और इसके जल को सिंह और वानर पीते हैं। सुन्दर पुष्पों से भूषित इस नदी का सेवन करके कौन पुरुष खेद-रहित होकर सुख न पावेगा?

सीताजी से इस प्रकार नदी का वर्णन कर रामचन्द्रजी उस रमणीय, अञ्जन के से रङ्ग के, चित्रकूट पर सीता के साथ भ्रमण करने लगे।

---

## ९६वाँ सर्ग

### रामचन्द्रजी को सेना के आने का ज्ञान होना और लक्ष्मण का भरत की सेना जानकर कठोर वचन कहना

सीता को पर्वत और नदी की शोभा दिखाकर रामचन्द्रजी पर्वत के शिखर पर बैठ गये। मांस की स्वादुता दिखलाकर वे सीता को प्रसन्न करने लगे। उन्होंने कहा—सीते! देखो, यह मांस पवित्र है, स्वादिष्ट है और आग पर भूना गया है। इस प्रकार रामचन्द्रजी सीता के साथ वहाँ विराजते ही थे कि इतने में भरतजी की सेना के चलने से उठी हुई धूलि और कोलाहल शब्द, दोनों, आकाश को छूते हुए, प्रकट हुए। उस महाशब्द से डरे हुए बड़े-बड़े यूथपति गजेन्द्र पीड़ित हो अपने-अपने यूथों को ले इधर-उधर भागने लगे।

रामचन्द्रजी उस सेना के महा-कलकल शब्द को सुनकर और हाथियों को भागते देखकर बोले—हे लक्ष्मण, मेघ-गर्जन के तुल्य यह शब्द सुन पड़ता है। इसको सुनकर डर से ये हाथियों के झुण्ड, जङ्गली अरने और मृगों के समूह बड़े वेग से वन में ऐसे भागे चले जाते हैं मानो सिंहों ने इनका पीछा किया हो। कोई राजा या राजपुत्र वन में शिकार तो नहीं कर रहा है? अथवा इस वन में कोई महाभयङ्कर और घातक जन्तु तो नहीं आ गया? तुम देखो तो सही। हे लक्ष्मण, इस पर्वत पर तो पक्षी भी सहज ही घूम-फिर नहीं सकते। ठीक-ठीक पता लगाकर तुम निश्चय करो कि क्या बात है।

यह सुनकर लक्ष्मणजी शीघ्रता से एक पुष्पित साखू पर चढ़ गये और चारों ओर देख पूर्व दिशा

की ओर ताकने लगे। फिर उत्तर को दृष्टि फैलाई तो उधर एक बड़ी सेना देख पड़ी। वह हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों की भीड़ से पूर्ण और रथों की ध्वजाओं से भूषित थी। रामचन्द्रजी से उस सेना का समाचार कह कर लक्ष्मणजी बोले कि अब आप अग्नि को ठण्डा कर दीजिए। सीताजी से कहिए कि गुफा के भीतर जा बैठें। आप अपने धनुष, बाणों को और कवच को सम्हालिए। रामचन्द्रजी बोले—भाई लक्ष्मण! अच्छी तरह से देखो। तुम इसको किसकी सेना समझते हो? उस समय लक्ष्मणजी अग्नि के सदृश ऐसे क्रुद्ध हो गये थे मानो उस सेना को जलाना चाहते हों। वे बोले—हे रामचन्द्रजी! जान पड़ता है, कैकेयी के पुत्र भरतजी राजगद्दी पाकर, अकण्टक राज्य करने की इच्छा से, हम दोनों को मारने के लिए आते हैं। देखिए, यह जो बड़ा भारी वृक्ष देख पड़ता है उसके समीप रथ पर यह उज्ज्वल, शाखायुक्त कचनार के आकार का, ध्वज फहरा रहा है। वेगयुक्त घोड़ों पर ये सवार और हाथियों पर हर्षित महावत बैठे हुए हैं। हे वीर, अब हम दोनों अपना-अपना धनुष ले पर्वत पर चढ़ चलें; अथवा यहीं तैयार होकर खड़े रहें और कचनार की ध्वजावाले भरत को संग्राम में अपने वश में लावें। इस भरत को देख लेंगे जिसके कारण इतना दुःख मिला है। हे वीर राघव! जिसके निमित्त तुम सनातन राज्य से च्युत हुए हो वह भरत शत्रु-भाव से आया है, इसलिए इसको मारना ही ठीक है। मैं भरत के वध में दोष भी नहीं देखता; क्योंकि जिसने पहले से अपकार किया हो उसको मारने से कुछ भी अधर्म नहीं होता। भरत ऐसा ही है, इसलिए इसके मारने में धर्म-प्राप्ति है। इसको मारकर आप सम्पूर्ण पृथ्वी का शासन कीजिए। राज्य चाहनेवाली कैकेयी आज दुःखार्त होकर मेरे हाथ से मारे गये अपने पुत्र को, हाथी से तोड़े हुए वृक्ष की तरह, देखेगी। मैं उस कैकेयी को भी उसके अनुगामियों और बन्धुजनों-सहित मार डालूँगा, जिससे कि यह पृथ्वी उस कैकेयी-रूप महापाप से छूट जाय। हे मानद! आज इस रोके हुए क्रोध को और कैकेयी के किये हुए असत्कार को मैं शत्रु की इस सेना पर ऐसे छोड़ूँगा जैसे तृण-समूह में आग छोड़ी जाती है। मैं आज ही अपने बाणों से शत्रुओं के शरीरों को काट-काटकर इस चित्रकूट के वन को रक्त से सींच दूँगा। जिनके हृदय बाणों से विदीर्ण हो गये हैं ऐसे हाथियों, घोड़ों और मेरे मारे हुए मनुष्यों को ये व्याघ्र इत्यादि खींचेंगे। आज मैं, इस महासंग्राम में, सेना-सहित भरत को मार-कर अपने बाणों और धनुष के ऋण से उत्तीर्ण हो जाऊँगा।

---

## ९७वाँ सर्ग

### रामचन्द्रजी का क्रोधित लक्ष्मण को समझाना और उस सेना का कुछ वर्णन करना

अब इस प्रकार से क्रुद्ध और युद्ध के लिए तैयार लक्ष्मण को समझाकर रामचन्द्रजी बोले—हे लक्ष्मण! महाबली, बड़े उत्साही और आप ही से आये हुए भरतजी के विषय में धनुष, तलवार और ढाल का क्या काम है? देखो, पिता की उस सत्य वाणी को अङ्गीकार करके भी यदि मैं भरतजी को मार डालूँ और राज्य ले लूँ तो ऐसे निन्दित राज्य से

मुझे क्या फल मिलेगा ? जो द्रव्य बन्धुओं के और मित्रों के नाश से मिले उसको मैं नहीं ले सकता, जैसे कि विषमिश्रित भोजन को कोई भी अङ्गीकार नहीं करता। हे लक्ष्मण ! मैं तुमसे प्रतिज्ञा-पूर्वक यह भी कहता हूँ कि धर्म, अर्थ, काम और पृथ्वी भी मैं केवल तुम्हीं लोगों के लिए चाहता हूँ। हे लक्ष्मण ! मैं सत्यतापूर्वक शस्त्र को छूकर कहता हूँ कि यदि मैं राज्य की भी इच्छा करता हूँ तो तुम्हीं लोगों के परिपालन और सुख के लिए। हे सौम्य, समुद्र-वेष्टित यह पृथ्वी क्या मुझे दुर्लभ है ? परन्तु, अधर्म से मैं इन्द्र पदवी भी नहीं चाहता। भरतजी के, तुम्हारे और शत्रुघ्न के बिना जो मेरी सुखदायक कोई भी वस्तु हो तो वह अग्नि में जल जावे। मैं तो समझता हूँ कि मेरा प्राण-प्रिय भरत जब अयोध्या में आया और जब उसने हम तीनों के वनवास का समाचार पाया तो स्नेह से पूर्ण हृदय और शोक से व्याकुलचित्त होकर हमको देखने आया है। और कोई बात नहीं है। यह भी अनुमान होता है कि माता कैकेयी पर क्रुद्ध होकर और उसको कुछ कठोर वचन कहकर उन्होंने पिता को प्रसन्न कर लिया है और मुझे राज्य देने के लिए वे कदाचित् आये हैं। यह ठीक ही है कि भरत आकर हमको देखें। यह बात तो कभी नहीं हो सकती कि भरत मन से भी हमारा कुछ अहित करें। भला कभी, भरत ने तुम्हारा कुछ अप्रिय किया है ? भरत के विषय में तुम ऐसी शङ्का क्यों करते हो ? उसके विषय में तुम ऐसा कठोर और अप्रिय वचन मत कहना; क्योंकि यदि तुम कुछ भी उसको अप्रिय कहोगे, तुम्हारे द्वारा उसका थोड़ा सा भी अपकार होगा, तो जान लो कि हमारा अप्रिय और अपकार हो चुका। लक्ष्मण देखो तो सही, कैसी भी विपत्ति क्यों न हो, क्या पुत्र पिता का घात कर सकते हैं ? अथवा अपने प्राण के तुल्य भाई को भाई मार सकता है ? यदि राज्य के लिए ऐसी बात कहते हो तो मैं ज्योंही भरतजी से कहूँगा कि राज्य लक्ष्मण को दे दो त्योंही भरत स्वीकार कर लेंगे।

धर्मात्मा भाई ने जब इस प्रकार कहा तब तो लक्ष्मणजी अत्यन्त लज्जित हुए। मारे लज्जा के वे अपने शरीर में समा से गये। उन्होंने कहा—मैं समझता हूँ कि पिता दशरथ आप ही तुमको देखने आये हैं। रामचन्द्रजी ने लक्ष्मणजी को लज्जित देख, उन्हीं के मन के अनुसार, यह बात कही कि मैं भी यही अनुमान करता हूँ; पिताजी ही हमको देखने आये हैं अथवा हम दोनों को सुख भोगने के योग्य मानकर और वनवास का दुःख समझकर हमें वे फिर घर लौटा ले जायँ अथवा इस वैदेही को लिवा लेने के लिए आये हों क्योंकि यह बिलकुल ही सुख में रहने योग्य है। देखो, ये दोनों घोड़े जो देख पड़ते हैं ये अच्छी नस्ल के, मनोहर और वायु के समान वेगवाले हैं। देखो, यह बड़े शरीरवाला शत्रुञ्जय नामक वृद्ध हाथी सेना के मुख पर झूम रहा है; इस पर पिताजी चढ़ते हैं। परन्तु हे महाभाग ! पिताजी के उस दिव्य सफेद छत्र को मैं नहीं देखता। वह छत्र लोक में विख्यात है, इसलिए उनके आने में मुझे सन्देह होता है। हे लक्ष्मण ! अब तुम नीचे उतर आओ।

भाई की आज्ञा मानकर लक्ष्मण वृक्ष से उतर आये और हाथ जोड़कर भाई के पास आ खड़े हुए।

इधर भरतजी ने सेनावालों को आज्ञा दी कि देखो, न तो यहाँ भीड़-भाड़ हो और न वृक्ष ही टूटें। आश्रम की जरा भी हानि न हो। उन्होंने पर्वत के चारों ओर सेना को ठहरा दिया। वहाँ छः कोस के घेरे में सेना टिक रही। इस प्रकार नीतिज्ञ भरतजी ने रामचन्द्रजी

को प्रसन्न करने के लिए धर्म को आगे कर और अहङ्कार को परित्याग करके चित्रकूट पर सेना को टिका दिया।

---

## ९८वाँ सर्ग

### भरतजी का शत्रुघ्न के साथ कुछ बातचीत करना और उस वन में राम के आश्रम को खोजना

भरतजी सेना को टिकाकर राम से मिलने को पैदल चले। शत्रुघ्न से उन्होंने कहा—हे सौम्य! तुम शीघ्र इन मनुष्यों और निषादों को साथ ले इस वन में रामाश्रम को खोजो। गुह भी अपने धनुष-बाण और खड्ग लेकर अपने हजारों ज्ञाति-भाइयों के साथ उन दोनों को खोजे। मैं भी इन सचिवों, पुरवासियों और उत्तम-उत्तम ब्राह्मणों के साथ पैदल ही उनको खोजता हूँ। जब तक मैं राम, लक्ष्मण और वैदेही को न देखूँगा तब तक मुझे शान्ति न होगी। जब तक भाई के चन्द्रतुल्य कमलनयन प्रसन्न मुख को न देखूँगा तब तक मेरे मन को स्थिरता न होगी। देखो, लक्ष्मण इस समय कृतार्थ है। वे रामचन्द्र के निर्मल चन्द्र के सदृश महाद्युतिमान् मुख को देखते हैं। राज-चिह्न-संयुक्त भाई के चरणों को मैं जब तक अपने मस्तक से ग्रहण न करूँगा तब तक मेरे चित्त को स्वस्थता न होगी। पितृ-पैतामह के राज्य पर अभिषेक होने से रामचन्द्रजी जब तक उस जल से न भीगेंगे तब तक मेरे अन्तःकरण को सन्तोष न होगा। देखो, जनक की भाग्यवती पुत्री कृतार्थ है, जो समुद्रान्त पृथिवी के पति के साथ है। गिरिराज के समान यह चित्रकूट पर्वत अत्यन्त सुन्दर है, क्योंकि इस पर स्वयं रामचन्द्र नन्दन वन में कुबेर की तरह रहते हैं। सर्पों से सेवित यह दुर्गम वन कृतार्थ हुआ; क्योंकि शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ रामचन्द्र इसमें रहते हैं। ये बातें कहते हुए भरत वन में गये। पर्वत के शिखरों पर जो फूले हुए वृक्ष-समूह थे उनके बीच में वे जा निकले और एक साखू के वृक्ष पर चढ़कर देखने लगे तो राम के आश्रम के आगे ऊँची ध्वजा देख पड़ी। तब भरत अपने बान्धवों के साथ हर्षित हुए। उन्हें निश्चय हो गया कि रामचन्द्रजी यहीं रहते हैं। निश्चय क्या हो गया मानो समुद्र के जल से वे पार हो गये। इस तरह चित्रकूट पर्वत पर पवित्र जनों से संयुक्त रामचन्द्रजी के आश्रम का पता भरत को मिल गया। तब, रामचन्द्रजी की खोज में भेजे हुए लोगों को वापिस बुलाकर छावनी में ठहरा दिया और आप गुह को साथ लेकर शीघ्रता से चले।

---

## ९९वाँ सर्ग

### भरत का रामचन्द्रजी से मिलना

अब शत्रुघ्न को राम का आश्रम दिखाते हुए भरत उत्कण्ठा-पूर्वक भाई को देखने चले और वशिष्ठजी से कहते गये कि हमारी माताओं को आप शीघ्र ले आइए, मैं आगे चलता हूँ। शत्रुघ्न को भरत के पीछे जाते देख सुमन्त्र भी उनके पीछे-पीछे हो लिया, क्योंकि रामचन्द्रजी के देखने की उत्कण्ठा उसे भी उतनी ही थी जितनी कि भरत को। भरत ने चलते-चलते आगे भाई की पर्णशाला देखी, जो कि तपस्वियों की कुटियों के पास बनी थी। कुटिया के आगे भरत ने

होम के लिए टूटी लकड़ियाँ और बहुत से पुष्प रक्खे देखे। आश्रम के पहचानने के लिए कहीं-कहीं वृक्षों में कुश और चीरों से किये हुए चिह्न भी उन्होंने देखे। उस स्थान में शीत-निवारण के लिए मृगों और भैंसों के गोबर की सूखी-सूखी कण्डियों की ढेरी देखी। तब, प्रसन्न होकर भरत अपने सचिवों और शत्रुघ्न से बोले कि देखो, हम लोग उसी जगह पहुँच गये जिसको भरद्वाज मुनि ने बतलाया था। मैं जानता हूँ कि अब यहाँ से मन्दाकिनी नदी बहुत दूर न होगी। जान पड़ता है, यहाँ वृक्षों पर ये चीर लक्ष्मणजी ने ही बाँधे हैं। कदाचित् मार्ग पहचानने का यही चिह्न है क्योंकि रात-बिरात पानी लेने को लक्ष्मण जाते होंगे तो इसी चीर-चिह्न के मार्ग से फिर आश्रम को लौटते होंगे। यह बड़े दाँतवाले और वेगवान् हाथियों का गमनमार्ग पर्वत के पास देख पड़ता है। वे बड़े गर्जनेवाले हैं। तपस्वी लोग होम के लिए सदा जिस अग्नि को स्थापन किये रहते हैं उसी का यह धुआँ देख पड़ता है। गुरु का सत्कार करनेवाले पुरुषश्रेष्ठ राम को ऋषि की तरह देखकर मैं प्रसन्न हूँगा। इसके अनन्तर भरत जरा आगे चलकर मन्दाकिनी नदी पर पहुँचे और सचिवों से बोले—देखो, वह पुरुषव्याघ्र नरेन्द्र होकर भी पृथिवी पर वीरासन लगाकर बैठते हैं और इस निर्जन स्थान में रहते हैं। हा! मेरे जीवन को धिक्कार है। जिनकी बड़ी भारी द्युति है वे लोकनाथ मेरे लिए दुर्दशा-ग्रस्त हो सभी अभीष्ट भोगों का परित्याग कर वन में रहते हैं! मैं ऐसा निन्दित हूँ। उनकी प्रसन्नता के लिए मैं आज राम, सीता और लक्ष्मण के चरणों पर जा गिरूँगा। इस तरह विलाप करते हुए भरत ने उस वन में विशाल, पवित्र और मनोहर पर्णकुटी देखी। वह कुटी साखू, ताल और अश्वकर्ण नामक वृक्षों के पत्तों से छाई हुई थी। देखने से मालूम होता था मानो यज्ञ की मृदुविस्तीर्ण वेदी पर फूल बिखरे हुए हों। वह पर्णशाला इन्द्र के वज्र के तुल्य बड़े-बड़े काम करनेवाले धनुषों से सुशोभित थी। उन धनुषों की पीठ सुनहरी थी। वे बड़े भारी थे और शत्रुओं को बाधा देते थे। वहाँ तरकस में भरे हुए सूर्य की किरणों के तुल्य चमकीले बाण रक्खे देख ऐसा जान पड़ता था जैसे प्रदीप्त मुखवाले सर्पों से भोगवती नाम नगरी भरी है। वहाँ दो खड्ग रक्खे थे। उनके म्यान सुवर्ण-रचित और सुवर्ण के बिन्दुओं से विचित्रित थे। वहाँ दो ढालें भी थीं। वहाँ मनोहर सुवर्णभूषित अनेक गोधांगुलित्राण (दस्ताने) शोभित हो रहे थे। उस पर्ण-कुटी पर शत्रु-समूह इस तरह आक्रमण नहीं कर सकते जैसे कि मृगों का झुण्ड सिंह की माँद पर छापा नहीं मार सकता। वहाँ ईशान कोण में प्रदीप्त अग्नियुक्त वेदी सुशोभित हो रही थी।

इस तरह की पर्णशाला को तनिक देखकर भरत ने वहाँ रामचन्द्रजी को देखा। वे जटामण्डल धारण किये, काले मृग के चर्म को लपेटे और चीर-वल्कल पहने बैठे थे। वे अग्नि के तुल्य प्रदीप्त, सिंह के से कन्धोंवाले महाभुज, कमलनयन, सम्पूर्ण पृथ्वी के स्वामी, धर्मचारी, कुश की साथरी पर सीता और लक्ष्मण-सहित बैठे थे। उनको देखकर धर्मात्मा भरत दुःख और मोह से व्याकुल हो दौड़े। भरत उस समय अतिदुःखित होकर गद्गद वाणी से विलाप करते हुए अपने स्नेहकृत दुःख को न रोक सके। धीरता के साथ उन्होंने कहा—देखो, जो सभा में सचिवों के सेवन के योग्य हैं वे मेरे भाई आज बनैले मृगों से सेवित हो रहे हैं। जो कई सहस्रों के वस्त्र पहनने योग्य हैं वे महात्मा मेरे ज्येष्ठ भ्राता, धर्माचरण के लिए, मृगचर्म धारण

करते हैं। जो नाना प्रकार के विचित्र पुष्पों को धारण करते थे वे रामचन्द्रजी इस जटा-भार को कैसे धारण करते हैं। जिनका धर्मसञ्चय यथाविधि यज्ञों के द्वारा होना चाहिए था वे स्वयं शरीर के क्लेश सहकर धर्म की इच्छा करते हैं। जिनके शरीर पर महामूल्यवान् चन्दन लगा रहता था उन मेरे आर्य का अङ्ग कैसा मलिन देख पड़ता है। हा! सुख भोगने के पात्र रामचन्द्रजी ने मेरे लिए इतना दुःख पाया। हा! मैं घातक हूँ, मेरे जीवन को धिक्कार है! मेरा यह जीवन लोक-निन्दित हुआ।

इस प्रकार विलाप करते हुए भरतजी दीन हो गये, उनके मुँह पर पसीना आ गया। वे रो कर, रामचन्द्रजी के चरणों तक नहीं पहुँच सके। बीच ही में गिर पड़े और एक बेर "हे आर्य!" कह कर फिर कुछ न बोले रामचन्द्रजी को देखते ही भरतजी का कंठ प्रेम से बन्द हो गया था। इसके बाद रोते रोते शत्रुघ्न ने भी रामचन्द्रजी के चरणों की वन्दना की। तब रामचन्द्रजी ने भी दोनों भाइयों को गले से लगाकर आँसू बहाये। इसके अनन्तर सुमन्त्र और गुह भी राम-लक्ष्मण से इस प्रकार मिले जैसे सूर्य और चन्द्र, शुक्र और बृहस्पति के साथ सयुक्त होते हैं। इन महाराजों को मिलते देख वहाँ के वनवासी लोग हर्ष त्याग कर आँसू बहाने लगे।

---

## १००वाँ सर्ग

### रामचन्द्र का भरत को समझाना और राज्य का कुशल-समाचार पूछना

राम ने, जटाजूट धारण किये बल्कल वस्त्र पहने, भरत को पृथ्वी पर हाथ जोड़े गिरे देखा, ऐसा प्रतीत हुआ मानो युगान्त में सूर्यनारायण धराशायी हुए हों। भरत का चेहरा उतरा हुआ था, दुबले भी वे बहुत हो गये थे। इसलिए बड़ी कठिनता से उनको पहचान कर राम ने उन्हें हाथ से पकड़ा। उनका मस्तक सूँघा और आलिङ्गन कर गोद में बैठा लिया। फिर आदर से पूछा कि हे तात, पिताजी कहाँ हैं जो तुम यहाँ वन में आये? उनके जीते जी तुम्हारा वन में आना ठीक नहीं। बहुत दिन में दूर से आये हुए मैं तुम्हें बहुत दुबला देखता हूँ। हे तात, तुम वन में किस लिए आये? हे तात, भला राजाजी तो जीते हैं? दीन होकर वे एकाएक लोकान्तर को तो नहीं चले गये? हे सौम्य, तुम्हारे लड़कपन से वह सनातन राज्य तो भ्रष्ट नहीं हो गया? क्योंकि तुम्हारे यहाँ आने से मुझे शंका होती है। हे सत्यपराक्रम, तुम माता और पिता की सेवा तो करते हो? राजा दशरथ सत्यसागर हैं। वे राजसूय और अश्वमेध यज्ञ कर चुके हैं और धर्म में तत्पर हैं। वे अच्छी तरह हैं न? इक्ष्वाकुकुल के उपाध्याय महा तेजस्वी वशिष्ठजी बड़े विद्वान् ब्राह्मण और नित्य धर्मशील हैं। उनकी पूजा यथाविधि होती है न? हे तात, कौशिल्या और सुमित्रा सुख से तो हैं? आर्य्या कैकेयी देवी आनन्द से हैं न? तुम्हारा पुरोहित बड़ा विनयी, कुलीन का पुत्र और ईर्ष्यारहित है। वह तुम्हारे सब काम करता है। उसका सत्कार करते हो न? तुम्हारे अग्निहोत्र का अधिकारी, होम की विधि का ज्ञाता और बुद्धिमान् है। उसका चित्त कोमल है। जिसमें होम हो चुका और जिसमें किया जायगा उस अग्नि को वह सदा समय पर जगाता है न? हे तात! तुम देव, पितर, भृत्य, पितृतुल्य गुरु लोग, वृद्ध, वैद्य और ब्राह्मणों का आदर करते हो न? सुधन्वा नामक उपाध्याय बाण और शस्त्रविद्या

से संपन्न तथा अर्थशास्त्र में निपुण है उनको तुम सत्कार-पूर्वक मानते तो हो ? हे तात, तुमने ऐसे लोगों को अपना मंत्री बनाया है न, जो तुम्हारे ही तुल्य शूर, शास्त्रज्ञ, जितेन्द्रिय, कुलीन और चेष्टा को पहचानते हैं ? हे राघव ! शास्त्रनिपुण मन्त्रि-श्रेष्ठों से गुप्त सलाह लेना ही राजाओं के लिए विजय का मूल है। तुम निद्रा के वश में तो नहीं रहते ? समय पर जागते हो न ? तुम पिछली रात में अर्थ की प्राप्ति के उपाय को सोचते हो न ? अकेले ही या बहुत लोगों के साथ तो कोई बात नहीं विचारते ? तुम्हारा विचार (मन्त्रणा) राष्ट्र भर में तो नहीं फैल जाता ? थोड़े प्रयत्न से साध्य और महा फल देनेवाले अर्थ का निश्चय कर शीघ्र ही काम का आरम्भ कर देते हो न ? विलंब तो नहीं करते ? और राजा लोग तुम्हारे उन कामों को जानते हैं न जो सिद्ध हो चुके हैं या सिद्ध हुए के तुल्य हैं ? वे पहले से ऐसे कामों को तो नहीं जान लेते जिन्हें तुम करनेवाले हो ? तुम्हारी और तुम्हारे मन्त्रियों की मन्त्रणा को तुम्हारे प्रकट किये बिना अन्य राजा लोग तर्क से या युक्ति से तो नहीं जान लेते ? तुम या तुम्हारे मन्त्री लोग दूसरे राजाओं के मन्त्रों को जान लेते हैं न ? अर्थ-संकट उपस्थित होने पर पण्डित बड़े काम आता है इसलिए तुम सहस्रों मूर्खों को त्याग कर एक पण्डित को चाहते हो न ? राजा चाहे हजार दस हजार मूर्खों को रक्खे परन्तु उनसे उसकी कुछ भी सहायता नहीं हो सकती परन्तु यदि एक भी बुद्धिमान्, शूर, दक्ष और नीतिशास्त्रज्ञ मन्त्री हो तो राजा या राजपुत्र को बहुत लक्ष्मी प्राप्त करा दे। हे तात, तुमने अपने मुख्य भृत्यों को बड़े कार्य्यों में, मध्यमों को मध्यम कार्यों में और छोटों को निकृष्ट कार्यों में लगा दिया है न ? जो सचिव छल रहित हैं, पिता, पितामह से लगे चले आये और शुद्ध-हृदय तथा श्रेष्ठ हैं उन्हें तुम श्रेष्ठ कार्यों में नियुक्त करते हो न ? हे कैकेयी सुत, तुम्हारे राष्ट्र में उग्र दंड से अत्यन्त उद्विग्न प्रजा तुम्हारे मन्त्रियों का अनादर तो नहीं करती ? तुमको सख्ती से कर लेनेवाला समझ कर याजक लोग पतित के तुल्य तुम्हारा इस तरह अनादर तो नहीं करते जैसे स्त्रियाँ बलात्कार करनेवाले पुरुष का अनादर करती हैं ? विशेष धन के लोभ से रोग बढ़ानेवाले वैद्य को, सज्जनों में दोष लगानेवाले सेवक को और ऐश्वर्य की आकांक्षा करनेवाले शूर को जो राजा नहीं मारता है वह आप मारा जाता है। हे भरत ! जो ढीठ, शूर, धैर्य्यवान्, बुद्धिमान्, शुद्धहृदय, कुलीन, स्वामिभक्त और चतुर है ऐसे पुरुष को तुमने अपना सेनापति किया है कि नहीं ? तुमने ऐसे पराक्रमी पुरुषों को सत्कारपूर्वक आदर दिया है कि नहीं, जो बलवान् हैं, मुख्य हैं, युद्ध में निपुण हैं और जिनके पराक्रम की अनेक बार परीक्षा ली गई है ? हे भरत, तुम सेनावालों को भत्ता (नित्य का भोजन) और यथोचित महीने का वेतन (जो समय पर दिया जाना चाहिए) देने में विलम्ब तो नहीं करते ? क्योंकि समय पर भत्ता और वेतन न मिलने से भृत्य लोग स्वामी पर क्रुद्ध होते हैं। यह भी बड़े अनर्थ की बात है। हाँ, प्रधानकुल पुत्र सब तुम्हारे ऊपर अनुराग रखते हैं न ? वे सावधानी से तुम्हारे लिए प्राण देने को तैयार रहते हैं न ? तुम्हारा देश विद्वान्, चतुर और प्रत्युत्पन्न मतिवान्, अर्थात् कार्यों में शीघ्र प्रवेश करनेवाली बुद्धिवाला है न ? हे भरत, तुमने पण्डित और यथोक्ति वचन कहनेवाले पुरुष को अपना दूत बनाया है कि नहीं ? जो परस्पर एक दूसरे को न जानते हों ऐसे तीन दूतों को एक एक व्यक्ति

पर तैनात करके तुम शत्रुदल की अठारह* और अपने दल की पन्द्रह* राज्य-रक्षा-साधन वस्तुओं को ठीक तौर पर जानते हो न? जिन शत्रुओं को तुमने निकाल दिया था वे फिर अपनी दुर्बलता दिखा कर तुम्हारे शरणागत हुए हों, तो तुम उन्हे दुर्बल समझ कर उनसे अचेत तो नहीं रहते? तुम उन नास्तिक ब्राह्मणों का सेवन तो नहीं करते जो मानते तो हैं अपने को बड़ा पंडित परन्तु हैं मूर्ख और अनर्थ करने में बड़े चतुर? वे लोग मुख्य धर्म्मशास्त्रों के रहते भी कुतर्क विद्या को जान कर दुष्ट बुद्धि से निरर्थक बकवाद करते हैं। हे तात, हमारे वीर पुरुषाओं की निवास-भूमि अयोध्या नगरी है। उसके दरवाजे सुदृढ़ हैं। उसमें अगणित हाथी, घोड़े और रथ हैं। उसका अयोध्या नाम बिलकुल सत्य है। अपने कामों में तत्पर, उत्साही और जितेन्द्रिय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि आर्य लोगों से वह परिपूर्ण है। उसमें नाना प्रकार के प्रासाद हैं, और विविध विद्या-विशारद लोग वहाँ निवास करते हैं। उस समृद्धिशालिनी अयोध्या नगरी की, उत्तम प्रकार से, तुम रक्षा करते हो न? हे राघव, वह मेरे पूर्व पुरुषों से सुरक्षित देश, जो नाना यज्ञस्थानों से विभूषित है और सुख से रहनेवाले लोगों से भरा पूरा है सुख से बसता है न? वह देश देवस्थान, जल-स्थान और तड़ागों से सुशोभित है; वह हर्षित नर-नारियों, समाजों और उत्सवों से मनोहर है, तथा उसके सिवाने सुन्दर जोते हुए पड़े हैं। वह देश पशुओं से भरा पूरा है। वहाँ हिंसा नाम लेने को भी नहीं। मेघों के जल की उसे परवा नहीं है। वह रमणीय, घातक जन्तुओं से हीन, सब प्रकार से निर्भय, नाना खानों से शोभित, पापिष्ठ नरों से शून्य और उत्तरोत्तर वृद्धि से युक्त है। हे भरत, किसान और गोप लोग तो तुम्हारी प्रीति के पात्र हैं न? हे तात, भला खेती, गौ की रक्षा और वाणिज्य से तो लोग सुखपूर्वक बढ़ रहे हैं? इन लोगों की रक्षा करके और विपत्ति नष्ट करके तुमने इनका पालन किया है न? क्योंकि राजा को उचित है कि अपने राज्य-वासियों की धर्म से रक्षा करे। तुम स्त्रियों को प्रसन्न रखते हो न? वे तुमसे सुरक्षित हैं कि नहीं? उन पर तुम विश्वास तो नहीं करते? कभी इनसे गुप्त बातचीत तो नहीं करते? तुम्हारा हाथियों का जङ्गल, कजली वन तो सुरक्षित है न? तुम्हारे कितने गाय बैल हैं? तुम हाथी और घोड़ों के लाभ से तृप्त तो नहीं होते? हे राजपुत्र, तुम सब प्रकार से विभूषित होकर और दो पहर के भीतर सभा में तथा राज मार्ग में जाकर नित्य मनुष्यों को दर्शन देते हो कि नहीं? तुम्हारे पास जितने काम करनेवाले (राज, बढ़ई इत्यादि) हैं वे शंका रहित हो तुम्हारे पास चले आते हैं अथवा दूर ही दूर रहते हैं? क्योंकि ये दोनों बातें ठीक नहीं। इनके बीचवाला व्यवहार करना चाहिए, अर्थात् इन लोगों का कभी कभी प्रत्यक्ष और कभी कभी अप्रत्यक्ष रखना ही लाभजनक है। तुम्हारे सब किले धन, धान्य, शस्त्र, जल, यन्त्र, शिल्पी और धनुर्द्धरों से भरे पूरे हैं न? तुम्हारे कोश

*अन्य राजाओं के मंत्री, पुरोहित, युवराज, सेनापति, द्वारपाल, अन्तः पुराधिकारी, जेलर, खजाञ्ची राजा की आज्ञा से भृत्यादिकों को आज्ञा देनेवाला प्राड्विवाक (मुकद्दमे का इजहार लेनेवाला) धर्मासनाधिकारी सभ्य (मुकद्दमे का निर्णय करनेवाला, पञ्च) सेना को वेतन बाँटनेवाला, कार्य समाप्त होने पर वेतन लेनेवाला, नगराध्यक्ष, राष्ट्रान्तपालक कोतवाल वा राज्य के चारों ओर खबरदारी करनेवाला, दुष्टों को दण्ड देनेवाला और जल, पर्वत, वन-स्थल तथा दुर्गों का पालक—इन अठारह को; और इनमें से तीन अर्थात् मन्त्री, पुरोहित और युवराज, इनको छोड़कर शेष पन्द्रह को अपने राज्य में तुम जानते हो न?

(खजाने) में आमदनी अधिक और खर्च कम है या नहीं ? अपात्रों अर्थात् मूर्ख अब्राह्मण इत्यादि को कोश का धन तो नहीं दिया जाता ? देवता, पितर, ब्राह्मण, अभ्यागत, योद्धा और मित्रों के लिए तुम्हारा धन व्यय होता है कि नहीं ? कोई साधु पुरुष, जो शुद्धात्मा और पवित्र तो है पर किसी चोरी इत्यादि दुष्ट अपराध में आ फँसा है तो उसको तुम्हारे नीति-शास्त्र में कुशल लोग लोभ से—बिना निर्णय किये ही—दण्ड तो नहीं दे देते ? हे नरश्रेष्ठ ! कोई चोर, जो चोरी करते पकड़ा गया हो और पूछने से तथा साक्षी द्वारा जिस पर चोरी सिद्ध हो गई हो वह, धन के लोभ से, छोड़ तो नहीं दिया जाता ? किसी धनाढ्य और दरिद्र के झगड़े में तुम्हारे बहुश्रुत सचिव, लोभरहित होकर, इन दोनों के व्यवहार (मुकद्दमे) का ठीक ठीक निर्णय करते हैं कि नहीं ? क्योंकि हे राघव, मिथ्या दोष के आरोप से व्यर्थ दण्डित लोगों के जो आँसू गिरते हैं वे उस राजा के पुत्रों और पशुओं को नष्ट कर डालते हैं, जो केवल अपने शरीर के आनन्द के लिए राज्यशासन करता है और ठीक निर्णय की ओर मन नहीं देता। हे राघव ! वृद्ध, बालक, वैद्य और मुख्यों को दान, मन और वाणी से प्रसन्न तो रखते हो ? गुरु, वृद्ध, तापस, देवता, अतिथि, चतुष्पद के महावृक्ष और विद्या-तपोनिष्ठ ब्राह्मणों को प्रीतिपूर्वक नमस्कार करते हो न ? अर्थ से धर्म्म को या धर्म्म से अर्थ को या अर्थ धर्म्म दोनों को आनन्द के लोभ से काम के द्वारा बाधा तो नहीं पहुँचाते हो ? हे कालज्ञ, अर्थ धर्म्म और काम तीनों में जिसका जब सेवन करना चाहिए उसी समय करते हो न ? अर्थात् किसी एक ही में तो आसक्त नहीं हो जाते ? हे महाप्राज्ञ ! देशवासी और पुरवासी लोग तथा सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता ब्राह्मण लोग तुम्हारे भले की इच्छा रखते हैं न ? हे भरत ! नास्तिकता, मिथ्याभाषण, क्रोध, भूल, दीर्घसूत्रता, ज्ञानियों से भेंट न करना, आलस्य, इन्द्रियों के वश में रहना, अकेले ही राज-कार्यों को सोचना, राजा के विपरीत बोलने-वालों के साथ विचार करना, निश्चय किये हुए कार्य्यों का आरम्भ न करना, मन्त्र की रक्षा न करना, मङ्गल-कार्य्यों का परित्याग और चारों ओर युद्ध के लिए चढ़ाई करते फिरना, इन चौदह राजदोषों को तुमने छोड़ दिया है न ? हे राघव ! अहेर, जुआ, दिन का सोना, निन्दा, स्त्री, अहंकार, नृत्य, गीत-वाद्य और वृथा इधर उधर घूमना, ये दस काम से उत्पन्न होते हैं इनको तुम भली भाँति जानते हो न ? जल-सम्बन्धी, पर्वत-सम्बन्धी, वृक्ष-सम्बन्धी, ऊसर-सम्बन्धी और निर्जल देश-सम्बन्धी, इन पाँच प्रकार के दुर्ग अर्थात् राजाओं के किलों को और साम, दाम, दंड, भेद इन चारों को तुम भली भाँति जानते हो न ? स्वामी, मन्त्री, राष्ट्र, दुर्ग, कोश, सेना और मित्र ये जो राज्य के सात प्रकार के अंग हैं इनको तुम अच्छी तरह से जानते और इन पर विचार करते हो न ? हे भरत ! चुगली, साहस, द्रोह और डाह करना, गुणों में दोष लगाना, अर्थों में दूषण देना, कठोर वचन कहना और तीक्ष्ण दण्ड देना, ये आठ बातें क्रोध से उत्पन्न हैं। इनको तुम जानते और इन पर विचार करते हो न ? धर्म्म, अर्थ तथा काम (तीनों) को, अथवा प्रभुशक्ति, मन्त्र-शक्ति और उत्साहशक्ति को और बुद्धि द्वारा इन्द्रियों के जीतने का उपाय अर्थात् योगाभ्यास को तुम जानते हो न ? सन्धि, विग्रह, चढ़ाई, समय की बाट जोहते रहना, शत्रुओं में फोड़ फाड़ करा देना और किसी बलवान् का अवलम्ब करना इन छहों को; और अग्नि, जल, व्याधि, दुर्भिक्ष और महामारी—इन

पाँच प्रकार की दैवी विपत्तियों को तुम भली भाँति जानते और इन पर विचार करते हो न ? हे भरत, जो विपत्तियाँ अधिकारियों से, चोरों से, और शत्रुओं से उपजती हैं और जो राजा के प्यारों और राजा के लोभ से उत्पन्न होती हैं उनको तुम भली भाँति जानते या विचारते तो हो ? बालक, वृद्ध, दीर्घरोगी, ज्ञातिबहिष्कृत, डरपोक, लोभी, चिड़चिड़ करनेवाला, विषयों में आसक्त, अनेक प्रकार का विचार करनेवाला, अर्थात् एक बात पर दृढ़ न रहनेवाला, देव-ब्राह्मण की निन्दा करनेवाला, भाग्यहीन, केवल भाग्य पर भरोसा रखनेवाला, दुर्भिक्ष-क्लेश से पीड़ित, सेना-क्लेश-युक्त, अपने देश में स्थित न रहनेवाला, अनेक शत्रुवाला, कालयुक्त और सत्यधर्म में जो तत्पर नहीं—इन बीसों को तुम जानते हो न ? राज्य, स्त्री, स्थान, देश, ज्ञाति और धन ये ६ जिनके छीन लिये गये हैं उनको तुम अच्छी तरह जानते और उन पर विचार करते हो न ? हे भरत ! मद, मान और देश की पीड़ा से पीड़ित, ज्ञान अर्थ शक्ति और धर्म की विद्या जाननेवाला दैव-चिन्तक, शत्रु और मित्र दोनों का अनादर करनेवाला और जिसके बन्धुजन का विनाश हो गया है और जो किसी पर दया नहीं करता वह और जो एक ही वस्तु पर आग्रह करता है वह—ये बीस सन्धि ( मेल ) करने के योग्य नहीं अर्थात् इनसे राजा को लड़ाई ही करनी चाहिए। सचिव, राष्ट्र, दुर्ग, कोश और सेना—ये पाँच विजय चाहनेवाले राजा की प्रकृति कहलाती हैं। शत्रु, मित्र, शत्रु का मित्र, मित्र का शत्रु और मित्र के शत्रु का मित्र—इन पाँचों पर विजयाकांक्षी को विचार करना चाहिए। पार्ष्णिग्राह, आक्रन्द, पार्ष्णिग्राहासार और आक्रन्दासार ये चार विजयाकांक्षी के पीछे वाले हैं; मध्यम वह है जो शत्रु और विजयाकांक्षी के बीच में रहे; और उदासीन वह है जो इन दोनों से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता परंतु बल में अधिक है; इन सबको द्वादशराजमण्डल कहते हैं। यात्रा के पाँच भेद ये हैं—विग्रह करके, सन्धि करके, इकट्ठा होकर, प्रसङ्ग वश और अपने सामने शत्रु को कुछ भी न समझ करके यात्रा की जाती है। इन सबसे तुम भली भाँति परिचिति हो न ? सेना की व्यूह-रचना का तुम्हें ज्ञान है न ? दो शत्रुओं के बीच में अलक्षित हो दोनों ओर मिले रहना और पीड़ित होकर बलवान् का आश्रय करना—दो प्रकार की इन सन्धियों से तुम परिचित हो न ? झटपट चढ़ाई करना और समय की बाट जोहते चुपचाप बैठे रहना—दो प्रकार के इन विग्रहों को तुम भली भाँति जानते और विचारते तो हो ? हे पण्डित ! तुम चार या तीन मन्त्रियों के साथ, इकट्ठे या पृथक्, मन्त्र का विचार शास्त्रानुसार करते हो न ? वेद-क्रिया तुम्हें सफल है न ? स्त्रियाँ और शास्त्र तुम्हें समय पर यथोचित फलदायक होते हैं न ? हे राघव, तुम इसी प्रकार की बुद्धि रखते हो न जैसी कि मैं ऊपर कह आया हूँ। वैसी बुद्धि से आयुर्बल और यश का लाभ होता है। वह बुद्धि धर्म, काम और अर्थ से संयुक्त है। हे तात, जिस वृत्ति से हमारे पिता-पितामह इत्यादि चलते थे, जो साधु-मार्गानुसारिणी और मङ्गलदायिनी है तुम भी उसी मार्ग से तो चलते हो ? हे राघव, तुम स्वादु भोजन अकेले ही तो नहीं कर लेते ? जो उसकी चाह रखते हैं उन मित्रवर्गों को भी देते हो न ?

हे भरत ! देखो, विद्वान् राजा दंड धारण-पूर्वक जो धर्म से प्रजा का पालन करता है तो वह सम्पूर्ण पृथ्वी का यथोचित स्वामित्व पाकर अन्तकाल में स्वर्ग को जाता है।

## १०१ला सर्ग

### भरत का रामचन्द्र को पिता के मरण का संवाद सुनाकर राज्याभिषेक के लिए प्रार्थना करना पर रामचन्द्र का न मानना

इस प्रकार भरत से कहकर रामचन्द्र और लक्ष्मण फिर पूछने लगे कि हे भरत! तुम चीर, जटा और मृगचर्म धारण कर, राज्य को छोड़ इस महावन में क्यों चले आये? इसका क्या कारण है? सब बातें तुम मुझे सुनाओ। तब भरत धीरज धर कर उनसे हाथ जोड़ कर बोले—हे आर्य! मेरी माता कैकेयी के कहने से पिताजी तो बड़ा कठिन काम करके पुत्र-शोक से पीड़ित हो स्वर्ग को चले गये। कैकेयी ने यह महा-पाप किया जिससे उसके यश का नाश हो गया। राज्य-रूप फल को पाये बिना ही मेरी जननी विधवा हो गई और शोक से पीड़ित हो अब घोर नरक में गिरेगी। अब आप मुझ दास पर प्रसन्न हो आज ही राज्या-भिषेक को स्वीकार कीजिए और इन्द्र की तरह राज्य-सन पर विराजिए। देखिए, प्रजा के लोग और मेरी विधवा मातायें आपके पास आई हैं। अब आपको कृपा करनी चाहिए। परम्परा की दृष्टि से राज्यासन आप ही के योग्य है इसलिए आप धर्मपूर्वक राज्य ग्रहण कर सुहृद लोगों को कृतार्थ कीजिए। यह सम्पूर्ण पृथ्वी आपको पति पाकर वैधव्य दोष से इस प्रकार रहित हो जायगी जैसे शरत् की रात्रि निर्मल चन्द्र से शोभायुक्त और निर्दोष हो जाती है। देखिए, मैं आपका भाई तो हूँ ही, शिष्य और दास भी हूँ। इन सचिवों के साथ अपना मस्तक झुका कर मैं आपसे यही माँग रहा हूँ। हे पुरुषश्रेष्ठ, परम्परागत पैतृक मान्य मन्त्रि-मण्डल भी बार बार यही चाहता है सो इनकी कामना को अतिक्रम न कीजिए।

भरत की आँखों में आँसू भरे थे। उन्होंने प्रार्थना करके मस्तक से श्रीरामचन्द्र के चरणों को ग्रहण किया। उस समय भरत मत्त गजेन्द्र की नाईं बार-बार साँस छोड़ रहे थे। उनको गले से लगाकर रामचन्द्र बोले कि हे भरत! मेरे ऐसा कुलीन, पराक्रमी, तेजस्वी और व्रतधारी राज्य के लिए किस प्रकार से पाप का आचरण करेगा? हे अरिमर्दन, मैं तो तुममें थोड़ा भी दोष नहीं देखता। लड़कपन से तुम्हें जननी की निन्दा न करनी चाहिए। हे दोषरहित! पिता इत्यादि बड़ों का, स्त्रियों पर और पुत्रों पर यथेष्टाचार हो सकता है। संसार में सज्जन लोग भार्या, पुत्र और शिष्य को जैसा आज्ञा-वाहक समझते हैं वैसे ही पिता के आगे हम भी हैं। यह बात तुम भी विचार सकते हो इसलिए महाराज चाहे मुझे वन में मुनि के वेष में बसावें, चाहे मुझे राज्य पर बिठावें—यह उनकी इच्छा है। हे धर्मज्ञ, लोकपूजित पिता का जितना गौरव और बड़प्पन है उतना ही माता का भी है। मुझे धर्मात्मा माता-पिता ने वन में जाने को कहा है तो भला अब उस बात को मैं किस प्रकार से अन्यथा करूँ। इसलिए हे भरत, तुमको अयोध्या में जाकर उस लोकपूजित राज्य का शासन करना चाहिए और मुझे वल्कल धारण कर दण्डकारण्य में रहना चाहिए; क्योंकि लोगों के सामने इसी प्रकार हमारा और तुम्हारा विभाग करके महाराज स्वर्ग को सिधारे हैं। वे धर्मात्मा राजा लोगों के और तुम्हारे भी गुरु हैं। इन सब बातों के करने धरने का उन्हें अधिकार है। इसलिए हे भैया भरत! पिता के दिये हुए राज्य का तुम यथोचित भोग करो और मुझको उन्होंने जो

आज्ञा दी है उसी को मैं अच्छा समझता और उसी में अपना हित मानता हूँ। मैं इस अक्षय राज्य को नहीं चाहता।

---

## १०२रा सर्ग

### भरत का फिर आग्रह करना और पिता को जलांजलि देने के लिए रामचन्द्र से कहना

राम का वचन सुन भरत फिर बोले कि मैं तो धर्म से हीन हूँ। राजधर्म मेरा क्या करेगा? हे नरश्रेष्ठ, हम लोगों में तो सनातन से यह धर्म चला आता है कि बड़े पुत्र के रहते छोटा राजा नहीं होता। इसलिए हे राघव, मेरे साथ आप अयोध्या चलिए और अपना अभिषेक करवाकर हमारे कुल का कल्याण कीजिए। लोग राजा को मनुष्य कहते हैं परन्तु मेरी समझ में तो वह देवता है, क्योंकि उसके धर्म-अर्थ-मिश्रित संपूर्ण व्यवहार मनुष्य के व्यवहार से भिन्न देख पड़ते हैं। मैं केकय देश में था और आप वनवास के लिए अयोध्या से निकल चुके थे, उस समय महाराज दशरथ,—जो बुद्धिमान, सज्जनों में सम्मत और बड़े यज्ञ करनेवाले थे—स्वर्ग को सिधारे। घर से आपके निकलते ही राजा दुःख और शोक से ऐसे पीड़ित हुए कि प्राणों को धारण न कर सके। हे पुरुषश्रेष्ठ! आप उठिए और पिता को जलाञ्जलि दीजिए। मैं और शत्रुघ्न, दोनों पहले ही जलक्रिया कर चुके हैं। पण्डितों की राय है कि जो पिता का प्रिय पुत्र है उसका दिया हुआ पिण्ड आदि पितृलोक में अक्षय हो जाता है। और आप पिता के प्रिय हैं क्योंकि देखिए, पिताजी आप ही को सोचते हुए गुजरे हैं, आप ही के दर्शन की इच्छा करते, और आप में ही स्थिर बुद्धि किये किये उन्होंने शरीर छोड़ा है। आप ही के शोक से पीड़ित और आप ही के नाम का उच्चारण करते हुए पिता जी स्वर्ग को सिधारे हैं।

---

## १०३रा सर्ग

### रामचन्द्र का पिता के लिए अत्यन्त विलाप करना और पिण्ड तथा जल देना

पिता के मरने के अप्रिय संवाद को सुन रामचन्द्र अचेत हो कुल्हाड़ी से काटे हुए वृक्ष की नाईं भूमि पर गिर पड़े। भरत ने यह वाग्वज्र ऐसा छोड़ा जैसे युद्ध में इन्द्र वज्र चलाते हैं। उस समय जगतीपति राम को पृथ्वी में गिरे देख ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई मत्त हाथी नदी के कगारे गिरते गिराते थक कर सो रहा है। उनकी यह दशा देख तीनों भाई जानकी समेत शोकाकुल हुए। वे सब रोने लगे और रामचन्द्रजी के मुख पर जल के छींटे देने लगे। फिर कुछ देर में सचेत होकर रामचन्द्र रोने और बहुत प्रकार का विलाप करने लगे। वे बोले, हे भरत! जब पिता ही अन्तगति को प्राप्त हो गये तब मैं अयोध्या में जाकर क्या करूँगा। उस राजश्रेष्ठ से विहीन अयोध्या का पालन कौन करेगा? मेरे ऐसा वृथा जन्मधारी पुत्र उस महात्मा पिता के लिए क्या कर सकता है? मेरे शोक से मर गये और मेरे हाथ से उनका संस्कार भी न हुआ! अहो भरत, तुम कृतार्थ हो। क्योंकि तुमने और शत्रुघ्न ने पिता का सब क्रिया-कर्म किया। अब तो अयोध्या प्रधानरहित, और राजा से हीन है। मैं

वनवास से निवृत्त होकर भी वहाँ जाने का उत्साह नहीं करता। क्योंकि हे परन्तप, अब पिता बिना अयोध्या में मुझे शासन देनेवाला और कौन है? मेरे सुन्दर आचरणों को देख पिताजी मुझे समझाते हुए जो बातें कहा करते थे अब वे श्रवण-सुखद बातें कहाँ सुनूँगा?

भरत से यह कह कर वे सीता की ओर मुँह करके बोले—हे सीते, तुम्हारे ससुर मर गये। हे लक्ष्मण, तुम पिता से हीन हो गये। भरत ने पिता के स्वर्गवास का हाल मुझसे कहा है। रामचन्द्र के यह कहते ही उन लोगों की आँखों में आँसू भर आये। इसके अनन्तर सब भाई दुःखित रामचन्द्र को आश्वासन देकर बोले कि हे प्रभो, अब आप महाराज की जलक्रिया कीजिए। ससुर के मरने का समाचार सुनकर सीता के नेत्रों में आँसू भर आये। वे रामचन्द्र को न देख सकीं। तब रोती हुई सीता को समझाकर रामचन्द्रजी दुःखित मन से लक्ष्मण से बोले कि इंगुदी का पिण्याक अर्थात् गूदा और मेरे पहनने के लिए नया चीर ले आओ। अब मैं तात की जलक्रिया के लिए चलता हूँ। सीता आगे चले, तुम इसके पीछे और मैं सब के पीछे चलूँगा। यह शोकसमय की गति बड़ी कठिन है। सुमन्त्र उनका सदा का अनुचर, मनोऽभिप्राय का जाननेवाला और बड़ा बुद्धिमान् है। वह कोमलहृदय, जितेन्द्रिय, प्रिय और रामचन्द्र का दृढ़भक्त है। उसने उन राजपुत्रों समेत राम को आश्वासन दिया और थाम कर मन्दाकिनी नदी पर उतारा। वह नदी रमणीय है और सदा फूले वनों से संयुक्त रहती है। जल उसमें बहता रहता है और सुन्दर घाट से वह सुशोभित है। उसमें कीच भी नहीं है। उसके तीर पर उतर कर वे अञ्जलियों में जल ले राजा के गोत्र और नाम का उच्चारण करके देने लगे। रामचन्द्र जल से अञ्जलि को भर, दक्षिणाभिमुख हो, रोकर बोले—हे राजवर, आज यह मेरा दिया हुआ निर्मल जल, पितृलोक में, तुम्हारे लिए अक्षय हो। इसके अनन्तर मन्दाकिनी के तीर से ऊपर आकर भाइयों के साथ रामचन्द्र ने पिण्डदान किया और बैर के फलों से मिश्रित इङ्गुदी के पिण्याक का पिण्ड बनाकर बिछाये हुए कुशों पर रक्खा और दुःखित होकर रोते-रोते कहा—

महाराज, तुम प्रसन्न होकर इसको भोजन करो। हम लोग भी इसे ही खाते हैं। जो पुरुष जिस अन्न को खाता है, उसी अन्न से वह अपने देवताओं को भी तृप्त करता है। इसके अनन्तर वे नरश्रेष्ठ उसी मार्ग से, नदी के तट को छोड़, उस मनोहर शिखरवाले पर्वत पर चढ़ गये और पर्णशाला के द्वार पर पहुँचे। वहाँ भरत और लक्ष्मण को अपनी भुजाओं से थामकर रामचन्द्रजी रोने लगे।

उस समय उन चारों भाइयों और सीता के रोने से उस पर्वत पर ऐसी प्रतिध्वनि हुई जैसी सिंहों के गरजने से होती है। उस महाघोर शब्द से भरत की सेनावाले डर गये। वे आपस में कहने लगे कि देखो, भरत और रामचन्द्रजी की भेंट अवश्य हुई। यह महाशब्द उन्हीं के रोने का जान पड़ता है। पिता के मरण से वे अत्यन्त शोकित हो विलाप कर रहे हैं। अब सब सेनावाले अपने-अपने घोड़ों और सवारियों को छोड़, एक मन हो, जिस ओर से वह शब्द सुनाई पड़ रहा था उसी ओर दौड़े। उनमें जो सुकुमार थे वे घोड़े, हाथी और अच्छे-अच्छे भूषित रथों पर चढ़कर और कई एक पैदल ही उसी शब्द को लक्ष्य कर बढ़ते चले। यद्यपि रामचन्द्र को वन में आये थोड़े ही दिन हुए थे तथापि

सबको ऐसा जान पड़ता था कि बहुत दिन बीत गये, इसी लिए, राम को देखने की उत्कण्ठा से और सब भाइयों के समागम को देखने की इच्छा से वे सब के सब एकदम दौड़ पड़े।

उस समय उनकी सवारियों से वह वन की भूमि ऐसी शब्दायमान हुई जैसे मेघों के समागम से आकाश शब्दायमान होता है। उस शब्द से हथिनियों-सहित हाथी—अपने मद-गन्ध से वन को सुगन्धित करते हुए—उस वन से दूसरे वन में चले गये। शूकर, मृग, सिंह, भैंसे, व्याघ्र, गोकर्ण, गवय और पृषत नाम के मृग वहाँ से भागे। चकवा, जलकुक्कुट, हंस, कारण्डव और प्लव नामक जल-पक्षी, कोकिल और क्रौञ्च ये सब पक्षी उस शब्द से अचेत हो इधर-उधर भाग चले। उस शब्द से डरे हुए पक्षियों से आच्छादित आकाश, और मनुष्यों से आच्छादित भूमि शोभायुक्त हुई। इसके अनन्तर इन लोगों ने शीघ्र जाकर रामचन्द्र को कुशासन पर बैठे देखा। तब वे लोग कैकेयी की और उस अहित-कारिणी मन्थरा की निन्दा करने लगे और राम के समीप खड़े हो आँखों में आँसू भर लाये। उन लोगों को पीड़ित और रोते देख रामचन्द्रजी उठकर सबको गले से लगाकर ऐसे मिले जैसे कोई माता-पिता से मिलता है। उनमें से अनेक लोगों ने रामचन्द्र को प्रणाम किया। इस प्रकार रामचन्द्र ने अपने मित्रों और बान्धवों का यथोचित सत्कार किया। इसके अनन्तर फिर सब लोग शोक से रोने लगे। इस रोदन का शब्द भूमि, आकाश और पर्वत की कन्दराओं तथा दिशाओं को नादयुक्त करता हुआ, मृदङ्ग के शब्द की भाँति, सुनाई पड़ने लगा।

---

## १०४था सर्ग

### माताओं और वशिष्ठजी से मिलना

अब वशिष्ठ मुनि राजा दशरथ की स्त्रियों को आगे कर, राम के दर्शन के लिए उत्कण्ठित हो, उनके पास चले। रानियाँ चलती-चलती मन्दाकिनी नदी के पास पहुँचीं। यह तीर्थ राम-लक्ष्मण से सेवित था। वहाँ पर कौशल्या आँखों में आँसू भर-कर, शोक की पीड़ा से सूखते मुँह से, सुमित्रा आदि राज-पत्नियों से बोलीं कि देखो, यह उन अनाथों का पहला तीर्थ (घाट) है जो चुपचाप महा क्लेशकारक आचरण कर रहे हैं और राज्य से च्युत हैं। हे सुमित्रे, तुम्हारा पुत्र आलस्य छोड़कर यहीं से मेरे पुत्र के लिए नित्य जल ले जाता होगा। यद्यपि तुम्हारा पुत्र यह नीच कर्म करता है, तथापि वह निन्दित नहीं क्योंकि ज्येष्ठ भ्राता के लिए वह अपने धर्म का पालन कर रहा है। तुम्हारा पुत्र क्लेश उठाने के योग्य नहीं है, वह आज ही इस नीच और अनर्थयुक्त कर्म को त्याग दे। इसके अनन्तर कौशल्या, दक्षिणाग्र कुशों पर रक्खे हुए, इङ्गुदी के पिण्डों को देखकर सब राज-पत्नियों से कहने लगीं कि देखो, ये पिण्ड रामचन्द्र ने अपने पिता के लिए दिये हैं। अहो, देवताओं के समान भोग भोगनेवाले राजा के लायक यह भोजन नहीं है। इन्द्र के समान भोग भोगकर राजा ने ये पिण्ड कैसे खाये होंगे! हे रानियो, इससे अधिक और क्या दुःख होगा कि राम ने राजा को इङ्गुदिफलों के पिण्ड दिये। इन पिण्डों को देखकर मेरा हृदय क्यों नहीं हजार टुकड़े होकर फट जाता!

यह कहावत सत्य जान पड़ती है कि पुरुष जिस अन्न से अपना निर्वाह करता है उसी अन्न से अपने

भरत का रामचन्द्र को राज्य करने के लिए अनुरोध करना। [पृष्ठ २३३

देव-पितरों को भी तृप्त करता है। इस प्रकार कौशल्या के वचन सुनकर वे राज-पत्नियाँ समझाती हुई आश्रम में पहुँचीं। वहाँ स्वर्ग से च्युत, देवता के तुल्य, सब भोगों से हीन रामचन्द्र को देख अत्यन्त पीड़ित हो वे उच्च स्वर से रोने लगीं। रामचन्द्र ने, माताओं को देख, अपने आसन से उठकर उनके चरण छुए। माताओं ने रामचन्द्र की पीठ पर अपना कोमल हाथ फेरा। वे उनकी धूलि पोंछने लगीं। इसके अनन्तर लक्ष्मण ने माताओं के चरणों में प्रणाम किया। तब उन्होंने रामचन्द्र के तुल्य लक्ष्मण को भी आशीर्वाद दिया। फिर सीता, आँखों में आँसू भरकर, उनके चरणों पर गिरी और आगे खड़ी हो गई। सीता दुःख से पीड़ित और वनवास से कृश हो गई थी। उसको पुत्री की भाँति गले से लगाकर कौशल्या बोलीं—देखो यह विदेहराज की पुत्री, महाराज दशरथ की पतोहू और राम की पत्नी, सीता इस निर्जन वन में कैसे दुःख भोग रही है। हे वैदेहि, यह तुम्हारा मुख घाम लगने से मुरझाये हुए कमल के तुल्य शुष्क है, मीजे हुए कुमुद की नाईं हो गया है, धूलि-धूसर सुवर्ण के सदृश, और मेघ से आच्छादित चन्द्र की भाँति मलिन हो रहा है। इसे देखकर मुझे शोकाग्नि भस्म किये डालता है। हे सीते, अग्नि जैसे काठ को भस्म करता है वैसे ही यह दुःख-रूप अरणी से उपजा हुआ अग्नि मेरे अन्तःकरण को अत्यन्त जला रहा है।

इधर कौशल्या यह बात कह रही थी इतने में उधर महर्षि वशिष्ठ को आते देख रामचन्द्र ने शीघ्र उठकर अग्नि-तुल्य पुरोहित के चरणों की ऐसे वन्दना की जैसे इन्द्र बृहस्पति के चरणों का अभिवन्दन करते हैं। फिर वे उन्हीं के साथ आसन पर आ बैठे। इसके अनन्तर भरत अपने मन्त्रियों, प्रधान पुरवासियों और सेनावालों सहित रामचन्द्र के समीप पीछे की ओर, उनसे कुछ नीचे आसन पर हाथ जोड़कर बैठे, जैसे कि ब्रह्मा के समीप इन्द्र स्थित रहते हैं। उस समय वहाँ जो प्रधान लोग बैठे थे वे अपने मन में यह विचार करते और बड़ा कौतुक समझते थे कि देखें इस समय ये भरत, हाथ जोड़कर, नम्रतापूर्वक रामचन्द्र से क्या कहते हैं। उस समय सत्यधर्मवान् रामचन्द्र, लक्ष्मण और महानुभाव धार्मिक भरत की बन्धुगणों समेत ऐसी शोभा हो रही थी मानो यज्ञ में सभासदों के साथ तीनों अग्नि प्रकाशित हो रहे हों।

---

## १०५वाँ सर्ग

### रामचन्द्रजी से राज्य करने के लिए भरतजी की प्रार्थना और रामचन्द्र का धर्मानुसार भरत को समझाना

मित्रों और बन्धुओं सहित वे पुरुषसिंह दुःख से सोच कर रहे थे। वह रात उनकी बीत गई। प्रातःकाल उन भाइयों ने मन्दाकिनी पर जाकर होम और जप किया। फिर सब आश्रम में लौट आये। उस दिन की सभा में और सब लोग चुपचाप बैठे थे। भरत ही, सबके मध्य में, रामचन्द्र से बोले—

हे भाई, वरदान के समय, राजा ने मेरी माता को जो राज्य दिया था वह अब मुझे दिया गया है। हे नाथ, मैं हाथ जोड़कर वही राज्य आपको समर्पण करता हूँ; कृपा कर स्वीकार कीजिए। आप अकण्टक राज भोगिए और सबकी आशा पूर्ण कीजिए।

देखो, वर्षाकाल में जल की टक्करों से टूटा हुआ पुल क्या पानी के वेग को थाम सकता है? इसी प्रकार

इस राज्य को तुम्हारे सिवा अन्य पुरुष नहीं सँभाल सकता। हे महीपते, जैसे गदहा घोड़े की गति का और दूसरा पक्षी गरुड़ की गति का अनुसरण नहीं कर सकता, इसी प्रकार मैं भी तुम्हारे सामर्थ्य का अनुगमन करने में समर्थ नहीं। हे रामचन्द्र, उस पुरुष का जीवन मङ्गलरूप है जिसके पीछे अनेक जन जीते हैं और जो दूसरों के सामर्थ्य से जीता है उसका जीवन किसी काम का नहीं। जैसे किसी ने किसी वृक्ष को रोपकर सेवा-यत्न से उसको बढ़ाया और वह अपनी डाल और शाखाएँ फैलाकर ऐसा महावृक्ष हुआ कि उस पर छोटा आदमी चढ़ नहीं सकता फिर जब वह फूलने तो लगे पर फले नहीं तो जिस मतलब से वह रोपा गया था वह किस प्रकार सफल हो सकता है? हे महाबाहो, मैंने यह बात उपमा की भाँति कही है। आप इसके अर्थ को समझने के योग्य हैं। क्योंकि इस रक्षणकाल में सर्वश्रेष्ठ स्वामी होकर आप हम भृत्यों का शासन नहीं करते। महाराज, ऐसा कीजिए जिससे प्रजा तपते हुए सूर्य की नाईं आपको राज्यासन पर बैठे देखे। नाद करते हुए ये मत्त हाथी आपका अनुगमन करें और अन्तःपुर की स्त्रियाँ शान्ति पाकर आनन्द करें। भरत की यह प्रार्थना सुनकर सब नगरवासी लोग साधु-साधु कहने लगे।

भरत दुःखित होकर गिड़गिड़ा रहे थे। उनको रामचन्द्र समझाने लगे कि भैया अपना कुछ वश नहीं है, क्योंकि यह पुरुष तो पराधीन है। यह अन्तर्यामी रूप काल इसको इधर से उधर और उधर से इधर खींचा करता है। संग्रह किये हुए जितने पदार्थ हैं वे सब नाशमान हैं और जितने ऊँचे पदार्थ हैं वे एक दिन गिरनेवाले हैं। जितने संयोग हैं वे सब वियोगान्त हैं अर्थात् वे सब अन्त में पृथक्-पृथक् हो जाते हैं। जीवन भी मरणान्त है—अन्त में मरण ही है। देखो, जैसे पके फलों का पतन होना ही उनकी गति है, इसी प्रकार जनमें हुए नर का मरण से पीछा नहीं छूट सकता—फिर मौत का डर कैसा? देखो, अच्छे दृढ़ खम्भों से बना हुआ घर जैसे कोई काल पा, जीर्ण होकर गिर जाता है वैसे ही मनुष्य भी बुढ़ापे और मृत्यु के वश में होकर नष्ट हो जाते हैं। हे भरत, जो रात बीत जाती है वह फिर नहीं लौटती, जैसे कि यमुना नदी का जो जल समुद्र में चला जाता है वह फिर नहीं लौट आता। देखो, ये जो दिन-रात बीतते चले जाते हैं ये प्राणियों की आयु को उसी तरह क्षीण करते जाते हैं जैसे ग्रीष्म काल में सूर्य की किरणें जल को सोख लेती हैं। हे भरत, तुम अपने विषय में सोचो; दूसरे के लिए अर्थात् स्वर्गवासी राजा के लिए क्यों सोच कर रहे हो? आयुबल तो सभी मनुष्यों का क्षीण होता चला जाता है—चाहे वह खड़ा हो, चाहे चला जाता हो। देखो, यह मृत्यु जनों के साथ ही चलती है, साथ ही उठती-बैठती है और साथ ही दूर तक जाकर फिर लौट आती है। हे भरत, देखो पुरुष के शरीर में झुर्रियाँ पड़ जाती हैं, सिर के बाल सफेद हो जाते हैं और वह बुढ़ाई से जर्जर हो जाता है। भला कहो तो सही, वह किस प्रकार समर्थ हो सकता है और कैसे अपने को स्वाधीन मान सकता है! देखो, ये मनुष्य सूर्योदय में और सूर्यास्त के साथ आनन्दित होते हैं परन्तु अपने जीवन के नाश की ओर दृष्टि नहीं करते। ये नर ऋतु का प्रारम्भ देख हर्षित होते हैं। ऋतुओं का आवागमन उनको नवीन-नवीन जान पड़ता है। परन्तु हे भरत, इन ऋतुओं के परिवर्तन से प्राणियों को अपने जीवन का नाश समीप जानना चाहिए। देखो, जैसे महासमुद्र में अन्य-अन्य स्थानों से दो लकड़ियाँ

बहती आकर एक स्थान में मिल जाती हैं और फिर काल पाकर पृथक हो इधर-उधर बह जाती हैं इसी प्रकार जो भार्या, पुत्र, ज्ञाति और धन अपने को मिल जाते हैं ये सब किसी समय वियुक्त हो जाते हैं। इसलिए इनके वियोग को निश्चय जानना चाहिए। हे भरत, इस संसार में जन्म और मरण का उल्लङ्घन कोई नहीं कर सकता। इसलिए यह, स्वयं मृत होकर, दूसरे मृत पुरुष के विषय में क्या सामर्थ्य रख सकता है जो उसके लिए शोक करता है! देखो, जैसे बटोहियों का झुण्ड मार्ग में चला जाता है, उसको कोई मनुष्य कहे कि मैं भी तुम्हारे पीछे आऊँगा; इसी प्रकार पूर्व पिता-पितामहों का चलाया हुआ जो मार्ग है, जिस पर वे गये हैं, उस पर आरूढ़ होने में किस लिए सोच करना चाहिए? जिसका उल्लङ्घन किसी प्रकार नहीं हो सकता उसका सोच ही क्या? हे भरत, देखो यह आयु जो बीतती चली जाती है और पानी का सोता जो फिर पीछे नहीं फिरता, इन दोनों को देख आत्मा को सुख (धर्म) में लगाना चाहिए क्योंकि प्रजा सुखभोगी ही कही गई है अर्थात् इनका जन्म सुख भोगने के ही लिए है। देखो, हमारे धर्मात्मा पिता ने अच्छे मङ्गल-रूप यज्ञ किये; दक्षिणाएँ दीं, सज्जनों से सत्कार पाकर वे स्वर्ग को पधारे। अब उनके लिए शोक करना उचित नहीं। वे हमारे पिताजी जीर्ण देह को परित्याग कर देवताओं की समृद्धि को प्राप्त हो गये। वह समृद्धि ब्रह्मलोक में मिल सकती है। अब इस प्रकार के पुरुष के लिए तुम्हारे या मेरे तुल्य कोई शास्त्रज्ञ, अत्यन्त बुद्धिमान् और पण्डित सोच करने के योग्य नहीं है। बहुत प्रकार के शोक, विलाप और रोदन को परित्याग करो। धीर पुरुष को यह बातें सदा त्यागनी चाहिएँ। स्वस्थ होकर शोक को छोड़ो, जाओ, उस पुरी में निवास करो। क्योंकि पिता ने तुमको यही कहा है। मुझे जैसी आज्ञा दी है वैसा ही मैं करूँगा। हे अरिन्दन, मुझे उनकी आज्ञा का उल्लङ्घन करना उचित नहीं। वे तुमको भी सदा मान्य हैं और हमको भी। क्योंकि वे हमारे पिता, बन्धु और शासनकर्त्ता भी हैं। इसलिए मैं पिता के उस वचन का, वनवासरूप कर्म से, पालन करूँगा। वह वचन धर्मचारियों को सम्मत है। हे नरव्याघ्र, जो मनुष्य धार्मिक और कोमलहृदय हैं और जो परलोक में जय की अकांक्षा रखते हैं उनको कुरुवर्त्ती अर्थात् पिता इत्यादि बड़े लोगों का आज्ञा-पालक होना चाहिए। हे नरश्रेष्ठ, तुम अपने सुन्दर स्वभाव से अपने परलोक के हित को सोचो और पिताजी के शुभाचार पर ध्यान दो। इस प्रकार राम-चन्द्र अपने कनिष्ठ भ्राता भरत को समझा-बुझाकर चुप हो रहे।

---

## १०६ठा सर्ग

### फिर भी भरत की उसी प्रकार से प्रार्थना

ऐसा कहकर रामचन्द्रजी जब चुप हो रहे तब भरत बोले—हे शत्रुनाशन! इस लोग में तुम्हारे तुल्य दूसरा कौन होगा कि जिसे न दुःख व्यथा दे सकता है और न प्रीति हर्षित कर सकती है! तुम वृद्धों के सम्मत अर्थात् दृष्टान्त रूप होकर भी निर्णय के लिए उन्हीं से संशयास्पद बातें पूछते हो। तुम्हारे लेखे जैसा मरा तैसा जीता; पदार्थ रहा तो क्या और न रहा तो क्या। प्रभो, जिस पुरुष की ऐसी बुद्धि है उसको किस वस्तु के द्वारा सन्ताप हो सकता है! हे नराधिप, जो तुम्हारे तुल्य परावरज्ञ अर्थात् सप्रपञ्च

आत्मतत्त्व का जाननेवाला हो, वही दुःख प्राप्त होने पर भी विषाद में न पड़े। हे राघव! तुम देवतुल्य, पराक्रमी, महात्मा, सत्यप्रतिज्ञ, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और बुद्धिमान् हो; तुम प्राणियों की उत्पत्ति और विनाश को भी जानते हो। ऐसे गुणों से युक्त तुमको किसी प्रकार का दुःख असह्य नहीं हो सकता। परन्तु मेरे बाहर रहते समय मेरी इस नीच माता ने मेरे लिए जो पाप किया है वह मुझे अनिष्ट है—मुझे सम्मत नहीं है, इसलिए मेरे ऊपर आप प्रसन्न हूजिए। क्या करूँ, मैं धर्मबन्धन से बँधा हूँ इसलिए दण्ड के योग्य इस पापकारिणी माता को कठोर दण्ड नहीं दे सकता क्योंकि कुलीन और धर्मनिष्ठ महाराज दशरथ से उत्पन्न होकर और धर्म-अधर्म को जानकर मैं ऐसा निन्दित कर्म किस प्रकार करूँ! मैं इस सभा में महाराज की भी निन्दा नहीं कर सकता क्योंकि वे गुरु, क्रियावान्, वृद्ध और प्रेतभाव को प्राप्त हो देवता के तुल्य हो गये। मैं निन्दित वचन नहीं कहता परन्तु ऐसा कौन पुरुष होगा जो धर्मज्ञों के धर्मों को जानकर भी, स्त्री की प्रीति की कामना से, धर्म और अर्थ से हीन इस प्रकार का पापकर्म करेगा? यह एक प्राचीन श्रुति है कि अन्तकाल में प्राणी मोह को प्राप्त होते हैं। सो राजा ने यह काम करके, लोगोंको वह श्रुति प्रत्यक्ष दिखला दी। राजा ने वह काम चाहे क्रोध से किया हो चाहे मोह या साहस से परन्तु आप पिता के इस दुष्कर्म को सुकर्म समझकर इस ओर से दृष्टि हटा लीजिए। पिता की भूल-चूक को जो पुत्र साधु या उचित मान लेता है वही पुत्र लोक में पुत्र माना जाता है और नहीं तो वह सुपुत्र नहीं। इसलिए आप अपने पिता के पुत्र हूजिए। उनके उस निन्दित काम को ढक लीजिए, उसके अनुगामी न हूजिए। आप कैकेयी को, मुझको, पिता को और हमारे मित्र-बान्धवों को तथा पुरवासियों को इस अपवाद से बचाने के लिए मेरी कही हुई इस बात को मान लीजिए।

हे भ्राता, कहाँ क्षत्रिय-धर्म और कहाँ यह कठोर वनवास, कहाँ प्रजा-पालन और कहाँ यह जटा-धारण! यद्यपि प्रारब्ध के अधीन होकर राजा ने ऐसी आज्ञा दी थी परन्तु यह आपके योग्य नहीं है। सुनिए महाराज, क्षत्रिय का पहला धर्म राज करना है जिससे प्रजा का पालन हो सकता है। भला कहिए तो कौन क्षत्रिय पुरुष इस प्रकार के प्रत्यक्ष धर्म को छोड़कर ऐसे अनिश्चित धर्म को स्वीकार करेगा जो संशयग्रस्त है, सुखों से रहित है और वृद्धावस्था में ही करने के योग्य है? यदि आप क्लेशयुक्त धर्म का ही आचरण करना चाहते हों तो ऐसे क्लेश को स्वीकार कीजिए जो धर्म से चारों वर्णों के पालन करने में होता है। क्योंकि धर्मज्ञ लोग चारों आश्रमों में गृहस्थ आश्रम को सर्वोत्तम कहते हैं। उस आश्रम को आप क्यों छोड़ना चाहते हैं? देखिए, विद्या में, जन्म में और स्थान में भी मैं आपके सामने बालक हूँ। भला, आपके रहते मैं पृथ्वी का पालन कैसे करूँगा! कहाँ तक कहूँ, एक तो मैं बुद्धिहीन, गुणरहित और दूसरे स्थान से भी हीन अर्थात् कनिष्ठ और बालबुद्धि हूँ। सो राज्य का पालन करना तो दूर, मैं आपके बिना अपने जीने का भी उत्साह नहीं करता। इसलिए हे धर्मज्ञ, आप बान्धवों के साथ इस अकण्टक सम्पूर्ण पैतृक प्रधान राज्य का धर्म से पालन कीजिए। प्रजा, वशिष्ठ और मन्त्री यहीं आपका अभिषेक कर दें। फिर आप अभिषिक्त होकर हमारे साथ अयोध्या में उसी तरह चलें जैसे देवगणों सहित इन्द्र स्वर्ग में गये थे; और शत्रुओं को जीतकर राज्य पर विराजे। देव, ऋषि और पितरों के ऋण से उऋण होते हुए, विपक्षियों को दग्ध करते और मित्रों की इच्छाएँ पूर्ण करते हुए आप मुझे

आज्ञा दिया कीजिए। हे आर्य्य, आज आपके अभिषेक से सुहृद् लोग हर्षित हों और दुष्ट लोग भयभीत होकर पलायन करें। हे पुरुषश्रेष्ठ, मेरी माता की इस लोक-निंदा को मिटाइए और पूज्य पिता को भी पाप से बचाइए। मैं अपना मस्तक नवाकर आपसे यह माँग रहा हूँ। अब आप मुझ पर और बान्धवों के ऊपर करुणा कीजिए जैसे महेश्वर सब प्राणियों पर दयादृष्टि करते हैं। अथवा जो आप इस मेरी बात को स्वीकार न करें और यहाँ से दूसरे वन में चले जायँ तो मैं भी आपके साथ चलूँगा।

इस प्रकार भरत गिड़गिड़ाकर रामचन्द्र से प्रार्थना कर रहे थे परन्तु रामचन्द्र पिता के वचन पर ऐसी दृढ़ता से जमे हुए थे कि जरा भी न डिगते थे। उस समय वहाँ जितने लोग थे वे सब दुःखित तो थे परन्तु रामचन्द्र की यह अद्भुत धीरता देखकर उन्हें हर्ष हुआ। रामचन्द्र अयोध्या को न चलेंगे, इस बात को सोच वे फिर दुःखित हो गये। भरत ने जो प्रस्ताव किया उसकी ऋत्विजों ने, प्रजा के मुखियों ने, और राजमाताओं ने प्रशंसा की। सभी की आँखों से आँसू गिर रहे थे। सभी विकल थे। सबने अयोध्या लौट चलने के लिए रामचन्द्रजी से आग्रह किया।

---

## १०७वाँ सर्ग

### रामचन्द्र का भरत को फिर समझाना

इस प्रकार फिर भी प्रार्थना करनेवाले भरत से रामचन्द्र बोले कि जो तुम कहते हो सो सब ठीक है। महाराज दशरथ के पुत्र होकर क्यों न ऐसा कहोगे? परन्तु मैं जो कहता हूँ उसको भी ध्यान देकर सुनो। पिताजी ने जब तुम्हारी माता से विवाह किया था तब तुम्हारे नाना से यह प्रतिज्ञा की थी कि 'तुम्हारी पुत्री से जो पुत्र उत्पन्न होगा वही मेरे राज्यासन पर बैठेगा।' और देवासुर-संग्राम में भी तुम्हारी माता के उपकार से प्रसन्न होकर पिताजी ने वर दिया था। तब तुम्हारी माता ने दो वर पिता दशरथजी से माँगे थे पर लिये इस समय। उसी समय नहीं ले लिये। एक तो तुम्हारे लिए राज्य और दूसरा मेरे लिए वनवास। राजा ने वे दो वरदान देकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। उसी कारण पिता की आज्ञा पाकर मैंने १४ वर्ष का वनवास स्वीकार किया। पिता के सत्य वचन पर स्थित होकर मैं सीता और लक्ष्मण को साथ ले इस निर्जन वन में चला आया हूँ। हे राजेन्द्र, तुम भी उनकी बात मानो और शीघ्र अपना राज्याभिषेक करवाकर पिता को सत्यवादी बनाओ। हे भरत, मेरे लिए राजा को इस ऋण से छुड़ाओ और उनकी रक्षा करो। माता को भी प्रसन्न और पूर्ण-मनोरथ करो। देखो, गय नामक एक यशस्वी पुरुष गया प्रदेश में यज्ञ करता था। उसने पितरों से कहा कि पुन्नामक नरक से पिता को बचाने के कारण और चारों ओर से पितरों की रक्षा करने के कारण बेटा "पुत्र" कहलाता है। ऐसे पुत्रों की चाह करनी चाहिए जो गुणवान् और बहुश्रुत हों। उनमें से यदि एक भी गया को चला जायगा तो पितरों को तार देगा। हे रघुनन्दन, सभी राजर्षियों का इस बात पर विश्वास है। हे नरश्रेष्ठ, तुम पिता का नरक से उद्धार करो। शत्रुघ्न को और सब द्विजों को साथ लेकर अयोध्या में जाओ और प्रजा को आनन्दित करो। हे वीर, अब मैं भी सीता और लक्ष्मण के साथ दण्डकारण्य में शीघ्र प्रवेश करूँगा। हे भरत, तुम मनुष्यों के राजा बनो और

मैं वन के मृगों (पशुओं) का राजा हूँगा। तुम हर्षयुक्त होकर श्रेष्ठ नगर में प्रवेश करो और मैं आनन्द से दण्डक वन में प्रवेश करूँ। हे भरत, सूर्य की किरणों का रोकनेवाला राजछत्र तुम्हारे मस्तक पर शीतल छाया करे और मैं इन जङ्गली वृक्षों की घनी छाँह का धीरे-धीरे आश्रय लूँ। हे भरत, यह अतुल बुद्धिमान् शत्रुघ्न तुम्हारा सहायक है और मेरा प्रधान मित्र यह लक्ष्मण है। इस प्रकार हम चारों पुत्र महाराज दशरथ को सत्ययुक्त करें। तुम शोक करना छोड़ दो।

---

## १०८वाँ सर्ग

### जाबालि ब्राह्मण का रामचन्द्र को समझाना

इस प्रकार भरत को रामचन्द्र समझा रहे थे। उनसे जाबालि नामक एक उत्तम ब्राह्मण ने यह धर्म्महीन बात कही—वाह महाराज रामचन्द्र, आपकी बुद्धि ऐसी निरर्थक न होनी चाहिए। ऐसी बुद्धि तो पामर मनुष्य की होती है। आप श्रेष्ठ बुद्धिवाले और तपोयुक्त हैं। भला देखिए तो, कौन किसका बन्धु है और कौन किसके किस पदार्थ को पा सकता या पाने के योग्य है? क्योंकि यह प्राणी अकेला उत्पन्न होता और अकेला ही नष्ट हो जाता है। इसलिए जो मनुष्य यह माने कि ये हमारे पिता और ये हमारी माताएँ हैं उसको उन्मत्त के तुल्य समझना चाहिए। वास्तव में कोई भी किसी का नहीं। देखिए, जैसे कोई मनुष्य अपने गाँव से दूसरे गाँव को जाता है और कहीं मार्ग में टिक रहता है फिर दूसरे दिन उस ठिकाने को छोड़कर चल देता है, यही हाल मनुष्यों के माता, पिता, घर और धन का है। इसलिए सज्जन लोग इनमें आसक्त नहीं होते। हे नरोत्तम, आप पिता के राज्य को छोड़ इस कुमार्ग पर आरूढ़ होने के योग्य नहीं। यह मार्ग दुःखदायक है, विषम है, और बहुत कण्टकों से भरा हुआ है। अब आप उस समृद्ध राजधानी अयोध्या में अपना अभिषेक करवाइए। वह नगरी, एक वेणी को धारण किये, पतिव्रता की नाईं आपकी बाट देख रही है। हे राजपुत्र, आप राजा के अति उत्तम भोगों का भोग करें और विहार करें जैसे इन्द्र अमरावती में विलास करते हैं। दशरथ आपके कौन हैं और आप दशरथ के कौन लगते हैं? वे दूसरे राजा और आप दूसरे नृपति। इसलिए जो मैं कहता हूँ सो कीजिए। सिर्फ बीज ही प्राणी के लिए पिता है। ऋतुमती माता के गर्भ में एकत्रित शुक्र-शोणित ही प्राणी के उपादान की सामग्री है। वे राजा तो वहाँ गये जहाँ उनको जाना था। प्राणियों की वही गति होती है। परन्तु आप वृथा पुरुषार्थ से हाथ धोते हैं। मैं उन्हीं पुरुषों के विषय में सोच कर रहा हूँ जो प्रत्यक्ष सिद्ध अर्थ को छोड़ अप्रत्यक्ष धर्म में तत्पर हो, इस लोक में दुःख पाते और अन्त में विनष्ट हो जाते हैं। देखिए, मनुष्य, मृतक-श्राद्ध में प्रवृत्त हो, अन्न का कैसा विनाश करते हैं क्योंकि भला मृतक क्या भोजन करेगा? यदि कोई कहे कि दूसरे का खाया हुआ पदार्थ किसी दूसरे के शरीर में पहुँच जाता है तो मैं कहता हूँ कि परदेश में जानेवाले पुरुष को मार्ग-भोजन (कलेवा) देने की कुछ आवश्यकता नहीं—उसके बान्धव लोग घर पर उसके नाम से श्राद्ध कर दें। हे रामचन्द्र, जिन ग्रन्थों में यज्ञ करो, दान दो, दीक्षा लो, तप करो और संन्यास ग्रहण करो इत्यादि का प्रतिपादन है वे बुद्धिमान् लोगों ने इसलिए बनाये हैं कि बिना परिश्रम किये धन मिले

और लोग वश में बने रहें। इस लोक से परे धर्म इत्यादि कुछ भी नहीं है। यह बुद्धि दृढ़ रखिए। जो प्रत्यक्ष है उस पर आरूढ़ हूजिए और परोक्ष को हटाइए। देखिए, भरत आपसे प्रार्थना कर ही रहे हैं, इसलिए आप सज्जनों की सर्वमान्य बुद्धि को अंगीकार करके राज्य ग्रहण कीजिए।

---

## १०९वाँ सर्ग

### रामचन्द्र का जाबालि के वचन का खण्डन करना और जाबालि का राम के वचन को स्वीकार करना

जाबालि का वचन सुनकर रामचन्द्रजी बुद्धि और वेदमार्ग के अनुसार युक्तिपूर्वक वचन बोले—हे ब्राह्मण, मेरे हित के लिए आपने जो बातें कहीं वे यद्यपि अनुचित हैं और न्याय-मार्ग से विरुद्ध हैं तो भी करने के योग्य और न्यायमार्गानुसारी जान पड़ती हैं। देखिए, जो पुरुष मर्यादारहित, पापाचार से युक्त और चरित्रहीन है और जो सत्शास्त्र के विरुद्ध आचार करता है उसको सज्जनों में मान नहीं मिलता। देखिए, चरित्र ही अकुलीन को कुलीन करता है, वही अवीर को वीर और अपवित्र को पवित्र विख्यात करा देता है। यदि आपका मत अङ्गीकार कर लिया जाय तो आर्य अनार्य बन बैठेगा, जो पवित्र नहीं है वह भी पवित्रता की डींग हाँकेगा, जो लक्षणहीन है वह अपने को लक्षणवान् समझेगा और दुःशील मनुष्य शीलवान् कहलावेगा। यदि मैं धर्म की ओट में रहकर संसार में अनाचार फैलानेवाले मार्ग पर चलूँ तो, विधि-विरुद्ध काम करके, अशुभ फल पाऊँगा। कार्य-अकार्य को समझनेवाले चेतनावान् पुरुष मुझे लोकदूषण और दुर्वृत्त समझेंगे। किसी तरह वे मेरा आदर न करेंगे। आपके उपदेश के अनुसार काम करूँ तो सत्यपालन-विषयक मेरी प्रतिज्ञा भंग हो जायगी। तब मैं किस प्रकार स्वर्ग को प्राप्त करूँगा? और जब मैं यथेच्छाचारी हो जाऊँगा तब ये सब लोग भी मनमानी करने लगेंगे क्योंकि राजा का जैसा आचरण होता है उसकी नकल प्रजा भी करती है। दया से संयुक्त सत्य ही सनातन राजधर्म है। इसलिए राज्य सत्यरूप ही है और सत्य ही में यह लोक स्थित है। देखिए, ऋषि और देवता भी सत्य को ही मानते हैं क्योंकि सत्यवादी पुरुष को अक्षय ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। मिथ्यावादी पुरुष से लोग वैसा ही दुःख पाते हैं जैसा कि साँप से। सत्ययुक्त धर्म संसार के सब व्यवहारों का मूल है। सत्य ही को ईश्वर कहना चाहिए। धर्म सदा सत्य ही का आश्रय करता है। सबका मूल सत्य ही को जानना चाहिए। सत्य से भिन्न परमपद नहीं है। दान, यज्ञ, तप और वेद सत्य ही में स्थित हैं इसलिए सत्य में तत्पर होना चाहिए। देखिए, एक ही मनुष्य लोक का, और एक ही कुल का पालन करता है; एक ही मनुष्य नरक भोगता और स्वर्ग का भागी होता है। इसलिए मैं सत्य में तत्पर होकर पिता की आज्ञा का पालन क्यों न करूँ? पिताजी की आज्ञा सत्यरूप है और सत्यता से उसकी प्रतिज्ञा की गई है। मैं पिता के सत्य के सेतु का भेदन न तो लोभ से करूँगा, न मोह से, न अज्ञान से और न क्रोध से करूँगा। शास्त्रों में अश्रद्धा करके भी मैं यह काम करूँगा। क्योंकि मैं सत्यप्रतिज्ञ हूँ। मैंने सुना है कि जो पुरुष असत्यप्रतिज्ञ, चञ्चल और अस्थिर-चित्त है उसका दिया हुआ हव्यकव्य देवता और पितर ग्रहण नहीं करते। इस सत्यपालनरूप

धर्म की सृष्टि जीवन को समृद्ध करने के लिए हुई है। इस धर्म को मैं सब धर्मों की अपेक्षा मुख्य धर्म देखता हूँ। इस वनवासरूप या सत्यपालनरूप धर्मभार को प्राचीन सत्पुरुषों ने उठाया है इसलिए मैं भी इसको आदर देता हूँ। क्षुद्र, नीचाशय, लोभी और पापी जिस क्षत्रिय-धर्म की सेवा किया करते हैं उसे मैं कभी अङ्गीकार न करूँगा—मैं तो न्याय्य क्षत्रिय-धर्म का पालन करूँगा। लोग तो अपनी समझ से केवल शरीर-द्वारा पाप करते हैं, परन्तु यह पाप—मानसिक, वाचिक और कायिक—तीन प्रकार का हो जाता है। जैसे पहले तो उसका संकल्प मन से उठता है, तदनन्तर उसके साधन के लिए वाणी से झूठ बोला जाता है, फिर शरीर से किया जाता है। देखो भूमि, कीर्त्ति, यश और लक्ष्मी, ये सब सत्य-व्रतधारी पुरुष को ही चाहते हैं और सत्य का ही अनुसरण करते हैं; इसलिए मनुष्य को सत्य का सेवन करना चाहिए। आपने अपने मन में निश्चय करके, युक्तिसङ्गत वचनों से, मुझे जो काम करने को कहा और जिसको उचित समझा वह सर्वथा अनुचित है। भला कहिए तो कि मैं पिता से वनवास की प्रतिज्ञा कर अब उस वचन को कैसे त्याग दूँ और भरत का किस प्रकार कहना करूँ? पिता के समीप मैंने जब प्रसन्न-मन से इस प्रतिज्ञा को स्थिर किया तब देवी कैकेयी प्रसन्न हुई। सो अब मैं वन में पवित्रता से रहता हूँ। मूल, फूल और फल खाता हूँ और इन्हीं पदार्थों से पितरों और देवों को तृप्त करता हूँ। मैं सन्तुष्ट होकर पिता के वचन का पालन (लोक-यात्रा का निर्वाह) करता हूँ और छल से दूर रहकर कर्तव्य और अकर्तव्य का विचार करता हुआ वेदकर्मों पर श्रद्धा रखता हूँ। क्योंकि इस कर्मभूमि को पाकर जो शुभ कर्म करना चाहिए उस कर्म के फलभागी अग्नि, वायु और चन्द्र हैं (अर्थात् शुभ कर्म करनेवालों को इन देवताओं के लोकों की प्राप्ति होती है)। सौ यज्ञ करने से इन्द्र, देवराज होकर, स्वर्ग को गये और महर्षि लोग उग्र तपस्या के प्रभाव से स्वर्गवास करते हैं।

जाबालि से इस प्रकार रामचन्द्र ने कहा। जिन नास्तिक-वाक्यों से उस ब्राह्मण ने परलोक का खण्डन किया था उनका स्मरण कर रामचन्द्र ने फिर भी उन वाक्यों की निन्दा करते हुए कहा—हे जाबालि! सत्य, धर्म, पराक्रम, दया, प्रिय बोलना और ब्राह्मण, देवता तथा अतिथियों का पूजन—इन कर्मों को सज्जन लोग स्वर्ग का मार्ग कहते हैं। इसलिए ब्राह्मण लोग, जिससे मुख्य फल का लाभ होता है, उसको यथार्थ समझकर सम्पूर्ण धर्म का यथोचित और सावधानी से आचरण करते हुए लोकप्राप्ति चाहते हैं। हे जाबालि, वेदमार्ग पर आपकी बुद्धि स्थिर नहीं, आप पक्के नास्तिक हैं, धर्मपथ से आप बिलकुल अलग हैं और इस प्रकार की बुद्धि से लोक में व्यवहार करते हैं। पिताजी ने आपको वृथा ग्रहण किया। उनका यह काम ठीक नहीं। बुद्धमतावलम्बी पुरुष को और उसके मत को माननेवाले मनुष्य को भी नास्तिक समझना चाहिए। राजा को उचित है कि प्रजा के हित के लिए ऐसे मनुष्य को वह दण्ड दे जो चोर को दिया जाता है और पण्डित ब्राह्मण को चाहिए कि ऐसे मनुष्य से भाषण भी न करे। देखो, अनेक श्रेष्ठ द्विजों ने इस लोक और परलोक के फल की कामना छोड़ दी थी; उन्होंने वेद-धर्म पर विश्वास करके अहिंसा, सत्य, यज्ञ इत्यादि अनेक शुभ कर्म किये। जो मुनि लोग धर्म में तत्पर सत्पुरुषों की सङ्गति करनेवाले, दान में तत्पर और हिंसारहित होते हैं वे तेजस्वी और पापहीन होकर लोक में प्रधान और पूज्य होते हैं।

रामचन्द्र को यह बातें कहते और अनेक दोष देते देखकर वह ब्राह्मण विनयपूर्वक पथ्य और सत्य आस्तिक वचन बोला—हे राघव! मैं नास्तिकों की बात नहीं कहता, और मैं नास्तिक भी नहीं। मैं यह भी नहीं कहता कि परलोक इत्यादि कुछ नहीं है। मैं तो समय को देखकर आस्तिक और नास्तिक दोनों प्रकार का हो जाता हूँ। हे रामचन्द्र! यह समय ऐसा ही था जिससे मैंने नास्तिक की बात कही। केवल आपके लौटाने के लिए और प्रसन्नता के लिए ही मैंने ऐसा किया था।

---

## ११०वाँ सर्ग

### वशिष्ठ का कुछ वंशावली वर्णन करना और राज्य-ग्रहण करने के लिए राम को समझाना

वशिष्ठ मुनि ने रामचन्द्रजी को क्रुद्ध जानकर कहा कि हे राघव, इस लोक की गति और अगति को जाबालि भी जानता है। तुमको लौटाने की इच्छा से ही उसने यह वचन कहा था। हे लोकनाथ, इस लोक की उत्पत्ति का हाल मुझसे सुनिए। पहले जल ही जल था। उसमें यह पृथ्वी बनाई गई। तदनन्तर देवता और स्वयंभू ब्रह्मा उत्पन्न हुए। फिर उन्होंने वराह होकर इस पृथ्वी का उद्धार किया और अपने महात्मा पुत्रों के साथ सम्पूर्ण जगत् को बनाया। इस प्रकार सनातन, नित्य और अक्षय ब्रह्मा आकाश से उत्पन्न हुए और उनसे मरीचि, मरीचि से कश्यप, कश्यप से सूर्य्य, और सूर्य्य से वैवस्वत मनु हुए। वे मनु पहले प्रजापति कहलाये। अपने पुत्र इक्ष्वाकु को पहले-पहल यह समृद्ध पृथ्वी मनु ने दी थी। हे रामचन्द्र, उसी इक्ष्वाकु को अयोध्या का पहला राजा जानो। अब इक्ष्वाकु का पुत्र कुक्षि, कुक्षि से विकुक्षि, विकुक्षि से बाण और बाण से अनरण्य हुआ। उस अनरण्य के राज में यथेष्ट वृष्टि होने से न तो दुर्भिक्ष हुआ और न चौरभय हुआ। अनरण्य से महाराज पृथु और पृथु से त्रिशंकु हुआ। यही त्रिशंकु, अपने सत्य से, सशरीर स्वर्ग को गया। त्रिशंकु से धुन्धुमार, उससे युवनाश्व, युवनाश्व से मान्धाता, मान्धाता से सुसन्धि, सुसन्धि से ध्रुवसन्धि और प्रसेनजित् नामक दो पुत्र हुए। ध्रुवसन्धि से भरत और भरत से असित हुआ। हैहय, तालजङ्घ और शशिबिन्द राजा लोग असित के शत्रु हुए। उस समय राजा असित युद्ध में इनको न जीत सका और अपना राज्य छोड़ तपस्या के लिए हिमवान् पर्वत पर चला गया। इस राजा के दो पत्नियाँ थीं। दोनों गर्भवती हुईं। उनमें पद्म-पत्र के सदृश आँखोंवाली एक रानी उत्तम पुत्र चाहती थी। उसने भार्गव च्यवन मुनि के पास जाकर प्रणाम किया; और दूसरी ने गर्भ का नाश करने के लिए सौत को विष दे दिया। च्यवन ऋषि उसी पर्वत पर तप करते थे। उनके पास जाकर कालिन्दी नाम की उस पहली रानी ने उनको प्रणाम किया। तब मुनि प्रसन्न हुए। पुत्र-जन्म के विषय में वे उससे बोले—हे देवि, तुम्हारे ऐसा पुत्र होगा जो महात्मा, लोक-विख्यात, धार्मिक, बड़ा बली, वंशकर्त्ता और शत्रु का नाश करनेवाला होगा। यह बात सुनकर उस राजपत्नी ने आदर से मुनि की प्रदक्षिणा की। अपने घर आने पर उस रानी के ऐसा पुत्र हुआ जो कमलनयन और कमलगर्भ सदृश कान्तियुक्त था। सौत ने उस रानी को विष दिया था और लड़का उस विष के साथ ही हुआ था। इसलिए

उस राजकुमार का नाम "सगर" हुआ। ('गर' विष को कहते हैं)। उसी सगर ने यज्ञ करने के समय समुद्र खुदवाया। असमञ्जस उसी का पुत्र था जो प्रजा को त्रास देता था। असमञ्जस का पाप-कर्म देखकर सगर ने उसे अपने नगर से निकाल दिया। उस असमञ्जस का पुत्र अंशुमान् हुआ। उसका दिलीप, दिलीप से भगीरथ, भगीरथ से ककुत्स्थ हुआ जिसके नाम से रघुवंशी लोग काकुत्स्थ कहलाते हैं। हे रामचन्द्र! ककुत्स्थ से रघु हुए जिनके नाम से आप लोग राघव कहे जाते हैं। रघु के एक पुत्र हुआ जो प्रवृद्ध पुरुषादक, कल्माषपाद और सौदास नामों से विख्यात हुआ। उससे शङ्खण हुआ जो अपने ही पिता के द्वारा सेना-सहित नष्ट हुआ। शङ्खण से सुदर्शन उससे अग्निवर्ण, उससे शीघ्रग, शीघ्रग से मरु, उससे पशुश्रुव, पशुश्रुव से अम्बरीष, अम्बरीष से नहुष, और उससे नाभाग हुआ। नाभाग के अज और सुव्रत दो पुत्र हुए। उनमें अज से महाराज दशरथ हुए जिनके ज्येष्ठ पुत्र तुम राम हो। हे नृप, तुम अपने राज्य को सँभालो और जगत् की ओर देखो। क्योंकि इक्ष्वाकुवंश में पहला पुत्र राजा होता है। प्रथम पुत्र के रहते छोटा राज्यासन नहीं पाता। इसलिए, तुम अपने रघुकुल के सनातन धर्म का लोप मत करो। अपने पिता की भाँति इस महारत्नवती और अनेक राष्ट्रवती पृथिवी का शासन करो।

---

## १११वाँ सर्ग

### वशिष्ठ का फिर रामचन्द्र को समझाना और भरत का हठ और रामचन्द्र का न मानना

वशिष्ठजी ने और भी कहा—हे राघव, पुरुष के तीन गुरु होते हैं, आचार्य्य, पिता और माता। इनमें पिता-माता तो जन्म देते हैं, इसलिए वे गुरु कहलाते ही हैं; परन्तु आचार्य्य बुद्धि देता है, इसलिए वह भी गुरु है। सो मैं तुम्हारे पिता का और तुम्हारा भी आचार्य्य हूँ। इसलिए तुम मेरी बात मानो। मेरी बात मान लेने से तुम्हें सज्जनों के मार्ग को उल्लङ्घन करने का दोष न लगेगा। देखो, ये तुम्हारे सभासद, कुटुम्बी और ये राजा लोग हैं। इनकी ओर धर्म-दृष्टि करो। ऐसा करने में सन्मार्ग का उल्लङ्घन न होगा। देखो, यह बेचारी वृद्धा और धर्मशीला तुम्हारी माता जो बात कहती है उसका उल्लङ्घन करना उचित नहीं। माता का वचन माननेवाला पुरुष सन्मार्गगामी कहलाता है। हे सत्यधर्म पराक्रमी, देखो यह भरत आपकी प्रार्थना कर रहा है। इसका परित्याग करना अनुचित है।

गुरु का कथन सुनकर रामचन्द्र बोले—हे गुरु महाराज, माता-पिता जो व्यवहार पुत्र के विषय में सदा करते हैं उसका प्रत्युपकार करना सहज नहीं। देखिए, सभी माता-पिता अपने पुत्र को यथाशक्ति भोजन देते, ठीक समय पर सुलाते और तैलादि से उबटन करते हैं, नित्य उससे प्रिय वचन बोलते और पुत्र की वृद्धि में तत्पर रहते हैं। हर तरह पुत्र को पालते हैं। सो राजा दशरथ मेरे जन्म-दाता पिता थे। उन्होंने मुझे जो आज्ञा दी है वह मिथ्या न होगी। राम का यह वाक्य सुन भरत उदास होकर सूत से बोले—हे सारथे, तुम शीघ्र यहाँ कुशों को बिछाओ। मैं आर्य के ऊपर धरना देकर बैठूँगा। जब तक ये मेरी बात पर प्रसन्न न होंगे तब तक मैं, धन इत्यादि से पृथक् किये गये एक ब्राह्मण की तरह, भोजन त्याग-कर और आँखें बन्द किये पड़ा रहूँगा। जब तक ये मेरे साथ न चलेंगे तब तक मैं यहीं, इसी कुटी के पास,

पड़ा रहूँगा। अब सुमन्त्र राम के मुख की ओर देखने लगा। तब, उदास हो, भरत आप ही कुश बिछाकर राम के सम्मुख धरना देकर बैठ गये। यह देख रामचन्द्र बोले—भैया भरत, मैं क्या अन्याय कर रहा हूँ जो तुम धरना देकर बैठते हो? यह काम तो उस ब्राह्मण का है, जो किसी प्रकार की धनादिक की हानि से, एक करवट से, अपने दुःखदाता का रोध करता है। जिनको राज्याभिषेक का अधिकार है उन क्षत्रियों को यह धरना देना उचित नहीं। हे नरव्याघ्र, तुम इस कठोर व्रत को छोड़ दो, उठो और शीघ्रता से अयोध्या को जाओ। तब, पुरवासी और राष्ट्रवासी लोगों की ओर देखकर भरत बोले—तुम लोग आर्य को कुछ नहीं कहते? भरत की बात सुनकर उन लोगों ने कहा—हे महात्मा, हम लोग जानते हैं कि आप बहुत ठीक कहते हैं परन्तु हम लोग इस बात पर हठ भी नहीं कर सकते; क्योंकि महाभाग रामचन्द्रजी भी पिता के वचन पर आरूढ़ हो रहे हैं। इसलिए हममें यह सामर्थ्य भी नहीं कि इनसे लौटाने के लिए जबर्दस्ती करें। उनकी बात सुनकर रामचन्द्रजी ने कहा—हे भरत, धर्म-दृष्टिवाले अपने इन सुहृदों के वचन सुनो। हे राघव, तुम्हारे सम्बन्ध में, और मेरे सम्बन्ध में जो बातें हैं उन पर अच्छी तरह विचार करो और उठो। हे महाबाहो, जल का स्पर्श करो और मुझे छुओ। अब भरत उठ बैठे और जल को स्पर्श करके बोले—हे सभासद, मन्त्री और पुरवासी लोगो, मेरी बात सुनो। न मैंने पिता से राज्य माँगा, न इसके लिए मैंने माता से कुछ कहा और न मैं रामचन्द्र के वनवास का हाल जानता हूँ। मैं तो यह कहता हूँ कि यदि वनवास करना और पिता का वचन मानना आवश्यक ही है तो मैं ही चौदह वर्ष तक वन में रहूँगा।

भरत की यह सच बात सुनकर रामचन्द्र ने अत्यन्त विस्मित हो, पुर-राष्ट्रवासी जनों की ओर देखकर कहा—देखो भाइयो, मेरे पिता ने अपने जीते जी जो बेचा हो या धरोहर रक्खा हो या मोल लिया हो उसका लोप न मुझे करना चाहिए और न भरत को। इसलिए, मैं इस वनवास के लिए भरत को अपना प्रतिनिधि बनाना नहीं चाहता। भरत को वन के कष्ट झेलने के लिए भेजना मेरी समझ में निन्दित काम है। उस समय जो कैकेयी ने माँगा वह ठीक ही है और मेरे पिता ने जो दिया वह भी अच्छा किया। मैं जानता हूँ कि भरत क्षमावान् और गुरुपूजक हैं। इस महात्मा सत्यसन्ध भरत में इस प्रकार का कल्याण ही देख पड़ता है। मैं यह बात भी कहता हूँ कि जब मैं वन से लौटूँगा तब धर्मशील भाई भरत के साथ पृथ्वी का राज्य ग्रहण करूँगा। महाराज दशरथ से कैकेयी ने वरदानों के लिए प्रार्थना की और मैंने पिता को वचन दे दिया। अब उनको मिथ्यावादिता से तुम भी छुड़ा दो।

---

## ११२वाँ सर्ग

### ऋषियों का भरत को हठ करने से रोकना, रामचन्द्र का समझाना और भरत का चरणपादुका ले बिदा होना

उस समय वहाँ जो ऋषि आये थे वे इन दोनों भाइयों का समागम देख अत्यन्त विस्मित हुए। कितने एक महर्षि अन्तर्द्धान थे। वे इन दोनों भाइयों की प्रशंसा करने लगे कि देखो ये दोनों भाई धर्मशील और धर्मपराक्रमी हैं। इनकी बातचीत और आलाप सुनकर हम लोग बहुत प्रसन्न हुए। हमारी यही इच्छा

होती है कि इन लोगों की बातचीत बार-बार सुना करें। जो ऋषि रावण का वध चाहते थे वे एकत्रित हुए। भरत के पास आकर उन्होंने कहा—हे कुलीन, महापण्डित, महाधर्मशील, महायशस्विन् भरत! जो तुम पिता को सुख चाहते हो तो रामचन्द्र का वचन मानो। रामचन्द्र के विषय में हम लोग यही चाहते हैं कि ये सदा पिता के ऋण से मुक्त रहें। देखो, कैकेयी के ऋण से मुक्त होकर महाराज दशरथ स्वर्ग को गये। यह कह कर गन्धर्व, महर्षि और राजर्षि अपने-अपने स्थानों को चले गये।

ऋषियों के उस वचन से हर्षित और प्रसन्न-चित्त होकर रामचन्द्र ने उनकी प्रशंसा की। उस समय भरत डर गये। वे हाथ जोड़कर रामचन्द्र से गद्‌गदवाणी से बोले—हे रामचन्द्र! कुलधर्मानुसारी इस धर्म को देख-कर मेरी माता की प्रार्थना को पूर्ण कीजिए। मैं अकेला इस बड़े राज्य की रक्षा करने का उत्साह नहीं कर सकता। अनुरागयुक्त इन पुरवासियों को मैं सदा प्रीति-युक्त भी नहीं रख सकता। उसी प्रकार ये ज्ञातिगण, योधा, मित्र और हमारे सुहृद भी आप ही की बाट देख रहे हैं जैसे कि किसान मेघ की बाट देखा करते हैं। हे महापण्डित, आप इस राज्य को स्वीकार कीजिए, क्योंकि लोक का परिपालन करने में आप ही समर्थ हैं। यह कहकर भरत राम के चरणों में गिर पड़े और "हे राघव, राघव" यह प्रिय वाणी कहकर बार-बार प्रार्थना करने लगे। तब रामचन्द्र ने भरत को गोद में उठा लिया और कहा—हे तात, जब तुमको ऐसी विनय-युक्त बुद्धि आप ही से प्राप्त हुई है तब तुम इस पृथ्वी की रक्षा अच्छी तरह कर सकते हो। अब सुहृद और बुद्धिमान् मन्त्रियों के साथ तुम बड़े-बड़े कार्य्यों के विषय में विचार करके राज्य की व्यवस्था करो। चाहे चन्द्रमा की शोभा चन्द्र को छोड़ दे, हिमालय अपने हिम का परित्याग कर दे और समुद्र चाहे अपनी मर्यादा छोड़ दे, परन्तु मैं पिता की प्रतिज्ञा को न छोड़ूँगा। हे तात! तुम्हारी माता ने यह काम चाहे काम से किया है अथवा लोभ से, पर तुम उसको अपने मन में न रखना। माता के तुल्य ही उससे व्यवहार करना।

रामचन्द्र की यह बात सुनकर भरत ने कहा—बहुत अच्छा। हे आर्य, सुवर्ण-भूषित इन पादुकाओं पर आप अपने चरण रखिए। क्योंकि यही पादुकाएँ लोक का योगक्षेम करेंगी। तब रामचन्द्र ने पादुकाएँ पहन लीं और फिर पैर से निकालकर महात्मा भरत को दे दीं। अब भरत ने पादुकाओं को प्रणाम कर राम से कहा—हे वीर रघुनन्दन, मैं चौदह वर्ष तक जटा-चीर धारण कर फल-मूलों से अपना निर्वाह करूँगा और आपके आगमन की आकांक्षा करता हुआ नगर के बाहर रहकर आपकी इन चरण-पादुकाओं के ऊपर राज्य-भार स्थापन कर दूँगा। जिस दिन चौदहवाँ वर्ष पूर्ण हो जायगा उस दिन यदि आपको मैं न देखूँगा तो अग्नि में प्रवेश करूँगा। भरत की यह बात रामचन्द्र ने मान ली और 'तथास्तु' कहकर प्रतिज्ञा की। इसके अनन्तर रामचन्द्र ने भरत और शत्रुघ्न को गले से लगाकर कहा कि देखो, माता कैकेयी की रक्षा करना और इस पर क्रोध न करना। यदि इसके साथ दूसरा व्यवहार करो तो तुमको हमारी और सीता की शपथ है। उस समय रामचन्द्र की आँखें डबडबा आईं। उन्होंने भाई को बिदा किया।

भरत ने उन अलङ्कृत और अति उज्ज्वल पादु-काओं की और राम की प्रदक्षिणा की। फिर पादुकाओं को बड़े हाथी के मस्तक पर रख दिया।

रामचन्द्रजी इस प्रकार यथाक्रम सत्कार कर, गुरु लोगों को, मन्त्रियों को और दोनों भाइयों को विदा करके हिमाचल की नाईं अपने धर्म पर अचल हुए। माताओं का कण्ठ दुःख के आँसुओं से रुक गया था। विदा होने के लिए वे रामचन्द्र से न पूछ सकीं। तब रामचन्द्र, माताओं को प्रणाम कर, अपनी कुटी में जा विराजे।

---

## ११३वाँ सर्ग

### भरत का यात्रा करके भरद्वाज से भेंट करना और फिर अयोध्या में प्रवेश करना

भरत उन पादुकाओं को हाथी पर रखकर हर्ष से शत्रुघ्न के साथ रथ पर चढ़े। वशिष्ठ, वामदेव, जाबालि और विचार-चतुर सब मन्त्री लोग आगे-आगे चले। वे लोग मन्दाकिनी नदी और चित्रकूट पर्वत की प्रदक्षिणा करते हुए पूर्व की ओर चले। अब भरत अपनी सेना को लिये और नाना प्रकार की सहस्रों धातुओं को देखते चित्रकूट के उत्तर की ओर चले जाते थे। भरत ने जाते-जाते चित्रकूट के पास ही एक आश्रम देखा। वहाँ ऋषियों के साथ भरद्वाज मुनि निवास करते थे। उस आश्रम में जाकर और मुनि को देखकर भरत रथ से उतर पड़े। उन्होंने मुनि के चरणों को ग्रहण किया। तब मुनि ने प्रसन्न होकर कहा कि हे तात! कहो, तुमने राम से भेंट कर अपना कार्य पूरा किया? भरद्वाजजी से भरत ने कहा कि भगवन्, मैंने और मेरे गुरु ने भी जब रामचन्द्र से लौटने की प्रार्थना की तब उन्होंने परम प्रसन्न होकर वशिष्ठ मुनि से कहा कि मैं पिता की उसी प्रतिज्ञा का पालन करूँगा और चौदह वर्ष तक वन में रहूँगा। तब वशिष्ठ ने कहा कि अच्छा, तुम इन सुवर्णभूषित पादुकाओं को दे दो और अयोध्या के योगक्षेम में तत्पर रहो। हे भरद्वाज मुनि, वशिष्ठजी की बात मानकर रामचन्द्रजी ने हमको अपनी पादुकाएँ दे दीं और लौटने की आज्ञा दी। अब मैं ये पादुकाएं लेकर अयोध्या को जाता हूँ। भरत का यह वचन सुनकर भरद्वाज मुनि बोले—हे भरत, जैसे बहा हुआ जल नीचे जाकर इकट्ठा स्थिर हो जाता है वैसी तुममें श्रेष्ठता स्थिर है सो यह कुछ आश्चर्य की बात नहीं। क्योंकि तुम शील और चरित्र जाननेवालों में श्रेष्ठ और पुरुषोत्तम हो। वे महाबाहु, तुम्हारे पिता दशरथ अपने ऋण से मुक्त हुए, जिनके कि तुम्हारे ऐसे धर्मात्मा और धर्म-वत्सल पुत्र हैं। मुनि की ये बातें सुन भरत ने हाथ जोड़े, उनके चरण छुए और बार-बार प्रदक्षिणा की। उनसे बिदा होकर वे मन्त्रियों के साथ अयोध्या को चल दिये।

भरत की सेना छकड़े, घोड़े और हाथियों के साथ आगे चली। इसके अनन्तर वे यमुना-तट पर पहुँचे और यमुना पार होकर गङ्गा नदी के तीर पर पहुँचे। उसके भी पार होकर शृङ्गवेरपुर आये। वहाँ से चलकर अयोध्या को देखा। वह नगरी पिता और भ्राता से हीन थी। उसको देख, अत्यन्त दुःख से सन्तप्त होकर, भरत ने कहा—हे सारथे, देखो यह अयोध्या कैसी ध्वस्त हो रही है। इसकी कुछ भी शोभा नहीं देख पड़ती। यह आकार से, आनन्द से और लोगों के आनन्द-शब्दों से हीन होकर दीन सी देख पड़ती है।

---

# ११४वाँ सर्ग

## भरत का अयोध्या की दुर्दशा देखकर पीड़ित होना

भरत उस मनोहर रथ पर चढ़े हुए शीघ्र अयोध्या को चले। अब अयोध्या बिल्ली और उल्लू नामक पक्षियों की बस्ती हो रही थी। नगरी में घरों के किवाड़ बन्द देख पड़ते थे और अन्धकार छा रहा था जैसा कि कृष्णपक्ष की रात्रि में अन्धकार ही अन्धकार देख पड़ता है। वह नगरी ऐसी पीड़ित देख पड़ती थी जैसे राहु से चन्द्र का ग्रास होने पर रोहिणी की नष्ट शोभा देख पड़ती है। अयोध्या ऐसी कृश देख पड़ती थी जैसी पहाड़ी नदी गर्मियों में हो जाती है। उसमें पानी थोड़ा रह जाता है और वह भी गरम हो जाता है; इस कारण मछलियाँ और हिंस्र जन्तु विलीन हो जाते हैं। पशु-पक्षी भी उस नदी के पास नहीं रहते। जैसे सोने की भाँति चमचमाती हुई अग्नि की शिखा गीली चीज के डालने से नष्ट हो जाती है इसी प्रकार वह नगरी प्रभाहीन देख पड़ती थी। जिसके कवच नष्ट हो गये हैं और जिसके हाथी, घोड़े, रथ और ध्वज भग्न हो गये हैं, तथा जिसके बड़े-बड़े वीर मरे पड़े हैं, ऐसी सेना के तुल्य अयोध्या हो रही है। समुद्र की लहर उठकर महानाद करती हुई फेन समेत फिर वायु से जिस प्रकार शान्त और शब्द-रहित हो जाती है वैसी ही शान्ति अयोध्या में है। अयोध्या उस वेदी की भाँति देख पड़ती थी जिसे, यज्ञ हो जाने पर, छोड़कर ऋत्विक् चले गये हैं; स्रुक्, स्रुव आदि यज्ञ-पात्र स्थानान्तरित हो गये हैं, और पहले की तरह जहाँ वेद-पाठ का शब्द भी नहीं होता। जैसे श्रेष्ठ वृषभ से परित्यक्त आर्त्त गाय देख पड़ती है और वह दुःख के मारे नवीन तृणों को नहीं चरती वैसी दीन वह अयोध्या देख पड़ती थी। प्रभायुक्त और सुन्दर मणि न होने से मोतियों की माला जैसी शोभा-रहित हो जाती है वैसी शोभाहीन उस समय अयोध्या हो रही थी। पुण्यक्षीण हो जाने से नक्षत्र जिस तरह अपने स्थान से हटकर आकाश से च्युत हो जाता और पृथ्वी पर प्रभाहीन देख पड़ता है वैसी प्रभाहीन अयोध्या हो गई थी। वसन्त के अन्त में खूब खिली हुई वन-लता पर भौंरे गुञ्जार किया करते हैं, वही लता दावाग्नि से जैसी झुलसी हुई देख पड़ती है वही दशा अयोध्या की थी। उस अयोध्या में न कहीं बनिये और न कहीं बेचने के पदार्थ देख पड़ते थे। चारों ओर बाजार बन्द हो रहे थे, जैसे वर्षाकाल में मेघों के कारण आकाश में न चन्द्र देख पड़ता है और न कहीं तारे देख पड़ते हैं। अयोध्या उस कलवारी की भाँति देख पड़ती थी जिसमें मद्य के पात्र, मद्य से खाली, टूटे-फूटे इधर-उधर लुढ़कते हों और जिसकी पानभूमि संस्कार और सफाई से हीन हो; मानो मद्य पीनेवाले लोग ही नष्ट हो गये हों। अयोध्या उस पियाऊ की तरह देख पड़ती थी जिसमें स्थान स्थान पर गड्ढे हों, जिसमें ऊँची-नीची भूमि टूटे-फूटे पात्रों से भरी देख पड़ती हो और जिसमें एक बूँद भी जल न हो। विपुल, विस्तृत और पाशयुक्त प्रत्यञ्चा जिस प्रकार बलवानों के बाणों से छिन्न होकर धनुष से नीचे गिर पड़ती है वैसी ही अयोध्या देख पड़ती थी। युद्ध-चतुर सवार जिस घोड़ी को बलपूर्वक दौड़ा रहा हो वह शत्रुसैन्य-द्वारा मारकर जैसे गिरा दी जाती है वैसी ही वह पुरी निश्चेष्ट देख पड़ती थी।

इस प्रकार की शोभारहित और कान्ति से हीन पुरी को देख रथ पर सवार भरतजी सारथि से बोले—

देखो, इस नगरी में जैसे पहले गीत और वाद्य का शब्द सुन पड़ता था वैसा आज नहीं सुन पड़ता। जैसे पहले पुष्प, चन्दन, अगर और वारुणी की गन्ध चारों ओर से आती थी वैसी आज नहीं आती। हे सुमन्त्र, जैसा पहले समय में सवारी, घोड़े प्रमत्त हाथी और बड़े रथ का शब्द कानों को भर देता था वैसा इस समय, रामचन्द्र के निकल जाने से, नहीं सुन पड़ता। हा! रामचन्द्र के जाने से यहाँ के तरुण पुरुष दुःख से सन्तप्त हो चन्दन, अगर और नई-नई मालाओं का उपभोग नहीं करते। हा! राम के शोक से पीड़ित इस पुर के लोग चित्र-विचित्र मालाओं को धारण कर न तो बाहर जाते हैं और न इस नगर में कोई उत्सव होता देख पड़ता है मानो इस नगरी की शोभा मेरे भ्राता के साथ चली गई। हा! यह अयोध्या शरत्काल के शुक्लपक्ष की उस रात्रि की नाईं प्रकाशहीन हो गई जब कि वर्षा होती हो। कब मेरे भ्राता फिर महोत्सव की नाईं यहाँ आकर हर्ष उत्पन्न करेंगे, जैसे ग्रीष्म ऋतु में मेघ आनन्द देते हैं। उत्साहपूर्वक जाने-आनेवाले सुन्दर वेषधारी तरुण पुरुषों से राजमार्गों की पहले जैसी शोभा होती थी वैसी अब नहीं देख पड़ती।

इस प्रकार शोक-सन्ताप करते हुए भरत ने अपने पिता के निवास-स्थान में प्रवेश किया। वह स्थान उस राजेन्द्र के बिना सिंहरहित गुफा की नाईं देख पड़ता था। उस समय वह अन्तःपुर प्रभाहीन हो रहा था। उसको देख भरत ने दुःखित होकर आँसू गिराये जैसे देवासुर-संग्राम में सूर्यरहित दिन को देख देवता दुखी हुए थे।

---

# ११५वाँ सर्ग

## भरत का नन्दिग्राम में जाना और राज्य का प्रबन्ध करना

अब शोक से पीड़ित भरतजी माताओं को अयोध्या में पहुँचाकर वशिष्ठ इत्यादि गुरु लोगों से बोले कि मैं नन्दिग्राम को जाऊँगा, इसके लिए मैं आपसे पूछता हूँ। वहाँ रामचन्द्र के वियोग का दुःख सहूँगा। देखिए, राजा तो स्वर्ग को गये और राम वन में जा बैठे। इसलिए मैं राज्य के लिए राम की बाट देखूँगा, क्योंकि वही राजा हैं। भरत की यह बात सुनकर मन्त्री लोग और वशिष्ठ मुनि बोले—हे भरत, भ्राता के प्रेम से आपने जो अत्यन्त सुन्दर वचन कहा वह सराहने योग्य है। यह वचन आपके ही कहने के योग्य है। आप बन्धु से प्रेम रखते हैं, आप भाई के सौहार्द पर वर्तमान और श्रेष्ठ मार्ग पर आरूढ़ हैं। भला आपके लिए कौन पुरुष सम्मति न देगा? मन्त्रियों की अनुमति पाकर भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई माताओं से पूछकर शीघ्र रथ पर चढ़े और मन्त्रियों तथा पुरोहितों को साथ ले, नन्दिग्राम को चले। उस समय आगे-आगे वशिष्ठ इत्यादि गुरु और ब्राह्मण लोग चले। सबने पूर्व की ओर यात्रा की और भरत के बिना ही कहे—हाथी, घोड़े और रथों से पूर्ण वह—सेना और सब पुरवासी लोग साथ हो लिये।

उन पादुकाओं को मस्तक पर रक्खे हुए भरतजी शीघ्र नन्दिग्राम में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर वे शीघ्र रथ से उतरे। वे गुरु लोगों से बोले कि देखिए, भ्राता ने मुझे यह राज्य-रूप धरोहर दी है। इस राज्य की योग-

क्षेम करनेवाली ये पादुकाएँ हैं। फिर भरत ने उन पादुकाओं को मस्तक पर रक्खा और दुःखित होकर प्रधान गणों से कहा कि शीघ्र छत्र को धारण करो। ये मेरे आर्य के चरण हैं। इन पादुकाओं से मेरे गुरु रामचन्द्रजी का धर्मव्यवहार राज्य में स्थित हुआ। रामचन्द्रजी ने प्रेम से जो यह धरोहर मुझे दी है उसका पालन मैं तब तक करूँगा जब तक वे आ न जायँ। जब रामचन्द्रजी आवेंगे, तब इन्हें उनके चरणों में पहनाकर पादुकासहित चरणों को देखूँगा। राम से मिलकर और यह राज्यभार उन्हें सौंपकर मैं उनका चाकर नूँगा। रामचन्द्रजी को धरोहररूप ये पादुकाएँ देकर और यह राज्य तथा अयोध्या देकर मैं पापरहित हो जाऊँगा।

वल्कल और जटा धारण किये तथा मुनि का वेष बनाये भरत उसी नन्दिग्राम में सेना-सहित रहने लगे। भरत ने अपने हाथ से चमर और छत्र धारण किया। सम्पूर्ण राज्य का शासन-वृत्त उन पादुकाओं को निवेदन करते हुए वे सब काम करने लगे। उन्होंने राम की पादुकाओं का अभिषेक कर सब राजकाज उन्हीं के द्वारा आरम्भ कर दिया।

अब जो कुछ काम आ पड़ता था अथवा जो कुछ महामूल्य भेंट आ जाती थी वह भरत पहले उन पादुकाओं को निवेदन करते, पीछे यथोचित विधान करते थे।

---

## ११६वाँ सर्ग

### चित्रकूटवासी ऋषियों का अपना आश्रम छोड़ अन्यत्र जा बसना

अब इधर चित्रकूट में, भरत के चले जाने पर, रामचन्द्र ने वहाँ के तपस्वियों का उद्वेग और दूसरे स्थान में जाने के लिए उनकी उत्कण्ठा देखी। जो तपस्वी लोग चित्रकूट के समीप तापसाश्रम में, राम के सहारे, रहते थे उन्हें भी स्थान छोड़ने के लिए उत्कण्ठित देखा। वे सब नेत्रों और भ्रुकुटियों के द्वारा, राम की ओर दिखा-दिखाकर और शङ्कायुक्त हो, परस्पर बातचीत करते और धीरे-धीरे कुछ विचार करते थे।

उनकी उत्कण्ठा देखकर रामचन्द्र को अपने विषय में शङ्का हुई। उन्होंने हाथ जोड़कर आश्रम के अध्यक्ष ऋषि से कहा—भगवन्, क्या मुझमें राजा का आचरण नहीं है? किसी प्रकार का कुछ विकार देख पड़ता है जिससे तपस्वी लोग विकार को प्राप्त हो रहे हैं? अथवा मेरे छोटे भाई को भूल से कुछ अनुचित आचरण करते ऋषि लोगों ने देखा है? अथवा मेरी शुश्रूषा में तत्पर सीता ने आप लोगों की सेवा करने में तो कुछ अनुचित व्यवहार नहीं किया? एक वृद्ध महर्षि तपस्या से जीर्ण हो गये थे। उन्होंने काँपते-काँपते रामचन्द्र से उल्लिखित बात सुनी। तब जीवों पर दया रखनेवाले रामचन्द्रजी से उन्होंने कहा—हे तात, शुद्ध अन्तःकरणवाली और कल्याण में तत्पर सीता का बर्ताव क्यों विरुद्ध होगा और वह भी तपस्वियों के विषय में! हाँ, तुम्हारे कारण राक्षसों के द्वारा यह बात तपस्वियों में हो रही है। उसी से ये सब उद्विग्न होकर परस्पर विचार कर रहे हैं। हे राघव, यहाँ पर कोई रावण का छोटा भाई खर नामक राक्षस, जनस्थान के रहनेवाले, सम्पूर्ण तापसों को पीड़ा देता है। वह दुष्ट अपने को जयी समझता है। वह क्रूर, पुरुष-भक्षक, घमण्डी और महापापी है। वह आपको भी पीड़ा देना चाहता है। हे तात, जब से आप इस आश्रम में आकर रहे हैं तब से राक्षस लोग तापसों को दुःख दे रहे हैं। वे नाना

भरत का रामचन्द्रजी की चरण-पादुकाओं को निवेदन कर यथोचित विधान करना। [पृष्ठ २४८

प्रकार के डरावने, क्रूर, भयानक, टेढ़े-मेढ़े, दुःखदायी, पापजनक और अपवित्र रूपों से तापसों को डराते हैं। ऋषियों के आश्रमों में अशुद्ध चीजें फेकते हैं। अनेकों ऋषियों को वे मार डालते हैं और दुष्ट बुद्धि से उन आश्रमों में चुपचाप छिपकर ऋषियों का नाश करते फिरते हैं। होम के समय स्रुवों और यज्ञपात्रों को फेक देते हैं। अग्नियों को पानी डालकर बुझा देते हैं और कलशों को फोड़ डालते हैं। हे रामचन्द्र, उन दुष्टात्माओं ने आश्रमों में उत्पात मचा रक्खा है। इसको त्यागने के लिए और दूसरे आश्रम में जाने के लिए ऋषि लोग मुझे प्रेरणा कर रहे हैं; नहीं तो वे दुष्ट हम लोगों को यहीं मार डालेंगे। हे रघुनन्दन! हम लोग अन्य नामक महर्षि के आश्रम में जा बसेंगे। उस आश्रम में बहुत मूल फल हैं और वह अपूर्व है। यहाँ से वह आश्रम पास ही है। हे तात, यह खर आपके साथ भी दुष्टता करेगा। इसलिए जो आपकी इच्छा हो तो हमारे साथ आप भी चले चलिए। हे राघव, आपके साथ स्त्री है, इसलिए आपका ऐसे स्थान में रहना ठीक नहीं।

ऋषि की यह बात सुनकर और जाने के लिए उन्हें उद्यत देखकर रामचन्द्र कुछ भी उत्तर न दे सके। तब वे वृद्ध ऋषि राम से विदा हुए। रामचन्द्र को उन्होंने धैर्य बँधाया। सब ऋषियों को साथ ले वे दूसरे आश्रम को पधारे। उस समय रामचन्द्र थोड़ी दूर तक ऋषियों को पहुँचाकर और प्रणाम कर वहाँ से अपने आश्रम में लौट आये। ऋषियों ने प्रसन्नता से इन्हें उपदेश दिया। उस ऋषिहीन आश्रम को रामचन्द्र क्षण भर भी अकेला नहीं छोड़ते थे। रामचन्द्र का ऋषि के तुल्य आचरण देख कई एक ऋषि उस झुण्ड के साथ नहीं गये थे। वे सब रामचन्द्र के सहारे वहीं रहने लगे।

—

फा० ३२

## ११७वाँ सर्ग

### राम का अत्रि के आश्रम में जाना और अनसूया का सीता को धर्मोपदेश करना

अब ऋषियों के चले जाने पर रामचन्द्र ने अनेक बातों का विचार कर वहाँ का रहना उचित न समझा। उन्होंने सोचा कि यहाँ पर मैंने भरत, माता और पुरवासियों को देखा है इसलिए हर समय मेरी चित्तवृत्ति उन्हीं की ओर लगी रहती है। इस स्थान में भरत की सेना टिकी थी। घोड़ों और हाथियों की लीद से यहाँ की भूमि अत्यन्त अशुद्ध हो गई है। यह सोच-विचारकर सीता और लक्ष्मण को साथ ले रघुनन्दन वहाँ से चल निकले। वहाँ से प्रस्थान कर, अत्रि मुनि के आश्रम में आकर, राम ने उनको प्रणाम किया। मुनि ने भी उनको पुत्रभाव से देखा और उन तीनों का विधि-पूर्वक अतिथि-सत्कार किया। इसके अनन्तर वहाँ उन मुनि की पत्नी अनसूयाजी आईं। वे वृद्धा थीं। सबने उनका सत्कार किया। तदनन्तर ऋषि ने उस महाभागा धर्मचारिणी तपस्विनी से कहा कि देखो, तुम्हारे आश्रम में वैदेही आई हैं, इनका सत्कार करो। फिर मुनि ने रामचन्द्र से कहा—हे राघव, इस धर्मचारिणी तापसी ने बड़ी उग्र तपस्या के नियमों के बल से, दस वर्ष की अनावृष्टि में, ऋषियों के भोजन के लिए फल-मूल उत्पन्न किये; स्नान के लिए गङ्गा नदी को यहाँ बहाया। इसने हजार वर्ष तक बड़ी तपस्या की और इसी के व्रतों से ऋषियों के तप के विघ्न नष्ट हुए। हे रामचन्द्र, किसी समय माण्डव्य नामक ऋषि ने अनसूया की सखी को यह शाप दिया कि तू प्रातःकाल विधवा हो जायगी। तब इसने दस दिन तक एक ही रात रक्खी। प्रातःकाल

ही न होने दिया। वह शाप दस दिन के भीतर ही अपना प्रभाव दिखा सकता था। दस दिन की एक रात हो जाने पर शाप विफल हो गया। इसने अपनी सखी का विधवापन छुड़ा दिया। हे रामचन्द्र, यह वही अनसूया है। इसको अपनी माता के तुल्य मानो। सब प्राणियों के लिए आदरणीय इस वृद्धा और क्रोधरहित तपस्विनी के पास सीता को जाना चाहिए।

ऋषि का वचन सुन रामचन्द्र सीता की ओर देखकर बोले—हे राजपुत्री, तुमने मुनि का वचन सुना? अब तुम अपने कल्याण के लिए इस तपस्विनी के पास शीघ्र जाओ। यह अपने कर्मों से लोक में अनसूया नाम से विख्यात है। राम का वचन सुन सीता उसके पास गई। अनसूया के शरीर में झुर्रियाँ पड़ी हुई थीं। बुढ़ापे से उसके केश सफेद हो गये थे और वह वायु-प्रेरित कदली की नाईं सदा काँपती सी थी। उस पतिव्रता ऋषिपत्नी को सीता ने जाकर प्रणाम किया और अपना नाम बताया। फिर हाथ जोड़कर आनन्दपूर्वक कुशल-प्रश्न किया। तब उस वृद्धा तपस्विनी ने सीता को आशीर्वाद देकर कहा—हे सीते, बड़े आनन्द की बात है कि तुम धर्म की ओर दृष्टि रखती हो। हे भामिनि, तुम अपने ज्ञाति-जन, मान और ऋद्धि को छोड़ वनवासी राम की अनुगामिनी हुई हो। हे पतिव्रते, जिन स्त्रियों को अपना पति प्यारा है—चाहे वह नगरवासी हो या वनवासी, सुन्दर हो चाहे कुरूप—उन पतिव्रताओं के लिए उत्तमोत्तम लोक प्राप्त है। हे सीते, श्रेष्ठ स्वभाववाली स्त्रियों का पति ही परम देवता है, चाहे वह दुष्ट स्वभावयुक्त, कामी अथवा धनहीन ही क्यों न हो। हे वैदेहि, मैंने बहुत विचार करके देखा, परन्तु स्त्रियों के लिए इस लोक में या परलोक में पति को छोड़ दूसरा योग्य इष्टबान्धव न पाया। हे सीते, अक्षय तपोबल दोनों लोकों में इष्टबन्धु की नाईं जैसा फल देता है वैसा दोनों लोकों में, फल देने की योग्यता पति ही को है। हे वैदेहि, जो स्त्रियाँ पतिव्रता नहीं हैं वे पति के गुणों और दोषों को अथवा गुणों में दोषों को देखा करती हैं; और काम के वश हो पति की स्वामिनी बन इधर-उधर यथेष्ट घूमती और यथेष्ट आचरण किया करती हैं। हे मैथिलि, जो स्त्रियाँ अकर्त्तव्य कर्मों के अधीन हो रही हैं उनका अपयश और धर्म-नाश होता है। तुम्हारी तरह जिन गुणवती स्त्रियों ने लोक के अच्छे और नीच कर्मों को शास्त्र द्वारा देखा है वे पुण्यकर्त्ता पुरुषों की नाईं स्वर्गवासिनी होती हैं। हे सीते, तू इसी प्रकार से पति के चित्तानुसार चलती, पति ही को प्रधान समझती हुई और यथोचित अपने चारित्र्य का सेवन करती हुई पति की सहधर्मचारिणी हो। इससे तू यश और धर्म को प्राप्त होगी।

---

## ११८वाँ सर्ग

### सीता का अपने स्वयंवर का वृत्तान्त कहना और अनसूया का प्रसन्न हो सीता को दिव्य शृङ्गार आदि देना

ऋषिपत्नी के ये वचन सुनकर और उनका अनुमोदन करके सीता ने कहा—हे आर्ये, आपका इस प्रकार से उत्तम उपदेश देना कुछ आश्चर्य की बात नहीं। परन्तु यह मैं भी जानती हूँ कि नारी का पति ही गुरु है। पति यद्यपि आर्यधर्म से हीन और दरिद्र हो तथापि मेरी ऐसी स्त्रियों को उस पति के साथ अद्वैत भाव से अर्थात् अत्यन्त प्रीतिपूर्वक बरतना चाहिए। जो पति गुणों के कारण सराहने के योग्य हो, दयावान्

और जितेन्द्रिय हो, जो स्थिर-अनुरागवाला और धर्मात्मा हो तथा जो ऐसी प्रीति रखता हो जैसी कि माता-पिता रखते हैं तो उसकी तो बात ही क्या। देखिए, रामचन्द्र कौशल्या पर जैसी प्रीति रखते हैं वैसी ही और-और राजपत्नियों के साथ भी रखते हैं। कहाँ तक कहा जाय, राजा दशरथ ने जिनकी ओर एक बार भी देखा है उन स्त्रियों का भी रामचन्द्र मान करते और उन्हें मातृवत् मानते हैं। हे आर्य्ये, इस निर्जन वन में आते समय मेरी सास ने मुझे यही उपदेश दिया था। वह मेरे हृदय में स्थित है। पाणिग्रहण के समय, अग्नि के समीप, मेरी माता ने जो मुझे सिखाया था उसे भी मैंने धारण कर लिया है। हे धर्मचारिणी, मेरे बन्धुजनों ने इस विषय में जो-जो वाक्य कहे थे कि स्त्री के लिए पति की सेवा के सिवा दूसरी तपस्या नहीं है, सो उनको भी मैं भूली नहीं। हे माता, देखिए पति की सेवा करने से सावित्री स्वर्ग में पूजित होकर रहती है, उसी प्रकार आप भी पति की सेवा से स्वर्ग पावेंगी। देखिए, स्त्रियों में श्रेष्ठ और स्वर्ग की देवता जो रोहिणी है वह चन्द्र के बिना मुहूर्त्त भर भी नहीं देख पड़ती। इसी प्रकार जो उत्तम स्त्रियाँ पति में दृढ़ व्रत रखती हैं वे अपने पवित्र कर्म से स्वर्ग में पहुँच जाती हैं।

सीता के ये वचन सुनकर अनसूया हर्षित हुई। वे मैथिली का मस्तक सूँघकर और उसको हर्षयुक्त करती हुई बोलीं—हे सीते, अनेक नियमों से प्राप्त तपस्या का मुझे बड़ा बल है। उस बल से मैं कहती हूँ कि तू वर माँग। तुमने जो ठीक-ठीक और योग्य वचन कहा उससे मैं बहुत प्रसन्न हुई। अब बताओ, मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूँ। अनसूया का वचन सुन सीता ने विस्मित होकर और मुसकुराकर कहा कि हे आर्ये, आपके अनुग्रह से मुझे सब कुछ प्राप्त हुआ। सीता का यह उत्तर सुन वह धर्मज्ञ ऋषिपत्नी और भी प्रसन्न होकर बोली—हे सीते, मैं तेरे हर्ष को सफल करूँगी। मैं जो यह उत्तम दिव्य माला, वस्त्र, आभरण, अङ्गराग और महामूल्य अनुलेपन देती हूँ, ये तुम्हारे अङ्गों को शोभित करें। हे वैदेहि, ये पदार्थ ऐसे हैं कि न तो कभी कुम्हलाते, न मैले होते, न घटते-बढ़ते और न नष्ट होते हैं। ये तुम्हारे ही योग्य हैं। हे जनकपुत्रि, इस दिव्य अङ्गराग को अपने अङ्ग में लेपन करके तुम अपने पति को ऐसा शोभित करोगी जैसे भगवान् विष्णु को लक्ष्मी सुशोभित करती हैं। श्रीजानकी ने ऋषिपत्नी के दिये हुए उस प्रीतिदान को ग्रहण किया। वे उस तपस्विनी के पास हाथ जोड़े सेवा करती बैठी रहीं। इसके अनन्तर अनसूया ने पूछा कि हे सीते, यशस्वी रामचन्द्र ने तुमको स्वयंवर में जिस तरह पाया वह कथा तो मैं संक्षेप से सुन चुकी हूँ परन्तु तुम इस कथा को विस्तार-पूर्वक मुझे सुनाओ कि वहाँ किस तरह क्या हुआ। सीता बोलीं कि सुनिए माताजी, मैं कहती हूँ :—

मिथिला के अधिपति, वीर, धर्मज्ञ, महाराज जनक क्षत्रियोचित कर्मों में सदा तत्पर रहते हैं। वे न्यायपूर्वक पृथिवी का शासन करते हैं। एक बार वे राजा आप ही अपने हाथ से, हल लेकर, खेत जोत रहे थे कि मैं पृथ्वी को भेदकर निकल पड़ी। उस समय मेरे शरीर में धूलि लिपटी हुई थी। महाराज जनक मन्त्रपाठपूर्वक मुट्ठी से बीज बोने में तत्पर थे। वे मुझे देखकर विस्मित हुए। वे मुझे गोद में लेकर बोले कि यह मेरी पुत्री है। वे सन्ततिहीन थे, इसलिए वे मेरे ऊपर बड़ा स्नेह करने लगे। उस समय आकाश से मनुष्य की वाणी के तुल्य ऐसा शब्द हुआ कि "हे नरपते, तुमने जो यह कहा कि मेरी यह पुत्री है सो ठीक है। यह धर्म से तुम्हारी पुत्री है।" तब तो वे धर्मात्मा राजा जनक हर्षित हुए। मुझे

पाने से उनको बड़ी समृद्धि प्राप्त हुई। राजा ने मुझे अपनी पतिव्रता ज्येष्ठ पत्नी के अधीन कर दिया। वह आदर और स्नेह से, माता की सी प्रीति करके, मेरा पालन करने लगी। इसके अनन्तर विवाह के योग्य मेरी उम्र देख पिता चिन्ता करने लगे, जैसे धन के नाश से निर्धन मनुष्य चिन्ता-ग्रस्त होता है; क्योंकि वर (दूलह) के वर्गवाले चाहे सदृश हों अथवा हीन, और कन्यावाला चाहे इन्द्र के भी तुल्य क्यों न हो परन्तु उसको नीचा ही देखना पड़ता है। इससे मेरे पिताजी उस आनेवाले अनादर का खयाल कर चिन्ता-समुद्र में ऐसे मग्न हो गये थे कि उनको पार नहीं देख पड़ता था। समुद्र में नाव न होने से मनुष्य को जैसी पीड़ा होती है वैसी ही पीड़ा मेरे पिता जनक को होने लगी। मुझे अयोनिजा जानकर राजा मेरे सदृश और मेरे योग्य वर, ढूँढ़ने पर भी, नहीं पाते थे। तब मेरे पिता ने सोचते-सोचते यही विचारा कि इस पुत्री के लिए स्वयंवर करना चाहिए। किसी समय वरुण ने एक महायज्ञ में मेरे पिता के किसी पूर्व पुरुष (देवरात) को प्रसन्नतापूर्वक श्रेष्ठ धनुष, तरकस और दो अक्षय बाण दिये थे। वह धनुष ऐसा भारी था कि अनेक मनुष्य मिलकर बड़े प्रयत्न से भी उसको हिला तक न सकते थे। राजा लोग स्वप्न में भी उसको नवा न सकते थे। वह धनुष मेरे पिता राजा जनक के पास था। सो मेरे पिता ने सभा में सत्य प्रतिज्ञापूर्वक पुकार-कर राजाओं से कहा—हे राजा लोगो, देखो जो पुरुष इस धनुष को उठाकर इस पर प्रत्यञ्चा चढ़ा देगा मेरी पुत्री उसी की पत्नी होगी। तब तो वहाँ के राजा लोग उस पर्वताकार श्रेष्ठ धनुष को देख, उसे नमस्कार कर, अपना सा मुँह ले अपने घर को लौटने लगे। क्योंकि वे उसको उठा भी न सकते थे। इसके अनन्तर बहुत दिनों के बाद ये श्रीमान् रामचन्द्र और लक्ष्मण, विश्वामित्र के साथ, धनुर्यज्ञ देखने आये। तब मेरे पिता ने विश्वामित्र की पूजा की। फिर विश्वामित्रजी ने मेरे पिता से कहा कि ये रघुकुलोत्पन्न महाराज दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण, मेरे साथ, आये हैं। ये आपका धनुष देखना चाहते हैं। तब मेरे पिता ने देव-ताओं से प्राप्त उस धनुष को मँगवाया और रामचन्द्र को दिखाया। इन महाबली रघुवर ने एक निमेषमात्र में उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ा दी। जल्दी से प्रत्यञ्चा चढ़ा देने से उस धनुष के दो टुकड़े हो गये और उसके टूटने का ऐसा भयङ्कर शब्द हुआ मानो वज्रपात हुआ हो। तदनन्तर मेरे सत्यसन्ध पिता ने मेरा दान करने के लिए जलपात्र मँगवाया परन्तु अपने पिता की आज्ञा बिना लिये रामचन्द्र ने मेरा पाणिग्रहण करना न चाहा। तब मेरे पिता ने मेरे वृद्ध श्वशुर महाराज दश-रथ को बुलाकर रामचन्द्र के साथ मेरा ब्याह कर दिया और मेरी छोटी बहिन उर्मिला का लक्ष्मण के साथ विवाह कर दिया। हे तपोधने, इस प्रकार मैं स्वयंवर में रामचन्द्र को दी गई और मैं धर्म से, वीर्यवानों में श्रेष्ठ, रामचन्द्र में अनुरक्त हूँ।

---

## ११९वाँ सर्ग

### अनसूया का सन्ध्याकाल का वर्णन करना और रामचन्द्र का उस रात्रि में उसी आश्रम में रहना

सीता के स्वयंवर की कथा सुनकर अनसूया ने दोनों हाथों से सीता को गले से लगाया। उसका मस्तक सूँघकर अनसूया ने कहा—हे मधुर-

भाषिणि ! तूने स्वयंवर की सब बातें साफ-साफ मीठे शब्दों में कहीं। बड़ी विचित्र कथा है। मैंने स्वयंवर का सब वृत्तान्त सुना। इसके सुनने से मैं बहुत आनन्दित हुई। हे सीते, देखो अब सायङ्काल हो गया।

यह सूर्य छिपने लगा और रात्रि आ गई। ये पक्षी दिन भर भोजन की खोज में इधर-उधर फिरते रहे। अब संध्या का समय जानकर अपने-अपने घोंसलों में बसेरा करने के लिए आ गये। यह उन्हीं का शब्द सुनाई दे रहा है। ये मुनि लोग भी गीले वस्त्र लिये और जल का कलश भरे लिये आ रहे हैं। ये इस समय स्नान करके आये हैं। संध्या-समय जो होम किया गया है उसके धुएँ से आकाश की ऐसी शोभा हो रही है जैसी श्याम कबूतर के कण्ठ की होती है।

इन वृक्षों में कम पत्ते हैं। वे चक्षुरिन्द्रिय से जरा दूर भी हैं। पर, चारों ओर से, अँधेरे के कारण वे बड़े घने से जान पड़ते हैं। अन्धकार से दिशाएँ प्रकाश-रहित हो गई हैं। रात को निकलनेवाले जीवधारी निकल पड़े। ये तपोवन के मृग अग्निहोत्र की वेदी के पवित्र स्थानों में सो रहे हैं। हे सीते, देखो अब यह तारागणों से भूषित रात्रि प्रवृत्त हुई और आकाश में, चन्द्रिका से वेष्टित, चन्द्रमा का उदय हुआ। अब हमारी अनुमति से तुम जाओ और रामचन्द्र की सेवा करो। तुमने मधुर वचन कहकर हमको सन्तुष्ट किया। हे मैथिलि, तुम इन दिव्य अलङ्कारों को मेरे सामने ही पहनो और भूषित होकर मुझे प्रसन्न करो।

ऋषिपत्नी का वचन सुनकर, देवकन्या के तुल्य, सीता ने वे अलङ्कार पहन लिये। भूषित होकर और अनसूया के चरणों को ग्रहण कर सीता रामचन्द्र के पास गई।

अब रामचन्द्र सीता को भूषित देख तपस्विनी अनुसूया के इस प्रीतिदान से बहुत हर्षित हुए। इसके अनन्तर सीता ने ऋषिपत्नी का वह प्रीतिदान (वस्त्र, भूषण और माला) रामचन्द्र को दिखाया। तब राम और लक्ष्मण मैथिली के उस सत्कार को देखकर प्रसन्न हुए। वैसा सत्कार मनुष्यों को दुर्लभ है। तदनन्तर रघुनन्दन ने उस उजेली रात में वहीं निवास किया। तपस्वियों ने उनकी पूजा की। प्रातःकाल स्नान कर और प्रातःकर्म से निश्चिन्त होकर उन्होंने तपस्वियों से बिदा माँगी। तब तपस्वी लोग बोले कि हे राघव, इस वन का मार्ग तो राक्षसों के सञ्चार से बहुत कठिन है। इस महावन में पुरुषों के भक्षण करनेवाले नाना रूपधारी राक्षस लोग रहते हैं। इसमें अनेक सर्प और हिंस्र जन्तु ऐसे हैं कि जो मनुष्य का रक्त पीते हैं। हे रामचन्द्र, इस वन में वे राक्षस और सर्प जिस धर्मचारी तपस्वी को जरा भी असावधान या अशुद्ध अवस्था में पाते हैं उसी को भक्षण कर लेते हैं। अतएव आप इन राक्षसों को मारें। तपस्वी लोग इस मार्ग से फल लेने के लिए जाते हैं, इसी से आपका भी जाना अच्छा है। तपस्वी ब्राह्मणों ने हाथ जोड़कर जब ऐसा कहा और यात्रा के लिए स्वस्त्ययन पढ़ा तब रामचन्द्र ने लक्ष्मण और सीता को साथ ले उस दुर्गम वन में इस तरह प्रवेश किया जैसे मेघ-मण्डल में सूर्य्य प्रवेश करते हैं।

करुणरसाकलितोयं भरतश्रीरामयोर्गुणैर्मथितः।
श्रीमदयोध्याकाण्डो गोपालानूदितो जीयात्॥*

* श्रीरामचन्द्रजी तथा भरतजी के गुणों से गुम्फित, करुण रस से परिपूर्ण, पण्डित गोपाल शर्म्मा द्वारा अनुवादित, यह अयोध्याकाण्ड विजय को प्राप्त हो।

अयोध्याकाण्ड समाप्त

*

श्रीरामचन्द्राय नमः

# श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

(हिन्दीभाषानुवाद)

## अरण्यकाण्ड

### भाषान्तरकार-कृत मङ्गलाचरण

श्लोकः

श्रीमद्विश्वजनीनमानुषतनुं श्रीशं खरादेर्वधात्
सोदण्डकवासितापसगणप्राणप्रदं निःस्पृहम् ।
रक्षोराजहृतां विदेहतनयामन्वेषयन्तं वने-
ष्वन्वेष्यं सुकृतात्मभिः स्वहृदये श्रीरामचन्द्रम्भजे ॥*

---

* जिन्होंने सब लोकों के हित के लिए मानुष-तन धारण किया, जिन्होंने खर आदि दुष्ट राक्षसों को मारकर वनवासी तपस्वियों की रक्षा की, जिनको ज्ञानीजन अपने हृदय में ढूँढ़ते हैं और जो रावण से हरी गई जानकी को स्वयं ढूँढ़ते फिरे, उन्हीं श्रीरामचन्द्रजी को मैं गोपाल शर्म्मा अपने हृदय में भजता हूँ ।

# पहला सर्ग

## ऋषियों का रामचन्द्र के प्रति अतिथि-सत्कार करना और अपना दुःख निवेदन करना

श्रीराम ने दण्डकारण्य में प्रवेश करके तपस्वियों के आश्रमों को देखा। उन आश्रमों में कुश और चीर फैले हुए थे। वहाँ ब्रह्मविद्या का तेज व्याप्त हो रहा था अतएव आकाश में सूर्य्यमण्डल की भाँति वह आश्रम-समूह दुर्दर्श था। उन आश्रमों में सभी जीवों को आश्रय मिलता था। वहाँ के आँगन बहुत ही साफ पड़े थे। चारों ओर अनेक प्रकार के पशु-पक्षी विचरते फिरते थे। अप्सराएँ नित्य आकर वहाँ समीप ही नाचतीं और पूजा कर जाती थीं। उन आश्रमों में बड़ी-बड़ी यज्ञशालाएँ, स्रुव, मृगचर्म, कुशा, समिधा, जल के कलश और फल-मूल शोभित थे। वहाँ बड़े-बड़े जङ्गली पेड़ थे जिनमें स्वादिष्ठ फल लगते थे। उन आश्रमों में नित्य प्रति बलि और होम होता था, पुण्यकारक वेद-ध्वनि हुआ करती थी। इधर-उधर तरह-तरह के फूल बिखरे पड़े थे। वहाँ फल-मूलाहारी, चीरधारी और कृष्णा जिनधारी, सूर्य्य तथा चन्द्र की तरह दीप्तिमान् शान्त-दान्त पुराने मुनि लोग रहते थे। नियत आहार करने-वाले पवित्र परमर्षियों से शोभित और सदा वेदाध्ययन के शब्द से प्रतिध्वनित होने के कारण वे आश्रम ब्रह्म-लोक की तरह थे। वेदज्ञ और महाभाग ब्राह्मणों से सुशोभित आश्रम को देखकर रामचन्द्र ने धनुष की प्रत्यञ्चा उतारकर उस आश्रम में प्रवेश किया।

चन्द्र के तुल्य प्रकाशित धर्मात्मा रामचन्द्र, लक्ष्मण और यशस्विनी सीता को देखकर और पास आकर दिव्य ज्ञानसम्पन्न महर्षि लोग मङ्गल वचन कहने और आदर-सत्कार करने लगे। वहाँ के वनवासी लोग राम-चन्द्र के रूप की शोभा, उनकी सुकुमारता और सुवेश को देखकर अत्यन्त विस्मित हुए। आश्चर्य में होकर बहुत समय तक टकटकी बाँधे वे इन तीनों को देखते रहे। फिर सब प्राणियों के हित में तत्पर ऋषियों ने रामचन्द्र को पर्णकुटी में टिका दिया और विधि से इनका सत्कार करके इनके लिए जल, मूल, पुष्प और फल लाकर आगे रख दिये। अत्यन्त हर्ष से मङ्गल-वाक्य पढ़कर और सम्पूर्ण आश्रम राम को दिखाकर वे हाथ जोड़कर बोले—हे राघव, देखो धर्मपालक, जनों का शरणदाता, महायशस्वी और प्रजारक्षक जो दण्ड-धारी राजा है वह प्रजा के लिए पिता के तुल्य है। ऐसा राजा इन्द्र के चतुर्थ भाग का रूप है, इसलिए वह पूजा के योग्य और मान्य है। इसी लिए वह श्रेष्ठ और रमणीय पदार्थों का भोग करता और लोगों से नमस्कार पाता है। इस दृष्टि से हमारी रक्षा करना आपको योग्य है क्योंकि हम आपकी ही रक्षा में रहते हैं। आप चाहे नगर में रहिए या वन में, परन्तु हैं तो आप हमारे राजा ही। हे राजन्, हम तपोधन लोग सब जीवों से शत्रुरहित, क्रोध-हीन और जितेन्द्रिय हैं। इसलिए आपको सदा हमारी रक्षा उसी तरह करनी चाहिए जैसी कि गर्भ के बालक की की जाती है। यह कहकर वे लोग फल-मूल और नाना प्रकार के जङ्गली आहारों से लक्ष्मण-सहित रामचन्द्र का अतिथि-सत्कार करने लगे। वहाँ के अमितुल्य तेजस्वी अनेक सिद्ध तापस लोगों ने यथान्याय रामचन्द्र का सत्कार किया।

---

## दूसरा सर्ग

### विराध राक्षस से भेंट और उसका सीता को उठा ले जाना

इस प्रकार रामचन्द्र वहाँ सत्कार पाकर प्रातः-काल मुनियों से विदा हुए और आगे वन में चले। वह वन नाना प्रकार के मृगों से युक्त था; भालू और सिंहों से पूर्ण था। वहाँ न वृक्ष, न लता और न तृण देख पड़ते थे। वहाँ का जलाशय भयङ्कर देख पड़ता था। वहाँ पक्षियों की बोली तक न सुन पड़ती थी। वहाँ केवल बनैले झींगुरों का शब्द सुन पड़ता था। अब राम, लक्ष्मण और सीता तीनों उस आश्रम से चलकर वन के बीच में पहुँचे। भयङ्कर पशुओं से युक्त उस वन में एक राक्षस पर्वत के शृंग के तुल्य विशाल देख पड़ा। वह महाशब्द करता था। गहरी-गहरी उसकी आँखें थीं। मुख उसका बड़ा विकट, कराल उदर, घिनौनी आकृति, टेढ़ा-मेढ़ा, लम्बा, विकराल, और भयङ्कर रूप था। वह व्याघ्र के ऐसे चर्म को पहने था, जो रक्त से गीला था। वह सब प्राणियों को डरवाने-वाला राक्षस काल की भाँति मुँह बाये हुए था। वह तीन सिंहों, चार व्याघों, दो हुँड़ारों, दस मृगों (चीतलों) और दन्तसहित मज्जा में भरे हुए बड़े हाथी के मस्तक को लोहे के शूल में गोदे हुए शब्द करता और चिल्लाता था। इन तीनों को देखकर वह राक्षस बड़े क्रोध से इनकी ओर दौड़ा जैसे प्रलय-काल में प्रजा की ओर काल झपटता है। वह बड़ा घोर शब्द करके पृथ्वी को कँपाता हुआ सीता को गोद में उठा ले गया और कुछ दूर जाकर बोला कि तुम दोनों कौन क्षीणजीवी हो जो जटा और चीर को धारण किये, धनुष-बाण और खड्ग को हाथ में लिये हो? इस दण्डक वन में तुम क्यों आये हो? स्त्री के साथ तपस्वियों का रहना कैसे हो सकता है? इसलिए तुम दोनों अधर्मचारी, पापी और मुनिधर्मदूषक हो। मैं तो विराध नामक राक्षस हूँ; और इस दुर्गम वन में शस्त्र लिये, ऋषि-मुनियों के मांस को भक्षण करता हुआ, घूमा करता हूँ। यह सुन्दर नारी मेरी स्त्री होगी और तुम दोनों पापियों के रक्त को मैं संग्राम में पी लूँगा।

विराध की ये दुष्ट और अहङ्कारयुक्त बातें सुनकर जानकी डर गईं और बड़े उद्वेग से ऐसी काँपने लगीं जैसे वायुवेग से केले का पत्ता काँपता है। सीता को विराध की गोद में देखकर रामचन्द्र शुष्क-मुख से बोले—हे लक्ष्मण! देखो यह मेरी भार्या, जनक की पुत्री, शुद्धाचारयुक्त है। यह इस विराध के फन्दे में जा पड़ी है। अत्यन्त सुख भोगनेवाली यशस्विनी राजपुत्री की यह दशा हुई। हे लक्ष्मण, हमारे विषय में कैकेयी का जो कुछ अभिप्राय था और वर के द्वारा उसको जो इष्ट था वह आज पूरा हुआ। वह कैकेयी इस अवस्था में पुत्र के लिए राज पाकर सन्तुष्ट नहीं होती; और उसने मेरे ऐसे सब जीवों के प्यारे को वन में निकलवा दिया। आज इस घड़ी उसका मनोरथ पूर्ण हुआ। हे सौमित्रे, इस समय सीता को ऐसी दशा में देखने से मुझको जैसा दुख हो रहा है वैसा न मुझे पिता के मरने पर हुआ और न राज-पाट छूटने पर। राम की बातें सुनने से लक्ष्मण की आँखें भर आईं। शोक-सन्तप्त लक्ष्मण ने, रुँधे हुए सर्प की नाईं श्वास लेते हुए, क्रोध करके कहा—हे काकुत्स्थ, मेरे ऐसे अनुचर के रहते, सब प्राणियों के स्वामी और इन्द्र के तुल्य, आप अनाथ की भाँति क्यों सन्ताप करते हैं। देखिए, मेरे बाण से मरे हुए इस मृतक विराध के शरीर का रक्त

पृथ्वी पियेगी। राज्य की कामना करनेवाले भरत पर मेरा जो क्रोध हुआ था उसको मैं आज इस विराध पर छोड़ूँगा, जैसे इन्द्र पर्वत पर वज्र को छोड़ते हैं। हे भ्राता, मेरे भुज-बल के वेग से चलाया हुआ महाबाण इसके हृदय को भेदकर प्राणों को हरण कर लेगा। तदनन्तर यह राक्षस चक्कर खाकर पृथ्वी पर गिरेगा।

---

## तीसरा सर्ग

### विराध का युद्ध करना और सीता को छोड़ दोनों भाइयों को कन्धे पर उठाकर वन में भागना

अब फिर विराध अपनी गम्भीर वाणी से वन को पूर्ण करता हुआ बोला कि तुम दोनों कौन हो और कहाँ जाओगे? यह सुनकर रामचन्द्र ने इक्ष्वाकु-वंश का नाम बताया और कहा कि हम दोनों धर्मचरित्रयुक्त, वनवासी क्षत्रिय हैं; परन्तु तुझे जानना चाहते हैं कि इस दण्डक-वन में तू कौन घूमता-फिरता है। यह सुनकर वह बोला—हे राजन् राघव! मैं "जव" का पुत्र हूँ। मेरी माता का नाम "शतह्रदा" है। पृथ्वी के सब राक्षस मुझे विराध कहते हैं। मैंने अपने तपो-बल से ब्रह्मा को प्रसन्न कर उनसे यह वर पाया है कि न तो मैं शस्त्र से मरूँ, न कटूँ और न विदीर्ण होऊँ। इसलिए तुम इस स्त्री को और युद्ध द्वारा इसके उद्धार करने की इच्छा को छोड़कर शीघ्र भाग जाओ। मैं तुम्हारे प्राण लेना नहीं चाहता।

तब रामचन्द्र लाल नेत्र करके उस पापी राक्षस से बोले—हे क्षुद्र, हे नीच कर्म करनेवाले, तुझे धिक्कार है! तू अवश्य अपनी मृत्यु को ढूँढ़ता है। आज संग्राम में तेरी मृत्यु होगी। खड़ा रह, मेरे आगे जीता न बचेगा। यह कहकर रामचन्द्र ने धनुष चढ़ाया और उस पर बड़े पैने-पैने सात बाण रखकर राक्षस को मारे। वे बाण, बड़े वेगवाले और गरुड़ तथा वायु के तुल्य शीघ्रगामी थे। उनकी पूँछ सुवर्ण-निर्मित थी और उनमें मोर के पर लगे हुए थे। वे अग्नि के तुल्य बाण विराध के शरीर को फोड़ रक्त से भीगकर पृथ्वी पर जा गिरे। वह राक्षस बाणों से बिध गया। इसलिए वैदेही को नीचे उतारकर और अपना शूल लेकर इन दोनों भाइयों के ऊपर दौड़ा। उस समय वह बड़ा नाद करता और इन्द्रध्वज के तुल्य शूल को हाथ में लिये ऐसा देख पड़ता था जैसे मुँह को बाये हुए काल दौड़ रहा हो। अन्तक और यम के तुल्य विराध पर वे दोनों भाई उस समय बाणों की वर्षा करने लगे। तब वह महाभयङ्कर राक्षस हँसा और खड़ा होकर जँभाई लेने लगा। जँभाई लेते ही वे बाण उसके शरीर से निकल पड़े। यद्यपि वह इन बाणों से अत्यन्त पीड़ित था तथापि वरदान के बल से अपने प्राणों को रोके रहा और शूल को उठाकर दोनों पर दौड़ा। तब रामचन्द्र ने उस शूल को दो बाणों से काटकर उसके हाथ से गिरा दिया। वह शूल अग्नि और वज्र के तुल्य था। वह शूल भूमि पर ऐसा गिरा जैसे वज्र से कटी हुई मेरु की शिला गिर पड़ी हो। अब वे दोनों भाई कृष्ण-सर्पों के तुल्य खड्ग लेकर उसके ऊपर जा गिरे और मारने लगे। वह राक्षस तलवार लगने से जब अत्यन्त पीड़ित हुआ तब राम-लक्ष्मण को—जो बड़ी धीरता से युद्ध करते और किसी से हिलाने के योग्य नहीं थे—दोनों भुजाओं से पकड़कर और कन्धे पर चढ़ाकर ले चला। उसका अभिप्राय जानकर रामचन्द्र ने लक्ष्मण से कहा

कि हे सौमित्रे, जैसा यह चाहे वैसा ही इसको चलने दो। क्योंकि हमारे चलने का यही मार्ग है जिससे यह हमको लिये जा रहा है।

वह महाबली राक्षस अपने बल-पराक्रम से इनको—दो बालकों की भाँति—कन्धे पर चढ़ाये, बड़ा शब्द करता हुआ, महामेघ के तुल्य वन में ले चला। वह वन बड़े-बड़े वृक्षों से पूर्ण, नाना प्रकार के पक्षियों से विचित्र, और सियार, साँप तथा मृगों से संयुक्त था।

---

## चौथा सर्ग

### राम का विराध को मारकर गाड़ना

उस समय सीता इन दोनों भाइयों को राक्षस के वश में पड़ा देखकर बड़े ऊँचे स्वर से चिल्लाकर कहने लगी—हा! यह भयंकर राक्षस राजा दशरथ के पुत्र—सत्यधारी शीलवान् और पवित्र-मूर्त्ति—रामचन्द्र को और लक्ष्मण को भी हरे लिये जाता है! अब मुझे ये बनैले सिंह और व्याघ्र भक्षण कर लेंगे। हे राक्षसोत्तम! मैं तुझे नमस्कार करती हूँ। तू इनको छोड़ दे, मुझे भले ही हरण कर ले। सीता का यह वचन सुनकर दोनों भाई उस दुरात्मा राक्षस के घात में तत्पर हो जल्दी करने लगे। तब लक्ष्मण ने वेग से उसकी बाईं भुजा और रामचन्द्र ने दाहिनी भुजा तोड़ डाली। भुजाओं के टूट जाने से वह राक्षस व्याकुल और मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उस समय वह मेघ के सदृश काला और वज्र से टूटे पर्वत की नाईं भूमि पर पड़ा देख पड़ता था। ये दोनों भाई उसको घूँसों से मारते, पैरों से मसलते और उठा-उठाकर पटक-पटक कर पीसते थे। यद्यपि वह राक्षस अनेक बाणों से बींधा, खड्गों से काटा और अनेक प्रकार से भूमि पर रगड़ा गया परन्तु इतने पर भी मरा नहीं। तब भयस्थानों में भी अभय देनेवाले श्रीरामचन्द्र ने उस पर्वताकार राक्षस को अत्यन्त अवध्य देख लक्ष्मण से कहा—हे पुरुषसिंह, यह राक्षस तपोबल से इतना पक्का है कि शस्त्र-द्वारा जीता न जा सकेगा, इसलिए आओ इसको पृथ्वी में गाड़ दें। हे लक्ष्मण! इसके लिए हाथी के बराबर यहाँ एक बड़ा गड्ढा खोदो। लक्ष्मण को गड्ढा खोदने की आज्ञा देकर रामचन्द्र आप पैर से उसका गला दबाये खड़े रहे।

रामचन्द्र की यह बात सुनकर वह राक्षस विनय-पूर्वक बोला—हे पुरुषश्रेष्ठ! इन्द्रतुल्य बलधारी आपने मुझे मार लिया। परन्तु पहले मैंने मोह से आपको नहीं पहचाना था। हे तात! अब मैंने समझ लिया कि आप कौशल्या के पुत्र हैं। महाभागा वैदेही को और महायशस्वी लक्ष्मण को भी मैंने पहचान लिया। हे रामचन्द्र! मुझे शाप से यह घोर राक्षस का शरीर मिला है। मैं पहले तुम्बुरु नामक गन्धर्व था। मुझे कुबेर ने शाप दिया। पर शाप देने के अनन्तर उनको मैंने प्रसन्न कर लिया। तब वे बोले कि अच्छा, जब दशरथ के पुत्र रामचन्द्र तुझे मारेंगे तब तू फिर अपना पहला शरीर पाकर स्वर्ग को जायगा। उन्होंने केवल उपस्थित न रहने के कारण क्रोध कर मुझे यह शापरूप दण्ड दिया था। मेरी अनुपस्थिति का कारण यह था कि मैं उस समय रम्भा नामक अप्सरा पर आसक्त हो गया था। हे रामचन्द्र! आपकी कृपा से मैं इस दारुण शाप से छूटा। अब मैं अपने लोक में जाऊँगा। आपका मङ्गल हो। हे तात! यहाँ से डेढ़ कोस पर शरभङ्ग नामक महर्षि रहते हैं। वे बड़े प्रतापी और सूर्य-सदृश हैं। उनके पास आप शीघ्र जाइए। वे आपका

कल्याण करेंगे। हे राम! आप मुझे गड्ढे में डालकर कुशल से चले जाइए। जो मृतक राक्षस पृथ्वी में गाड़े जाते हैं उनको सनातन लोक प्राप्त होते हैं। राक्षसों का यह सनातन धर्म है। विराध राक्षस बाणपीड़ित तो था ही, वह रामचन्द्र से ये बातें कह शरीर छोड़कर स्वर्ग में जाने को उद्यत हुआ।

उसकी बात सुनकर रामचन्द्र ने लक्ष्मण से गड्ढा खोदने को कहा और आप पैर से उसका गला दबाये खड़े रहे। तब लक्ष्मण ने खोदने का शस्त्र ले, विराध के पास ही, एक बड़ा गड्ढा खोदा। विराध के कान खूँटे के तुल्य खड़े थे, और वह बड़ा शोर कर रहा था। उसको दोनों भाइयों ने उस गड्ढे में डालकर ऊपर से मिट्टी पूर दी।

अब देखना चाहिए कि विराध ने जबर्दस्ती आप ही रामचन्द्र से अपनी मृत्यु चाही। उसने स्पष्ट ही अपने मुँह से कहा कि मेरा वध शस्त्र से नहीं हो सकता। उसी वचन को मानकर रामचन्द्र ने उसको गड्ढे में डालने की इच्छा की। जिस समय वह राक्षस गड्ढे में पटका जा रहा था उस समय ऐसा गरजता था कि उसके शब्द से सम्पूर्ण वन गरजता सा मालूम होता था। इस प्रकार दोनों भाई उसको गाड़कर, अत्यन्त हर्षित हो, चन्द्र-सूर्य की तरह शोभित हुए।

---

## पाँचवाँ सर्ग

### रामचन्द्र का शरभङ्ग के आश्रम में जाकर इन्द्र को देखना और शरभङ्ग का राम को सुतीक्ष्ण के पास जाने का उपदेश करके स्वयं अग्नि में भस्म होना

इस प्रकार रामचन्द्र ने उस भयङ्कर राक्षस को मारकर सीता को गले से लगाया। उन्हें समाश्वासन देकर उन्होंने कहा—हे लक्ष्मण! यह वन तो बड़ा क्लेशदायी और दुर्गम है। हम लोग वन के मर्मज्ञ नहीं हैं, इसलिए आओ शरभङ्ग मुनि के आश्रम में चलें। अब वे तीनों उक्त मुनि के आश्रम में गये। शरभङ्ग मुनि का प्रभाव देवतुल्य था और तपस्या से उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया था। उनके आश्रम में दूर से एक बड़ा चमत्कार यह देख पड़ा कि वहाँ साक्षात् देवराज इन्द्र आये हैं। उनका शरीर सूर्य और अग्नि के तुल्य प्रकाशमान है। चारों ओर देवता लोग उनके अनुगामी होकर चलते हैं। उनका रथ पृथ्वी पर नहीं, आकाश में जा रहा है। उसमें हरे घोड़े जुते हुए हैं। वे प्रभायुक्त भूषण और निर्मल वस्त्र धारण किये हैं। उसी प्रकार के अनेक महात्माओं से वे पूजित हैं। उनके मस्तक पर तरुण सूर्य के तुल्य प्रकाशमान, श्वेत मेघ के तुल्य और चन्द्रमण्डल के सदृश विमल छत्र लगा है। वह चित्र-विचित्र मालाओं से सुशोभित है। उनके दोनों ओर श्रेष्ठ देवाङ्गनाएं दो चँवर हिला रही हैं। वे चँवर बहुत सुन्दर और सुवर्ण-दण्ड से सुशोभित हैं। देव, गन्धर्व, सिद्ध और बहुत से महर्षि श्रेष्ठ वाक्यों से उनकी स्तुति कर रहे हैं। इन्द्र उस समय शरभङ्ग के साथ कुछ बातचीत कर रहे थे।

यह चमत्कार देखकर रामचन्द्र उस अद्भुत रथ की ओर दृष्टि कर लक्ष्मण को दिखलाने लगे। देखो लक्ष्मण, प्रभा और श्री से युक्त, तपते हुए सूर्य के तुल्य इस आकाशचारी रथ को देखो। इन्द्र के घोड़े मैंने जिस प्रकार के सुने थे वैसे ही ये आकाशचारी दिव्य घोड़े जान पड़ते हैं। हे पुरुषव्याघ्र! चारों दिशाओं में ये जो सैकड़ों पुरुष हैं, इनको देखो। ये सभी तरुण हैं और कुण्डल पहने हैं। इनके हाथों में खड्ग हैं। इनके

वक्षःस्थल विशाल और ऐसी ही भुजाएँ हैं। ये प्रकाशयुक्त लाल कपड़े पहने हैं। ये सभी व्याघ्र के तुल्य दुर्द्धर्ष हैं। कण्ठों में अग्नि-तुल्य हार पहने हुए हैं और पच्चीस-पच्चीस वर्ष की इनकी आयु है। देवताओं की सर्वदा यही आयु और ऐसी ही सुन्दरता रहती है जैसी कि इनकी है। हे लक्ष्मण, थोड़ी देर तुम यहीं सीता के साथ ठहरो तब तक मैं इस पुरुष को जान लूँ कि रथ पर यह कौन प्रकाशित हो रहा है।

लक्ष्मण से इस प्रकार कहकर रामचन्द्र आश्रम की ओर बढ़ चले। इसके अनन्तर राम को उधर आते देख मुनि से बिदा माँगकर इन्द्र ने देवताओं से कहा—देखो, रामचन्द्र इधर ही आ रहे हैं; इसलिए जब तक वे इधर आकर मुझसे कुछ कहें उससे पहले ही मुझको दूसरे स्थान में ले चलो क्योंकि इस समय मुझे देखने की योग्यता उन्हें नहीं है। परन्तु थोड़े ही समय के अनन्तर जब ये विजय पाकर कृतार्थ होंगे तब मैं इन्हें देखूँगा। अभी तो इनको वह काम करना है जिसका दूसरों से होना अत्यन्त कठिन है। मुनि से सत्कृत होकर और उनसे बिदा लेकर वे रथ पर सवार हो स्वर्ग को चले गये। अब सीता और लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र मुनि के पास जा पहुँचे। तीनों ने मुनि के चरण छुए। तब मुनि ने उनको यथोचित वासस्थान और भोजन दिया। फिर रामचन्द्र ने मुनि से इन्द्र के आने का प्रयोजन पूछा, तब मुनि ने सब वृत्तान्त कह सुनाया कि हे राम! ये वरदाता इन्द्र, मुझे ब्रह्मलोक में ले जाना चाहते हैं। उस लोक को मैंने अपने उग्र तप से जीता है। वह लोक अजितेन्द्रिय पुरुषों के लिए दुर्लभ है, परन्तु हे नरव्याघ्र! मैं तुमको पास आया जानकर ब्रह्मलोक में नहीं जाता क्योंकि तुम्हारे ऐसे प्रिय अतिथि को बिना देखे मैं किस प्रकार यात्रा करूँ। अब आप जैसे महात्मा और धार्मिक से मिल-भेंटकर मैं स्वर्ग अथवा ब्रह्मलोक में चला जाऊँगा। हे नरश्रेष्ठ, मैंने जिन अक्षय और मनोहर अनेक (ब्रह्मलोक और स्वर्ग) लोकों को जीत रक्खा है उन सबको मैं तुम्हें देता हूँ। तुम उनको ग्रहण करो।

इस प्रकार मुनि का वचन सुनकर सब शास्त्रों के ज्ञाता रामचन्द्र बोले—हे मुनि! मैं स्वयं इन लोकों को प्राप्त करूँगा; मैं इस वन में रहना चाहता हूँ। आप मुझे स्थान बतला दीजिए। राम का यह वचन सुनकर मुनि ने कहा—हे राम! इसमें महातेजस्वी, बड़े धार्मिक सुतीक्ष्ण नामक नियमधारी ऋषि रहते हैं। वे तुम्हारा कल्याण करेंगे। हे राम, यह जो मन्दाकिनी नदी इधर की ओर बह रही है, और जिसमें अनेक बड़े-बड़े पुष्प छोटी नौका की भाँति बहते देख पड़ते हैं, इसको देखते बराबर चले जाओ तो वहाँ पहुँच जाओगे। हे पुरुष-सिंह, मैंने तुमको मार्ग बता दिया परन्तु दो घड़ी यहीं ठहरकर मेरी ओर देखते रहो। तब तक मैं अपने शरीर को वैसे ही त्याग दूँगा जैसे साँप अपनी केंचुली छोड़ता है। अब शरभङ्ग मुनि, अग्नि को स्थापना कर और मन्त्र से उसमें घी की आहुति देकर, अग्नि में बैठ गये। उस समय अग्नि ने उस महात्मा के रोम, केश, जीर्ण त्वचा, अस्थि और रुधिर युक्त मांस को जला दिया। वे शरभङ्ग मुनि उस अग्नि में से अग्नि-तुल्य कान्तिमान् कुमार बनकर निकले और अत्यन्त शोभित हुए। फिर वे अग्निहोत्रियों के, महात्मा ऋषियों के और देवताओं के लोकों को लाँघकर ब्रह्मलोक में जा पहुँचे। मुनि ने वहाँ जाकर अनुचरों समेत ब्रह्मा को देखा। मुनि को देखकर ब्रह्मा आनन्दित हुए और स्वागत वचन बोले।

———

# छठा सर्ग

## राक्षस-वध-प्रतिज्ञा

शरभङ्ग के स्वर्ग जाने पर रामचन्द्र के पास बहुत से ऋषि आये। उनमें वैखानस (प्रजापति के नख से उत्पन्न), बालखिल्य (प्रजापति के रोम से उत्पन्न), सम्प्रक्षाल (प्रजापति के पैर के धोवन के जल से उत्पन्न), मरीचिप (सूर्य्य व चन्द्र की किरणों को पीकर रहनेवाले), अश्मकुट्ट (अन्न को बिना पकाये कूटकर खानेवाले), पत्राहार (पत्तों को खाकर जीनेवाले), दन्तोलूखली (अन्न को दाँतों ही से कूचकर खानेवाले), उन्मज्जक (कण्ठ तक जल में खड़े हो तप करनेवाले), गात्रशय्य (बिना ही बिछौना बिछाये भूमि पर सोनेवाले), अशय्य (निद्रारहित), अनवकाशिक (एक पैर से खड़े होकर तप करनेवाले), केवल जल पीकर रहनेवाले, वायु-भोजन करनेवाले, छाया-रहित स्थान में रहनेवाले, लीपी हुई पवित्र भूमि पर सोनेवाले, पर्वत के शिखर इत्यादि ऊर्ध्व स्थान में सदा रहनेवाले, गीले चीरवस्त्र पहननेवाले, सदा जप में तत्पर, सदा तप करनेवाले और पञ्चाग्नि तापनेवाले ऋषि थे। ये ब्रह्मविद्या की शोभा से युक्त और अपने दृढ़ योगाभ्यास से एकाग्रचित्त थे। ये सब शरभङ्ग के आश्रम में राम के पास आये और बोले—

हे रामचन्द्र, आप इक्ष्वाकु-वंश के शिरोमणि राजा हैं। हे देवदेव, आप इन्द्र की तरह शत्रुओं को नष्ट करनेवाले हैं। आप तीनों लोकों में विख्यात और बहुत ही पवित्र हैं। आप बड़े योधा हैं। आप सत्यप्रतिज्ञ हैं। हे धर्मज्ञ, हे धर्मरक्षक! हम याचक बनकर जो आपसे कहते हैं उसे कृपापूर्वक सुनिए; क्योंकि आप अभय के दाता हैं। हे नाथ, उस राजा को बड़ा अधर्म लगता है जो छठवाँ अंश कर तो ले लेता है परन्तु पुत्र की नाईं प्रजा का पालन नहीं करता। हे राम, जो राजा यत्नपूर्वक सावधानी से, पुत्रों की भाँति, अपने राजवासियों की अपने प्राणों की नाईं सदा रक्षा करता है उसको इस लोक में बहुत दिन तक नित्य कीर्त्ति प्राप्त होती है और वह ब्रह्मलोक में वास करता है। फल, मूल खाकर मुनि लोग जिस धर्म का आचरण करते हैं उसका चतुर्थांश उस राजा का होता है जो धर्म से प्रजा-पालन करता है। हे रामचन्द्र, देखिए, तुम्हारे ऐसे नाथ के रहते भी इन वान-प्रस्थाश्रमियों के झुण्ड के झुण्ड को—जिसमें ब्राह्मण अधिक हैं—राक्षस इस तरह मारते हैं जैसे कि अनाथ मारे जाते हैं। हे रामचन्द्र, इधर आइए। हम आपको उन महात्मा मुनियों के शरीर दिखलाते हैं। जिनको घोर राक्षसों ने मार डाला है। पम्पा नदी के तट पर रहनेवाले, मन्दाकिनी-तीर-निवासी और चित्रकूट पर रहनेवाले मुनि बहुत मारे जाते हैं। इन भयङ्कर राक्षसों के द्वारा तपस्वियों की बड़ी दुर्दशा हो रही है। महाराज रामचन्द्र, हम इसको सह नहीं सकते। आप शरणागतवत्सल हैं। हम सब आपकी शरण आये हैं। आप हमको इन राक्षसों से बचाइए। हे वीर, इस पृथ्वी पर आपके सिवा और कोई रक्षा करनेवाला नहीं देख पड़ता; इसलिए हे रणधीर वीर-पराक्रम रामचन्द्र! आप हमको इन दुष्ट राक्षसों से बचाइए।

तपस्वियों की ये बातें सुनकर रामचन्द्र बोले—हे महर्षियो, आप लोग मुझसे ऐसे वचन कहने के योग्य नहीं, मैं तो तपस्वियों का आज्ञाकारी हूँ। यद्यपि मैं पिता की आज्ञा का पालन करने को आया हूँ, तथापि आप लोगों के दुःख का नाश करना मेरा अपना ही

कार्य है। इसी के लिए मुझे वन में जाना है। आप लोगों की प्रयोजन-सिद्धि के लिए ही मैं अपनी इच्छा-पूर्वक वन में आया हूँ। मेरा यह वनवास बड़ा फलदायी होगा। मैं तपस्वियों के शत्रुओं—राक्षसों—को मारना चाहता हूँ। मेरे और लक्ष्मण के पराक्रम को तपोधन ऋषि देखें। रामचन्द्र इस प्रकार तपस्वियों को वर देकर और उनकी पूजा ग्रहण करके सीता और लक्ष्मण के साथ सुतीक्ष्ण के आश्रम में गये।

---

## सातवाँ सर्ग

### राम का सुतीक्ष्ण के आश्रम में जाना

अब उन मुनियों को साथ लिये हुए रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण सुतीक्ष्ण के आश्रम की ओर चले। मार्ग में अनेक गहरी नदियों को पार करके एक निर्मल पर्वत के पास जा पहुँचे। वह महामेरु के तुल्य ऊँचा था। वहाँ अनेक वृक्षों से भरे वन में पहुँचकर उन्होंने एकान्तस्थल में चीरों की माला से भूषित आश्रम को देखा। वहाँ उनकी देह धूलि-धूसरित थी। सुतीक्ष्ण मुनि तपस्या में लीन थे। उनको देखकर रामचन्द्र बोले—भगवन्, मैं राम हूँ। आपके दर्शन के लिए आया हूँ। हे धर्मशील महर्षि, आप मुझसे बोलिए। तब वे धीर मुनि रामचन्द्र को देखकर दोनों भुजाओं से उनसे मिले। उन्होंने कहा—हे सत्यधारियों में श्रेष्ठ रघुवर, आपका स्वागत हो। आपके आने से यह आश्रम इस समय सनाथ के सदृश देख पड़ता है। हे महायशस्वी, मैं आप ही की बाट देख रहा था। आप ही के लिए मैं शरीर त्यागकर देवलोक में नहीं गया। जब आप चित्रकूट में रहते थे तब मैंने सुना था कि आप राज्य त्यागकर वन में आये हैं। हे काकुत्स्थ, यहाँ पर देवों के राजा इन्द्र आये थे। वे मुझसे कहते थे कि तुम्हारे पुण्यकर्म्मों ने सम्पूर्ण लोक जीत लिये। इसलिए हे रामचन्द्र, मेरे तपोबल से जीते हुए उन लोकों में, मेरे प्रसाद से, आप सीता और लक्ष्मण के साथ विहार कीजिए। उन लोकों में देवर्षि रहते हैं। यह सुनकर रामचन्द्र ने उस सत्यवादी और तप से प्रज्वलित ऋषि से—ब्रह्मा से इन्द्र की भाँति—कहा कि हे मुनि, इन लोकों का सम्पादन तो हम आप ही करेंगे, आप इस वन में रहने के लिए हमको स्थान बता दीजिए। मैं यही चाहता हूँ। आप सब बातें जानते और सब प्राणियों के हित में तत्पर हैं। गौतम कुल में उत्पन्न महात्मा शरभङ्ग मुनि ने मुझे यही बतलाया है।

रामचन्द्र का वचन सुनकर मुनि ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—हे राम, यह आश्रम बहुत सुन्दर और गुणयुक्त है। आप यहीं विहार कीजिए क्योंकि यहाँ ऋषि रहते हैं। यह वन सदा मूल-फलों से संयुक्त रहता है। परन्तु हे रामचन्द्र, इस आश्रम में मृगों के झुण्ड बहुत आते हैं। उन पर कोई हाथ नहीं उठाता। वे केवल लुभाकर चले जाते हैं। वे किसी से भी नहीं डरते। हे रामचन्द्र, यहाँ पर उन मृगों ही का जो कुछ दोष है सो है और कुछ भी विकार नहीं। इस प्रकार से ऋषि का वचन सुनकर रामचन्द्र हाथ में धनुष-बाण लेकर बोले—हे महाभाग! जो मृग यहाँ आते हैं, उन्हें मैं पैने बाणों से मारूँगा। परन्तु इसमें आपको पीड़ा होगी, इसलिए मैं इस आश्रम में बहुत दिन तक रहना नहीं चाहता।

फिर रामचन्द्र सायं-सन्ध्योपासन करके सुतीक्ष्ण के आश्रम में टिक रहे। सन्ध्या समाप्त होने पर, रात्रि में सुतीक्ष्ण मुनि ने दोनों भाइयों को ऋषि के योग्य अन्न दिया और सत्कार किया।

---

## आठवाँ सर्ग

### राम का मुनि से बिदा हो, यात्रा करना

अब रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता उस आश्रम में रात बिताकर प्रातःकाल जागे। इसके अनन्तर सीता के साथ रामचन्द्र ने सुन्दर शीतल, कमल-गन्धयुक्त जल का आचमन कर, अग्नि तथा अन्य देवताओं की पूजा की। फिर सूर्य को उदय होते देख, तीनों ने मुनि के पास जाकर कहा—भगवन्, हम आपके आश्रम में सुख से रहे; आपने हमारा खूब सत्कार किया। अब आपसे बिदा माँगते हैं; क्योंकि मुनि लोग शीघ्रता कर रहे हैं। सम्पूर्ण दण्डकारण्य-वासी पवित्रशील मुनियों के आश्रमों को हम देखना चाहते हैं, इसलिए इन तेजस्वी मुनियों के साथ हम आपकी आज्ञा चाहते हैं। ये मुनि नित्य धर्म में तत्पर और तपोनिष्ठ हैं। असद्वंशी पुरुष अन्याय से ऐश्वर्य प्राप्त करके जिस तरह असह्य हो उठता है उस तरह धूप के असह्य होने से पहले ही हम चले जाना चाहते हैं। अब तीनों ने मुनि को प्रणाम किया। मुनि ने दोनों भाइयों को गले से लगाकर स्नेहपूर्वक कहा—हे रामचन्द्र, छाया के तुल्य सदा तुम्हारी अनुगामिनी यह सीता है। इसके और लक्ष्मण के साथ आप मङ्गल-मार्ग में यात्रा कीजिए। इन ऋषियों का अन्तःकरण तपस्या से शुद्ध हो गया है। इनके आश्रमों को आप देखिए और उन वनों को देखिए जो बहुमूल-फलयुक्त हैं, पुष्पित हैं, प्रशंसा के योग्य हैं। उन वनों में मृगयूथ हैं, शान्त पक्षी हैं। सरोवर और तालाब फूले-फूले कमलों से शोभित हैं; सुन्दर जल से भूषित हैं और जलकुक्कुटों से मनोहर हैं। मोरों के शब्दों से नादित रमणीय जंगलों को और दृष्टि के लुभानेवाले पर्वतों के झरनों को आप देखते जाइए। हे सौमित्रे, आप भी पधारिए और फिर इस आश्रम में आगमन कीजिएगा। मुनि का यह वचन सुन दोनों भाई उनकी प्रदक्षिणा कर चल दिये। उस समय सीता ने सुन्दर दो तरकस, दो धनुष और दो विमल खड्ग राम-लक्ष्मण को दिये। दोनों भाइयों ने उन शस्त्रों को यथोचित बाँधकर प्रस्थान किया।

---

## नवाँ सर्ग

### सीता का रामचन्द्र के प्रति कुछ धर्मविषयक वचन कहना

अब मार्ग में सीता ने रामचन्द्र से मधुर वचन कहे—हे रामचन्द्र, आप तो महान् हो; परन्तु सूक्ष्म विचार करने से यह एक, इच्छा से उत्पन्न हुआ, दोष आपको प्राप्त होना चाहता है। आपको उस दोष का निवारण करना चाहिए। देखिए काम—इच्छा—से तीन दोष उत्पन्न होते हैं। पहला तो मिथ्या वचन, दूसरा परस्त्रीगमन, तीसरा बिना वैर जीवों की हिंसा करना। इनमें पिछले दो तो बड़े भारी दोष हैं। हे राघव, आपका वचन न तो कभी मिथ्या हुआ और न होगा। परस्त्रीगमन अथवा परस्त्री की अभिलाषा धर्म का नाश करनेवाली है, सो वह काहे को आपको होगी या हुई होगी; क्योंकि आप तो सदा स्वदारनिरत, अर्थात् अपनी ही स्त्री पर अनुराग रखते हैं, इसलिए यह बात आपके मन में भी कभी उत्पन्न नहीं हो सकती। हे रामचन्द्र, आप धर्मात्मा, सत्यसन्ध और पिता की प्रतिज्ञा के पालक हैं, इसलिए आपमें धर्म और सत्य इत्यादि अनेक गुण स्थित हैं,

क्योंकि इन गुणों का निबाहना केवल जितेन्द्रिय पुरुषों का ही काम है। आपकी जितेन्द्रियता तो सब प्राणियों में विख्यात ही है, परन्तु हे शुभदर्शन, यह तीसरा दोष—अर्थात् रौद्रता (मृगया)—जिससे बिना वैर दूसरे के प्राणों की हिंसा की जाती है, आपमें आना चाहता है। हे वीर, आपने जो दण्डकारण्यवासी ऋषियों की रक्षा के लिए संग्राम में राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा की है, वही इस दोष का हेतु देख पड़ती है। हे धर्मज्ञ, यह वन दण्डक नाम से प्रसिद्ध है और इसमें आप दोनों भाइयों ने धनुर्बाण लेकर प्रवेश किया है। आपका प्रस्थान देखकर और आपके परम-कल्याणरूप हितकारी व्रत को सोचकर मेरा मन चिन्ता से व्याकुल हो रहा है। इसलिए हे वीर, आपका इस दण्डक वन में प्रवेश करना मुझे नहीं रुचता। मैं इसका कारण कहती हूँ। सुनिए, आप दोनों भाई हाथों में धनुष-बाण लिये हैं। कहीं ऐसा न हो कि इनके द्वारा बेचारे वनचरों के ऊपर किसी प्रकार की विपत्ति आवे, इनका घात हो। क्योंकि धनुष पास होता है तो क्षत्रियों के तेज और बल को अधिक बढ़ाता है, जैसे कि इन्धन अग्नि को प्रज्वलित करता है। सुनिए, मृग और पक्षियों से संयुक्त किसी वन में पहले एक सत्यधारी पवित्र ऋषि रहते थे। उनकी तपस्या में विघ्न करने की इच्छा से योद्धा का वेष बनाकर और हाथ में खड्ग लेकर इन्द्र उनके आश्रम में आये। इन्द्र ने अपना खड्ग धरोहर की भाँति मुनि को सौंप दिया। अब मुनि महाराज उस खड्ग की रक्षा के विचार से सदा उसे अपने पास रखते थे। जहाँ जाते उसे भी साथ ले जाते थे। कहीं मूल या फल लेने को जाते तो खड्ग को भी साथ ले जाते थे। इस प्रकार नित्य खड्ग को धारण करते-करते मुनि की रौद्र बुद्धि हो गई और तप का निश्चय छूट गया। वे मुनि उसी शस्त्र को सदा पास रखने से हिंसा में तत्पर और प्रमत्त हो गये, जिससे नरक को प्राप्त हुए। हे राघव, यह प्राचीन वृत्तान्त है। शस्त्र का संयोग और अग्नि का संयोग एक सा कहा जाता है। हे प्रभो, आपको मैं स्नेह से और बहुत आदर से इस बात का स्मरण कराती हूँ, कुछ सिखलाती नहीं हूँ। आप भी सदा धनुष लिये रहते हैं, इसलिए आप वैसी बुद्धि कदापि न करना कि बिना वैर दण्डक-वासी राक्षसों को मारने लग जाओ। हे वीर, किसी को बिना अपराध मारा जाय तो सब लोग अनुचित समझते और निन्दा करते हैं। ऐसे व्यक्ति का मान भी नहीं होता। वनों में नियमधारी क्षत्रिय वीरों को दुखियों की रक्षा करने के लिए ही धनुष की आवश्यकता है। देखिए कहाँ तो शस्त्र और कहाँ वन; कहाँ क्षत्रिय-धर्म और कहाँ तपस्या। ये सब परस्पर विरुद्ध हैं इसलिए हमको देश-धर्म, अर्थात् तपोवन का धर्म ही पूजनीय और मान्य है क्योंकि शस्त्रों का सेवन करने से क्रूर जनों की भाँति बुद्धि मैली हो जाती है। फिर जब आप अयोध्या में जाइएगा तब क्षत्रिय-धर्म का सेवन कर लेना। यदि आप राज्यत्यागी होकर नियमवान् मुनि के धर्म का आचरण करेंगे तो मेरे सास-ससुर को बड़ा आनन्द होगा। देखिए, धर्म से अर्थ का लाभ होता है और धर्म ही से सुख की प्राप्ति होती है। कहाँ तक कहूँ, धर्म ही से सब कुछ मिल सकता है इसलिए इस जगत् में धर्म ही सार है। देखिए, चतुर लोग नाना प्रकार के नियमों से यत्नपूर्वक अपने को क्लेश देकर धर्म का साधन करते हैं; क्योंकि सुख से सुख नहीं मिल सकता। इसलिए हे सौम्य, आप इस तपोवन में पवित्र बुद्धि से धर्म का आचरण कीजिए। आप तो सब बातों को ठीक-ठीक जानते ही हैं, इसलिए इस बात का जानना क्या

कठिन है। हे रामचन्द्र, स्त्रीचापल्य दोष से मैंने ये बातें कही हैं, क्योंकि आपके सामने धर्मवक्ता कौन हो सकता है। इसलिए आप लक्ष्मण के साथ इस बात का विचार कर जैसा ठीक समझिए वैसा कीजिए।

---

## दसवाँ सर्ग

### रामचन्द्र का सीता को उत्तर देना

हे देवि, तूने जो स्नेहपूर्वक बातें कहीं वे बहुत ठीक हैं, क्योंकि जैसा कुल का व्यवहार और जैसी धर्म की बात है वह कहनी ही चाहिए। परन्तु देखो अभी तुम्हीं ने कहा है कि क्षत्रिय को इसी लिए धनुष ग्रहण करना चाहिए जिसमें आर्त्त शब्द न सुन पड़े, अर्थात् पीड़ितों की रक्षा हो। अच्छा, देखो ये दण्डकारण्य-वासी मुनि कैसे आर्त्त हो रहे हैं और अपने आप मेरे शरणागत हुए हैं। हे भीरु, भला देखो तो ये बेचारे सर्वदा फल-मूल खाते और वन में रहते हैं। फिर भी इन दुष्ट राक्षसों के मारे इन्हें सुख नहीं। ये नरमांसभोजी राक्षस इन्हें भक्षण किये लेते हैं। हे सीते, अब वे मुनि मेरे पास आकर शरणागत हुए और मैंने उनका वचन सुन, उनके वचन का आदर करके यह बात कही कि आप लोग प्रसन्न रहिए; क्योंकि मुझे इस बात की बड़ी लज्जा है कि इस प्रकार के आप ब्राह्मण लोग, जिनका शरण मुझे लेना उचित है, मेरे शरणागत हुए। कहिए अब मैं आपकी क्या सेवा करूँ। हे सीते, जब मैंने ब्राह्मणों से यह कहा तब उन लोगों ने एकत्रित होकर कहा कि हे राम, इस दण्ड-कारण्य में बहुत से कामरूपी राक्षसों से हम सब पीड़ित हैं। इस समय हमको उनसे बचाइए। वे राक्षस होम के समय आकर हमको दुःख देते हैं। अब हम लोग शरण खोज रहे हैं। हे राघव, आप ही हमारे परम गति हैं। यद्यपि हम लोग अपने तपोबल से उनको मार सकते हैं, तथापि बहुत काल के सञ्चित तप को खण्डित करना नहीं चाहते। क्योंकि इस तप को हमने नित्य बहुत विघ्नों से बचाकर प्राप्त किया है। यह तप अत्यन्त दुश्चर है। वे राक्षस हमको भक्षण भले कर लेते हैं परन्तु हम उनको शाप नहीं देते। देखिए, इस प्रकार हमको ये पीड़ा दे रहे हैं और आप हमारे नाथ हैं, इसलिए हमको बचाइए।

हे जनकात्मजे, उनके ये दीन वचन सुनकर मैंने सब प्रकार से उनकी रक्षा करने की प्रतिज्ञा की है। अब मैं जीते जी इस प्रतिज्ञा को अन्यथा नहीं कर सकता। क्योंकि सत्य ही सदा से मेरा इष्ट है। चाहे मैं अपने प्राण त्याग दूँ या लक्ष्मण के साथ तुमको भी छोड़ दूँ; परन्तु प्रतिज्ञा को न छोड़ूँगा और ब्राह्मणों के विषय में तो कदापि अन्यथा नहीं हो सकता। ऋषियों का पालन तो मुझे अवश्य ही करना चाहिए, चाहे वे कहें या न कहें। अब तो प्रतिज्ञा हो चुकी है इससे कुछ बात ही नहीं है। हे सीते, तुमने जो स्नेह और सौहार्द से यह वचन कहा उससे मैं सन्तुष्ट हूँ, क्योंकि अप्रिय जन को कोई उपदेश नहीं देता। तुमने जो कुछ कहा, वह सब ठीक और योग्य है। वह कुल के अनुसार भी है। क्योंकि तुम मेरी सहधर्मचारिणी और प्राणों से भी अधिक प्यारी हो। यह कहकर, सीता और लक्ष्मण के साथ, रामचन्द्र उस रमणीय तपोवन में चले गये।

---

## ग्यारहवाँ सर्ग

### राम का अनेक आश्रमों में घूमकर फिर सुतीक्ष्ण के आश्रम में आना और वहाँ से अगस्त्य के आश्रम में जाना

आगे-आगे रामचन्द्र, उनके पीछे सीता और सीता के पीछे हाथ में धनुष लिये लक्ष्मण चले जाते थे। ये लोग अनेक प्रकार के पर्वत-शृङ्गों, वनों और नाना प्रकार की नदियों को देखते जाते थे। नदी-तट पर बिहार करनेवाले सारसों, चक्रवाकों और सरोवरों को भी उन्होंने देखा। सरोवरों में फूले-फूले कमल सुशोभित थे। उनमें जलचर पक्षी भी थे। वे झुण्ड के झुण्ड पृषत नाम मृगों, मतवाले हाथियों, भैंसों और पेड़ों के वैरी हाथियों को देखते जा रहे थे। चलते-चलते सूर्यास्त के समय इन्होंने एक तालाब देखा। वह योजन भर विस्तीर्ण था। वह तालाब अनेक कमलों से भरा-पूरा और हाथियों से भूषित था। सारस, बत्तक और हंस भी उसमें थे। उस निर्मल और रमणीय जलवाले तड़ाग में गीत और वाद्य का शब्द सुन पड़ता था, परन्तु वहाँ कोई देख नहीं पड़ता था। तब रामचन्द्र ने एक धर्मभृत नाम मुनि से पूछा कि हे महामुने, यहाँ यह अद्भुत शब्द सुनकर हम लोगों को बड़ा कौतुक हुआ। यह क्या है? आप ठीक-ठीक कहिए।

मुनि ने उत्तर दिया—हे राम, यह "पञ्चाप्सर" नामक तालाब है। इसको "माण्डकर्णि" नामक मुनि ने अपने तपोबल से बनाया है। किसी समय वे मुनि दस हज़ार वर्ष तक वायु-भक्षण करके इस तड़ाग में बड़ी कठोर तपस्या करते रहे थे। तब अग्नि इत्यादि देवता अत्यन्त भयभीत होकर इकट्ठे हुए। परस्पर विचार करके उन्होंने कहा कि यह मुनि हममें से किसी देवता का स्थान लेना चाहता है। उस समय व्याकुल होकर उन देवताओं ने उस मुनि के तप में विघ्न करने के लिए पाँच अप्सराओं को भेजा। उन अप्सराओं की कान्ति बिजली के समान थी। मुनि महाराज इस लोक और परलोक के सब विषयों को जानते थे। उन्हें अप्सराओं ने काम के वश में करके देवताओं का अर्थ साधन किया। वे सब मुनि की पत्नियाँ हो गईं। तब मुनि ने अपने तपोबल से इस तालाब में उनके लिए एक अदृश्य घर बनाया। वे देवाङ्गनाएँ उसमें सुख से रहने और उस मुनि के साथ विहार करने लगीं। अपने तपोयोग से मुनिजी सदा जवान बने रहते थे। हे रामचन्द्र, इस तालाब में वे अप्सराएँ ही क्रीड़ा किया करती हैं। उन्हीं के भूषणों के झणात्कार से मिला हुआ वाद्य का शब्द और यह मनोहर गीत की ध्वनि सुन पड़ती है।

मुनि की यह बात सुनने से लक्ष्मण को और रामचन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ। यही बातचीत करते हुए वे एक आश्रम-मण्डल में पहुँचे। वह कुश और चीर से वेष्टित और ब्राह्मणों के तेजःपुञ्ज से प्रदीप्त था। उसमें जाने पर वहाँ के महर्षियों ने उनका आदर-सत्कार किया। फिर वे वहीं टिक रहे। पहले जिन ऋषियों के आश्रमों में गये थे उन्हीं के आश्रमों में यथाक्रम दुबारा जा-जाकर कहीं दस महीने, कहीं बारह महीने, कहीं चार और कहीं पाँच महीने; कहीं छः, कहीं बारह से अधिक और कहीं इससे भी अधिक महीने, कहीं डेढ़, कहीं तीन और कहीं आठ महीने तक रामचन्द्र ने सुख से निवास किया।

इस प्रकार वन में बसते-बसते रघुनन्दन को दस

वर्ष बीत गये। इसके अनन्तर रामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मण के साथ फिर लौटकर सुतीक्ष्ण के आश्रम में आये। वहाँ भी आदर-सत्कारपूर्वक कुछ समय तक उन्होंने निवास किया। किसी समय रामचन्द्र ने सुतीक्ष्ण महर्षि से पूछा कि भगवन्, मैंने लोगों से सुना है कि इस अरण्य में मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य रहते हैं। परन्तु इस वन के अति विस्तार के कारण उस स्थान को मैं नहीं जानता, इसलिए मुझे बतलाइए कि उनका आश्रम कहाँ है। सीता और लक्ष्मण के साथ मैं उनको प्रसन्न करने और प्रणाम करने जाना चाहता हूँ। मेरे हृदय में यह एक बड़ा मनोरथ है कि मैं आप जाकर उनकी सेवा करूँ। तब सुतीक्ष्ण ने कहा—हे राम, यही बात मैं भी तुमसे कहना चाहता था। बड़े आनन्द की बात है कि उसी विषय को तुमने आप ही मुझसे कहा। सुनो, मैं बतलाता हूँ। यहाँ से चार योजन पर, दक्षिण दिशा में अगस्त्य मुनि के भ्राता का बहुत मनोहर आश्रम है। वहाँ वनप्रान्त में पीपल के अनेक वृक्ष, बहुत पुष्प-फलों से युक्त वृक्ष और नाना पक्षियों से शब्दायमान स्थल हैं। वहाँ अनेक जलाशय हैं जिनमें नाना प्रकार के कमल हैं और हंस, जलकुक्कुट तथा चक्रवाक पक्षी हैं। एक रात वहाँ ठहरकर प्रातःकाल दक्षिण की ओर यात्रा कीजिएगा। वहाँ से एक योजन पर, वनखण्ड के पास, अगस्त्य मुनि का आश्रम है। वह रमणीय और बहुत वृक्षों से युक्त स्थान है। वहाँ पर आप सीता और लक्ष्मण के साथ आनन्द पावेंगे। हे रामचन्द्र, यदि आपको वहाँ जाने की इच्छा है तो आज ही यात्रा कीजिए। यह सुनकर ऋषि को प्रणाम करके तीनों वहाँ से चले। मार्ग में चित्र-विचित्र वनों, मेघ के तुल्य पर्वतों, सरोवरों और नदियों को देखते हुए वे सुतीक्ष्ण के बताये मार्ग से चले जाते थे।

अब रामचन्द्र ने कहा—हे लक्ष्मण, हम जानते हैं कि अगस्त्य के भ्राता का यही आश्रम है। क्योंकि यहाँ पर मुनि के बताये हुए वृक्ष—जो फलों और पुष्पों के भार से झुक गये हैं,—सहस्रों देख पड़ते हैं। यहाँ पर, इस वन के पवन से उड़ा हुआ पके हुए पीपलों का कड़ुआ गन्ध आ रहा है। जहाँ-तहाँ इकट्ठे किये काष्ठ के समूह और कटे हुए—हरे मणि के तुल्य ये कुश देख पड़ते हैं। देखो, वन के बीच में यह, काले मेघ के तुल्य, आश्रम के अग्नि का धुआँ दिखाई देता है। इन एकान्त तीर्थों में ब्राह्मण लोग स्नान करके और अपने हाथों से फूलों को तोड़कर पूजन कर रहे हैं। हे सौम्य, सुतीक्ष्ण के बताये सब चिह्न यहाँ पाये जाते हैं, इसलिए अगस्त्य के भ्राता का आश्रम अवश्य यही होगा। इनके भाई अगस्त्य ने, लोकों के हित की कामना से, मृत्यु का निग्रह कर इस दक्षिण दिशा को पुण्यात्माओं के लिए शरण बना दिया है।

किसी समय ब्राह्मणों के घात करनेवाले महाक्रूर दो महा असुर यहाँ रहते थे। उनका नाम वातापि और इल्वल था। इनमें से इल्वल नामक असुर ब्राह्मण का रूप धारण कर, संस्कृतवाणी बोलता हुआ, श्राद्ध के बहाने ब्राह्मणों को निमन्त्रण देता था और अपने (मेष-रूपधारी) भाई वातापि को, जो मनमाने रूप बना लेता था, मारकर और पकाकर शास्त्र की विधि से ब्राह्मणों को जिमा देता था। जब ब्राह्मण लोग भोजन कर चुकते तब वह बड़े शब्द से चिल्लाकर कहता था कि भाई वातापि, निकल आओ। भाई की आवाज सुनते ही वह वातापि असुर बकरे के सदृश शब्द करता हुआ, ब्राह्मणों के शरीरों को फाड़कर निकल आता था। हे लक्ष्मण, इस प्रकार उन कामरूपी मांस-भक्षक राक्षसों ने सहस्रों ब्राह्मणों को

मार डाला। तब देवताओं ने आकर अगस्त्य मुनि की प्रार्थना की। इस पर मुनि ने श्राद्ध में उसी प्रकार से वातापि को भक्षण कर लिया। तदनन्तर इल्वल ने "सम्पन्न*" शब्द कहकर मुनि के हाथ पर अवनेजनी दिया और पूर्ववत् निकल आने के लिए भाई को पुकारा। तब मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य हँसकर बोले कि हे इल्वल, अब वातापि कहाँ, उसको तो मैंने पचा डाला। बाहर निकल आने की अब उसमें सामर्थ्य कहाँ? मेषरूप तेरा भाई तो अब यमपुरी को सिधारा। मुनि का यह वचन सुनकर और भाई का विनाश देखकर इल्वल राक्षस क्रोध से मुनि के ऊपर दौड़ा। तब उन्होंने प्रज्वलित अग्नि के तुल्य नेत्र से उसको जला डाला। हे लक्ष्मण, यह उन्हीं अगस्त्य मुनि के भाई का तड़ाग और वन से शोभित आश्रम है, जिन्होंने ब्राह्मणों के लिए ऐसा कठिन काम किया था।

इस प्रकार बातचीत करते हुए रामचन्द्र को सन्ध्या-काल हो गया। तब उन्होंने भाई के साथ सन्ध्योपासन किया और आश्रम में जाकर ऋषि को प्रणाम किया। मुनि से सत्कारपूर्वक फल-मूल पाकर रात को उन्होंने वहीं निवास किया। फिर प्रातःकाल उठकर रामचन्द्र ने मुनि से कहा—भगवन्, रातभर हम यहाँ सुख से रहे। अब आपसे बिदा चाहते हैं, क्योंकि हम आपके बड़े भाई के दर्शन करना चाहते हैं।

तब मुनि ने राम को बिदा किया। रामचन्द्र उसी मार्ग से वन को देखते हुए चले। उस वन में नीवार, कटहल, अशोक, धव, करञ्ज, बेल, महुआ और तेंदू आदि वृक्ष पुष्पित और पुष्पित लताओं से शोभित थे। उनमें से सैकड़ों को हाथियों ने शुण्डों से मर्दन कर डाला था। उन वृक्षों पर बन्दर कूदते-फाँदते और सैकड़ों मत्त पक्षियों के झुण्ड चहचहा रहे थे। उनको देखकर पीछे पीछे चले आनेवाले लक्ष्मण से राम ने कहा—हे लक्ष्मण, इन सरस पत्तोंवाले वृक्षों और क्षमायुक्त मृग-पक्षियों को देखने से मैं जानता हूँ कि महर्षि का आश्रम अब दूर नहीं। लोक में जो मुनि अपने कर्म से 'अगस्त्य' नाम से विख्यात हैं उनका, थके हुए पुरुषों की थकावट को दूर करनेवाला, आश्रम यही देख पड़ता है जहाँ वन में चारों ओर से धुआँ उठ रहा है। यहाँ के सब मृग शान्त देख पड़ते और पक्षी शब्द कर रहे हैं। हे लक्ष्मण, इन्हीं मुनिजी ने, मृत्यु को अपने वश में करके, लोकों के हित की कामना से दक्षिण दिशा को पुण्यात्माओं के रहने-योग्य बनाया है। इन्हीं के प्रभाव से राक्षस लोग मारे डर के इस दक्षिण दिशा को देखते तो हैं परन्तु आते नहीं। जब से इन्होंने इस दिशा में निवास किया है तब से यहाँ के सब राक्षस वैर-रहित और शान्त हो गये हैं। इन्हीं के प्रभाव से यह दिशा तीनों लोकों में प्रदक्षिणा नाम से विख्यात हुई। क्योंकि क्रूरकर्मा राक्षस भी इस दिशा की ओर दृष्टि नहीं करते। विन्ध्य पर्वत इन्हीं की आज्ञा का पालन अब तक कर रहा है। उसने बढ़ना बन्द कर दिया है। पहले वह सूर्य का मार्ग रोकने के लिए प्रवृत्त हुआ था। हे सौमित्रे, यही उन दीर्घायु अगस्त्य का आश्रम है। ये मुनि लोगों से पूजित और साधु हैं। ये सज्जनों के हित में सदा तत्पर रहते हैं। ये हमारा कल्याण करेंगे। हे सौम्य, मैं इनका आराधन करूँगा और वनवास का शेष समय यहीं बिताऊँगा। इस आश्रम में देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि लोग सदा नियताहार होकर अगस्त्य की उपासना करते हैं। इसके स्थान में मिथ्यावादी,

* श्राद्ध की परिपूर्णता।

† भोजन के अनन्तर का आचमन।

क्रूर, धूर्त्त, हिंसक और पापी नहीं जी सकते। यहाँ देव, यक्ष, नाग और गरुड़ इत्यादि बड़े-बड़े पक्षी नियताहार होकर धर्म की आराधना के लिए रहते हैं। यहाँ जो महात्मा सिद्ध लोग और परमर्षि लोग शरीर त्यागते हैं वे दिव्य शरीर धारण कर, सूर्य-सदृश विमानों पर चढ़-कर स्वर्ग को चले जाते हैं। यहाँ पुण्यात्मा प्राणियों-द्वारा आराधना किये जाने पर देवता लोग यक्षत्व, अमरत्व और नाना प्रकार के राज्य देते हैं। हे सौमित्रे, हम लोग अब आश्रम में आ गये। अब तुम आगे जाओ और ऋषि को हमारे आने का समाचार सुनाओ।

---

## बारहवाँ सर्ग

### रामचन्द्र का अगस्त्य से मिलना और अगस्त्य का राम को शस्त्र देना

आश्रम में पहुँचकर लक्ष्मण ने मुनि के शिष्य से कहा कि महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र अपनी भार्या सीता के साथ यहाँ मुनि के दर्शन करने आये हैं। मैं उनका छोटा भाई लक्ष्मण हूँ। मैं उनका भक्त हूँ और उनके मन के अनुसार काम करता हूँ। कदाचित् तुमने सुना भी हो कि हम लोग पिता की आज्ञा से वन में आये हैं। हम भगवान् मुनि को देखना चाहते हैं, इसलिए आप उनको यह समाचार दे दीजिए। लक्ष्मण का यह वचन सुन वह शिष्य बहुत अच्छा कहकर अग्निशाला में गया। वहाँ पर मुनि को लक्ष्मण का सँदेशा सुनाकर वह हाथ जोड़े खड़ा रहा। मुनि ने राम के आने का संवाद सुनकर कहा कि बड़े आनन्द की बात है जो बहुत दिन के बाद रामचन्द्र मेरे दर्शन करने आये हैं। मैं भी अपने मन से रामचन्द्र के आने की आकांक्षा कर रहा था; सो तुम जाओ, राम को लक्ष्मण और सीता के साथ सत्कारपूर्वक लिवा लाओ। तुम उनको शीघ्र मेरे पास क्यों नहीं लाये?

मुनि की आज्ञा पाकर शिष्य ने प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बहुत अच्छा कहा। फिर उसने शीघ्रता से बाहर निकलकर लक्ष्मण से कहा कि कौन रामचन्द्र हैं, वे आवें और मुनि के दर्शन करें। तब लक्ष्मण उस शिष्य को साथ ले रामचन्द्र के पास आये। शिष्य ने नम्रतापूर्वक अगस्त्य का वचन रामचन्द्र से कहा। वह सत्कारपूर्वक रामचन्द्र को सीता-सहित लिवा ले गया। तब रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता उस आश्रम में गये। इन तीनों ने उस आश्रम में ब्रह्मा, अग्नि, विष्णु, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, भग, कुबेर, धाता, विधाता, वायु, वरुण, गायत्री, आठों वसु, नागराज, गरुड़, स्वामिकार्त्तिक और धर्म के स्थानों को देखा। इतने में शिष्यों को साथ लिये मुनि भी आ गये। तब रामचन्द्र ने अति तेजस्वी मुनि को देखकर भाई से कहा—हे लक्ष्मण, देखो मुनि आप ही आते हैं, सो आगे चलो। यह कह-कर रामचन्द्र ने उनके चरणों को ग्रहण किया। हाथ जोड़कर वे मुनि के समीप खड़े रहे। सीता और लक्ष्मण ने भी मुनि को प्रणाम किया। तब मुनि ने आसन और जल से राम का सत्कार कर और कुशल पूछकर बैठने को कहा। फिर आपने अग्नि का हवन करके अर्घ्य दिया और अतिथियों का पूजन करके वानप्रस्थ की रीति से इन तीनों को भोजन दिया। तदनन्तर वे मुनिश्रेष्ठ आसन पर बैठकर रामचन्द्र से बोले—हे काकुत्स्थ, जो तपस्वी अन्यथा करे अर्थात् धर्म-मार्ग से व्यवहार न करे, तो वह परलोक में मिथ्या-वादी साक्षी की नाईं अपना मांस भक्षण करता है।

आप लोक के राजा, धर्मचारी और महारथ हैं। आप मेरे प्रिय अतिथि हैं इसलिए आपकी पूजा और मान करना मेरे लिए आवश्यक है। अब उन्होंने फल, मूल, पुष्प और अन्य पदार्थ लाकर रामचन्द्र का यथेष्ट सत्कार किया। फिर वे बोले—हे पुरुषसिंह, यह दिव्य धनुष सुवर्ण और हीरों से भूषित है। इसको विश्वकर्मा ने विष्णु के लिए बनाया था। इसे आप ग्रहण कीजिए। ब्रह्मा के दिये हुए इस अमोघ, सूर्यतुल्य प्रदीप्त उत्तम बाण को आप ग्रहण कीजिए। इन्द्र के दिये हुए इन अक्षय बाणवाले तरकसों को भी लीजिए। इनमें प्रज्वलित अग्नि के तुल्य पैनी धार के बाण भरे हुए हैं। सुवर्ण के कोश से युक्त इस सुवर्ण-भूषित खड्ग को विजय के लिए ग्रहण कीजिए। हे रामचन्द्र, इसी धनुष से विष्णु ने संग्राम में बड़े-बड़े असुरों को मारकर देवताओं के लिए जयलक्ष्मी प्राप्त की थी। इन्द्र जिस तरह वज्र को धारण करते हैं उसी तरह आप इन शस्त्रों को ग्रहण कीजिए। यह कहकर मुनि ने वे सब शस्त्र रामचन्द्र को समर्पण कर दिये।

---

## तेरहवाँ सर्ग

### रामचन्द्र का ऋषि से बिदा होकर ऋषि की बताई हुई पञ्चवटी में जाना

फिर ऋषि बोले कि हे रामचन्द्र, मैं प्रसन्न हुआ। हे लक्ष्मण, मैं सन्तुष्ट हुआ जो तुम दोनों भाई सीता के साथ मुझे प्रणाम करने को आये हो। मार्ग का श्रम तुमको बाधा दे रहा है और मैथिली भी अत्यन्त पीड़ित हो रही है। देखो, इस सुकुमारी ने इस प्रकार दुःख कभी नहीं सहे। इस महा-कष्ट-युक्त वन में यह पति के स्नेह से आई है। अब ऐसा करो जिससे इसको सुख मिले। इसने यह बड़ा दुष्कर कर्म किया, जो तुम्हारे साथ वन में चली आई। सृष्टि के प्रारम्भ से स्त्रियों का यही स्वभाव रहा है कि सम्पत्तियुक्त पति पर तो वे अनुराग करती हैं, परन्तु उसको दुःख-दारिद्र्य-युक्त देख त्याग देती हैं। ये स्त्रियाँ बिजली की चमक की तरह चञ्चल होती हैं। ये शस्त्रों की धार के समान तो तेज, और गरुड़ तथा वायु की शीघ्रता की अनुगामिनी होती हैं; परन्तु हे रामचन्द्र, आपकी भार्या में ये दोष नहीं। इसलिए यह स्तुति के योग्य है। अरुन्धती को देवता जैसा मानते हैं वैसा इसके साथ भी होना चाहिए। हे रामचन्द्र, यह देश बहुत सुशोभित है। यहाँ आप सीता और लक्ष्मण के साथ रहें।

तब रामचन्द्र ने हाथ जोड़कर मुनि से कहा—मेरे गुणों से तथा मेरे भाई और भार्या के आचरण से आप हमारे गुरुतुल्य सन्तुष्ट हैं इसलिए मैं धन्य और अनुगृहीत हुआ। हे मुनिनायक, अब आप मुझे ऐसा स्थान बतलाइए जहाँ मैं आश्रम बनाकर आनन्द से रहूँ। वहाँ जल का आराम होना चाहिए। मनोहर वनों से वह स्थान शोभित भी हो।

तब मुनि ने मुहूर्त्त भर सोचकर कहा—हे राघव, यहाँ से एक योजन दूर पञ्चवटी नाम से विख्यात एक स्थान है। उसमें मूल, फल बहुत हैं और जल की भी कमी नहीं। मृगों से तो वह भरा पड़ा है। वहाँ जाकर आप आश्रम बनाकर रहिए और पिता के वचन का पालन कीजिए। हे दोषहीन, तपस्या के प्रभाव से और दशरथ के स्नेह से मुझे तुम्हारा सब वृत्तान्त विदित है। मैंने तपोबल से तुम्हारे मन का सब अभिप्राय जान लिया कि मेरे समीप रहने की प्रतिज्ञा कर फिर मुझसे ही स्थान पूछते हो। हे रामचन्द्र, तुम पञ्चवटी में

रामचन्द्रजी का पञ्चवटी-गमन। [पृष्ठ २७०

जाओ। वही रमणीय वनस्थल है। वहाँ सीता का भी मन लग जायगा। क्योंकि वह देश सराहने के योग्य है। वह दूर भी नहीं। वह गोदावरी नदी के समीप है। वैदेही वहाँ प्रसन्नता से रहेगी। वहाँ पक्षियों के अनेक झुण्ड हैं। हे महाबाहो, वह एकान्त, पवित्र और रमणीय देश है। हे रामचन्द्र, आप सदाचार और रक्षा में समर्थ हैं। वहाँ रहकर आप तपस्वियों का पालन करेंगे। हे वीर, देखो जो यह महुओं का महावन देख पड़ता है, इसके उत्तर ओर से जाने पर एक बड़ का वृक्ष मिलेगा। इसके पास, पर्वत के समीप, पुष्पित वन से नित्य सुशोभित पञ्चवटी है।

तब लक्ष्मण ने और रघुनन्दन ने मुनि से बिदा माँगी। आज्ञा पाकर दोनों भाई मुनि को प्रणाम कर पञ्चवटी को चले। अब दोनों भाई धनुष को लिये और तरकस को कसे हुए सावधान होकर ऋषि के बतलाये मार्ग से पञ्चवटी को चल दिये।

---

## चौदहवाँ सर्ग

### जटायु से मिलना और उसकी वंशावली सुनना

अब इन तीनों ने मार्ग में जाते-जाते एक भारी शरीर के भयङ्कर पराक्रमवाले गीध को देखा। दोनों भाइयों ने उस पक्षी को राक्षस जानकर उससे पूछा—तुम कौन हो? तब वह गीध मधुर वाणी से, रामचन्द्र को प्रसन्न करता हुआ, बोला कि हे वत्स, तुम मुझे अपने पिता का मित्र जानो। रामचन्द्र ने उसे अपने पिता का मित्र जानकर उसका आदर किया और उसका कुल तथा नाम पूछा। तब वह गीध अपना कुल और सब प्राणियों की उत्पत्ति वर्णन करके कहने लगा—

हे राघव, पहले जो प्रजापति हुए हैं उनका मैं आदि से वर्णन करता हूँ, आप सुनिए। इन प्रजापतियों में पहला कर्दम, तदनन्तर विकृत, फिर शेष, फिर संश्रय, तदनन्तर बहुपुत्र, इसके अनन्तर स्थाणु, फिर मरीचि, तदनन्तर अत्रि, तदनन्तर क्रतु, फिर पुलस्त्य, फिर अंगिरा, फिर प्रचेता, तदनन्तर पुलह, तदनन्तर दक्ष, फिर विवस्वान, फिर अरिष्टनेमि और सबसे पिछले कश्यप हुए। दक्ष प्रजापति के साठ कन्याएँ हुई। वे बड़ी यशस्विनी थीं। उनमें से आठ कन्याओं को कश्यप ने ग्रहण किया। उनके नाम अदिति, दिति, दनु, कालका, ताम्रा, क्रोधवशा, मनु और अनला हैं। उन आठों से कश्यप ने कहा कि तुम ऐसे पुत्रों को उत्पन्न करो जो हमारे तुल्य और त्रैलोक्य के स्वामी हों। ऋषि की यह बात सुन अदिति, दिति, दनु और कालका ने तो अङ्गीकार कर लिया पर शेष स्त्रियों ने न माना। अदिति से तैंतीस देवता (अर्थात् १२ आदित्य, ८ वसु, ११ रुद्र और २ अश्विनीकुमार) उत्पन्न हुए और दिति से दैत्य उत्पन्न हुए। पहले यह सम्पूर्ण वन और समुद्र से भूषित पृथ्वी इन्हीं के अधिकार में थी। दनु नामक स्त्री ने अश्वग्रीव नामक पुत्र पैदा किया। कालका स्त्री ने नरक और कालक नाम के दो पुत्र उत्पन्न किये। ताम्रा ने क्रौंची, भासी, श्येनी, धृतराष्ट्री और शुकी इन पाँच कन्याओं को उत्पन्न किया। अब क्रौञ्ची ने उलूकों को और भासी ने भाषक नाम पक्षियों को पैदा किया। श्येनी ने बाज और गीध उत्पन्न किये। धृतराष्ट्री ने हंसों, राजहंसों और चक्रवाकों को उत्पन्न किया। शुकी ने नता नामक कन्या को उत्पन्न किया। उसके विनता नामक पुत्री हुई। क्रोधवशा ने मृगी, मृगमन्दा, हरी,

भद्रमदा, मातङ्गी, शार्दूली, श्वेता, सुरभि सुरसा और कद्रुका, इन दस कन्याओं को उत्पन्न किया। मृगी से मृग और मृगमन्दा से ऋक्ष, सृमर और चमर नामक मृग उत्पन्न हुए। तदनन्तर भद्रमदा से इरावती नामक कन्या हुई उसका पुत्र ऐरावत नामक महागज हुआ। हरी नामक स्त्री से सिंह, वानर और गोलांगूल (एक प्रकार के वानर) उत्पन्न हुए। शार्दूली से व्याघ्र और मातङ्गी से हाथी उत्पन्न हुए। श्वेता के पुत्र दिग्गज हुए। सुरभि की दो पुत्रियाँ थीं। एक रोहिणी, दूसरी गन्धर्वी; इनमें पहली ने गायों को और दूसरी ने घोड़ों को पैदा किया और सुरसा ने नाग नामक (बहुफणधारी) सर्पों को और कद्रू ने पन्नग नामक (एक दो फणधारी) सर्पों को पैदा किया। मनु नाम की स्त्री ने मनुष्यों को अर्थात् ब्राह्मणादि चारों वर्णों को उत्पन्न किया। उनमें मुख से ब्राह्मण, बाँहों से क्षत्रिय, जाँघों से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए—ऐसी श्रुति है। अनला नामक स्त्री ने सम्पूर्ण पवित्र फलवाले वृक्षों को उत्पन्न किया। विनता शुकी की पौत्री थी। कद्रू और सुरसा ये दोनों बहनें थीं। इनमें कद्रू ने सहस्र नागों को, जो पृथ्वी को धारण करते हैं, उत्पन्न किया। विनता के दो पुत्र हुए। पहला गरुड़ दूसरा अरुण। मैं अरुण का पुत्र हूँ। मेरा बड़ा भाई सम्पाति है। मेरा नाम जटायु है। मैं श्येनी से उत्पन्न हूँ। हे रामचन्द्र, तुम चाहो तो मैं तुम्हारे वनवास में सहायक बनूँ। जब तुम और लक्ष्मण आश्रम छोड़कर कहीं चले जाओगे तब मैं सीता की रक्षा किया करूँगा।

जटायु का वचन सुनकर रामचन्द्र आदर और हर्ष से उससे मिले। उन्होंने उसको प्रणाम भी किया, क्योंकि उसने बार-बार कहा था कि मैं तुम्हारे पिता का मित्र हूँ। सीता की रक्षा करने में जटायु का भरोसा कर और उसको साथ लेकर वे पञ्चवटी को चले। वे शत्रुओं को भस्म करने की और वनों के पालन करने की इच्छा करते जाते थे।

——

## पन्द्रहवाँ सर्ग

### रामचन्द्र का लक्ष्मण से कुटी बनवाना और पञ्चवटी में रहना

पञ्चवटी नाना प्रकार के मृगों और सर्पों से भरी हुई थी। उसमें पहुँचकर रामचन्द्र ने लक्ष्मण से कहा—हे सौम्य, हम लोग मुनि के बताये हुए स्थान पर आ गये। यही पञ्चवटी है। इसमें पुष्पित जङ्गल देख पड़ते हैं। अब तुम चारों ओर दृष्टि फैलाकर देखो कि हम लोगों के लिए कौन सा स्थान अच्छा होगा; क्योंकि वन के विषय में तुम निपुण हो। हे लक्ष्मण, ऐसा स्थान देखना चाहिए जहाँ वैदेही और हम तुम आनन्द से रहें। ऐसा स्थान खोजो जिसके समीप ही जलाशय हो, वन की रमणीयता हो और जल की सुन्दरता हो। ऐसा स्थान देखो जहाँ समिधा, पुष्प और कुश समीप मिलें। तब लक्ष्मण ने कहा—हे काकुत्स्थ, मैं तो आपके अधीन हूँ। चाहे आप सौ वर्ष तक क्यों न वनवास करें। आप ही जिस रुचिर स्थान को पसन्द कर मुझे आज्ञा दीजिए वहाँ मैं रहने की सामग्री प्रस्तुत करूँ। यह सुनकर रामचन्द्रजी प्रसन्न हुए। लक्ष्मण का हाथ पकड़कर उन्होंने कहा—यह जगह समतल, शोभा-युक्त और पुष्पित वृक्षों से रमणीय है। इसलिए यहीं पर आश्रम की यथोचित रचना करो। देखो, यह पुष्करिणी है। इसमें ये कमलों के पौदे कैसे सुन्दर देख पड़ते हैं। इनमें ये सूर्य के से चमकीले फूल फले और

सुगन्धयुक्त कमल लगे हैं। हे लक्ष्मण, महात्मा मुनि ने जैसा बताया था वैसा ही सब कुछ यहाँ है। देखो, यह रमणीय गोदावरी नदी देख पड़ती है। इसके तटों पर पुष्पित वृक्ष लगे हैं। हंस, जलकुक्कुट और चक्रवाकों से यह शोभित है। यह बहुत दूर भी नहीं है। इसके तीर पर मृगों के झुण्ड विहार करते हैं। यहाँ पर ऊँचे-ऊँचे अनेक रमणीय पर्वत हैं, जहाँ मोर बोलते हैं। वे अनेक कन्दराओं से शोभित हैं और फूले-फूले वृक्षों से भरे-पूरे हैं। स्थान-स्थान पर सोने-चाँदी और ताम्र धातुओं से वे पर्वत सजाये हुए हाथियों की नाईं मनोहर देख पड़ते हैं। इनमें साखू, ताल, तमाल, खजूर, कटहर, तिन्नी, तिमिश नामक वनवृक्ष, नागकेशर, आम, अशोक, तिलक, केवड़ा और चम्पा के वृक्ष पुष्प, गुच्छा और लताओं से वेष्टित हैं। इनमें स्यन्दन नामक वनवृक्ष, चन्दन, कदम्ब, बड़हर, धव, अश्वकर्ण, खैर, शमी और गुलाल के वृक्ष भी देख पड़ते हैं। इसलिए हे सौमित्रे, यह स्थान पवित्र और रमणीय है। मृग और पक्षी भी यहाँ खूब हैं। इसलिए इस पक्षी (जटायु) के साथ हम लोग यहीं निवास करें।

राम की अनुमति पाकर लक्ष्मण शीघ्र आश्रम के बनाने में लग गये। इस पर्णशाला पर शमी वृक्ष की शाखाएँ छाई गईं; पक्के बन्धनों से वे बाँधी गईं; कुश, कास और सरपत का उस पर अच्छा छप्पर डाला गया; नीचे की जगह उत्तम रूप से समतल की गई और उसमें स्थान भी खूब लम्बा-चौड़ा रक्खा गया। उसमें बाँस के लम्बे-लम्बे सुन्दर खम्भे थे। इसके अनन्तर गोदावरी में नहाकर और कमल के पुष्पों को तथा वन्य फूलों को लेकर लक्ष्मण कुटी में आये। पुष्पबलि और यथाविधि वास्तु-शान्ति* करके उन्होंने वह आश्रम-स्थान रामचन्द्र को दिखलाया। तब सीता-सहित रामचन्द्र उस आश्रम को देखकर और अति प्रसन्नता से लक्ष्मण को गले लगाकर बोले—हे लक्ष्मण, मैं तुम्हारे इस काम से बड़ा प्रसन्न हुआ। इसी से मैंने यह आलिङ्गनरूप भेंट तुमको दी। हे लक्ष्मण, तुम चित्त के अभिप्राय को जाननेवाले, उपकार को माननेवाले और धर्मज्ञ हो। तुम्हारे ऐसे पुत्र के द्वारा तो मैं ऐसा मानता हूँ कि मेरे धर्मात्मा पिता नहीं मरे—वे अब तक जीवित जान पड़ते हैं।

इस प्रकार लक्ष्मण से कहकर रामचन्द्र उस बहुफलवान् देश में निवास करने लगे। रामचन्द्र की सेवा में सीता और लक्ष्मण यथाविधि तत्पर थे। इस रीति से श्रीरघुनन्दन ने वहाँ, स्वर्ग में देवताओं की नाईं, कुछ समय तक निवास किया।

---

## सोलहवाँ सर्ग

### लक्ष्मण का हेमन्त ऋतु का वर्णन करना

इस प्रकार वहाँ रहते-रहते रामचन्द्र को शरदृतु बीती और प्यारी हेमन्त ऋतु आ गई। एक दिन, रात के सबेरे पहर, श्रीरघुनन्दन रमणीय गोदावरी नदी में नहाने चले। उस समय लक्ष्मण नम्रतापूर्वक हाथ में कलश लिये सीता के साथ पीछे-पीछे चले और कहने लगे—हे प्रियंवद रामचन्द्र, वह समय आ गया जो तुम्हें प्यारा है और जिससे यह वर्ष भूषित जान पड़ता है। देखिए, पाले से यह संसार रूखा देख पड़ने लगा। पृथ्वी भी अन्न से पूर्ण हो गई। जल इस समय सेवन के अयोग्य और अग्नि मनोहर जान पड़ता है।

* नये घर की शान्तिकर्म्म-विधि

सज्जन लोग नवान्न की पूजा से पितरों और देवताओं का पूजन करके पाप-रहित हुए। गोरस से पूर्ण होकर ये देश पूर्ण मनोरथ हुए। विजय की इच्छा से राजा लोग यात्रा करने लगे। सूर्य्यनारायण इस दक्षिण दिशा का सेवन करते हैं, इससे यह उत्तर दिशा टीका-रहित होकर प्रकाशहीन हो गई। हिमालय स्वभाव ही से हिम-समूह से पूर्ण रहता है। इस समय वह, सूर्य्य के दूर हो जाने से, अपने हिमवान् नाम को चरितार्थ कर रहा है। आजकल के दिन इधर-उधर घूमने के योग्य और मध्याह्न में सुखस्पर्श हैं। ये दिन सुखपूर्वक सेवन के योग्य सूर्य्य से मनोहर हैं; छाया और जल के द्वारा इस ऋतु के दिन दुःखदायक हैं। सूर्य्य में पहले जैसी तेजी नहीं। कुहरा पड़ता है और ठण्डी हवा चलती है। इससे इन दिनों कड़ी ठण्ड पड़ती है। वन शून्य हैं, और पाला लगने से वृक्षों के पत्ते झड़ गये हैं। आजकल की रात्रि आकाशनिद्रा से हीन (अर्थात् इन रात्रियों में कोई भी आकाश के नीचे नहीं सोता) है, पुष्य नक्षत्र के द्वारा इन रात्रियों का काल-परिमाण जान पड़ता है। ये हिम से धुँधली रहती हैं। खासी ठंड पड़ती है और बहुत बड़े-बड़े पहर होते हैं। इस समय चन्द्रमा की सम्पूर्ण सुन्दरता और मनोहरता सूर्य्य-मण्डल में चली गई है। हिम के मारे उसका मण्डल कुछ अरुण रङ्ग का हो रहा है। वह निःश्वास से अन्धे दर्पण की नाईं प्रकाशित नहीं देख पड़ता। देखिए, इस चंद्र की प्रभा ओस से मलिन हो रही है। वह प्रभा पूर्णमासी की रात में भी शोभा नहीं देती जैसी कि उष्णता से श्यामवर्ण हुई सीता केवल पहचानी जाती है किन्तु शोभित नहीं होती। यह स्वभाव से ही शीतल पश्चिम वायु, हिम से मिलित हो, इस समय दुगुना शीतल होकर बह रहा है। ये जौ-गेहूँ के खेतों से युक्त वन ओस के जल से भर रहे हैं। सूर्य्य के उदय होने पर ये क्रौञ्च और सारस पक्षियों के शब्दों से शोभा दे रहे हैं। कुछ थोड़े लम्बे और सुनहरे रङ्ग के इन धान के पौदों के मस्तक चावलों से परिपूर्ण हैं। ये खजूर के पुष्पों के तुल्य शोभा दे रहे हैं। देखिए, यह सूर्य्य कितना ऊपर चढ़ आया है, तो भी पाले और ओस के मारे—किरणों का प्रकाश न होने से—चन्द्र की नाईं देख पड़ता है। इसका तेज पूर्वाह्न में तो कुछ जान ही नहीं पड़ता, परन्तु मध्याह्न में स्पर्श सुखदायक है। यह सूर्य कुछ पीला सा पृथ्वी पर शोभा दे रहा है। इस वन की भूमि की ओर दृष्टि कीजिए। इसके हरे-हरे तृण ओस के गिरने से कुछ गीले हो गये हैं, उन पर सूर्य्य की नवीन किरण गिरने से कैसी शोभा हो रही है। देखिए, यह जंगली हाथी प्यास से अत्यन्त पीड़ित है। किन्तु अत्यन्त शीतल जल के स्पर्श से यह अपने शुण्डा-दण्ड को सिकोड़ता है। ये जलविहारी पक्षी जल में नहीं जाते। तीर पर ये चुप-चाप ऐसे बैठ रहे हैं जैसे कायर लोग संग्राम से डरकर मौन हो बैठ रहते हैं। इस कुहरे के अन्धकार से यह वन-समूह सोता और पुष्पहीन सा दिखाई देता है। इस समय नदियों का जल भाप में छिपा हुआ है, किनारे की बालू ओस से भीग गई है, और सारसों की पहचान उनकी बोली से हो रही है, क्योंकि धुन्ध के मारे वे दीख नहीं पड़ते। देखिए, पर्वत के उच्च शृंग का जल तुषार गिरने से और सूर्य्य के बहुत न तपने से, शीतलता के कारण, बहुधा स्वाद लगता है। इधर इन कमलों की दशा देखिए। इनके पत्ते जीर्ण होकर झड़ गये; केसर और कर्णिका टूट-फूटकर तितर-बितर हो गई; मारे पाले के ध्वस्त हो अब ये केवल नालदण्ड खड़े हैं। सरोवर में इनकी कुछ भी शोभा नहीं रही।

हे पुरुषसिंह, इस समय तुम्हारी भक्ति से अयोध्या नगरी में भरत, क्लेश सहकर, तपस्या कर रहे हैं। वे राज्य-मान नाना भोगों को छोड़कर नियमित भोजन करते और इस शीतल भूमि पर सोते हैं। इस समय वे भी अपने प्रधानों के साथ, स्नान करने के लिए, नित्य सरयू नदी के तीर पर जाते होंगे। भरत सुख से बढ़े हैं। उनका शरीर सुकुमार है। पिछली रात में, हिम से पीड़ित होकर, वे सरयू में कैसे नहाते होंगे। देखिए, ये भरत कमलनेत्र, श्यामवर्ण, श्रीयुक्त और क्षीणकटि हैं। ये धर्मज्ञ, सत्यवादी, लज्जाशील, जितेन्द्रिय, प्रियवादी, मधुर और दीर्घबाहु हैं। ये सब प्रकार के सुख-भोगों को छोड़ सब प्रकार से आपकी सेवा में तत्पर हो रहे हैं। हे रामचन्द्र, आपके भाई भरत ने स्वर्ग को जीत लिया। क्योंकि वनवास करनेवाले आपकी तपस्या का वे अनुगमन कर रहे हैं। लोक में यह बात विख्यात है कि मनुष्य माता के स्वभाव के अनुसार बर्तता है, पिता का अनुगामी नहीं होता। किन्तु भरत ने यह बात झूठी कर डाली। देखिए, महाराज दशरथ तो जिसके पति और भरत के ऐसे साधु जिसके पुत्र हैं वह अम्बा कैकेयी ऐसी क्रूरदृष्टि क्यों हुई।

लक्ष्मण की ये स्नेहयुक्त बातें सुनकर और माता की निन्दा न सहकर रामचन्द्र बोले—हे तात, तुमको मँझली माता कैकेयी की निन्दा करना उचित नहीं। तुम उन्हीं इक्ष्वाकुनाथ भरत की बात करो। क्योंकि वनवास में मेरी बुद्धि निश्चित और दृढ़ है। हाँ, भरत के स्नेह से सन्तप्त होकर जब-तब व्याकुल अवश्य हो जाती है। भरत के वाक्य बहुत ही प्रिय, मधुर, हृदयामृत और मन को आनन्द देनेवाले हैं। मैं उन्हीं वाक्यों का स्मरण करता हूँ। हा, महात्मा भरत, शत्रुघ्न और तुम्हारे साथ इकट्ठा होकर मैं कब मिलूँगा। इस तरह विलाप करके रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण के साथ, स्नान और देव-पितरों का तर्पण कर उदयाचल पर प्राप्त सूर्य्य की तथा दूसरे देवताओं की स्तुति करने लगे। स्नान कर लेने पर उस समय इन तीनों की ऐसी शोभा हुई जैसी पार्वती और नन्दी-सहित भगवान् शिव की होती है।

---

## सत्रहवाँ सर्ग

### राम को देख शूर्पणखा का मोहित होना और राम को अपना पति बनाने की इच्छा करना

ये तीनों, स्नान कर, नदी-तीर से अपने आश्रम में आ गये। लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र ने नित्य नियम करके पर्णशाला में जाकर निवास किया। ऋषियों से पूजित होकर सीता के साथ रामचन्द्र वहाँ पर ऐसे शोभित होते थे जैसे चित्रा नक्षत्र सहित चन्द्रमा सुन्दर देख पड़ता है। उस समय रामचन्द्र बातचीत में लग रहे थे कि अकस्मात् वहाँ कोई राक्षसी आई। वह रावण की बहन थी। नाम उसका शूर्पणखा था। रामचन्द्रजी का मुख दीप्त था। उनकी भुजाएँ विशाल थीं और कमलपत्र के तुल्य विशाल नेत्र थे। गज के तुल्य उनकी चाल थी। वे जटामण्डलधारी और सुकुमार थे। वे महाबली राजचिह्नों से सुशोभित थे। नील कमल के तुल्य उनका श्याम वर्ण था। वे काम के तुल्य सुन्दर और इन्द्र के तुल्य विराजमान थे। ऐसे देव-तुल्य रामचन्द्र को देख वह राक्षसी काम से मोहित हो गई। उस दुर्मुखी का बड़ा पेट, बुरे नेत्र, लाल रङ्ग के केश और भद्दा रूप था। उसका स्वर

भयङ्कर और कठोर था। वह वृद्धा, वक्रभाषिणी, दुराचारिणी और अप्रियरूपा राक्षसी कामातुर होकर राम के पास आई। रामचन्द्र का सुन्दर मुख, गोल कटि, विशाल नेत्र, सुन्दर केश और प्रिय रूप था। स्वर उनका अच्छा और तरुण अवस्था थी। वे चतुर और न्याय-मार्गानुसारी थे। शूर्पणखा ने उनसे कहा—तुम धनुष-बाण लिये, जटा रखाये और तपस्वियों का वेष धारण किये कौन हो? यहाँ स्त्री को साथ क्यों लाये हो? यहाँ तो बड़े-बड़े राक्षस रहते हैं। हे पुरुष, तुम यहाँ किस लिए आये हो?

शूर्पणखा का प्रश्न सुनकर अपने सीधेपन से रामचन्द्र उससे सब कथा कहने लगे कि मैं देवतुल्य पराक्रमी राजा दशरथ का ज्येष्ठ पुत्र हूँ। मेरा नाम राम है। यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है जो मेरी सेवा में तत्पर रहता है। यह मेरी पत्नी सीता है। मैं माता-पिता की आज्ञा से धर्म्म के लिए यहाँ वनवास करने आया हूँ। अब मैं भी जानना चाहता हूँ कि तू किस वंश में उत्पन्न हुई, किसकी पुत्री और किस नाम से प्रसिद्ध है? मुझे तो तू कोई मनोहराङ्गी राक्षसी जान पड़ती है। मुझे बता, तू यहाँ किसलिए आई है।

इस पर उस कामातुर राक्षसी ने कहा—हे रामचन्द्र, मेरा नाम शूर्पणखा है। मैं कामरूपिणी राक्षसी हूँ। मैं सबको डराती हुई इस वन में अकेली फिरा करती हूँ। रावण मेरा भाई है। यह नाम कदाचित् तुम्हारे कान तक पहुँचा भी हो। रावण से छोटा महाबली कुम्भकर्ण है, वह बड़ा सोनेवाला है। उससे छोटा विभीषण है। वह धर्मात्मा है। उसमें राक्षस की चेष्टा कुछ भी नहीं। मेरे दो भाई और हैं। उनका नाम खर और दूषण है। वे संग्राम में बड़े प्रसिद्ध पराक्रमी हैं। हे राम, मैं अपने सामने इन सबको कुछ भी नहीं समझती। पहले-पहल तुमको देखने से मैं तुम्हारे ऐसे पुरुषोत्तम के पास पति-भाव से आई हूँ। मैं प्रभावसम्पन्न हूँ और अपने पौरुष से सर्वत्र स्वच्छन्द गमन कर सकती हूँ। इसलिए तुम मेरे पति बनो। सीता को लेकर क्या करोगे? यह तो विकराल और कुरूपा है। यह तुम्हारे योग्य नहीं है। मैं रूप में तुम्हारे योग्य हूँ। इसलिए मेरी ओर देखो। इस कुरूपा, असती, कराल और बड़े पेटवाली, मानुषी, सीता को तथा तुम्हारे इस भाई को मैं खा जाऊँगी। तब तुम मेरे साथ इन पर्वत के शृंगों और विविध वनों में विचरते हुए दण्डक वन में विहार करना।

इस पर रामचन्द्र ने कुछ मुसकुराकर कहा।

---

## अठारहवाँ सर्ग

### रामचन्द्र की आज्ञा से लक्ष्मण का शूर्पणखा के नाक-कान काटना

काम के फन्दे में फँसी हुई शूर्पणखा से रामचन्द्र ने मधुर वाणी से कुछ हँसकर कहा—हे सुमुखि, मैं तो ब्याहा हुआ हूँ और यह मेरी पत्नी मुझे बहुत प्यारी है। तुम-जैसी स्त्री को सौत के साथ रहना बहुत दुःखदायी होगा। हाँ, मेरा छोटा भाई यह लक्ष्मण श्रीमान्, शीलवान्, सुन्दर, पराक्रमी और तरुण है। इसे भार्य्या की इच्छा भी है। यह तुम्हारे इस रूप के योग्य पति होगा। हे विशालनयने, तुम मेरे भाई को वरो। उसी को अपना भर्त्ता करो। उसी के साथ बिना सौत की तुम भली भाँति रहो जैसे सूर्य्य की प्रभा मेरु के पास रहती है।

तब वह काममोहित राक्षसी तुरन्त लक्ष्मण के पास

जाकर बोली—हे लक्ष्मण, देखो तुम्हारे रूप के योग्य मैं भार्य्या हूँ। मेरे साथ इस दण्डक वन की तुम सुख-पूर्वक सैर करना।

यह सुनकर वाक्यचतुर लक्ष्मण ने हँसकर कहा—भला सुनो तो, मैं राम का दास हूँ। मेरी स्त्री बनकर तुम दासी क्यों होना चाहती हो? मैं तो उन आर्य्य-भ्राता के अधीन हूँ, परन्तु वे समृद्धार्थ हैं। हे कमल के सदृश रंगवाली विशालाक्षि, तुम उन्हीं की छोटी पत्नी बनो तो तुम्हारा मतलब सिद्ध हो जाय; तुमको आनन्द मिले। तब, रामचन्द्रजी इस कुरूपा, असती, कराली, नतोदरी और बूढ़ी स्त्री को छोड़ तुम्हें ही चाहेंगे और आदर करेंगे। हे वरवर्णिनि, हे वरारोहे, भला कौन ऐसा चतुर पुरुष होगा जो तुम्हारे इस श्रेष्ठ रूप को छोड़कर मानुषी को पसन्द करेगा?

वह कराल राक्षसी हँसी-ठट्ठे की बात में चतुर न थी। उसने लक्ष्मण की बात को सच मान लिया। काममोहित तो वह थी ही, इससे रामचन्द्र के पास जाकर बोली—हे राम! इस कुरूपा, असती, कराली, कृशोदरी, बूढ़ी स्त्री को अंगीकार कर तुम मुझे अधिक नहीं मानते। इसलिए, अभी तुम्हारे देखते-देखते मैं इसको भक्षण कर जाऊँगी और तुम्हारे साथ इस वन में—बिना सौत की होकर—सुखपूर्वक विहार करूँगी।

अब वह बड़े विकराल नेत्रोंवाली राक्षसी मृग-शिशु के तुल्य नेत्रोंवाली सीता पर क्रोधपूर्वक ऐसी झपटी, जैसे रोहिणी नक्षत्र की ओर महालुब्धक वेग से जाता हो। उस समय रामचन्द्र ने उसको, मृत्यु के तुल्य लपकते देख, क्रुद्ध होकर रोक लिया और लक्ष्मण से कहा—हे सौमित्रे! ऐसे असभ्य और क्रूर जनों से कभी परिहास न करना चाहिए। हे सौम्य, अभी सीता के प्राणों पर आ बनी थी। हे पुरुषव्याघ्र, इस कुरूपा, असती, अत्यन्त मतवाली, महोदरी राक्षसी को कुरूप कर दो। तब लक्ष्मण ने क्रुद्ध होकर राम के कहते ही खड्ग निकाला और उस राक्षसी के नाक-कान काट लिये।

अब वह राक्षसी कान और नाक के काट लिये जाने से बड़ा शोर करने लगी और जिधर से आई थी, उधर ही वन में भागी। रक्त से भीगी हुई वह वर्षा-काल के मेघ की नाईं, नाना प्रकार के शब्दों से गर्जती चली गई। उसका रूप अब पहले से भी अधिक भयङ्कर हो गया। इसके अनन्तर वह राक्षसी जनस्थान में गई। वहाँ खर नामक उसका भाई राक्षसों की मण्डली में बैठा हुआ अपने उग्र तेज से चमक रहा था। वहाँ जाकर वह आकाश से वज्र की नाईं गिर पड़ी। नाक-कान कट जाने से वह रक्त से लथ-पथ हो रही थी। भय और मोह से अचेत होकर वह भाई से सब समाचार कहने लगी।

[वनवास के साढ़े बारह बरस बीतने पर शूर्पणखा की नाक काटी गई थी।]

---

## उन्नीसवाँ सर्ग

### खर का क्रुद्ध होना और रामचन्द्र के मारने के लिए चौदह राक्षसों को भेजना

उस समय उस विरूप और रक्त से भीगी हुई अपनी बहन को गिरी हुई देखकर खर नामक राक्षस क्रोध से सन्तप्त हो गया। उसने पूछा—हे शूर्पणखे, उठ और कह; तू अचेत क्यों हो रही है? निडर होकर मुझसे ठीक-ठीक कह कि किसने तुझे कुरूप

किया है। समीप बैठे हुए निरपराध काले साँप को खेल से कौन पुरुष अँगुली द्वारा छेड़ता है ? कौन पुरुष अपने गले में काल की फाँसी लगाकर मोह से चेत नहीं करता ? किसने तेरे साथ ऐसा व्यवहार करके कराल विष पिया है ? तू तो ऐसी बल और पराक्रम से संयुक्त, यथेच्छ फिरनेवाली, कामरूपिणी और काल के तुल्य है। किसने तेरी यैह दशा बना दी ? देव, गन्धर्व, भूत और महात्मा ऋषियों में ऐसा कौन महापराक्रमी है जिसने तुझे विरूप कर डाला ? एक इन्द्र को छोड़ मैं तो ऐसा किसी को नहीं देखता जो मेरा अप्रिय करे। जैसे जल से मिले दूध को अलग कर सारस पक्षी पी लेता है उसी तरह मैं बाणों से उसके प्राण ले डालूँगा। हे शूर्पणखे, आज पृथिवी किस पुरुष के रक्त को पीना चाहती है, जो मेरे बाणों से संग्राम में मारा जायगा ? आज मेरे हाथ से किसके मर्म विदीर्ण होंगे ? ये मांसाहारी पक्षी आज मेरे हाथ से मारे हुए किस पुरुष के शरीर से मांस नोचकर आनन्द से भक्षण करेंगे। मैं संग्राम में जिसको पकड़ूँगा उसको न देवता बचा सकेंगे, न गन्धर्व, न पिशाच और न राक्षस ही। तू सचेत होकर मुझे उस दुष्ट पुरुष को बता जिसने वन में तुझे पराक्रम से जीता है।

अपने भाई का क्रोधपूर्वक यह वचन सुनकर शूर्पणखा आँसुओं से आँखों को डबडबाती हुई बोली—दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण दो भाई हैं। वे तरुण, रूपवान्, सुकुमार, महाबली और कमल के तुल्य विशाल नयनोंवाले हैं। वे चीर और कृष्ण-मृगचर्मधारी, फल-मूलाहारी, जितेन्द्रिय, तापसरूप और ब्रह्मचारी हैं। वे गन्धर्व-राज के तुल्य और राजा के लक्षण से संयुक्त हैं। मैं ठीक नहीं कह सकती कि वे दोनों देव हैं या दानव। उन दोनों के साथ एक स्त्री है जो तरुणी, रूपवती और सम्पूर्ण भूषण पहने है। उसकी कमर पतली है। उन दोनों ने उसी स्त्री के कारण मेरी यह दशा कर दी है जैसी किसी अनाथ स्त्री और व्यभिचारिणी की होती है। हे भ्राता, अब मैं यह चाहती हूँ कि वह कठोर स्त्री और वे दोनों भाई संग्राम में मारे जायँ और मैं उनके फेनयुक्त रक्त को पीऊँ। यही मेरा पहला मनोरथ है जिसको तुम्हें पूरा करना चाहिए। मैं उन तीनों का रक्त पान करूँगी। यह सुनकर खर ने ऐसे चौदह राक्षसों को राम-लक्ष्मण के मारने के लिए भेजा जो महाबली और काल के समान थे। उसने आज्ञा दी कि उन दोनों मनुष्यों को और उस दुर्वृत्त स्त्री को तुम लोग मारकर चले आओ। वे दोनों शस्त्रधारी हैं; चीर-कृष्णमृगचर्म पहने हुए हैं और इस घोर दण्डकारण्य में स्त्री के साथ आये हैं। यह मेरी बहन उनका रक्त पियेगी। हे राक्षसो, मेरी भगिनी का यही मनोरथ है। अपने तेज से उनको मार कर तुम जल्द ले आओ। तुम लोगों के हाथ से उन दोनों भाइयों को मारे गये देख मेरी बहन अत्यन्त प्रसन्न होगी और आनन्दित होकर उनके रक्त को पीवेगी।

खर की यह आज्ञा पाकर वे चौदहों राक्षस, वायु से उड़ाये गये मेघों की नाईं, वहाँ से चले। शूर्पणखा भी उनके साथ थी।

---

## बीसवाँ सर्ग

### उन चौदहों राक्षसों का रामचन्द्र के हाथ से दो घड़ी में मारा जाना

उन चौदहों राक्षसों के साथ शूर्पणखा रामचन्द्र के आश्रम में आई। उसने दोनों भाइयों को

और सीता को दिखला दिया। उन राक्षसों ने महाबली राघव को, सीता और लक्ष्मण के साथ, कुटी में बैठे हुए देखा। अब शूर्पणखा और राक्षसों को देखकर रामचन्द्र ने लक्ष्मण से कहा—हे सौमित्रे, दो घड़ी तक तुम सीता की रक्षा करो। मैं शूर्पणखा के पक्षपाती इन राक्षसों को मारूँगा। लक्ष्मण ने यह बात मान ली। इधर रामचन्द्र ने उस सुवर्ण-भूषित विशाल धनुष पर डोरी चढ़ाकर राक्षसों से कहा कि देखो, हम दोनों दशरथ के पुत्र हैं; सीता के साथ हम इस दुर्गम दण्डक-वन में आये हैं। फल-मूल से हम अपनी जीविका करते हैं। हम जितेन्द्रिय, तपस्वी और धर्मचारी होकर यहाँ रहते हैं। तुम हमको क्यों मारते हो? ऋषियों के पीड़ा देनेवाले तुम्हारे ऐसे पापात्माओं को मारने के लिए मैं इस महावन में उन्हीं ऋषियों की आज्ञा से धनुष धारण करके आया हूँ। तुम चुपचाप खड़े रहो, हटो मत। यदि अपने प्राण बचाना चाहो तो लौट जाओ।

राम के ये वचन सुनकर वे ब्रह्मघाती शूलधारी राक्षस क्रुद्ध हो गये। इधर रामचन्द्र की आँखें भी सुर्ख थीं। मधुर वचन बोलनेवाले रामचन्द्र से वे क्रूरतापूर्वक बोले कि देखो, हमारे स्वामी महात्मा खर को तुम्हीं ने क्रोधित किया है; अब युद्ध में हमारे हाथ से तुम्हीं अपने प्राण त्यागोगे। क्या तुम्हारी अकेले की शक्ति है कि हमारे आगे खड़े भी हो सको! युद्ध की बात तो दूर रही, हमारी भुजाओं से छूटे परिघ और पटाओं से तुम अपने प्राण, पराक्रम और हाथ के धनुष को भी छोड़ दोगे। अब वे सब के सब अपने-अपने शस्त्र उठाकर एक ही बार राम पर दौड़े। रामचन्द्र पर वे लोग शूल चलाने लगे। तब उतने ही सुवर्ण-भूषित बाणों से रामचन्द्र ने उनके शूलों को काट गिराया। फिर बड़े पैने, सूर्यप्रभ चौदह बाण निकालकर रामचन्द्र ने उन राक्षसों पर इस तरह चलाये मानो इन्द्र ने वज्र फेंके हों। वे बाण राक्षसों के वक्षःस्थलों को फाड़कर रक्त से सन गये और भूमि पर जा गिरे, जैसे कि बाँबी से साँप निकल पड़ते हैं। उन बाणों से राक्षसों का हृदय छिन्न हो गया। वे जड़कटे वृक्ष की नाईं—रक्त से नहाकर—विकृत और नष्टप्राण हो भूमि पर गिर पड़े। उन सबको गिरा हुआ देख वह राक्षसी क्रोध से मूर्छित हो गई। कुछ-कुछ उसका रक्त भी सूख गया। वह फिर खर के समीप जाकर लता की भाँति कुम्हला गई। शोकपीड़ित होकर वह अत्यन्त नाद करने लगी। वह जोर जोर से रोने और आँसू बहाने लगी। शोक के मारे उसके चेहरे का रङ्ग बदल गया। अन्त में उसने सब समाचार खर को कह सुनाया।

---

## इक्कीसवाँ सर्ग

### शूर्पणखा का खर को धिक्कारना

अनर्थ करने के लिए शूर्पणखा फिर आ पहुँची। उसे क्रोध से गिरी हुई देख खर ने कहा कि मैंने तेरे लिए उन शूर राक्षसों को भेजा है, तेरी प्रीति के हेतु मैंने उनको आज्ञा दी है। अब तू क्यों फिर रोती है? वे राक्षस मेरे भक्त, अनुरक्त और मेरे हित में तत्पर रहते हैं। उन्हें कोई मार भी नहीं सकता। वे क्या मेरे वचन को न मानेंगे! यह क्या बात है? मैं जानना चाहता हूँ कि तू फिर 'हा नाथ' कहकर चिल्लाती हुई, साँप के तुल्य, पृथ्वी पर क्यों लोट रही है। अरे, मैं तेरा रक्षक तो अभी मौजूद हूँ। तू अनाथ की नाईं क्यों विलाप करती है? उठ, ऐसा न कर; अधीनता छोड़ दे।

खर के समझाने पर वह राक्षसी आँसू पोंछकर बोली—हे खर, देख, मेरे नाक-कान काट डाले गये। रक्त से भरी मैं तेरे पास आई थी। तूने मुझे समझाकर, मेरा प्रिय करने के लिए, राघव के मारने को चौदह राक्षस भेज दिये। उन चौदहों को रामचन्द्र ने मर्मभेदी बाणों से पल भर में मार गिराया। जब मैंने उनको भूमि पर गिरा हुआ और रामचन्द्र का यह महत्कर्म देखा तब मुझे बड़ा डर लगा। हे निशाचर, मैं भयभीत होकर, चारों ओर डर देखती हुई फिर तेरे शरण आई हूँ। इस महा शोकसागर में डूबी हुई मुझे तू बचाता क्यों नहीं। इस शोकसागर में विषाद-रूप नक्र हैं और त्रास-रूपी हिलोरें हैं। देख, तेरे भेजे हुए वे राक्षस, राम के बाणों से मरकर, भूमि पर पड़े सो रहे हैं। मेरे ऊपर और उन राक्षसों पर जो तुझे दया हो और राम के साथ युद्ध करने की जो तुझमें शक्ति और तेज हो तो तू दण्डकारण्यवासी राक्षसों के इस कण्टक को मार। यदि तू आज राम को न मारेगा तो मैं तेरे सामने निर्लज्ज हो अपने प्राण त्याग दूँगी। मैं बुद्धि से यह सोचती हूँ कि तू यद्यपि सेना-संयुक्त है तथापि राम के सम्मुख रण में न ठहरेगा। तू केवल अपने को शूर मानता है परन्तु शूर है नहीं। तू अपने को झूठा पराक्रमी कहता है, इसलिए तू अपने कुटुम्ब-सहित इस जनस्थान से चला जा; नहीं तो संग्राम करके इनको मार। अरे मूढ़, हे कुलनाशक, तू इन राम-लक्ष्मण—मनुष्यों—को मारने में समर्थ नहीं है तो निःसत्त्व और अल्प-वीर्य होकर यहाँ रहेगा किस लिए? राम के तेज से तू शीघ्र पराजित हो जायगा क्योंकि दशरथ के पुत्र रामचन्द्र तेजस्वी पुरुष हैं। उनके भाई भी महापराक्रमी हैं जिन्होंने मुझे कुरूप किया है।

अनेक प्रकार से विलाप करके वह राक्षसी, भाई के समीप शोक से आर्त्त हो, मूर्छित हो गई। वह अत्यन्त दुःख से दोनों हाथों से पेट को पीटकर रोने लगी।

---

## बाईसवाँ सर्ग

### युद्ध के लिए खर की यात्रा

शूर्पणखा से धिक्कारे जाने पर खर ने राक्षसों के बीच में यह कठोर वचन कहा—हे शूर्पणखे, तेरे अनादर से मुझे जो अतुल क्रोध उत्पन्न हुआ है उसे मैं रोक नहीं सकता। जैसे घाव में नोन का जल सहन नहीं हो सकता उसी तरह मुझे यह क्रोध सहन नहीं होता। मैं अपने बल से मनुष्य—राम—को कुछ भी नहीं गिनता। मनुष्य की जिन्दगी ही कितनी होती है! वे आज अपने दुष्ट कर्मों से प्राण छोड़ेंगे। अब तू अपना रोना बन्द कर और उद्वेग छोड़ दे। मैं राम को और उसके भाई को यमपुरी भेजता हूँ। हे राक्षसि, मैं राम को फरसे से मारूँगा। उसके गरम रक्त को तू पान करेगी। खर की ये बातें सुनकर वह प्रसन्न हुई। मूर्खता से वह भाई की प्रशंसा करने लगी।

खर पहले तो धिक्कारा गया और पीछे से उसकी स्तुति कर दी गई। उसने दूषण सेनापति से कहा—हे सौम्य! चौदह हजार राक्षसों को तैयार करो जो मेरे चित्त के अनुसारी और बड़े वेगवान् हैं। उन्होंने समर में पीठ नहीं दिखाई। वे काले मेघों के तुल्य हैं और लोगों की हिंसा ही करना उनका खेल है। मेरे रथ को, धनुष-बाणों को, चित्र-विचित्र ख ड्गों और नाना प्रकार की पैनी शक्तियों को लाकर उपस्थित करो। हे रण-पण्डित, पुलस्त्य-कुलवाले इन महाबली राक्षसों के आगे उस दुराचारी राम के मारने के लिए मैं ही प्रस्थान

करूँगा। खर का यह वचन सुनकर दूषण ने चितकबरे घोड़े जोतकर सूर्य-सदृश रथ सामने ला खड़ा किया। उस समय वह खर मेरु-शृङ्ग के तुल्य, सुवर्ण से अलङ्कृत, रथ पर बड़े क्रोध से सवार हुआ। वह रथ सुवर्णचक्र से शोभित और बहुत ही विशाल था। वह हरे मणि के कूबर से युक्त था। चन्द्रकान्त मणि से बने मत्स्य, पुष्प, वृक्ष, पर्वत और सुवर्ण-रचित (मङ्गलरूप) पक्षि-समूह तथा तारों से वह सुशोभित था। ध्वज और खड्ग उसमें संयुक्त थे। वह छोटी-छोटी घण्टियों के शब्द से भूषित था। उसमें कुलीन घोड़े जोते गये थे। सेना, रथ, ढाल, तलवार, ध्वज और नाना शस्त्रों से सज्जित थी। उस सेना को दूषण ने कूच करने की आज्ञा दी। दूषण ने सब राक्षसों से कहा कि आगे बढ़ो। तब वह राक्षसों की सेना बड़े वेग और महानाद से जन-स्थान से निकली।

वे चौदह हज़ार राक्षस खर के चुने हुए थे। वे मुद्गर, पटा, शूल, पैने फरसे, खड्ग, शक्ति, विशाल धनुष, गदा, तलवार और मुशल को हाथ में लेकर वेग से चल निकले। चक्र और तोमर रथ में रक्खे हुए थे। योद्धाओं के हाथ में वज्र नामक एक विशेष शस्त्र था। ये सभी शस्त्र बड़े भयङ्कर देख पड़ते थे। इन राक्षसों को दौड़ते देख, कुछ पीछे, धीरे से खर का रथ चला। इसके अनन्तर सारथि ने, खर की आज्ञा पाकर, अति उत्तम सुवर्ण से सजे हुए चितकबरे घोड़ों को हाँका। वह रथ जल्दी-जल्दी अपने शब्द के द्वारा दिशाओं और प्रदिशाओं को नादित करता चला। बहुत ही तीक्ष्ण शब्दवाला खर अब अत्यन्त क्रुद्ध होकर शत्रु को मारने के लिए शीघ्रतापूर्वक काल की नाईं चला। उसने अत्यन्त गरजकर सारथि को शीघ्र रथ चलाने की आज्ञा दी। पत्थर बरसानेवाला मेघ जैसा अत्यन्त गरजकर चलता है इसी प्रकार राक्षस खर ने कूच किया।

---

## तेईसवाँ सर्ग

### खर की सेना का और अशकुन का वर्णन

खर की सेना की यात्रा के समय गर्दभ के रङ्ग का मेघ गरजकर अमङ्गलरूप रक्त-मिश्रित जल बरसाने लगा। राजमार्ग में, समथर और पुष्पों से शोभित स्थान पर, खर के रथ के घोड़े अकस्मात् गिर पड़े। सूर्य के चारों ओर लाल काले रंग की कोरवाला मण्डल हुआ। खर की ध्वजा का दण्ड सोने का था। वह ऊँचा भी खूब था। उस पर एक विशालकाय भयङ्कर गीध आकर बैठ गया। जनस्थान के समीप मांसभक्षक पक्षी नाना प्रकार के कुशब्द बोलने लगे। भयानक गिद्धियाँ, पूर्व दिशा की ओर मुँह करके, राक्षसों के अमंगलकारक शब्द बोलने लगीं। मदधारी हाथी के तुल्य बड़े भयङ्कर मेघ, रक्त-तुल्य जल लिये हुए, वहाँ पर आकाश में छा गये। ऐसा घोर और रोमाञ्च करनेवाला अँधेरा हो गया कि न दिशा सूझती थी और न प्रदिशा। सूर्यास्त हुए बिना ही रक्त से भीगे हुए कपड़े के तुल्य संध्या देख पड़ी। पक्षी और मृग, खर की ओर मुँह करके भयसूचक शब्द करने लगे। कङ्क, गीदड़ और गीध—सभी भय की सूचना करते हुए चिल्लाने और रोने लगे। युद्ध में अवश्य ही अमंगल-कारिणी और भय को सूचित करानेवाली गिद्धियाँ, सेना के सामने ज्वाला उगलते हुए मुखों से, नाद करने लगीं। सूर्य के पास पुच्छल तारे

की तरह बिना सिर का मनुष्य देख पड़ा और पर्व के बिना ही राहु ने सूर्य का ग्रास किया। तेजी से हवा चलने लगी। सूर्य प्रभाहीन हो गया। रात के बिना ही आकाश में जुगनू ऐसे तारे निकल पड़े। मत्स्य और पक्षी जहाँ के तहाँ चुपचाप हो रहे। कमलिनियों के कमल सूख गये। वहाँ के वृक्षों में फूल-फल न रहे। बिना ही वायु लगे, मेघ के तुल्य, लाल रङ्ग की धूल उड़ी। वहाँ मैना चीं-चीं चूँ-चूँ करने लगीं। भयङ्कर उल्काएँ कड़कड़ शब्द के साथ गिरने लगीं। वन और पर्वतों-सहित पृथिवी काँपने लगी। गरजते समय खर की बाईं भुजा फड़कने लगी। स्वर धीमा हो गया। अकस्मात् उसके नेत्रों में आँसू आ गये। उसके मस्तक में पीड़ा हुई। इतना सब उत्पात होने पर भी वह मोह से निवृत्त न हुआ। इन उत्पातों को देखकर वह हँसा और राक्षसों से बोला कि जैसे बलवान् पुरुष अपने समीप दुबेलों को कुछ भी नहीं गिनता इसी तरह इन बड़े-बड़े उत्पातों को मैं अपने पराक्रम के सामने कुछ भी नहीं समझता। मैं इन तारों को भी पैने-पैने बाण मारकर आकाश से गिरा सकता हूँ और क्रुद्ध होकर मृत्यु को भी मार सकता हूँ। अब इस घड़ी अपने को बड़ा बली समझनेवाले राम को और उसके भाई लक्ष्मण को मारे बिना मैं लौट नहीं सकता। क्योंकि राम और लक्ष्मण ने बड़ा अनुचित काम किया है। मेरी बहन जब उन दोनों का रक्त पी लेगी तब उसका मनोरथ पूरा होगा। किसी युद्ध में मेरा पराजय नहीं हुआ है। तुम लोगों को यह मालूम ही है। मैं कुछ मिथ्या नहीं कहता। देवराज इन्द्र मत्त ऐरावत पर चढ़के चलते है, और वज्र हाथ में लिये रहते हैं। क्रुद्ध होकर मैं उन्हें भी मार सकता हूँ। फिर ये दोनों मनुष्य हैं ही किस लेखे में?

वह राक्षसों की सेना मृत्यु के पाश से बँधी हुई थी। खर की गर्जना सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुई। उस समय ऋषि, देव, गन्धर्व, सिद्ध और चारण, सभी पुण्यात्मा और महात्मा इकट्ठे होकर युद्ध देखने की इच्छा से वहाँ आये और कहने लगे—सुदर्शन चक्र से भगवान् विष्णु ने दैत्यों को जिस प्रकार मारा था उसी प्रकार महाराज रामचन्द्र भी इन पुलस्त्य-कुलवाले राक्षसों को मारकर गौ, ब्राह्मण और ऋषियों को आनन्दित करें। उन्होंने और भी बहुत बातचीत की। विमानों पर चढ़े हुए देवताओं ने राक्षसों की सेना को देखा।

खर अब वेग से सेना के आगे अपना रथ ले चला। उस समय श्येनगामी, पृथुश्याम, यज्ञशत्रु, विहङ्गम, दुर्जय, परवीरघ्न, परुष, कालकार्मुक, हेममाली, महामाली, सर्पास्य और रुधिराशन नामक बड़े पराक्रमी बारह राक्षस खर को घेरकर चले। महाकपाल, स्थूलाक्ष, प्रमाथी और त्रिशिरा नामक चार राक्षस सेना के आगे, दूषण के पीछे, हो लिये। इस प्रकार वह भयङ्कर वेगवाली अत्यन्त कठोर राक्षस वीरों की सेना समर करने की इच्छा से शीघ्र आकर दोनों राजपुत्रों के समीप उपस्थित हुई, जैसे कि ग्रहों की माला चन्द्र और सूर्य्य के निकट आती है।

---

## चौबीसवाँ सर्ग

### युद्ध के लिए रामचन्द्र का तैयार होना और राक्षसों का युद्ध के निमित्त नाना प्रकार की वीर-चेष्टा करना।

जिस समय तीक्ष्ण पराक्रमी खर आश्रम में घुसता आ रहा था उस समय रामचन्द्र और लक्ष्मण

ने उन्हीं उत्पातों को (जिनका पहले वर्णन हो चुका है) देखा। प्रजा के लिए अहित-कारक उन उत्पातों को देखकर और न सहकर उन्होंने लक्ष्मण से कहा—हे महाबाहो, देखो ये प्राणिनाशक उत्पात हो रहे हैं। इनसे सम्पूर्ण राक्षसों का नाश होना लक्षित होता है। देखो, गधे के तुल्य मटमैले रङ्ग के कठोराकृति मेघ, भयङ्कर शब्द के साथ, रक्त की वृष्टि कर रहे हैं। मेरे ये बाण युद्ध के हर्ष से घूमयुक्त हो रहे हैं और मेरे ये धनुष, जिनकी पीठ सुवर्ण से भूषित है, उलट-पुलट हो रहे हैं। वनचर पक्षियों के शब्द से ऐसा जान पड़ता है कि हमारे आगे भय आ रहा है, बल्कि प्राणों का भी सन्देह मालूम होता है। निस्सन्देह यहाँ पर बड़े-बड़े प्रहार होंगे। यह मेरा बाहु बार-बार फड़क रहा है। यह बतलाता है कि हमारा जय और शत्रुओं का पराजय होनेवाला है। इसमें एक शुभ निमित्त और भी है कि तुम्हारा मुख सुन्दर, कान्तियुक्त और प्रसन्न देख पड़ता है। हे लक्ष्मण, जो पुरुष युद्ध के लिए उद्यत हों, उनका मुख यदि प्रभाहीन देख पड़े तो जानना चाहिए कि उनकी उम्र घट गई अर्थात् संग्राम में वे अवश्य मारे जायँगे। अब इधर देखो, इन गरजते हुए राक्षसों की कैसी महाध्वनि सुन पड़ती है और इन युद्ध-भेरियों का कैसा शब्द हो रहा है। हे लक्ष्मण, पण्डित को और आपत्ति की शङ्का करनेवाले पुरुष को—अपने भले के लिए—होनेवाले कार्यों का प्रबन्ध पहले ही से कर रखना चाहिए। इसलिए धनुर्बाण से तैयार हो जाओ और वैदेही के साथ वृक्ष से आच्छादित दुर्गम पर्वत की गुफा में जा बैठो। मेरी बात को दुहराओ मत। हे वत्स, तुम्हें मेरे चरणों की शपथ है। तुम शीघ्र चले जाओ। विलम्ब मत करो। यद्यपि तुम शूर हो और इन राक्षसों को मार सकते हो तथापि मैं आप ही इनको मारना चाहता हूँ।

रामचन्द्र का यह वचन सुनकर लक्ष्मण ने धनुर्बाण धारण कर लिया, फिर सीता के साथ वे एक दुर्गम गुफा में चले गये। उनके जाने पर रामचन्द्र को इस बात से प्रसन्नता हुई कि लक्ष्मण ने मेरा कहना शीघ्र मान लिया। अब उन्होंने प्रसन्न होकर कवच पहन लिया।

उस कवच को पहनकर रामचन्द्रजी ऐसे शोभित हुए मानो अन्धकार में प्रज्वलित आग की ज्वाला प्रकाशित हो रही हो।

हाथ में धनुष और बाण लेकर वे खड़े हो गये। प्रत्यञ्चा के शब्दों से उन्होंने दिशाओं को पूर्ण कर दिया। इसके अनन्तर—युद्ध देखने की इच्छा से—देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण और महात्मा लोग इकट्ठे हो गये। महात्मा, ऋषि और लोक में विख्यात पुण्यात्मा ब्रह्मर्षि लोग परस्पर कहने लगे कि गाय, ब्राह्मण और साधुओं का भला हो। इन पुलस्त्यकुल-वाले राक्षसों को रामचन्द्र वैसे ही जीतें जैसे चक्रधारी विष्णु सब दैत्यों को जीतते हैं। यह कहकर फिर वे कहने लगे कि देखो ये भयङ्कर राक्षस तो चौदह हज़ार हैं और रामचन्द्र अकेले हैं। युद्ध कैसे होगा। विमानों पर चढ़े हुए राजर्षि, सिद्ध, ब्राह्मण-श्रेष्ठ और देवगण ऐसी बातचीत कर रहे थे। उस समय तेज से भरे और संग्राम के लिए रामचन्द्र को तैयार देखकर सब लोग डर से दुःखी हुए। उस समय रामचन्द्र का अनुपम रूप क्रोधयुक्त रुद्र का सा देख पड़ता था। इधर तो देव इत्यादि बातचीत कर रहे थे और उधर से राक्षसों की सेना, बड़ा गम्भीर नाद करती, ढाल-तलवार और ध्वजाओं को फहराती हुई झमझमा करके चारों ओर से आ गई। उसमें वीरों के शब्दों से राक्षस

बोलते थे। युद्ध की रीति का वे परस्पर वर्णन करते, धनुष को फैलाते और बारम्बार जँभाते थे। वे गरजते और दुन्दुभी बजाते थे। उन राक्षसों का शब्द वन में भर गया। उस शब्द से डरकर वनवासी चुपचाप भागे जाते थे। कोई पीछे फिरकर भी नहीं देखता था। वह सेना महावेग और नाना शस्त्रों से भरी गम्भीर समुद्र के तुल्य देख पड़ती थी। वह राम के समीप आ पहुँची। तब रण-दक्ष रामचन्द्र ने चारों ओर खर की सेना को देखकर युद्ध के लिए समीप जा धनुष को चढ़ाया। तरकस में से बाण निकालकर, सब राक्षसों के मारने के लिए, वे अत्यन्त क्रोध-युक्त हुए। उस समय वे क्रोध में भरकर ऐसे दुर्निरीक्ष्य हुए कि प्रलय के अग्नि के तुल्य प्रज्वलित देख पड़ते थे। उस समय तेजोयुक्त रामचन्द्र को देखकर वन-देवता व्यथित हो गये। दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करते समय शिव का स्वरूप जैसा हुआ था वैसा ही उस समय क्रुद्ध रामचन्द्र का रूप देख पड़ता था। सूर्योदय के समय नीले मेघ-मण्डल की जैसी शोभा होती है वैसी ही शोभा उस समय उन धनुषों, आभरणों, रथों और अग्निवर्ण-कवचों के द्वारा राक्षसों की सेना की हुई।

---

## पच्चीसवाँ सर्ग

### रामचन्द्रजी से राक्षसों का युद्ध

खर ने क्रुद्ध रामचन्द्र को देखा कि वे हाथ में धनुष लिये और शत्रुओं के घात में मन दिये खड़े हैं। तब उसने अपना धनुष लेकर सारथि से कहा कि राम के समीप मेरे रथ को ले चल। यह आज्ञा पाकर उसने घोड़ों को उस ओर चलाया जहाँ रामचन्द्र धनुष धारण किये अकेले खड़े थे। खर को राम के पास पहुँचते देख उसके प्रधान लोग, बड़ा शब्द करते हुए, उसके पास जाकर चारों ओर खड़े हो गये। उस समय राक्षसों के बीच में रथ पर चढ़ा हुआ खर ऐसा देख पड़ता था मानो तारों के बीच में मङ्गल तारा हो। खर ने हजार बाणों से रामचन्द्र को मारकर अत्यन्त गर्जना की। इसके अनन्तर सब राक्षस नाना प्रकार के शस्त्रों से रामचन्द्र पर प्रहार करने लगे। उन्होंने लोहे के शूलों, मुद्गरों, प्रासों, खड्गों और फरसों से रामचन्द्र को ढक दिया। वे राक्षस बड़े बलवान् थे। उनके शरीर मेघ के तुल्य बड़े-बड़े थे। वे रथों, घोड़ों और पर्वत के शृङ्गों के तुल्य हाथियों को दौड़ाकर रामचन्द्र पर आ टूटे और बाणों की वर्षा इस तरह करने लगे, जैसे बड़े-बड़े मेघ पर्वत पर जल-धारा बरसाते हैं। उस समय उन क्रूरदर्शन राक्षसों से घिरे हुए रामचन्द्र ऐसे देख पड़ते थे जैसे प्रदोष-तिथियों में अपने गणों से घिरे हुए शिवजी देख पड़ते हैं।

नदियों के प्रवाह को जिस तरह समुद्र थाम लेता है उसी तरह श्रीराघव उन राक्षसों के छोड़े हुए शस्त्रों को अपने बाणों से रोकने और बचाव करने लगे। अत्यन्त प्रदीप्त वज्रों के गिरने से भी जैसे पर्वत को व्यथा नहीं होती उसी तरह राक्षसों के प्रहारों से बिँधकर भी वे व्यथित नहीं हुए। उस समय रामचन्द्र के सम्पूर्ण शरीर से रक्त निकल रहा था। वे ऐसे शोभित हो रहे थे जैसे सन्ध्याकाल के मेघों से घिरा हुआ सूर्य्य शोभित होता है। उस समय कई हजार राक्षसों से घिरे रामचन्द्र को देख देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि-गण दुःखित हुए। तदनन्तर रामचन्द्र ने उस संग्राम में अपने धनुष को मण्डलाकार करके दुरावार, दुःसह और कालपाशों के तुल्य सैकड़ों-हजारों बाण

सहज ही चलाये। वे बाण कङ्कपत्रों से और सुवर्ण से भूषित थे। वे कालपाशों के तुल्य बाण राक्षसों के प्राणों का हरण करने लगे और उनके शरीरों को भेदकर लहू में सन गये। आकाश में प्रदीप्त अग्नि के तुल्य उनकी शोभा हुई। उस समय रामचन्द्र के धनुर्मण्डल से असंख्य बाण निकल रहे थे। वे बाण बड़े कठोर और राक्षसों के प्राणघातक थे। उन बाणों से रामचन्द्र ने सैकड़ों-हजारों चापों, पताकाओं, ढालों, कवचों, भूषणयुक्त राक्षसों की भुजाओं और हाथी की सूँड़ के सदृश पुष्ट जङ्घाओं को काट गिराया। राम की प्रत्यञ्चा से छूटे हुए बाणों ने काञ्चन-भूषित रथ में जोते हुए घोड़ों का सारथी-समेत छिन्न-भिन्न कर डाला, महावत-सहित हाथियों और सवारों-सहित घोड़ों को छिन्न-भिन्न कर डाला। उन बाणों ने पैदलों को मारकर यमपुरी को भेज दिया। नालीक, नाराच और पैनी धारवाले विकर्णि बाणों से कटते हुए राक्षस लोग बड़ा भयङ्कर आर्त्तनाद करने लगे। आग लगने पर सूखे जंगल की जो दुर्दशा होती है वही गति रामचन्द्र के नाना प्रकार के मर्मभेदक बाणों से मर्दन की गई उस राक्षस-सेना की हुई। बड़े पराक्रमी किसी-किसी राक्षस ने क्रुद्ध हो रामचन्द्र पर प्रास, शूल और फरसे चलाये। परन्तु रामचन्द्र ने अपने बाणों से उनके शस्त्रों को रोका और गलों को काटकर प्राणों को हर लिया। मस्तक कट जाने से अब वे कटी हुई ढालों और कटे हुए धनुषों को लिये हुए ऐसे गिरे जैसे गरुड़ के पङ्खों की हवा के झोंके से वृक्ष भूमि पर आ पड़ते हैं। जो राक्षस शेष बचे थे वे बाणों से पीड़ित होकर डर गये और शरण के लिए खर की ओर भागे। अब दूषण नामक राक्षस ने धनुष लेकर अन्य राक्षसों को दिलासा दिया। फिर वह क्रुद्ध रामचन्द्र पर क्रोध कर, काल की नाईं, दौड़ा। तब जो राक्षस भाग रहे थे वे दूषण का सहारा पाकर लौट पड़े और शाल, ताल, शूल, मुद्गर, शिलाओं और पाशों को हाथों में लेकर बाणों, शस्त्रों, वृक्षों और शिलाओं की वृष्टि करते रामचन्द्र की ओर फिरे। वे क्रुद्ध होकर रामचन्द्र से महाघोर युद्ध करने और उनको पीड़ा देने लगे। जब रामचन्द्र ने देखा कि राक्षसों से चारों दिशाएँ भर गईं और उन्होंने बाण-वृष्टि से मुझे घेर लिया है तब श्रीरघुवर ने बड़ा भयङ्कर नाद करके धनुष पर अत्यन्त प्रज्वलित गान्धर्व अस्त्र चढ़ाया। उस समय रामचन्द्र के चापमण्डल से हजारों बाण निकले, जिनसे दसों दिशाएं भर गईं। उन बाणों से राक्षस अब अत्यन्त पीड़ित हुए। उस समय रामचन्द्र उन्हें केवल प्रत्यञ्चा खींचते हुए ही देख पड़ते थे। मालूम ही न पड़ता था कि तरकस से वे बाण कब निकालते और कब छोड़ते थे। उस समय रामचन्द्र के बाण ऐसे जल्द चल रहे थे कि उनके द्वारा आकाश में अँधेरा हो गया। इससे सूर्य्य दिखलाई न पड़ता था। उन बाणों से कितने ही राक्षस तो एक ही समय गिरते जाते थे, अनेक एक ही समय अत्यन्त मारे गये और बहुतेरे एक ही क्षण में मूर्छित होकर गिर पड़े। उनके शरीरों से पृथ्वी पट गई। हजारों राक्षस भूमि पर जहाँ-तहाँ गिरे-पड़े, क्षीण, छिन्न-भिन्न और विदीर्ण देख पड़ते थे। उस समय वह समर-भूमि उन राक्षसों से भर गई। कहीं पर उनके कटे हुए सिर पड़े थे, कहीं पर धड़, और कहीं पर उनकी जाँघें कटी पड़ी थीं। कहीं तरह-तरह के गहने पड़े थे। जहाँ-तहाँ भूमि पर रथ पड़े थे; हाथियों और घोड़ों की लाशें दिखाई देती थीं। कहीं छत्र, कहीं चँवर और कहीं ध्वजा टूटी पड़ी थी। कहीं शूल और कहीं कोई शस्त्र

पड़े थे। इस प्रकार वह युद्ध-भूमि बड़ी भयङ्कर देख पड़ती थी।

राम के बाणों से कई हज़ार राक्षसों को मरे देख बचे हुए राक्षस लोग ऐसे व्याकुल हो गये कि राम के सम्मुख एक पैर भी नहीं चल सकते थे।

---

## छब्बीसवाँ सर्ग

### खर-त्रिशिरा बचे और राक्षस समाप्त

दूषण ने अपनी सेना को इस प्रकार मारी जाती देख उन पाँच हजार राक्षसों को युद्ध की आज्ञा दी जो बड़े बली थे और संग्राम में कभी पीठ न दिखाते थे। दूषण की आज्ञा पाकर वे राक्षस शूल, पटा, खड्ग, शिला, वृक्ष और बाणों की वर्षा राम के ऊपर करने लगे। वह महावृष्टि प्राणों की हरनेवाली थी। उसको रामचन्द्र ने अपने बाणों से इस तरह रोका जैसे आँखें मूँदकर बैल जल-वृष्टि को सहता है। अत्यन्त क्रुद्ध और तेज से प्रज्वलित होकर वे दूषण को और उस सेना को बाणों से मारने लगे। तब दूषण भी क्रोध करके रामचन्द्र पर वज्र-तुल्य बाणों की वृष्टि करने लगा। इसके अनन्तर रामचन्द्र ने एक बड़े पैने बाण से दूषण का धनुष, चार बाणों से चारों घोड़े और अर्द्धचन्द्र बाण से सारथि का मस्तक काट डाला। तीन बाण दूषण की छाती में मारे। दूषण का इस समय धनुष कट गया था, रथ बेकाम हो गया था और घोड़ों-समेत सारथि भी मार डाला गया था। वह अब एक बड़े भारी पर्वत के शृङ्ग के तुल्य परिघ को लेकर रामचन्द्र के ऊपर दौड़ा। उस परिघ को देखने से रोएँ खड़े हो जाते थे। वह सुवर्ण के पत्रों से घिरा हुआ, देवों की सेना को मर्दन करनेवाला, लोहे के काँटों से भरा और शत्रु की मेदा से लेपित था। वह वज्र-समान स्पर्शवाला, शत्रु के पुर के फाटक का तोड़नेवाला और बड़े साँप के तुल्य भयङ्कर था। अब उसके आते ही रामचन्द्र ने दो बाणों से उसकी दोनों भुजाएँ काट डालीं। वे भूषणों से भूषित थीं। इसके अनन्तर उसका परिघ भी इन्द्रध्वज की नाईं संग्राम में गिर पड़ा। दोनों भुजाएँ दोनों ओर गिर पड़ीं। दाँतों के गिर जाने से जैसे बड़ा हाथी गिर पड़ता है उसी तरह भुजाओं के गिर जाने से दूषण गिर पड़ा। उस समय दूषण को मरा देखकर सब प्राणी साधु-साधु वाणी से राम की प्रशंसा करने लगे। अब सेना के अग्रगण्य महाकपाल, स्थूलाक्ष और प्रमाथी नामक तीन राक्षस एकट्ठे होकर अपनी मृत्यु के लिए राम के सम्मुख दौड़े। उनमें पहले के हाथ में बड़ा शूल, दूसरे के हाथ में पटा और तीसरे के हाथ में फरसा था। उनको आते देख रामचन्द्र ने पैनी धारवाले बाणों से, आये हुए अतिथियों की भाँति, उनको रोका और पहले महाकपाल का सिर काट डाला। तदनन्तर अगणित बाणों से प्रमाथी का घात किया। फिर स्थूलाक्ष के बड़े-बड़े नेत्रों को बाणों से ऐसा भर दिया कि वह मरकर महावृक्ष की नाईं पृथ्वी पर गिर पड़ा। दूषण के अनुगामी राक्षस पाँच हजार थे। उन्हें पाँच हजार बाणों से मारकर रामचन्द्र ने काल की राजधानी में भेज दिया। रामचन्द्र के इस महा-पराक्रम को सुनकर खर ने अपने महाबली सेनाध्यक्षों को युद्ध करने की आज्ञा देते हुए क्रुद्ध होकर कहा कि देखो यह दूषण अपने अनुचरों-समेत मरा पड़ा है। हे राक्षसो, तुम शस्त्रों को लेकर कुमानुष रामचन्द्र को मारो। अब, वह आप भी राम के सम्मुख दौड़ा। उसके बारह सेनाध्यक्ष बड़े पराक्रमी थे। उनके

नाम श्येनगामी, पृथुग्रीव, यज्ञशत्रु, विहङ्गम, दुर्जय, करवीराक्ष, परुष, कालकार्मुक, हेममाली, महामाली, सर्पास्य और रुधिराशन थे। खर की आज्ञा पाकर वे अपनी-अपनी सेना लेकर बाणों को छोड़ते हुए राम के समीप दौड़े। तब तेजस्वी रामचन्द्र ने अग्नितुल्य, सुवर्ण और हीरों से भूषित अपने बाणों से उस बची हुई सेना को काटना आरम्भ कर दिया। सुवर्ण पङ्खवाले राम के बाण धूमसहित अग्नि के तुल्य देख पड़ते थे। राक्षसों का वे इस प्रकार घात करने लगे जैसे वज्रपात से महा-वृक्षों का नाश होता है। इस प्रकार रामचन्द्र ने रण में सौ कर्णिकार बाणों से सौ राक्षसों को और सहस्र से सहस्र को मार गिराया। उन बाणों से किसी राक्षस का धनुष टूट गया, किसी का कवच कट गया और किसी का गहना गिर पड़ा। वे राक्षस रक्त से भीगे हुए मरकर पृथ्वी पर गिर पड़े। बिखरे हुए वे राक्षस लोहू में सने हुए पड़े थे। कुशों से यज्ञभूमि जैसी मालूम होती है वैसी ही उनके गिरने से पृथ्वी मालूम पड़ी।

रामचन्द्रजी के बाणों से वे राक्षस मारे गये। वह वन नरकरूप हो गया। वहाँ रक्त की कीच हो गई।

रामचन्द्रजी अकेले और पैदल थे। उन्होंने क्षणमात्र में चौदह सहस्र भयङ्कर पराक्रमी राक्षसों को मार डाला। अब संग्रामभूमि में तीन व्यक्ति बच गये। एक तो खर, दूसरा त्रिशिरा और तीसरे रामचन्द्र। और सब राक्षस मारे गये। खर ने देखा कि इस महासंग्राम में महाबली राम ने, धर्मयुद्ध से, इन राक्षसों को मारकर पटरा कर दिया। अब मैं भी चलूँ। यह विचारकर वह खर, वज्र लिये हुए इन्द्र की नाईं, रथ पर चढ़ा हुआ राम के सम्मुख आया।

---

# सत्ताईसवाँ सर्ग

## त्रिशिरा का वध

अब खर को राम के सम्मुख जाते देख त्रिशिरा नामक सेनापति उसके समीप आकर बोला—स्वामिन, आप इस समय युद्ध न कीजिए। आप मुझे युद्ध करने की आज्ञा दीजिए। देखिए, मैं इस महाबाहु रामचन्द्र को मार गिराता हूँ। मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ और अपने आयुध की शपथ खाता हूँ कि मैं इस रामचन्द्र को अवश्य मारूँगा। इसका वध तो सब राक्षसों को करना चाहिए। चाहे मैं इसका मृत्यु होऊँ या यही मेरे लिए काल हो, परन्तु आप संग्राम के साहस से निवृत्त हों। मुहूर्त्त भर मध्यस्थ होकर आप हम दोनों का युद्ध देखिए। यदि मैं रामचन्द्र को मार डालूँ तो आप हर्षपूर्वक जन-स्थान में चले जाना और जो मैं ही मारा जाऊँ तो फिर आप युद्ध करना। मृत्यु का लोभ दिखाकर त्रिशिरा ने प्रार्थना की। तब खर ने कहा कि अच्छा जाओ, तुम्हीं युद्ध करो। आज्ञा पाकर वह रामचन्द्र के सम्मुख रथ को ऐसे हाँक लाया मानो तीन शिखरवाला पर्वत चला आया हो। वह त्रिशिरा नामक राक्षस, महामेघ की नाईं बाणों के धारा-समूहों को छोड़कर ऐसा गरजा जैसे जल से भीगा नगाड़ा बजता है। रामचन्द्र ने इस प्रकार त्रिशिरा को आते देख बाणों से उसका सामना किया। इस समय इन दोनों का बड़ा भारी युद्ध हुआ जैसे कि सिंह और गजेन्द्र का होता है। इसके अनन्तर त्रिशिरा ने रामचन्द्र के सिर में तीन बाण मारे। तब रामचन्द्र ने क्रोध में भरकर कहा—अरे! पराक्रम में शूर राक्षस का क्या इतना बल है कि उसके मारे हुए बाण मेरे ललाट में फूलों की तरह जान पड़ें। अच्छा अब मेरे

बाणों को ले। यह कहकर राघव ने क्रुद्ध हो सर्पों के तुल्य चौदह बाण त्रिशिरा की छाती में मारे, और पैने-पैने चार बाणों से उसके चारों घोड़ों को मार डाला। आठ बाणों से उसके सारथि को मारकर रथ के ऊपर ही गिरा दिया। एक बाण से उसकी ऊँची ध्वजा भी काट डाली। अब उस निरर्थक रथ पर से त्रिशिरा निशाचर को कूदते देख श्रीरामचन्द्र ने मारे बाणों के उसकी छाती ऐसी विदीर्ण कर डाली कि वह बेसुध हो गया। फिर उन्होंने तीन बाणों से जल्द ही उसके तीनों मस्तक काट गिराये। तब वह धूमयुक्त रक्त की धारा को बहाता हुआ अपने मस्तकों के साथ समरभूमि में गिर पड़ा। बचे-बचाये जो राक्षस खर के आश्रय से वहाँ खड़े थे वे ऐसे भागे जैसे व्याघ्र से डरकर मृग भागते हैं। उनको भागते देख खर ने शीघ्रता से सबों को लौटाया और आप रामचन्द्र की ओर ऐसे दौड़ा जैसे चन्द्रमा के ऊपर राहु झपटता है।

---

## अट्ठाईसवाँ सर्ग

### रामचन्द्र का खर से घोर युद्ध करना

दूषण और त्रिशिरा को मरा हुआ देखकर रामचन्द्र के पराक्रम से खर अत्यन्त डर गया। एक राम के हाथ से सारी सेना मारी गई थी। यह देखकर वह उदासी से रामचन्द्र के सामने आया जैसे इन्द्र के सम्मुख नमुचि गया था। बड़े बल से धनुष को खींचकर वह रुधिर-भोगी बाणों को राम पर चलाने लगा। बाण क्या थे साक्षात् क्रुद्ध सर्प थे। प्रत्यञ्चा को झटकारता और अपनी शस्त्र-विद्या को दिखाता हुआ वह पैंतरा बदलने लगा। अपने बाणों से वह दिशाओं और विदिशाओं को पूर्ण करने लगा। इधर रामचन्द्र भी अपना धनुष उठाकर दुःसह अग्नि के तुल्य बाणों से, आकाश को इस तरह भरपूर करने लगे, मानो मेघ बरस रहा है। उस समय खर और रामचन्द्र के बाणों से आकाश में जरा सी भी जगह खाली न रही। एक दूसरे को मारने की आकांक्षा से युद्ध करनेवाले इन दोनों के बाणों से ऐसा अन्धकार छा गया कि सूर्य का प्रकाश ऊपर ही रह गया। अब खर ने रामचन्द्र को नालीक और पैने-पैने विकर्णि बाण इस तरह मारे जैसे कोई हाथी को कोड़े मारे। हाथ में धनुष लिये, रथ पर सवार, खर उस समय ऐसा देख पड़ता था जैसे हाथ में पाश लिये काल घूमता हो। रामचन्द्र ने खर की सम्पूर्ण सेना मार डाली थी। वे अपने पराक्रम पर स्थित और खर को कुछ श्रमयुक्त देख पड़ते थे। उस युद्ध में रामचन्द्र सिंह के तुल्य पराक्रमी और सिंहसदृश व्यवहार कर रहे थे। उस राक्षस को देखकर वे कुछ भी नहीं घबराये। क्षुद्र मृग को देखकर सिंह कहीं घबराता है? खर तो रामचन्द्र के ऊपर ऐसा डटा चला जाता था जैसे पतंग अग्नि पर जल्दी दौड़ता है। अब खर ने रामचन्द्र के बाण-सहित धनुष को मुष्टिस्थान पर से काट दिया और अपने हाथ की शीघ्रता दिखलाई। फिर उसने वज्र के तुल्य सात बाण रामचन्द्र के मर्मस्थान में मारे। और भी हजार बाणों से रामचन्द्र को पीड़ित करके उसने संग्राम में महानाद किया। उस समय खर के बाणों के आघात से रामचन्द्र का, सूर्य के सदृश प्रकाशमान्, कवच कट-कर भूमि पर गिर पड़ा। उस संग्राम में खर के बाणों से सब गात्रों में पीड़ित और क्रुद्ध रामचन्द्र की ऐसी शोभा हुई जैसी धूमरहित अग्नि की देख पड़ती है। अब शत्रु के नाश के लिए रामचन्द्र ने महानाद कर अगस्त्य महर्षि के दिये हुए वैष्णव धनुष को हाथ में

लिया। उसकी जेह चढ़ाकर वे खर के सम्मुख दौड़े। उन्होंने बाणों से उसकी ध्वजा काट डाली। खर का वह सुवर्ण-निर्मित और अत्यन्त मनोहर ध्वज भूमि पर आ गिरा। उसकी ऐसी कान्ति देख पड़ती थी जैसे देवताओं की आज्ञा से भूमि पर आये हुए भगवान् सूर्य की देख पड़ती है। इसके अनन्तर मर्म-स्थल के जानकार खर ने क्रुद्ध होकर रामचन्द्र को चार बाण इस तरह मारे जिस तरह हाथी को भाले मारे जाते हैं। तब तो खर के अनेक बाणों की चोट खाकर रामचन्द्र रक्त से भीग गये। वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए। अब उन्होंने धनुष लेकर छः बाण छोड़े जिनमें एक बाण खर के मस्तक में, दो भुजाओं में और तीन अर्द्धचन्द्र उसकी छाती में मारे। फिर तेरह बाण लेकर एक से रथ के जूआ को, चार से चारों घोड़ों को, एक से सारथि के सिर को, तीन से रथ के तीनों बाँसों को, दो से रथ की धुरी को और कुछ मुसकुराकर एक से खर के बाण-सहित धनुष को काट डाला। एक बाण खर को भी मारा। अब रथ के टूट जाने, घोड़ों के मर जाने और सारथि के भी नष्ट हो जाने से खर नीचे कूद पड़ा। वह हाथ में गदा लेकर भूमि पर खड़ा हो गया। उस समय महारथ रामचन्द्र के इस महाकर्म को देख विमानों पर सवार देवता और महर्षि लोग हर्ष से उनकी बड़ी प्रशंसा करने लगे।

---

## उनतीसवाँ सर्ग

### रामचन्द्र का खर को दुर्वचन कहना और उसकी गदा काट गिराना

इस समय खर विरथ हो गया था और हाथ में गदा लिये खड़ा था। उसको देख रामचन्द्रजी ने मधुरतापूर्वक यह कठोर वचन कहा—

हजारों हाथी, घोड़े, रथ और बहुत सी सेना तुम्हारे काबू में थी। इसलिए तुमने बड़े घोर पाप किये हैं। देखो, जो नर प्राणियों को दुःख देनेवाला घातक और पापकर्म का करनेवाला है, वह तीनों लोकों का ईश्वर होने पर भी ठहर नहीं सकता। हे निशाचर, जैसे दुष्ट साँप को बिना मारे कोई नहीं छोड़ता उसी तरह लोक-विरुद्ध कर्म करनेवाले तीक्ष्ण पुरुष को सब लोग मारते हैं। जो पुरुष हर्षित होकर लोभ से अथवा काम से पाप करता है और कुछ समझता नहीं वह अवश्य नाश को प्राप्त होता है जैसे कि बमनी नामक जन्तु वृष्टि के ओलों को खाकर मर जाता है। हे राक्षस, ये धर्माचारी महात्मा तापस इस दण्डकवन में रहते हैं। इनको मारकर तुम किस फल को प्राप्त होगे? देखो, ढीली जड़ के जीर्ण वृक्ष जैसे बहुत समय तक खड़े नहीं रह सकते उसी तरह पापी, क्रूर और लोकनिन्दित जन ऐश्वर्य को पाकर बहुत समय तक नहीं ठहर सकते। हे खर, पापकर्म का करनेवाला समय पाकर अवश्य भयङ्कर फल पाता है जैसे ऋतु आने पर वृक्षों में फूल अवश्य ही लगते हैं। हे निशाचर, अपने पापकर्मों का फल पुरुष को शीघ्र मिलता है, उसके प्राप्त होने में विलम्ब नहीं होता। विष-मिश्रित अन्न को खानेवाला व्यक्ति शीघ्र ही मृत्युरूप उसके फल को देखता है। हे रजनीचर, तुमने घोर पाप किये और तुम सदा लोगों के अहित की वाञ्छा करते रहे। अब मैं तुम्हारे प्राणों का नाश करने के लिए आ गया हूँ। आज मेरे छोड़े हुए ये सुवर्ण से भूषित बाण तुम्हारा भेदन उसी तरह कर डालेंगे जैसे साँप बाँबी को फोड़ते हैं। जिन धर्मात्माओं को इस वन में तुमने खाया है उन्हीं के पीछे आज सेनासहित मरकर तुम भी जाओगे। जिन महर्षियों को

तुमने पहले मारा है वे विमान पर चढ़े आज तुमको नरक में पड़ा देखेंगे। हे कुलाधम, तुम यथेष्ट प्रहार और बचाव करो। आज मैं तुम्हारे मस्तक को ताड़ के फल की नाईं काटकर गिरा दूँगा।

राम के ये वचन सुनने से खर की आँखें क्रोध से लाल हो गईं। वह हँसकर बोला—हे दशरथ के पुत्र, तुम ऐसे-वैसे बलहीन राक्षसों को युद्ध में मारकर प्रशंसा के अयोग्य आप ही अपनी क्या प्रशंसा कर रहे हो। जो राजा पराक्रमी और बलवान् होते हैं और अपने तेज से गर्वित रहते हैं वे कुछ भी नहीं कहते। निरर्थक बकवाद तो वे ही करते हैं जो नीच, मलिन-चित्त और क्षत्रियकुल के दूषक हैं। तुम भी बकवाद ही कर रहे हो। भला कहो तो कि समर में, जहाँ मृत्यु का समय आकर प्राप्त हुआ है वहाँ, कौन ऐसा वीर है जो अपने को कुलीन मानता हुआ बिना प्रयोजन आप अपनी स्तुति करेगा? इसलिए, ये बातें कहकर, तुमने सर्वथा अपनी छुटाई दिखलाई है जैसे कि सुवर्ण के रंग का पीतल, अग्नि में तपने से, अपने दोष को—कालेपन को—स्पष्ट दिखा देता है। हे राम, क्या तुम मुझे यहाँ पर गदा धारण किये और युद्ध में तत्पर नहीं देखते? मैं धातु-भूषित पर्वत की नाईं अकम्प्य खड़ा हूँ। मैं हाथ में गदा लिये तुम्हारा वध करने को संग्राम में बहुत हूँ। अजी, तीनों लोकों का पराजय भी उसी तरह कर सकता हूँ, जैसे हाथ में पाश लिये काल कर सकता है। मुझे बहुत सी बातें कहनी हैं; परन्तु मैं कुछ न कहूँगा। देखो, सूर्य्य अस्ताचल को पहुँचना चाहता है, फिर युद्ध में विघ्न होगा। तुमने जिन चौदह हजार राक्षसों को मारा है उनके आँसुओं को अब मैं तुम्हारा विनाश करके इसी घड़ी पोंछूँगा।

बस, खर ने अत्यन्त क्रोध से प्रदीप्त वज्र के तुल्य उस महागदा को राम के ऊपर चलाया। उस समय वह गदा वृक्षों और लता-गुल्मों को भस्म करती हुई राम के समीप आ पहुँची। तब रामचन्द्र ने मारे बाणों के आकाश ही में उस गदा के अनेक खण्ड कर डाले। चूर-चूर होकर वह गदा भूमि पर इस तरह गिर पड़ी जैसे मन्त्र और ओषधि के बल से मारी हुई नागिन मरकर गिर पड़ती है।

---

## तीसवाँ सर्ग

### खर का मारा जाना

इस प्रकार गदा को काटकर श्रीरामचन्द्र ने कुछ हँसकर वीरता-भरे वचन कहे—हे नीच राक्षस, यही तूने अपने बल का सर्वस्व मुझे दिखलाया? तू मुझसे अत्यन्त शक्तिहीन है फिर भी व्यर्थ गर्जना कर रहा है। देख, यह तेरी गदा मेरे बाणों से कटकर भूमि पर गिर पड़ी। बहुत बड़-बड़ करनेवाले तेरे विश्वास का इसने नाश कर दिया। जो तूने कहा कि उन विनष्ट राक्षसों के आँसू पोंछूँगा, सो तेरा वह कहना भी झूठ है। अरे नीच, मिथ्या व्यवहार करनेवाले राक्षस, मैं तेरे प्राणों को उसी तरह हरण करता हूँ जैसे गरुड़ ने अमृत का हरण किया है। अब मेरे बाणों से विदारित तेरे कंठ के रक्त को, जिसमें फेन के बुलबुले होंगे, पृथ्वी पीवेगी। तू अभी धूलि-धूसर होकर और अपनी दोनों भुजाओं को फैलाकर भूमि पर सोवेगा जैसे कामी व्यक्ति दुर्लभ स्त्री का आलिंगन करके सोता है। हे राक्षस-कुल-दूषण, जब तू इस प्रकार घोर निद्रा में सो जायगा तब इस दण्डक वन में उन लोगों को

शरण मिलेगी जो दूसरों के शरणदाता हैं। हे राक्षस, यह तेरा जनस्थान मेरे बाणों से जब हतस्थान हो जायगा तब यहाँ ऋषि लोग निर्भय होकर विचरेंगे। देख, राक्षसियों के बान्धव मारे गये हैं। आज वे रोती होंगी। उनकी आँखों से आँसू बहते होंगे। वे भय से दीन होंगी। दूसरों के लिए भयंकर इस स्थान को छोड़कर वे आज भाग जायँगी। जिनके पति तुम्हारे ऐसे दुराचारी हैं उनको आज शोक का रस जान पड़ेगा। वे तेरे योग्य कुलवाली स्त्रियाँ निरर्थक हो जायँगी। हे घातकस्वभाव, नीचबुद्धे, ब्राह्मणों के लिए नित्य कण्टकरूप, देख तेरे कारण बेचारे मुनि लोग शंकायुक्त होकर अग्नि में होम करते हैं। इस प्रकार रामचन्द्र ने खर से जब क्रोध-पूर्वक बातें कहीं तब वह भी क्रोध से कठोर वचन बोला कि तुम अत्यन्त अहंकारी देख पड़ते हो। भय रहते भी निर्भय से जान पड़ते हो; मृत्यु के वश होकर तुम कहने न कहने योग्य बातों का विचार नहीं करते। ठीक है, जो पुरुष काल-पाश से घिरे रहते हैं वे कार्य और अकार्य को नहीं जानते। क्योंकि उनकी तो छहों इन्द्रियाँ जवाब दे देती हैं। उस राक्षस ने इस प्रकार रामचन्द्र से कहकर टेढ़ी भ्रुकुटी की और दाँतों से ओंठ चबाकर पास ही के एक महा साखू के वृक्ष को उखाड़ लिया। फिर अत्यन्त गरजकर दोनों हाथों से उसको रामचन्द्र के ऊपर फेंका और कहा कि बस, अब तुम मारे गये। तब उस वृक्ष को गिरते देख रामचन्द्र ने बहुत बाणों से उसको काट डाला। फिर वे खर के ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध हुए। क्रोध के खेद से नेत्रों को लाल करके हजार बाणों से उन्होंने खर को मारा।

उन बाणों के लगने से खर के शरीर से फेन-युक्त रक्त की धारा बह निकली, जैसे प्रस्रवणाचल का झरना बहता है। बाणों के आघात से वह विकल हो गया। रक्त के गन्ध से मत्त होकर वह वेग से राम के ऊपर दौड़ा। वह क्रुद्ध और रक्त में सराबोर देख पड़ता था। उसे अपने ऊपर आते देख रामचन्द्र ने शीघ्रता से दो-तीन पैर पीछे हटकर उसके वध के लिए, अग्नितुल्य बाण धनुष पर चढ़ाकर खर की छाती में मारा। वह बाण दूसरे ब्रह्मदण्ड के तुल्य प्रज्वलित था और इन्द्र का दिया हुआ था। उसका शब्द वज्रपात के तुल्य था। जैसे श्वेतारण्य में भगवान् रुद्र ने अन्धक को जलाकर गिरा दिया था वैसे ही उस बाण की अग्नि से भस्म होकर खर भूमि पर गिर पड़ा। जैसे वज्र से वृत्रासुर, फेन से नमुचि और वज्र से बलासुर प्राणरहित हो गया था उसी तरह खर भी प्राणहीन हो गया। खर के मारे जाने पर देवताओं को बड़ी खुशी हुई। वे आनन्दित होकर आकाश से पुष्पों की वर्षा करने और तरह-तरह के बाजे बजाने लगे।

लगभग तीन घड़ी में रामचन्द्र ने अपने पैनी धार-वाले बाणों से चौदह हजार राक्षसों को—खर, दूषण और त्रिशिरा सहित—मार डाला।

देवता कहने लगे कि अहो! रामचन्द्र का यह पराक्रम विष्णु के तुल्य है। इनकी वीरता, धीरता, और युद्ध-कुशलता अत्यन्त प्रशंसनीय है।

रामचन्द्र की सराहना करके देवगण स्वर्ग को चले गये। अब वहाँ पर बड़े-बड़े राजर्षि और महर्षि लोग अगस्त्य मुनि को साथ ले रामचन्द्र के पास आये। रामचन्द्र की स्तुति करके उन्होंने कहा—हे दशरथ के पुत्र, शरभङ्ग मुनि के आश्रम में इन्द्र इसी लिए आये थे और इसी कारण मुनि लोग आपको युक्ति से इस देश में लाये हैं सो आपने इन दुष्ट राक्षसों को मारकर हमारा बड़ा काम

किया। अब इस दण्डकारण्य में ऋषि लोग अपने धर्म का व्यवहार करेंगे। इधर यह होता ही था कि इतने में सीता के साथ लक्ष्मण कन्दरा में से निकलकर आश्रम में आये। विजयी रामचन्द्र भी लक्ष्मण से पूजित होकर आश्रम में गये। राक्षसों का नाश और रामचन्द्र की विजय देखकर सीता अत्यन्त सन्तुष्ट हुई और गले से मिली। ऋषि लोगों को राम की प्रशंसा करते देख वह पति के गले से मिलकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुई।

---

## इकतीसवाँ सर्ग

### जनस्थान से जाकर अकम्पन का रावण को सन्देश देना, रावण का मारीच के पास जाना और उसके सदुपदेश से लंका में लौट आना

अब अकम्पन नामक राक्षस ने शीघ्र जनस्थान से लंका में जाकर रावण से कहा—राजन्, जनस्थान के रहनेवाले बहुत राक्षस मारे गये। संग्राम में खर भी मारा गया। मैं बड़ी कठिनाई से यहाँ आया हूँ। यह सुनते ही रावण के नेत्र लाल हो गये। अत्यन्त क्रुद्ध होकर वह इस तरह बोला मानो नेत्राग्नि से जला देगा। उसने कहा—मेरे उस भयंकर जनस्थान का विनाश किसने किया? कौन पुरुष अपनी मृत्यु ढूँढ़ता है और सम्पूर्ण लोकों में कौन अपनी स्थिति नहीं चाहता? देख, मेरा अप्रिय करके इन्द्र, कुबेर, यम और विष्णु भी सुख से नहीं रह सकते। मैं काल का भी काल हूँ और मुझमें अग्नि को भी जलाने की सामर्थ्य है। मैं मृत्यु को भी मार सकता हूँ। अपने वेग से मैं वायु के वेग का नाश कर सकता हूँ। क्रुद्ध होने पर मैं अपने तेज से सूर्य और आग को भस्म कर सकता हूँ। रावण को इस प्रकार क्रुद्ध देखकर वह अकम्पन राक्षस डर गया। वह हाथ जोड़कर सन्देहयुक्त वाणी से अभय माँगने लगा। जब रावण ने उसको अभय दिया तब वह निडर होकर बोला कि सुनिए—

महाराजा दशरथ के पुत्र का नाम राम है। सिंह की सी उनकी चाल है। वे युवा हैं। स्कन्ध उनके महान् और सुडौल तथा लम्बी भुजाएँ हैं। उनका साँवला रङ्ग है। वे महायशस्वी, श्रीमान् और अतुल पराक्रमी हैं। उन्होंने जनस्थान में खर और दूषण को मारा है। यह सुनकर राक्षसाधिप रावण महासर्प के तुल्य श्वास छोड़ करके बोला कि हे अकम्पन, क्या वे रामचन्द्र देवराज और सब देवताओं के साथ जनस्थान में आये हैं? तब अकम्पन ने राम के बल और पराक्रम का वर्णन किया कि हे राक्षसेन्द्र, वे रामचन्द्र बड़े तेजस्वी, सब धनुर्द्धरों में श्रेष्ठ, दिव्य अस्त्रों के जाननेवाले और धर्म-युद्धकारी हैं। उन्हीं के अनुरूप बलवान् उनके छोटे भाई लक्ष्मण हैं। उनके लाल नेत्र हैं, दुन्दुभि का सा स्वर है और पूर्ण चन्द्र के सदृश उनका मुख है। उन्हीं राम ने अपने छोटे भाई के साथ जनस्थान का घात किया है जैसे कि अग्नि वायु को साथ ले भस्म करता है। इसमें देवताओं का कुछ भी अपराध नहीं। संग्राम में राम ने ऐसे-ऐसे बाण छोड़े हैं जिन्होंने पाँच मुख-वाले साँप होकर राक्षसों को खा डाला। कहाँ तक कहें, उन बाणों से भयभीत होकर राक्षस लोग जहाँ भागते थे वहीं रामचन्द्र को आगे खड़ा देखते थे। हे अनघ, इस प्रकार से तुम्हारा जनस्थान उन्हीं ने नष्ट कर दिया। यह सुनकर रावण ने कहा कि मैं राम और लक्ष्मण को मारने जनस्थान में जाऊँगा। तब अकम्पन बोला—राजन्, सुनिए। रामचन्द्र का बल और पौरुष मैं

कहता हूँ। रामचन्द्र जब क्रोध करते हैं तब किसी का ऐसा सामर्थ्य नहीं जो उनको पराक्रम से जीत सके। अपने सामर्थ्य से वे नदी के वेग को बाणों से रोक सकते हैं; आकाश से तारा-ग्रह-नक्षत्रों को नीचे गिरा सकते हैं और पीड़ा को प्राप्त हो रही पृथ्वी का उद्धार कर सकते हैं। उनमें इतना सामर्थ्य है कि वे समुद्र को छलकाकर लोकों को बहा दें, समुद्र के वेग को और वायु को भी रोक दें। इन लोकों का संहार कर वे फिर से रच सकते हैं। हे दशग्रीव, तुममें यह सामर्थ्य नहीं कि उनको रण में जीत सको। चाहे तुम सब राक्षसों को साथ ले जाओ परन्तु उनका सामना करना बड़ा कठिन है। जैसे पापी लोग स्वर्ग को नहीं पा सकते उसी तरह उनको जीतना भी कठिन है। मैं तो यह मानता हूँ कि न उन्हें देवता मार सकते हैं और न असुर। परन्तु उनके वध का उपाय मैं बतलाता हूँ; तुम चित्त देकर सुनो। उनके साथ सीता नाम की एक भार्या है। वह लोक में उत्तम, सुन्दर मध्यभागवाली, तरुणी, स्त्रियों में रत्न और रत्नों से भूषित है। वैसी न तो देवी जान पड़ती है, न गन्धर्वी, न अप्सरा और न नागिन; मनुष्य की कन्या तो कहाँ से वैसी हो सकेगी। वह उन्हीं की योग्य पत्नी है। सो तुम किसी प्रकार भुलावा देकर उसको हर लाओ। रामचन्द्र के पास जब सीता न रहेगी तब उनको तुम मरे ही समझो। अकम्पन का यह वचन सुनकर रावण ने स्वीकार किया। थोड़ी देर तक विचार कर उसने कहा कि अच्छा, सवेरे मैं अकेला ही, सारथि के सङ्ग, जाकर वैदेही को हर लाऊँगा। अब अकम्पन को बिदाकर उसने वहाँ से प्रस्थान किया। वह रावण गधों के रथ पर सवार हुआ। उस प्रकाशयुक्त रथ से वह दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ चला। उस समय आकाशचारी रावण का रथ नक्षत्र-मार्ग में ऐसा शोभा देता था जैसे मेघमण्डल में चन्द्र शोभित होता है। रावण दूर जाकर मारीच के आश्रम में पहुँचा। उसने अमानुष भोजन, आसन और जल से रावण का सत्कार किया और कहा कि राजन्, राक्षसेश्वर, कहिए राजधानी में कुशल तो है? आपके शीघ्र आने से मुझे शङ्का होती है। तब रावण बोला कि हे तात, राम ने मेरा समाज नष्ट कर डाला है। युद्ध में वह अवध्य जनस्थान मारा गया। सो राम की भार्या को हरण करने में तुम मेरी सहायता करो। मारीच ने उत्तर दिया कि हे राक्षसराज, किस मित्ररूप शत्रु ने तुमको सीता का नाम बताया? कौन पुरुष तुम्हारे आनन्द से आनन्दित नहीं होता? सीता को यहाँ ले आने की सलाह तुमको किसने दी? आप मुझे बतलाइए कि राक्षसों के शृंग-रूप तुम्हारा छेदन कौन करना चाहता है। इस विषय में जो तुमको उत्साह देता है वह अवश्य तुम्हारा शत्रु है। वह तुम्हारे हाथ से महासर्प के मुख में से दाँत उखड़वाना चाहता है। यह काम करवाकर कौन तुमको कुमार्ग में ले जाना चाहता है? राजन्, सुख से सोते हुए तुम्हारे मस्तक पर किस पुरुष ने प्रहार किया है? राघव-रूप गन्ध-हस्ती है। उसकी शुद्ध वंशोत्पत्ति ही सूँड़ है, तेजरूप मद है। उसकी प्रचण्ड भुजाओं को ही दो दाँत समझिए। उसे तो तुम देखने के भी योग्य नहीं; लड़ना तो दूर है। हे राक्षसराज, वह रामरूप सिंह है। रण के बीच जो कल-बल-छल हैं वही उसके केसर हैं; योद्धा राक्षसरूप मृगों का वह घात करनेवाला है; और पैने-पैने बाणरूप दाँतों से वह भूषित है। उस सोते हुए पुरुषसिंह को तुम नहीं जगा सकते। हे राक्षसराज, राम को तुम पाताल का मुख समझो। वह धनुषरूप ग्राह से युक्त, भुज-वेग-रूप पंक से भरा, बाणरूप तरंग-मालाधारी और महा संग्रामरूप प्रवाह से संयुक्त है। ऐसे घोर स्थान

में तुमको जाने की शक्ति नहीं। इसलिए हे लंकेश्वर तुम प्रसन्न होकर लंका में चले जाओ। तुम अपनी स्त्रियों के साथ विहार करो और रामचन्द्र को अपनी भार्या के साथ वन में विचरने दो। यह सुनकर रावण लंका में लौट आया और अपने राजमन्दिर में रहने लगा।

---

## बत्तीसवाँ सर्ग

### शूर्पणखा का लङ्का में जाना

शूर्पणखा ने देखा कि अकेले राम ने चौदह हजार राक्षसों को मार डाला और खर, दूषण तथा त्रिशिरा भी मरे पड़े हैं। यह देखकर वह बड़े नाद से गर्जी और राम के इस काम से व्याकुल होकर रावण की लङ्का में गई। वहाँ उसने सुन्दर विमान में बैठे तेजस्वी रावण को देखा। देवता जिस तरह इन्द्र की सेवा में रहते हैं उसी तरह रावण अपने प्रधान मन्त्रियों से सेवित था। सूर्य्य के तुल्य प्रभायुक्त सोने के आसन पर वह बैठा था। सुवर्ण-रचित वेदी पर वह प्रज्वलित अग्नि की नाईं दीप्यमान था। देव, गन्धर्व, महर्षि इत्यादि उसे जीतने में समर्थ न थे। मुँह फैलाये हुए काल के तुल्य वह बैठा था। देवासुर-संग्रामों में जो वज्र की चोट लगी थी उसके चिह्न अभी तक उसकी देह में थे। उसका वक्षःस्थल ऐरावत के दन्ताघात के चिह्न से भूषित था। बीस भुजाएं, दस मस्तक और छत्र-चामर इत्यादि से वह सुशोभित था। वक्षःस्थल उसका विशाल था, उसमें राजा के चिह्न थे ही। हरे मणि के तुल्य उसकी शरीर-कान्ति थी। वह मनोहर सुवर्ण-कुण्डल पहने था। उसकी सुन्दर भुजाएँ, श्वेत दन्त और मुख महान् पर्वताकार था। सैकड़ों बार विष्णु के चक्र की और नाना शस्त्रों की चोटें वह खा चुका था। वह समुद्रों का भी क्षोभ करनेवाला था। वह बड़े-बड़े पर्वतों को फेंक देता था, और देवताओं का मर्दक, धर्म्म का नाशक तथा पर-स्त्री-गामी था। वह सब दिव्य अस्त्रों का चलाना जानता था। वह यज्ञ-विघ्नकारी, भोगवती नगरी में गया था और वासुकी को जीतकर तक्षक की प्यारी भार्या को हर लाया था। उसने, कैलास पर जाकर, कुबेर को जीत लिया और उसके पुष्पक-विमान को हर लिया था। क्रुद्ध होकर उसने दिव्य चैत्ररथ वन, नलिनी सरोवर, नन्दन वन और देवों की और-और वाटिकाओं को ध्वस्त कर डाला था। उदय को प्राप्त होते हुए चन्द्र और सूर्य्य को उसने अपनी भुजाओं से रोक दिया था। पूर्वकाल में उसने महावन में दस हजार वर्ष तपस्या करके स्वयम्भू को अपने मस्तक भेंट में चढ़ा दिये थे। देव, दानव, गन्धर्व, पिशाच, पक्षी और सर्पों से संग्राम में यह निडर था। केवल मनुष्यों को इसने तुच्छ समझकर इनके हाथ से अवध्य होने का वरदान नहीं माँगा। यह महाबली रावण यज्ञों के हविस्थानों में जाकर मन्त्रों से स्तुति किये गये ब्राह्मणों के पवित्र सोम को नष्ट कर देता और यज्ञ का विध्वंस कर देता था। ऐसे दुष्ट, ब्रह्मघाती, क्रूर कर्म-कर्त्ता, कर्कश, दयारहित, प्रजा को दुःख देनेवाले, सब प्राणियों और लोकों को भय देनेवाले अपने भाई रावण को उस राक्षसी ने देखा।

उसने दिव्य वस्त्र और आभूषण पहने, दिव्य माला से सुशोभित, आसन पर बैठे हुए काल के तुल्य उद्यत रावण को देखा। वह राक्षसी भय-विह्वल तो थी ही; उसने समीप जाकर मन्त्रियों के बीच में बैठे हुए प्रदीप्त और विशाल नेत्रोंवाले रावण को अपनी दशा दिखला-

कर, भय और लोभ से मोहित हो करके, कठोर बातें कहीं।

---

## तेंतीसवाँ सर्ग

### शूर्पणखा का रावण को धिक्कारना

अब शूर्पणखा क्रुद्ध होकर बोली—हे रावण, तू कामभोगों में प्रमत्त, यथेच्छाचारी और अंकुश-रहित है। जिस घोर भय को जानना चाहिए उसे तू नहीं जानता। देख, जो राजा ग्राम्य भोगों में आसक्त, यथेच्छाचारी और लोभी है, उसको प्रजा श्मशान के अग्नि के सदृश नहीं मानती। जो राजा समय पर अपने कार्य्यों को आप नहीं करता वह उस राज्य और उन कार्य्यों के साथ ही नष्ट हो जाता है। जो राजा अयोग्य कर्म करता है, अथवा जो दूतों के द्वारा अपने राज्य का समाचार नहीं लेता, अपनी प्रजा से छिपा रहता है अर्थात् उनको दर्शन नहीं देता, और जो स्वाधीन नहीं है उसको लोग दूर ही से त्याग देते हैं, जैसे कि हाथी दूर से ही दलदल का परित्याग करते हैं। जो राजा अस्वाधीन राष्ट्र को नहीं हथियाते वे समुद्र के पर्वत की तरह वृद्धि के द्वारा प्रकाश नहीं पाते। तू देव, गन्धर्व और दानवों से बिगाड़ करके और दूतों के संचार से रहित होकर ऐसी चपलता से किस प्रकार राजा रहेगा? हे राक्षस, तू बालस्वभाव और बुद्धिहीन है। क्योंकि जो बात जाननी चाहिए उसको तू नहीं जानता। तू कैसे राजा होगा? हे जीतनेवालों में श्रेष्ठ! जिन राजाओं के दूत, कोश और व्यवस्था पराधीन हैं वे साधारण जन के तुल्य हैं। दूरस्थित सम्पूर्ण पदार्थों को राजा लोग दूत के द्वारा देखते हैं इसलिए वे दीर्घचक्षु कहलाते हैं। मैं तो तुझको अयोग्य दूतोंवाला और नीच मन्त्रियों से सेवित मानती हूँ क्योंकि तेरा स्वजन जनस्थान नष्ट हो गया, पर तुझे खबर ही नहीं। देख, खर और दूषण-सहित चौदह हजार राक्षसों को अकेले राम ने मार डाला, ऋषियों को अभय दिया और दण्डकों में कुशल-क्षेम का सम्पादन किया। जनस्थान का विध्वंस हो गया। हे रावण! तू लोभी, प्रमत्त और पराधीन है, क्योंकि तेरे सम्बन्ध में जो भय उत्पन्न हुआ है उसको भी तू नहीं जानता। जो राजा तीक्ष्ण, थोड़ा देनेवाले, प्रमत्त, गर्वयुक्त और धूर्त होते हैं उनकी, दुःख पड़ने पर, कोई प्राणी सहायता नहीं करता। जो राजा अतिमानी, अप्रिय, अपने आपको बहुत कुछ समझने-वाला और स्थान में क्रोधी होता है उसको, दुःख पड़ने पर, उसी के लोग मारते हैं। जो राजा यथोचित कार्य्य नहीं करता और भय की बात में भी निर्भय रहता है वह शीघ्र राज्य से च्युत और दीन होकर तृण के तुल्य हो जाता है। देख, सूखे काठ, लोहे और धूलि से भी काम निकलता है परन्तु स्थानच्युत राजाओं से कुछ भी कार्यसिद्धि नहीं होती। वे किसी काम के नहीं रहते। जैसे पहनकर फाड़ा हुआ कपड़ा और मर्दन की हुई माला किसी काम में नहीं आती वैसे ही राज्य से परिभ्रष्ट राजा, समर्थ होकर भी, निरर्थक ही समझा जाता है। परन्तु जो भूपति अप्रमत्त, सर्वज्ञ, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ और धर्मशील रहता है, वह बहुत काल तक स्थिर रहता है। जो राजा नेत्रों को बन्द करके सोता हुआ भी अपने नीति-शास्त्ररूप चक्षु से जागता रहता है और जिसका क्रोध और प्रसन्नता समय पर प्रकट होती है उस राजा की प्रशंसा होती है। हे रावण, तू तो दुर्बुद्धि और इन गुणों से हीन है। तुझे उन राक्षसों के मारे जाने की खबर दूतों के द्वारा नहीं मिल सकी।

तू दूसरों का अपमान किया करता है और विषयासक्त, देश-काल के विभागों के तत्त्व का न जाननेवाला और गुण-दोष का निश्चय करने में मूढ़-बुद्धि है। इसलिए तू नष्ट-राज्य होकर शीघ्र ही विपत्ति में फँसेगा।

शूर्पणखा ने जिन दोषों का वर्णन किया था उनको बुद्धि से विचारकर रावण देर तक सोच करता रहा।

---

## चौंतीसवाँ सर्ग

### शूर्पणखा का राम-लक्ष्मण और सीता का वर्णन करना

शूर्पणखा को ऐसे कठोर वचन बोलते देख मन्त्रियों के मध्य में क्रुद्ध होकर रावण पूछने लगा कि रामचन्द्र कौन हैं और उनमें किस प्रकार का बल है। उनका रूप और पराक्रम कैसा है? ऐसे दुस्तर दण्डकारण्य में वे क्यों आये हैं? उनका शस्त्र क्या है, जिससे इन खर आदि को उन्होंने मारा? हे मनोहराङ्गि, तू ठीक-ठीक कह कि किसने तुझे विरूप कर दिया? इस पर वह बोली कि हे राक्षसेन्द्र, सुनो—

दशरथ के पुत्र रामचन्द्र, इन्द्र-धनुष के तुल्य धनुष हाथ में लेकर, महा विषधारी सर्पों के तुल्य प्रदीप्त बाण चलाते हैं। उनकी भुजाएँ बड़ी और नयन विशाल हैं। वे चीर और कृष्ण मृगचर्म पहने हैं, और कामसदृश रूपवान् हैं। न तो उनके बाण का लेना जान पड़ता है, न छोड़ना और न धनुष का खींचना। मुझे तो उनके बाणों की वर्षा से केवल सेना का मारा जाना देख पड़ता था। जैसे इन्द्र के बरसाये हुए पत्थरों से उत्तम अन्न का क्षेत्र नष्ट हो जाता है वैसे ही उन बड़े पराक्रमी चौदह हजार राक्षसों को एक पैदल रामचन्द्र ने साढ़े तीन घड़ी में मार गिराया और खर-दूषण को भी नष्ट कर दिया। रामचन्द्र ने ऋषियों को अभय दिया और दण्डक वनों में आनन्द-मंगल कर दिया। मुझे विरूप करके रामचन्द्र ने स्त्री-वध की शंका से किसी प्रकार छोड़ दिया। उनके भाई महातेजस्वी लक्ष्मण गुणों से राम के तुल्य, अनुरक्त और भक्त हैं। वे बड़े पराक्रमी, अमर्षी, दुर्जय, सर्वोत्कृष्ट पराक्रमी, बुद्धिमान् और बली हैं। वे रामचन्द्र के दाहिने हाथ हैं और उन्हें नित्य प्राण के तुल्य प्रिय हैं। रामचन्द्र की एक धर्म-पत्नी सीता है। उसके नेत्र विशाल हैं, वह पूर्ण चन्द्र-मुखी नित्य प्यारी, पति के हित में तत्पर और सुकेशी है। उसकी सुन्दर नासिका और सुन्दर जङ्घाएँ हैं। वह ऐसी रूपवती और कीर्त्तियुक्त है मानो वन की लक्ष्मी हो। तपाये हुए सोने के तुल्य उसके शरीर का रङ्ग है। उसके नख लाल-लाल और पोरुवे ऊँचे-ऊँचे हैं, कटि क्षीण है। इस महीतल पर ऐसी न तो मैंने देवी देखी, न गन्धर्वी, न यक्षी, न किन्नरी। वह सीता जिसकी भार्या हो और जिसको हर्ष से आलिङ्गन करे उसका जीवन सब लोकों में इन्द्र से भी धन्य है। मैं ऐसा ही मानती हूँ। हे रावण, उस सुशीला का मनोहर शरीर है। भूमि-तल में अनुपम रूपवाली वह स्त्री तेरे ही योग्य भार्या है। तू ही उसका योग्य पति है। विशाल-जघनों और पीनोत्तुङ्ग स्तनोंवाली उस स्त्री को मैं तेरी भार्या बनाने के लिए ले आने को गई थी। हे महाभुज, तब उस क्रूर लक्ष्मण ने मुझे विरूप कर दिया। जब तू उस पूर्णचन्द्रमुखी वैदेही को देखेगा तब अवश्य काम के बाणों के वश में हो जायगा। यदि तू उस स्त्री को चाहता हो तो शीघ्र अपने जय के लिए दाहिना पैर उठा। हे रावण, यदि मेरा वचन तुझे रुचता हो तो शङ्का-रहित होकर यह काम कर। पहले अपनी शक्ति

और राम-लक्ष्मण की अशक्ति को विचार ले, फिर यह काम करना। उचित तो तुझे यही है कि जनस्थान वाले इन राक्षसों के मारे जाने का समाचार सुनकर शीघ्र इसका उपाय कर।

---

## पैंतीसवाँ सर्ग

### रावण का फिर मारीच के पास जाना

शूर्पणखा की ये भयङ्कर बातें सुनकर रावण ने सचिवों को बिदा किया। उस कार्य को समझ कर वह जाने को उद्यत हुआ। वह मन में उस कार्य को विचारता और गुण-दोष के बलाबल को सोच रहा था। अच्छे प्रकार से मन में सोच-विचार कर वह रथशाला में गया। उसने सारथि को, बहुत धीरे से, रथ जोतने की आज्ञा दी। सारथि ने सुवर्ण-रत्न से भूषित रथ में शीघ्र चलनेवाले और पिशाच-तुल्य मुखवाले खरों को जोतकर रथ तैयार कर दिया। तब वह राक्षसाधिपति उस मेघ-तुल्य शब्दवाले रथ पर चढ़कर समुद्रतीर को चला। उस समय वह राक्षसाधिप अपने दस मुखों, बीस भुजाओं, हरिन्मणि तुल्य शरीर की कान्ति, सुवर्ण के भूषणों, सुन्दर साजों, श्वेत चामरों और श्वेत छत्र से अत्यन्त शोभित हो रहा था। वह देवशत्रु और महर्षियों का घात करनेवाला राक्षसराज रथ पर बैठा ऐसा देख पड़ता था मानो दस शृंगवाला हिमालय हो, या। बहुतेरी विद्युत् से युक्त और बगलों की पंक्ति से अलङ्कृत आकाशचारी मेघ हो।

अब वह वीर्यवान् रावण उस स्थान में पहुँचा जहाँ एक बड़ा भारी बरगद का पेड़ था। जाते समय उसने पर्वत-व्याप्त सागर के समीप जल-बहुल प्रदेश को देखा। उसके चारों ओर विविध फल-फूलों से लदे हुए सैकड़ों वृक्ष और शीतल-पवित्र सलिलशाली जलाशय थे। विशाल आश्रमों में वेदियाँ थीं। कदली, नारियल, साल, ताल और तमाल प्रभृति विविध वृक्ष फूले हुए थे। वहाँ नियताहारी परमर्षि रहते थे। हजारों नाग, गरुड़, गन्धर्व, किन्नर और काम-विजयी सिद्ध तथा चारण वहाँ वर्त्तमान थे। ब्रह्मा के पुत्र वैखानस, मरीचिप, बालखिल्य और माषसंज्ञक परमर्षियों के कारण वह प्रदेश सुशोभित था। क्रीड़ा-रति की विधि को जाननेवाली रूपवती अप्सराएँ और श्रीसम्पन्न देवाङ्गनाएँ वहाँ दिव्य आभरण और दिव्य मालाएँ पहने विद्यमान थीं। अमृतभोजी देवता और दानव वहाँ सदा विचरते रहते थे। हंस, मद्गुक, क्रौञ्च और सारस वहाँ चारों ओर फैले हुए थे। वहाँ वैदूर्य मणि के सदृश हरे रङ्ग की शिलाएँ थीं। समुद्र की तरङ्गों के कारण वह देश सदा शीतल और स्निग्ध रहता था। रावण ने वहाँ चारों ओर सफेद रङ्ग के विशाल विमान देखे जो दिव्य मालाओं से युक्त और गीत-वाद्य से प्रतिध्वनित थे। ये विमान चाहे जहाँ आ-जा सकते थे। इन पर उन्हीं लोगों का अधिकार था जिन्होंने कि अपने तपोबल से विविध लोकों पर विजय प्राप्त कर ली थी। मार्ग में रावण ने गन्धर्वों और अप्सराओं को भी देखा। इसके बाद उसे परम दर्शनीय अगुरु और चन्दन के हजारों वन मिले। ये निर्यास रस के आकर और नासिका के लिए सुखकर थे। फिर उत्तमोत्तम फलों के पेड़ों और उच्चप्रति के सुगन्धित तक्कोल वृक्षों के वन-उपवन मिले। वहाँ तमाल के पुष्प और काली मिर्च के पौदे भी थे। तीर पर पड़े मोतियों के ढेर सूख रहे थे। मूँगों की चट्टानें, पर्वत और सोने-चाँदी के

शृंग भी रावण ने वहाँ देखे। वहाँ पर सुविमल जल से परिपूर्ण सुन्दर अनोखे झरने भी थे। अब धन-धान्य से सम्पन्न, श्रेष्ठ स्त्रियों से परिपूर्ण और हाथी-घोड़े एवं रथों से व्याप्त नगरों को देखता हुआ रावण आगे बढ़ा। वह समुद्र के उपकूल-स्थित स्निग्ध प्रदेश में पहुँच गया, जो स्वर्ग के तुल्य सुन्दर और मृदु मारुत से युक्त था। राक्षसराज रावण ने वहाँ मेघ के रंग का एक बरगद का पेड़ देखा जिसके नीचे ऋषियों का समुदाय था। उस वृक्ष की शाखाएँ चारों ओर शत योजन पर्यन्त फैली हुई थीं।

किसी समय गरुड़ वहाँ एक बड़े भारी हाथी को और ऐसे ही कछुए को लेकर, खाने के लिए, इस बट-वृक्ष की शाखा पर आ बैठे। गरुड़ के और उन दोनों जन्तुओं के भार से वह बहुत पत्तेवाली शाखा मड़मड़ा-कर टूट गई। वहाँ पर ब्रह्मपुत्र वैखानस, माष, बाल-खिल्य, मरीचिप और धूम्र बड़े-बड़े ऋषि इकट्ठे थे। इन लोगों पर दया कर गरुड़ ने, उस सौ योजनवाली शाखा को और उन दोनों जन्तुओं को एक पैर से थामकर दोनों जन्तुओं को तो खा डाला और उन मुनियों को बचाकर उस शाखा से निषादों के देश का संहार करके बड़ा आनंद पाया। उसी हर्ष से द्विगुणित पराक्रमी होकर गरुड़ ने अमृत लाने के लिए उद्योग किया। लोहे की शृङ्खलाओं को तोड़कर और रत्न के गृह को फोड़कर उसने इन्द्र के घर में से, बड़ी हिफाजत से रक्खे हुए, अमृत का हरण किया। वह सुभद्र नामक वट-वृक्ष महर्षियों से सेवित और गरुड़ के पराक्रम से चिह्नित था। उसको रावण ने देखा। समुद्र के पार जाकर एक एकान्त, पवित्र और रमणीय वन-प्रदेश में उसने मारीच नामक राक्षस को देखा। वह कृष्ण-मृगचर्म पहने, जटामण्डल धारण किये और नियताहारी था। राजा को आते देख मारीच ने सब अमानुष पदार्थ, भोजन और जल से रावण का यथाविधि सत्कार किया। फिर उसने यह अर्थयुक्त वचन कहा—हे राजन्, राक्षसाधिप, तुम्हारी लङ्का में कुशल तो है? तुम फिर शीघ्र ही किस प्रयोजन से आये हो? इस पर रावण ने उसे उत्तर दिया।

---

## छत्तीसवाँ सर्ग

### रावण का मारीच को अपना अभिप्राय समझाना

रावण ने कहा—हे तात मारीच, मैं जो कहता हूँ उसको सुनो। इस घड़ी मैं आर्त्त हो रहा हूँ। अब तुम्हीं मेरे लिए परमगति हो। देखो, तुम जानते ही हो कि जनस्थान में मेरा भाई खर, महा-बाहु दूषण, मेरी बहिन शूर्पणखा, महाबली त्रिशिरा नामक राक्षस और लक्ष्यवेधी बहुत शूर राक्षस लोग मेरी आज्ञा से रहते थे। वे उस महावन के धर्म-चारी मुनियों को सताते थे। वे चौदह हजार राक्षस खर के चित्त के अनुसार व्यवहार करते थे। उनको एक पैदल मनुष्य राम ने न कुछ कठोर वचन कहा और न सुना ही, किया क्या कि एकाएक क्रोध से धनुष पर बाणों को चढ़ाकर मार डाला। खर, दूषण और त्रिशिरा को भी समाप्त कर दिया। दण्डकवन को निर्भय कर दिया है। देखो, जिसको पिता ने क्रोध कर स्त्री के साथ घर से निकाल दिया उस क्षीणाजीवी क्षत्रिय-कुल-घातक राम का यह काम है। मैं तो जानता हूँ कि वह राम दुष्टस्वभाव, कर्कश, तीक्ष्ण,

मूर्ख, लोभी, अजितेन्द्रिय, धर्मत्यागी, अधर्मी और प्राणियों के अहित में सदा तत्पर है। क्योंकि उसने बिना ही वैर के, केवल अपने बल के भरोसे मेरी बहिन को—नाक और कान काटकर—विरूप कर दिया। अब मैं भी उसकी भार्या सीता को हर लाऊँगा। वह देवकन्या के तुल्य है। इस काम में तू मुझे सहायता दे। हे महाबल, यदि तू मेरा सहायक होकर मेरे पास रहे और मेरे भाई मेरी मदद करें तो मैं देवताओं को भी कुछ नहीं समझता। हे राक्षस, तू मेरा सहायक हो। क्योंकि तू समर्थ है। बल में, युद्ध में और दर्प में तेरे तुल्य दूसरा नहीं। तू उपाय भी अच्छे जानता, बड़ा शूर और सम्पूर्ण माया में बड़ा चतुर है। इसलिए मैं तेरे पास आया हूँ। हे मारीच, सहायता में तुझे जो काम करना पड़ेगा उसे सुन ले। तू सुवर्ण का मृग बनकर चाँदी की बूटियों से भूषित हो जा। तू राम के आश्रम में सीता के समीप चरने लग जाना। सीता जब तुझे देखेगी तब अवश्य अपने पति से और लक्ष्मण से कहेगी कि इस मृग को लाओ। जब वे तुझे लेने को खाली आश्रम छोड़ चले जायँगे तब शून्य आश्रम में जाकर सीता को मैं बेखटके चुरा लाऊँगा जैसे कि चन्द्र की प्रभा को राहु हरण करता है। इसके बाद मैं कृतार्थ हो जाऊँगा और भार्या के हरण से निर्बल राम को सहज में मार लूँगा।

रावण के मुँह से राम की कथा सुनते ही उस बेचारे मारीच का मुख सूख गया। डरकर वह अपने सूखे ओठों को चाटने लगा। उसकी आँखों में टकटकी लग गई। वह मृतक की नाईं आर्त्त होकर रावण की ओर देखने लगा। डर और विषाद से मारीच पीड़ित हो गया था। महावन में रामचन्द्र ने जो पराक्रम किया था उसको भी वह जानता था। अब रावण के समीप हाथ जोड़कर वह अपने और रावण के भी हित की बात बोला।

---

## सैंतीसवाँ सर्ग

### मारीच का रावण को समझाना

मारीच ने कहा—राजन्, सदा प्रिय बोलनेवाले लोग बहुत सहज में मिल सकते हैं, परन्तु ऐसे लोगों का मिलना दुर्लभ है जो हित के तथा अप्रिय वचन बोलें और सुनें। हे रावण, तू अवश्य ही नहीं जानता कि रामचन्द्रजी बड़े पराक्रमी, अनेक गुणों से उत्कृष्ट और इन्द्र-वरुण के तुल्य हैं। कारण यह है कि तू चञ्चल है और तेरे पास दूत भी अयोग्य हैं। हे तात, सब राक्षसों के कल्याण की ओर दृष्टि करो। ऐसा न हो कि रामचन्द्र क्रुद्ध होकर लोक में एक भी राक्षस न रहने दें। यह जनकपुत्री तेरे प्राणों का नाश करने के लिए तो नहीं उत्पन्न हुई? ऐसा न हो कि सीता के निमित्त से तू महा विपत्ति में पड़ जाय। ऐसा न हो कि तेरे जैसे यथेच्छाचारी और निरंकुश स्वामी को पाकर राक्षसों-सहित लंकापुरी नष्ट हो जाय। तेरे जैसा कामचारी, दुष्टशील, पाप मन्त्रणा-वाला दुर्बुद्धि राजा अपना, अपने जनों का और अपने राष्ट्र का नाश करता है। देख, श्रीरामचन्द्र को न पिता ने निकाला है और न वे मर्यादा-रहित या लोभी हैं। उनका स्वभाव भी दुष्ट नहीं है। न वे क्षत्रिय-कुल-घालक हैं और न धर्मगुणों से हीन हैं। उनका स्वभाव भी तीक्ष्ण नहीं। वे तो प्राणियों के हित में सदा तत्पर रहते हैं। उनके पिता अपनी प्रतिज्ञा के लिए सत्य बोले थे। उन्हें कैकेयी के द्वारा

वंचित देख राम ने उस बात को अंगीकार किया और वन में प्रस्थान किया। उन्होंने कैकेयी की और पिता दशरथ की प्रीति के लिए राज्य और भोगों को छोड़कर इस दण्डकवन में निवास किया है। हे तात, राम न तो कर्कश हैं, न अविद्वान् हैं, न अजितेन्द्रिय हैं, और न कभी मिथ्या बोलते हैं। उनको ऐसा कहना तुम्हें योग्य नहीं। रामचन्द्र तो मूर्तिमान् धर्म, साधु, सत्य-पराक्रम और देवों के राजा इन्द्र की नाईं सब लोक के राजा हैं। वैदेही तो अपने तेज से आप ही रक्षित है। वह सूर्य की प्रभा की नाईं है। उसको तुम अपने हठ से किस प्रकार हरना चाहते हो। हे रावण, राम-रूप प्रदीप्त अग्नि है। उस अग्नि में शररूप ज्वाला है, वह स्पर्श करने योग्य नहीं। उसमें चापरूप ईंधन है, उसमें प्रवेश करना तुम्हें उचित नहीं। हे तात, रामरूप यमराज या काल है। वह धनुरूप प्रदीप्त मुख फैलाये हुए है, वह बाणों की ज्वाला से प्रदीप्त, अमर्षयुक्त, तीक्ष्ण और शत्रुसेना का नाशक है। राज्य-सुख और अपने इष्ट-जीवन को छोड़कर तुम क्यों उसका सामना करना चाहते हो? वे अपरिमित तेजस्वी हैं। उनकी स्त्री जनकपुत्री को हरण करने का तुमको सामर्थ्य नहीं। क्योंकि वह सर्वदा वन में राम के धनुष से रक्षित रहती है। भला सुनो तो सही, उस नरसिंह और सिंह-तुल्य वक्षःस्थलवाले महापराक्रमी रामचन्द्र की प्राणों से भी अधिक प्यारी और नित्य पतिव्रता मैथिली के चुराने की तुम्हारी क्या शक्ति है? वह सीता प्रज्वलित अग्नि की शिखा के तुल्य है। हे राक्षसाधिप, तुम्हारा उद्योग व्यर्थ है। रण में रामचन्द्र की नजर पड़ते ही तुम्हारे जीवन का अन्त हो जायगा। फिर सुख और राज्य की तो बात ही क्या है। इसलिए हे राक्षसेश्वर, तुम जाओ और विभीषण इत्यादि अपने प्रधान मन्त्रियों के साथ अपना निश्चय करो। दोषों का, गुणों का और बलाबल का विचार करो। अपना और राम का ठीक-ठीक बल देखो। तब अपने हित की ठहराकर जैसा उचित हो, करो। परन्तु हे निशाचर-राज, मैं तो यही जानता हूँ कि कोशलराज के पुत्र के साथ तुम्हारा युद्ध सर्वथा अयोग्य है। और भी कई एक बातें मैं कहता हूँ जो योग्य और युक्त है। उनको सुनो।

---

## अड़तीसवाँ सर्ग

### उदाहरण देकर मारीच का रावण को समझाना

हे रावण, मैं किसी समय अपने पराक्रम से इस पृथ्वी पर घूमता था। मुझमें उस समय हजार हाथियों का बल था। मैं पर्वताकार, नीले मेघ के तुल्य काला, सुवर्णकुण्डल पहने, और लोगों को डरवाता था। मैं किरीट पहने, हाथ में परिघ लिये, दण्डकारण्य में भ्रमण करता और ऋषियों का मांस भक्षण करता था। तब धर्मात्मा महामुनि विश्वामित्र मुझसे डरकर राजा दशरथ के पास गये और बोले कि हे नरेश्वर, मारीच से मुझे घोर भय उत्पन्न हुआ है। इसलिए पर्व-काल में, दीक्षा के समय, रामचन्द्र मेरी रक्षा करें। यह सुनकर महाराज दशरथ बोले कि हे मुनि, रामचन्द्र तो अभी पूरे बारह* वर्ष के भी नहीं। दूसरे, अस्त्र-विद्या के भी वे अभी जानकार नहीं हैं, इसलिए हे मुनिश्रेष्ठ,

* किसी-किसी पुस्तक में इस समय की अवस्था १५ वर्ष भी लिखी है।

मैं अपनी सेना के साथ चलूँगा। मैं स्वयं आपके शत्रु-राक्षसों का, आपके चित्तानुसार, घात करूँगा।

इस पर मुनि ने कहा कि राम को छोड़ और कुछ भी सेना इत्यादि उस राक्षस के लिए समर्थ न होगा। यद्यपि आप समरों में देवताओं के भी रक्षक हैं और आपके किये हुए काम तीनों लोकों में विख्यात हैं, तथापि मैं जो कहता हूँ वही ठीक समझिए। अपनी सेना को यहीं रहने दीजिए। हे रावण, यह कहकर और राम को साथ ले मुनिजी प्रसन्नता-पूर्वक अपने आश्रम में आये। अब उस दण्डकारण्य में मुनि ने तो यज्ञ-दीक्षा ग्रहण की और रामचन्द्र अपने चित्र-धनुष को फैलाकर वहाँ उपस्थित हुए। उस समय कुमार रामचन्द्र का बालरूप था। साँवला उनका रङ्ग और सुन्दर नयन थे। वे एक वस्त्र पहने थे। काकपक्ष धारण किये, और सुवर्ण की माला पहने थे। वे अपने प्रदीप्त तेज से दण्डकारण्य को सुशोभित करते देख पड़ते थे। उदय-काल में बाल-चन्द्रमा जैसा सुशोभित देख पड़ता है वैसे ही वे थे। इसके अनन्तर मैं अपने बल का अहङ्कार किये उस आश्रम में पहुँचा। मैं कृष्ण मेघाकार, सुवर्ण कुण्डलधारी और बलवान् था। मुझे आते देख, राम ने शीघ्र ही धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई, परन्तु मैं अपनी मूर्खता से रघुनन्दन को बालक समझकर शीघ्र विश्वामित्र की वेदी की ओर दौड़ा। उस समय रामचन्द्र ने एक ऐसा पैना बाण निकालकर मुझे मारा कि मैं सौ योजन पर इस समुद्र में आ गिरा। हे तात, मैं जानता हूँ कि वीर राम ने मुझे जान से मारने की इच्छा नहीं की थी, इसलिए मेरे प्राण बचा दिये। राम ने शर-वेग से मुझे फेंक दिया। उस समय मेरा चित्त भ्रान्त हो गया था। इस गम्भीर सागर में गिराये जाने पर बहुत देर में मुझे चेत हुआ तब मैं लङ्कापुरी में गया। इस प्रकार मैं तो उस घड़ी बच गया परन्तु मेरे सहायक राक्षसों को राम ने सहज में मार गिराया। यह उस समय की बात है जब रामचन्द्र अस्त्र-विद्या में ऐसे निपुण नहीं थे; इसलिए मैं तुम्हें मना कर रहा हूँ। इतने पर भी यदि राम से तुम विग्रह करोगे तो शीघ्र ही घोर विपत्ति में फँसकर नष्ट हो जाओगे; क्रीड़ा और रति के भेद जाननेवाले और समाज के उत्सवों को देखनेवाले राक्षसों के लिए सन्ताप और अनर्थ उत्पन्न करोगे। लङ्का नगरी मन्दिरों और अटारियों से पूर्ण तथा नाना रत्नों से भूषित है, वह सीता के लिए नष्ट हो जायगी। जो पवित्र जन पाप नहीं करते वे भी, पापी के संसर्ग से, दूसरों के पापों से नष्ट होते हैं जैसे सर्पयुक्त जलाशय में रहनेवाली मछलियाँ भी मारी जाती हैं। राक्षस लोग चन्दन लगाये और दिव्य आभरण पहने रहते हैं। अपने दोष से उन्हें तुम भूमि पर पड़े और मृतक देखोगे। तुम ऐसे शरणहीन राक्षसों को देखोगे जिनकी स्त्रियाँ हत हो गई हैं और जिनकी बच गई हैं वे उन्हीं को साथ लिये इधर-उधर भागते होंगे। तुम लङ्का को ऐसी देखोगे जो बाणजाल से घेर ली गई होगी, अग्निज्वाला से भरी होगी और जिसमें जले हुए घर होंगे। हे राजन्, परस्त्री के स्पर्श से बढ़कर कोई पाप नहीं है। तुम्हारे अन्तःपुर में हजारों स्त्रियाँ हैं, इसलिए तुम अपनी पत्नियों पर प्रीति करो; और अपने कुल को, राक्षसों को, और मान, वृद्धि, राज्य तथा अपने इष्ट जीवन को बचाओ। अपनी सुन्दर स्त्रियों को यदि बहुत दिन तक भोगना और अपने मित्र-वर्ग को कुछ समय और देखना चाहते हो तो राम से बिगाड़ मत करो। हे रावण, इतना कहने पर और मेरे जैसे मित्र के मना करने पर भी यदि तुम हठ से सीता को चुराओगे तो क्षीण-जीवन होकर यमपुरी को सिधारोगे।

तुम्हारे साथ तुम्हारे बन्धु भी मारे जायँगे और बल तो नष्ट होगा ही।

---

## उनतालीसवाँ सर्ग

### मारीच का फिर उदाहरण देना और रावण को समझाना

हे रावण, मैं उस समय इस प्रकार बच गया था। फिर उधर भी जो वृत्तान्त हुआ सो सुनो। उस समय मैं प्राण-संकट से बच गया। पर ऐसा न हुआ था कि मैं फिर रामचन्द्र के निकट न जाता। इसलिए मृगरूपधारी दो राक्षसों के साथ मैं दण्डकारण्य में गया। उस समय मैंने महाबली मृग के तुल्य अपना रूप बनाया था। प्रज्वलित मेरी जिह्वा थी, बड़े-बड़े दाँत और नोकदार सींग थे। हे रावण, मैं मांस भक्षण करता दण्डकारण्य में घूमने लगा। मैं अग्निहोत्र के स्थानों में, तीर्थों में और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध वृक्षों के निकट जाकर तपस्वियों को पीड़ा देता और धर्मशील मुनियों की हिंसा करता था। मैं उनके रक्त को पीता और मांस को खाता हुआ वन-वासियों को दुःख देता था। रक्त से मत्त होकर वन में इधर-उधर घूमता हुआ मैं बलवान् रामचन्द्र के समीप पहुँचा। वे तपस्वी, धर्माचरण में तत्पर, नियमित भोजन करने-वाले और सब प्राणियों के हित में तत्पर थे। राम को साधारण तपस्वियों के तुल्य समझकर और पुराने वैर का स्मरण करके मैं क्रुद्ध हो गया। मैं मृग के वेष में था। अपने नोकदार सींगों को उठाकर मैं राम की ओर मूर्खता से दौड़ा। उस समय राम ने धनुष को तानकर अत्यन्त पैने, बड़े वेगयुक्त वज्र के तुल्य रक्त-भोगी तीक्ष्ण बाण चलाये। मैं तो राम के पराक्रम को जानता ही था और पहले भय से चौकन्ना भी था—इसलिए उन बाणों को आता देख मैं भाग खड़ा हुआ परन्तु वे दोनों राक्षस मारे गये। उस बाण से किसी प्रकार बचकर और जीवन को पाकर अब मैंने तापस वेष धारण कर लिया है। मैं अब सावधानी से तपस्या करता हूँ परन्तु इस समय भी मैं राम को वृक्ष-वृक्ष में, चीर और कृष्ण मृगचर्म पहने तथा धनुष हाथ में लिये देखता हूँ मानो हाथ में फाँसी लिये यमराज घूमते हों। मैं ऐसा डर गया हूँ कि हजारों राम बल्कि सारा जङ्गल ही मुझे रामरूप देख पड़ता है। राम-रहित स्थान में भी जब देखता हूँ तब मुझे राम ही देख पड़ते हैं। स्वप्न में राम को देखकर मैं चौंक पड़ता हूँ और इधर-उधर भागने लगता हूँ। हे रावण, मैं तुमसे कहाँ तक कहूँ, राम से मैं ऐसा डर गया हूँ कि जिन नामों के आदि में रकार है (जैसे रत्न, रथ इत्यादि) उनको सुनने से भी मुझे डर लगता है। हे राजन्, मैं उनके प्रभाव को जानता हूँ इसलिए तुमसे भी कहता हूँ कि उनके साथ तुम्हारा युद्ध योग्य नहीं। रघुनन्दन में बलि और नमुचि को भी मारने की सामर्थ्य है। तुम चाहो राम से लड़ो या क्षमा करो परन्तु यदि मुझे देखना चाहते हो तो मेरे सामने उनकी कोई बात मत कहो। योग्य और धर्मशील बहुत से सज्जन दूसरों के अपराध से सकुटुम्ब नष्ट हो गये हैं। क्या मैं भी दूसरे के अपराध से नष्ट हो जाऊँगा? हे निशाचर, तुमको जैसा समझ पड़े वैसा करो परन्तु मैं तुम्हारा साथी न बनूँगा क्योंकि रामचन्द्र बड़े तेजस्वी और महाबली हैं। ऐसा न हो कि वे सब राक्षसों का अन्त कर डालें। तुम्हारा भाई खर शूर्पणखा के लिए राम पर चढ़ दौड़ा था। तब उस दुष्ट को राम ने मार डाला तो इसमें राम का क्या अपराध है? हे रावण,

मैं तुम्हारा हिताकांक्षी हूँ, इसलिए ऐसी बात कहता हूँ। यदि मेरी बात न मानोगे तो राम के बाणों से परिवारसहित मारे जाओगे।

---

## चालीसवाँ सर्ग

### रावण का मारीच को धमकाना

मारीच के उन उचित और समर्थ वचनों को सुनकर भी रावण न माना। अपनी मौत चाहनेवाला रोगी जिस तरह औषध की परवा नहीं करता उसी तरह इसने भी न माना। रावण क्रोध करके कठोर वचन बोला कि हे मारीच, तुमने जो बातें कहीं वे अनुचित हैं। मेरे विषय में तुम्हारी ये बातें निष्फल हैं जैसे कि ऊसर में बोया हुआ बीज फल नहीं देता। तुम्हारे इन वचनों से मैं फूट नहीं सकता। मैं उस मूर्ख, पापी और विशेष करके मनुष्य, राम के संग्राम से नहीं डरता। उसने अपने सुहृदों, माता-पिता और राज्य को छोड़कर केवल स्त्री के पामर वचन से, एकबारगी वनवास ले लिया। उस खरघाती राम की प्राण-प्यारी सीता को, तेरे सामने, मैं अवश्य हर लाऊँगा। इस विषय में मेरी दृढ़ बुद्धि है। इसको इन्द्रादि देवता भी नहीं पलट सकते। जो मैं इस विषय में तुमसे गुण-दोष पूछूँ तो तुमको ये बातें कहनी चाहिएँ। जो चतुर मन्त्री अपना भला चाहता हो उसको चाहिए कि जब उससे किसी कार्य्य के सिद्धान्त के विषय में पूछा जाय तब वह हाथ जोड़कर उचित उत्तर दे। देखो, राजा से कोई प्रतिकूल अर्थात् उसके मन से विरुद्ध बात न कहनी चाहिए। मृदुता के साथ ऐसी बात कहनी चाहिए जो शुभ और हितकर हो, पर शिष्टाचार के विरुद्ध न हो। राजा के समीप जो बात ढिठाई लिए हुए या हित के विरुद्ध कही जाती है उसका राजा अनुमोदन नहीं करता क्योंकि राजा तो अपना आदर चाहता है। मान-हीन वचन को वह क्यों ग्रहण करेगा? देखो, राजा में अग्नि के तुल्य उष्णता, इन्द्र के तुल्य पराक्रम, चन्द्र के तुल्य दयालुता, यम के तुल्य दण्ड और वरुण के तुल्य प्रसन्नता रहती है, इसलिए उसको इन पाँच देवताओं के तुल्य समझना चाहिए। हे राक्षस, राजा तो सब अवस्थाओं में मान्य और पूज्य है। तूने धर्म को छोड़-कर केवल मोह का आश्रय लिया है क्योंकि मैं राजा हूँ और तेरे यहाँ अतिथि रूप से आया हूँ पर तू दुष्टता से ऐसे कठोर वचन बोलता है। हे राक्षस, तुझसे मैं न अपने गुण पूछता हूँ न दोष और न अपना क्षय ही। मेरा तो तुझसे इतना ही कहना है कि इस कार्य में तू मेरी सहायता कर। सहायता में तुझे जो करना पड़ेगा वह भी मैं कहता हूँ; सुन। तू सुवर्ण का मृग बनकर, पहले बिन्दुओं से युक्त हो जा और राम के आश्रम में सीता के समीप चर। सीता को लुभाकर फिर तू जा सकता है। वह जब तेरा अद्भुत रूप देखेगी तब लाने के लिए राम से अवश्य कहेगी। राम जब आश्रम छोड़कर तेरे पीछे जायँगे तब तू दूर जाकर राम की सी आवाज में "हा सीते, हा लक्ष्मण" कहना। तेरे वचन को सुनकर सीता लक्ष्मण को भेजेगी और भाई के प्रेम से लक्ष्मण जायँगे ही। इस प्रकार जब दोनों भाइयों से आश्रम शून्य हो जायगा तब मैं, वहाँ जाकर, सुखपूर्वक सीता को हर ले आऊँगा जैसे कि इन्द्र ने शची का हरण किया था। हे मारीच, मेरा यह काम करके तुम यथेष्ट चले जाना। मैं तुम्हें अपना आधा राज्य दे दूँगा। हे सौम्य, इस काम की सिद्धि के लिए तुम मङ्गलरूप मार्ग में यात्रा करो। मैं रथ पर

चढ़कर तुम्हारे पीछे दण्डकारण्य में चलता हू। इस प्रकार वञ्चनापूर्वक बिना ही युद्ध किये, राम की सीता को पाकर मैं कृतार्थ हो तेरे साथ लङ्का में चला चलूँगा यदि तुम मेरा यह काम न करोगे तो मैं तुम्हें अभी मार डालूँगा। क्योंकि मेरा यह कार्य अत्यन्त आवश्यक है। बलात्कार से तुम करोगे ही। क्योंकि जो पुरुष राजा के प्रतिकूल होता है वह सुखपूर्वक नहीं बढ़ता। अब राम के समीप जाने से तुम्हारे जीवन का सन्देह है और, इधर, मेरे विरुद्ध आचरण करने से तुम्हारी अवश्य मृत्यु है। इसलिए इन दोनों बातों को सोच लो, फिर जैसा रुचे वैसा करो।

---

## इकतालीसवाँ सर्ग

### अब मारीच का बहुत कठोर वचनों से रावण को समझाना

रावण की यह आज्ञा सुनकर भी मारीच निःशङ्क भाव से बोला—हे निशाचर, किस पापी ने पुत्र, राज्य और मन्त्रियों-समेत तुम्हारे विनाश का यह उपदेश दिया है? कौन पापकारी तुम्हारे सुख को नहीं चाहता? किसने तुमको इस मृत्यु के द्वार का उपदेश किया है? हे निशाचर, तुम्हारे हीन-पराक्रमी शत्रु तुमको अति बलवान् के साथ भिड़ाकर तुम्हारा नाश कराना चाहते हैं। हे निशाचर, तुम्हारे किस अहितकारी क्षुद्र-बुद्धि पुरुष ने तुमको यह उपदेश दिया है? कौन तुमको अपने ही कर्म से नष्ट कराना चाहता है? हे रावण, तुम्हारे मन्त्री लोग वध के योग्य हैं परन्तु उनका वध नहीं किया जाता क्योंकि तुमको कुमार्ग पर आरूढ़ देखकर वे रोकते नहीं हैं। सज्जन मन्त्रियों को उचित है कि जो राजा कामचारी और कुमार्गगामी हो उसको सर्वथा रोकें। आश्चर्य की बात है कि तुम ऐसे दुराचारी हो फिर भी रोके नहीं जाते। जीतनेवालों में श्रेष्ठ हे निशाचर—धर्म, अर्थ और काम—तीनों पदार्थ मन्त्रियों को स्वामी के प्रसाद से मिलते हैं; नहीं तो वे सब व्यर्थ होते हैं। स्वामी के दोष से ही लोग दुःख पाते हैं। राजन्, धर्म और यश का मूल राजा ही है। इसलिए सब अवस्थाओं में राजा की रक्षा करनी चाहिए। हे राक्षसेन्द्र, राज्य का पालन करना न तीक्ष्ण पुरुष का काम है, न अत्यन्त प्रतिकूल प्रकृति के पुरुष का और न उद्दण्ड का। राजा को उग्र परामर्श देनेवाले मन्त्री, राजा-समेत, उस दशा को प्राप्त होते हैं जो कि मूर्ख सारथि के रथ की विषम भूमि में होती है। हे रावण, धर्म में तत्पर रहनेवाले अनेक साधु लोग, दूसरों के अपराध से, अपने परिवार-सहित नष्ट हो गये। प्रतिकूल और तीक्ष्ण प्रकृति का स्वामी जिस प्रजा का रक्षक होता है उस प्रजा की वृद्धि नहीं होती जैसे कि सियार से रक्षित वन में मृगों की वृद्धि नहीं होती। हे रावण, जिन राक्षसों के राजा तुम कर्कश, दुर्बुद्धि और अजितेन्द्रिय हो वे अवश्य मारे जायँगे। खैर, मेरा तो इस प्रकार मरण होगा ही; परन्तु इस विषय में तुम्हारा मुझे बड़ा शोक है। तुम सेना-सहित नष्ट हो जाओगे क्योंकि मुझे मारकर रामचन्द्र शीघ्र ही तुझे भी मारेंगे। मैं तो इस बात से कृतार्थ हूँ कि राजा के हाथ से मरने की सजा पाने की अपेक्षा शत्रु के हाथ से मरना अच्छा है। हे रावण, ज्योंही मैंने राम को देखा त्योंही तू मुझे मुर्दा समझ लेना और सीता के हरण से तू अपने को और बन्धु-बान्धवों को भी मरा हुआ समझ लेना। जो तू मेरे साथ सीता

को हर ले आवेगा तो यह निश्चय समझना कि न तू बचेगा, न मैं, न लङ्का और न राक्षस रहेंगे। हे निशाचर, मैं तेरा हितकारी हूँ। मेरा कहना और रोकना तू नहीं मानता। सो ठीक है, जिनका आयुबल क्षीण हो जाता है वे प्रेत-तुल्य हो जाते हैं। इसी कारण, वे अपने मित्रों के हितवचन नहीं मानते।

---

## बयालीसवाँ सर्ग

### मारीच का काञ्चन-मृग बनकर राम के आश्रम में जाना और सीता को लुभाना

इस प्रकार मारीच ने रावण से कठोर वचन कहकर उसके डर से कहा कि चलो, परन्तु जहाँ उन्होंने मुझे देखा कि मेरा जीवन तुम नष्ट ही जान लेना। क्योंकि राम के समीप पराक्रम करके कौन बच सकता है? जैसे तू यमदण्ड से मारा हुआ है वैसे ही वे तेरे लिए यमदण्ड-रूप हैं। तू ऐसा दुरात्मा है कि तुझ पर मेरा कुछ भी वश नहीं चलता। हे तात, मैं चलता हूँ तेरा भला हो।

मारीच के मुँह से यह बात सुनकर रावण प्रसन्न हुआ। उसको गले से लगाकर रावण ने कहा—हे मारीच, तुम्हारा यह पराक्रम-युक्त वचन मेरे मन के अनुसार हुआ। इस समय तू मारीच हुआ। पहले कोई और ही था। आओ, पिशाचमुख के खरों से जोते हुए इस रथ पर मेरे साथ बैठो। वहाँ सीता को लुभाकर तुम यथेष्ट चले जाना। तब मैं एकान्त में पाकर सीता को हर लाऊँगा। ताड़का का पुत्र मारीच "बहुत अच्छा" कहकर रथ पर सवार हुआ। अब दोनों वहाँ से चले। मार्ग में अनेक नगरों, वनों, पर्वतों, नदियों और राष्ट्रों को देखते हुए वे राघव के आश्रम में पहुँच गये। वहाँ रथ से उतरकर रावण ने मारीच का हाथ पकड़ा और कहा कि केले की बाटिका से वेष्टित यही राम का आश्रम है। अब तुम अपना काम करो। तब मारीच झटपट मृग बनकर राम के आश्रम के द्वार पर चरने लगा। उस समय मारीच ने मृग का बड़ा अद्भुत रूप बनाया था। उसके सींगों के अग्र श्रेष्ठ मणि की तरह थे, मुख का रङ्ग काला और सफेद था। उसकी चमक लाल कमल के तुल्य थी। इन्द्रनील अर्थात् बैजनी रङ्ग के कान, कुछ ऊँची गरदन, इन्द्रनील के सदृश पेट, और महुवे के पुष्प के तुल्य दोनों पसलियाँ थीं। कमल के केसर के तुल्य उसका रङ्ग, पन्ने के सदृश खुर, पतली जङ्घा, सुन्दर चाल, मनोहर इन्द्र-धनुष के तुल्य ऊँची पूँछ और सरस रंग था। नाना प्रकार के रत्नों से वह वेष्टित था। क्षणमात्र में वह राक्षस अत्यन्त सुन्दर मृग बन गया। उस वन को और राम के आश्रम को वह अपनी शोभा से प्रदीप्त करने लगा। वैदेही को लुभाने के लिए वह अपने मनोहर और विचित्र रूप से वहाँ की हरी-हरी घास चरने लगा। वह सैकड़ों तरह के विचित्र बिन्दुओं से प्रिय और आनन्द देनेवाले अपने रूप को दिखलाता हुआ वहाँ, वृक्षों के पत्तों को चरता हुआ, घूमने लगा। पहले वह कदलीवन में गया, तदनन्तर इधर-उधर कर्णिकार वृक्षों में गया। इस प्रकार वह सीता के दृष्टिगोचर हुआ। चित्र-विचित्र पीठ दिखलाता हुआ वह राम के आश्रम के समीप सुखपूर्वक विचरने लगा। वह बार-बार जा-जाकर लौटता था; मुहूर्त भर में शीघ्र गति से चला जाता और फिर लौट आता था। कुछ देर तक क्रीड़ा करता और फिर क्षण

भर भूमि पर बैठ जाता था। फिर आश्रम के द्वार पर आकर मृगों के झुण्डों में चला जाता और उन्हीं के साथ लौट आता था। वह सीता के देखने की बाट जोहता हुआ चित्र-विचित्र अनेक मण्डलाकार गतियों से वहीं चक्कर लगा रहा था। वहाँ के जंगली मृग उसके पास आते और उसके शरीर की गन्ध को सूँघकर इधर-उधर भाग जाते थे। यद्यपि मृगों को मारने और खाने का उसका स्वभाव था तथापि उस समय, अपने को छिपाने के लिए, वह उनको छू करके भी छोड़ देता था। सीताजी उस समय फूल तोड़ रही थीं। वे कनेर, अशोक और आम के वृक्षों के पास घूम रही थीं। सीता वन के क्लेश सहने लायक न थीं। वे उस रत्न-भूषित मुक्तामणियों से विचित्र मृग को देखने लगीं। उसके दाँत और ओठ मनोहर तथा रोम रुपहले थे। ऐसे मृग को देखने से उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। बड़े स्नेह से वे उसकी ओर देखने लगीं। सीता का मन उसके लिए ललचा गया। वह माया-मृग भी उस वन को सुशोभित करता और सीता को देखता हुआ वहीं घूमने लगा। उस अपूर्व मृग को देखकर सीता बड़े आश्चर्य में हो गईं।

---

## तैंतालीसवाँ सर्ग

### सीता के कहने से राम का मृग के पीछे जाना और सीता की रक्षा के लिए लक्ष्मण को सावधान करना

इस प्रकार फूल चुनते-चुनते सीता उस मृग को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उस मृग की कोखें सोने और चाँदी के रंग से शोभित थीं। सीताजी अपने पति और लक्ष्मण को पुकारने लगीं। वे इधर तो पुकारती थीं और उधर मृग को देखती जाती थीं। वे कहती थीं कि हे आर्यपुत्र, लक्ष्मण के साथ शीघ्र आओ। इस प्रकार सीता का पुकारना सुनकर वे दोनों भाई उधर देखने लगे। मृग को देखने से लक्ष्मण को शङ्का हुई। उन्होंने कहा—मैं तो इसको वही मारीच राक्षस जानता हूँ। हे रामचन्द्र, इसी उपाधिरूप पापी राक्षस ने अहेर करनेवाले बहुतेरे राजाओं का घात किया है। चमकीला और गन्धर्वपुर के तुल्य यह जो रूप है सो यह माया से बनाया हुआ है। क्योंकि यह राक्षस रूप बनाने की माया जानता है। हे पृथ्वीनाथ राघव, इस पृथिवीतल में रत्न से विचित्र इस प्रकार का मृग नहीं होता इसलिए यह अवश्य माया है। राक्षस के छल से भूली हुई सीता ने लक्ष्मण की यह बात न सुनी। वे उस कपटी मृग के रूप पर लट्टू हो गई थीं। वे हर्षित होकर राम से बोलीं—हे आर्यपुत्र, यह परम मनोहर मृग मेरे मन को हरे लेता है, इसको तुम ले आओ। यह हमारी क्रीड़ा के लिए होगा। हे महाबाहो, हमारे इस आश्रम में बहुत से सुन्दर रूपवाले मृग, चमर, सृमर, ऋक्ष, पृषत, वानर और किन्नर इत्यादि जाति के अनेक जीव चरते हैं परन्तु ऐसा मृग मैंने कभी नहीं देखा। देखो तेज, क्षमा और प्रकाश में यह जैसा है वैसा कोई भी मृग नहीं है। नाना रङ्गों से चित्रित, रत्नों से लदा और इस वन को सुशोभित करता हुआ यह मेरे समीप चन्द्र के तुल्य प्रकाश कर रहा है। अहो, कैसा इसका रूप, कैसी अच्छी श्री और कैसा इसका मनोहर शब्द है। हे राम, यह अद्भुत विचित्राङ्ग मृग मेरे मन को हरण करता है। जो यह जीता ही पकड़ लिया जा सके तो बड़ा आश्चर्य उत्पन्न करेगा। हम लोग जब वनवास समाप्त करके अपने राज्य में चलेंगे तब वहाँ, अन्तःपुर

मायाचित्र

की शोभा के लिए, यह मृग रहेगा। यह भरत के, आपके, मेरी सास लोगों के और मेरे विस्मय को बढ़ावेगा। यदि जीता न मिले तो इसकी खाल भी बहुत सुन्दर होगी। उसको मैं घास की चटाई पर बिछाकर बैठूँगी। हे रामचन्द्र, अपने प्रयोजन के साधन की इच्छा से स्त्रियों का यह कर्म यद्यपि भयङ्कर और अयोग्य है तथापि इस जन्तु के शरीर से मुझे बड़ा विस्मय हुआ है। इसलिए मैं आपसे आग्रह करती हूँ। उस सुवर्ण-रोमयुक्त, मणि-भूषित शृङ्गवाले, तरुण सूर्य के तुल्य कान्तिवाले और छायापथ के तुल्य तेजवाले मृग को देखने से अब रामचन्द्र को भी विस्मय हुआ। तब तो वे उस रूप से लोभित होकर और सीता के भी वचन को मानकर बोले कि हे लक्ष्मण, देखो, रूप की श्रेष्ठता से इस मृग पर सीता की कैसी इच्छा हो रही है। इससे मैं जानता हूँ कि आज यह मृग नहीं बच सकता। हे सौमित्रे, पृथिवी की तो बात ही क्या, नन्दन वन या चैत्ररथ में भी ऐसा मृग न होगा। देखो, इसके रोमों की पंक्तियाँ कैसी सुन्दर हैं कि सीधी और उलटी दोनों ओर से सुवर्ण-बिन्दुओं से चित्रित हैं। देखो, जब यह जँभाता है तब इसकी जीभ प्रदीप्त अग्नि की ज्वाला के सदृश मुख से ऐसी निकलती है मानो मेघमण्डल से बिजली निकलती हो। इसका मुख इन्द्रनील के प्याले के सदृश और पेट शङ्ख तथा मोती के तुल्य देख पड़ता है। यह अवर्णनीय मृग भला किसके मन को मोहित नहीं कर सकता! इसका सुवर्ण-निर्मित और रत्नखचित रूप देख-कर किसका मन विस्मित न होगा! हे लक्ष्मण, विहार के लिए और मांस के लिए भी धनुर्द्धर राजा लोग अहेर में मृगों को मारते हैं। मृग के अहेर के उद्योग समय राजा लोग महावन में मणि, रत्न और सुवर्ण आदि धातुओं को इकट्ठा करते हैं। वह साररूप सम्पूर्ण धन कोशवर्द्धक होता है अतएव वन में सभी की इच्छा, ब्रह्मलोक में प्राप्त जीवों की नाईं, पूर्ण होती है। अर्थ के उद्योग करने में जो अर्थ बिना विचारे अर्थात् सहज ही आ जाय उसी अर्थ को अर्थशास्त्र के जानने वाले लोग—जो उसके सम्पादन में तत्पर रहते हैं—अर्थ कहते हैं। इस मृग के अमूल्य सुवर्णरूप चर्म पर यह वैदेही मेरे साथ बैठेगी। हे लक्ष्मण, छूने में इस मृग की खाल के तुल्य न तो कदली* मृग की खाल हो सकती है, न प्रियक† की और न प्रवेणा‡ बकरे की ही। देखो, यह श्रीमान् मृग और आकाशचारी मृग अर्थात् मृगशिरा नक्षत्ररूप मृग, दोनों (अर्थात् तारा-मृग और मही-मृग) दिव्य हैं। यदि यह राक्षस की माया हो, जैसा कि तुम कहते हो, तो भी इसका वध मुझे करना अवश्य ही है। क्योंकि इस दुष्ट-बुद्धि घातक राक्षस ने वन में विहार करते हुए अनेक श्रेष्ठ मुनियों को मार डाला है और शिकार के समय बहुतेरे राजाओं का भी घात किया है। इसलिए इसको मारना आवश्यक है। देखो, पूर्व समय में वातापि नामक राक्षस तपस्वियों को, ठगकर और उनके उदर में प्रविष्ट होकर, मार डालता था। गर्भस्थित बच्चे अपनी माता केकड़ी को, उसका पेट फाड़कर, मार डालते हैं। उसी तरह वह राक्षस मुनियों को पेट फाड़कर मार डालता था। किसी समय वह राक्षस तेजस्वी अगस्त्य मुनि को पाकर उनका भक्ष्य हुआ। श्राद्ध के अन्त में फिर अपना

* कदली एक विशेष जाति का मृग है जिसके रोम कोमल, बड़े-बड़े, चितकबरे और नीलाग्र होते हैं।

†प्रियक भी एक प्रकार के मृग है। इनके रोम कोमल, ऊँचे-ऊँचे, चिकने और गभिन होते है।

‡प्रवेण एक प्रकार के बकरे हैं।

स्वरूप धारण करने की उस राक्षस की इच्छा देखकर अगस्त्य मुनि हँसे। उन्होंने कहा—हे वातापि, जीव-लोक में तूने बहुतेरे ब्राह्मणों को अपने तेज से नष्ट कर डाला, अब तू मेरे पेट में जीर्ण हो गया। हे लक्ष्मण, क्या यह राक्षस भी वातापि की तरह नहीं है ? मेरे जैसे नित्य धर्मात्मा और जितेन्द्रिय व्यक्ति को यदि यह धोखा देगा तो इसकी भी वही दशा होगी जो वातापि की हुई थी। अब तुम सन्नद्ध और सावधान होकर मैथिली की रक्षा करो, क्योंकि हमको वही काम करना चाहिए जिसमें वैदेही की रक्षा हो। मैं अब या तो इस मृग को मारूँगा या जीता ही पकड़ूँगा। हे सौमित्रे, अब मैं इस मृग को लेने जाता हूँ। देखो, इस मृग की छाल के लिए सीता की बहुत लालसा है। इसलिए हे लक्ष्मण, मैं जानता हूँ कि छाल की प्रधानता के कारण यह मृग आज जीता न बचेगा। जब तक मैं इस मृग को एक ही बाण से मारकर और इसके चर्म को लेकर आश्रम में लौट न आऊँ तब तक तुम सीता के साथ बहुत सावधानी से यहीं रहना। मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा। सीता की रक्षा के लिए इस बुद्धिमान्, चतुर और बली जटायु पक्षी को भी सावधान कर देना। तुम भी प्रतिक्षण चारों ओर से चौकन्ने रहना।

---

## चवालीसवाँ सर्ग

### रामचन्द्र का उस मृगरूप राक्षस को मारकर लौटना

इस प्रकार भाई को सावधान करके रामचन्द्र ने हाथ में सुवर्ण-भूषित खड्ग और तीन स्थान में झुका हुआ धनुष लिया। दो तरकस बाँधकर वे मृग के पीछे दौड़े। रामचन्द्र को अपने पीछे आते देख वह मृगराज मारे डर के थोड़ी देर के लिए गुप्त हो गया, और फिर प्रकट हो गया। अब वह मृग जिस ओर दौड़ता था उसी ओर, खड्ग और धनुष हाथ में लिये, रामचन्द्र बढ़े। वह सामने ही अपने रूप से जगमगाता हुआ देख पड़ता था। बार-बार रामचन्द्र को देखकर वह कभी तो दौड़ता, कभी उछलता, कभी शङ्कायुक्त होता, कभी घबराकर उड़ान भरता, कभी प्रत्यक्ष और कभी किसी झाड़ी में—छोटे-छोटे मेघों से घिरे शरत्काल के चन्द्र की तरह—छिपा देख पड़ता था। वह मृग क्षणभर में फिर देख पड़ता और बार-बार दूर जाकर प्रकट होता था। इस प्रकार वह कभी छिपकर और प्रकट होकर राम को आश्रम से दूर ले गया। तब रामचन्द्र बेबस और उस मृग से मोहित होकर क्रुद्ध हुए। वे थककर एक छायायुक्त तृणमय स्थान में ठहर गये। इस प्रकार वह मृगरूप निशाचर रामचन्द्र को भुलावा देता और दूसरे मृगों के साथ मिला हुआ पास ही देख पड़ा। रामचन्द्र की पकड़ने की इच्छा देख वह फिर भागा और डरकर छिप गया। अब रामचन्द्र ने दूर वृक्ष-समूहों से फिर उसको निकलते देख उसे मारने का निश्चय किया। क्रोधपूर्वक उन्होंने बाण निकाला। सूर्य-किरण के तुल्य जलता हुआ और सर्प की नाईं प्रदीप्त तीर धनुष पर चढ़ाकर और ब्रह्मास्त्र से अभिमन्त्रित कर रामचन्द्र ने मृग पर चलाया। उस बाण ने मारीच-मृग की छाती को विदीर्ण कर दिया। उस वज्र-तुल्य बाण के लगने से वह राक्षस ताड़-वृक्ष के बराबर ऊँचा उछला और अत्यन्त पीड़ित होकर नीचे गिर पड़ा और भयङ्कर नाद करने लगा। जब उसके जीवन की घड़ी पूरी हुई

और वह मरने लगा तब उसने मायामृग का कृत्रिम शरीर छोड़ दिया। उस समय वह रावण के वचन को स्मरण करके सोचने लगा कि क्या उपाय करूँ जिससे लक्ष्मण को सीता यहाँ भेजे और एकान्त पाकर रावण उसको हर ले जाय। यह सोचकर उसने ठीक रामचन्द्र की सी आवाज से चिल्लाकर कहा "हा सीते!" "हा लक्ष्मण!" राम के तीखे बाण से उसके मर्म छिद गये थे अतएव वह उस मृग-रूप को छोड़कर राक्षस हो गया। मरते समय उसका रूप बड़ा भारी हो गया।

वह भयंकर राक्षस भूमि पर पड़ा था और रक्त से भीगा हुआ छटपटा रहा था। उसको देखकर सीता के विषय में रामचन्द्र चिन्ता करने और लक्ष्मण के वचन को सोचने लगे कि देखो, उन्होंने मुझे पहले ही कहा था कि यह मारीच की माया है। सो वही हुआ। मेरे हाथ से यह मारीच ही मारा गया। यह राक्षस "हा सीते, हा लक्ष्मण" पुकारकर मरा है। इस शब्द को सुनकर सीता की क्या दशा हुई होगी और लक्ष्मण क्या सोचते होंगे। यह सोचने से रामचन्द्र को बड़ा खेद और भय हुआ। उनका शरीर रोमाञ्चित हो गया। तब वे एक और मृग को मार और उसका मांस लेकर अपने आश्रम को चले।

——

## पैंतालीसवाँ सर्ग

### सीता का लक्ष्मण को रामचन्द्र के पास भेजना

उस वन में अपने पति के तुल्य आर्त्तनाद को सुनकर सीता ने लक्ष्मण से कहा कि जाओ रामचन्द्र को तो देखो; इस घड़ी मेरा मन ठिकाने नहीं है। मैंने परम पीड़ित रामचन्द्र का अत्यन्त चिल्लाना सुना है इसलिए वन में इस तरह आर्त्तनाद करनेवाले अपने भाई की तुम रक्षा करो। तुम अभी दौड़ जाओ। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि वे राक्षसों में जा फँसे हैं जैसे कि बड़ा बैल सिंहों की चपेट में पड़ जाता है। वे इस समय शरण खोज रहे हैं। अब तुम उनको बचाओ। सीता की बातें सुनकर भी राम की आज्ञा का स्मरण करके लक्ष्मण नहीं गये। तब तो सीता क्रुद्ध होकर बोलीं कि हे सौमित्रे, तुम भाई के मित्ररूप शत्रु हो। इस अवस्था में भी तुम अपने भाई को नहीं देखते। मेरे लिए तुम अपने भाई का नाश चाहते हो और अवश्य मेरे लोभ से तुम रामचन्द्र के पास नहीं जाना चाहते। तुमको रामचन्द्र का दुःख ही प्रिय है; भाई पर तुम्हारा स्नेह नहीं है; क्योंकि इसी कारण तुम महाद्युतिमान् रामचन्द्र के बिना निश्चिन्त बैठे हो। सुनो तो यदि रामचन्द्र को कुछ हो गया तो मैं यहाँ रहकर क्या करूँगी। और तुम भी उन्हीं के अनुचर बनकर यहाँ आये हो अर्थात् तुम्हें भी उन्हीं की सेवा में चित्त देना चाहिए। इस प्रकार कहते-कहते सीता की आँखें भर आईं। भौजाई को शोक से संयुक्त और डरी हुई मृगी की भाँति देखकर लक्ष्मण बोले—हे देवि, तुम्हारे पति को नाग, असुर, गन्धर्व, देव, दानव और राक्षस कोई भी नहीं जीत सकता। सन्देह मत करो। हे सीते! देवता, मनुष्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच, किन्नर और मृगों में तथा भयङ्कर दानवों में, ऐसा कोई नहीं जो राम के सम्मुख खड़ा हो या उनका सामना करे। रामचन्द्र तो समर में इन्द्र के तुल्य पराक्रमी हैं, वे अवध्य हैं, उन्हें कोई मार नहीं सकता। इसलिए हे सीते, तुमको ऐसी

बात कहना उचित नहीं। मैं इस वन में, राम के बिना, तुम्हें अकेली छोड़ जाने का उत्साह नहीं करता। हे देवि, बड़े-बड़े बलवानों की शक्ति नहीं है कि रामचन्द्र के बल को निवारण कर दें। कहाँ तक कहूँ, जो तीनों लोक, शंकर इत्यादि देवताओं के साथ इकट्ठे हो जायँ तो भी राम के बल की बराबरी न कर सकेंगे। तुम्हारा हृदय आनन्दित हो। तुम सन्ताप को छोड़ दो। तुम्हारे पति उस श्रेष्ठ मृग को मारकर शीघ्र आ जावेंगे। तुमने जो यह स्वर सुना है, यह न तो उनका है और न किसी देवता का है; यह तो उस राक्षस की गन्धर्व-नगराकार माया है। हे वैदेहि, रामचन्द्र हमारे हाथ में तुमको धरोहर की भाँति सौंप गये हैं। इसलिए, इस शून्य वन में, तुमको मैं अकेली नहीं छोड़ सकता। हे कल्याणि, देखो, खर के और जनस्थान के घात करने से हम लोग इन राक्षसों के वैरी हो गये हैं इसलिए राक्षस लोग नाना प्रकार की बोलियाँ बोलते हैं; उनको हिंसा बड़ी प्यारी है। इसलिए तुम इन बातों की चिन्ता मत करो।

लक्ष्मण की यह बात सुनकर सीता क्रुद्ध हो गई। लक्ष्मण सत्य वचन कह रहे थे। उन पर लाल आँखें करके सीता ने कहा—निन्दित करुणा करनेवाले, घातक, हे कुल-नाशक, मैं जानती हूँ कि तुमको राम का महा दुःख प्यारा लगता है। राम का दुःख देखकर तुम ये बातें कह रहे हो। हे लक्ष्मण, तुम्हारे सदृश घातक और सदा छिपे-छिपे व्यवहार करनेवाले शत्रुओं की जो ऐसी पाप-बुद्धि हो तो इसमें आश्चर्य्य नहीं। हे लक्ष्मण, तू बड़ा दुष्ट-हृदय है। इसी लिए तो तू राम के साथ वन में अकेला आया है अथवा मेरे लिए भरत ने तुझे गुप्त रूप से भेजा है। सो हे सौमित्रे, वह बात न तो तुम्हारी सिद्ध हो सकती है और न भरत की; क्योंकि नीलकमल-श्याम और कमल-सदृश नेत्रोंवाले रामचन्द्र पति को छोड़कर अन्य व्यक्ति को मैं क्यों चाहूँगी। हे सौमित्रे, मैं तेरे सामने अपने प्राण त्याग दूँगी; इसमें सन्देह मत समझना। राम के बिना मैं क्षण भर भी इस भूतल पर जीती न रहूँगी।

सीता की ये बातें कठोर और रोमाञ्च करनेवाली थीं। इनको सुनकर जितेन्द्रिय लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर कहा—मैथिली, तुम मेरे लिए देवता हो इसलिए मैं उत्तर नहीं दे सकता। स्त्रियों का ऐसा अनुचित बोलना कुछ नई बात नहीं क्योंकि उनका तो यही स्वभाव है। संसार में देख पड़ता है कि स्त्रियाँ धर्म छोड़ देती हैं, वे चञ्चल होती हैं, स्वभाव उनका तीक्ष्ण होता है। वे आपस में भेद करा देती हैं। हे वैदेहि, तुम्हारे ये वचन मेरे कानों में तपाये हुए बाण के तुल्य लगे हैं, इनको मैं न सहूँगा। मेरे साक्षी ये वनचर लोग तुम्हारे इस कठोर वचन को सुनें। न्याय्य वचन कहने पर भी तुमने जली-कटी बातें कहकर मेरा कैसा तिरस्कार किया है। हे सीते, तुझे धिक्कार है! अब तू विनष्ट होनेवाली है तभी तो मेरे ऊपर ऐसी शङ्का करती है। तू स्त्री का दुष्ट स्वभाव दिखलाती है। मैं तो गुरुरूप रामचन्द्र के वचन पर स्थित था, परन्तु अब मैं उनके पास जाता हूँ। हे वरानने, तेरा मङ्गल हो; हे विशाल-नयने, ये सम्पूर्ण वनदेवता तेरी रक्षा करें। इस समय ये घोर निमित्त उत्पन्न हो रहे हैं। इनसे मुझे ऐसी आशङ्का हो रही है कि रामचन्द्र के साथ आश्रम में लौटकर फिर तुमको कुशल से देखूँ तब जानूँ। यह सुनकर रोती हुई जानकी फिर कठोर वचन बोली—हे लक्ष्मण, राम के बिना मैं गोदावरी में डूब मरूँगी, गले में फाँसी लगा लूँगी; या ऊँचे पर्वत के शिखर से

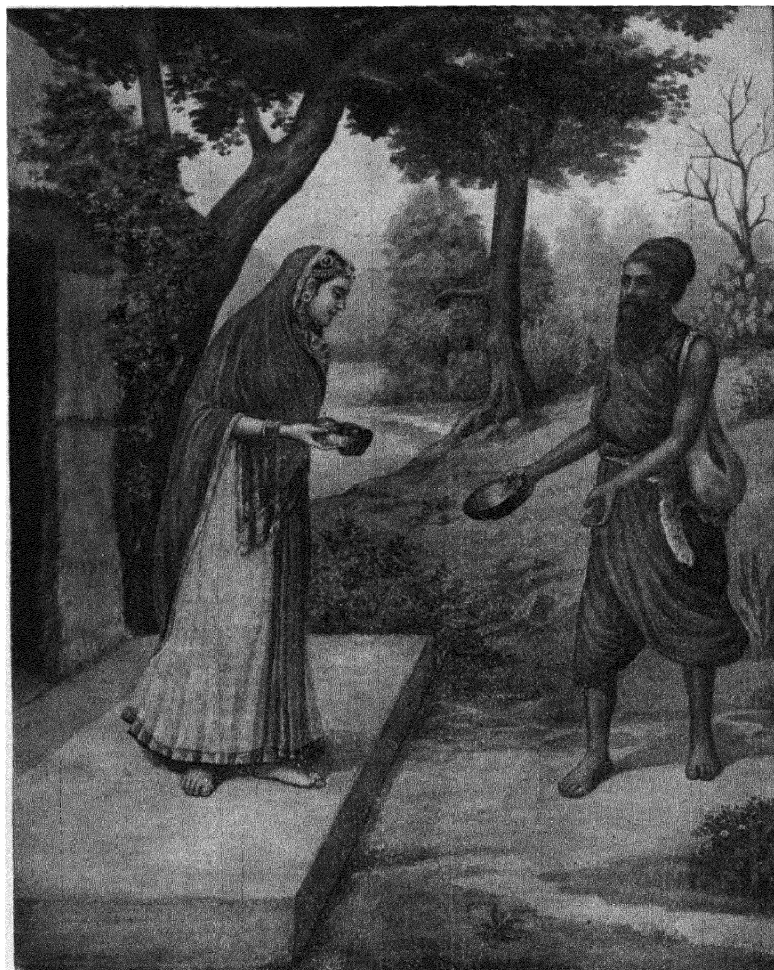

रावण-भिक्षा [ पृष्ठ ३११

गिरकर प्राण दे दूँगी अथवा तीक्ष्ण विष पी लूँगी। मैं खुशी से अग्नि* में प्रवेश करूँगी परन्तु राघव से भिन्न पुरुष का स्पर्श न करूँगी। लक्ष्मण से यह कहकर सीता शोक-पीड़ित हो दोनों हाथों से अपने पेट को पीट-पीटकर रोने लगी। जानकी की यह दशा देख लक्ष्मण उदास होकर उसको समझाने लगे परन्तु उसने फिर कुछ भी नहीं कहा। तब लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर और बहुत झुककर सीता को प्रणाम किया और बार-बार उसी को देखते हुए रामचन्द्र के पास जाने को चले।

---

## छियालीसवाँ सर्ग

### लक्ष्मण का राम के पास जाना और आश्रम में प्रवेश कर रावण का सीता से बातचीत करना

सीता के उन कठोर वचनों से क्रुद्ध होकर लक्ष्मण शीघ्र राम के पास चले। उस समय एकान्त अवसर पाकर रावण, संन्यासी के वेष में, सीता के पास आ गया।

उस समय रावण काषाय-वस्त्र पहने था, उसकी लम्बी चोटी थी, वह छत्र लगाये और पाँवों में खड़ाऊँ पहने था। उसके कन्धे पर सुन्दर त्रिदण्ड रक्खा हुआ था। हाथ में कमण्डलु भी था।

इस प्रकार परिव्राजक का रूप धारण कर वह दशशीश, राम-लक्ष्मण से रहित अकेली सीता के निकट आया जैसे कि सूर्य-चन्द्र से रहित संध्या को महा अन्धकार आ घेरता है और जिस तरह चन्द्रहीन रोहिणी को दारुण ग्रह ग्रस लेता है। उस समय जनस्थान के वृक्ष उस भयङ्कर पापात्मा को देखकर हिल-डुल भी नहीं सकते थे। वायु की गति रुक गई थी। शीघ्र प्रवाहवाली गोदावरी नदी उसके भय से धीरे-धीरे बहने लगी। उस समय सीता पति के सोच में पड़ी थी। वह रामचन्द्र का अपकारी और अमङ्गल रूप रावण, भिखारी बनकर, सुन्दर वेष से सीता के समीप जा खड़ा हुआ जैसे चित्रा नक्षत्र पर शनैश्चर पहुँच जाता है। उस समय रावण का वह साधु वेष ऐसा जान पड़ता था जैसा तृणों से ढके कूप का स्वरूप होता है। सीता के दाँत और ओष्ठ मनोहर थे। पूर्णचन्द्र के तुल्य उसका मुख था। वह कमलनयनी, सुवर्ण के रङ्ग का वस्त्र पहने, पर्णशाला में बैठी रो रही थी। शोक से पीड़ित सीता को देखकर रावण को हर्ष हुआ। समीप पहुँचकर ज्योंही उसने देखा त्योंही वह कामबाण से पीड़ित हो, वेद-मन्त्र का उच्चारण करता हुआ उस त्रैलोक्य-सुन्दरी और कमल-रहित लक्ष्मी की भाँति शरीर से सुशोभित सीता की प्रशंसा करने लगा। उसने कहा—हे रूप्यकाञ्चन के तुल्य वर्णवाली, हे सुवर्णतुल्य वस्त्रधारिणी तुम कमलिनी की तरह कमलों की माला से भूषित हो। क्या तू ही श्री, कीर्ति, या लक्ष्मी है? तू सम्पत्ति, अप्सरा अथवा यथेष्ट विहार करनेवाली काम की पत्नी रति तो नहीं है? देख, तेरे दाँत एक समान हैं, चिकने हैं, श्वेत हैं और अत्यन्त मनोहर हैं। तेरे नेत्र विशाल, निर्मल, लाल कोरवाले और काली पुतली से संयुक्त बहुत ही भले हैं। तेरी जङ्घाएँ विशाल और मोटी हैं और उनके नीचे के भाग हस्तिशुण्ड के तुल्य अतिरमणीय हैं। तेरे बड़े-बड़े

* लक्ष्मण के जाने के अनन्तर सीता ने एकान्त में अग्नि का आवाहन करके उसमें प्रवेश किया और अपना मायाकृत रूप पर्णशाला में स्थापित किया। किसी-किसी टीकाकार का ऐसा ही मत है।

स्तनों की नोकें उठी हुई हैं। ये बहुत ही मनोहर, चिकने ताल-फल की तरह हैं। इन पर मणियों की माला पड़ी हुई है। हे मनोहर हास्ययुक्ते हे सुन्दर दन्तवाली, हे सुन्दर नेत्रोंवाली विलासिनि, मेरे मन को तू हरण किये लेती है जैसे कि जल के वेग से नदी तट को हरण करती है। तेरी कटि मुष्टि-परिमित है, केश सुन्दर हैं, संयुक्त स्तनों से तू सुशोभित है। न तू देवी जान पड़ती है, न गन्धर्वी, न यक्षी, और न किन्नरी। मैंने तो इस भूतल पर ऐसी नारी देखी ही नहीं। तेरा यह मनोहर रूप, सुकुमारता और इस निर्जन वन में वास—ये बातें मेरे मन को मथन किये डालती हैं। इसलिए तू इस स्थान को छोड़ दे। यह स्थान तेरे रहने के योग्य नहीं, क्योंकि यहाँ तो भयङ्कर कामरूपी राक्षस रहते हैं। तेरे विहार करने के लिए तो मनोहर अटारियाँ, नगर और वाटिकाएँ होनी चाहिएँ जो समृद्ध और सुगन्धियुक्त हैं। तुझे तो सुन्दर माला, सुन्दर गन्ध, सुन्दर वस्त्र और सुन्दर पति चाहिए। हे असितेक्षणे क्या तू रुद्रों की, देवताओं की, अथवा वसुओं की कोई है? मुझे तो देवी सी देख पड़ती है। हे देवि, यहाँ न तो गन्धर्व आ सकते हैं, न देव और न किन्नर क्योंकि यह राक्षसों की वस्ती है। सो तू यहाँ किस प्रकार आई? यहाँ तो वानर, मृग, सिंह, तेंदुये, व्याघ, भालू, चीते और कंक रहते हैं। तू इनसे नहीं डरती! हे वरानने, यहाँ बड़े मतवाले हाथी घूमा करते हैं। उनसे तुझे डर नहीं लगता? हे कल्याणि, तू कौन है, कहाँ से आई है और इस घोर दण्डक वन में अकेली किस लिए घूमती है? इस वन में तो राक्षस रहते हैं।

वैदेही ने रावण के मुँह से यह प्रशंसा सुनी। वह रावण ब्राह्मण-अतिथि के वेष से आश्रम में आया था। इसलिए सीता ने पूर्ण रीति से उसका अतिथि-सत्कार किया। उसने पहले आसन और फिर पैर धोने को जल दिया। तदनन्तर सिद्ध भोजन से उसको निमन्त्रित किया क्योंकि उसके ब्राह्मण-भिक्षु का रूप धारण किये रहने के कारण, सीता किसी प्रकार उसका तिरस्कार न कर सकी। उसने कहा—हे ब्राह्मण, यह आसन है, इस पर बैठो। पैर धोने के लिए यह जल है इसको लो, और ये वन के पके फल हैं इनको खाओ। सीता के सत्कार को पाकर और उसके मधुर वचनों को सुनकर रावण ने, अपने वध के लिए, बलात्कार से उसका हरण करना चाहा। सीता इधर राम-लक्ष्मण के आने की बाट देख रही थी। वह वन की ओर देखने लगी तो केवल उसको शून्य दिशा देख पड़ी। राम-लक्ष्मण का पता ही न था।

---

## सैंतालीसवाँ सर्ग

### रावण का हरने का अभिप्राय जानकर उसको सीता का कटु वचन कहना और धिक्कारना

रावण संन्यासी के रूप में सीता-हरण की इच्छा से आया था। उसने जब सीता से परिचय पूछा तब सीता ने सोचा कि इस ब्राह्मण-अतिथि को जो मैं अपना नाम-गोत्र न बतलाऊँगी तो यह मुझे शाप दे देगा। पल भर यह सोचकर सीता बोली कि मैं मिथिला-देशाधिपति जनक की पुत्री, और रामचन्द्र की प्यारी पटरानी सीता हूँ। ब्याह के अनन्तर मैं बारह वर्ष तक ससुराल में मनुष्यों के भोगने के योग्य पदार्थों को भोगती रही। वहाँ मेरे सब मनोरथ पूर्ण थे। इसके अनन्तर तेरहवें वर्ष राजा ने मंत्रियों के साथ रामचन्द्र

को अभिषेक देने का विचार किया। जब रामाभिषेक की सामग्री प्रस्तुत हो गई तब मेरी सास कैकेयी अपने पति से वर माँगने लगी। उस वर के द्वारा उसने मेरे ससुर को अपने वश में करके मेरे पति के लिए वनवास और भरत के लिए अभिषेक माँगा। सत्यसन्ध महाराज दशरथ से ये दोनों वर माँगकर वह बोली कि यदि राम का अभिषेक होगा तो न तो मैं आज खाऊँगी और न सोऊँगी; मेरे जीवन का अन्त उपस्थित है। यह कहती हुई कैकेयी को मेरे ससुर ने बहुत प्रकार के पदार्थ देने के लिए कहा परन्तु उसने और कुछ न चाहा। मेरे पति रामचन्द्र की उम्र २५ वर्ष की और मेरी अठारह वर्ष की थी। मेरे पति रामचन्द्र लोक में सत्यवान्, शीलवान्, पवित्र, विशालाक्ष, महाबाहु और सब प्राणियों के हितकारी समझे जाते हैं। पर महाराज दशरथ ने कामासक्त होकर कैकेयी की प्रीति के लिए उन्हें राज्य नहीं दिया। जब अभिषेक के समय रामचन्द्रजी पिता के समीप गये तब कैकेयी झट बोल उठी कि राघव, तुम्हारे पिता ने मेरे लिए जो प्रतिज्ञा की है उसको सुनो—यह अकण्टक राज्य भरत को दिया जाय और तुम चौदह वर्ष वन में रहो। सो हे काकुत्स्थ, तुम वन में जाओ और अपने पिता को असत्यता से छुड़ाओ। उसका यह वचन सुनकर मेरे पति ने निर्भय हो अङ्गीकार कर लिया। क्योंकि मेरे पति बड़े दृढ़व्रत हैं, वे देते हैं लेते नहीं, सत्य बोलते हैं, झूठ नहीं। हे ब्राह्मण, यह रामचन्द्र का उत्तमोत्तम व्रत है। उनके भाई लक्ष्मण दूसरी माता से उत्पन्न हैं। वे बड़े वीर्यवान् हैं। वे मेरे पति के सहायक और समर में शत्रुहन्ता हैं। दृढ़व्रत, ब्रह्मचारी लक्ष्मण भी धनुष लेकर, मेरे साथ, मेरे पति के साथ चले आये। इस प्रकार मेरे पति जटाधारी बनकर और तापस का रूप धारण करके, मुझे और अपने छोटे भाई को साथ लेकर, इस दण्डक वन में आये हैं। हे द्विजश्रेष्ठ, हम तीनों कैकेयी के लिए राज्य से च्युत होकर वनवासी हुए और अपने पराक्रम से इस गम्भीर वन में विचरते हैं। हे ब्राह्मण, तुम पल भर ठहरो। मेरे पति अनेक वन्य पदार्थ लेकर आते होंगे। वे रुरु, गोह और वन-शूकर का मांस लावेंगे। तुम अपना नाम, गोत्र, कुल मुझे बतलाओ। इस दण्डकारण्य में तुम अकेले किस लिए फिरते हो?

यह सुनकर रावण कठोर वचन बोला—हे सीते, मैं राक्षसों का राजा रावण हूँ। मैंने देव, असुर और मनुष्यों-सहित तीनों लोकों को भयभीत कर रक्खा है। इस कौशेय वस्त्र को पहने तेरे सुवर्ण के तुल्य अंगों को देखकर मैं अपनी पत्नियों पर प्रेम नहीं कर सकता। इधर-उधर से जो मैं बहुत सी उत्तम स्त्रियों को हर लाया हूँ उनकी तू पहली पटरानी हो, और समुद्र के मध्य में लङ्का नामक मेरी जो महानगरी है, उसमें चलकर रह। वह नगरी सागर से घिरी हुई और पर्वत के मस्तक पर स्थित है। हे सीते, उस नगरी में तू मेरे साथ वनों में विहार करेगी और फिर इस वनवास की इच्छा न करेगी। यदि तू मेरी भार्या होगी तो पाँच हजार दासियाँ तेरी सेवा करेंगी। मेरी सब दासियाँ आभूषण पहने हैं।

रावण की ये बातें सुनकर सीता क्रुद्ध हो गई। वह अनादरपूर्वक उससे बोली—मैं उन रामचन्द्र की अनुगामिनी हूँ जो महेन्द्र पर्वत के तुल्य अकम्प्य और समुद्र के सदृश अक्षोभ्य हैं। महाभाग रामचन्द्रजी सम्पूर्ण लक्षणों से सम्पन्न, वट-वृक्ष के सदृश विशाल और सत्यप्रतिज्ञ हैं। मैं उनकी अनुगामिनी हूँ। महाबाहु रामचन्द्र का विशाल वक्षःस्थल है। वे

सिंह-तुल्य-गामी, नरसिंह और सिंह-सदृश पराक्रमी हैं। उन्हीं राम की मैं अनुगामिनी हूँ। महा कीर्त्तिवान् रामचन्द्र का मुख पूर्णचन्द्र सदृश है; उन्हीं जितेन्द्रिय की मैं पत्नी हूँ। तू सियार के तुल्य होकर दुर्लभ सिंहपत्नी के तुल्य मुझे चाहता है? जैसे सूर्य की प्रभा को कोई स्पर्श नहीं कर सकता उसी तरह तू मुझे स्पर्श करने के भी योग्य नहीं। हे मन्द-भाग्य राक्षस, तू अवश्य सुवर्णमय वृक्षों को देखता है, तभी तो तू राघव की प्रिय भार्या को हरण करना चाहता है। (सुवर्णमय वृक्षों को मुमूर्षु व्यक्ति देखता है।) मृगों के शत्रु, महावेगमान्, भूखे सिंह के और महाविषधर सर्प के मुँह में से तू दाँत उखाड़ना चाहता है। मन्दर पर्वत को तू हाथ से उठाना चाहता और कालकूट विष को पीकर सुख से चला जाना चाहता है। सुई से तू आँख को स्वच्छ करना चाहता है। तू जीभ से छुरे को चाटता है। तू गले में पत्थर बाँधकर समुद्र पार होना चाहता है। सूर्य्य और चन्द्रमा को तू हाथ से हरण करना चाहता है। प्रज्वलित अग्नि को तू वस्त्र में लपेट लेना चाहता है। तीखी नोकवाले शूलों के मध्य में तू गमनागमन करना चाहता है तभी तो तू राम के सदृश वीर की पत्नी को हरण करना चाहता है। हे रावण! सिंह और शृगाल के बीच जो अन्तर है, छोटी नाली और समुद्र, उत्तम मद्य और सौवीर (काँजी) में जो अन्तर है, वही अन्तर तेरे और रामचन्द्र के बीच में है। जो अन्तर कौवा और गरुड़ में, जलकाक और मयूर में तथा हंस और गीध में है, वही अन्तर तुझमें और राघव में है। जो अन्तर सोने का और लोहे-सीसे का है, जो अन्तर चन्दन और कीचड़ का है, तथा जो अन्तर हाथी और बिड़ाल का है, वही तुझमें और राम में है। रामचन्द्र का प्रभाव इन्द्र के तुल्य है। जब वे धनुष लेकर सम्मुख होंगे तब जो तू मुझे हरण भी कर लेगा तो पचा न सकेगा, जैसे कि मक्षिका घी को नहीं पचा सकती।

दुष्ट रावण से इस प्रकार शुद्ध चित्त से बोलती हुई सीता—वायु के झोंके से कदली की नाईं—थर-थर काँपने लगी और पीड़ित हुई। मृत्यु-तुल्य प्रभाववाला रावण, उसको काँपते देखकर और अधिक डरवाने के लिए अपने कुल, बल, नाम और कर्मों का वर्णन करने लगा।

---

## अड़तालीसवाँ सर्ग

### रावण का आत्म-प्रशंसा करना और सीता का उसके लिए धिक्कारना

सीता की ये बातें सुनकर रावण क्रुद्ध हो गया। अपनी भौंहें टेढ़ी करके वह कठोर वचन बोलने लगा। उसने कहा—हे वरवर्णिनि, मैं कुबेर का सौतेला भाई हूँ। मेरा नाम रावण है। मेरे दस मस्तक हैं। मैं महाप्रतापी हूँ। जैसे मृत्यु से डरकर प्रजा भागती है उसी तरह मेरे भय से देव, गन्धर्व, पिशाच, विहग और सर्प भागे भागे फिरते हैं। मैंने अपने भाई कुबेर को, किसी कारणवश, युद्ध में पराक्रम द्वारा जीत लिया है। वह कुबेर, मेरे भय से पीड़ित हो, ऋद्धियुक्त अपनी नगरी को छोड़कर कैलास पर्वत पर जा बसा है। उसका पुष्पक नामक विमान कामगामी है, चाहे जहाँ आ-जा सकता है। उसको मैंने बलात्कार से छीन लिया है। उस पर चढ़कर हम आकाश की सैर करते हैं। हे मैथिलि, मेरा क्रुद्ध मुख देखकर इन्द्र इत्यादि देव डरकर भागते हैं और जहाँ मैं खड़ा रहता या डोलता-फिरता

सीता-हरण। [पृष्ठ ३१५

हूँ वहाँ वायु भी शंकायुक्त होकर बहती है; वहाँ भयभीत होने से आकाश में सूर्य्य की किरणें चन्द्र के तुल्य शीतल हो जाती हैं; वृक्षों के पत्ते नहीं हिलते, नदियों का प्रवाह रुक जाता है। हे सीते! समुद्र-पार मेरी लंका नामक सुन्दर पुरी है। उसमें घोर राक्षस रहते हैं। वह इन्द्रपुरी के तुल्य शोभायमान, श्वेत प्राकार (शहरपनाह) से सुशोभित, सुवर्ण-रचित कमरों और पन्ना-रचित तोरणों से रमणीय है। वहाँ हाथियों, घोड़ों और रथों की कमी नहीं। वह नगाड़ों के शब्द से नादित, सब प्रकार के फलों से युक्त और वृक्षों की वाटिकाओं से भूषित है। हे राजपुत्रि, सीते! वहाँ तुम मेरे साथ निवास करो। वहाँ पर तुम मनुष्य की स्त्रियों का स्मरण भी न करोगी। हे वरवर्णिनि वहाँ जब तुमको मनुष्य के भोग्य पदार्थ और दिव्य पदार्थ प्राप्त होंगे और जब तुम उनको भोगोगी तब अल्प-जीवन-धारी मनुष्य राम का स्मरण न करोगी। देखो, राजा दशरथ ने अपने प्रिय पुत्र भरत को तो राज्य पर स्थापित कर दिया और उनसे हीन-पराक्रम रखनेवाले ज्येष्ठ पुत्र राम को वनवास दे दिया। हे विशालाक्षि, तुम उस राज्य से भ्रष्ट, अचेत, तापस रामचन्द्र को लेकर क्या करोगी? देखो, मैं राक्षसराज हूँ और अपने आप तुम्हारे पास आया हूँ, इसलिए मुझे ग्रहण करो और मुझे चाहो। मैं कामबाण से पीड़ित हूँ। मेरा तिरस्कार करना तुमको उचित नहीं। हे भीरु, यदि मेरा तिरस्कार करोगी तो पीछे से उसी तरह पछताओगी जैसे उर्वशी नाम की अप्सरा महाराज पुरूरवा को लात मारकर पीछे पछताई थी। हे वरवर्णिनि, वह मनुष्य रामचन्द्र युद्ध में मेरी अँगुली के भी तुल्य नहीं है। तुम्हारे भाग्य से मैं यहाँ आ गया हूँ। इसलिए तुम मुझे अङ्गीकार करो।

रावण के ये वचन सुनकर सीता क्रोध से लाल-लाल नेत्र करके कठोर वचन बोली—हे रावण, तू सर्वदेवनमस्कृत कुबेर को अपना भाई कहकर क्यों ऐसा अशुभ काम करना चाहता है। हे रावण, जिन राक्षसों का राजा तुझ जैसा कर्कश, दुर्बुद्धि और अजितेन्द्रिय है वे अवश्य ही विनाश को प्राप्त होंगे। देख, इन्द्राणी को हरनेवाला जी सकता है परन्तु रामचन्द्र की भार्या का हरण करके किसी का भी कुशल नहीं हो सकता। हे राक्षस, इन्द्र के पीछे इन्द्राणी को हरण करके कदाचित् कोई जीवे तो जी सकता है परन्तु मुझ जैसी की धर्षणा करके तेरा छुटकारा अमृत-पान करने से भी नहीं हो सकता अर्थात् तू जीता नहीं रह सकता।

---

## उनचासवाँ सर्ग

### रावण का अपना स्वरूप प्रकट कर सीता को हरना

इस प्रकार रावण ने जब सीता की बातें सुनीं तब हाथ मींजकर उसने अपना विशाल शरीर प्रकट किया। फिर उसने कहा—मैं जानता हूँ कि तू उन्मत्त है, तूने मेरे वीर्य और पराक्रम को नहीं सुना। देख, मैं आकाश में स्थित होकर इस पृथ्वी को भुजाओं से उठा सकता हूँ, समुद्र को पी सकता हूँ; मृत्यु को संग्राम में मार सकता हूँ; अपने तीक्ष्ण बाणों से सूर्य को व्यथित कर सकता हूँ और भूतल को फोड़ सकता हूँ। हे कामोन्मत्ते, मैं कामरूपी हूँ।

यह कहते हुए क्रुद्ध रावण के नेत्र अग्नि-तुल्य लाल हो गये। उसने उसी क्षण अपने साधु-रूप को छोड़कर काल के सदृश असली रूप धारण कर लिया। उस समय वह रावण श्रीयुक्त, सुवर्ण के भूषणों

से भूषित, महा क्रोधयुक्त, नीले मेघ के तुल्य, दसमुख और बीस भुजाओंवाला हो गया। इस प्रकार उस राक्षस ने संन्यासी के वेष को छोड़कर अपना असली रूप धारण कर लिया। रक्त वस्त्र धारण किये वह सीता की ओर देखता हुआ खड़ा होकर बोला—हे वरारोहे, जो तू तीनों लोकों में विख्यात पति चाहती हो तो मेरा आश्रय कर, क्योंकि मैं ही तेरे योग्य पति हूँ। तू अनन्त काल तक मेरे साथ रह। मैं तेरा पति सराहने के योग्य हूँगा। हे भद्रे, मैं ऐसा कोई काम न करूँगा जो तुझे अप्रिय होगा। इसलिए, मनुष्य के प्रेम को छोड़कर तू मेरे ऊपर प्रीति कर। भला सुन तो सही कि राम पर तू किन गुणों को देखकर अनुरक्त है? वह राज्य से च्युत है, उसके मनोरथ अपूर्ण हैं और उसके आयुष्य के दिन भी गिनती के हैं। तू अपने को बड़ी समझदार मानती है, परन्तु मैं तुझे मूर्ख ही समझता हूँ। देख वह स्त्री के वचन से राज्य को और मित्रों को छोड़कर सर्प आदि जन्तुओं से युक्त इस वन में रहता है उसको कौन भला कह सकता है? मैं तो उसको दुर्बुद्धि कहूँगा।

प्रियभाषिणी और प्रीति के योग्य सीता के पास जाकर उस दुष्टात्मा काममोहित राक्षस ने उसको इस तरह पकड़ लिया जैसे आकाश-मण्डल में बुध रोहिणी को थाम ले।

अब रावण ने बायें हाथ से सीता के केशों को और दाहने हाथ से दोनों पैरों के मध्य भाग को पकड़ लिया। उस गिरिशृङ्ग के तुल्य, तीखे दाँतवाले, महाभुज और मृत्यु के तुल्य भयङ्कर रावण को देख वनदेवता डरकर भाग गये। इसके अनन्तर रावण का वह मायारचित, आकाशगामी महारथ देख पड़ा जिसमें गदहे जुते हुए थे। उसका शब्द तीक्ष्ण था और उसमें सोने के पहिये थे। रावण ने कठोर वचनों द्वारा भय दिखाकर सीता को गोदी में उठाया और रथ पर बैठा लिया। उस समय रावण के वश में पड़ी हुई सीता अत्यन्त दुःख से पीड़ित होकर दूर वन में स्थित रामचन्द्र को बड़े शब्द से पुकारने लगी। अब वह काम-पीड़ित राक्षस उस कामरहित, और नागराज की पत्नी की नाईं छटपटाती, सीता को लेकर वहाँ से उड़ा। उस रावण के वश में पड़ी सीता, पागल के सदृश व्याकुल होकर, रोग-पीड़ित की नाईं अत्यन्त चिल्ला रही थी कि हा लक्ष्मण, हे महाबाहो, हे गुरु के चित्त को प्रसन्न रखनेवाले, तुम्हें क्या मालूम कि मुझे यह कामरूपी राक्षस लिये जाता है। हे राघव, धर्म के लिए आपने जीवन-सुख और अर्थ को भी छोड़ दिया है। क्या आप नहीं देखते कि यह मुझे अधर्म से लिये जा रहा है? हे परन्तप, तुम तो दुष्टों के दण्ड देनेवाले हो। सो इस प्रकार के पाप करनेवाले इस रावण को दण्ड क्यों नहीं देते? ठीक है, दुष्ट कर्म का फल जल्दी नहीं मिलता, किन्तु अन्न के परिपाक की नाईं इसका भी—समय आने पर—परिपाक होता है। हे रावण, काल ने तेरी बुद्धि नष्ट कर दी है, इसी से तूने यह काम किया है। इसके लिए रामचन्द्र तुझे ऐसी विपत्ति में डालेंगे कि तेरा प्राणान्त हो जायगा। हा! अपने बान्धवों सहित कैकेयी का इस घड़ी मनोरथ पूर्ण हुआ; क्योंकि धर्म-परायण यशस्वी रामचन्द्र की धर्मपत्नी मैं हरी जा रही हूँ। अब मैं इस जनस्थान से और फूले हुए इन कर्णिकार वृक्षों से प्रार्थना करती हूँ कि शीघ्र रामचन्द्र से कह देना कि सीता को रावण हरे लिये जाता है। हंस और सारस पक्षियों से नादित हे गोदावरी नदी, मैं तुमको प्रणाम करती हूँ। तुम झटपट राम से कह देना कि रावण सीता को हरकर लिये जाता है। अनेक वृक्षों से युक्त

इस वन में जो देवता निवास करते हैं उन सबको मैं नमस्कार करती हूँ कि मेरे पति को वे मेरा हरण बतावें। यहाँ जो नाना प्रकार के जन्तु और पक्षी हैं मैं उन सबके शरणागत होती हूँ; वे मेरे पति से कह दें कि विवश सीता को रावण हर ले गया। यदि उन महाबाहु को यह बात मालूम हो जायगी तो यमराज के हाथ से भी वे मुझे छुड़ा लावेंगे।

सीता इस प्रकार दुःखित और करुण वचनों से विलाप करती जा रही थी कि उसने किसी वृक्ष पर बैठे हुए गीध को देखा। उस समय रावण के वश में पड़ी वह भयभीत सीता, उस पक्षी को देखकर, बड़ी दुःखित वाणी से रोती-चिल्लाती हुई बोली कि हे आर्य जटायु! देखो, यह पापी रावण मुझे इस तरह लिये जाता है जैसे मेरा कोई नाथ ही न हो। इस राक्षस को रोकना तुम्हारे सामर्थ्य से बाहर का काम है क्योंकि यह बली, विजयी और शस्त्रयुक्त है; परन्तु हे जटायु, तुम यह बात राम और लक्ष्मण को समझाकर कह देना।

[कहीं ऐसा भी लिखा है कि यह सीता-हरण, वनवास के तेरहवें वर्ष, माघ शुक्ल चतुर्दशी के दिन वृन्द नामक मुहूर्त्त में हुआ था।]

---

## पचासवाँ सर्ग

### जटायु का रावण को समझाना और युद्ध के लिए उद्यत होना

उस समय जटायु नामक गृद्ध सो रहा था। इस शब्द को सुनकर वह शीघ्र इधर-उधर देखने लगा तो क्या देखता है कि सीता को जबर्दस्ती रथ पर बैठाये रावण लिये जाता है। वह उत्तम पक्षी पर्वत के शृङ्ग के तुल्य बड़ा था। उसकी चोंच तीक्ष्ण थी। वह जिस वृक्ष पर था वहीं से यह मधुर वचन बोला कि भाई दशग्रीव! मैं प्राचीन, धर्म में तत्पर और सत्यता पर आरूढ़ हूँ। मेरे आगे तुम्हें ऐसा निन्दित काम न करना चाहिए। मैं गीधों का राजा महाबलवान् जटायु हूँ; और दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्र हैं जो सम्पूर्ण लोक के राजा, इन्द्र-वरुण के तुल्य और सम्पूर्ण लोगों के हित में तत्पर हैं। यह सीता उन्हीं की धर्मपत्नी है। इसको तुम, हरण कर, लिये जाते हो। भला सुनो तो, जो राजा धर्म-मार्ग पर आरूढ़ है उसको क्या पर-स्त्री पर हाथ डालना चाहिए? हे महाबल, विशेष कर राजा की पत्नी की तो सर्वथा रक्षा करनी चाहिए। सो तुम इस पर-स्त्री के हरण से दूर हो जाओ और इस नीच गति को छोड़ दो। ऐसा काम न करना चाहिए जिसमें कोई निन्दा करे; जैसी अपनी पत्नी वैसी दूसरे की। इसलिए इनको दूसरे के स्पर्श से बचाना चाहिए। देखो, जिस अर्थ के विषय में अथवा जिस काम के विषय में, शास्त्र के द्वारा अच्छे प्रकार से ज्ञान नहीं हो सकता उसका आचरण शिष्ट लोग वैसा ही करते हैं जैसा कि राजा करता है। ऐसे मामले में वे राजा के आचरण को ही आदर्श मानते हैं। इसलिए हे पौलस्त्यनन्दन, राजा को सर्वथा धर्म-मार्ग ही का अनुसरण करना चाहिए। देखो, राजा ही धर्म, काम और द्रव्यों का उत्तम निधि है, क्योंकि धर्म, शुभ कर्म अथवा पाप—सबकी जड़ राजा ही है। राजा ही के अनुसार इन सबकी प्रवृत्ति होती है। हे राक्षसश्रेष्ठ, तुम ऐसे पाप-स्वभाव और चञ्चल हो तो फिर यह इतना बड़ा ऐश्वर्य तुमको किस प्रकार हो गया जैसे कि दुष्टकर्म्मा पुरुष को देव-विमान प्राप्त हो जाय। जो पुरुष यथेच्छाचारी है वह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ सकता। दुष्टात्माओं

के घर में बहुत काल तक कहीं पुरुष रह सकता है ? रामचन्द्र ने न तुम्हारे देश में और न नगर में कुछ अपराध किया है। उन्होंने तुम्हारा भी कुछ बिगाड़ नहीं किया जिससे कि तुम उस धर्मात्मा की हानि कर रहे हो। यदि शूर्पणखा के हेतु जनस्थान-वासी उद्दण्ड खर को राम ने मार डाला तो कहो इसमें उनका क्या दोष है, जिससे कि तुम उनकी भार्या को हरण करते हो ? हे रावण, तुम शीघ्र वैदेही को छोड़ दो। कहीं ऐसा न हो कि वे घोर अग्नि-तुल्य नेत्र से तुम्हें जला डालें; जैसे इन्द्र के वज्र ने वृत्रासुर को जला दिया था। हे रावण, तुम महाविषधर सर्प को वस्त्र के खूँट में बाँधकर चेत नहीं करते ? तुम गले में काल की फाँसी लगाकर आँखों से नहीं देखते। हे सौम्य, ऐसा बोझा उठाना चाहिए जिससे शरीर को दुःख न हो और ऐसा अन्न खाना चाहिए जो रोग को तो उत्पन्न करे नहीं और मजे में पच जाय। जिस काम के करने में न धर्म है न कीर्त्ति और न निश्चल यश, वरन् उलटा शरीर को दुख हो, उस काम को कौन पुरुष करेगा! हे रावण, मेरा जन्म हुए साठ सहस्र वर्ष बीत गये। अपने पिता और पितामह के परम्परागत राज्य का पालन मैं यथायोग्य करता हूँ। अब मैं वृद्ध हूँ और तुम तो जवान, धनुर्द्धर और रथ पर सवार हो। तुम कवचधारी हो। बाण भी तुम्हारे पास काफी हैं। परन्तु तिस पर भी तुम कुशल-पूर्वक सीता को लेकर न जा सकोगे। मेरे देखते सीता को जबर्दस्ती ले जाने में तुम समर्थ नहीं जैसे कि न्याय के हेतुवाद से सनातनी वेद-श्रुति को कोई अन्यथा नहीं कर सकता। हे रावण ! अच्छा, यदि तुम शूर हो तो मुहूर्त्त भर ठहरो और मुझसे लड़ो। देखो तो मैं तुम्हें खर की नाईं मार-कर भूमि पर गिरा देता हूँ कि नहीं। हे रावण, जिन्होंने अनेक बार संग्राम में दैत्यों और दानवों को मारा है वे चीरधारी राम क्या तुमको मारने में देर करेंगे ! मैं इस समय क्या कर सकता हूँ क्योंकि वे दोनों राजपुत्र वन में दूर निकल गये हैं। हे नीच, तू उनके हाथ से शीघ्र मारा जायगा, इसमें सन्देह नहीं। मेरे जीते जी तू राम की प्यारी पटरानी को न ले जा सकेगा। महात्मा राम का और दशरथ का प्रिय, अपने जीवन के द्वारा, मुझे अवश्य करना है। हे दशग्रीव रावण, खड़े रहो, खड़े रहो। डाली से जैसे पका फल गिरता है वैसे ही मुहूर्त्त भर में इस रथ पर से मैं तुम्हें गिराये देता हूँ। हे निशाचर, मैं युद्ध द्वारा यथाशक्ति तुम्हारा आतिथ्य करूँगा।

---

## ५१वाँ सर्ग

### रावण और जटायु का युद्ध

जटायु के वचन सुनकर रावण अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसके ऊपर दौड़ा। वहाँ उन दोनों में ऐसा भयङ्कर युद्ध हुआ जैसा आकाश में पवन से उड़ाये हुए दो मेघों का होता है; या जैसे पक्षधारी दो माल्यवान् नामक पर्वतों का होता है। इसके अनन्तर रावण ने बड़े पैने पैने नालीक और विकर्णि नामक महाघोर बाणों से गृद्धराज को ढाँप दिया, परन्तु जटायु में इतना बल था कि उसके बाणों की चोट को सह कर उसने अपने पैने नखवाले पैरों से रावण के शरीर में बहुत प्रकार के घाव कर दिये। तब रावण ने क्रोध कर उस शत्रु को मारने की इच्छा से, मृत्युदण्ड के तुल्य, घोर दस बाणों को धनुष पर चढ़ाया और कान पर्यन्त खींच कर गृद्ध को मारा। परन्तु जटायु की

दृष्टि उसके रथ पर जा पड़ी। उसने सीता के नेत्रों में आँसू देखकर उस बाणाघात की ओर दृष्टि नहीं की। वह राक्षस के ऊपर दौड़ पड़ा। लातों से मारकर उसके मुक्तामणिविभूषित बाण-संयुक्त धनुष को जटायु ने तोड़ डाला। तब तो रावण अत्यन्त क्रुद्ध होकर दूसरे धनुष से उस पर सैकड़ों-सहस्रों बाणों की वृष्टि करने लगा। उस समय जटायु उन बाणों के घेरे में ऐसा पड़ गया था कि घोंसले में पक्षी की नाईं देख पड़ता था। फिर भी गृध्र ने अपने पक्षों से उन बाणों को हटा कर दोनों पैरों से उसके महा-धनुष को तोड़ डाला; और अपने पंखों के बल से, अग्नि के तुल्य प्रदीप्त, उसके कवच को छिन्न-भिन्न करके गिरा दिया। उसके आकाशगामी रथ के खच्चरों को भी जटायु ने मार गिराया। वे सोने की माला पहने थे। मुख उनका पिशाच की तरह था और वे बड़े फुर्तीले थे। फिर जटायु ने, मन के अनुसार चलनेवाले, अग्नि के सदृश प्रदीप्त और मणि की सीढ़ियों से विचित्रित रावण के युगन्धर रथ को चूर-चूर कर दिया। इसके पश्चात् पूर्ण चन्द्र के तुल्य उसके छत्र को, चामरों को और उनके थामनेवाले राक्षसों को भी मार गिराया और सारथि के मस्तक को चोंच से उखाड़ कर फेंक दिया। उस समय रावण के पास न रथ रहा, न सारथि और न धनुष। दोनों से रहित होकर वह सीता को गोद में उठा कर भूमि पर कूद पड़ा। उस समय रावण की यह दुर्दशा देखकर प्राणिमात्र "वाह वाह" कहकर गृध्रराज की प्रशंसा करने लगे। इसके अनन्तर जटायु को बुढ़ापे से थका जान रावण, सीता को ले, आकाश में उड़ चला। अब रावण को इस प्रकार उड़ते और हाथ में एक खड्गमात्र लिये देखकर जटायु भी उसके पीछे दौड़ा। आगे से उसको रोककर जटायु ने कहा—

हे तुच्छबुद्धि रावण, जिन रामचन्द्र की पत्नी सीता को तू चुरा कर ले जा रहा है उनके बाणों की धार बड़ी पैनी है। हे दशानन, मालूम होता है कि तू अपने राक्षसों के मरवाने के लिए ही राम की प्यारी सीता को लिये जा रहा है। हे रावण, जिस तरह प्यासा मनुष्य जल पीता है उसी तरह तू मित्र, बन्धु, सेना, अमात्य और कुटुम्ब-सहित विष पी रहा है। हे रावण, जो मनुष्य बिना विचारे और बिना कर्म फल को सोचे काम कर बैठता है वह बन्धुजनों सहित जल्दी मारा जाता है। रामचन्द्र के बाणों के लगने से तू भी नाशरूप फल पावेगा। हे राक्षस, तू बड़ा दुष्ट और नीच है। जब रामचन्द्रजी तुझे मारना चाहेंगे तब तुझे कोई भी न बचा सकेगा। मछली जिस तरह मांस के लोभ से मांस से बिँधे हुए बंसी के काँटे को झपट कर पकड़ लेती है और फिर मर जाती है उसी तरह तेरी भी दशा होगी। तभी तो तू अपने नाश के लिए सीता को हर कर लिये जाता है। हे चोर, रामचन्द्र बड़े पराक्रमी हैं। वे तेरे अपराध को क्षमा नहीं करेंगे। हे दुष्ट, तुझे लज्जा नहीं आती कि अपने को वीर कहता हुआ भी तू ऐसा निन्दित काम करता है। हे रावण, यदि तू शूर है तो युद्ध कर। मुहूर्त्त भर खड़ा रह। देख, मैं तुझे मारकर भूमि पर गिराये देता हूँ। तू अपने भाई खर की नाईं मरकर भूमि पर गिरेगा। मरण-काल में अपने विनाश के लिए मनुष्य जो काम करता है उसी को तू कर रहा है। हे राक्षस, जिस कार्य का पाप से सम्बन्ध है उसको कौन पुरुष करेगा, चाहे वह लोकाधिपति हो अथवा स्वयंभू भगवान् ही।

जटायु इस प्रकार कठोर वचन बोलकर उस राक्षस की पीठ पर जा गिरा और नखों से उसके शरीर को

विदीर्ण करने लगा जैसे महावत दुष्ट हाथी को भेदन करता है। नखों से विदीर्ण कर उसकी देह में चोंच, नख और पंखों से घाव कर दिये और उसके बालों को भी उखाड़ डाला। इस प्रकार जटायु से बार बार क्लेश पाकर वह राक्षस क्रोध के मारे ओठ चबाता हुआ काँपने लगा। इसके अनन्तर रावण बाईं गोदी में सीता को लेकर और अत्यन्त आर्त्त तथा क्रुद्ध होकर जटायु को थपेड़ों से मारने लगा। परन्तु जटायु उसके थपेड़ों को बचाता जाता था। अब जटायु ने घात पाकर अपनी चोंच से, बाईं ओर की, उसकी दसों भुजायें काट डालीं परन्तु उसी क्षण उसकी वे दसों भुजायें नई निकल आईं, जैसे बिल में से विष की ज्वाला से भरे सर्प निकल आते हैं। इसके अनन्तर रावण ने क्रोध कर सीता को तो छोड़ दिया और मूकों से तथा पैरों से वह गृद्धराज को मारने लगा।

उस समय उन दोनों महा-पराक्रमियों का मुहूर्त्त भर महा-घोर युद्ध हुआ। अन्त में रावण ने खड्ग से जटायु के दोनों पंखों, पैरों और दोनों ओर की पसलियों को काट डाला। तब, पंखों के कट जाने से, वह बेचारा पक्षी पृथ्वी पर गिर पड़ा और उसकी थोड़ी-सी साँस रह गई। लोहू से लथपथ जटायु भूमि पर पड़ा था। उसको देखकर अपने भाई-बन्धु की नाईं सीता उसके पास दौड़ी और अत्यन्त दुःखित हुई। बड़ा पराक्रमी जटायु नीले रंग के मेघ के तुल्य और पाण्डुरहृदय था। उस समय रावण को वह वन की शान्त अग्नि की नाईं देख पड़ता था। उसको रावण के वेग से मर्दित और भूमि पर गिरा देख सीता उसे थाम कर रोने लगी।

---

## ५२वाँ सर्ग

### सीता को लेकर रावण की यात्रा और सीता का खेद

अब जटायु को गिरा देखकर सीता विलाप करने लगीं। वे बोलीं कि निमित्त अर्थात् बायें या दहिने अंग का फरकना इत्यादि और लक्षण अर्थात् पक्षियों का दहिनी-बाईं ओर जाना या बोलना और स्वप्न—ये सब मनुष्यों के सुख-दुःख के सूचक देख पड़ते हैं। परन्तु हे राम, तुम अपने इस महा-दुःख को नहीं जानते। देखो, ये मृग और पक्षी मेरे लिए दौड़ रहे हैं; और यह बेचारा पक्षी मुझे बचाने के लिए यहाँ आया था सो यह भी मेरे अभाग्य से भूमि पर मरा पड़ा है। हे राम, हे लक्ष्मण, इस घड़ी मुझे बचाओ। डरी हुई सीता उस समय ऐसा पुकार कर रोती थी। उसके रोदन को वहाँ के प्राणियों ने सुना। सीता इस प्रकार अनाथ की नाईं विलाप कर रही थीं। वे मुरझाई हुई माला और मैले गहने पहने थीं। उनकी ओर रावण दौड़ा। तब तो सीता, लता की नाईं, वृक्षों में लिपटने लगीं। उस समय रावण बार बार 'छोड़ छोड़' कहता हुआ सीता के पास पहुँच गया। राम राम पुकारती और चिल्लाती हुई सीता के केशों को काल के तुल्य रावण ने अपने मरण के लिए पकड़ लिया। उस समय, सीता का इतना भारी अनादर होते ही, सचराचर जगत् मर्यादारहित और महान्धकार से भर गया। सीता की इस अप्रतिष्ठा को दिव्य नेत्र से देखकर भगवान् सूर्य प्रभारहित हो गये। वायु का बहना बन्द हो गया। उस समय ब्रह्मा ने कहा कि कार्य सिद्ध हुआ। बड़े ऋषि लोग हर्षित और दुःखित भी हुए। उस दण्डकारण्य में निवास करनेवालों ने सीता का अपमान देख यह

मान लिया कि "रावण का अकस्मात् ही विनाश आ पहुँचा।"

अब "हा राम, और हा लक्ष्मण," पुकारती हुई सीता को लेकर रावण आकाश-मार्ग से उड़ चला। उस समय तप्त भूषणों के सदृश अंगवाली, सुवर्ण तुल्य वस्त्रों को धारण किये वह राजपुत्री बिजली की नाईं शोभती थी। उसके उड़ते हुए पीले वस्त्रों से रावण की ऐसी शोभा हो रही थी जैसे अग्नि से प्रकाशित पर्वत की होती है। परम कल्याणी सीता जो लाल लाल सुगन्धित कमलों के पत्ते धारण किये थीं वे रावण के शरीर पर गिरते जाते थे। सीता का सुनहरा वस्त्र आकाश में उड़ रहा था। वह ऐसी शोभा देता था जैसे सूर्य की प्रभा से लाल मेघ शोभित होते हैं। सीता का वह विमल मुख, रावण की गोद में रहने से, राम से विहीन शोभित न होता था, जैसे कि नाल के बिना कमल का पुष्प शोभारहित देख पड़ता है। सीता का मुख अच्छे ललाट से युक्त, सुन्दर केशों से मनोहर और कमल-गर्भ के तुल्य प्रकाशित था। वह बेदाग और सुन्दर था। निर्मल, श्वेत प्रभायुक्त दन्तों से सीता का मुख भूषित था। वह सुन्दर नेत्रोंवाला मुख रावण की गोद में ऐसा देख पड़ता था मानो नीले मेघ को भेदकर चन्द्रमा का उदय हुआ हो। सीता का मुख रोदन से युक्त था, उसके आँसू पोंछे हुए थे। वह चन्द्र-तुल्य आह्लादक, और सुन्दर नासिका से भूषित था। वह मनोहर लाल ओष्ठों से सुशोभित और काञ्चन वर्ण का था। राक्षसेन्द्र के गमन के वेग से वह काँप रहा था। जैसे दिन को चन्द्र शोभा नहीं देता उसी तरह रामचन्द्र के बिना सीता का मुख शोभा को प्राप्त नहीं होता था। वह सुवर्ण-वर्ण की सीता नीले रावण के साथ ऐसी मालूम होती थी जैसी नीले हस्ती के शरीर में सुवर्ण की जंजीर शोभा देती है। कमल के केसर और काञ्चन के तुल्य पीली और सुवर्णों से भूषित सीता रावण के शरीर में ऐसी शोभा देती थी मानो मेघ में बिजली चमक रही हो। सीता के भूषण के शब्दों से वह राक्षस गरजनेवाले मेघ की नाईं जान पड़ता था। सीता के केशों में जो पुष्प गुँथे हुए थे उनकी वृष्टि उस समय भूमि पर होती थी पर वायु-वेग से फिर भी वे पुष्प रावण ही की ओर, उसके आकाश-गमन के वेग से, चले जाते थे, जैसे कि नक्षत्रों की माला मेरु ही के आसपास घूमा करती है। उस समय वैदेही के चरण से रत्न-भूषित नूपुर, विद्युन्मण्डल के तुल्य, भूमि पर गिर पड़ा। उस समय जानकी का रङ्ग क्रोध से वृक्ष के नवीन पत्ते के तुल्य था। उस नीलवर्ण राक्षस को वह ऐसा शोभित करती थी जैसे सुवर्ण की झूल हाथी को शोभित करती है। अपने तेज से प्रकाशित महोल्का अर्थात् बड़ी ज्वाला के तुल्य सीता थी। उसे आकाश-मार्ग से रावण लिये चला जाता था। सीता के भूषण अग्निवर्ण के थे। वे छूटकर शब्द करते हुए भूमि पर ऐसे गिरते थे जैसे आकाश से क्षीण तारे गिरते हैं। सीता के स्तन-मध्य से चन्द्र-तुल्य प्रकाशित हार गिर पड़ा। गिरते समय वह ऐसा शोभित हुआ जैसे आकाश से च्युत गङ्गा शोभा देती हैं। वृक्ष उस समय उत्पात-वायु से कम्पित हो रहे थे। उनकी चोटियों पर कई तरह के पक्षी बैठे हुए थे। उनकी चोटियाँ क्या हिल रही थीं मानो वे सीता से कहते थे कि डरो मत। उस समय तालाबों की यह दशा थी कि उनके कमल के पौदे नष्ट हो गये थे और मछली इत्यादि जन्तु डर गये थे। ऐसा जान पड़ता था मानो वे भी उत्साहरहित सीता के लिए शोक कर रहे

थे, जैसे कि अपनी सखी के लिए कोई शोक करता है। उस समय चारों ओर के सिंह, व्याघ्र, मृग और पक्षी इकट्ठे होकर, क्रोध से, सीता की छाया की ओर दौड़ रहे थे। वहाँ के पर्वत, झरनों के रूप में, आँसू बहाते और अपने ऊँचे-ऊँचे शृङ्ग-रूप बाहुओं को उठाये मानो सीता के लिए चिल्ला-चिल्लाकर रो रहे थे। सीता को परवश जाती देख सूर्य भी दीन होकर प्रभारहित हो गये। उनका मण्डल भी पाण्डु वर्ण का हो गया। उस वन के सम्पूर्ण प्राणी विलाप करते हुए कहते थे कि जब रावण राम की धर्मपत्नी सीता को हर कर लिये जाता है तब इस समय न धर्म है न सत्य, न कोमलता है और न अक्रूरता। एक ओर मृग के बच्चे भयभीत और दीन होकर रो रहे थे। वहाँ की वनदेवियाँ अत्यन्त डरकर, ऊपर की ओर देख-देख, कम्पित होती थीं। दुःखित सीता अत्यन्त चिल्लाती, राम और लक्ष्मण को पुकारती, और बार-बार पृथ्वी की ओर निहारती थी। बाल उसके खुले हुए थे और चन्दन भी मिट गया था। वह अत्यन्त सोचती जाती थी। उसको रावण अपने विनाश के लिए हर कर लिये जाता था। सीता अत्यन्त डर गई थी। वह बन्धुजन से हीन थी। राम-लक्ष्मण को न देखने से उसका मुख विवर्ण हो गया था।

---

## ५३वाँ सर्ग

### सीता का रावण को धिक्कारना और विलाप करना

रावण को आकाश में उड़ते देख सीता दुःखित, अत्यन्त व्याकुल और महा भयभीत हुई। क्रोध और रोदन करने से उसकी आँखें लाल हो गईं। वह रोती हुई बोली—हे नीच रावण, तू इस कर्म से लजाता नहीं जो एकान्त जान मुझे चुराकर भागता है। हे दुष्टात्मन्, मेरे हरण की इच्छा से तूने ही माया-मृग के रूप से मेरे पति को आश्रम से दूर हटा दिया और तूने इस बूढ़े गृध्रराज को मार डाला। यह मेरे ससुर का मित्र था और मेरी रक्षा करने आया था। हे राक्षसाधम, तेरा बड़ा पराक्रम देख पड़ता है। तूने अपना नाम सुना करके युद्ध में मुझे जीत नहीं लिया है। हे नीच, ऐसा निन्दित कर्म करके तू लजाता नहीं कि इस प्रकार एकान्त में पर-स्त्री का हरण करता है! तू अपने को शूर कहकर भी ऐसा क्रूर और अधर्म का काम कर रहा है, इस कर्म को लोग निन्दित कहेंगे। पहले तूने अपने कुल के महत्त्व के लिए जो वर्णन किया था, तेरे उस शौर्य और पराक्रम को धिक्कार है और धिक्कार है तेरे इस प्रकार के चारित्र्य को। अब इस घड़ी क्या हो सकता है, क्योंकि तू वेग से दौड़ रहा है। यदि मुहूर्त्त भर भी ठहर जाय तो जीते जी न जा सकेगा क्योंकि उन राजपुत्रों के देखते ही तू और तेरी सेना मुहूर्त्त भर भी नहीं जी सकती। उनके बाणों का स्पर्श सहने को भी तू किसी प्रकार समर्थ नहीं है जैसे कि वन में जलती हुई आग को पक्षी नहीं छू सकता। हे रावण! भला जो किया सो किया, परन्तु अब भी अपना हित समझकर मुझे छोड़ दे। यदि न छोड़ेगा तो मेरी धर्षणा से क्रुद्ध मेरे पतिदेव, अपने भाई के साथ, तेरे विनाश के लिए उद्योग करेंगे। हे नीच, जिस मनोरथ के लिए तू मुझे जबर्दस्ती लिये जाता है वह तेरा मनोरथ निरर्थक हो जायगा। मैं अपने देवतुल्य पति को देखे बिना, और शत्रु के वश में रहकर, बहुत समय तक जीवित रहने का उत्साह

नहीं करती। जैसे प्राणी अपनी मृत्यु के समय विपरीत पदार्थ का सेवन करता है उसी तरह तू अपने कल्याण या पथ्य की ओर कुछ भी दृष्टि नहीं करता। जो मरना चाहता है उसको पथ्य-वस्तु नहीं रुचती। मैं देखती हूँ कि काल-पाश से तेरा गला बँधा है। क्योंकि हे निशाचर, इस भय के स्थान में भी नहीं डरता। तू अवश्य सुवर्णरूप वृक्षों को देखना चाहता है। वैतरणी नदी बड़ी भयंकर है। उसमें रक्त बहता है। उसको, और भयङ्कर असिपत्र-वन को तू देखना चाहता है। तप्त सुवर्ण के पुष्पों से भरे, पन्नों के पत्तोंवाले और लोहे के तीक्ष्ण काँटों से वेष्टित शाल्मली वृक्ष को तू देखेगा। हे निर्लज्ज, तू उस महात्मा का ऐसा अप्रिय कर्म करके बहुत दिन तक नहीं ठहर सकेगा, जैसे कोई विष पीकर बहुत देर तक नहीं जी सकता। अब तू काल के दृढ़ पाश से बँध गया। इसलिए मेरे महात्मा पति से भागकर कहीं सुख नहीं पा सकता। उन्होंने निमेष-मात्र में अकेले ही चौदह हजार राक्षसों को मार डाला। सब अस्त्रों के पण्डित वे राघव, प्यारी भार्या के चोर को क्यों न अपने पैने बाणों से मारेंगे।

अनेक प्रकार का ऐसा विलाप करती और कठोर वचन कहती, डर और शोक से अत्यन्त पीड़ित और छटपटाती, सीता को भय से काँपता रावण लिये चला जाता था।

---

## ५४वाँ सर्ग

### सीता का किष्किन्धा में वानरों को देखकर वस्त्र और आभूषण गिराना और रावण का सीता को ले जाकर लङ्का में टिकाना

इस प्रकार जाती हुई सीता ने जब कोई बचाने-वाला न देखा तब उसकी दृष्टि मार्ग में एक पर्वत के शिखर पर बैठे पाँच वानरों पर पड़ी। उनको देखकर सीता ने अपने सुवर्ण रङ्ग के दुपट्टे में लपेट कर कुछ सुन्दर भूषणों को ऊपर से गिरा दिया कि जिसमें ये वानर लोग राम से यह संदेश कहें। उस समय घबराहट के कारण रावण ने सीता के इस काम को न जाना। वे श्रेष्ठ वानर ऊँचे स्वर से चिल्लाती सीता की ओर देखने लगे और रावण पम्पा सरोवर को लाँघकर सीता को लङ्का की ओर ले चला। उस समय रावण, सीता-रूप, अपनी मृत्यु को लिये बड़े हर्ष से इस तरह चला जाता था, जैसे कोई तीखे दाँतवाली और महाविष से भरी सर्पिणी को अपनी गोदी में ले आनन्दित होता है। रावण वन, नदी, पर्वत और झीलों को लाँघता हुआ आकाश-मार्ग से चला जाता था। धनुष से छूटा बाण जैसा शीघ्र जाता है उतनी ही शीघ्रता से वह जा रहा था। तिमि और नक्र के निवासरूप समुद्र के भी वह पार हो गया। उस समय सीता को हरी जाती देख समुद्र मारे उद्वेग के खड़बड़ाकर बड़ी-बड़ी लहरें मारने लगा। वहाँ की मछलियाँ और साँप भी त्रस्त हो गये। आकाशचारी चारणों ने कहा कि बस, यही रावण का अन्त है। सिद्ध लोग भी यही बात कहने लगे। इस प्रकार से अपनी मृत्युरूप सीता को रावण लङ्का में ले गया। उस नगरी के राजमार्ग सुन्दर

रूप से विभक्त थे और उसकी शालाएँ जनों से पूर्ण थीं। मय जिस तरह आसुरी माया फैलाता है उसी तरह सीता को लेकर रावण अपने रनिवास में पहुँचा। उन्हें वहाँ स्थापन कर रावण ने अति भयङ्कर रूप-धारिणी पिशाचियों को आज्ञा दी कि मेरी आज्ञा बिना इसको न कोई पुरुष देखने पावे और न स्त्री। मोती, मणि, सुवर्ण, वस्त्र और आभूषण आदि जो पदार्थ सीता माँगे सो इसको देना। जानकर अथवा बिना जाने यदि कोई सीता को कटु वचन कहेगी तो वह अवश्य मारी जायगी।

इस प्रकार आज्ञा देकर राक्षसराज रनिवास से निकला और सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए। वरदान से मोहित हुआ रावण उन आठ राक्षसों से मिला जो महापराक्रमी और मांसभोजी थे उनके बल और पराक्रम की प्रशंसा करके रावण ने कहा—हे राक्षसो, अब तुम नाना शस्त्र धारण कर शीघ्र यहाँ से उस जनस्थान में जाओ जो पहले खर का स्थान था और इस घड़ी नष्टप्राय हो गया है। तुम वहीं रहो क्योंकि वहाँ रहनेवाले सब राक्षस मारे गये। इस समय वह सूना पड़ा है। तुम लोग अपने पौरुष और बल को धारण कर किसी बात का डर मत करना। वहाँ मैंने बहुत सी सेना तैनात कर रक्खी थी परन्तु उसे राम ने अपने बाणों से नष्ट कर दिया है। खर और दूषण भी मारे गये। इसलिए मुझे विलक्षण क्रोध उत्पन्न हुआ है। वह मेरे धैर्य को भी दबाये लेता है। राम के साथ मेरा बड़ा वैर हुआ है। उस वैर को मैं निबटाना चाहता हूँ। जब तक मैं संग्राम में शत्रु को न मारूँगा तब तक मुझे नींद न आवेगी। जब मैं उस खरघाती राम को मारूँगा तब सुखी हूँगा जैसे धन पाकर निर्धन पुरुष सुखी होता है। तुम लोग जनस्थान में रहकर रामचन्द्र के सब समाचार हमारे पास पहुँचाते रहना कि वे क्या करते हैं। वहाँ तुम चौकन्ने होकर जाना। राम के घात के उपाय में सदा लगे रहना। संग्राम में तुम्हारे पराक्रम को मैंने अनेक बार देखा है, इसी लिए मैं तुमको वहाँ रखना चाहता हूँ। रावण की ये प्रिय बातें सुनकर वे आठों राक्षस उसको प्रणाम कर जनस्थान को चले गये। इधर सीता को पाकर रावण बहुत प्रसन्न हुआ और राम के साथ बड़ा वैर कर मोह से हर्षित हुआ।

---

## ५५वाँ सर्ग

### रावण का अनेक प्रकार से सीता को लुभाने की चेष्टा करना

रावण ने उन आठ राक्षसों को वहाँ भेजकर अपनी बुद्धि की भ्रष्टता से अपने को कृतार्थ जाना। सीता का स्मरण करके वह कामबाणों से पीड़ित हो, बहुत जल्दी, उस घर में गया जहाँ सीताजी थीं। वहाँ पर सीताजी राक्षसियों के मध्य में दुःखित, आँसू बहाती, दीन और शोकभार से पीड़ित थीं। समुद्र में वायुवेग से डूबती हुई नौका के तुल्य उनकी दशा थी। मृगों के झुण्ड से च्युत और कुत्तों से घिरी हुई मृगी के सदृश सीताजी की दशा थी। वे नीचे मुँह किये बैठी थीं। उनको वह जबर्दस्ती देव-गृह के तुल्य अपना भवन दिखलाने लगा। वह भवन नाना प्रकार के हर्म्य और प्रासादों से युक्त था। वहाँ हजारों स्त्रियाँ थीं और नाना प्रकार के पक्षी थे। उस महल में जो विचित्र मनोहर खम्भे थे वे नाना रत्नों से युक्त, हाथीदाँत, सुवर्ण, स्फटिक, रजत, हीरे और पन्ने के थे। दिव्य दुन्दुभियाँ वहाँ बजती थीं और तप्त सुवर्ण से वह भूषित था। उसमें

सुवर्ण-रचित विचित्र सीढ़ियाँ थीं और हाथीदाँत तथा चाँदी के सुन्दर झरोखे बने थे। उस जीने पर वह सीता के साथ चढ़ गया। उस भवन के प्रासादों में सुवर्ण की जालियाँ थीं। चूना और मणियों से उसके खन विचित्र बने थे।

इस प्रकार का अपना घर रावण सीता को दिखलाने लगा। वहाँ की बावलियाँ और सरोवर भी वह सीता को दिखलाने लगा। सब दिखलाकर सीता को लुभाने के लिए वह बोला कि हे सीते, दस करोड़ और बाईस करोड़ कुल बत्तीस करोड़ राक्षसों का मैं प्रभु हूँ। ये राक्षस बड़े भयङ्कर काम करते हैं। इनमें बुड्ढों और बालकों की गणना नहीं। इनमें प्रत्येक के वश में हजार-हजार राक्षस रहते हैं, जो मेरा काम-काज किया करते हैं। यह सम्पूर्ण राज्यभार और मेरा जीवन भी तुमको समर्पित है अर्थात् इसे मैंने तुम्हारे अधीन कर दिया। क्योंकि हे विशालाक्षि, तू मुझे प्राणों से भी प्यारी है। हे सीते, मेरे अन्तःपुर में बहुतेरी उत्तमोत्तम स्त्रियाँ हैं। उन सबकी तू स्वामिनी हो जा। हे प्यारी, तू मेरी भार्या हो और मेरे हित-वचन को मान। और कुछ सोचने से कुछ लाभ न होगा। मैं इस समय कामतप्त हो रहा हूँ, मुझे अंगीकार करो और मेरे ऊपर प्रसन्न हो। देखो, यह मेरी सौ योजन की लङ्का चारों ओर समुद्र से घिरी है, इसलिए इन्द्र आदि देवता भी इसे जीत नहीं सकते। मैं नहीं देखता कि मेरे पराक्रम के तुल्य कोई देवता, गन्धर्व अथवा ऋषि हो। देखो रामचन्द्र राज्य से च्युत, दीन, तापस, पैदल, मनुष्य और अल्प तेजस्वी हैं। उन्हें लेकर क्या करोगी? हे सीते, तुम मेरी ही सेवा करो क्योंकि तुम्हारे योग्य पति मैं ही हूँ। यौवन अस्थिर है इसलिए यहाँ मेरे साथ आनन्द करो। हे वरानने, अब राघव के दर्शन की आशा मत करो क्योंकि उनकी क्या सामर्थ्य है जो यहाँ मनोरथों के द्वारा भी आ सकें। क्योंकि आकाश-चारी महावेगवान् वायु को कोई फन्दों से बाँध सकता है अथवा प्रदीप्त अग्नि की ज्वाला को कोई थाम सकता है? हे शोभने, मैं तीनों लोकों में ऐसा किसी को नहीं देखता जो मेरी भुजाओं से रक्षित तुझे, पराक्रम के द्वारा, यहाँ से ले जाय। हे सीते, लङ्का के इस महाराज्य का तू पालन कर और मैं तथा देवता ही नहीं वरन् सम्पूर्ण चराचर तेरी टहल करेंगे। अभिषेक के जल से आर्द्र और शीतल होकर तुम मेरे साथ विहार करो। जो पूर्वकृत पाप था वह वनवासरूप प्रायश्चित्त से नष्ट हो गया। अब जो सुकृत कर्म अर्थात् पुण्य है उसके फल को भोगो। हे मैथिलि, यहाँ पर सब प्रकार के पुष्प, माला, दिव्य गन्ध और गहने मौजूद हैं, मेरे साथ तुम उनका भोग करो। हे सुश्रोणि मेरे भाई कुबेर का सूर्य्य-तुल्य प्रकाशमान पुष्पक विमान है, उस पर मेरे साथ तुम सैर करो। उसे मैंने संग्राम में जीतकर प्राप्त किया है; उस रमणीक विशाल विमान का वेग मन के तुल्य है। हे वरानने! यह तुम्हारा मुख, कमल के तुल्य निर्मल और सुन्दर है। शोक-पीड़ित होने से यह शोभा नहीं पाता।

रावण के ये वचन सुनकर अपने चन्द्र-तुल्य मुख को वस्त्र से ढाँपकर सीता रोने लगी। वह सोच में व्यग्र थी। चिन्ता के मारे उसका चेहरा फीका पड़ गया था। रावण ने कहा—हे वैदेहि, धर्मलोप के कारण लज्जा करना व्यर्थ है [क्योंकि (बलात्कारेण राक्षसः) राक्षस-विवाह भी तो ऋषि ही का कहा हुआ है, जिसके द्वारा पर-पुरुष का संसर्ग करने में कुछ भी प्रायश्चित्त नहीं।] इसलिए अपने मन की शङ्का को छोड़ दो। देखो, तुम्हारे कोमल चरणों पर मैं अपने इन मस्तकों को

रखता हूँ। मेरे ऊपर शीघ्र प्रसन्न हो। मैं तुम्हारे वश में हूँ। मैं तुम्हारा दास हूँ। देखो, मैं काम से पीड़ित हो रहा हूँ। मेरी इन बातों को तुम वृथा मत करना। रावण ऐसा नहीं कि किसी स्त्री को माथा नवाकर प्रणाम करे।

काल के वश में हुआ रावण सीता से ऐसे वचन कहकर मन में उसे अपनी समझता था।

---

## ५६वाँ सर्ग

### सीता का रावण को धिक्कारना और कटुवचन कहना

रावण के वचन सुनकर जानकी रही तो निर्भय, पर शोकपीड़ित हो गई। अपने और रावण के बीच में तृण रखकर उसने कहा—दशरथ नामक राजा अभेद्य सेतु की तरह, धर्म के पर्वत और सत्यसन्ध विख्यात थे। उनके पुत्र रामचन्द्र, तीनों लोकों में विख्यात, धर्मात्मा, दीर्घबाहु और विशालनेत्र हैं। वे ही मेरे पति और देवता हैं। वे इक्ष्वाकु वंश के हैं। सिंह के से उनके कन्धे हैं। वे महातेजस्वी राम और उनके भाई लक्ष्मण तेरा घात करेंगे। यदि तू उनके सामने मुझे हरता तो तुझे संग्राम में खर की तरह सोना पड़ता। अभी तूने जिन राक्षसों का वर्णन किया है वे सब राघव के समीप कुछ भी नहीं हैं, जैसे गरुड़ के समीप सभी साँप विष-रहित होते हैं। जैसे गङ्गा की तरङ्गें किनारों को तोड़ डालती हैं उसी तरह राम की प्रत्यञ्चा से छूटे सुवर्ण-भूषित बाण तेरे शरीर का विध्वंस कर डालेंगे। हे रावण, तू सुरों और असुरों से अवध्य है तो क्या हुआ, अब राम से वैर करके तू जीता न बचेगा। वे तेरे जीवन का अन्त करेंगे। इसलिए तेरा जीवन यज्ञस्तम्भ में बँधे पशु की नाईं दुर्लभ है। हे राक्षस! इस समय रामचन्द्र अपने क्रोध प्रज्वलित नेत्र से तुझे देखें तो तू अभी भस्म हो जाय जैसे कि शिव के नेत्राग्नि से कामदेव भस्म हो गया था। जो चन्द्र को आकाश से भूमि पर गिरा अथवा नष्ट कर सकते हैं और समुद्र को सुखा सकते हैं वे ही सीता को छुड़ावेंगे। तू तो मृतक, श्रीहीन, नष्टपराक्रम और मदान्ध है। तेरे ही अपराध से लङ्का विधवा होगी। हे रावण, तेरा यह पापकर्म सुखकारक न होगा क्योंकि तू मुझे पति के पास से जबरदस्ती खींच लाया है। मैं तुझे ज़रा भी नहीं चाहती। वे पति, मेरे देवर के साथ, अपने बल के भरोसे शून्य दण्डकवन में निर्भयता से रहते हैं। वे संग्राम में बाण-वृष्टि करके तेरे शरीर से बल, अहङ्कार और मर्यादाहीन कर्म को दूर कर देंगे। यह बात भी है कि जब प्राणियों का विनाश देख पड़ता है तब वे, काल के वशीभूत प्राणी, कार्य्यों में प्रमाद अर्थात् भूल करते हैं। इसलिए हे राक्षसाधम, मेरी धर्षणा करने से तेरा काल आ पहुँचा है जिससे तेरा, तेरे राक्षसों का और तेरे रनिवास का भी वध होगा। देख, स्रुक् और यज्ञपात्रों से भूषित, ब्राह्मणों के मन्त्र-द्वारा पवित्र की हुई यज्ञ की वेदी चाण्डाल के मर्दन करने योग्य नहीं है। इसी प्रकार तू भी मुझे छू नहीं सकता। मैं धर्म-तत्पर रामचन्द्र की पतिव्रता धर्मपत्नी हूँ। हे राक्षसाधम, राजहंस के साथ कमलों में नित्य क्रीड़ा करनेवाली हंसिनी, तृण के मध्य में चरनेवाले जल-कुक्कुट को कैसे देख सकेगी? हे राक्षस, यह शरीर तो संज्ञारहित है, इसे चाहे तू बाँध या मार। न तो मुझे यह शरीर ही रखना है और न अपने जीवन को ही बचाना है। क्योंकि इस पृथ्वी पर मैं अपनी निन्दा नहीं करवा सकती।

रावण से इस प्रकार क्रोध-भरे कठोर वचन कहकर जानकी चुप हो रही।

सीता के कठोर वचन सुनकर उसे भय दिखलाता हुआ रावण बोला—हे मैथिलि, सुनो। यदि तुम बारह महीने के भीतर मुझे स्वीकार न करोगी तो मेरे रसोइये, प्रातःकाल के कलेवा के लिए, तुम्हारी बोटी-बोटी काट डालेंगे। अब वह क्रोध से वहाँ की राक्षसियों से बोला—हे भयङ्कर रूपवाली राक्षसियो, तुम शीघ्र सीता का गर्व दूर करो।

राजा की आज्ञा से उन राक्षसियों ने सीता को घेर लिया। रावण फिर कुछ चलकर अपने पैरों से मानो पृथ्वी को विदारण करता हुआ बोला—तुम इसको अशोकवाटिका में ले जाओ। वहीं इसकी देख-भाल करो। जैसे बनैली हथिनी वश में की जाती है उसी तरह वहाँ भयंकरता से इसको धमकाकर और समझाकर मेरे वश में करो।

राजा की आज्ञा पाकर वे राक्षसियाँ सीता को अशोकवाटिका में ले गईं। उस वाटिका में सम्पूर्ण कामों के पूर्ण करनेवाले फलों के और नाना पुष्पों के पेड़ थे। उसमें सदा उन्मत्त पक्षी रहते थे। व्याधियों से घिरी और फन्दे में फँसी हुई हरिणी जिस तरह सुखी नहीं रह सकती उसी तरह शोक से भरी और राक्षसियों के वश में पड़ी सीता क्षण भर भी सुखी न हुई। सीता उन राक्षसियों की तर्जना से अत्यन्त डरकर पति और देवर को याद करती हुई अचेत सी हो गई।

---

## ५७वाँ सर्ग

### अशकुन देखकर राम का चिन्ता करना और लक्ष्मण को आते देख और भी शोक-पीड़ित होना

इधर रामचन्द्र उस मायावी राक्षस को मारकर बड़ी शीघ्रता से लौटे। जब रामचन्द्र ऐसी शीघ्रता कर रहे थे और चाहते थे कि शीघ्र जाकर सीता को देखें, उस समय उनके पीछे की ओर बड़े कठोर शब्द से गीदड़ बोल उठा। उसका क्रूर शब्द सुनने से रामचन्द्र को शङ्का हुई। वे कहने लगे कि गीदड़ का यह शब्द अशुभ है। अब देखें सीता की क्या दशा होती है। उसको जो राक्षसों ने भक्षण न कर लिया हो तभी मङ्गल है। देखो, इस मारीच ने मेरे जैसा शब्द किया है। उसको यदि लक्ष्मण सनेंगे तो मैथिली को छोड़कर मेरे पास शीघ्र आवेंगे। सीता उन्हें भेजे बिना न रहेगी। राक्षसों को तो सीता का वध इष्ट ही है। देखो, यह मारीच काञ्चन का मृग बनकर मुझे आश्रम से इतनी दूर बहका लाया और बाण से मारा गया; परन्तु "हा लक्ष्मण! मैं मारा गया," यह शब्द वह क्यों बोला! इससे मुझे बड़ी शङ्का होती है। सीता और लक्ष्मण से मैं दूर हूँ, अब उनका कल्याण हो यही मैं चाहता हूँ। क्योंकि इस जनस्थान के लिए मैंने राक्षसों से वैर कर लिया है, और निमित्त भी अत्यन्त भयानक देख पड़ते हैं। इस तरह चिन्ता करते और गीदड़ का शब्द सुनते हुए रामचन्द्र शीघ्रता से जनस्थान के आश्रम की ओर लौटे। वे बार-बार यही सोचते थे कि देखो यह मृगरूपी राक्षस मुझे आश्रम से कितनी दूर ले आया। ऐसा विचार करते और शङ्कित होते हुए रामचन्द्र जनस्थान में आये। रामचन्द्र

को वहाँ के जो मृग, पक्षी मिलते थे वे बाईं ओर होकर घोर शब्द करते जाते थे। इन भयानक कारणों से रामचन्द्र को अधिक शंका होती जाती थी। इतने में रामचन्द्र ने उदास लक्ष्मण को आते देखा। जब वे पास आ गये तब तो रामचन्द्र विषादयुक्त और दुःखित होकर क्रोधयुक्त वचन कहने लगे। लक्ष्मण भी खिन्न और दुःखित थे। रघुनन्दन ने पहले तो लक्ष्मण का हाथ पकड़ लिया और फिर आर्त्त की नाईं कुछ मधुरता लिए हुए कठोर वचन कहे—अहो लक्ष्मण, ऐसे निर्जन और राक्षसयुक्त वन में सीता को अकेली छोड़कर तुम यहाँ चले आये! तुमने यह बड़ा अनुचित काम किया। मुझे तो कुशल नहीं देख पड़ता। सीता को वनचारी राक्षसों ने अवश्य भक्षण कर लिया होगा या वह मर चुकी होगी। क्योंकि ये अशकुन ऐसे हो रहे हैं कि हम सीता को कुशलपूर्वक देखें तब जानें। हे महाबल! ये मृगसमूह, गोमायु और पक्षिगण सूर्य की ओर मुँह करके जैसा शब्द कर रहे हैं उससे सीता का कुशलपूर्वक होना असम्भव है। देखो मृग का रूप धारण करके यह राक्षस मुझे बहकाकर ले आया था; वह किसी प्रकार बड़े श्रम से मारा गया। हे लक्ष्मण, मेरा मन दीन हो रहा है। मन में हर्ष भी नहीं है। बायाँ नेत्र फड़क रहा है। इसलिए मैं जानता हूँ कि सीता आश्रम में नहीं है। या तो उसको किसी ने हर लिया है या वह मर गई अथवा मार्ग में है।

——

## ५८वाँ सर्ग

### राम का आश्रम में जाना और सीता को न पाकर व्याकुल होना

अब रामचन्द्र, सीता के बिना, लक्ष्मण को आते देखकर और लक्ष्मण के भी मुख पर दीनता और सुस्ती देखकर पूछने लगे—हे लक्ष्मण, दण्डकारण्य की यात्रा के समय जो मेरे साथ आई वह वैदेही कहाँ है? उसको छोड़कर तुम यहाँ चले आये! मैं राज्य से भ्रष्ट और दीन हूँ। यहाँ दण्डकवनों में दौड़ता फिरता हूँ। मेरे दुःख-समय की सहायरूप वह सीता कहाँ है? हे वीर, मेरे प्राणों की सहायक वह देवकन्यारूपिणी सीता कहाँ है? उसके बिना मैं क्षण भर भी नहीं जी सकता। हे लक्ष्मण, सुवर्ण के तुल्य रंगवाली सीता न हो तो मैं देवराज्य या पृथ्वी का राज्य भी नहीं चाहता। वैदेही मेरे प्राणों से भी अधिक प्यारी है, वह जीती तो है? हे सौमित्रे, सीता के लिए मेरे वनवास-व्रत का समय मिथ्या तो न हो जायगा? क्योंकि उसके बिना मैं अवश्य मर जाऊँगा और तुम अयोध्या को चले जाओगे। क्या उस कैकेयी का मनोरथ पूर्ण हो जायगा और वह सुखी होगी? क्या तपस्विनी कौशल्या मृतपुत्रा होकर उस कैकेयी की विनयपूर्वक सेवा करेगी जो कि पुत्र को राज्य मिलने से हर्षित और पूर्ण-मनोरथवाली होगी? हे लक्ष्मण, यदि वैदेही जीती होगी तो मैं आश्रम में जाऊँगा; और यदि वह पतिव्रता मर गई होगी तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगा। हे लक्ष्मण, मैं जिस समय आश्रम में जाऊँगा उस समय यदि सीता मेरे आगे आकर, पहले की नाईं हँसकर, न बोलेगी तो मैं अवश्य मर जाऊँगा। हे

लक्ष्मण, तुम मुझसे ठीक कहो कि वैदेही जीती है या नहीं? अथवा तुम्हारी भूल से राक्षसों ने उसे खा डाला? हे लक्ष्मण, उस सुकुमारी बाला ने कभी दुःख नहीं देखे, वह मेरे वियोग से दुःखित हो सोचती होगी। मैं जानता हूँ कि उस छली दुरात्मा मारीच राक्षस ने ऊँचे स्वर से "हे लक्ष्मण" कहकर तुमको भी भयभीत कर दिया और वैदेही भी उस शब्द को मेरा शब्द समझकर डर गई। उसने तुमको मेरे पास शीघ्र भेजा और तुम भी चले आये। हे लक्ष्मण, तुमने जो सीता को अकेली छोड़ा यह ठीक नहीं किया। उन घातक राक्षसों को बदला लेने के लिए तुमने अवकाश दे दिया। हे सौमित्रे, खर के मारे जाने से राक्षस लोग जो दुःखित हो रहे हैं उन लोगों ने अवश्य सीता को खा डाला होगा। हे शत्रुनाशक, मैं बड़े कष्ट में पड़ा हूँ। अब मैं क्या करूँगा। ऐसा ही होना था। इसमें कोई क्या करेगा। इस तरह सोचते हुए रामचन्द्र, लक्ष्मण के साथ, आश्रम की ओर चले। लक्ष्मण पीड़ित थे। भूख-प्यास और थकावट से रामचन्द्र का चेहरा उतर गया था। उनका चित्त खिन्न था। ठण्डी साँस लेकर वे लक्ष्मण की निन्दा करते-करते आश्रम में आये तो देखा कि वह खाली पड़ा है, वहाँ सीता नहीं है। फिर वे सीता के अनेक विहार-देशों में घूमे। यह वही क्रीड़ा-स्थान है ऐसा निश्चय कर वे रोमाञ्चित होकर बड़े दुखी हुए।

---

## ५९वाँ सर्ग

### फिर लक्ष्मण से रामचन्द्र का सीता के विषय की बात पूछना और लक्ष्मण का उत्तर देना

अब रघुनन्दन दुखी होकर बोले—हे लक्ष्मण, तुम सीता को छोड़ यहाँ क्यों चले आये? मैंने तो तुम्हारे विश्वास पर सीता को वन में अकेली छोड़ दिया था। हे लक्ष्मण, तुमको आते देखते ही मुझे अत्यन्त शंका हुई और सचमुच मेरा मन अत्यन्त दुखी हुआ। मेरी बाईं आँख और बाईं भुजा फड़क रही है और हृदय काँप रहा है, क्योंकि मैं तुमको सीता के बिना मार्ग में देखता हूँ।

लक्ष्मण पीड़ित होकर बोले—मैं अपनी इच्छा से उन्हें छोड़कर यहाँ नहीं चला आया। मुझे तो सीता ही ने भेजा है। आपके से स्वर में यह पुकार सुन पड़ी थी कि "हे लक्ष्मण, मुझे बचाओ।" वह आपका स्वर सीता के कान तक पहुँचा। तब आपके स्नेह से वे रोने लगीं। भयभीत होकर उन्होंने मुझसे शीघ्र जाने को कहा। यद्यपि जाने के लिए उन्होंने मुझसे कई बार प्रेरणा की तथापि मैं नहीं मानता था। उस समय मैंने उनसे कहा भी कि ऐसा कोई राक्षस नहीं देख पड़ता जो राम को भयभीत करे, इसलिए तुम इस शंका को छोड़ दो, डरो मत। किसी दूसरे ने ही पुकारा होगा। मैंने कहा—हे सीते, भला सुनो तो सही। जो देवों को भी बचा सकते हैं वे आर्य (बचाओ) यह निन्दित और नीच वचन कैसे कहेंगे। 'हे लक्ष्मण, मेरा त्राण करो,' यह वाक्य किसी बुरे कारण से किसी ने मेरे भाई के गले की नकल करके कहा होगा। हे शोभने, डर के मारे किसी राक्षस ने यह वचन कहा होगा। तुम अधम स्त्री की तरह शोक मत करो और न

अधीर हो। उत्कंठा छोड़कर तुम शान्त हो जाओ। क्योंकि तीनों लोकों में न ऐसा कोई है और न हुआ है जो संग्राम में रामचन्द्र का पराजय करे। रामचन्द्र तो इन्द्र आदि देवताओं से भी अजेय हैं, उनको कोई नहीं हरा सकता। हे रामचन्द्र, उस समय वैदेही का चित्त मोहित हो रहा था। मेरी बात सुनकर वे आँसू बहाती हुई मुझसे कठोर वचन कहने लगीं कि "मेरे सम्बन्ध में तुम्हारा बड़ा बुरा अभिप्राय है। तुम सोचते होगे कि भाई के मरने पर मैं इसको पाऊँगा सो तुम मुझे कभी नहीं पा सकते। मैं जानती हूँ कि भरत के संकेत से तुम राम के साथ आये हो, क्योंकि रामचन्द्र ऐसा भीत वचन बोल रहे हैं फिर भी तुम उनकी रक्षा के लिए नहीं जाते। तुम छिपे हुए शत्रु हो। मेरे ही लिए राम के साथ आये हो। तुम अपनी बात सोचते हो क्योंकि इस समय उनकी सहायता नहीं करते।" हे भ्राता, सीता की ये बातें सुनकर मैं घबरा गया। मुझे क्रोध आ गया। मेरी आँखें लाल हो गईं और होठ काँपने लगे। उनके वचनों से अत्यन्त दुखी होकर मैं आश्रम से निकला हूँ। यह सुनकर राम बोले कि हे सौम्य, यह तुमने बड़ा बुरा काम किया कि उसको छोड़कर यहाँ चले आये। तुम तो जानते थे कि राक्षसों के मारने को रामचन्द्र समर्थ हैं फिर क्यों मैथिली के इस क्रोध-वचन से चिढ़कर चले आये? हे लक्ष्मण, तुमने सीता को छोड़ दिया, इससे मैं प्रसन्न नहीं। क्रोधित स्त्री का कठोर वचन सुनकर उसे छोड़ न देना चाहिए था। हे लक्ष्मण, तुमने यह बेजा काम किया कि सीता की प्रेरणा से क्रोधवश हो, मेरी आज्ञा न मानी। देखो, मेरे बाण से मरा हुआ यह राक्षस भूमि पर पड़ा है। इसने मृगरूप धरकर मुझे बहकाया था। देखो, मैंने इसको बाण से लीलापूर्वक मार डाला अर्थात् मैंने प्रत्यञ्चा को बहुत खींचा भी नहीं, परन्तु उतनी ही चोट से वह अपना मृग का शरीर छोड़कर आर्त्त स्वर करता हुआ केयूरधारी राक्षस हो गया। जब वह बाण की चोट से आर्त्त हुआ उस समय मेरे गले का अनुकरण करके ऐसा चिल्लाकर बोला कि दूर तक सुन पड़े। उस पुकार को सुनकर तुम सीता को छोड़ यहाँ चले आये।

---

## ६०वाँ सर्ग

### सीता को आश्रम में न देख रामचन्द्र का विलाप करना और उन्मत्त की तरह इधर-उधर पूछते फिरना

इस प्रकार आश्रम में आते समय रामचन्द्र का बायाँ नेत्र नीचे की ओर फरकने लगा। चलने में अकस्मात् उनका पैर खिसक गया और शरीर काँपने लगा। इस प्रकार के अशकुन बार-बार होते जाते थे। इनको देखकर रामचन्द्र बोले कि क्या जाने सीता का क्या हाल है। अब वहाँ से वे शीघ्र ही चले और डेरे को खाली पाकर अत्यन्त व्याकुल हुए। उद्भ्रान्त की नाईं हाथ को झटकारते हुए वे पर्णशाला के भीतर गये। वहाँ भी सीता न मिली। उस समय वह पर्णशाला श्रीरहित, टूटी-फूटी, हेमन्तकाल की कमलिनी की भाँति देख पड़ती थी। उस समय वह पत्तों की कुटी, वृक्षों के द्वारा, रोती सी थी। वहाँ के पुष्प, मृग और पक्षी सभी दीन हो रहे थे। वह कुटी शोभा से हीन और ध्वस्त सी देख पड़ती थी। उसको वन-देवताओं ने छोड़ दिया था। उसमें मृग-चर्म और कुश इधर-उधर बिखरे पड़े थे। आसन और चटाई इधर-उधर फेंकी देख पड़ती थी। अब रामचन्द्र मन में सोचते थे कि क्या

सीता को कोई हर ले गया या मर गई या गुप्त हो गई, किंवा किसी ने उसको खा डाला। वह डर से कहीं छिपी तो नहीं है, या कहीं वन में चली गई है, अथवा फल-पुष्प लेने गई है, या कहीं सरोवर या नदी पर जल के लिए गई है। इस प्रकार सोचते और यत्नपूर्वक खोजते हुए रामचन्द्र ने जब सीता को न पाया तब तो शोक से उनकी आँख लाल हो गईं। वे उन्मत्त की भाँति देख पड़ने लगे। उस समय राघव की यह दशा थी कि वे इधर उधर वृक्षों के पास दौड़ते और पर्वतों, नदियों तथा नालों के निकट जा-जाकर घूमते और विलाप करते थे। वे शोकरूप दलदल के समुद्र में डूबे जाते थे। वे कहते जाते थे कि हे कदम्ब-वृक्ष, मेरी प्रिया तुम्हारे पुष्पों पर अधिक प्रीति रखती थी, उसको यदि तुम जानते हो तो कहो। हे बिल्व-वृक्ष, यदि तुमने उस पीत वस्त्र-धारिणी और बिल्वोपमस्तनी को देखा हो तो बतला दो। हे अर्जुन, कहो तो तुम्हारे पुष्पों पर प्रीति रखनेवाली वह जनक-पुत्री जीती है या नहीं। यह ककुभ वृक्ष अवश्य सीता को जानता होगा क्योंकि यह लता, पत्तों और पुष्पों से लदा हुआ है। उस सीता के सम्बन्ध बिना इसकी ऐसी शोभा नहीं हो सकती। यह तिलक-वृक्ष सीता को अवश्य जानता होगा। इसके ऊपर भौंरे गूँज रहे हैं। सब वृक्षों से यह श्रेष्ठ भी देख पड़ता है। हे अशोक, तुम शोक का नाश करते हो। देखो, मैं शोक से अचेत हो रहा हूँ, इस-लिए मुझे प्रिया को दिखलाकर तुम अपने जैसे नाम-वाला अर्थात् शोकरहित करो। हे ताड़, जो तुमने पक्वतालोपमस्तनवाली सीता को देखा हो तो मुझसे कहो। हे जामुन वृक्ष, यदि मेरे ऊपर तुम्हारी दया हो और यदि तुम उस सुवर्णवर्णा सीता को जानते हो तो शंका छोड़कर मुझे बतला दो। हे करीरकार, तुम तो फूलों से अत्यन्त शोभित हो रहे हो। यदि तुमने मेरी पतिव्रता प्रिया को देखा हो तो मुझसे कहो। उसे तुम्हारे फूल बहुत प्रिय थे।

इस प्रकार श्रीराघव आम, कदम्ब, बड़े-बड़े साखू के वृक्ष, कटहल, कुरर, अनार, मौलसरी, नागकेसर, चन्दन और केवड़े के वृक्षों के पास जाकर पूछते थे। वे पागल की तरह देख पड़ते थे। वे कहते थे कि हे मृग, उस मृगनयनी को तुम जानते हो? मृग के तुल्य देखनेवाली वह मेरी कान्ता अवश्य मृगियों के साथ होगी। हे गजेन्द्र, तुम्हारे शुण्डादण्ड के तुल्य सीता की जङ्घाएँ हैं उसे तुमने देखा है। मैं तो जानता हूँ कि तुम जानते होगे सो तुम मुझे बताओ। हे शार्दूल, वह चन्द्रमुखी यदि तुम्हारी जान में कहीं हो तो भय छोड़कर मुझे बतला दो। हे प्रिये, कमलनयनी, क्या तुम दौड़ रही हो? मैंने तुमको देख लिया। वृक्षों की आड़ में क्यों छिपती हो और मुझसे बोलती क्यों नहीं? हे वरारोहे, खड़ी रहो, खड़ी रहो, क्या मेरे ऊपर दया नहीं है? तुम्हारा तो इतना हास्य करने का स्वभाव नहीं है फिर क्यों मेरी उपेक्षा करती हो! हे सुन्दर वर्णवाली, तुम्हारे पीत वस्त्र से मैंने तुम्हें पहचान लिया और तुम्हें दौड़ते देख लिया। यदि मेरे ऊपर तुम्हारा सौहृद हो तो अब खड़ी रहो। हा! जानकी नहीं है; उसे किसी जन्तु ने खा लिया, नहीं तो मुझे इतने दुःख में देख वह कभी न छोड़ती। मेरी अनुपस्थिति में उस बाला को अवश्य राक्षसों ने खा लिया। उसके अंगों को उन्होंने बाँट खाया। वह पूर्णचन्द्र के तुल्य मुख, सुन्दर दाँतों और ओष्ठों से युक्त था। वह सुन्दर नासिका से शोभित और कुण्डलों से भूषित था। हा! उसे किसी ने ग्रास कर लिया। वह प्रभारहित हो गया। हा! उसका गला चन्दन के तुल्य कान्तिमान्, भूषण पहनने के लायक

और अति कोमल था। वह विलाप करती जाती होगी। उस गले को राक्षसों ने तोड़कर खा डाला होगा। हा! अपनी भुजाओं को वह छटपटाती और फेंकती होगी। वे भुजाएँ नवीन पत्तों के तुल्य कोमल और हस्ताभरण से भूषित थीं। उनको राक्षसों ने खा डाला होगा। हा! वह राक्षसों के भक्षण ही के लिए मुझसे पृथक् हुई और राक्षसों का आहार हुई। हाय! बहुबान्धवयुक्त होने पर भी उसकी यह दशा हुई। हा! महाबाहो लक्ष्मण, तुम कहीं मेरी प्रिया को देखते हो। हा! प्रिये, तू कहाँ गई। हा! भद्रे, हा! सीते, इस प्रकार रामचन्द्र बार-बार चिल्लाते और विलाप करते हुए वन में इधर से उधर दौड़ने लगे। वे कहीं तो कूदते और कहीं घूमते थे। उन्मत्त के जैसे व्यवहार होते हैं वैसी ही चेष्टा वे कर रहे थे। सीता के खोजने में तत्पर होकर वे वनों, नदियों, पर्वतों, झरनों और उपवनों में फिर रहे थे। वे कहीं भी विश्राम नहीं करते थे। सीता के खोजने में वे निराश न थे। इसलिए बार-बार बड़े परिश्रम के साथ खोजते जाते थे।

---

## ६१वाँ सर्ग

### राम का विलाप और लक्ष्मण का समझाना

श्रीरघुनन्दन ने पर्णशाला को शून्य और आसनों को इधर-उधर पड़े देखा; पर वहाँ सीता को न देखा। तब वे चारों ओर खोजकर बड़े शब्द से चिल्लाने और विलाप करने लगे। उन्होंने कहा—हे लक्ष्मण, वैदेही कहाँ है? यहाँ से कहीं चली गई या कोई उसे हर ले गया? अथवा उसे किसी ने खा डाला? हे सीते, वृक्ष की आड़ में खड़ी होकर यदि मुझसे ठट्ठा करती हो तो अब मेरे पास चली आओ। इस समय हँसी करना व्यर्थ है क्योंकि मैं इस समय अत्यन्त दुःखित हो रहा हूँ। हे सीते, मृगों के जिन पालतू बच्चों के साथ तुम खेलती थीं वे तुम्हारे बिना आँखों में आँसू भरे सोच कर रहे हैं। हे लक्ष्मण, सीता से रहित होकर मैं नहीं जीना चाहता। देखो, मैं सीता-हरण के दुःख से व्याप्त हूँ; मुझे परलोक में महाराज पिताजी अवश्य देखेंगे और कहेंगे कि जितने समय तक की प्रतिज्ञा थी उसको पूरा किये बिना तुम क्यों मेरे पास चले आये। मुझे यथेच्छाचारी, अधम और मिथ्यावादी समझकर वे धिक्कार देंगे। हे वरारोहे सीते! मैं विवश, शोकसन्तप्त, दीन और नष्टमनोरथ हूँ। करुणा से भरे मुझे छोड़कर तुम कहाँ जाती हो? हे प्रिये, जैसे कुटिल मनुष्य को कीर्ति छोड़ देती है वैसे तेरे बिना मैं अपने जीवन का त्याग करूँगा।

श्रीराघव इस प्रकार सीता के दर्शन की आकांक्षा करते हुए विलाप कर रहे थे। जानकी को न पाकर वे दुःखार्त हो गये। सीता के वियोग से रामचन्द्रजी की दशा कीचड़ में फँसे हाथी की तरह थी। उनसे, हित की इच्छा से, लक्ष्मण ने कहा—हे महा बुद्धे, दुःख मत करो। आओ, मेरे साथ प्रयत्न करो। देखो, इस पर्वत में बहुत सी कन्दराएँ हैं। इसमें खोजें, क्योंकि सीता को वन में घूमना बहुत प्रिय है। वन को देखकर वह प्रसन्न हो जाती है, इसलिए कदाचित् वह वन में अथवा कमलों से शोभित तालाब पर चली गई हो, अथवा मत्स्य और वेतों से भूषित नदी के किनारे गई हो। सम्भव है कि हम दोनों को डरवाने के लिए वह कहीं वन में छिपी हो, अथवा हम लोगों के खोजने का सामर्थ्य देखती हो। इसलिए हे श्रीमन्, चलो हम उसके खोजने का शीघ्र यत्न करें और इस संपूर्ण वन

को खोजें जहाँ जानकी मिले। हे काकुत्स्थ, आप मेरी बात को मानिए। मुझे यही उपाय सूझता है। आप शोक मत कीजिए। लक्ष्मण ने जब इस प्रकार सौहाद से समझाया तब तो रामचन्द्र, मन लगाकर, भाई के साथ सीता को खोजने लगे।

अब वे दोनों भाई वन, पर्वत, नदी और तालाबों में रत्ती-रत्ती ढूँढ़ते और उस पर्वत के शिखरों को देखते जाते थे। परन्तु सीता कहीं भी न मिली। इसके अनन्तर रामचन्द्र ने पर्वत को अच्छी तरह खोजकर लक्ष्मण से कहा कि हे सौमित्रे, सब पर्वत ढूँढ़ा गया परन्तु सीता नहीं देख पड़ी। तब लक्ष्मण दुःख-सन्तप्त होकर बोले—हे पण्डित, जैसे विष्णु ने बलि को बाँधकर इस पृथ्वी को प्राप्त किया था उसी तरह तुम्हें मैथिली मिलेगी। लक्ष्मण का यह वचन सुन रामचन्द्र ने दुःखित होकर दीन वाणी से कहा—हे लक्ष्मण, मैंने सम्पूर्ण वन, पुष्पित सरोवर, अनेक कन्दराओं और निर्झरों से युक्त इस पर्वत को भी ढूँढ़ डाला परन्तु वैदेही कहीं न मिली। वह मुझे प्राणों से भी प्यारी है। इस प्रकार विलाप करते-करते रामचन्द्रजी सीता के हरण से कर्शित, दीन और शोकार्त्त होकर मुहूर्त भर के लिए मूर्छित हो गये। उनका शरीर शिथिल और बुद्धि भ्रान्त थी। चेतना-रहित और दीन होकर वे गरम-गरम लम्बी साँस लेने लगे। देर तक निःश्वास लेकर और हा प्रिय कहकर वे बहुत चिल्लाने लगे। तब लक्ष्मण हाथ जोड़कर नम्रता-पूर्वक बहुत प्रकार से रघुनन्दन को समझाने लगे परन्तु वे उस बात को न मानकर और सीता को देखे बिना बार-बार रोने और उच्च स्वर से पुकारने लगे।

---

## ६२वाँ सर्ग

### फिर रामचन्द्र का विलाप करना

सीता को न देखकर धर्मात्मा रामचन्द्र विलाप करने लगे। वे काम से पीड़ित हो गये। यद्यपि वहाँ सीता न थी तथापि वे गद्गद कण्ठ से इस तरह कहने लगे मानो सीता वहीं मौजूद हो। उन्होंने कहा—पुष्पों की चाहनेवाली और मेरे शोक की बढ़ानेवाली हे प्रिये, तू अशोक की शाखाओं से अपने को छिपाती है। केले के खम्भों के सदृश तेरी जङ्घाएँ हैं, उन्हें केले के वृक्ष से छिपा रही है, सो न छिपा सकेगी। हे देवि, कर्णिकार के वन में तू हँसती हुई विलास करती है सो तेरा यह ठट्ठा करना अनुचित है, क्योंकि इससे मुझे पीड़ा होती है। हे प्रिये, मैं जानता हूँ कि तुझे परिहास प्रिय है और तेरा स्वभाव ही ऐसा है, परन्तु आश्रम-स्थान में ऐसा ठट्ठा उचित नहीं। हे विशालाक्षि, तुम आओ। देखो, यह पर्ण-शाला शून्य पड़ी है। हे लक्ष्मण, यह प्रत्यक्ष जान पड़ता है कि राक्षस लोग सीता को खा गये या हर ले गये; क्योंकि मुझे विलाप करते देखकर भी वह मेरे पास नहीं आती। हे लक्ष्मण, इन मृगों की आँखों में आँसू भरे हैं इसलिए स्पष्ट सूचित होता है कि राक्षसों ने सीता को खा लिया। हा! मेरी आर्ये, हा! पतिव्रते, हा, वरवर्णिनि, तू कहाँ गई। हा! आज कैकेयी का मनोरथ पूर्ण होगा। हे लक्ष्मण, सीता के साथ मैं वन में आया था; अब सीता के बिना मैं अकेला अन्तःपुर में कैसे जाऊँगा। लोग मुझे वीर्य-रहित और दयाहीन कहेंगे। सीता के हरण से मेरा कादरपना तो प्रत्यक्ष ही है। जब मैं वनवास से लौटूँगा तब मिथिलाधिप जनक मुझसे कुशल पूछेंगे, उन्हें देखने को मैं किस प्रकार

समर्थ हूँगा। हा! वे विदेह राज मुझे सीतारहित देख, पुत्री के नाश से सन्तप्त होकर मूर्छित हो जायँगे। हे लक्ष्मण, हमारे तात दशरथ जो स्वर्ग को सिधार गये है वे ही इस घड़ी कृतार्थ हैं। अथवा, मैं अयोध्या में न जाऊँगा क्योंकि सीता के बिना मुझे स्वर्ग भी सूना जान पड़ता है। इसलिए तुम मुझे वन में छोड़ कर अयोध्या चले जाओ क्योंकि सीता के बिना मैं किसी प्रकार जी नहीं सकता। अयोध्या में तुम भरत को गले से लगाकर कहना कि रामचन्द्र ने तुमको पृथ्वी का पलना करने की आज्ञा दी है; अम्बा कैकेयी, सुमित्रा और कौशल्या को भी यथोचित प्रणाम करना और प्रयत्नपूर्वक इनका पालन करना। सीता के और मेरे विनाश का सब समाचार विस्तारपूर्वक मेरी माता को सुना देना।

राम को इस प्रकार विलाप करते देख लक्ष्मण भी भय से व्याकुल हो गये।

— —

## ६३वाँ सर्ग

### फिर रामचन्द्र का विलाप करना और लक्ष्मण का समझाना

प्रिया से हीन रामचन्द्र शोक और मोह से पीड़ित हो रहे थे, इससे भ्राता लक्ष्मण भी विषण्ण थे। रामचन्द्र फिर भी बड़े दुखी हुए और गरम श्वास लेकर रोने लगे। वे लक्ष्मण से बोले—इस पृथ्वी पर मुझ ऐसा पापकर्मकारी दूसरा कोई न होगा। देखो, मुझे शोक पर शोक होता चला जाता है जो मेरे हृदय और मन को विदीर्ण किये डालता है। पहले मैंने अनेक बार इच्छा-पूर्ण पापकर्म किये हैं। उन्हीं का यह विपाक मुझे भोगना पड़ा कि एक के बाद दूसरा दुःख प्राप्त हो रहा है। देखो राज्य का नाश, स्वजनों से वियोग, पिता का मरण और माता का वियोग—इन सबका स्मरण करने से कैसा शोक का वेग उठता है। हे लक्ष्मण, वन में आने से मेरे ये सब दुःख शान्त हो गये थे परन्तु सीता के वियोग से वे फिर उठ खड़े हुए जैसे लकड़ी पड़ने से आग जलने लगती है। हे सौमित्रे, किसी राक्षस ने मेरी भार्या को हर लिया। वह आकाशमार्ग से गया होगा। उस समय वह बार-बार रोती और चिल्लाती रही होगी। हा! मेरी प्रिया के गोल स्तन उत्तम चन्दन लगाने योग्य हैं, वे अवश्य रक्त-पंक से भर गये होंगे। हा! मेरा मरण नहीं होता। मेरी प्रिया मधुर, स्पष्ट और कोमल वचन बोलती थी। सुन्दर घुँघरारे बालों से उसका चेहरा भूषित था। उसका मुख राक्षस के वश में जाने से उसी तरह शोभित न होता होगा जैसे राहु के मुख में चन्द्र नहीं शोभा देता। हा! मेरी प्रिया का गला हार पहनने के लायक था; उसे अवश्य राक्षसों ने एकान्त पा फाड़कर रक्त पी लिया होगा। हा! मेरी अनुपस्थिति में इस निर्जन वन में जब उसे राक्षसों ने खींचा होगा तब उसने, कुररी की नाईं, बड़ा आर्त्तनाद किया होगा। हे लक्ष्मण, वह इस शिला पर मेरे साथ बैठी हुई मनोहर मुसकुराहट के साथ तुमसे हँसी की अनेक बातें करती थीं। हे लक्ष्मण, यह श्रेष्ठ नदी गोदावरी मेरी प्रिया को बहुत प्यारी है। मैं समझता था कि कदाचित् वह इसी के तीर पर गई हो, परन्तु वहाँ तो वह कभी अकेली नहीं जाती। फिर मैं सोचता था कि वह कमल मुखी कदाचित् कमल तोड़ने गई हो, परन्तु वह मेरे बिना वहाँ भी नहीं जाती। फिर मेरे विचार में यह आया कि इस फूले-फूले वृक्षों के जङ्गल में नाना पक्षी विहार करते हैं, इसी जङ्गल में वह गई हो सो भी ठीक नहीं, क्योंकि वहाँ अकेले जाते वह डरती है। हे भगवन्, सूर्य, तुम किये और बिना

किये कर्मों के और झूठे-सच्चे कर्मों के साक्षी हो। बताओ, मेरी प्रिया कहाँ गई, अथवा कोई उसको हर ले गया। देखो, मैं शोक से मृतप्राय हो रहा हूँ। हे पवन, सम्पूर्ण लोकों में ऐसी वस्तु ही नहीं जो तुम्हारे प्रत्यक्ष न हो। इसलिए तुम उस कुलपालिनी का समाचार मुझसे कहो। वह मर गई या हर ली गई या मार्ग में है? इस प्रकार शोक के वश में पड़े, अचेत और विलाप करते हुए रामचन्द्र को देख लक्ष्मण ने दीनता छोड़कर और न्यायमार्ग का अवलम्बन करके समय के अनुसार कहा—हे रामचन्द्र, शोक को छोड़कर धीरता धारण कीजिए और सीता के खोजने में उत्साह कीजिए क्योंकि उत्साही पुरुषों को दुष्कर कार्यों में भी दुख नहीं होता।

लक्ष्मण यद्यपि इस प्रकार समझा रहे थे तथापि इनके वाक्यों की ओर रामचन्द्र का ध्यान न था। उन्होंने धीरता छोड़ दी। वे फिर भी अत्यन्त दुखी हुए।

---

## ६४वाँ सर्ग

### विलाप करते हुए रामचन्द्र का दक्षिण दिशा की ओर जाना तथा रावण और जटायु की युद्धभूमि देखना

अब रामचन्द्र फिर दीन वचन बोले—हे लक्ष्मण, तुम गोदावरी के तीर पर जाओ। वहाँ देखो कि सीता कमल-पुष्प लेने तो नहीं गई है। यह सुनते ही लक्ष्मण गोदावरी नदी पर गये। वहाँ चारों ओर सीता को खोजकर फिर रामचन्द्र के पास आकर उन्होंने कहा कि वहाँ तो वह नहीं देख पड़ती। वहाँ मेरी पुकार भी कोई नहीं सुनता। वह क्लेशनाशिनी वैदेही न जाने किस स्थान में चली गई। अब रामचन्द्र दीन और सन्ताप से मोहित होकर आप ही गोदावरी के तीर पर गये और कहने लगे कि सीता कहाँ है? वहाँ जो प्राणी थे वे जानते थे कि 'वध के योग्य रावण ने सीता को हर लिया है' परन्तु भय के कारण उन्होंने रामचन्द्र को कुछ सन्देश न दिया। इसी से गोदावरी ने भी कुछ न कहा। वहाँ के प्राणियों ने गोदावरी से कहा भी कि रामचन्द्र को बतला दे कि सीता को रावण हर ले गया परन्तु उसने कुछ भी न कहा। क्योंकि रावण के उस रूप और कर्म को नदी ने देखा था, इसलिए मारे डर के वह न कह सकी। इस प्रकार नदी से निराश होकर रामचन्द्र ने कहा—हे सौम्य, देखो, यह गोदावरी कुछ भी नहीं बतलाती। अब मैं महाराज जनक से और सीता की माता से क्या कहूँगा। मैं राज्य से हीन हूँ और वन में जंगली पदार्थों पर अवलम्बित हूँ। इस अवस्था में मेरे शोक को जिसने दूर किया था, वह वैदेही कहाँ गई। हे लक्ष्मण, एक तो मैं ज्ञातिवर्ग से हीन हूँ दूसरे अब सीता को भी नहीं देखता सो मुझे ऐसा जान पड़ता है कि ये रातें भी नींद न आने के के कारण मेरे लिए बहुत लम्बी होंगी। हे वीर, मैं मन्दाकिनी, जनस्थान और इस सम्पूर्ण प्रस्रवण पर्वत को भी ढूँढूँगा। कदाचित् सीता मिल जाय। देखो, ये बड़े-बड़े मृग बार-बार मेरी ओर देखते हैं। इनकी चेष्टा से ऐसा लक्षित होता है मानो मुझे कुछ बतलाना चाहते हैं। रामचन्द्र ने उनकी ओर देखकर गद्गद वाणी से पूछा कि "सीता कहाँ है?" तब वे मृग शीघ्र ही दक्षिणाभिमुख आकाशमार्ग को दिखलाते चले। जिस मार्ग से रावण सीता को ले गया था उसी ओर वे चले जाते थे और रामचन्द्र की ओर देखते थे। वे

मृग जिस ओर के मार्ग और भूमि को देखते और शब्द करते जाते थे उस ओर लक्ष्मण ने देखा। उन मृगों के शब्द के तात्पर्य और चेष्टा को लक्षित कर लक्ष्मण ने आर्त्त की भाँति रामचन्द्र से कहा—हे राघव, आपने पूछा कि "सीता कहाँ है" सो ये मृग उठकर दक्षिण दिशा को दिखला रहे हैं। इसलिए हम दोनों इसी दिशा की ओर चलें। कदाचित् उधर उसका पता लग जाय अथवा वही मिल जाय। इस पर श्रीरामचन्द्र 'बहुत अच्छा' कहकर देखते-भालते चल पड़े। इस प्रकार दोनों भाई बातचीत करते चले जाते थे।

जाते-जाते मार्ग में बहुत से फूल गिरे हुए देख पड़े। तब रामचन्द्र ने कहा—हे लक्ष्मण, ये वही फूल हैं जो मैंने वन में सीता को दिये थे और उन्होंने धारण कर लिये थे। मैं समझता हूँ कि मेरी प्रीति के लिए सूर्य, वायु और पृथ्वी इन फूलों की रक्षा कर रही हैं। यह कहकर वे प्रस्रवण पर्वत से बोले—हे पर्वतों के नाथ, उस सर्वाङ्गसुन्दरी को तुमने देखा हो तो मुझे बता दो। जब पर्वत ने कुछ उत्तर न दिया तब रामचन्द्र क्रुद्ध होकर इस तरह बोले जैसे सिंह छोटे मृग से बोलता है। उन्होंने कहा—हे पर्वत, उस सुवर्ण-वर्णा सीता को मुझे दिखलाओ, नहीं तो मैं तुम्हारे इन शिखरों का विध्वंस करता हूँ। बताने की इच्छा होने पर भी वह रामचन्द्र को कुछ बतला न सका। तब वे फिर क्रुद्ध होकर बोले—हे प्रस्रवण गिरे, मेरे बाणों की अग्नि से जलकर तू भस्म हो जायगा; फिर तू असेव्य हो जायगा—कोई प्राणी तेरे पास न आवेगा। क्योंकि तेरे ऊपर न तो तृण रह जायगा, न वृक्ष और न पत्ते देख पड़ेंगे। हे लक्ष्मण, यदि यह नदी उस चन्द्रमुखी सीता को नहीं बतलाती तो मैं इसको सुखा देता हूँ। इस प्रकार रामचन्द्र क्रुद्ध होकर मानो चक्षु से जलाना ही चाहते थे कि वहाँ, भूमि पर, राक्षस के पैर का बड़ा चिह्न देख पड़ा। वहाँ सीता के भी पैरों के चिह्न देख पड़े। उसके पद-चिह्नों से ज्ञात हुआ कि वह डरती और राम के दर्शन चाहती हुई इधर-उधर दौड़ती और राक्षस से छुटी हुई भागती थी। वहाँ पर टूटा हुआ धनुष, तरकस, और टूटे रथ के अनेक टुकड़े देख पड़े। वे टुकड़े वहाँ भूमि पर छितराये पड़े थे। तब तो रामचन्द्र उद्विग्न होकर बोले कि हे लक्ष्मण, देखो, सीता के भूषणों के सुवर्ण के कण और नाना प्रकार की मालाएँ यहाँ पड़ी हैं; और रक्त के विचित्र बिन्दु, जो तपाये हुए से जान पड़ते हैं, पृथ्वी पर चारों ओर टपके हैं। हे लक्ष्मण, मैं जानता हूँ कि वैदेही को कामरूपी राक्षसों ने काट-काटकर बाँटा और खाया होगा। हे सौमित्रे, मुझे ऐसा जान पड़ता है कि उसी सीता के लिए दो राक्षसों का विवाद और युद्ध भी यहाँ हुआ है। देखो, यह टूटा हुआ सुन्दर धनुष किसका पड़ा है? यह मुक्तामणि से जटित और रमणीय है। हे वत्स, यह धनुष या तो देवताओं का होगा अथवा राक्षसों का। देखो न, यह मध्याह्न काल के सूर्य की नाईं कैसा चमक रहा है और इसमें पन्ने की गोलियाँ जड़ी हुई हैं। देखो, यह सुवर्ण का कवच है। यह किसका है जो टूट-फूटकर छितरा गया? सौ शलाकाओं से बना हुआ यह छत्र दिव्य मालाओं से भूषित है। इसकी डण्डी टूट गई है। यह छत्र किसका है? और देखो, संग्राम में ये किसके भयंकर खर मारे गये हैं जो सुवर्ण के कवच से भूषित हैं, पिशाच की तरह जिनका मुख है और विशाल शरीर है। फिर देखो, यह प्रदीप्त अग्नि के तुल्य प्रकाशमान और समर के ध्वज से भूषित संग्राम-रथ चूर होकर किसका गिरा है। देखने में भयंकर ये बाण चार सौ अंगुल लंबे, फलरहित और सुवर्णभूषित हैं। ये किसके हैं जो

यहाँ तितर बितर पड़े ह। हे लक्ष्मण, फिर ये बाणों से भरे दो तरकस किसके गिरे हैं। कोड़ा और घोड़ों की रास को हाथ में लिये यह सारथि किसका मरा पड़ा है। मैं जानता हूँ कि यह किसी राक्षस के चलने का मार्ग होगा। देखो, हे सौम्य, कठोर हृदयवाले काम-रूपी निशाचरों से मेरा, पहले की अपेक्षा, अब सौगुना कठिन बैर हो गया। हे सौम्य, इन राक्षसों ने सीता को हर लिया अथवा वह मर गई, या किसी जन्तु ने उसे खा डाला। देखो, हरण किये जाते वक्त धर्म ने सीता की रक्षा नहीं की। हे लक्ष्मण, जानकी या तो हर ली गई या किसी ने उसे भक्षण कर लिया। जब धर्म ही उसकी रक्षा न कर सका तब मेरी भलाई संसार में और कौन कर सकेगा? हे लक्ष्मण, इसी से संसारी मनुष्य, अज्ञान के वश में होकर, सृष्टि के रचयिता परमदयालु परमेश्वर की निन्दा करते हैं। मेरा हृदय अत्यन्त कोमल है, मैं सदा संसार की भलाई में तत्पर रहता हूँ और जितेन्द्रिय हूँ फिर भी सीता-हरण के कारण देवता मुझे निर्वीर्य समझेंगे। हे लक्ष्मण, ये सब गुण मेरे संसर्ग से दोष-रूप हो गये। देखो, संसार का विनाश करने के लिए जिस तरह प्रलय-कालीन सूर्य चन्द्रिका को नाश करके प्रकाशित होते हैं उसी तरह राक्षसों का नाश करने के लिए मैं अपने तेज को प्रकाशित करता हूँ। यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस, किन्नर और मनुष्य भी सुखी न रहने पावेंगे। हे लक्ष्मण, तुम देखो मैं इस आकाश को कैसे अस्त्ररूपी बाणों से भरे देता हूँ कि त्रैलोक्य में इधर उधर जाने-वाले विमानों का मार्ग भी रुक जायगा। देखो, मैं ग्रहों की गति को रोके देता हूँ। चन्द्रमा को जहाँ का तहाँ ठहराता हूँ। अग्नि, वायु और सूर्य भी अपने अपने स्थानों से हिलने न पायँगे। मैं शैल के शिखरों को काट कर गिराये देता हूँ। समुद्र को सुखा देता हूँ और वन को वृक्ष, लता और गुल्मों से रहित किये डालता हूँ। हे लक्ष्मण, मैं त्रैलोक्य को मार डालूँगा। हे सौमित्रे, जो देवता इत्यादि कुशलपूर्वक सीता को न दे देंगे तो वे इसी मुहूर्त्त में मेरे पराक्रम को देखेंगे। हे लक्ष्मण, मेरे चाप की प्रत्यञ्चा से छूटे हुए बाण-जालों से आकाश में कोई जीव न उड़ सकेंगे। हे लक्ष्मण, तुम देखना कि यह जगत् चारों ओर से मर्दित, मृग और पक्षियों के ध्वंस से युक्त, व्याकुल और मर्य्यादा से हीन हो जायगा। सीता के लिए मैं प्रत्यञ्चा को कान तक खींच कर ऐसे बाण मारूँगा जो किसी के रोके न रोके जा सकें। मैं इस जगत् में एक भी पिशाच और राक्षस न रहने दूँगा। आज मैं क्रोध से जो बाण चलाऊँगा और जो अमर्ष से बहुत दूर तक वेग से जायँगे, उनके बल को देवता देखेंगे। हे लक्ष्मण, मेरे क्रोध से इस त्रैलोक्य का नाश होने पर न देवता रहेंगे न दैत्य, न पिशाच और न राक्षस। देव, दानव, राक्षस और यक्षों के लोक भी मेरे बाणों से टुकड़े टुकड़े होकर गिर पड़ेंगे। हे सौमित्रे, चाहे सीता हर ली गई हो अथवा मर गई हो परन्तु यदि ये लोग मुझे उसको न ला देंगे तो आज मैं मारे बाणों के लोकों को मर्यादा-रहित कर डालूँगा और चराचर और त्रैलोक्य सहित इस संपूर्ण जगत् को नष्ट कर दूँगा। जब तक मैं उसको न देखूँगा तब तक बाणों से सबको सन्तप्त करता रहूँगा।

क्रोध से श्रीरघुनन्दन के नेत्र लाल हो गये और ओठ काँपने लगे। अपने बल्कल और मृगचर्म को कमर से बाँध कर वे जटा-भार बाँधने लगे। उस समय क्रुद्ध रामचन्द्र का शरीर ऐसा देख पड़ता था जैसे पूर्वकाल में, त्रिपुरासुर के वध के समय, शिव का शरीर भयंकर हो गया था। इसके बाद रामचन्द्र ने लक्ष्मण के हाथ से

धनुष लेकर उस पर अत्यन्त प्रज्वलित, भयंकर और विषधर नाग के तुल्य बाण चढ़ाया। प्रलय-काल की अग्नि के तुल्य क्रुद्ध होकर उन्होंने कहा—हे लक्ष्मण, जिस प्रकार से जरा, मृत्यु, काल और दैव का निवारण करने में कोई समर्थ नहीं है उसी प्रकार क्रोधसंयुक्त मैं भी किसी के द्वारा निवारित नहीं हो सकता। इसमें कुछ भी संदेह मत समझना। यदि ये लोग सीता को दे देंगे तब तो अच्छी बात है; नहीं तो देव, गन्धर्व, मनुष्य, नाग और पर्वतों सहित इस जगत् को मैं मर्दन कर डालूँगा।

---

## ६५वाँ सर्ग

### क्रुद्ध रामचन्द्र को लक्ष्मण का समझाना

रामचन्द्रजी सन्तप्त और सीता के हरण से क्लेशित थे, वे प्रलय-काल के अग्नि की नाईं लोकों का नाश करने में तत्पर और बार बार प्रत्यञ्चा युक्त धनुष को देखते थे। वे श्वासोच्छ्वास लेते हुए ऐसे मालूम होते थे जैसे युग के अंत में संपूर्ण जगत् को रुद्र भस्म करना चाहते हों। विलक्षण क्रोध से भरे रामचन्द्र से लक्ष्मण ने हाथ जोड़ कर डरते डरते कहा कि पहले आप बहुत ही कोमल, जितेन्द्रिय और सब प्राणियों के हितकारी थे। इस समय क्रोध के वश में आकर आपको अपने शील का त्याग न करना चाहिए। देखिए जैसे चन्द्र में लक्ष्मी, सूर्य में प्रभा, वायु में गति और पृथ्वी में क्षमा नियम से रहती है, इसी प्रकार आपमें सर्वोत्तम यश स्थिर है। और एक के अपराध से संपूर्ण लोकों का नाश करना आपको उचित नहीं। पहले आप मुझे इस बात का पता लगा लेने दीजिए कि यह संग्राम-रथ किसका टूटा पड़ा है और किसने इसको किस लिए तोड़ा है। संग्राम हुआ ही क्यों। क्योंकि यह स्थान टापों और रथ के पहियों से खुँदा और रुधिर के बिन्दुओं से सींचा हुआ देख पड़ता है। इसलिए मैं समझता हूँ कि अवश्य यहाँ घोर संग्राम हुआ है। और यह एक ही पुरुष का युद्ध-समारम्भ देख पड़ता है—दो का नहीं। बड़ी सेना का भी युद्ध चिह्न नहीं देख पड़ता, इसलिए एक के कारण लोकों का विनाश करना आपको उचित नहीं। देखिए, राजा लोग अपराध के अनुसार दण्ड देते हैं। उनका चित्त कोमल और स्वभाव शान्त होता है। आप तो सदा सब प्राणियों को शरण देने-वाले और परम गति रूप हैं। भला कहिए तो सही कि आपकी स्त्री का नाश होना कौन अच्छा मानता और चाहता है। नदी, समुद्र, पवत, देव, गन्धर्व और दानव कोई भी आपका अप्रिय करने में समर्थ नहीं हैं जैसे कि साधु लोग यज्ञ-दीक्षित पुरुष का अप्रिय नहीं कर सकते। हे राजन्, जिसने सीता को हरा है, उसको खोजिए और मैं धनुष लिये आपकी सहायता में तत्पर हूँ। ऋषि लोग भी आपकी सहायता करेंगे। जब तक सीता के हरण करनेवाले को न पावेंगे तब तक हम समुद्र, पर्वत, वन, भयंकर गुहा, पद्मयुक्त अनेक प्रकार की ताल-तलैयों, तथा देव और गन्धर्वों के लोकों में भी एकाग्र मन से सीता को ढूँढ़ेंगे। इतने पर भी यदि सीता का पता न लगेगा और देवगण भी सीता को लाकर न देंगे तो फिर पीछे समयानुसार जैसी आपकी इच्छा हो वैसा कीजिएगा। हे कोशलेन्द्र, शील, साम, विनय और न्याय से यदि सीता न मिलेगी

तो आप सुवर्ण पङ्खवाले वज्र के तुल्य बाणों से लोकों का विनाश कीजिएगा।

---

## ६६वाँ सर्ग

### लक्ष्मण का राम को फिर समझाना

इतना समझाने पर भी शोक सन्तप्त रामचन्द्र अनाथ की नाईं विलाप करते थे। बड़े मोह से भरे अचेत राम को देखकर लक्ष्मण फिर चरणों को थाँम कर समझाने लगे कि हे रामचन्द्र, जैसे देवों ने अमृत पाया था उसी तरह बड़ी तपस्या से अथवा बड़ी विधि से, राजा दशरथ ने तुमको पाया था। देखो तुम्हारे गुणों के बन्धन से बँधे हुए राजा तुम्हारे वियोग से देवता के स्वरूप को प्राप्त हुए। यह बात भरत के मुख से सुनी है। हे काकुत्स्थ, यदि इस आये हुए दुःख को न सहोगे तो अज्ञान और अल्प बुद्धि-बलवाला कोई कैसे सहेगा। हे नरश्रेष्ठ, अपने को आप ही समझाओ क्योंकि ऐसा कौन प्राणी है जिस पर विपत्ति नहीं आती और अग्नि की नाईं स्पर्श करके क्षण भर में निकल नहीं जाती। यह तो संसार का स्वभाव ही है। देखिए, नहुष के पुत्र ययाति इन्द्रलोक में जाकर भी अपने अनम्रतारूप दोष से च्युत हो गये थे। और हमारे पिता के पुरोहित महर्षि वशिष्ठ के सौ पुत्र एक ही दिन में विश्वामित्र के द्वारा मारे गये थे। हे कोशलेश्वर, देखो, यह जो जगत् की माता और सब लोगों की नमस्कृत पृथिवी है, सो इसको भी कभी न कभी कम्प उत्पन्न होता है। ये चन्द्र-सूर्य्य धर्ममूर्त्ति हैं। ये समय का विभाग करते हैं और जगत् के आधार रूप हैं, पर इनको भी राहु ग्रसता है। इसलिए हे पुरुषश्रेष्ठ, यह स्पष्ट है कि बड़े बड़े प्राणी और देवगण भी दैव से नहीं छूट सकते। इन्द्र आदि देवताओं में भी न्याय और अन्याय (अर्थात् इन दोनों से उत्पन्न सुख और दुःख) सुन पड़ते हैं, इसलिए आप दुखी न हूजिए। हे राघव, वैदेही चाहे मर गई हो या नष्ट हो गई हो, परन्तु आप साधारण मनुष्यों की भाँति शोक न कीजिए क्योंकि आपके सदृश सर्वदा सर्वदर्शी महात्मा लोग, शोक में नहीं पड़ते, वरन् बड़े बड़े क्लेश-स्थानों में भी दृढ़ देख पड़ते हैं। इसलिए हे नरश्रेष्ठ, आप अपनी बुद्धि से इसका ठीक ठीक विचार कीजिए। क्योंकि पण्डित लोग अपनी बुद्धि के बल से शुभ और अशुभ दोनों को जान सकते हैं। जिनके गुण और दोष नहीं जान पड़ते ऐसे अध्रुव कर्म्मों के साधन के बिना इष्ट-फल की प्राप्ति नहीं होती। हे वीर, देखिए आप ही ने मुझे पहले इस विषय में कितना सिखलाया था, सो आपको भला कौन सिखला सकता है। कहाँ तक कहें, बृहस्पति भी आपको शिक्षा देने के योग्य नहीं है। हे महापण्डित, आपकी बुद्धि का अनुसरण देवताओं की भी बुद्धि नहीं कर सकती। आपका ज्ञान शोक के कारण निद्रित है इसलिए मैं उसे जगाता हूँ। हे इक्ष्वाकु-श्रेष्ठ, आप दिव्य और मनुष्य-सम्बन्धी अपने पराक्रम की ओर दृष्टि करके शत्रुओं के वध का प्रयत्न कीजिए। सब का विनाश करके क्या कीजिएगा। जिसने आपका अपराध किया है उसी का अन्वेषण कीजिए और उसी का विनाश कीजिए।

---

## ६७वाँ सर्ग

### राम का सीता को खोजना और जटायु से मिलना

इस प्रकार लक्ष्मण के समझाने पर रामचन्द्र ने क्रोध को दूर कर धनुष रख दिया। उन्होंने कहा—हे वत्स लक्ष्मण, अब हम क्या करें और कहाँ जायँ? तुम सोचो कि सीता किस उपाय से मिलेगी। यह सुनकर लक्ष्मण बोले कि आप इसी जनस्थान में सीता को ढूँढ़िए। यहाँ बहुत राक्षस रहते हैं और अनेक वृक्ष, लता, दुर्गम पर्वत, गड्ढे और कन्दरायें हैं। वे कन्दरायें भयंकर और नाना मृग-गणों से भरी पड़ी हैं। यहाँ अनेक किन्नर और गन्धर्व भी रहते हैं, सो आप सावधान होकर मेरे साथ इन स्थानों में ढूँढ़िए। आपके सदृश महात्मा और बुद्धि-सम्पन्न राजा लोग आपत्तियों में दृढ़ रहते हैं। आपत्तियाँ उनको कँपा नहीं सकतीं जैसे कि वायु के वेग से पर्वत नहीं हिलाया जा सकता। इस सलाह को मानकर रामचन्द्र उस वन में घूमने लगे। क्रुद्ध होकर उन्होंने धनुष पर बड़े भयंकर पैने बाण को चढ़ा लिया। उस वन में फिरते फिरते रामचन्द्र ने, पर्वत के शिखर की नाईं विशाल और रुधिर से भरे उसे महाभाग पक्षिराज, जटायु को भूमि पर पड़ा देखा। तब तो रामचन्द्र लक्ष्मण से बोले कि देखो, इसने सीता को खाया है, इसमें सन्देह नहीं। यह गृध्र रूपधारी कोई राक्षस है और इसी वन में घूमता फिरता है। यही सीता को भक्षण कर सुख से चुपचाप बैठा है। अब मैं बाणों से इसका वध करूँगा। यह कहकर और धनुष पर बाण चढ़ाकर रामचन्द्र क्रोध से, समुद्रान्त पृथिवी को कँपाते हुए, उसको देखने के लिए उसके पास पहुँचे। इनको आते देख वह पक्षी फेनयुक्त रुधिर को मुख से निकालता हुआ दीन वचन बोला—हे आयुष्मन्, जिस सीता को तुम ओषधि की तरह ढूँढ़ते फिरते हो उसे और मेरे प्राणों को राक्षस रावण हर ले गया। सीता को रथ में बैठाकर ले जाते उसे मैंने देखा था। सीता की रक्षा के लिए मैंने उसका रथ और छत्र तोड़ डाला। मैंने उसका धनुष भी तोड़ दिया। देखो, यह उसका रथ टूटा हुआ पड़ा है और ये उसके बाण हैं। मैंने उसके सारथि और खच्चरों को भी मार गिराया है। मुझे थका हुआ समझ कर रावण, तलवार से मेरे पंख काट कर, सीता को लेकर आकाश में उड़ गया। मुझे तो राक्षस मार गया। मुझ मरे हुए को तुम न मारो।

श्रीरामचन्द्र ने उसकी दशा देखी और उसके मुख से सीता की कथा सुनी। तब गृध्रराज को गले से लगाकर और धनुष को फेककर वे भूमि पर गिर पड़े और लक्ष्मण के साथ रोने लगे। धैर्य्यवान् होकर भी वे सन्ताप से पीड़ित हो गये। असहाय जटायु की ऊर्द्ध्वश्वास चल रही थी। उसे देख राम ने लक्ष्मण से कहा—मेरे दुर्भाग्य की परम्परा तो देखो, राज्य का भ्रंश, वन में वास, सीता का नाश और इस पक्षी का भी मरण हो गया। इस प्रकार का मेरा दौर्भाग्य चाहे तो अग्नि को भी भस्म कर दे। यदि आज मैं अपने इस सन्ताप की शांति के लिए समुद्र में नहाने जाऊँ तो मेरे दौर्भाग्य से वह भी सूख जाय। हे लक्ष्मण, इस चराचर जगत् में मेरे सदृश अभागी कोई न होगा तभी तो यह महा दुःख रूप बंधन मुझे प्राप्त हुआ। ऐसा दुःख किसी को न हुआ होगा। देखो, यह महाबली गृध्रराज मेरे पिता का मित्र है। मेरे भाग्य के पलटा खाने से मारा हुआ यह भूमि पर पड़ा है।

इस प्रकार की बहुत सी बातें करके राघव ने पिता के स्नेह से, फिर जटायु का स्पर्श किया। उस गृध्रराज के पक्ष कट गये थे और सम्पूर्ण शरीर रुधिर से भीग गया था। उसको हाथ से छूकर रामचन्द्र पूछने लगे कि वह प्राण के तुल्य मैथिली कहाँ गई? यह कह कर वे भूमि पर गिर पड़े।

---

## ६८वाँ सर्ग

### रामचन्द्र के द्वारा जटायु की अन्त्येष्टि-क्रिया

रामचन्द्र ने गृध्रराज को उस भयंकर राक्षस के हाथ से मारा गया देखकर कहा—हे लक्ष्मण, देखो मेरे लिए प्रयत्न करनेवाले इस पक्षी को राक्षस ने मार डाला। अब यह प्राणों को छोड़ेगा। इस घड़ी इसके प्राण शरीर में खिन्न हो रहे हैं। स्वर भी धीमा हो गया है और यह व्याकुलता-पूर्वक देख रहा है। हे जटायु, यदि तुममें फिर बोलने की सामर्थ्य हो तो सीता का सन्देश और अपने वध का समाचार मुझसे कहो। आर्या सीता को रावण किस लिए ले गया? मैंने उसका क्या अपराध किया है, कि जिससे उसने मेरी प्यारी को हर लिया। हे पक्षि-श्रेष्ठ उस समय सीता का वह चन्द्र के तुल्य मनोहर मुख कैसा देख पड़ता था। सीता ने उस समय क्या कहा था। हे जटायो, वह राक्षस कैसा पराक्रमी है और कैसा रूप धारण करता है? उसका क्या काम है और उसका निवासस्थान कहाँ है? सब बातें मुझसे कहो।

रामचन्द्र का विलाप सुनकर जटायु व्याकुल वाणी से बोला—हे राघव, वह दुरात्मा रावण राक्षसों का राजा है। वायु और मेघ की घटा से संयुक्त बड़ी माया करके वह सीता को हर ले गया। उसने मेरे दोनों पक्ष काट डाले। सीता को लेकर वह दक्षिण दिशा को चला गया। हे रघुनन्दन, अब मेरे प्राणवायु रुकते हैं। मेरी दृष्टि घूम रही है। मैं इस समय वृक्षों को सुवर्णमय और खस-रूपी केशों से भूषित देख रहा हूँ। हे राघव, जिस मुहूर्त्त में रावण ने सीता को हरा था वह मुहूर्त्त ऐसा है कि स्वामी को उसका नष्ट-धन प्राप्त हो जाय। हे काकुत्स्थ, उसके हरण-काल में वृन्द नामक मूहूर्त्त था। परन्तु उसने इसकी परवा नहीं की। वंशी को पकड़े हुए मत्स्य की नाईं वह शीघ्र नष्ट हो जायगा। इसलिए जानकी के विषय में तुम कुछ सोच न करना। तुम शीघ्र अपने वैरी को मारकर सीता के सङ्ग विहार करोगे। इस प्रकार सावधानी से बातचीत करते करते उस गृध्र का मृत्युकाल आ गया। उसके मुख से मांस और रुधिर बहने लगा। तिस पर भी वह फिर बोला कि वह विश्रवा मुनि का पुत्र और कुवेर का भ्राता है। यह कहकर उस पक्षि-राज ने अपने प्राण त्याग दिये और इधर रामचन्द्र, हाथ जोड़े यह कह रहे थे कि कहो कहो और बात भी कहो। परन्तु उसी समय गृध्र के प्राण शरीर को छोड़ आकाश में उड़ गये। मरण होने पर उस पक्षी का मस्तक नीचे लटक पड़ा, पैर दोनों फैल गये और शरीर भूमि पर गिर पड़ा।

अब उसकी मृत्यु देख रामचन्द्र दीन होकर लक्ष्मण से बोले—देखो, इस पक्षी ने बहुत वर्षों तक राक्षसों की निवासभूमि जनस्थान में रहकर आज प्राण त्याग दिये। यह बहुत प्राचीन वृद्ध है और सदा जागता रहता था। यह कभी शिथिल या सुस्त नहीं हुआ। पर आज मारा गया और भूमि पर सो रहा है। हा! काल का उल्लंघन कोई नहीं कर सकता। हे लक्ष्मण, देखो यह

गृध्र मेरा बड़ा उपकारी था। सीता की रक्षा करने में बलवान् रावण के हाथ से इसकी मृत्यु हुई। देखो, इसने अपने पूर्व पुरुषों के गृध्रराज्य को छोड़ मेरे लिए अपने प्राणों का त्याग किया। हे सौमित्रे, सब जातियों और तिर्यग्योनिवालों में भी ऐसे साधु, धर्मचारी, शूर और शरणागत-वत्सल देख पड़ते हैं। हे सौम्य, सीता के हरण का क्लेश मुझे उतना दुःख नहीं देता जितना मेरे लिए मरे इस पक्षी का दुःख पीड़ा दे रहा है। जिस प्रकार राजा दशरथ मेरे पूजनीय और मान्य थे वैसा ही यह पक्षिराज भी है। इसलिए तुम लकड़ियाँ ले आओ। मैं अग्नि का मंथन करूँगा और इसका दाहकर्म करूँगा। इस पक्षियों के स्वामी को मैं यहीं भस्म करूँगा। फिर रामचन्द्र बोले कि हे महापराक्रमिन् गृध्रराज, मेरी आज्ञा से और मेरे हाथ का संस्कार पाकर तुम उन उत्तमोत्तम लोकों में जाओ जो यज्ञकारियों को, अग्निहोत्रियों को, संग्राम में संमुख युद्ध करनेवालों को अर्थात् पीठ न दिखलानेवालों को और भूमि दान करनेवालों को प्राप्त होते हैं। इसके पश्चात् श्रीरामचन्द्र ने चिता को प्रज्वलित कर उस पर गृध्रराज को भस्म कर दिया और अपने बन्धु की नाईं उसके लिए वे अत्यन्त दुःखित हुए। वे लक्ष्मण के साथ वन में गये। वहाँ रोही मृग को मारा। फिर उसके मांस के खण्ड खण्ड करके वहाँ पर हरी हरी घास बिछाई। उस पर गृध्रराज के लिए रामचन्द्र ने पिंड-दान किया। प्रेत मनुष्य की स्वर्ग-प्राप्ति के लिए ब्राह्मण लोग जिस मन्त्र को जपते हैं उसको रामचन्द्र ने जपा। इसके अनन्तर दोनों भाइयों ने गोदावरी के तट पर जाकर स्नान किया और गृध्र के नाम से तर्पण किया।

वह पक्षिराज संग्राम में दुष्कर कर्म करके मारा, गया था। वह महर्षियों की भाँति संस्कार पाकर, पवित्र गति को प्राप्त हुआ। अब दोनों भाई पक्षि-राज की जल-क्रिया कर के सीता के ढूँढ़ने के लिए वन में इन्द्र और उपेन्द्र के सदृश फिरने लगे।

---

## ६९वाँ सर्ग

### राक्षसी का विरूप करना और कबंध राक्षस से भेंट होना

दोनों भाई सीता को खोजते हुए पश्चिम दिशा में चले। वे धनुर्बाण लिये हुए थे। अब दक्षिण दिशा में जाकर पगडण्डी-रहित मार्ग पर पहुँचे। वह मार्ग लताओं के झुण्डों और वृक्षों से वेष्टित, चारों ओर से घिरा हुआ दुर्गम और भयंकर था। उस वन को वेग से लाँघ कर वे दक्षिण के मार्ग में एक भयंकर वन को भी पार कर गये। इस प्रकार, जनस्थान से तीन कोस पर जाकर, वे क्रौंच नामक दुर्गम अरण्य में गये। वह मेघ की घटा की नाईं गम्भीर था। वह चारों ओर से प्रहर्ष-युक्त, नाना वर्ण के सुन्दर पुष्पों, मृगों और पक्षियों से भरा हुआ था। राम-लक्ष्मण वहाँ इधर उधर सीता को खोजने लगे। कहीं कहीं वे ठहर भी जाते थे। इसके अनन्तर वे तीन कोस पूर्व की ओर चले। क्रौंचारण्य को समाप्त करके उन्होंने मतंगाश्रम वन को देखा। वह वन बड़ा घोर, भयंकर मृग और पक्षियों से भरा था; वह नाना प्रकार के वृक्षों से आच्छादित और दुर्गम वृक्षों से वेष्टित था। वहाँ इन दोनों भाइयों ने एक पर्वत की कन्दरा देखी। वह पाताल की नाईं गहरी थी। उसमें सदा अन्धकार रहता था। इसके पास इन्हें एक राक्षसी देख पड़ी। वह महाविशाल, विकरालमुखी और अल्प-जीवों के लिए भयंकर थी। उसका रूप घिनौना था। वह

तीक्ष्णरूपा, लंबे पेटवाली, पैने दाँतोंवाली, कराल और रूखी त्वचावाली, राक्षसी बड़े बड़े मृगों को खाती थी। उस विकटरूपा के सिर के बाल खुले हुए थे। उसने इन दोनों भाइयों को देखा। आगे आगे लक्ष्मण को चलते देख उसने कहा, "आओ हम दोनों विहार करें।" यह कहकर वह लक्ष्मण से लिपट गई और बोली कि मेरा नाम अयोमुखी है; तुम हमारे प्रिय हो; बड़े भाग्य से तुम मुझे मिले हो। हे नाथ, दुर्गम पर्वतों में और नदियों के तटों पर तुम बहुत दिन तक मेरे साथ विहार करना। यह सुनकर लक्ष्मण अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उन्होंने खड्ग निकाल कर उसके कान, नाक और स्तनों को काट लिया। इस प्रकार विरूप होने से वह राक्षसी बड़ा भयंकर नाद करके उसी ओर भाग गई जिस मार्ग से आई थी। उसके जाने पर दोनों भाई वेग से बड़े दुर्गम वन में गये। लक्ष्मण महातेजस्वी, सत्यवान्, शीलवान् और पवित्र थे। उन्होंने हाथ जोड़ कर भाई से कहा—हे आर्य, मेरा बाहु अत्यन्त फरक रहा है और मन उद्विग्न सा होता है। मुझे प्रायः अशुभ कारण देख पड़ते हैं। सो आप मेरे कहने से सावधान हो जाइए। ये सब दुर्निमित्त मुझको भय की सूचना दे रहे हैं। देखिए, यह परम दारुण वंजुलक नामी पक्षी नाद कर रहा है। इससे युद्ध में हमारी जीत सूचित होती है। इस प्रकार वे परस्पर बातचीत करते और सीता को खोजते ही थे कि बड़ा भारी शब्द सुनने में आया। उससे ऐसा जान पड़ा कि मानो यह वन भग्न किया जाता है। वायु से वह वन मानो चारों ओर से भर गया। उस शब्द ने सम्पूर्ण वन को नादित कर दिया। उस शब्द के कारण को राम-लक्ष्मण ढूँढ़ते ही थे कि इतने में एक महाशरीरधारी और विस्तीर्ण वक्षःस्थलवाला राक्षस समीप ही देख पड़ा। वह बड़ा लम्बा-चौड़ा था, पर उसके मस्तक न था। वह कबन्ध था। पेट में उसका मुख था। उसके रोएँ पैने न थे। वह पर्वत की नाईं ऊँचा, नीले मेघ के सदृश काला, भयंकर और मेघ के तुल्य गरजता था। उसका सिर उरःस्थल में संलग्न था और माथे में उसके एक ही सुन्दर विशाल नेत्र था। वह नेत्र अग्नि ज्वाला के सदृश दीप्तिमान्, भयंकर, आयत और मटमैले रंग के अक्षि-लोमों से युक्त था। बड़े बड़े दाँतों के कारण उसका मुँह बड़ा भयावना था। वह ओठों को चाटता और बड़े बड़े भालू, सिंह, मृग और पक्षियों को भक्षण करता था। उसकी बड़ी बड़ी घोर भुजाएँ योजन भर विस्तीर्ण थीं। उनको फैला कर वह नाना भालुओं, पक्षियों और मृगों को खींचता और मार्ग को रोके हुए पड़ा था। इन दोनों भाइयों को वह कबन्ध नामक राक्षस कोस भर से देख पड़ा। पास पहुँचने भी न पाये थे कि उसने भुजा पसार कर इन दोनों को बल से दबा कर पकड़ लिया। ये दोनों महाभुज और धनुर्धर थे। इन तेजस्वियों के पास खड्ग भी थे। फिर भी ये उस राक्षस के वश में पड़ गये। रामचन्द्र तो अपनी शूरता और धीरता से दुखी न हुए परन्तु लक्ष्मण, बाल्यावस्था के कारण, कुछ अधैर्य्य से होकर घबरा उठे। उन्होंने दुखी होकर राम-चन्द्र से कहा—हे वीर, देखो मैं तो इस राक्षस के पञ्जे में पड़ गया। इस राक्षस के लिए मैं बलिदान होता हूँ। अब अपने को छुड़ा कर, आप भागो। मुझे निश्चय है कि आपको शीघ्र ही वैदेही मिल जायगी। हे काकुत्स्थ, आप पितृ-सम्बन्धी राज्य पाकर मुझे भूल मत जाना; मेरा स्मरण सदा करना। लक्ष्मण का यह वचन सुनकर रामचन्द्र बोले—हे वीर, क्यों वृथा डरते हो। तुम जैसे वीर को दुःख करना उचित नहीं। इतने में वह राक्षस इन दोनों से बोला कि तुम कौन

हो ? वृषभ की तरह तुम्हारे कन्धे हैं। खड्ग और धनुष को तुम धारण किये हो। इस भयंकर स्थान में आकर भाग्य से मुझे दिखाई पड़े हो। अपना काम कहो ? मैं तो इस समय भूख से पीड़ित हो रहा हूँ इसलिए तुम दोनों का जीवन दुर्लभ है। उस दुरात्मा का ऐसा वचन सनकर रामचन्द्र ने उदासीनता के साथ लक्ष्मण से कहा—हे सत्यपराक्रमी, देखो कष्ट से भी बढ़कर यह दारुण कष्ट तो मिला, पर सीता न मिली। हम दोनों को अब यह प्राणान्त दुःख प्राप्त हुआ। हे लक्ष्मण, सब प्राणियों पर काल बड़ा बलवान् है। देखो, हम दोनों भाई कैसे दुःख से मोहित हो रहे हैं। जीवों के विषय में कुछ भी करते दैव को विलम्ब नहीं लगता। शूर, बलवान् और शस्त्र-विद्या में निपुण लोग भी रण में, काल के वश होकर, दुःख भोगते हैं और बालू के सेतु की तरह नष्ट तक हो जाते हैं। सत्यपराक्रमी दृढ़ रामचन्द्र ने, इस प्रकार लक्ष्मण की ओर देखकर, अपनी बुद्धि को स्थिर किया।

——

## ७०वाँ सर्ग

### कबन्ध की भुजाओं का काटा जाना और उसका प्रीतिपूर्वक बोलना

जब कबन्ध को मालूम हुआ कि ये दोनों मेरी भुजाओं के बन्धन में आ गये तब वह बोला कि हे क्षत्रियश्रेष्ठ, मुझे देखकर तुम दोनों खड़े क्या हो ! मैं भूखा हूँ, मेरे भोजन के लिए दैव ने तुम दोनों को मेरे पास पहुँचा दिया है। यह सुनकर पराक्रम करने का निश्चय करके लक्ष्मण समयानुसार वचन बोले—देखो, हमको यह राक्षसाधम खाना चाहता है। इसलिए हम दोनों भाई इसकी विशाल भुजाओं को काट डालें। क्योंकि यह विशाल शरीरवाला भयङ्कर राक्षस अपनी भुजाओं के पराक्रम से, इस लोक को जीतकर अब हम लोगों को मारना चाहता है। राजन्, पराक्रमहीन प्राणियों का वध करना राजा के लिए निन्दित है जैसे यज्ञ के पशुओं का वध प्रशस्त नहीं। इसलिए इसकी भुजाएँ ही काट डालनी चाहिएँ। इनकी यह बातचीत सुनकर वह राक्षस क्रुद्ध हो, मुँह फैलाकर, इनको भक्षण करने के लिए तैयार हुआ। तब ये दोनों भाई खड्ग निकालकर कन्धे से उसकी दोनों भुजाएँ काटने लगे। रामचन्द्र ने उसकी दाहिनी भुजा को और लक्ष्मण ने बाईं भुजा को काटकर उड़ा दिया। तब तो वह बड़ा शब्द करता हुआ गिर पड़ा। उसके मेघ-तुल्य गर्जन से आकाश, भूमि और दिशाएँ गूँज उठीं। कटी हुई भुजाओं के स्थानों से रक्त की धारा बह निकली। अब वह रक्त से शराबोर हो गया। दीन होकर वह दोनों भाइयों से पूछने लगा कि तुम दोनों कौन हो ? लक्ष्मण ने उत्तर दिया कि हम लोग इक्ष्वाकु-वंशी हैं। ये मेरे बड़े भाई राम हैं और इन्हीं का छोटा भाई मैं लक्ष्मण हूँ। रामचन्द्र माता के द्वारा राज्य से च्युत होकर मेरे और अपनी भार्या के साथ वन में चले आये हैं। देव-तुल्य प्रभाववाले इन रामचन्द्र की भार्या को किसी राक्षस ने हर लिया है। सो हम दोनों उसी को खोजते-खोजते यहाँ तक आये हैं। अब बतलाओ, इस निर्जन वन में तुम कबन्ध के सदृश कौन हो ? तुम्हारा प्रदीप्त मुख छाती में क्यों है और तुम्हारी जङ्घाएँ क्या हुईं ?

यह प्रश्न सुनकर वह राक्षस प्रसन्न हुआ और इन्द्र के वचन का स्मरण करके बोला—हे नरश्रेष्ठ, तुम्हारा स्वागत हो। बड़े आनन्द की बात है कि तुमको मैं देखता हूँ। बहुत अच्छा हुआ कि मेरी भुजाओं को

तुमने कन्धे से काट डाला। अपनी अनम्रता से मुझे जिस प्रकार यह कुरूप प्राप्त हुआ सो सुनो।

——

## ७१वाँ सर्ग

### कबन्ध का अपने कुरूप का हेतु कहना और अपने शरीर को भस्म करने के लिए राम से प्रार्थना करना

'हे महाबाहो रामचन्द्र! सूर्य, इन्द्र और चन्द्र का रूप जैसा सुन्दर है वैसा ही पहले मेरा रूप भी तीनों लोकों में विख्यात था। मैं महाबली और पराक्रमी था। लोगों के त्रास देने के लिए म यह भयङ्कर रूप बनाकर इधर-उधर के वनवासी ऋषियों को सताने लगा। कुछ काल के अनन्तर स्थूलशिरा नामक महर्षि को मैंने अपने अविनय के द्वारा कुपित किया। जिस समय वे ऋषि कुछ वन के फल-फूल इत्यादि ले रहे थे उस समय मैंने इस रूप से उनको बड़ा दुःख दिया। इससे वे मेरी ओर देखकर बोले कि तेरा इसी प्रकार का घातक और निन्दित रूप बना रहे। उनका यह शाप सुनकर मैंने उनको प्रसन्न किया और शाप के अन्त के लिए उनसे प्रार्थना की। तब ऋषि बोले कि जब रामचन्द्र तेरी भुजाओं को काटेंगे तभी तुझे अपना पूर्वरूप प्राप्त होगा। हे लक्ष्मण, मैं दनु का पुत्र हूँ। यह विकराल रूप तो मैंने संग्राम में इन्द्र के शाप से पाया है। वह इस तरह हुआ कि ऋषि के शाप के अनन्तर मैंने उग्र तपस्या से ब्रह्मा को प्रसन्न किया। वरदान में उनसे दीर्घ आयुष्य पाकर मैं गर्वयुक्त हो गया। मैंने सोचा कि दीर्घ आयु तो मुझे मिल ही गई, अब इन्द्र हमारा क्या कर सकते हैं। यह सोचकर रण में मैंने इन्द्र को दिक किया परन्तु उन्होंने मुझे वज्र से ऐसा मारा कि मेरी जङ्घाएँ और मस्तक सब शरीर में घुस गये; कुशल इतनी हुई कि मेरे प्रार्थना करने पर भी उन्होंने मेरे प्राण नहीं लिए। उन्होंने कहा कि ब्रह्मा का वह वचन सत्य ही रहे। तब मैंने इन्द्र से कहा कि देखिए जङ्घा, शिर और मुख तो आपने वज्र से मारकर मेरे शरीर में घुसेड़ दिये, अब मैं आहार के बिना बहुत दिन तक कैसे जीता रहूँगा? यह सुनकर इन्द्र ने मेरी भुजाएँ योजन भर की लम्बी बना दीं और मेरे मुख को पेट में लगा दिया। दाँत भी बहुत पैने कर दिये। तब से मैं अपनी लम्बी-लम्बी भुजाओं से वन के सिंह, व्याघ्र, तेंदुए और हरिनों को खींच-खींचकर खाता हूँ। इन्द्र ने मुझसे यह भी कहा था कि लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र जब तुम्हारी भुजाओं को काटेंगे तब तुम स्वर्ग को प्राप्त होगे। हे राजश्रेष्ठ, इस वन में मुझे जो जन्तु मिल जाता था उसी को पकड़ना मैं अच्छा समझता था। मैं अपने मन में यही सोचता था कि अवश्य कभी न कभी रामचन्द्र भी मेरे इस बाहु-बन्धन में फँसेंगे और मेरी इन भुजाओं को काटेंगे। इस प्रकार मैं इस देह को त्यागने का प्रयत्न कर रहा था। सो वह राम आप ही हैं। क्योंकि मुझे मारने में और कोई समर्थ ही नहीं। महर्षि ही ने मुझसे यह कहा था। हे नरर्षभ, आप मेरा अग्नि-संस्कार कीजिए। तब मैं वचन द्वारा आपकी सहायता करूँगा और आपको मित्र का पता बता दूँगा।

कबन्ध राक्षस का यह वचन सुनकर रामचन्द्र बोले कि रावण मेरी भार्या को ले गया है। हममें से कोई उस समय आश्रम में नहीं था। मैं उसका नाम तो जानता हूँ परन्तु न उसके रूप को जानता, न उसके निवास-स्थान को और न उसका कुछ प्रभाव ही। देखो, हम बहुत शोकार्त्त और अनाथ होकर इधर-उधर दौड़ रहे

हैं। इसलिए दया करके तुम मेरा समुचित उपकार करो। हाथियों के तोड़े हुए सूखे-सूखे लक्कड़ लाकर हम बड़ा सा गड्ढा खोदते हैं, उसमें तुमको अभी जलाये देते है परन्तु यह तो बतलाओ कि सीता को कौन और कहाँ ले गया है। इससे मेरा बड़ा काम निकलेगा। यदि तुम ठीक-ठीक जानते हो तो मुझे उसका सन्देश दो।

राम का वचन सुनकर कबन्ध ने कहा—हे रामचन्द्र, मुझे दिव्य ज्ञान तो है नहीं और न मैं मैथिली को ही जानता हूँ, परन्तु जलने पर मुझे जब अपना रूप प्राप्त होगा तब मैं उस व्यक्ति को बतला दूँगा जो उस राक्षस को जानता है। मैं उसका नाम भी कह दूँगा। परन्तु हे प्रभो, बिना दाह के मेरी शक्ति नहीं कि मैं उसको जान सकूँ। जिसने तुम्हारी सीता को हरण किया है वह राक्षस बड़ा पराक्रमी है। जले बिना मैं उसके विषय में कुछ नहीं कह सकता। शाप-दोष से मेरा ज्ञान भ्रष्ट हो गया है। अपने ही कर्म से मुझे यह लोकनिन्दित रूप मिला है। हे रामचन्द्र, जब तक सूर्य अस्त नहीं होते तब तक तुम मुझे गड्ढे में डालकर जला दो। जब मैं तुम्हारे हाथ से विधिपूर्वक भस्म हो जाऊँगा तब उसको बतला दूँगा जो उस राक्षस को जानता है। हे राघव, तब तुम न्यायपूर्वक उसके साथ मैत्री करना। हे वीर, वही तुम्हारी सहायता करेगा। क्योंकि तीनों लोकों में ऐसा पदार्थ नहीं जिसको वह न जानता हो। किसी हेतु से पूर्वकाल में वह सब लोकों में घूम-फिर चुका है।

---

## ७२वाँ सर्ग

### दोनों भाइयों का कबन्ध को जलाना और सुग्रीव से मैत्री करने के लिए उसका उपदेश देना

कबन्ध का वचन सुनकर दोनों भाइयों ने पर्वत के बड़े गड्ढे में उसके शरीर को डालकर आग लगा दी। लक्ष्मण ने बड़े-बड़े कुन्दों को जलाकर उस चिता को चारों ओर से प्रदीप्त कर दिया। कबन्ध का शरीर बड़ा भारी घृतपिण्ड के सदृश था, वह मेद से भरा हुआ था। इससे उसको आग धीरे-धीरे जलाती थी। अब वह शीघ्र चिता को हिलाकर धूम-रहित अग्नि के तुल्य उठ खड़ा हुआ। वह दो निर्मल वस्त्रों को धारण किये और दिव्य माला पहने था। वह महाबली तेजयुक्त, हर्षित और सब अङ्गों में भूषण पहने था। वह ऐसे प्रकाशमान विमान पर चढ़ा जिसमें हंस जुते हुए थे। वह अपनी प्रभा से दसों दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ आकाश में स्थित होकर रामचन्द्र से बोला—हे राघव! सुनो, जिस प्रकार तुम सीता को पाओगे। संसार में छः युक्तियाँ (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय) हैं। इनके द्वारा लोग सब वस्तुओं का विचार करते और उन्हें प्राप्त करते है। जिसे दुर्दशा घेर लेती है वह दुर्दशा में जा पड़ता है। तुम दोनों भाई उसी दुर्दशा के परि-पाक को प्राप्त हो। इसी से यह स्त्री-हरण का दुःख तुमको हुआ है। इसलिए हे सुहृदों में श्रेष्ठ, तुम अवश्य उससे मित्रता करना। बिना मित्रता किये तुम्हारी कार्यसिद्धि किसी प्रकार न हो सकेगी। हे रामचन्द्र, सुनो। सुग्रीव नामक एक वानर है। इन्द्र

के पुत्र बाली ने क्रुद्ध होकर उसे घर से निकाल दिया है। ऋष्यमूक नाम का सुन्दर पर्वत पम्पासर तक शोभित है। उसी पर चार वानर के साथ सुग्रीव सदा रहता है। वह वानरेन्द्र बड़ा बलवान्, तेजस्वी, कान्तिमान्, सत्य-सन्ध, विनीत, धैर्यवान्, बुद्धिमान्, चतुर, दृढ़ और बड़ा पराक्रमी है। जेठे भाई बाली ने उसको राज्य के कारण घर से निकाल दिया है। सीता के खोजने में वह तुम्हारी सहायता करेगा, इसलिए तुम कुछ शोक मत करो। हे इक्ष्वाकुशार्दूल, जो भवितव्य है उसको मिथ्या करने की किसी में शक्ति नहीं। क्योंकि काल दुर्लङ्घ्य है। इसलिए तुम जाओ और सुग्रीव को शीघ्र अपना मित्र बनाओ। उस मैत्री में कुछ द्रोह न होने देने के लिए अग्नि को साक्षी कर लेना। तुम सुग्रीव का कभी अनादर न करना, क्योंकि वह वानरराज कृतज्ञ, कामरूप और वीर्यवान् है। वह इस समय सहाय चाहता है। उसके काम में सहायता देने की तुममें सामर्थ्य है। वह कृतार्थ हो या न हो, परन्तु तुम्हारा कार्य अवश्य करेगा। वह ऋक्षराज नामक वानर का, सूर्य का औरस पुत्र है। इस समय बाली से उसका बड़ा वैर है; शङ्कायुक्त मन किये हुए वह पम्पा के प्रदेश में घूमा करता है। तुम सब आयुधों को रखकर ऋष्यमूकवासी उस वानर से सत्य मैत्री करना, क्योंकि मनुष्याहारी राक्षसों के सम्पूर्ण स्थानों को वह अच्छी तरह जानता है। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसे वह न जानता हो। देखो, जहाँ तक सूर्य प्रकाश करते हैं वहाँ तक की नदियों, बड़े-बड़े पर्वतों, दुर्गम भूमियों और कन्दराओं को वह वानरों के साथ ढूँढ़ेगा और तुम्हारी पत्नी को प्राप्त करा देगा। तुम्हारे वियोग में शोक करती हुई सीता को खोजने के लिए वह बड़े-बड़े वानरों को चारों ओर भेजेगा और रावण के घर में से ढूँढ़ निकालेगा। हे रामचन्द्र, वह वानर-श्रेष्ठ ऐसा है कि सीता चाहे मेरुशृङ्ग पर गई हों वा पाताल में छिपी हों परन्तु वह राक्षसों को मारकर सीता को तुम्हारे पास ला देगा।

---

## ७३वाँ सर्ग

### कबन्ध के साथ वार्तालाप

इस प्रकार सीता के खोजने का उपाय बतलाकर कबन्ध फिर बोला कि हे रामचन्द्र, यह मार्ग आपके लिए मङ्गलकारक होगा। यहाँ पश्चिम दिशा की ओर ये फूले-फूले मनोहर वृक्ष देख पड़ते हैं। देखो जामुन, मेवा, कटहल, वट, पाकर, तेंदू, पीपल, कर्णिकार, आम, धव, नागकेसर, तिलक, करञ्ज, नील, अशोक, कदम, फूले-फूले कन्दइल, अरुस, अशोक, रक्तचन्दन और मन्दार के वृक्ष लगे हैं। तुम चाहो इन पर चढ़कर या बल से इनकी डार झुकाकर इनके अमृततुल्य फलों को खाना तब यात्रा करना। हे ककुत्स्थ, आगे जो वन मिलेगा वह नन्दन-वन के तुल्य और उत्तर कुरु की नाईं मनोहर है। उसके वृक्ष सदा फलते हैं और मधुररस बहाते हैं। चैत्ररथ वन की नाईं वहाँ सदा सब ऋतुएँ रहती हैं। वहाँ के वृक्ष सदा फलों के भार से झुके हुए और बड़ी शाखाओं से पर्वताकार मेघों के सदृश हैं। हे रामचन्द्र, इन पर चढ़कर या इनकी शाखाओं को नवाकर लक्ष्मण तुम्हें अमृत के तुल्य फल देंगे। इस प्रकार भ्रमण करते हुए पर्वत से पर्वत पर और एक वन से दूसरे वन में जाकर तुम पम्पा सरोवर पर पहुँचोगे। उस सरोवर में न कङ्कड़ है, और न सिवार। वह टूटा-फूटा भी नहीं। वह सुगम घाटों से शोभित, सुन्दर

वालुका से भूषित, और कमलों से अलङ्कृत है। वहाँ हंस, मण्डूक, क्रौञ्च और कुरर पक्षी मधुर स्वर से बोलते हैं। उसी पम्पा सरोवर के जल में वे पक्षी रहते हैं। वे मनुष्यों को देखकर डरते नहीं, क्योंकि वध शब्द का अर्थ ही वे नहीं जानते। हे रामचन्द्र, घृतपिण्ड के तुल्य उन मोटे-मोटे पक्षियों को तुम मारना। वहाँ की रोहित, चक्रतुण्ड और नलमीन नाम की मछलियाँ मोटी-मोटी हैं। उनमें काँटे बहुत हैं। उनकी त्वचा और पंख हटाकर और उन्हें भूनकर लक्ष्मण तुमको भक्ति-पूर्वक देंगे। उन्हें तुम खाना। उस पम्पा सरोवर पर पुष्पों की खासी शोभा है। वहाँ का जल कमलों से सुगन्धित, मङ्गलरूप, सुखकारक, रोग-रहित, रूपे और स्फटिक के तुल्य है। उसको कमल के पत्तों में लाकर लक्ष्मण तुमको पिलावेंगे। फिर सन्ध्या के समय लक्ष्मण तुम्हें पर्वत की कन्दराओं में सोनेवाले मोटे-मोटे वानरों को दिखलावेंगे। पानी पीने के लिए वे पम्पा के तीर पर आवेंगे। बैलों की तरह वे शब्द करते हैं। उन्हें तुम जलपान करते देखोगे। वहाँ के वृक्षों में बड़ी-बड़ी शाखाएँ हैं। उनमें पुष्पों की भरमार रहती है। उनको और पम्पा सरोवर के जल को देखने से तुम्हारा शोक घट जायगा। हे रामचन्द्र, वहाँ पर तिलक और करञ्ज के वृक्ष नीचे से ऊपर तक फूलों से लदे हैं। फूले-फूले कुई के और कमल के फूल लहलहा रहे हैं। हे राघव, उन पुष्पों को धारण करने-वाला वहाँ कोई नहीं। न तो वे कभी कुम्हलाते हैं और न झड़ते हैं। किसी समय वहाँ मतंग महर्षि के शिष्य रहते थे। वे बड़े जितेन्द्रिय थे। गुरु के लिए जब वे लोग वन्य पदार्थों को लेने जाते और बोझ के भार से थक जाते थे तब उनके शरीर से जो पसीने के बिन्दु गिरते थे वही, उनके तपोबल से, पुष्परूप हो जाते थे। उनके स्वदेशबिन्दुओं से उत्पन्न होने के कारण वे पुष्प नष्ट नहीं होते। हे काकुत्स्थ, वे ऋषि लोग तो चले गये परन्तु उनकी सेवा करनेवाली एक तपस्विनी उस आश्रम में अब तक है। वह चिरकाल तक जीनेवाली है। उसका नाम शवरी है। वह शवरी धर्म में तत्पर है। तुम देवतुल्य हो, तुमको सब लोग नमस्कार करते हैं। तुम्हें देखकर वह स्वर्ग लोक को चली जायगी। हे रामचन्द्र, पम्पा के पश्चिम तीर पर तुम उस अतुल और गुप्त स्थान को देखना। मतंग ऋषि के प्रभाव से वहाँ हस्ती गड़बड़ नहीं कर सकते। उस वन का नाम मतंगवन है। हे राम, वह देवताओं के नन्दनवन की भाँति सुशोभित और नाना पक्षियों से पूर्ण है। उस वन में तुम आनन्द से विहार करोगे। वहाँ सामने ही ऋष्यमूक पर्वत है जो पुष्प-वृक्षों से लदा, और बड़ा दुर्गम है। उसकी रक्षा बालसर्प करते हैं। उसको ब्रह्मा ने स्वयं बनाया है। हे रामचन्द्र, उस पर्वत पर जो कोई पुरुष सोवे और स्वप्न में कुछ धन पावे तो जागने पर भी उसको वही मिलता है। कदाचित् उस पर्वत पर कभी कोई दुष्टाचारी पापकर्मा पुरुष चढ़ता है तो राक्षस लोग उसको नींद में मारते हैं। हे रामचन्द्र, मतंगाश्रम-वासी छोटे हाथियों की चिग्घाड़ तुम्हें पम्पा पर सुन पड़ेगी। मद की रँगीली धाराओं से सींचे हुए गज कभी तो इकट्ठे घूमते हैं और कभी पृथक्-पृथक् छितराकर चरते हैं। उनका रंग मेघ के तुल्य है। वे बड़े वेगवान् हैं। पम्पा का विमल, मनोहर, सुन्दर सुखस्पर्श और गन्ध से युक्त जल पीकर वे वन में घूमा करते हैं। हे राघव! भालू, व्याघ्र और नीले कोमल बालोंवाले रुरु नामक मृगों को—जो मनुष्य को देखकर भागते हैं—जब तुम देखोगे तब तुम्हारा दुःख दूर हो जायगा। वे मृग किसी से छेड़-छाड़ नहीं करते। हे राम, उस पर्वत

पर एक बड़ी भारी गुफा है। वह शिला से ढकी रहती है। उसमें जाना बड़ा कठिन काम है। उसी गुफा के पूर्व-द्वार पर एक बड़ा भारी सरोवर है। उसमें शीतल जल भरा रहता है। वहाँ बहुत से मूल-फल लगे हैं। वह स्थान रमणीय और नाना वृक्षों से सुशोभित है। उसी गुफा में वानरों के साथ सुग्रीव रहता है। कभी-कभी वह शिखर पर भी जा बैठता है।

रामचन्द्र को इस प्रकार सब बतलाकर पराक्रमी कबन्ध आकाश में शोभित हुआ। वह सूर्य के तुल्य कान्तिमान् था और माला पहने था। तब रामचन्द्र ने कहा कि अब तुम जाओ। इसके पश्चात् दोनों भाई आगे को चले और कबन्ध भी "जाइए, और कार्य की सिद्धि कीजिए" यह कहकर स्वर्ग को चला गया।

इस प्रकार कबन्ध को उसका रूप मिल गया। वह रामचन्द्र को मार्ग बतलाकर और मैत्री करने की सलाह देकर आकाश-मार्ग से चला गया।

---

## ७४वाँ सर्ग

### शबरी के साथ रामचन्द्र की बातचीत

कबन्ध के बचन के अनुसार अब वे दोनों भाई पश्चिम दिशा की ओर वन में चले। मार्ग में पहाड़ों पर मधु के तुल्य मीठे फल-पुष्पवाले अनेक प्रकार के वृक्षों को देखते हुए वे सुग्रीव से मिलने की आशा से चले जाते थे। चलते-चलते एक पर्वत पर ठहरकर फिर वे पम्पा के पश्चिम तीर पर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने शबरी का रमणीय आश्रम देखा। वह आश्रम बहुत से वृक्षों से घिरा हुआ था। उसको देखते हुए वे शबरी के पास गये। इन दोनों को देखकर वह सिद्धा उठ खड़ी हुई। उसने दोनों भाइयों के चरण छुए, फिर पाद्य और आचमनीय जल देकर उसने इनका आतिथ्य किया। अब रामचन्द्रजी उस तापसी से पूछने लगे कि हे तपस्विनि, अपनी तपस्या के विघ्नों को तुमने जीत लिया है न? तुम्हारी तपस्या की वृद्धि हो रही है न? तुमने क्रोध को तो जीत लिया है? तुम्हारा आहार तो नियत है न? तुम्हारे नियम सब सिद्ध हुए हैं न? तुम्हारे मन को सुख तो है? और तुम्हारी गुरु-शुश्रूषा सफल हो गई या नहीं?

वह सिद्धा तपस्विनी सिद्ध लोगों को भी मान्य थी। उसने कहा—हे रामचन्द्र, आज तुम्हारे दर्शन से मेरी तपस्या सिद्ध हो गई। आज मेरा जन्म सफल हुआ। आज मैंने गुरु लोगों की अच्छी भाँति पूजा की। मेरा तप भी आज सफल हुआ। मैं स्वर्ग को जाऊँगी। हे देवश्रेष्ठ रामचन्द्र, तुम्हारा पूजन करने से और तुम्हारी सुन्दर दृष्टि पड़ने से मैं पवित्र हो गई। अब मैं तुम्हारी कृपा से अक्षय लोकों को प्राप्त करूँगी। हे रामचन्द्र, जिन मुनियों की मैं सेवा किया करती थी वे दिव्य विमानों पर चढ़कर उसी समय स्वर्ग को चले गये जब तुम चित्रकूट में आये थे। जाते समय उन्होंने मुझसे कहा था कि जब रामचन्द्र तुम्हारे इस पवित्र आश्रम में आवें तब तुम उनका और लक्ष्मण का अतिथि-सत्कार करना; उनके दर्शन से तुम्हें श्रेष्ठ, और अक्षय लोक प्राप्त होंगे। हे पुरुषश्रेष्ठ, मैंने तुम्हारे लिए पम्पा-वन के नाना वन्य पदार्थ इकट्ठे कर रक्खे हैं। यह सुनकर रामचन्द्र ने उस ब्रह्मविद्या की अधिकारिणी शबरी के दिये पदार्थों को ले लिया। उससे रघुनन्दन ने कहा—हे तपोधने, मैंने कबन्ध के मुँह से तुम्हारे महात्मा ऋषियों के प्रभाव को अच्छी तरह सुना है। परन्तु यदि तुम्हारी इच्छा हो तो उन प्रभावों को मैं भी

प्रत्यक्ष देख लूँ। रामचन्द्र के मुँह से यह निकलते ही शबरी उन्हें वह वन दिखलाने लगी और बोली कि देखिए यह मृग और पक्षियों से भरा कृष्ण मेघ के तुल्य जो वन देख पड़ता है यही मतङ्गवन नाम से प्रसिद्ध है। यहीं पर वे महात्मा मेरे गुरु लोग मंत्रयुक्त होम करते थे। यहीं उन्होंने शरीर छोड़ा था। यह वेदी प्रत्यक्-स्थली नाम से प्रसिद्ध है। अपने बुढ़ापे के कारण वे यहाँ पर काँपते हुए हाथ से देवताओं को पुष्प चढ़ाते थे। हे रघूत्तम, उनके तपोबल से यह वेदी अब तक अपने प्रकाश से दिशाओं को प्रकाशित कर रही है। देखो, जब वे उपवास के श्रम से समुद्र तक नहीं पहुँच सके तब केवल उनके स्मरण करते ही ये सातों समुद्र यहाँ आ गये। उन्होंने स्नान करके अपने बल्कलों को जो सुखाया है सो देखो आज तक नहीं सूखे। देखिए, उन्होंने जो कमलों के पुष्पों से देवकार्य्य किये हैं, देवताओं को जो पुष्प चढ़ाये हैं वे आज तक ज्यों के त्यों सुन्दर बने हैं; कुम्हलाये भी नहीं। हे रघुनन्दन, अब आपने इस सम्पूर्ण वन को देख लिया और उनकी अद्भुत बातें भी सुन लीं। अब मैं आपकी आज्ञा से इस शरीर को छोड़कर स्वर्ग को जाना चाहती हूँ। वहाँ मैं उन महात्मा मुनियों से मिलूँगी जिनका यह आश्रम है और जिनकी मैं दासी हूँ।

उसका यह धर्मिष्ठ वचन सुनकर दोनों भाई अत्यन्त आनन्दित हुए। उन्होंने कहा कि यह अत्यन्त अद्भुत है। राम ने शबरी से कहा—भद्रे, मेरी पूजा हो गई। अब तुम सुख से जहाँ चाहो, जाओ। जटाधारिणी शबरी चीर-कृष्ण-मृगचर्म को धारण किये थी। राम का यह वचन सुनकर वह अग्नि में कूद पड़ी। उसमें से वह प्रज्वलित अग्नि के तुल्य रूप पाकर निकली और स्वर्ग को चलने लगी। उस समय वह दिव्य भूषण पहने दिव्य माला और चन्दन से सुगन्धित, और दिव्य वस्त्रों से शोभित अत्यन्त सुन्दर देख पड़ती थी। उस प्रदेश को वह ऐसा प्रकाशित कर रही थी जैसे बिजली अपनी चमक से भूमि को प्रकाशित करती है। ब्रह्मलोक में जहाँ वे महात्मा विहार करते थे वहीं शबरी भी अपने समाधिबल से जा पहुँची।

---

## ७५ वाँ सर्ग

### राम का पम्पा-तीर पर जाना

इस प्रकार शबरी के स्वर्ग जाने पर लक्ष्मण और रामचन्द्र कुछ सोचने लगे। उन महात्माओं के प्रभाव का चिन्तन कर राम ने लक्ष्मण से कहा—हे सौम्य, मैंने उन ऋषियों का यह आश्रम देखा। यहाँ अनेक आश्चर्य देख पड़ते हैं। देखो, यहाँ मृग, सिंह और नाना प्रकार के पक्षी कैसे विश्वस्त भाव से रहते हैं। मैंने उन मुनियों के सप्तसागर तीर्थ में स्नान और पितृ-तर्पण किया। अब हम लोगों का अमङ्गल नष्ट हुआ और कल्याण उपस्थित हो गया। इसलिए हे लक्ष्मण, इस समय मेरा मन हर्षित है। अब मेरे मन में मङ्गल उत्पन्न होगा। आओ, अब पम्पा सरोवर के तीर पर चलें। वहाँ ऋष्यमूक पर्वत पास ही देख पड़ेगा। सूर्य का पुत्र धर्मात्मा सुग्रीव वहीं रहता है। वह बाली के भय से, चार वानरों को साथ लिए, सदा चौकन्ना रहता है। अब उसकी भेंट के लिए मैं शीघ्रता करूँगा, क्योंकि सीता का पता लगाना उसी के अधीन है। यह सुनकर लक्ष्मण ने कहा—हाँ, वहाँ शीघ्र चलना चाहिए; मेरा भी मन जल्दी कर रहा है। अब दोनों भाई वहाँ से निकलकर पम्पा के तीर पर आये और उस सरोवर

को देखने लगे। उसमें नाना प्रकार के पुष्प थे उसके चारों ओर बहुत से वृक्ष लगे थे। कौयष्टि, अर्जुन, शतपत्र नामक एक प्रकार के कमल, बाँस के वृक्ष और, और भी अनेक प्रकार के वृक्ष वहाँ थे। इनसे वह वन शब्दयुक्त हो रहा था।

अनेक प्रकार के वृक्षों और सरोवरों को देखते हुए रामचन्द्र अत्यन्त काम से पीड़ित हो उस पम्पा सरोवर के तीर पर पहुँचे और मतङ्गसरोवर नामक जलाशय में प्रविष्ट हुए। उसमें बहुत से कमल खिले हुए हैं। चारों ओर तिलक, अशोक, नागकेसर, मौलसरी और लसोड़ों के वृक्ष लगे हैं। वह सरोवर उपवनों से वेष्टित, और कमलों से पूर्ण था। उसमें स्फाटिक के तुल्य जल भरा हुआ था। चिकनी बालुका से मनोहर, मत्स्य और कच्छपों से भरा, तीर के वृक्षों से ललित और लतारूप सखियों से वह वेष्टित था। किन्नर, नाग, गन्धर्व, यक्ष और राक्षस वहाँ रहते थे; नाना प्रकार के वृक्षों और लताओं से वह आच्छादित तथा सुन्दर शीतल जल से पूर्ण था। वह अनेक प्रकार के कमलों से लाल, कुई के फूलों से सफेद और एक प्रकार के कृष्णवर्ण कमलों से काले रङ्ग का था। ऐसा जान पड़ता था मानों हाथी की रङ्ग-बिरङ्गी झूल हो। नाना पुष्पों और पक्षियों से शोभित पम्पा को देखकर रामचन्द्र विलाप करने लगे। वह सरोवर तिलक, बीजपुर, बट, लोध, पुष्पित कंदइल, नागकेसर, मालती, कुन्दलता, भाण्डीरवट, बेंत, अशोक, छितिउन, केवड़ा, माधवीलता और अनेक वृक्षों से मनोहर तथा युवती की नाईं सुशोभित था। उसको देखकर रामचन्द्र बोले कि हे लक्ष्मण, इसी पम्पा के तीर पर ऋष्यमूक पर्वत है जहाँ सुग्रीव रहता है। तुम उसके पास जाओ। इन्होंने कहा--लक्ष्मण, भला कहो तो कि मेरे बिना सीता कैसे जी सकेगी? अब वे काम के बाणों से पीड़ित हो गये। सीता ही को सोचते और तरह-तरह के वृक्षोंवाले वनों को देखते हुए रामचन्द्र लक्ष्मण के साथ उस सरोवर के पास पहुँच गये।

अन्ववादीत्सुधास्वादु खरादिवधसंयुतम्।
अरण्यकाण्डं गोपालशर्म्मा रामकथामृतम् ॥*

* गोपालशर्मा ने अरण्यकाण्ड का हिन्दी-अनुवाद किया। इस काण्ड में रामकथारूपी अमृत भरा हुआ है। यह अमृत से भी अधिक स्वादिष्ट है। इसमें खरादि राक्षसों के वध की कथा है।

अरण्यकाण्ड समाप्त

श्रीरामचन्द्राय नमः

# श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

(हिन्दीभाषानुवाद)

## किष्किन्धाकाण्ड

श्लोकः

### भाषान्तरकार-कृत मङ्गलाचरण

श्रीमद्धर्मवपुर्जगत्स्थितिपरो बालेर्वधात् सौख्यदः
सुग्रीवस्य समानदुःखसुहृदो दीनार्त्तिनाशव्रतः ।
सीतान्वेषणतत्परैः कपिवरैरक्षोवधोत्साहिभि-
र्धन्वी भ्रातृयुतः परीत इह नः पायात् स रामो हरिः* ॥ १ ॥

अरल-छन्दः

लक्ष्मणमतिशुभलक्षणमतिकरुणाकरम् , विश्वजनीनसुचरितमहीशमिलाधरम् ।
रघुनन्दनहरिपादसदापरिचारकम्, सततं गोपालस्तं प्रणमति नतशिरसा सुररिपुमारकम्† ॥२॥

---

* भाई लक्ष्मण-समेत धनुर्धारी भगवान् रामचन्द्रजी हमारी रक्षा करें । उनका शरीर धर्म के ही लिए है, वे जगत् की स्थिति के कारण हैं । उन्होंने बाली को मारकर सुग्रीव को सुख दिया, दीनों के दुःख दूर करना ही उनका व्रत है और उनके चारों ओर ऐसे कपिवर बैठे हैं जो सीताजी की खोज में तत्पर और राक्षसों के मारने में परमोत्साही हैं ॥ १ ॥

†मैं गोपालशर्म्मा उन लक्ष्मणजी को मस्तक नवाकर प्रणाम करता हूँ जो देव-शत्रुओं के मारनेवाले और अत्यन्त शुभ लक्षणों से युक्त हैं । वे दया की खान हैं; उनके सुचरित सबके लिए कल्याणकारक हैं, वे शेषजी के अवतार हैं और भगवान् रामचन्द्रजी के चरणों के सदा सेवक हैं ॥ २ ॥

# पहला सर्ग

## रामचन्द्र का कामोन्मत्त होकर सीता के लिए विलाप करना

पम्पातट पर पहुँचने पर रामचन्द्रजी व्याकुल होकर विलाप करने लगे। काम से पीड़ित होकर वे लक्ष्मण से बोले—हे सौमित्रे, देखो इस पम्पा का जल पन्ने की तरह निर्मल चमक रहा है। इसमें नाना प्रकार के कमल खिले हुए हैं। चारों ओर वन के वृक्ष ऊँची-ऊँची शाखाओं से, शृङ्गयुक्त पर्वत की तरह, शोभित है। एक तो भरत के दुःख से दूसरे सीता के हरण से मुझको बड़ी पीड़ा हो रही है। तो भी यह पम्पासर बड़ा सुख दे रहा है। विचित्र वन, तरह-तरह के फूल, शीतल जल और कमलों से यह बड़ा आनन्द दे रहा है। देखो, यह पम्पा सर्प, अनेक प्रकार के मृग और पक्षियों से भरा है। यह नीले और पीले रङ्ग के तृणों से शोभित और अनेक प्रकार के पुष्पवाले वृक्षों से—जिनकी शोभा हाथी की रङ्ग-बिरङ्गी झूल की भाँति है—कैसी शोभा दे रहा है। देखो, इन वृक्षों के अग्र भाग पुष्पों के भार से समृद्ध हैं और ये चारों ओर से पुष्पित लताओं से वेष्टित हैं। इस पम्पा को ये कैसे शोभित कर रहे हैं। हे सौमित्रे, देखो इस वसन्त समय में उत्तम वायु बह रहा है। यह वसन्त-काल काम से भरा गर्वयुक्त के तुल्य जान पड़ता है। इस ऋतु में पुष्पों और फलों से वृक्ष भर गये हैं। यह कैसा सुखद है। हे लक्ष्मण, देखो ये वृक्ष, मेघ की तरह फूलों की वर्षा कर रहे हैं। शिलाओं पर के वृक्ष, वायु के वेग से कम्पित होकर, पृथ्वी पर फूल बरसा रहे हैं। हे सौम्य, कुछ पुष्प नीचे पड़े हैं, कुछ गिरने को हैं और कुछ वृक्ष ही में लगे हैं। इनके द्वारा यह वसन्त-वायु कैसा चारों ओर क्रीड़ा कर रहा है। यह वायु पुष्पों से लदी वृक्षों की शाखाओं को हिलाकर भौंरों के गुञ्जार-रूप गीतों को सुन रहा है अर्थात् भौंरे अपने गीत सुना रहे हैं। देखो, पर्वत की कन्दरा से निकलकर वायु, वृक्षों को मानो नचाता हुआ, इन कोयलों के मधुर शब्दों-द्वारा गान सा करता है। इसके चारों ओर हिलने से शाखाएँ परस्पर सट जाती हैं, इससे ये वृक्ष गुँथे से जान पड़ते हैं। यह वायु सुखस्पर्श, चन्दन के तुल्य शीतल और पवित्र गन्ध से भरा है। यह श्रम को दूर कर रहा है। इन मधुगन्ध-युक्त वनों में हवा के झोकों से हिलते हुए ये वृक्ष भौंरों के झनकार द्वारा मानो शब्द कर रहे हैं। इन पर्वतों के शृङ्गों पर जो पुष्पयुक्त महा वृक्ष लगे हैं उनसे ऐसा मालूम होता है मानो इनके मस्तक पर पगड़ी बँधी हो। देखो, इन वृक्षों की आगे की शाखाएँ फूलों से आच्छादित हो रही हैं। वायु लगने से ये चञ्चल हो रहे हैं। भौंरे इन पर मधुर गीत गा रहे हैं। हे लक्ष्मण, इन पुष्पित कर्णिकारों की ओर तो देखो। ऐसा प्रतीत होता है मानो सुवर्ण से भूषित और पीताम्बर पहिने मनुष्य खड़े हैं। हे सौमित्रे, यह वसन्त ऋतु नाना पक्षियों के शब्दों से नादित होकर सीता-वियोग के शोक को प्रदीप्त कर रहा है। काम-शोक से पीड़ित मुझे यह सन्ताप देता है। यह कोयल हर्ष से बोलती क्या है मुझे ललकार रही है। यह प्रसन्न जल-कुक्कुट, वन के रमणीय झरने पर बैठा, अपने शब्द से मुझे और भी शोकाकुल करेगा। काम-पीड़ित तो मैं यों ही हूँ। हे लक्ष्मण, आश्रम में मेरी प्रिया सीता जब इसका शब्द सुनती थी तब मुझे पुकारकर अत्यन्त आनन्दित होती थी। देखो, ये विचित्र पक्षी नाना शब्द करते हैं और वृक्षों, गुच्छों तथा लताओं पर चारों ओर से आकर बैठते हैं। इसके तीर पर भौंरों और अनेक

प्रकार के पक्षियों के जोड़े, बड़ी प्रसन्नता से, झुण्ड के झुण्ड विचरते हैं। देखो, इसके तट पर पक्षियों के झुण्ड के झुण्ड, दात्यूह पक्षी के रति शब्दों से और पुरुष-कोयल के स्वरों से, कैसा विहार कर रहे हैं। हे लक्ष्मण, पक्षियों के द्वारा ये वृक्ष शब्द कर रहे हैं इससे मेरा काम प्रदीप्त होता है। शब्द करते हुए भ्रमरों से भरा यह अशोक के पुष्पों का गुच्छा मुझे जलते अंगार की तरह जान पड़ता है। हे सौमित्रे, इस वसन्तरूप अग्नि की लाल-लाल पत्तेरूप ज्वाला उठ रही है, यह मुझे जला देगी। हे सौम्य, उस कमलनयनी, सुकेशी और कोमलवयनी के बिना देखे मुझे जीवन से कुछ प्रयोजन नहीं। हे दोषरहित, यह वसन्त-समय है। इसमें वन की शोभा हो रही है और चारों ओर से कोयल का शब्द आ रहा है। यह समय मेरी प्रिया के योग्य है। हे लक्ष्मण, देखो काम के खेद से उत्पन्न और वसन्त के गुणों से बढ़ा हुआ यह शोक-रूप अग्नि मुझे शीघ्र ही जला देगा। अब मैं सीता को तो नहीं, पर इन मनोहर वृक्षों को देख रहा हूँ इसलिए यह काम बढ़ेगा। हे सौमित्रे, वैदेही का यहाँ न होना मेरे शोक को दूना कर रहा है। हे सौम्य, मैं चिन्ताकुल और शोक-पूर्ण हूँ, मुझे वह मृगनयनी और यह स्वेद-संसर्ग-दूषक वसन्त सन्ताप दे रहा है। यह चैती हवा भी मुझे पीड़ा देती है। देखो, जहाँ-तहाँ ये नाचते हुए मोर देख पड़ते हैं। इनके वायु से उड़ाये पंख ऐसे लगते हैं जैसे स्फटिक मणि के झरोखे हों। ये मोरिनियों से घिरे हुए मदमत्त मोर मेरे काम को बढ़ा रहे हैं। हे लक्ष्मण, देखो पर्वत की चोटी पर इस मोर को नाचते देखकर यह काम से पीड़ित मोरिनी अपने पति के समीप कैसी नाच रही है। यह मोर भी, अपनी प्यारी को नाचते देख, दोनों पंखों को फैलाकर अपने मनोहर शब्दों से मानो मेरा उपहास करता हुआ उसकी ओर जा रहा है। इस मोर की प्रिया को राक्षस नहीं हर ले गया, इसी से यह अपनी कान्ता के साथ इन रमणीय वनों में नाचता है। हे लक्ष्मण, इस चैत्र मास में सीता के बिना मेरा रहना दुःसह है। हे लक्ष्मण, देखो इन पक्षियों में भी कैसा प्रेमराग है कि अब तक यह मोरिनी काम से अपने पति की सेवा कर रही है। विशालाक्षी जानकी को यदि राक्षस ले न गया होता तो वह भी काम से विलास-पूर्वक मेरा अनुसरण करती। देखो लक्ष्मण, इस वसन्त में पुष्प-भारसमृद्ध वन के ये वृक्षों के पुष्प मेरे लिए निष्फल हैं। अत्यन्त शोभा से युक्त ये पुष्प भ्रमरों के झुण्ड-सहित निष्फल हो पृथ्वी पर गिरे जाते हैं। देखो, ये झुण्ड के झुण्ड पक्षी हर्ष से मधुर शब्द क्या करते हैं मानो परस्पर एक दूसरे को ललकारते हैं। ये मेरे काम की उन्मादावस्था को बढ़ा रहे हैं। जहाँ मेरी प्रिया होगी वहाँ भी यदि यह वसन्त ऋतु होगा तो वह भी परवश में पड़ी मेरी ही तरह सोचती होगी। मैं जानता हूँ कि वहाँ पर यद्यपि वसन्त ऋतु का नाम भी न होगा तथापि वह कमलाक्षी मेरे बिना वहाँ अपना समय कैसे बिताती होगी। अथवा, कदाचित्, वहाँ भी वसन्त हो; परन्तु वह बेचारी पराधीनता में पड़ी क्या कर सकेगी। हा! मेरी प्यारी सीता श्यामा, कमलनयनी और मधुर बोलनेवाली है। इस वसन्त में वह अपने प्राण त्याग देगी। इस बात का तो मुझे निश्चय है कि मेरे विरह से सीता कभी जी न सकेगी। क्योंकि सीता का अन्तः-करण मुझमें स्थापित है और उसी प्रकार मेरा अन्तः-करण सीता में स्थापित है। यह पुष्पगन्धवाही शीतल और सुख-स्पर्श वायु इस समय मुझे अग्नि-तुल्य जान पड़ता है। देखो, जिस वायु को मैं सीता के साथ अत्यन्त सुखकारक मानता था वही वायु इस समय

मुझे शोक-पीड़ित कर रहा है। हे लक्ष्मण, देखो इस समय यह कौवा वृक्ष पर बैठा बड़े हर्ष से शब्द करता है, पर जब सीता थी तब आकाश में उड़ते-उड़ते बोलता था। मैं जानता हूँ कि यह पक्षी मुझे सीता का सन्देश दे रहा है, इसलिए यह मुझे सीता के पास पहुँचावेगा। देखो, लक्ष्मण, इन पुष्पित शाखाओं पर बैठे पक्षियों का नाद काम-मद को कैसा बढ़ा रहा है। देखो, यह भौंरा पवन से हिलाई हुई इस तिलक-वृक्ष की मञ्जरी पर कैसा शीघ्र दौड़कर जाता है जैसे कोई अपनी मदमत्त प्यारी के पास जाय। देखो, यह अशोक वायु से हिलाये गये अपने फूलों के गुच्छों से कामियों के शोक को अत्यन्त बढ़ाता है। यह इस समय मुझे धमकाता सा है। हे लक्ष्मण, देखो ये बौरे हुए आम ऐसे देख पड़ते हैं जैसे अंगराग को लगाकर कामोन्मत्त मनुष्य हों। हे सौमित्रे, पम्पा के इन वनों में किन्नर लोग विहार कर रहे हैं। इस समय जल में ये सुगंधयुक्त कमल तरुण सूर्य की भाँति शोभित हो रहे हैं। देखो, इस पम्पा में सुन्दर जल, नाना प्रकार के कमल, हंस, कारण्डव पक्षी और सुगन्धयुक्त पुष्प हैं। इसमें चक्रवाक नित्य रहते हैं। यहाँ वन में कैसे-कैसे विचित्र स्थान देख पड़ते हैं। इस पम्पा में जो हाथियों और मृगों के झुण्ड पानी पीने आते हैं, वे कैसी शोभा देते हैं। हे लक्ष्मण! देखो, वायु-वेग से इस जल की तरंगों की टक्करों से ये कमल कैसे भले मालूम देते हैं। हा! उस कमलनयनी की सदा कमलों पर प्रीति रहती है। इस समय उसे न देखने के कारण मुझे अपने जीवन में रुचि नहीं है। अहो काम की कुटिलता को तो देखो कि उस मधुर-भाषिणी दुर्लभ प्यारी का स्मरण करावेगा। हे लक्ष्मण, यदि पुष्पित वृक्षोंवाला यह वसन्त मेरा घात न करता तो मैं इस अभ्यागत काम को धारण कर सकता। देखो, सीता के साथ जो पदार्थ मुझे भले लगते थे वे उसके बिना फीके जान पड़ते हैं। हे लक्ष्मण, मेरी दृष्टि इन कमलपुष्पों के पत्तों का आदर करती है क्योंकि ये ठीक सीता के नेत्रों के कोयों के सदृश देख पड़ते हैं। कमलों के केसर को छूता हुआ वृक्षों के बीच से जो यह मनोहर वायु निकला है वह सीता के निःश्वास की तरह बह रहा है। देखो, इस पम्पा के दक्षिण में गिरि-शिखर पर यह कर्णिकार की फूली हुई शाखाएँ कैसी शोभित हो रही हैं। यह पर्वतराज अनेक धातुओं से भूषित है। इसमें से वायु के वेग से कैसी विचित्र धूल उड़ रही है। हे लक्ष्मण, देखो इस पर्वत के शिखर चारों ओर से फूले हुए और पत्तों से हीन पलाश के वृक्षों के द्वारा जलते से जान पड़ते हैं। इस पम्पा के तीर पर इसी के जल से सिंचे हुए मधुर गन्धयुक्त ये जूही, बेला, कमल, कँदइल, केतकी, मेउड़ी, पीली जूही, बिजौरा नीबू, कुन्द के गुच्छे, चिलबिल, महुआ, बञ्जुल वा बेत, मौलसिरी, चम्पा, तिलक, नागकेसर, पद्मक, नील, अशोक, लोध, अकोल, कोरैया, चूर्णक नामक एक प्रकार का सेमर, मन्दार, आम, गुलाब, कचनार, मुचकुन्द, अर्जुन, केवड़ा, लसोड़ा, सिरस, सीसों, धव, सेमर, टेसू, लाल कोरैया, निमिश नामक वृक्ष, करंज, चन्दन, स्यन्दन और हिन्ताल आदि वृक्ष फूल रहे हैं। फूली-फूली लताएँ इनसे लिपटी हुई हैं। हे सौमित्रे, पम्पा के इन सुन्दर वृक्षों की ओर दृष्टि करो। वायु के वेग से इनकी शाखाएँ कैसी हिल रही हैं। सब लताएँ इस प्रकार इनका अनुसरण करती हैं जैसे मदमत्त सुन्दर स्त्रियाँ अपने-अपने पति का आलिंगन करती हैं। देखो, यह वायु इस वृक्ष से चलकर उस वृक्ष पर, इस शैल से चलकर उस शैल पर और इस वन से निकलकर उस वन में विहार करता हुआ अनेक रसों के आस्वाद से

अत्यन्त हर्षित की तरह बह रहा है। इन वृक्षों में, कोई तो फूलों से पूर्ण और मधुगन्धयुक्त हैं और कोई कलियों से लदे श्याम वर्ण की सी शोभा दे रहे हैं। देखो, यह मीठा, यह स्वादयुक्त और यह अच्छी भाँति फूला है, ऐसा अनुभव करता और अनुराग से भरा हुआ भौंरा फूलों ही में जाकर घुसता है और फिर वहाँ से निकलकर मधु के लोभ से, और वृक्ष पर जाता है। इस प्रकार यह मधु-लोभी मधुकर पम्पा के वृक्षों पर घूमा करता है। देखो, अपने आप गिरे हुए इन पुष्पों से यह भूमि कैसी बिछ गई है मानो सोने के लिए साथरी बिछाई है। पहाड़ी भूमि नाना प्रकार के पुष्पों से लाल और पीली देख पड़ती है मानो किसी ने गलीचा बिछा दिया हो। हे सौमित्रे, देखो हिम के अन्त—वसन्त—में पुष्पों की कैसी बहुलता देख पड़ती है मानो ये वृक्ष परस्पर होड़ लगाकर पुष्पों को उत्पन्न कर रहे हैं। देखो, ये वृक्ष भौंरों के शब्दों से मानो परस्पर ललकारते हुए, पुष्पों के गहने पहने, शोभा दे रहे हैं। देखो, यह जल-कुक्कुट इस सुन्दर जल में स्नान करके अपनी स्त्री के साथ विहार करता हुआ काम को प्रज्वलित कर रहा है। मन्दाकिनी का मनोहर रूप ठीक ही है, क्योंकि इसके मनोरम गुण तो जगत् में विख्यात हैं। हे रघूत्तम, वह पतिव्रता जो कहीं इस समय देख पड़ती और हमारे संग रहती तो मैं इन्द्रासन की भी इच्छा न करता, अयोध्या की तो बात ही क्या है। उसके साथ इस हरित तृणमय देश में जब मैं विहार करता तब मुझे न कोई चिन्ता होती और न अन्य पदार्थों की आकांक्षा। देखो, इस वन में अनेक पुष्पों से शोभित और हरे-हरे पत्तों से भूषित ये वृक्ष उस कान्ता के बिना मुझे चिन्तित करते हैं। हे सौमित्रे, देखो पम्पा में शीतल जल भरा है, कमल लगे हैं और चक्रवाक भी विचर रहे हैं। यह कारण्डवों से मनोहर और प्लव तथा क्रौञ्च पक्षियों से सम्पूर्ण है। इसके किनारे पर पक्षी बोलते हैं। पम्पा की शोभा तो देखने ही लायक है। ये प्रसन्न-चित्त नाना प्रकार के पक्षी मेरे काम को प्रकाशित करते हैं। ये उस श्यामा, चन्द्रमुखी, कमलनयनी का मुझे स्मरण कराते हैं। देखो, इन विचित्र शिखरों पर मृगियों के साथ मृग विहार कर रहे हैं और मैं वैदेही के बिना विरह-पीड़ा सहता हूँ। ये मत्त पक्षी इस शिखर पर सञ्चार कर रहे हैं, ये मेरे मन को दुःख देते हैं। अब मैं यदि उस कान्ता वैदेही को देखूँ तो मेरा कल्याण हो। वैदेही यदि मेरे साथ इस पम्पा के मनोहर वायु का सेवन करती तो मैं बच जाता। हे लक्ष्मण, वे धन्य हैं जो इस कमल-सुगन्धि से मिश्रित पम्पा के वायु का सेवन करते हैं। क्योंकि यह वायु शोक का नाशक है। हा! वह कमल-पत्राक्षी प्रिया मेरे बिना विवश होकर कैसे जीवित रहेगी! धर्मज्ञ सत्यवादी राजा जनक जब सभा में सीता का कुशल मुझसे पूछेंगे तब मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा! हे सौम्य, वनयात्रा के समय धर्म-मार्ग पर आरूढ़ हो, जो मेरे साथ आई वह प्रिया सीता कहाँ है? अब मैं उसके बिना दीन होकर कैसे जीवित रहूँ? राज्य से नष्ट और हत-बुद्धि होने पर जब मैं वन में आया तब वह मेरे पीछे वन में चली आई थी। हे लक्ष्मण, प्रिया का मुख सुन्दर, कमल-तुल्य नेत्रों से भूषित, सुगन्ध-युक्त और व्रण-रहित है। उसको देखे बिना मेरी मति नष्ट हुई जाती है। हे सौमित्रे, मैं सीता के वे अनुपम वचन कब सुनूँगा जो हास्ययुक्त, गुणों से भरे, मधुर और हित करनेवाले हैं? देखो, वह श्यामा वन के दुःखों में भी मुझे काम-पीड़ित देख, दुःखरहित की भाँति, हर्षित होकर मनोहर वचन ही बोलती थी। हे राजपुत्र, मैं जब अयोध्या में

जाऊँगा, और कौशल्या पूछेंगी कि मेरी पुत्रवधू कहाँ है, तब मैं क्या उत्तर दूँगा ! हे लक्ष्मण, तुम अयोध्या को लौट जाओ और भरत को देखो। मैं सीता के बिना न जीऊँगा।

रामचन्द्र को इस प्रकार अनाथ की तरह विलाप करते देख लक्ष्मण बोले—हे राम, तुम्हारा मंगल हो। तुम अपनी बुद्धि को स्थिर करो। हे पुरुषोत्तम, तुम जैसे निर्मल बुद्धिवालों की ऐसी मन्द बुद्धि नहीं होती। तुम इस वियोग-दुःख का स्मरण कर अपने प्रिय जन पर से स्नेह हटा लो। देखो, अत्यन्त स्नेह (तेल) के संसर्ग से गीली बत्ती भी जल जाती है। हे तात, रावण चाहे पाताल में अथवा उससे भी अधिक गुप्त स्थान में जा छिपे, परन्तु वह बच न सकेगा। पहले उस पापी राक्षस का पता लगाना चाहिए, तदनन्तर या तो वह सीता को आप ही छोड़ देगा अथवा मारा जायगा। यदि रावण सीता को न देगा तो वह सीता को लेकर दिति के गर्भ में क्यों न प्रविष्ट हो जाय, परन्तु मैं वहाँ भी उसको मारूँगा। इसलिए हे आर्य्य, आप स्वस्थ हूजिए; इस दीन बुद्धि को छोड़ दीजिए। क्योंकि खोई हुई वस्तु बिना यत्न किये नहीं मिल सकती। हे आर्य्य, उत्साह बड़ा बलवान् पदार्थ है। उत्साह से बढ़कर कोई दूसरा बल नहीं। उत्साही पुरुष को लोकों में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है। उत्साही पुरुष कभी कामों से घबराते नहीं, इसलिए हम केवल उत्साह ही के आश्रय से जानकी को प्राप्त करेंगे। आप इस काम-चेष्टा का त्याग कीजिए और शोक को पीठ पीछे रखिए। आप अपने को महात्मा और शास्त्रयुक्त बुद्धिमान् क्यों नहीं समझते।

लक्ष्मण ने जब इस प्रकार समझाया तब रामचन्द्र को धैर्य हुआ। लक्ष्मण के साथ आगे की यात्रा करने का उन्हें उत्साह हुआ। यद्यपि रामचन्द्र वन इत्यादि की शोभा देखकर उद्विग्न और दुःखित हो जाते थे परन्तु विचारबल से चले जाते थे। मत्त मतंगज के तुल्य लक्ष्मण चलते थे। वे धर्म से और बल से भी रामचन्द्र की रक्षा करते जाते थे। क्योंकि वे रामचन्द्र के मन के अभिप्राय को खूब जानते थे।

वानरों का राजा सुग्रीव बड़ा वेगवान् था। वह ऋष्यमूक पर रहता था। अत्यन्त अद्भुत रूपवाले इन दोनों भाइयों को देखकर वह बहुत ही डर गया। वहाँ पर वह घूमता ही था कि इतने में इनको देखकर बड़ा दुःखी हुआ। चिन्ता से व्याकुल होकर वह अत्यन्त भयभीत हो गया। सब के सब वानर इन महापराक्रमियों को देखकर बहुत ही डरे। उस पवित्र, सुखद, शरणदाता और सदा वानरों से सेवित आश्रम को छोड़कर वे भाग चले।

---

## दूसरा सर्ग

### दोनों भाइयों का समाचार जानने के लिए सुग्रीव का हनुमान् को भेजना

बड़े पराक्रमी इन दोनों भाइयों को आयुध धारण किये देखकर सुग्रीव शंकाग्रस्त और उद्विग्न हो गया। वह चारों दिशाओं को देखता हुआ एक स्थान पर नहीं ठहरता था। इनको महाबली देख उसका चित्त व्याकुल हो गया था। वह उन वानरों के साथ गौरव और लाघव का विचार करके बोला—भाइयो, इनको अवश्य बाली ने भेजा है। ये चीर-वस्त्र को धारण किये घूमते हुए यहाँ आ पहुँचे हैं।

यह सुनकर और उन महाधनुर्द्धरों को देखकर वे वानर उस स्थान से भागकर दूसरे शिखर पर चले गये। शीघ्रतापूर्वक वहाँ जाकर वे सुग्रीव को घेरकर बैठ गये और इकट्ठे होकर इस पर्वत से उस पर्वत पर जाते हुए अपने वेग से शिखरों को हिलाने लगे। इसके अनन्तर वे बड़े-बड़े वृक्षों की पुष्पित शाखाओं को तोड़-तोड़कर गिराने लगे और उस पर्वत के चारों ओर कूद-फाँदकर मृग, मार्जार और शार्दूलों को त्रास देने लगे। अब वे सब के सब सुग्रीव के समीप हाथ जोड़कर खड़े हुए। सुग्रीव को भयभीत देखकर हनुमान् बोले—राजन्, डर को तुम छोड़ दो, क्योंकि यह मलयाचल पर्वत है। यहाँ पर बाली कुछ भी नहीं कर सकता। फिर जिसके कारण तुम उद्विग्न होकर भागे हो उस क्रूरदर्शन, क्रूर-स्वभाववाले बाली को मैं यहाँ देखता भी नहीं। हे सौम्य! तुम्हारे दुष्टात्मा ज्येष्ठ भ्राता का यहाँ पर कुछ भी भय या धोखा नहीं है। अहो वानरराज! इस समय तुम्हारा ठीक वानरपन देख पड़ा तभी तो तुम ऐसे अधीर हो गये कि अपनी बुद्धि को भी स्थिर नहीं कर सकते। यह बात ठीक नहीं। तुम अपनी बुद्धि को स्थिर करके अपनी चेष्टा के द्वारा सब कार्य करो। सुनो, बुद्धिरहित राजा सब प्राणियों का शासन नहीं कर सकता।

यह सुनकर सुग्रीव बोले—हे हनुमन्! इन दोनों की लम्बी भुजाएँ और विशाल नेत्र हैं। इन्हें धनुष-बाण लिये देखकर किसको भय न होगा! ये तो देवपुत्र के तुल्य हैं। मैं तो इन पुरुषोत्तमों को देख यही शंका करता हूँ कि इन्हें अवश्य बाली ने भेजा है। क्योंकि राजाओं के अनेक मित्र होते हैं। इसलिए इस विषय में विश्वास करना ठीक नहीं। मनुष्य को उचित है कि कपटरूपधारी शत्रुओं को पहचाने, क्योंकि ये कपटरूप धरकर विश्वास करनेवालों पर स्वयं विश्वास तो करते नहीं किन्तु अवसर पाकर प्रहार करते हैं। बाली इन बातों में बड़ा निपुण है। एक बाली ही ऐसा नहीं, किन्तु जितने राजा हैं वे सभी बहुदर्शी होते हैं और शत्रु के मारने का उद्योग करते रहते हैं। इसलिए गुप्त दूतों के द्वारा इनके अभिप्राय का पता लगाना चाहिए। अतएव हे वानर! तुम अपना प्राकृत वेष बनाकर उनके पास जाओ और उनकी चेष्टाओं से, रूप से और बातचीत से उनके मन के भेद और अभिप्राय का पता लगा लाओ। यदि वे हर्षित देख पड़ें तो प्रशंसा और चेष्टा के द्वारा, विश्वास उत्पन्न कराके, उन धनुर्धारियों से यहाँ आने का कारण पूछना। यह काम मेरी ही ओर मुँह करके करना। यदि इनके मन में मैल होगा तो तुम्हारे आगे छिप न सकेगा और बात चीत तथा भाव-भङ्गी से इनका कपट भी खुल जायगा।

कपिराज की आज्ञा पाकर वानरश्रेष्ठ महानुभाव हनुमान् राम-लक्ष्मण के पास गये।

---

## तीसरा सर्ग

### दोनों भाइयों से हनुमान् की बातचीत

सुग्रीव की आज्ञा पाकर हनुमान् ऋष्यमूक पर्वत से कूदे और दोनों भाइयों के पास आ गये। उस समय अपने को छिपाने के लिए उन्होंने अपना वानर का रूप छोड़कर भिक्षुक का रूप धारण किया। राम-लक्ष्मण के पास आकर हनुमान् प्रणाम करके नम्रतापूर्वक मधुर वचन से उनकी प्रशंसा करने लगे। प्रशंसा और आदर करके उन्होंने कहा कि आप राजर्षि और देवता के तुल्य हैं; आप कठोरव्रतधारी और

ब्रह्मचारी हैं। आप इस देश में किस प्रकार पधारे हैं? मृग और वनचारी जीव आपको देखकर डरते हैं। पम्पा के किनारे के वृक्षों को और इस सरोवर को आप देखते तथा भूषित करते हैं। आप धैर्यवान्, सुवर्ण तुल्य कान्तिमान्, चीर-वस्त्रधारी और महाभुज हैं। यहाँ की वन्यप्रजा आपसे डरती है। सिंह की सी आपकी दृष्टि है। आप महाबली, पराक्रमी और इन्द्र के चाप के तुल्य चापों से शोभित हैं। आप शत्रुनाशक, श्रीमान्, रूपवान्, पुरुष-श्रेष्ठ, हस्तिशुण्ड के सदृश भुजाओंवाले और कान्तिमान् हैं। आप कौन हैं? देखो, आपकी प्रभा से यह पर्वत-श्रेष्ठ प्रकाशित हो गया। आप तो राज्य करने के योग्य और देवता के तुल्य है। इस स्थान में आप किस प्रकार चले आये? आपके नेत्र कमल के तुल्य हैं। आप जटामण्डल धारण करते हैं। आपका रूप परस्पर मिलता-जुलता है। आप तो देवलोक से यहाँ आये हुए जान पड़ते हैं। मानो अपनी ही इच्छा से चन्द्र, सूर्य पृथ्वी पर उतर आये हों। आपके ऊँचे वक्षःस्थल, और सिंह के से कंधे है। आप महान् उत्साही मदमत्त वृषभ के तुल्य हैं। आपकी भुजाएँ विशाल और गोल परिघ के तुल्य देख पड़ती हैं। ये भुजाएँ भूषण के योग्य होकर भी भूषित क्यों नहीं की गईं! मैं तो यह जानता हूँ कि आप दोनों समुद्र, वन, विन्ध्य और मेरु सहित सम्पूर्ण पृथ्वी की रक्षा करने में समर्थ हैं। आपके ये दोनों धनुष चिकने और सुवर्ण के जल से लेपित हैं। ये इन्द्र के वज्र के तुल्य शोभा देते हैं। आपके इन तरकसों में प्राणघाती, भयंकर और प्रज्वलित सर्पों के तुल्य पैने बाण भरे हैं। सुवर्ण-भूषित ये दोनों विशाल खड्ग केंचुली का परित्याग किये हुए साँपों की तरह चमक रहे हैं। मैं इस प्रकार पूछ रहा हूँ पर आप मुझसे बोलते क्यों नहीं? सुनिए, वानरों का राजा सुग्रीव धर्मात्मा और वीर है। वह भाई के द्वारा सताया जाकर पृथ्वी-तल में घूमता-फिरता है। उसी ने मुझे आपके पास भेजा है। मेरा नाम हनुमान् है। आपके साथ सुग्रीव मित्रता करना चाहता है। मैं उसी वानर-श्रेष्ठ का मन्त्री हूँ। मैं वायु का पुत्र हूँ और सुग्रीव की ही प्रीति के लिए मैंने भिक्षु का रूप धारण किया है। मैं ऋष्यमूक पर्वत से आया हूँ; क्योंकि मेरी गति इच्छाधीन है और मैं स्वेच्छाचारी हूँ अर्थात् जब जैसा रूप अथवा जैसी गति चाहता हू वैसी कर सकता हूँ।

हनुमान् के चुप हो जाने पर रामचन्द्र ने प्रसन्न-वदन होकर कहा—हे लक्ष्मण, जिन कपिराज महात्मा सुग्रीव को मैं चाहता हूँ उन्हीं के ये सचिव हैं। ये अपने आप आये हैं। हे लक्ष्मण, इनके वचन का उत्तर दो। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के बिना जाने कोई ऐसा भाषण नहीं कर सकता। इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरण बहुत प्रकार से सुना है अर्थात् उसका अध्ययन किया है। ये अनेक वाक्य बोले परन्तु कहीं भी इनके मुँह से अशुद्ध नहीं निकला। इनके बोलने में भी मुख पर, नेत्रों में, ललाट में और भौंहों में मैंने कोई दोष नहीं देखा। और किसी अंग में भी इनका दोष मैंने नहीं देखा। देखो, इनके वाक्य विस्तार, सन्देह, विलम्ब और व्यथा से हीन हैं; इनके हृदय-स्थित वाक्य कण्ठ में प्राप्त और मध्यम स्वरयुक्त हैं। ये संस्कार के क्रम से संयुक्त, अद्भुत, विलम्ब-रहित, कल्याणी और हृदय को प्रसन्न करनेवाली वाणी बोलते हैं। ऐसी विचित्र और हृदय, कण्ठ तथा सिर तीनों स्थानों से प्रकाश को पाती हुई वाणी किसके चित्त को प्रसन्न न करेगी? जो शत्रु खड्ग मारने पर उद्यत हो वह भी ऐसी वाणी सुनकर पिघल जायगा। हे लक्ष्मण, यदि इस प्रकार का

दूत राजा के पास न हो तो उसके कार्यों की सिद्धि किस प्रकार हो ! जिस राजा के पास इस प्रकार के गुणों से युक्त कार्यसाधक लोग हैं उसके सम्पूर्ण अर्थ उन दूतों के वाक्यों से सिद्ध होते हैं ।

अब लक्ष्मण हनुमान् से बोले—हे विद्वन्, हमको सुग्रीव के सम्पूर्ण गुण विदित हैं । हम दोनों भाई उन्हीं को खोज रहे हैं । हे हनुमन्, सुग्रीव की इच्छा से तुम जैसा हमसे कह रहे हो, वैसा ही हम करेंगे ।

लक्ष्मण की यह बात सुनकर पवनसुत हनुमान् अत्यन्त प्रसन्न हुए । जय की सिद्धि की आशा से वे उन दोनों से मैत्री के विषय में इच्छा करने लगे ।

---

## चौथा सर्ग

### हनुमान् से बातचीत और उनका राम-लक्ष्मण को पीठ पर चढ़ाकर सुग्रीव के पास जाना

लक्ष्मण का वचन सुनकर हनुमान् प्रसन्न हुए । उन्हें विश्वास हो गया कि अब सुग्रीव का मनोरथ सिद्ध हुआ । वे सोचने लगे कि सुग्रीव को फिर राज्य मिलेगा; क्योंकि ये भी कार्यार्थी हैं और यहाँ भी एक कार्य उपस्थित ही है । यह सोच-विचार कर हनुमान् ने रामचन्द्र से कहा—हे राम, पम्पा के वन से सुशोभित इस घोर जंगल में आप, भाई के साथ, किस लिए आये हैं ? यहाँ तो बहुत से साँप और मृग रहते हैं ।

लक्ष्मण बोले—हे हनुमान् ! सुनो । दशरथ नामक राजा बड़े तेजस्वी, धर्मवत्सल, धर्म से नित्य चारों वर्णों को पालनेवाले, शत्रुरहित और द्वेषहीन थे । वे प्राणियों में ब्रह्मा की तरह दूसरे प्रजा-पालक थे । उन्होंने बड़ी दक्षिणावाले अग्निष्टोम इत्यादि यज्ञ किये थे । ये उनके प्रथम पुत्र राम हैं । ये सब प्राणियों के शरणदाता और पिता की आज्ञा के पालक हैं । दशरथ के सब पुत्रों में ये अत्यन्त गुणी, राजलक्षण और राज्यसम्पत्ति से युक्त हैं, फिर भी राज्य से च्युत होकर मुझे साथ ले यहाँ वनवास करने आये हैं । इनकी भार्या सीता भी इनके साथ हो ली थी, जैसे दिन के अन्त में सूर्य के साथ सूर्य की प्रभा चलती है । मैं इनका छोटा भाई हूँ और इनके गुणों के वश में होकर इनकी सेवा करता हूँ । मेरा नाम लक्ष्मण है । हे महाभाग, ये रामचन्द्रजी ऐसे कृतज्ञ, बहुज्ञ, सुख भोगने के पात्र, पूज्य, सब प्राणियों के हितू, ऐश्वर्य से हीन और वनवास में तत्पर हैं । इनकी भार्या को कामरूपी राक्षस हर ले गया है । नहीं जान पड़ता कि वह राक्षस कौन है । हे हनुमान्, दनु नामक दिति का पुत्र शाप से राक्षस हो गया था । उसने सुग्रीव का नाम बतलाकर कहा था कि वह वानरराज सामर्थ्यवान् और महापराक्रमी है । तुम्हारी भार्या के चोर को वह मालूम कर लेगा । यह कहकर वह राक्षस स्वर्ग को चला गया । यह सब बात मैंने तुम्हें कह सुनाई । मैं और रामचन्द्र, दोनों, सुग्रीव की शरण आये हैं । देखो, इन लोकनाथ रामचन्द्र ने ब्राह्मणों को बहुत द्रव्य देकर बड़ा यश पाया था परन्तु इस समय सुग्रीव को ये अपना नाथ बनाना चाहते हैं । देखो, महाराज दशरथ लोगों के शरणदाता और धर्मवत्सल थे । सीता उनकी पुत्रवधू हैं । उन्हीं महाराज के पुत्र ने सुग्रीव को अपना शरण बनाया है । जो सब लोगों के शरणदाता और धर्मात्मा हैं वही मेरे गुरु श्रीराघव सुग्रीव की शरण में आये हैं । देखो, जिनकी प्रसन्नता से प्रजा प्रसन्न होती थी वे रामचन्द्र वानरेन्द्र सुग्रीव की प्रसन्नता चाहते हैं । जिन्होंने सर्वगुणयुक्त राजाओं का आदर किया था

उन्हीं राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र, जो तीनों लोकों में विख्यात हैं, वानरराज की शरण चाहते हैं। देखो, सुग्रीव को उचित है कि शरण में आये हुए शोक पीड़ित रामचन्द्र के ऊपर अपने सेनापतियों के साथ प्रसन्न हों।

यह कहते-कहते लक्ष्मण करुणायुक्त हो गये। उनकी आँखों से आँसू टपकने लगे। तब हनुमान् बोले—हे लक्ष्मण, इस प्रकार के बुद्धिमान्, क्रोधरहित और जितेन्द्रिय महापुरुष का दर्शन अवश्य वानरराज को करना चाहिए। ऐसे पुरुष बड़े भाग्य से देखने में आते हैं। देखो, सुग्रीव भी राज्य से च्युत, बाली से वैर करके, स्त्री-हरण से पीड़ित है। वह भाई से निकाला हुआ बहुत डर कर वन में रहता है। वह सुग्रीव हमारे साथ सीता के खोजने में आपकी सहायता करेगा।

हनुमान् इस प्रकार मधुर वाणी बोलकर फिर बोले कि आइए, अब सुग्रीव के पास चलें।

हनुमान् के इस वाक्य की प्रशंसा करके लक्ष्मण ने राम से कहा—राघव, इस पवनपुत्र के कहने से ज्ञात होता है कि सुग्रीव भी आप ही जैसा अर्थी है। इसलिए आप कृतकृत्य हैं। अर्थात् आपका कार्य्य सिद्ध होगा। हनुमान् प्रसन्न और हर्षित होकर यह बात कहता है। यह वीर झूठ न बोलेगा।

अब महाप्राज्ञ हनुमान् दोनों भाइयों को लेकर सुग्रीव के पास चलने को तैयार हुए। हनुमान् ने भिक्षु का रूप छोड़कर वानर का रूप धारण कर लिया। दोनों भाइयों को पीठ पर चढ़ाकर वे सुग्रीव के पास चल दिये। इस प्रकार महायशस्वी पवन के पुत्र हनुमान् कृतकृत्य के तुल्य और हर्षित हो, राम-लक्ष्मण-सहित, ऋष्यमूक पर्वत पर आये।

---



# पाँचवाँ सर्ग

## रामचन्द्र और सुग्रीव का अग्नि को साक्षी कर मैत्री करना

अब हनुमान् ऋष्यमूक पर्वत से मलय पर्वत पर जाकर सुग्रीव से दोनों भाइयों का समाचार कहने लगे—हे महाप्राज्ञ, ये दृढ़ और सत्यपराक्रमी श्रीरामचन्द्र अपने छोटे भाई लक्ष्मण के साथ आये हैं। ये रामचन्द्र इक्ष्वाकुवंशी महाराज दशरथ के पुत्र हैं। ये धर्म में विख्यात और पिता की आज्ञा के पालक हैं। जिन्होंने राजसूय और अश्वमेध यज्ञों के द्वारा अग्नि को तृप्त किया और बहुत सी दक्षिणा तथा लाखों गायें ब्राह्मणों को दीं, जिन्होंने तपस्या करके और सत्य वचन बोलते हुए पृथ्वी का पालन किया उन्हीं राजा दशरथ के पुत्र ये रामचन्द्र—रानी के वचन से—वन में आये हैं। वन में रहते हुए इन धर्मात्मा की स्त्री को रावण हर ले गया है। अब ये आपकी शरण में आये हैं। ये दोनों भाई आपके साथ मैत्री करना चाहते हैं इसलिए इनको ग्रहण करो और इनकी पूजा करो; क्योंकि ये पूजा के योग्य हैं।

यह सुनकर सुग्रीव ने अत्यन्त प्रसन्न हो रामचन्द्र से कहा—आप धर्मात्मा, तत्त्वी और दयालु हैं। इस वायु पुत्र ने आपके ठीक-ठीक गुण मुझे बताये हैं। प्रभो, मेरा यह सत्कार और उत्तम लाभ है कि आप मुझ वानर के साथ मैत्री करना चाहते हैं। मेरे साथ यदि आपको मैत्री करना स्वीकार है तो मैंने यह अपना हाथ पसारा है, इसको आप अपने हाथ से पकड़िए और निश्चल मर्य्यादा बाँधिए।

अब रामचन्द्र ने हाथ से सुग्रीव के हाथ को थाम लिया। फिर वे प्रसन्न होकर सुग्रीव से गले लगकर मिले।

इधर हनुमान् अपना भिक्षु-रूप तो पहले ही छोड़ चुके थे; अब दो लकड़ियों को मथकर उन्होंने आग बनाई और फूलों से उसकी पूजा की। हनुमान् ने दोनों मित्रों के बीच में उसको स्थापन किया। तब दोनों मित्र, अग्नि की प्रदक्षिणा करके, पक्के मित्र हुए। इसके अनन्तर राघव और सुग्रीव अत्यन्त प्रसन्न होकर परस्पर देखने लगे। परस्पर एक दूसरे का दर्शन करते हुए वे तृप्त न हुए। तब सुग्रीव बोले कि तुम मेरे हृदय के प्रिय मित्र हो। हम दोनों का सुख और दुःख अभिन्न है। इसके पश्चात् सुग्रीव पत्तों और पुष्पों से लदी साखू की एक शाखा तोड़कर और उसको बिछाकर उस पर रामचन्द्र के साथ बैठे। हनुमान् ने हर्षित होकर अत्यन्त पुष्पित चन्दन-वृक्ष की शाखा लक्ष्मण को बैठने के लिए दी। अब सुग्रीव ने प्रसन्न होकर रामचन्द्र से कहा—हे राघव, मेरी प्रतिष्ठा नष्ट हो गई है। भार्या के हरण से क्लेशित और भयभीत होकर मैं इस वन में इस दुर्ग का आश्रय करके रहता हूँ तथापि सदा भयभीत और व्याकुल बना रहता हूँ। हे मित्र, मेरे भाई बाली ने मेरी यह दशा की है। वह मुझसे वैर मानता है। हे महाभाग, मैं भयार्त्त हो रहा हूँ। आप मुझे बाली के भय से निर्भय कीजिए और ऐसा कीजिए कि दुबारा कोई खटका न हो।

यह सुनक तेजस्वी, धर्मज्ञ और धर्म-पालक श्रीरामचन्द्र मुसकुराकर बोले—हे महाकपे, मुझे यह बात विदित है कि मित्रता से उपकाररूप फल मिलता है। मैं तुम्हारी भार्या के हरण करनेवाले बाली को मारूँगा। मेरे ये बाण अनिष्फल, सूर्य-सदृश, प्रभायुक्त और पैने हैं। ये उस दुराचारी बाली के ऊपर वेग से गिरेंगे। ये मेरे बाण, कङ्कपक्ष से भूषित, इन्द्र के वज्र के तुल्य प्रभायुक्त, तीक्ष्णाग्र और सीधी पोर के हैं। इन्हें क्रुद्ध सर्प समझो। तुम देखना कि मेरे इन बाणों से मारा हुआ बाली पर्वत की तरह भूमि पर कैसे गिरता है। अपने लिए हितकर रामचन्द्र की इस बात को सुनकर सुग्रीव अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—हे नृसिंह वीर, ऐसा उपाय करो जिससे मुझे मेरी प्यारी स्त्री और राज्य मिल जाय। ऐसा करो जिससे वह मेरा वैरी बड़ा भाई मुझे फिर न मारे। सुग्रीव और राघव की मित्रता होने पर सीता, बाली और राक्षसों के—कमल, सुवर्ण और अग्नि के सदृश—वाम नेत्र एक ही साथ फड़कने लगे।

—

## छठा सर्ग

### सीता के गिराये हुए वस्त्र और भूषण देखकर रामचन्द्र का विलाप करना

अब सुग्रीव ने रामचन्द्र से कहा—हे राघव, तुम्हारे सेवक और मेरे प्रधान मन्त्री हनुमान् ने तुम्हारा सब वृत्तान्त मुझे सुना दिया है। इससे तुम्हारे वन में आने का कारण मालूम हो गया। वन में रहते हुए जब तुम्हारी भार्या को राक्षस हर ले गया था उस समय तुम दोनों आश्रम में नहीं थे। उस राक्षस ने मना करनेवाले जटायु को भी मार डाला। इस प्रकार उस राक्षस ने आपको बड़ा दुःख दिया; परन्तु भार्या के वियोगजन्य दुःख से आप शीघ्र छूटेंगे, विलम्ब न होगा। जैसे नष्ट हुई देवश्रुति (अर्थात् ब्रह्मा के ज्ञान का साधनरूप तीनों वेद) लाई गई थी उसी तरह मैं शीघ्र ही उसे ला दूँगा। हे शत्रुनाशन! चाहे वह रसातल या आकाश में गई हो परन्तु मैं अवश्य उसको ला दूँगा। हे राघव! जो मैं यह बात कहता हूँ इसको सत्य ही जानिएगा। इन्द्र आदि देवता या असुरों को भी सामर्थ्य नहीं कि

सीता को लेकर पचा लें। जैसे विष-मिले भोजन को कोई नहीं पचा सकता इसी प्रकार आपकी भार्या भी दुर्जर है। इसलिए हे महाभुज ! आप शोक छोड़ दीजिए; मैं आपकी प्यारी को लाये देता हूँ। हे राम, मैं ठीक तो नहीं कह सकता परन्तु अनुमान से जानता हूँ कि निस्सन्देह वही सीता होगी। एक स्त्री को मैंने देखा था। उसको एक भयङ्कर राक्षस लिये जा रहा था। वह बड़े स्वर से राम-राम और लक्ष्मण को पुकार रही थी। वह उस रावण की गोद में सर्पराज की पत्नी की तरह शोभा दे रही थी। उस स्त्री ने हम पाँच वानरों को इस पर्वत-भूमि पर बैठा देख, वस्त्र और सुन्दर-सुन्दर आभूषण ऊपर से गिरा दिये। उनको हमने रख छोड़ा है। मैं उनको लाता हूँ। आप पहचानिए तो सही कि वे वस्त्र आदि सीता के हैं कि नहीं। तब रामचन्द्र बोले—हे सखे, शीघ्र लाओ, क्यों विलम्ब कर रहे हो ?

अब सुग्रीव ने शीघ्र, पर्वत की गुफा में जाकर, उन सब वस्तुओं को लाकर समीप रख दिया। उस समय रामचन्द्र उन वस्त्रों और आभूषणों को हाथ में लेकर आँखों में आँसू भर लाये। उस समय आँसुओं से भरे रामचन्द्र का मुख ऐसा देख पड़ता था जैसे कुहरे से छाया हुआ चन्द्र देख पड़ता है। रामचन्द्र 'हा प्रिये !' कहकर रोने लगे और धैर्य को त्यागकर भूमि पर गिर पड़े। उन भूषणों को अपने हृदय से लगाकर वे ऐसा श्वास लेने लगे जैसे क्रोध से भरा साँप बिल में फुफकारता है। रामचन्द्र लगातार आँसू बहाने लगे। पास बैठे हुए लक्ष्मण को देखकर वे विलाप करने लगे। उन्होंने कहा—हे लक्ष्मण, लो पहचानो, सीता ने इन भूषणों और वस्त्र को शरीर से उतारकर डाल दिया है। देखो, जाते समय इस घासयुक्त भूमि में जिन भूषणों को फेंका है वे वैसे ही देख पड़ते हैं।

इस पर लक्ष्मण बोले—न मैं बाजुओं (बिजायठों) ... ... हूँ और न कुण्डलों को; मैं तो पैरों के नूपुरों को ही जानता हूँ, क्योंकि चरण-वन्दन के समय मैंने उन्हीं को देखा है। अब रामचन्द्र ने कहा—हे सुग्रीव, तुमने उसको किस देश की ओर जाते देखा था ? मेरी प्राण-प्यारी सीता को वह भयंकर राक्षस किस दिशा में ले जाता देख पड़ा ? मेरे महादुःख का कारण वह राक्षस कहाँ बसता है ? सीता के लिए मैं सब राक्षसों को मारूँगा। जिसने मैथिली के हरण से मुझे क्रुद्ध किया है उसने अपने प्राणों के अन्त के लिए मानो मृत्यु का द्वार खोल रक्खा है। हे वानरपते, जिस राक्षस ने ढिठाई से मेरी प्राणप्यारी को हरा है उसको मुझे बताओ, जिससे मैं आज ही उसको यमपुरी भेज दूँ।

---

## सातवाँ सर्ग

### सुग्रीव का रामचन्द्र को समझाना

रामचन्द्र के आर्त्त वचन सुनने से सुग्रीव की भी आँखें भर आईं। हाथ जोड़कर गद्गद वाणी से उन्होंने कहा कि मैं न तो उस पापी राक्षस का घर जानता हूँ और न उसका सामर्थ्य; उसके पराक्रम और उस दुष्ट के कुल को भी मैं नहीं जानता; परन्तु हे शत्रु-नाशन, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ। आप उसको सत्य मान-कर शोक छोड़ दीजिए। मैं ऐसा उपाय करूँगा जिससे आपको सीता मिलेगी और सपरिवार रावण को मार अपने पौरुष को सन्तुष्ट कर ऐसा कार्य्य करूँगा जिससे आप प्रसन्न हो जायँगे। कायरपन ठीक नहीं है। आप धैर्य धारण कीजिए क्योंकि आपके ऐसे महात्मा पुरुषों

को बुद्धि की छुटाई करना उचित नहीं। भार्या के विरह से मैंने भी बड़ा दुःख पाया है, परन्तु इस प्रकार से मैं सोच नहीं करता और न अधीर ही होता हूँ। यद्यपि मैं नीच जाति वानर हूँ तथापि उसके लिए पश्चात्ताप नहीं करता। आप तो महात्मा, शास्त्रज्ञ, धैर्य्यवान्, और महान् है। इतना विलाप करना आपको सर्वथा अनुचित है। अब आप धैर्य्य से आँसुओं को रोकिए और सत्वयुक्त जनों के मर्य्यादा-रूप धैर्य्य को न छोड़िए। क्यं कि धैर्य्यवान् पुरुष स्वजन-वियोग इत्यादि दुःख में, धन के नाश में और प्राण के नाशक भय में भी अपनी बुद्धि से विचारकर दुःख नहीं पाते। जे मूर्खजन नित्य कायर बने रहते हैं वे, अवश होक शोक मे डूब जाते है जैसे कि बड़े भार से दबी हुई नाव पानी में गोता खाती है। देखिए, मैं हाथ जोड़ता हूँ और अपने प्रेम से आपको प्रसन्न करता हूँ। मैं यही चाहता हूँ कि आप अपने पौरुष का अवलम्बन कर अपने में शोक का प्रवेश न होने दीजिए। देखिए, जो लो ग शोक किया करते हैं उनको कभी सुख नहीं होता; उनके तो तेज की हानि ही होती है, इसलिए आप शोक करने के योग्य नहीं। हे राजेन्द्र, श क से पी ड़त जनों के जीवन में सन्देह रहता है। इसलिए आप शोक न कीजिए। हे मित्र, मैं केवल मित्र-भाव से आपके हित की बात कहता हूँ, कुछ उपदेश नहीं करता। इसलिए आप मेरी मित्रता को मानकर सोच छोड़ दीजिए।

सुग्रीव ने जब मधुर-मधुर वचनों-द्वारा श्रीराघव को समझाया तब वे वस्त्र के छोर से आँसू-भरे मुख को पोंछकर स्वस्थ हुए और सुग्रीव को गले से लगाकर बोले—स्नेही और हितकारी मित्र को जो योग्य कार्य्य करना चाहिए वह तुमने किया। हे मित्र, तुम्हारे समझाने से मेरी बुद्धि ठिकाने पर आ गई। इस तरह का मित्र मिलना दुलभ है। इस विपत्ति के समय में तो सर्वथा मिल ही नहीं सकता। परन्तु हे मित्र, मैथिली के और उस दुष्ट राक्षस रावण के खोजने में तुम प्रयत्न करना। तुम्हारा जो काम मुझे करना है वह सब बेधड़क होकर कहो और उसे वैसे ही सिद्ध समझो जैसे सुन्दर खेत में बोया हुआ बीज वर्षाकाल में सफल होता है। हे वानरश्रेष्ठ, मैंने जो अभिमान से यह बात कही है उसको तुम ठीक ही समझना, क्योंकि न मैंने कभी मिथ्या कहा है और न कहूँगा। इस बात की मैं प्रतिज्ञा और सत्यतापूर्वक शपथ करता हूँ।

यह सुनकर सुग्रीव अपने मन्त्रियों-सहित बहुत हर्षित हुए। विशेष करके रामचन्द्र की प्रतिज्ञा को सच्ची जानकर उन्होंने अपने को कृतार्थ माना।

इस प्रकार दोनों, नरेन्द्र और वानरेन्द्र एकान्त में अपने सुख दुःख को कहने और सुनने लगे। वानरों के राजा ने राजराज श्रीरामचन्द्र का वचन सुनकर अपने कार्य को पूरा हुआ समझ लिया।

---

## आठवाँ सर्ग

### सुग्रीव का विलापपूर्वक अपनी दुर्दशा का समाचार कहना

रामचन्द्र के वचन से सन्तुष्ट और हर्षित होकर सुग्रीव ने कहा—हे रामचन्द्र, मैं अब देवताओं का भी अनुग्राह्य हुआ क्योंकि आप ऐसे गुण-युक्त पुरुष मेरे मित्र हुए हैं। आपके साहाय्य से देवताओं का भी राज्य प्राप्त होना मेरे लिए सुलभ है; अपने राज्य की तो बात ही क्या है।

मैं अब अपने बन्धुओं और मित्रों का पूज्य हुआ, क्योंकि रघुवंशी ने अग्नि को साक्षी करके मुझसे मित्रता की है। हे राघव, मैं भी आपका योग्य मित्र हूँ। इस बात को आप धीरे-धीरे जानेंगे। मैं अपने गुणों को आपके सामने प्रकाश करने में समर्थ नहीं। आपके ऐसे महात्मा और स्वाधीन पुरुषों की प्रीति और धीरता निश्चल होती है। साधुजनों के चाँदी, सोने और उत्तम-उत्तम भूषणों को साधुजन अपने ही तुल्य जानते हैं, अर्थात् अपना और दूसरे का पृथक् नहीं मानते। चाहे धनी हो या दरिद्र, दुःखी हो या सुखी, निर्दोष हो अथवा सदोष; परन्तु मित्र ही मित्र का परमगति होता है। हे दोष-रहित! धनत्याग सुखत्याग या देशत्याग मित्र के ही लिए होता है परन्तु यदि स्नेह पूरा हो तभी यह बात है। सुग्रीव की यह बात सुनकर रामचन्द्र ने लक्ष्मण के सामने कहा—"तुमने बहुत ठीक कहा।" अगले दिन सुग्रीव ने राम-लक्ष्मण को जमीन पर बैठे देख वन में चारों ओर दृष्टि फैलाकर देखा। तब साखू के एक वृक्ष पर उनकी नजर पड़ी। उस वृक्ष में पुष्प और थोड़े पत्ते लगे थे और वह भौंरों से सुशोभित था। तब वे घने पत्तोंवाली उसकी एक सुन्दर डाल तोड़ लाये और उसको बिछाकर रामचन्द्र के साथ उस पर बैठ गये। इसके अनन्तर हनुमान् ने भी एक साखू की शाखा लाकर लक्ष्मण के लिए बिछा दी और उस पर उनको बैठाया।

राम को सुख से बैठे देखकर सुग्रीव, प्रेम से हर्षित हो, कहने लगे—हे रामचन्द्र, मुझे अपने भाई से अत्यन्त पीड़ा हो रही है। इसी लिए मैं भयभीत होकर इस ऋष्यमूक पर रहता और वन में घूमता-फिरता हूँ। भार्या के हरण से मैं बहुत दुःखित हूँ। मैं इस वन में भय से व्याकुल और उद्विग्न रहता हूँ। भाई से मेरा अत्यन्त वैर हो गया है। इसलिए हे सब लोकों के अभय देनेवाले, मैं इस समय अनाथ हो रहा हूँ। आप मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिए।

यह दीन वचन सुन रामचन्द्र हँसकर बोले—हे मित्र, उपकार करना ही मित्रता का फल है और अपकार तो शत्रु का लक्षण है। तुम्हारी भार्या के हरण करनेवाले को मैं आज ही मारूँगा। हे महाभाग, मेरे ये बाण बड़े कठोर और तेजस्वी हैं। ये स्वामिकार्त्तिक के वन में उपजे हुए सुवर्ण-भूषित शर हैं। ये कङ्क-पत्रों से भूषित, इन्द्र के वज्र के तुल्य, सुन्दर पोरों से युक्त, तीक्ष्ण अग्रभागों से सुशोभित, और क्रोधयुक्त सर्प की भाँति हैं। तुम्हारा बालि नामक भाई, जो शत्रु हो रहा है और जिसने पाप किया है वह, इन बाणों से मारा जायगा। तुम उसको भूमि पर पर्वत की तरह गिरा देखना।

रामचन्द्र की ये बातें सुनकर सुग्रीव अत्यन्त हर्षित हो वाह-वाह करने लगे। उन्होंने कहा—हे राम, मैं शोक से पीड़ित हूँ और शोक से पीड़ित जनों के आप गति-रूप हैं। मैं आपको अपना मित्र जानकर आपके समीप अपनी दीनता कह रहा हूँ। आप हाथ मिलाने से अग्निसाक्षिक मेरे मित्र हैं और मेरे प्राणों के तुल्य हैं। मैं सत्यता पूर्वक शपथ करके यह बात कहता हूँ। आपको मित्र जानकर विश्वासपूर्वक मैं अपनी सब बात आपको सुनाता हूँ। हे राम, आपको अपना भीतरी दुःख मैं इसलिए सुनाता हूँ कि वह हलका हो जायगा।

यह कहते हुए सुग्रीव की आँखों में आँसू भर आये। गद्गद वाणी हो जाने से वे उच्च स्वर से न बोल सके। राम के समीप सुग्रीव ने नदी के वेग की तरह आये हुए आँसुओं के वेग को धीरता से धारण किया और आँसू पोंछकर तथा निःश्वास लेकर राम से

अपनी विपत्कथा कहनी शुरू की—हे राघव! पहले बाली ने मुझे राज्य से च्युत कर दिया और कठोर वचनों से मुझे बहुत धिक्कार दिया। प्राणों से भी अधिक प्यारी मेरी पत्नी को उसने छीन लिया। उसने मेरे मित्रों को भी कारागृह में डाल दिया। हे राघव, मुझे मारने के लिए उस दुष्टात्मा ने बहुत से वानरों को भेजा था पर उन सबको मैंने मार डाला। हे रामचन्द्र, इसी शङ्का से मैं आपको देख न तो यहाँ से हिला और न आपके पास गया, क्योंकि मैं डरा हुआ हूँ। भय के कारण सभी छड़कते हैं। केवल हनुमान् इत्यादि मेरे सहायक हैं, इसलिए मैं इस दुःख में भी अपने प्राणों को धारण करता हूँ। ये वानर मेरे बड़े स्नेही हैं। ये चारों ओर से मेरी रक्षा करते हैं। जहाँ मुझे जाना होता है वहाँ ये मेरे साथ जाते हैं और जब मैं ठहरता हूँ तब ये भी स्थिर रहते हैं। हे रामचन्द्र, यह बात संक्षेप से मैंने कह सुनाई। विस्तारपूर्वक कहने से क्या फल है? मेरा बड़ा भाई बाली मेरा शत्रु है। वह बड़ा विख्यात पराक्रमी है। उसके मारे जाने से मेरा दुःख छूट जायगा। इसके अनन्तर फिर मैं सुख से प्राण धारण करूँगा। सो, मेरे जीवन और सुख का कारण आप उसका विनाश ही समझिए। हे रामचन्द्र, यह मैंने अपने शोक का अन्त आपसे निवेदन किया। हे रघुनन्दन, चाहे दुःखी हो चाहे सुखी, परन्तु मित्र की गति मित्र ही होता है।

यह सुनकर रामचन्द्र ने कहा—मैं ठीक-ठीक सुनना चाहता हूँ कि वैर क्यों हुआ, उसका कारण क्या है? पहले मैं तुम दोनों के वैर का कारण सुन लूँ, फिर बलाबल का विचार करके उसका विधान करूँगा। हे सुग्रीव, तुम्हारे अनादर का वृत्तान्त सुनकर मेरा क्रोध बढ़ रहा है। तुम्हारा दुःख मुझसे नहीं सहा जाता। वर्षा-समय के जल का वेग जिस तरह बढ़ता है उसी तरह यह कोप मेरे हृदय को कम्पित किये देता है। तुम हर्षित होकर विश्वासपूर्वक वर्णन करो। तब तक मैं अपने धनुष को तैयार करता हूँ। यह बात तुम अपने मन में पक्की समझ रखना कि इधर मैंने बाण छोड़ा नहीं कि उधर तुम्हारा शत्रु मरा नहीं। यह सुनकर सुग्रीव उन चारों वानरों-सहित बड़े आनन्दित हुए और अपने वैर का कारण कहने लगे।

---

## नवाँ सर्ग

### सुग्रीव का अपने भाई बाली का वैर कहना

हे रामचन्द्र! मेरा बड़ा भाई बाली, शत्रु का नाशक, पिता का बहुत सम्मत और मुझे भी बहुत प्रिय था। कुछ काल में जब पिताजी शान्त हो गये तब मन्त्रियों ने बाली को जेठा समझकर राज्य पर अभिषिक्त कर दिया। जब वह राज्य करता था तब मैं सदा उसकी सेवा में ही तत्पर रहा करता था। कुछ समय बीतने पर दुन्दुभी का जेठा बेटा, जिसका नाम मायावी था और जो बड़ा तेजस्वी था, आया। उसके साथ स्त्री के निमित्त बाली का बड़ा वैर था। एक बार रात्रि के समय जब लोग सो गये थे तब वह किष्किन्धा के बहिर्द्वार पर आकर बड़े वेग से गरजने और युद्ध के लिए बाली को ललकारने लगा। उस समय मेरा भाई बाली सो रहा था। उस राक्षस की भयंकर गर्जना को न सहकर वह बड़े वेग से उसको मारने के लिए घर से निकला। यद्यपि स्त्री ने, और नम्रतापूर्वक मैंने भी उसको बहुत रोका परन्तु वह हम सबको हटाकर घर से निकल ही गया। उस समय मैं भी, स्नेह से, भाई

के पीछे हो लिया। इसके अनन्तर वह असुर मेरे भाई को और मुझको भी, दूर से आते देख डरकर बड़े वेग से भागा। उसको भागते देख हम दोनों भी उसके पीछे दौड़े। उस समय चन्द्र का प्रकाश भी था। अब वह असुर एक बड़े भारी दुर्गम बिल में घुस गया। वह बिल घास से ढका हुआ था। उसको बिल में जाते देख बाली मुझसे बोला—हे सुग्रीव, तू इस बिल के द्वार पर खड़ा रह, जब तक मैं इसमें जाकर उस शत्रु को मार आऊँ। मैंने बिल में साथ चलने के लिए प्रार्थना की परन्तु बाली ने मुझे अपने चरणों की शपथ देकर अकेले ही बिल में प्रवेश किया। बाली को बिल में गये जब कुछ ऊपर एक वर्ष बीत गया तब तो मैं उसको मरा समझ स्नेह से व्याकुल हुआ। भाई को न देखने से मेरे मन में ऐसा पाप समाया कि हो न हो बाली अवश्य मारा गया। तदनन्तर, बहुत समय बाद, उस बिल में से फेन-सहित रक्त निकला। उसको देखकर मैं अत्यन्त दुःखित हुआ। उस बिल में गरजते हुए असुरों की बड़ी ध्वनि हुई किन्तु संग्राम में तत्पर भाई की चिल्लाहट का शब्द मेरे कान तक न पहुँचा। तब मैंने उन चिह्नों से बाली को मरा हुआ जानकर बड़ी भारी पर्वताकार शिला से उस बिल का द्वार बन्द कर दिया। हे सखे, मैं शोक-पीड़ित होकर भाई के नाम से तिलाञ्जलि दे किष्किन्धा में चला आया। यद्यपि मैं बाली के मारे जाने की बात को छिपाये हुए था तथापि मन्त्रियों ने इस बात को जान लिया और सबने मिलकर मेरा राज्याभिषेक कर दिया। तब मैं न्यायपूर्वक राज्य का शासन करने लगा। इतने में उस असुर को मारकर बाली आ गया। उसने मुझे राज्याभिषिक्त देखकर क्रोध से लाल आँखें कर लीं। मेरे मन्त्रियों को बाँधकर वह बहुत कठोर वचन कहने लगा। हे राघव, यद्यपि मैं उस समय उसको रोक सकता था तथापि भाई के बड़प्पन से मेरी बुद्धि रुक गई। देखिए, जब वह शत्रु को मारकर आया और नगर में प्रवेश करने लगा तब मैंने उसको आदर देने के लिए प्रणाम किया परन्तु उसने प्रसन्न होकर मुझे आशीर्वाद न दिया। मैंने अपने मुकुट से उसके चरणों को छुआ परन्तु इतने पर भी वह मेरे ऊपर प्रसन्न न हुआ।

---

## दसवाँ सर्ग

### फिर भी सुग्रीव का बाली के विषय में विशेष समाचार कहना

इसके बाद मैं उसको क्रोध से भरा देख, उसकी प्रसन्नता के लिए, मधुर वचन बोलने लगा। मैंने कहा—बड़े आनन्द की बात है कि आप कुशलपूर्वक यहाँ आये और शत्रु को भी आपने मार लिया। मुझ अनाथ के एक आप ही नाथ हैं और आप ही मुझे आनन्दित करनेवाले हैं। अब आप अपना यह बहु-शलाका से युक्त, पूर्णचन्द्र के तुल्य, मनोहर छत्र लीजिए और इस बालव्यजन (मोरछल) को, जिसे मैंने धारण किया था, लीजिए। हे नृप, मैं उस बिल के द्वार पर वर्ष भर तक रहा। फिर जब उस बिल में से बड़ी भारी रक्त की धारा निकली तब तो मैं शोक से व्याकुल और अत्यन्त विकल होकर एक पर्वत के शिखर से बिल के द्वार को रोककर यहाँ चला आया। पुरवासियों और मन्त्रियों ने मुझे विषाद-युक्त देखा और बलात्कार से राज्यासन पर मेरा अभिषेक कर दिया, यद्यपि मेरी इच्छा न थी। आप इसको क्षमा कीजिए। आप ही मान्य राजा हैं। मैं तो जैसा पहले था वैसा ही सेवक अब भी

रहूँगा। आपके न रहने के कारण ही मेरा राज्याभिषेक किया गया था। मन्त्री और पुरवासियों-सहित यह नगर जैसा कण्टक-रहित था वैसा ही है। आज तक यह आपका राज्य मेरे पास धरोहर के तुल्य रक्खा था सो मैं आपको लौटाये देता हूँ। हे शत्रु घातक सौम्य, मेरे ऊपर क्रोध न कीजिए। राजन्, मैं अपना मस्तक झुकाकर यह आपसे माँगता हूँ और हाथ जोड़ता हूँ। मुझे हठ से मन्त्रियों और पुरवासियों ने, राज्य खाली देखकर, राज्यासन दिया था। उन्हें आशङ्का थी कि ऐसा न हो कि कोई शत्रु इस राज्य को दबा ले।

इस प्रकार मैं स्नेह से कहता ही था कि बाली मुझे डपटकर धिक्कार देने लगा। वह बहुत कठोर वचन कहने लगा। प्रजा को और अपने मन्त्रियों को बुलाकर वह मुझे बहुत निन्दित वचनों से लज्जित करने लगा। उसने कहा—देखो, तुम लोगों को तो यह बात ज्ञात ही है कि रात्रि के समय वह मायावी नामक महाक्रूर राक्षस युद्ध की इच्छा से मुझे ललकारता था। उसकी आवाज सुनकर मैं राजभवन से शीघ्र निकला और मेरे पीछे यह मेरा दारुण भाई भी चला। वह राक्षस हम दोनों को देखकर भागा और हमने उसका पीछा किया। वह भागकर जब एक बिल में घुस गया तब मैंने इस निठुर भ्राता से कहा कि मैं इसको बिना मारे पुरी में न चलूँगा, इसलिए तू मेरी बाट देखता रह, जब तक मैं इसको मारकर बाहर आता हूँ। यह कहकर और इसको बाहर खड़ा करके मैं उस भयङ्कर बिल में घुस गया। वहाँ उस असुर को खोजते मुझे वर्ष भर बीत गया। खेदरहित होकर मैंने उस भयङ्कर शत्रु को ढूँढ़ लिया और उसे तथा उसके परिवार को मार डाला। उसी के रक्त से बिल भी भर गया था। उस समय वह असुर बड़ी गर्जना कर रहा था। उसको मारकर जब मैं बिल से बाहर निकलने लगा तब देखता क्या हूँ कि बिल का मार्ग बन्द है। तब मैं 'सुग्रीव-सुग्रीव' पुकारने लगा। जब किसी ने उत्तर न दिया तब अत्यन्त दुखित होकर मैंने लात मार-मारकर बिल का मुँह खोला। उस मार्ग से निकलकर मैं नगर में आया। देखो, इस घातक भाई ने भाई का स्नेह छोड़कर, राज्य के लोभ से, मुझे उस बिल में बन्द कर दिया था। यह कहकर उसने एक वस्त्र पहनाकर मुझे निकाल दिया और मेरी स्त्री को ले लिया। हे राघव, उसके डर से मैं इस सम्पूर्ण पृथ्वी पर घूमता फिरा। केवल इस ऋष्यमूक पर्वत पर किसी कारण बाली नहीं आ सकता इसलिए मैं यहाँ सुख से रहता हूँ। हे राघव, इस प्रकार मैं निरपराध हूँ, फिर भी मुझे क्लेश मिला। हे राम आप सब लोक का दुःख दूर करते हैं इसलिए बाली को दण्ड देकर उसके भय से मुझे भी छुड़ाइए और मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिए। सुग्रीव का यह वचन सुनकर रामचन्द्र ने हँसकर कहा—हे सुग्रीव, देखो ये मेरे पैने-पैने बाण अमोघ हैं। ये सूर्य के सदृश हैं। उस दुष्ट बाली के ऊपर ये क्रोध से गिरेंगे। जब तक मैं उस तुम्हारी स्त्री के चोर को नहीं देखता तभी तक वह दुष्टात्मा चारित्र्यदूषक जावे, परन्तु मेरी दृष्टि के आगे आने पर वह कभी जीता न बचेगा। मैं अपनी तरह जानता हूँ कि तुम भी शोक-सागर में डूबे हो, परन्तु मैं तुम्हें उबारूँगा और तुम्हें बड़ा लाभ होगा। हर्ष और पौरुष के बढ़ानेवाले इस वचन को सुनकर सुग्रीव बहुत हर्षित हुए।

---

# ग्यारहवाँ सर्ग

## रामचन्द्र और सुग्रीव का संवाद

हर्ष और पौरुष के बढ़ानेवाले रामचन्द्र के वचनों को सुनकर सुग्रीव उनकी पूजा और प्रशंसा करने लगे। उन्होंने कहा—हे राघव, तुम क्रुद्ध होकर प्रज्वलित तीक्ष्ण मर्मभेदी बाणों से सम्पूर्ण लोकों को भस्म कर सकते हो जैसे कि युगान्त का सूर्य संसार को जला देता है। परन्तु पहले बाली के पौरुष, वीर्य और धीरता को एकाग्रचित्त होकर सुन लो। फिर आगे जो कुछ करना हो, सो करो।

बाली ब्राह्म-मुहूर्त्त में उठकर पश्चिम-समुद्र से पूर्व-समुद्र-पर्यन्त और दक्षिण-समुद्र से उत्तर-समुद्र-पर्यन्त घूम आता है और तनिक भी थकता नहीं। वह पर्वतों पर चढ़कर उनके बड़े-बड़े शिखर ऊपर को उछालता और हाथ से गेंद की तरह झेलता है। वनों में बड़े-बड़े दृढ़, नाना प्रकार के वृक्षों को उसने तोड़कर अपना बल दिखलाया है। सुनिए, दुन्दुभि नामक असुर भैंसे का रूप धारण करता था। वह कैलाश के शिखर के सदृश विशाल था और उसमें हजार हाथियों का बल था। वह असुर वरदान से मोहित होकर अपने वीर्य के घमण्ड से समुद्र के पास गया और बोला कि हमसे युद्ध करो। इस बात को सुन समुद्र ने काल-पाश से बद्ध उस असुर से कहा—हे युद्ध-विशारद! मैं तुम्हारे साथ युद्ध करने में समर्थ नहीं हूँ परन्तु तुमको वह व्यक्ति बतलाये देता हूँ जो तुमसे युद्ध कर सकता है। देखो, हिमवान् पर्वत तपस्वियों की निवास-भूमि है और वह शंकर का श्वशुर भी है। उसमें अनेक गुफाएँ और झरने हैं। उस पर्वत के पास तुम जाओ। वह शैलराज युद्ध में समर्थ है। वह तुमसे युद्ध करेगा।



अब वह असुर समुद्र को भयभीत जानकर, धनुष से छूटे बाण की तरह, शीघ्र हिमवान के वन में आया और उस पर्वत की, हिम से श्वेत तथा गजेन्द्र के तुल्य विशाल, शिलाओं को उठा-उठाकर भूमि पर फेंकने और गरजने लगा। तब हिमवान् पर्वत श्वेत मेघ के तुल्य सुन्दर और मनोहर आकार धारण करके अपने ही शिखर पर खड़ा होकर बोला—हे धर्मवत्सल दुन्दुभे, तुम मुझे क्लेश मत दो क्योंकि मैं युद्धविद्या में चतुर नहीं हूँ। मैं तो केवल तपस्वियों का निवास स्थान हूँ।

गिरिराज के ये वचन सुनकर दुन्दुभि ने क्रोध से लाल नेत्र करके कहा—यदि तुम असमर्थ हो अथवा मेरे भय से शिथिल हो तो मुझे बतलाओ कि मेरे संग्राम के योग्य कौन है; क्योंकि मुझे युद्ध करने की अत्यन्त इच्छा है। तब हिमवान् ने क्रोध से उत्तर दिया। इसके पहले किसी ने दुन्दुभि को युद्धदाता वीर का नाम न बतलाया था। उसने कहा—हे असुरोत्तम, किष्किन्धा नगरी में महा-पण्डित, प्रतापी, इन्द्र का पुत्र बाली नामक वानर राज्य करता है। वह युद्ध में बड़ा चतुर और समर्थ है। नमुचि नामक दानव ने जैसे इन्द्र के साथ युद्ध किया था वैसे ही वह तुमसे युद्ध करेगा। यदि तुम युद्ध करना चाहते हो तो शीघ्र उसके पास जाओ। वह अत्यन्त दुर्मर्षण, और युद्धकर्म में शूर है।

यह सुनकर वह दुन्दुभि क्रुद्ध हो बाली की पुरी किष्किन्धा में आया। भैंसे के रूप में उसके पैने-पैने सींग थे। वह वर्षाकाल के जलपूर्ण मेघ की तरह देख पड़ता था। किष्किन्धा के द्वार पर आकर वह दुन्दुभि के सदृश शब्द करता और भूमि को कँपाता हुआ गर-जने तथा समीप के वृक्षों को गिराने लगा। वह खुरों से पृथ्वी को खोदने और अपने सींगों से अहंकार-

पूर्वक हाथी की तरह द्वार को तोड़ने लगा। बाली उस समय अन्तःपुर में था परन्तु उसकी गर्जना को वह न सह सका। स्त्रियों को साथ लिये वह, तारागणयुक्त चन्द्र की तरह, बाहर निकल आया और संक्षेप में स्पष्ट बोला—मैं वानरों और वनवासियों का स्वामी बाली नामक वानर हूँ। इस नगर के द्वार को रोककर तू क्यों गरज रहा है? हे महाबली दुन्दुभे, मैं तुझे जानता हूँ। तू अपने प्राणों को बचा। वानर-राज का यह वचन सुनक दुन्दुभि ने क्रोध से लाल नेत्र करके कहा—अरे, स्त्रियों के पास खड़ा-खड़ा क्या गाल बजा रहा है; युद्ध करके अपना बल दिखला। अथवा, यदि तू अभी युद्ध करने को तैयार नहीं है तो मैं आज अपने क्रोध को शान्त किये लेता हूँ। कल सवेरे युद्ध की तैयारी होगी। आज की रात तुम और सुख भोग लो और सबसे मिलकर विदा माँग लो। अब जीने की आशा न रखना। अपने मित्रों से खूब मिल-भेंट लो और उनका आदर कर लो। किष्किन्धा का राज्य भी तुम अपने समान किसी योग्य बन्दर को दे आओ; आज की रात तुम और विहार कर लो। कल दिन निकलते ही मैं तुम्हारा अभिमान नष्ट करूँगा। क्योंकि संसार में वह गर्भघाती के तुल्य पापी होता है जो सोते हुए को, मतवाले को, शरणागत को, और अंग-भङ्ग-वाले को मारता है। जो शस्त्रों से हीन व्यक्ति को और कृश को मारता है उसे वही पातक लगता है जो गर्भ-घाती को लगता है। तुम्हारे तुल्य जो पुरुष मद्यपान किये हो उसका घात करने से भी वही पूर्वोक्त पातक लगता है। उस असुर का यह वचन सुनकर बाली ने तारा इत्यादि स्त्रियों को विदा कर दिया और मुसकुरा-कर दुन्दुभि से कहा—हे वीर, मुझे तू मतवाला मत समझ। यदि तू संग्राम में निडर है तो इस मद्यपान को वीरपान समझ। यह कहकर बाली ने गले में सुवर्ण की माला पहन ली। यह माला उसे पिता इन्द्र ने दी थी। युद्ध के लिए उद्यत होकर बाली ने उस पर्वताकार दुन्दुभि के सींगों को पकड़कर उसको दूर फेंक दिया। फिर वह बड़ा शब्द करने लगा। युद्ध में बाली उसको मारता और खूब गरजता था। बाली के पटकने से उसके कानों से रक्त बहने लगा। इस प्रकार क्रोध में भरे इन दोनों का बड़ा युद्ध होने लगा। बाली इन्द्र के तुल्य परा-क्रमी था। वह मूकों, घुटनों, पैरों, शिलाओं और वृक्षों की मार मारता था। दोनों का युद्ध होते-होते बाली का बल बढ़ा और असुर का क्षीण हुआ। उसने दुन्दुभि को उठाकर पृथ्वी पर पटक दिया। पटके जाने से दुन्दुभि पिस गया। उसकी कान इत्यादि इन्द्रियों से रक्त की धारा बह निकली। वह गिरते ही मर गया। तब बाली ने दोनों भुजाओं से उठाकर उसको एक योजन दूर फेंक दिया। वेग से फेंके जाने के कारण दुन्दुभि के मुँह से गिरते हुए रक्त की बूँदें, वायु के वेग से उड़कर, मतङ्ग के आश्रम में जा गिरीं। रक्त के बिन्दुओं को देख करके मुनीश्वर ने बड़ा क्रोध किया। कुछ देर तक वे सोचने लगे कि किस दुष्टात्मा ने मेरे ऊपर यह रक्त छिड़का है। कौन ऐसा दुरात्मा, दुर्बुद्धि, नीच और मूर्ख है! ऐसा सोच-विचारकर मुनि बाहर निकले तो क्या देखते हैं कि एक पर्वताकार भैंसा मरा पड़ा है। तब उन्होंने अपने तपोबल से जान लिया कि यह बाली वानर की करतूत है। यह जानकर ऋषि ने फेंकनेवाले को शाप दिया कि जिसने इस मुर्दे को मेरे आश्रम में फेंका है और रक्त से आश्रम को दूषित किया है, वह यदि इस आश्रम में आवेगा तो मर जायगा। इस मृतक के शरीर से कितने ही वृक्ष टूट गये। जिस दुर्बुद्धि ने इसे यहाँ फेंका है वह यदि इस आश्रम में या

इसके आसपास योजन भर तक आवेगा तो नष्ट हो जायगा और उसके जो प्रधान सचिव लोग मेरे वन में रहते हैं वे भी अब यहाँ न रहें। यदि वे यहीं रहेंगे तो मैं उन्हें भी शाप दूँगा। क्योंकि मेरा यह वन सदा पुत्र की तरह पालित है। उनके रहने से मेरे वन के पत्र, अंकुर, फल और मूलों का नाश होता है। भाई रे, मैं पुकारकर कहे देता हूँ कि आज से यदि फिर मैं बाली के पक्ष के किसी वानर को यहाँ देखूगा तो वह कई हजार वर्ष के लिए पहाड़ हो जायगा। ऐसे क्रोध के वचन सुनकर जो वानर यहाँ रहते थे, वे यहाँ से निकल गये।

बाली ने उनसे पूछा कि तुम लोग तो मतङ्ग के वन में रहते थे, मेरे पास क्यों चले आये। कहो वानरो, कुशल तो है? तब उन लोगों ने ऋषि के शाप की सब बात बाली को कह सुनाई। तब ऋषि के पास जाकर बाली हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा परन्तु ऋषिजी उसको दुत्कारकर अपने आश्रम में घुस गये। हे वीर, उस शाप से बाली बिह्वल हो गया और मारे डर के यहाँ आने को कौन कहे, इस ऋष्यमूक पर्वत की ओर वह आँख उठाकर देख भी नहीं सकता। इसी कारण, मैं इस पर्वत पर अपने मन्त्रियों के साथ विषादरहित होकर विचरता हूँ। देखिए, यही उस दुन्दुभि की हड्डियों का ढेर देख पड़ता है, जिसको बाली ने अपने वीर्य के दर्प से फेंका था। यह पर्वत के एक शिखर की तरह खड़ा है। हे रामचन्द्र, ये साखू के सात वृक्ष समीप में देख पड़ते हैं। इनको बाली अपने पराक्रम से हिलाकर बिना पत्तों का कर सकता है। हे राम, वह ऐसा अनुपम पराक्रमी है। आप उसको कैसे मार सकेंगे?

सुग्रीव के ये बचन सुन लक्ष्मण हँसकर बोले—रामचन्द्र कौन सा काम करके तुमको दिखलावें जिसमें तुमको विश्वास हो कि ये बाली को मार लेंगे? तब सुग्रीव ने कहा—ये जो सामने साल के सात पेड़ देख पड़ते हैं, इनको बाली ने हिलाकर अनेक बार पत्र-रहित कर दिया था। यदि रामचन्द्र अपने बाण से एक पेड़ को भी काट डालें तो मैं विश्वास करूँ कि ये बाली को मार लेंगे; और इस भैंसे की हड्डियों के पर्वताकार समूह को एक पैर से दो सौ धनुष पर हटा दें तो मैं बाली के मारने का विश्वास करूँ। यह कहने पर सुग्रीव के लाल नेत्र हो गये। मुहूर्त्त भर सोचकर वे फिर श्रीराम से बोले—हे राघव, बाली बड़ा शूर है। उसे सब शूर ही कहते हैं। वह बड़ा पराक्रमी और बलवान् है। उसे लड़ाई में कोई नहीं हरा सकता। देवता भी जिन कामों को कठिनाई से कर सकते हैं, वैसे ३ के काम हैं। उनको सोचकर मैं भयभीत हो इस ऋष्यमूक पर्वत पर रहने लगा हूँ। उस अजेय, अधृष्य और अमर्षयुक्त बाली का स्मरण करके और इस पर्वत का विचार करके मैं, उद्विग्न और शङ्कायुक्त होकर, हनुमान् आदि अनुरक्त मन्त्रियों के साथ, इस वन में घूमा करता हूँ। हे रामचन्द्र, आप मेरे सन्मित्र हैं, आप स्तुति के योग्य और मित्र-वत्सल हैं। हे पुरुष-श्रेष्ठ, मैंने आपका आश्रय उसी तरह लिया है जैसे कोई हिमवान् का आसरा ले परन्तु उस बलवान् दुष्ट भ्राता के बल को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। आपका बल मुझे अभी मालूम नहीं, इसलिए न तो मैं उसके साथ आपकी तुलना करता हूँ, न आपका अनादर करता हूँ और न आपको डरवाता हूँ। उसके इन भयङ्कर कर्म्मों से मुझमें एक प्रकार की कदराई उत्पन्न हुई है। हे राघव! आपकी वाणी, प्रमाण, धैर्य और आकार—राख से छिपी हुई आग की तरह—आपके उत्कृष्ट तेज को सूचित करते हैं।

सुग्रीव की बात सुनकर रामचन्द्र कुछ हँसकर बोले—हे वानर, यदि तुमको हमारे पराक्रम में विश्वास नहीं है तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ। सुग्रीव को समझाकर रामचन्द्र ने सहज ही पैर के अँगूठे से उस दुन्दुभि के सूखे शरीर को उठाकर दस योजन पर फेंक दिया। सुग्रीव यह पराक्रम देखकर लक्ष्मण के और उन वानरों के सामने, तपते सूर्य के तुल्य, रामचन्द्र से फिर बोले—हे सखे, मेरे भाई बाली ने जिस समय इस शरीर को फेंका था उस समय वह थका हुआ और मतवाला था; और यह शरीर रक्त-मांस से पुष्ट होने के कारण भारी था पर अब हलका, मांसरहित और तृण के तुल्य है। इसको जो आपने हर्ष से फेंक दिया इससे आपके और बाली के बल में मुझे न्यूनाधिकता नहीं मालूम पड़ सकती; क्योंकि गीले और सूखे में बड़ा अन्तर होता है। हाँ, एक साखू को आप भेदन कीजिए तो अभी बलाबल जान पड़े। हस्तिशुण्ड के तुल्य इस धनुष पर आप एक बाण चढ़ाकर कान तक खींचिए और छोड़िए। मैं तो जानता हूँ कि आपका बाण इस वृक्ष को अवश्य विदीर्ण कर देगा। राजन्, आपको मेरी शपथ है, अब आप विचार न कीजिए। मेरा इतना प्रिय कार्य करके दिखाइए, क्योंकि जैसे तेजस्वियों में सूर्य्य, पर्वतों में हिमालय और चौपायों में सिंह श्रेष्ठ है वैसे ही पराक्रमी नरों में आप श्रेष्ठ हैं।

---

## बारहवाँ सर्ग

### रामचन्द्र का साल-वृक्ष को भेदन करना और बाली-सुग्रीव का युद्ध

सुग्रीव का वचन सुनकर रामचन्द्र ने धनुष चढ़ाया और वहाँ जो साखू का वृक्ष था, उस ओर एक घोर बाण चलाया। वह बाण सुवर्ण-भूषित और बलवान् के हाथ से छूटा हुआ था। वह सातों वृक्षों को और पर्वत को फोड़कर रसातल में घुस गया, और मुहूर्त-मात्र में वहाँ से निकलकर फिर रामचन्द्र के तरकस में आ गया। यह देखकर सुग्रीव को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने हाथ जोड़कर मस्तक नवाया और रामचन्द्र को साष्टांग प्रणाम किया। उस पराक्रम से हर्षित होकर उन्होंने कहा—प्रभो, आप चाहें तो बाणों से सम्पूर्ण इन्द्रादि देवताओं को भी मार सकते हैं; बाली क्या पदार्थ है। आपने साल के सात वृक्षों और पहाड़ तथा भूमि को एक बाण से विदीर्ण कर डाला। भला आपके सम्मुख संग्राम में कौन खड़ा होनेवाले है! आज मेरा शोक भाग गया और बड़ी प्रसन्नता हुई। मुझे आप इन्द्र-वरुण के तुल्य मित्र मिल गये। हे ककुत्स्थ, अब मैं हाथ जोड़ता हूँ। आप बाली को मारिए।

रामचन्द्र ने सुग्रीव को गले लगाकर कहा—यहाँ से किष्किन्धा में चलो, और तुम आगे जाकर उस दुष्ट भ्राता को ललकारो।

अब राम और सुग्रीव इत्यादि सब उठे और शीघ्रता से किष्किन्धा में जा पहुँचे। वे सब वृक्ष की आड़ में खड़े हो गये। तब सुग्रीव बड़े वेग से गरजे, जिससे कि बाली शीघ्र आ जावे। उस समय सुग्रीव का नाद ऐसा हुआ कि आकाश को फोड़े डालता था। भाई का गरजना सुनकर बाली अत्यन्त क्रुद्ध हो ऐसा लपककर आया जैसे सूर्य्य अस्ताचल से उदयाचल में आते हैं। अब दोनों भाइयों का महाघोर युद्ध हुआ जैसे कि आकाश में मंगल और बुध का युद्ध होता है। अब वे दोनों क्रोधयुक्त होकर वज्र के तुल्य थपेड़ों और मूकों से परस्पर प्रहार करने लगे। रामचन्द्र हाथ में

धनुष लिये उन दोनों की ओर देखने लगे परन्तु उन्हें यह भेद न समझ पड़ा कि कौन सुग्रीव है और कौन बाली है; क्योंकि अश्विनीकुमार की तरह उन दोनों का एक ही सा रूप और एक ही सी चाल-ढाल थी। इसलिए रघुनन्दन ने शत्रु-प्राणहारी बाण के छोड़ने की इच्छा नहीं की। इतने में बाली से हारकर और रामचन्द्र को अपनी सहायता में तत्पर न देख सुग्रीव ऋष्यमूक पर भाग गया। उस समय वह बहुत ही शिथिल और रक्त से लथपथ था। प्रहारों से वह चूर-चूर हो गया था। जब वह भागा तब बाली ने दौड़कर उसे पकड़ना चाहा परन्तु वह महावन में चला गया। तब, शाप के भय से, बाली आगे न बढ़ा। वह बोला कि जा तुझे छोड़ दिया। अब वह भी लौट गया। तब लक्ष्मण और हनुमान् के साथ रामचन्द्र सुग्रीव के पास गये। राम और लक्ष्मण को आते देख सुग्रीव लज्जित हो पृथ्वी की ओर देखकर बोले—हे रामचन्द्र आपने हमसे तो बाली को ललकारने के लिए कहा और आप चुपचाप खड़े वैरी से मेरा घात करवाते रहे। यह क्या बात है? क्यों आपने पहले मुझे अपना पराक्रम दिखलाया? जो आपको नहीं मारना था तो पहले ही कह देते कि मैं बाली को न मारूँगा। तो मैं काहे को यहाँ से जाता?

सुग्रीव की ये दीनता-पूर्ण बातें सुनकर रामचन्द्र बोले—हे तात सुग्रीव, सुनो। अपना क्रोध दूर करो। मैंने अपना बाण इसलिए नहीं चलाया कि अलङ्कार, वेष, प्रमाण और गति से तुम और बाली एक ही प्रकार के देख पड़ते थे। स्वर, तेज, दृष्टि, पराक्रम और बोली से मैं तुम दोनों में भेद नहीं जान सका। हे वानरोत्तम, तुम दोनों के रूप की समानता से मोहित होकर मैंने इस शत्रु-नाशक और भयङ्कर बाण को नहीं चलाया। उस समय मेरे मन में यह शंका हुई कि ऐसा न हो कि कहीं बाली के धोखे सुग्रीव ही मारा जाय; नहीं तो, हम दोनों का मूल नाश होगा। हे कपीश्वर, मेरे अज्ञान और जल्दी करने से जो कहीं तुम्हारा घात हो जाता तो मेरी मूढ़ता और लड़कपन लोगों में विख्यात हो जाता। जिसको अभय दिया उसका वध करना कैसा बड़ा और अद्भुत पातक होता! हे सुग्रीव! मैं, लक्ष्मण और सीता, सभी तुम्हारे अधीन हैं। मैं इस वन में तुम्हारी ही शरण में हूँ, इसलिए अब तुम शंका छोड़कर फिर युद्ध करो; और इसी मुहूर्त्त से संग्राम में मेरे एक बाण से गिरे और भूमि पर छटपटाते हुए बाली को तुम देखोगे। परन्तु हे वानरेश्वर, तुम अपनी पहचान के लिए चिह्न करो जिससे मैं तुमको युद्ध में पहचान लूँ। हे लक्ष्मण, तुम इस गजपुष्पी लता को उखाड़कर सुग्रीव के कण्ठ में माला की तरह पहना दो। तब लक्ष्मण ने पर्वत के तट में लगी उस पुष्पिता गजपुष्पी को उखाड़कर सुग्रीव के गले में माला की तरह पहना दिया। उस लता की माला से सुग्रीव की ऐसी शोभा हुई जैसी बगुलों की पाँति से सन्ध्या-समय के मेघ की होती है। अब राम के कहने से सुग्रीव फिर युद्धतत्पर हो, रामचन्द्र के साथ, दुबारा किष्किन्धा को चले।

---

## तेरहवाँ सर्ग

### किष्किन्धा के मार्ग का वर्णन

ऋष्यमूक पर्वत से रामचन्द्र फिर किष्किन्धा को चले। उस समय उन्होंने अपने धनुष को सजाकर और सूर्य-तुल्य प्रकाशमान बाणों को सुधारकर हाथ में ले लिया। राम-लक्ष्मण के आगे सुग्रीव, और इनके पीछे हनुमान्, नल, नील और बड़ा तेजस्वी तार

नामी वानर था। वह यूथपतियों के यूथ का पति था। वे मार्ग में, पुष्पों के भार से झुके हुए वृक्षों को, और प्रसन्न जलवाली समुद्र-गामिनी नदियों को देखते चले जाते थे। वे पर्वतों, कन्दराओं, झरनों और मुख्य-मुख्य शृङ्गों को देखते जाते थे। पन्ने के तुल्य विमल जलों से युक्त, और कमलों से शोभित तड़ागों को तथा नाद करते हुए जल-कुक्कुट, सारस, हंस, वञ्जुल, पण्डुक और चक्रवाक तथा अनेक तरह के पक्षियों को देखते जा रहे थे। कोमल घास चरने में तत्पर निर्भय हरिणों को उन्होंने देखा। उन्होंने बनैले हाथियों को भी देखा जो सरोवरों के कगारे गिरा देते थे। वे बड़े भयङ्कर थे। उनकी खीसें सफेद थीं। पर्वत के किनारे पर टक्कर मारनेवाले, चलते-फिरते पर्वत के तुल्य मत-वाले बनैले हाथियों के सदृश, बहुत सी धूलि से नहाये हुए वानरों को तथा और भी अनेक तरह के वनचारी जीवों और आकाशचारी पक्षियों को देखते हुए वे शीघ्रता से चले जाते थे। इतने में रामचन्द्र बहुत घने वृक्षोंवाले वन को देखकर सुग्रीव से बोले—हे मित्र! यह जो—आकाश में मेघ की तरह—वृक्ष-समूह देख पड़ता है, और जिसके चारों ओर केलों के वृक्ष लगे हैं, यह क्या है? मैं इसको जानना चाहता हूँ। मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। सुग्रीव ने कहा—हे रघुनन्दन, यह एक विस्तीर्ण आश्रम है। यह श्रम को दूर करता है। यह वाटिका, वन, स्वादिष्ट मूल, फल और जल से युक्त है। यहाँ पर बड़े कठोर व्रतधारी सप्तजन नामक सात ऋषि तपस्या करते थे। वे नीचे को मस्तक और ऊपर पैर करके तप करते तथा नियम से जलशयन करते थे। सात दिन के बाद वे केवल वायुभक्षण कर लेते थे। इस प्रकार वे सात सौ वर्ष तक तपस्या करके सदेह स्वर्ग को गये। उन्हीं के प्रभाव से यह वृक्षरूप प्राकार से घिरा आश्रम देख पड़ता है। इन्द्र आदि देवताओं को भी यह सामर्थ्य नहीं कि इस आश्रम को कुछ भी चल-विचल कर सकें। कहाँ तक कहें, इस आश्रम को पक्षी भी छोड़े रहते हैं अर्थात् इस आश्रम में नहीं जाते। दूसरे वनवासी पशुओं या मनुष्यों की तो फिर बात ही क्या है। यदि कोई धोखे से इसमें चला जाता है तो फिर लौटकर नहीं आता। यहाँ अप्सराओं के मधुर वाक्य, भूषणों का शब्द और गान तथा मृदङ्ग इत्यादि बाजों का शब्द सुन पड़ता है। दिव्यगन्ध की सुगन्धि भी यहाँ आती है। देखो, अग्निहोत्र के तीनों अग्नि यहाँ प्रज्वलित हैं। उनका यह धुआँ भी देख पड़ता है। वह धुआँ कबूतर के अंग के तुल्य कुछ लाल और घने रूप से इन वृक्षों के अग्रभागों को वेष्टित कर रहा है। देखो, ये वृक्ष ऊपर की ओर अग्रभाग में धुएँ से भरे हैं। ये ऐसे शोभित हो रहे हैं जैसे मेघजाल से भरे पन्ने के पर्वत हों। हे धर्मात्मा राघव, तुम दोनों भाई हाथ जोड़कर इस आश्रम को प्रणाम करो। हे रामचन्द्र, जो इन ऋषियों को (इनके आश्रम को) प्रणाम करते हैं उनके शरीर में कुछ भी अशुभ नहीं रह सकता। सुग्रीव का यह वचन सुनकर राम और लक्ष्मण ने उस आश्रम को प्रणाम किया। सुग्रीव भी प्रणाम करके प्रसन्नता-पूर्वक सबके साथ चले और शीघ्र वहाँ जा पहुँचे।

---

## चौदहवाँ सर्ग

### रामचन्द्र का सुग्रीव को समझाकर फिर युद्ध के लिए तैयार करना

अब सब लोग किष्किन्धा में जाकर वृक्षों की आड़ में ठहर गये। इसके बाद सुग्रीव चारों

ओर वन में दृष्टि फैलाकर युद्ध के लिए अत्यन्त क्रोध-युक्त हुए। बड़े ऊँचे स्वर से नाद करके उन्होंने युद्ध के लिए बाली को ललकारा। उस समय सुग्रीव की ऐसी गर्जना हुई मानों आकाश फट गया हो और वायु के वेग से युक्त मेघ गरजता हो। उस समय सुग्रीव बालसूर्य की तरह प्रभायुक्त थे और गर्वयुक्त सिंह की तरह गमन करते थे। कार्यचतुर रामचन्द्र की ओर देखकर उन्होंने कहा—हे रामचन्द्र, वानरों के झुण्ड रूप वागुरा* से व्याप्त बाली की किष्किन्धा नगरी में हम आ गये। यह सुवर्ण से भूषित तथा ध्वज और नाना यन्त्रों से भरी है। हे वीर, जो आपने बाली के वध के विषय में प्रतिज्ञा की थी उसे आज शीघ्र पूरी कीजिए जैसे ऋतु लता को समय पर प्रफुल्लित करती है। रामचन्द्र ने उत्तर दिया—हे वीर, देखो लक्ष्मण ने यह गजपुष्पी की माला तुम्हारे कण्ठ में पहना ही दी है। इस माला से तुम्हारी ऐसी शोभा हो रही है जैसे नक्षत्रों की माला से युक्त सूर्य की होती है। हे सुग्रीव, मैं आज बाली से उत्पन्न भय का और वैर का नाश एक ही बाण से कर दूँगा। भ्रातृरूप अपने वैरी को तुम मुझे दिखला भर दो। मैं आज तुम्हारे समीप उसको मारकर गिरा दूँगा। यदि आज वह मेरे सामने आकर बच जाय तो तुम जो चाहो सो मुझे कहना। देखो, तुम्हारे सामने ही मैंने एक बाण से उन सातों वृक्षों को छेद दिया था। इससे तुमको विश्वास होगा ही कि ये बाली को मार सकते हैं। अब आज तुम उस बाली को मरा ही समझो। बड़े क्लेश में पड़कर भी मैंने कभी मिथ्या वचन नहीं कहा और न कहूँगा क्योंकि मैं धर्म का लोभी हूँ। जैसे इन्द्र वर्षा के द्वारा धान के खेत को फलयुक्त करते हैं उसी तरह मैं अपनी प्रतिज्ञा को सफल करूंगा। तुम अपने मन का सन्देह छोड़ दो। अब तुम ऐसा शब्द करो जिससे बाली चला आवे। तुम्हारा शब्द सुनकर वह अवश्य दौड़कर चला आवेगा क्योंकि पहले उसे जय मिल चुकी है। वह तो जय चाहता है। तुमसे वह हारा भी नहीं है। जो लोग अपने पराक्रम को जानते हैं वे शत्रु की ललकार को नहीं सहते। विशेष करके स्त्री के समीप तो उन लोगों को और भी क्रोध होता है।

इस प्रकार रामचन्द्र का वचन सुनकर सुग्रीव पहले की तरह गरजने लगा। उस गर्जना के शब्द से गायें क्षीण-तेज होकर भागने लगीं जैसे कि राजा के दोष से पीड़ित कुलीन स्त्रियाँ व्याकुल हो जाती हैं। संग्राम के घोड़ों की तरह मृग इधर-उधर दौड़ने लगे। उड़ते हुए पक्षी, क्षीण-पुण्य ग्रहों की तरह, भूमि पर गिरने लगे। सूर्य के पुत्र सुग्रीव को रामचन्द्र के वचन पर विश्वास था। शौर्य-बल से उसका तेज बढ़ा हुआ था। वह मेघ की तरह ऐसा गरज रहा था जैसा वायु से चञ्चल तरंगें होने पर समुद्र गरजता है।

---

## पन्द्रहवाँ सर्ग

### तारा के उपदेश को न मानकर बाली की युद्ध-यात्रा

सुग्रीव का वह नाद सब प्राणियों को कम्पित करनेवाला था। उसको सुनने से बाली का मद झट उतर गया और क्रोध उत्पन्न हुआ। सुवर्ण के तुल्य शरीरवाला बाली उस क्रोध से उसी क्षण राहुग्रस्त सूर्य की तरह प्रभाहीन हो गया। उसके दाँत कराल और नेत्र प्रज्वलित अग्नि के तुल्य थे। पुष्पहीन कमलदण्डों

* मृग-बन्धन का जाल।

से युक्त जलाशय की तरह वह देख पड़ता था। उस शब्द से क्रुद्ध होकर वह अपने पैरों से भूमि को विदीर्ण करता हुआ शीघ्र दौड़ा।

उस समय तारा स्नेहपूर्वक उससे लिपटकर बोली; क्योंकि सुग्रीव के शब्द से वह बहुत व्याकुल होकर डर गई थी। उसने कहा—हे वीर, नदी के वेग की तरह आये हुए इस क्रोध को उसी तरह त्याग दो जैसे पलँग पर से सोकर उठा पुरुष रात की भोगी हुई पुष्पों की माला को त्याग देता है। अब उसके साथ कल युद्ध करना। हे वीर, यद्यपि वह शत्रु न तो तुमसे बलवान् है और न तुममें कोई बात ही न्यून है, तथापि इस समय तुम्हारा घर से शीघ्र निकलना मुझे नहीं रुचता। सुनिए, मैं क्यों तुम्हें मना करती हूँ। पहले उसने तुमको ललकारा था, तब तुम गये और उसको मारकर भगा आये। तुम्हारे हाथ की चोट सहकर भी वह फिर पुकार रहा है। इससे मुझको शङ्का होती है। देखो, इस समय उसका अहङ्कार, उद्योग और नाद का आवेग कैसा है! इसमें आप थोड़ा कारण न समझिए। मैं तो यह मानती हूँ कि बिना किसी की सहायता के सुग्रीव फिर आनेवाला नहीं। यह उसकी गर्जना सहाय के बल से है। सुग्रीव स्वभाव का बड़ा चतुर और बुद्धिमान् है। वह बिना पराक्रम की परीक्षा लिये किसी के साथ मैत्री करनेवाला नहीं। हे वीर, मैंने कुमार अङ्गद के मुँह से जो पहले ही सुन रक्खा है वह कहती हूँ, सुनो। कुमार अङ्गद जब वन में गया था तब वहाँ पर, भेद लेनेवाले, दूतों ने इसको सन्देश दिया था कि अयोध्याधिपति इक्ष्वाकुवंशी महाराज दशरथ के दो पुत्र यहाँ आये हैं। वे शूर और समर में दुर्जय हैं। उनके नाम राम और लक्ष्मण हैं। वे सुग्रीव की प्रिय कामना से आये हैं। रण में वही सुग्रीव के सहायक हैं। रामचन्द्र शत्रु के मर्दन करनेवाले और महाप्रलय के प्रज्वलित अग्नि के तुल्य हैं। वे साधुओं के निवास-वृक्ष, शरणागत-वत्सल, दुखियों के अवलम्ब, यश के पात्र तथा ज्ञान और विज्ञान से पूर्ण हैं। वे ही पिता के आज्ञाकारी और गुणों की खान (जैसे धातुओं का आकर हिमालय है) संग्राम में तुम्हारे भाई के सहायक हैं। इसलिए हे प्रिय, ऐसे महात्मा के साथ तुमको विरोध करना उचित नहीं। रामचन्द्र संग्राम में दुर्जय हैं। उनके पराक्रम का परिमाण ही नहीं है। हे शूर, मैं कुछ तुमको कहूँगी परन्तु तुम अपने मन में बुरा न मानना। सुनो, मैं तुम्हारे हित की बात कहती हूँ। तुम उसी प्रकार से करो। तुम इसी समय सुग्रीव को यौवराज्यासन पर अभिषिक्त कर दो। हे वीर, देखो वह तुम्हारा छोटा भाई है। उसके साथ झगड़ना तुम्हारे लिए अच्छा नहीं। मैं तो यही ठीक समझती हूँ कि इस समय तुम रामचन्द्र के साथ मित्रता कर लो। वैर को छोड़ तुम सुग्रीव के साथ मेल कर लो। देखो, वह तुम्हारा छोटा भाई है। तुमको उसका प्यार करना चाहिए। चाहे वह कहीं बाहर रहे अथवा तुम्हारे पास परन्तु वह सर्वथा तुम्हारा भाई ही है। उसके समान तुम्हारा भ्राता मैं तो पृथ्वीतल पर दूसरा नहीं देखती। इसलिए दान, मान इत्यादि सत्कारों से उसको तुम अपने अधीन कर लो, जिससे वह इस वैर को छोड़कर तुम्हारे पास रहे और तुम्हारा प्रिय बन्धु हो जाय। हे वीर, इस समय भाई के साथ मैत्री किये बिना तुम्हारी दूसरी गति नहीं है। यदि तुम मेरा प्रिय काम करना चाहते हो और मुझे हितकारिणी समझते हो तो प्रीति की रीति से जो मैं कह रही हूँ उसे मान लो। हे वानरराज, प्रसन्न हो और मेरा सत्य वचन मानो। क्रोध न करो। क्योंकि इन्द्र-समान पराक्रमी दशरथ के पुत्र के साथ तुम्हारा झगड़ा करना योग्य नहीं है।

सुग्रीव और बालि का युद्ध ।

[ पृष्ठ ३७७

बाली तो अपने बल और वीर्य में बढ़ता जाता था और सुग्रीव क्षीण होता जाता था। जब बाली के द्वारा सुग्रीव का गर्व हीन और पराक्रम मन्द हो गया तब रामचन्द्र को उसने बाली को दिखा दिया। इसके बाद फिर शाखायुक्त वृक्षों, पर्वत के शृङ्गों, वज्र की धार के तुल्य नखों, मूर्कों, घुटनों, लातों और भुजाओं से उन दोनों का ऐसा युद्ध हुआ जैसा वृत्रासुर और इन्द्र का हुआ था। वे दोनों रक्त से लथपथ थे और गर्जना करके युद्ध कर रहे थे। वे परस्पर डपट-डपटकर भिड़ते थे। उस समय उनका ऐसा भयङ्कर शब्द होता था जैसे दो मेघ गरजते हों।

रामचन्द्र ने देखा कि सुग्रीव का पराक्रम क्षीण हो गया और वह बार-बार दिशाओं की ओर दृष्टि कर रहा है। सुग्रीव को आर्त्त देखकर रामचन्द्र, बाली के वध की इच्छा से, बाण की ओर देखने लगे। साँप के तुल्य एक बाण निकालकर उन्होंने धनुष पर चढ़ाया और खींचा, जैसे कि काल अपने कालचक्र का सन्धान करता है। रघुनन्दन की प्रत्यञ्चा की टङ्कार से बड़े-बड़े पक्षी और मृग डर गये। वे प्रलय समझ मूर्च्छित होकर भागने लगे। सन-सन कर रहे, प्रज्वलित बिजली के तुल्य, उस बाण को रामचन्द्र ने बाली की छाती में मारा। जैसे आश्विन की पौर्णिमा को देख, खड़ी की हुई, इन्द्र की ध्वजा गिर पड़े उसी तरह बाण के लगते ही वह महातेजस्वी और पराक्रमी बाली झट भूमि पर गिर पड़ा। गिरते ही वह सत्त्वहीन और अचेत हो गया। उसका गला भर आया। उसका स्वर आर्त्त की भाँति हो गया। नरोत्तम श्रीरामचन्द्र ने कालरूप, काञ्चन और रूप्य से भूषित, उस प्रज्वलित बाण को चलाया जैसे धूमयुक्त अग्नि को महादेव मुख से छोड़ते हैं। रक्त से सराबोर होकर बाली पृथ्वी पर, इन्द्रध्वज की तरह और पहाड़ से उखड़े पुष्पित अशोक वृक्ष की तरह, गिर पड़ा।

---

## सत्रहवाँ सर्ग

### बाली का रामचन्द्र के प्रति कठोर वचन कहना

रामचन्द्र के बाण से संग्रामकर्कश बाली, कटे हुए वृक्ष की तरह, सम्पूर्ण अङ्गों के शिथिल होने से पृथ्वी पर लोट गया। वह चमकीले सुवर्ण के भूषण पहने था। बाली के गिरते ही पृथ्वी की शोभा हीन हो गई, जैसे कि चन्द्रमा के न रहने से आकाश शोभाहीन हो जाता है। यद्यपि वह भूमि पर गिर गया था तथापि उसके शरीर से न कान्ति हटी, न प्राण निकले, न तेज हटा और न पराक्रम ही क्षीण हुआ। इन्द्र की दी हुई रत्न-भूषित सुवर्ण की माला ने उस वानरराज के प्राण, तेज और शोभा को स्थिर कर रक्खा था। उस माला के द्वारा वह वानरराज ऐसा शोभित हो रहा था जैसे सन्ध्या-काल के रङ्ग से भूषित मेघ शोभित होता है। उस समय बाली यद्यपि गिर पड़ा था तथापि माला, देह और मर्म-घाती बाण से जान पड़ता था मानों तीनों रूपों में लक्ष्मीजी विराजती हैं। रामचन्द्र का बाण स्वर्गलोक का साधन है। उसने बाली को परम गति अर्थात् ब्रह्मलोक जाने की योग्यता प्रदान कर दी। इस प्रकार संग्राम में गिरा हुआ बाली ज्वालारहित अग्नि के तुल्य और पुण्य का अन्त होने पर स्वर्गलोक से च्युत ययाति के सदृश देख पड़ता था। वह प्रलय-काल में पृथ्वी पर गिरे सूर्य की तरह तथा इन्द्र के तुल्य दुर्द्धर्ष, और विष्णु के तुल्य दुःसह था। उसका उच्च वक्षःस्थल, बड़ी भुजाएँ, प्रदीप्त मुख और पिङ्गल नयन थे। इन्द्र के पुत्र

बाली को गिरा देख दोनों भाई बहुत आदर से उसके निकट गये। उस समय बाली ज्वाला-विहीन अग्नि की तरह पड़ा था। इन दोनों को समीप आये देख वह धर्म से मिश्रित कठोर वचन बोला। घात हो जाने से यद्यपि वह तेजहीन, अल्पप्राण और कुछ-कुछ मूर्च्छित था तथापि उसकी वाणी अर्थ-युक्त निकलती थी। उसने कहा—हे राम, सामने होकर हमने आपसे युद्ध नहीं किया, ऐसी दशा में हमको मारकर आपने कौन सा गुण प्राप्त कर लिया? मैं दूसरे से युद्ध कर रहा था, आपके कारण मेरा नाश हुआ। रामचन्द्र! सब लोग आपको कुलीन, सत्त्वयुक्त, तेजस्वी, व्रतधारी, दयाशील, प्रजा के हित में तत्पर, दयालु, महोत्साही, उचित समय के जाननेवाले और दृढ़-व्रत कहते हैं। राजन्! दम, शम, क्षमा, धर्म, धैर्य्य, सत्त्व, पराक्रम और अपराधियों को दण्ड देना बस यही राजाओं के गुण हैं। इन गुणों का निश्चय करके और आपको श्रेष्ठ कुल की सन्तान समझकर, तारा के रोकने पर भी, मैं सुग्रीव के साथ युद्ध में तत्पर हुआ। आपको मेरे युद्ध में प्रवृत्त होना उचित न था। दूसरी ओर मेरा ध्यान ही न था, इसलिए मुझ पर आपको शस्त्र न चलाना था। जब तक मैंने आपको देखा न था तब तक मैं यही समझता था कि किसी के साथ युद्ध में फँसे हुए—अतएव औरों की तरफ से असावधान—व्यक्ति पर आप वार न करेंगे; पर आपको देखने से मेरी वह धारणा जाती रही। मैं आपको सज्जनों के वेश में अधर्म करनेवाला, नष्टात्मा धर्म की ध्वजा लेकर अधर्म करनेवाला, पापाचारी और तृणों से ढके कुएँ के तुल्य समझता हूँ। सज्जन का वेष मात्र आपका है परन्तु आप छिपे हुए अग्नि के तुल्य पापी हैं। मैं जानता हूँ कि आप कपट-धर्म से छिपे हुए हैं। हे राम, यदि मैंने आपके देश या नगर में कुछ पाप किया होता और तब आप मेरा घात करते तो ठीक भी था। परन्तु मैंने तो आपका कभी अनादर भी नहीं किया, फिर क्यों आपने मुझ निरपराधी को मारा? देखो, मैं तो फल-मूल खानेवाला वनवासी वानर हूँ और दूसरे के साथ युद्ध में फँसा था। फिर आपने मुझे क्यों मारा? आप राजा के पुत्र, विश्वास के योग्य और मनोहर रूपवान् हैं। राजन्! आपका चिह्न भी धर्मधारी की तरह देख पड़ता है। भला कहो तो सही कि ऐसा कौन क्षत्रिय का पुत्र होगा जो संशयहीन होकर और अपने को धर्मधारी के तुल्य दिखलाकर आपके समान कठोर कर्म करेगा? हे रामचन्द्र, आप राघव-कुल में जन्म लेकर और धर्मात्मा कहलाकर क्यों ऐसा अपवित्र कर्म करने में तत्पर हुए? जब आप ऐसे-ऐसे पापकर्म्म करते हैं तब क्यों अपने को धर्म के वेष से छिपाये रहते हैं? राजन्! साम, दाम, क्षमा, धर्म, सत्य, धैर्य्य और पराक्रम करना तथा अपकारियों को दण्ड देना—ये राजाओं के गुण हैं। हे रामचन्द्र, हम तो वनचारी मृग हैं; फल, मूल हमारा आहार है; क्योंकि हमारा यही स्वभाव है। आप तो नगरवासी अन्नभोजी नर हैं। देखिए भूमि, सोना और रुपया-पैसा इन्हीं चीजों के लिए युद्ध में दूसरों के प्राण लिये जाते हैं। इन्हीं के लिए मनुष्य दूसरे को मारता है। तो क्या आपको मेरे वन का अथवा मेरे वन के फलों का लोभ है? नीति, नम्रता, निग्रह और अनुग्रह, ये राजधर्म समयानुसार अर्थात् उचितानुचित स्थान देखकर प्रवृत्त होते हैं; क्योंकि राजा लोग यथेष्टाचारी नहीं होते—अपने मन के अनुसार व्यवहार नहीं करते। आप तो कामतत्पर, क्रोधी और व्यवस्थारहित हैं। आप राजधर्मों से विरुद्ध कर्म करते हैं। चाहे जहाँ धनुष-बाण से काम लेते हैं। न तो धर्म में आपकी आस्था है और न अर्थ में बुद्धि स्थिर है;

आप केवल यथेच्छाचारी हैं, इन्द्रियों के अधीन हैं। हे काकुत्स्थ, भला यह तो कहिए कि मुझ निरपराधी को बाण से मारकर, अर्थात् ऐसा निन्दित काम करके, सज्जनों की सभा में आप क्या उत्तर देंगे? वहाँ आप कैसे मुँह दिखलावेंगे? देखिए राजघाती, ब्राह्मणघाती, गोघाती, चोर, हिंसात्पर, नास्तिक और परिवेत्ता* ये सब नरकगामी हैं। और सूचक-चुगलखोर-, सूम, मित्रघाती, गुरुतल्पग† ये सब पापियों के लोक में जाते हैं। हे राम, देखो सज्जन लोग न मेरे चर्म या बालों को पहनते, न मेरी निषिद्ध हड्डियों को अपने व्यवहार में लाते और न आप ऐसे धर्मशील लोग मेरे मांस को ही खाते हैं। देखिए, ब्राह्मण और क्षत्रिय के भक्षण के योग्य ये पाँच जीव पञ्चनखवालों में हैं;—साही, श्वाविध‡, गोह, खरहा और कछुआ। हे राम, पण्डित लोग मेरे चमड़े और हड्डियों को छूते भी नहीं और मेरा मांस तो अभक्ष्य है ही। मैं पाँच नखोंवाला हूँ। मैं आपके हाथ से व्यर्थ मारा गया। तारा ने सत्य और हितवचन मेरे लिए कहा था। उसे सब हाल मालूम था। परन्तु उसकी बात को न मानकर मैं काल के वश में आ गया। हे काकुत्स्थ, यद्यपि आप इस पृथ्वी के नाथ हैं तथापि यह पृथ्वी एक प्रकार से स्वामि-हीन ही है जैसे कि अधर्मी पति के होते हुए भी शीलवती स्त्री अनाथ ही होती है। क्योंकि आप तो धूर्त, दूसरे के अपकार में तत्पर, क्षुद्र और झूठी शान्ति को धारण करनेवाले हैं। महात्मा दशरथ के आप ऐसे पापात्मा कैसे हुए? हा! रामरूप हाथी ने मुझे मार डाला। इस हाथी ने चारित्र्यरूप अपने बन्धन को तोड़ डाला और सज्जनों के धर्म-मार्ग का उल्लङ्घन कर दिया। आपने धर्मरूपी अंकुश की परवा नहीं की। हे राम! इस प्रकार के अपने अशुभ, अयोग्य कर्म को सज्जनों के समूह में कैसे कहिएगा? ऐसे काम की सज्जनों में निन्दा होती है। हे राम, हम उदासीनों* पर आपने जैसा पराक्रम प्रकट किया है ऐसा पराक्रम अपराधियों को दिखलाते तो एक बात भी थी। हे राजपुत्र, यदि आप मेरे सम्मुख होकर युद्ध करते तो अवश्य यमराज को देखते। परन्तु क्या कहूँ, आपने छिपकर मुझे मारा, जैसे कि सोते हुए साँप को पापात्मा जन मार डालते हैं। इसलिए आप पाप के वश में हो गये। हे राघव, आपने सुग्रीव की प्रिय कामना से मुझे मारा है। अपने प्रयोजन के लिए यदि आप मुझसे कहते तो मैं एक ही दिन में मैथिली को ला देता और जिसने आपकी भार्या का हरण किया है उस दुरात्मा रावण को संग्राम में मारे बिना ही, उसका गला बाँधके, आपके पास पहुँचा देता। मैथिली चाहे समुद्र के जल में होती अथवा पाताल में पड़ी होती तो भी आपकी आज्ञा पाकर मैं उसे ले आता जैसे कि मधु और कैटभ नाम के दैत्यों-द्वारा पाताल में पहुँचाई गई श्वेताश्वहयरूपिणी श्रुति को भगवान् हयग्रीवावतार फिर पृथ्वी पर लाये थे। हे राम, यह तो योग्य ही हुआ कि मेरे मरने के बाद सुग्रीव राज्य पावेगा; परन्तु आपने मुझे अधर्म से मारा यही अनुचित काम हुआ। प्राणी की तो एक दिन मृत्यु होनी ही है, क्योंकि सृष्टि का यही स्वभाव है परन्तु आपने मुझ निरपराध का घात किया है सो राज्य प्राप्त होने पर इसका क्या उत्तर दीजिएगा?

*ज्येष्ठ भ्राता का ब्याह होने या उसके अग्निहोत्री होने के पहले ही जो अपना विवाह कर लेता या अग्निहोत्री हो जाता है।

† गुरु की स्त्री से सङ्ग करनेवाला।

‡ कुत्तों को मारकर खानेवाला एक जन्तु।

* न शत्रु न मित्र।

बाली का चेहरा उतरा हुआ था और बाण के घाव से उसे पीड़ा हो रही थी। उल्लिखित बातें कहकर वह रामचन्द्र की ओर देख चुप हो गया।

——

## अठारहवाँ सर्ग

### रामचन्द्र का बाली के कठोर वचनों का उत्तर देना और बाली का रामचन्द्र से अपने दुर्वचनों की क्षमा माँगना

बाली के वचन धर्म और अर्थ से भरे, हितकारी और कठोर थे। उनको सुनकर श्रीरामचन्द्र ने बाली को उत्तर दिया। वह प्रकाशरहित सूर्य के सदृश, जलहीन मेघ के तुल्य और ज्वालारहित अग्नि की तरह देख पड़ता था। श्रीराम ने कहा—हे वानर! तुम धर्म, अर्थ, काम और लोकाचार को बिना जाने क्यों मुझे धिक्कारते हो? जो वृद्ध इस विषय के बुद्धिमान् और आचार्यों के सम्मत हैं उनसे बिना पूछे तुम मुझसे वानरपन की चपलता से बोलने की इच्छा करते हो। सुनो, यह सम्पूर्ण पर्वत और जङ्गलों-सहित जो भूमि है सो इक्ष्वाकुवंशवालों की है। इस भूमि के रहनेवाले मृग, पक्षी और मनुष्यों को दण्ड देने, और उन पर कृपा करने का सामर्थ्य इक्ष्वाकुवंशवालों को है। अब, इस समय, इस भूमि का पालन धर्मात्मा भरत करते हैं। वे सत्यवादी, सीधे, धर्म, काम और अर्थ के तत्त्व को जाननेवाले और निग्रह-अनुग्रह करने में तत्पर हैं। नीति, नम्रता और सत्य उनमें स्थिर है। राजा भरत पराक्रमी हैं और देश-काल को यथोचित जानते हैं। उन्हीं की धर्माज्ञा के पालक हम और दूसरे राजा, धर्म बढ़ाने की इच्छा से, सम्पूर्ण पृथ्वी पर घूमा करते हैं। राजसिंह धर्मवत्सल राजा भरत के राज्यपालन करते समय कौन पुरुष धर्म से विपरीत कर्म कर सकता है? हम लोग भरत की आज्ञा को मानकर, और अपने उत्कृष्ट धर्म के मार्ग पर स्थित होकर, धर्म-मार्ग से च्युत व्यक्ति का यथाविधि विचार करते हैं। तुम धर्म को क्लेश देते हो, कुकर्म में तत्पर और केवल काम के सेवक हो। तुम राजमार्ग पर भी तो स्थित नहीं। देखो, जेठा भाई, पिता और जो विद्या देता है वह ये तीनों धर्म-मार्गानुसार पिता के तुल्य हैं। छोटा भाई, पुत्र और गुणवान् शिष्य, ये तीनों पुत्र के सदृश हैं क्योंकि इसमें धर्म ही कारण है। हे वानर, सज्जनों का धर्म बड़ा सूक्ष्म है, वह जाना नहीं जाता; परन्तु सब प्राणियों के हृदय में स्थित आत्मा ही शुभ और अशुभ को जानता है। तुम तो वानर की जाति, चञ्चल स्वभाववाले ठहरे, अपने ऐसे अशिक्षित बुद्धिवाले वानरों के साथ विचार करके तुम धर्म की उस सूक्ष्मता को कैसे जान सकते हो? क्योंकि जन्म का अन्धा मनुष्य जन्मान्धों के साथ विचार करे तो उसे मार्ग नहीं मिल सकता। मैं अपने वचन की स्पष्टता तुम्हें सुनाता हूँ। केवल क्रोध से तुम मुझे दोष मत दो। मैंने जो तुमको मारा है उसका कारण सुनो। देखो, तुम सनातन धर्म छोड़कर अपने भाई की स्त्री के साथ अनुचित व्यवहार करते हो। हे पाप कर्मकारिन्, महात्मा सुग्रीव के जीते जी तुम इनकी भार्य्या रुमा से, जो तुम्हारी पतोहू लगती है, काम-क्रीड़ा करते हो। हे वानर, तुम धर्म-मार्ग को छोड़ काममार्ग में प्रवृत्त हुए हो इसलिए तुमको यह दंड मैंने दिया। हे वानरराज, जो लोक से विरुद्ध और लोक के धर्म से च्युत है, उसके लिए घात ही दण्ड है। मैं कुलीन क्षत्रिय हूँ। इसलिए तुम्हारे इस पाप को नहीं

सह सकता। देखो एक पेट की बहन, और अनुज की स्त्री से जो पुरुष काम व्यवहार करता है उसके लिए प्राण-दण्ड ही विहित है। हम तो महाराज भरत के आज्ञा-पालक हैं, इसलिए धर्मत्याग करनेवाले तुमको हम छोड़ नहीं सकते। महाराज भरत जो धर्म-व्यवस्था में पण्डित हैं, वे महा-अधर्मियों का घात और धर्मात्मा का पालन करते हैं। वे कामियों को दण्ड देने में सन्नद्ध रहते हैं। हे हरीश्वर, भरत की आज्ञा को प्रमाण कर हम लोग तुम्हारे ऐसे भ्रष्ट लोगों को दण्ड देने में तत्पर रहते हैं। इसका एक कारण यह भी है कि सुग्रीव के साथ मेरी मित्रता है। मेरे लिए जैसे लक्ष्मण हैं वैसे ही सुग्रीव हैं। यह मैत्री स्त्री और राज्य के लिए हुई है। इस विषय में सुग्रीव ने और मैंने भी बानरों के सामने प्रतिज्ञा की है। प्रतिज्ञा करके उसका उल्लङ्घन करना मुझ जैसे को उचित नहीं। इन बड़े-बड़े धर्म-सम्बन्धी कारणों से तुम्हारे लिए जो योग्य शासन था सो मैंने दिया। अब तुम उसको मान लो। यह तुम्हारा दण्ड सर्वथा धर्मानुसार है। मुझे मित्र का उपकार करना ही चाहिए था। यही समझकर मैंने तुमको दंड दिया है। तुमको भी यही उचित था कि धर्म की ओर दृष्टि करके प्रार्थनापूर्वक यह दण्ड करवा लेते। देखो, इस विषय में मनु ने भी (दो श्लोकों में) यही बात कही है जिसको धर्म-तत्पर लोगों ने ग्रहण किया है। उसी प्रकार से मैंने भी किया। उन श्लोकों का तात्पय यह है कि पाप करने पर जिन मनुष्यों को राजाओं से दण्ड मिल जाता है वे पाप-रहित हो, धर्मात्मा साधु की भाँति स्वर्गगामी होते हैं। दूसरे श्लोक का तात्पर्य यह है कि जो चोर अथवा पापी अपने आप राजा को अपना पाप सुनाकर दण्ड माँगता है तो राजा चाहे उसको दण्ड दे अथवा दया करके छोड़ दे परन्तु वह उस पाप से छूट जाता है। और दण्ड न देने से राजा को उसके पाप का भागी होना पड़ता है। देखो, जैसा पाप तुमने किया है वैसा ही एक श्रमण ने किया था। उसे मेरे पूर्वज आर्य मान्धाता ने घोर दण्ड दिया था। इसी प्रकार और दूसरे लोग पाप करते और राजाओं के द्वारा उसका प्रायश्चित्त करवाते हैं। इससे उनका पाप शान्त होता है। हे बानरश्रेष्ठ, अब तुम्हारा पश्चात्ताप करना व्यर्थ है। क्योंकि तुम्हारा वध तो धर्म के अनुसार ही हुआ है। हम स्वतंत्र नहीं हैं। जो तुमने यह कहा कि तुमने हमको छिपकर मारा उसका भी मैं उत्तर देता हूँ। उसको सुनकर तुम क्रोध मत करना। इस प्रकार तुम्हारा वध करने में न मेरे मन को कुछ संताप है और न शोक है। बहुतेरे मांस-भोजी लोग छिपकर और प्रकट रूप से भी जाल, फन्दे और तृणाच्छादित गड्ढों के द्वारा तथा अन्य उपायों से भी त्रस्त, विस्तब्ध, सावधान-असावधान और विमुख मृगों को मार ही डालते हैं। इसमें कुछ भी दोष नहीं है। धर्म के ज्ञाता बड़े-बड़े राजर्षि भी अहेर खेलते ही हैं। इसलिए हे बानर, मैंने तुमको युद्ध में मारा। मैंने तुम्हारे साथ युद्ध करके मारा तो और बिना युद्ध किये ही मारा तो इसमें हानि क्या है, क्योंकि तुम तो शाखामृग यानी वानर हो। देखो, दुलभ धर्म के जीवन के और मङ्गल के देनेवाले राजा ही होते हैं। इसलिए न उनको मारना चाहिए और न धिक्कारना, न उनकी निन्दा करनी चाहिए और न अप्रिय वचन ही कहना चाहिए। क्योंकि वे मनुष्य नहीं, वे तो मनुष्यरूप देवता हैं। तुम धर्म का अनादर कर के केवल क्रोध के वश में हो मुझको दोष लगा रहे हो परन्तु मैं अपने पितृपितामह के धर्म पर आरूढ़ हूँ।

रामचन्द्र के ये वचन सुनकर पीड़ित बाली, धर्म की ओर दृष्टि करके, सोचने लगा। सोचते सोचते उसने राघव में कुछ भी दोष न पाया। तब वह हाथ जोड़कर बोला कि हे नरश्रेष्ठ, जो तुम कहते हो वह ठीक है। इसमें कुछ सन्देह नहीं। क्षुद्र जन को क्या सामर्थ्य है कि महान् लोगों के साथ उत्तर-प्रत्युत्तर करे। भूल से मैंने जो कुछ अयोग्य अथवा अप्रिय वचन कहे उनमें आप दोष न दीजिए। क्योंकि आप सब पदार्थों के तत्त्वों को जाननेवाले और प्रजा के हित में तत्पर हैं। कार्य और कारण की सिद्धि में आपकी बुद्धि प्रसन्न और दृढ़ है। मैं अधर्मियों में अग्रगण्य हूँ। हे धर्मज्ञ, धर्म-संयुक्त वाणी से मुझे सिखाइए।

यह कह कर बाली गद्गद कंठ से फिर धीरे से बोला। उस समय बाली ऐसा देख पड़ता था जैसे दलदल में फँसा हुआ हाथी हो। वह कहने लगा कि हे रघुनन्दन, मैं न अपने लिए सोच करता हूँ न तारा के लिए और न बन्धु-जनों के लिए। मैं तो अपने गुणी पुत्र अंगद के लिए शोकाकुल हो रहा हूँ। देखिए, वह लड़कपन का दुलारा मेरा लड़का मुझको न देख सूखे तालाब की तरह हो जायगा। एक तो वह अभी बालक है और दूसरे बुद्धि में भी अभी कुशल नहीं। तारा के गर्भ से उत्पन्न वही एकलौता पुत्र, मुझे प्यारा है। वह महाबली भी है। आपको उसकी रक्षा करनी चाहिए। हे रामचन्द्र, सुग्रीव पर और अंगद पर आप अपनी कृपादृष्टि रखिए। क्योंकि तुम्हीं रक्षक और शासक हो। कार्य अकार्य में तुम्हारा ही वश है। हे नरपते, भरत और लक्ष्मण से जैसा आप व्यवहार रखते हैं वैसा ही सुग्रीव और अंगद के साथ भी कीजिए। ऐसी व्यवस्था कीजिएगा जिससे कि मेरे दोष से दूषित तपस्विनी तारा का अनादर सुग्रीव न कर सके। सुग्रीव को मैंने सताया है, इसमें तारा का हाथ नहीं था, पर मेरी पत्नी होने के कारण कहीं सुग्रीव उसे दुख न दे। हे रामचन्द्र, यदि सुग्रीव आपके वश में रहेंगे और आपके चित्तानुसार काम करेंगे तो इनको स्वर्ग भी दुर्लभ न होगा और पृथ्वी का भी शासन तो कर ही सकेंगे। हे रामचन्द्र, मैं तुम्हारे हाथ से मरने की इच्छा करके, तारा की बात की उपेक्षा करके सुग्रीव के साथ लड़ने को चला आया।

वह वानराधिपति इस प्रकार कहकर चुप हो गया। तब रामचन्द्र उसको धर्मयुक्त वाणी से समझाने लगे। उन्होंने कहा—हे वानरश्रेष्ठ, न तुम मेरे लिए चिन्ता करो; और न अपने लिए क्योंकि हमने बहुत अच्छी तरह से धर्मशास्त्र के द्वारा विचार लिया था कि दण्ड देने योग्य को जो दण्ड देता है और जो दण्ड पाता है वे दोनों कार्यकारणभाव से कृतार्थ होते हैं; उन्हें दुःख नहीं होता। इसलिए दण्ड के संयोग से तुम इस पाप से छूटे और दण्ड के द्वारा अपनी धर्मयुक्त प्रकृति को प्राप्त हुए। अब तुम शोक, मोह और हृदय के भय को छोड़ दो; क्योंकि पाप दूर करने के इस विधान को उल्लंघन करने में तुम समर्थ नहीं। तुम्हारे साथ अंगद जिस प्रकार व्यवहार करता था वैसा ही व्यवहार सुग्रीव के और मेरे साथ भी करेगा। इसमें संशय न करना। रामचन्द्र के वचन मधुर और धर्मानुसारी थे। उनको सुनकर बाली ने कहा—हे इन्द्रतुल्य भयंकर पराक्रमी महीपति रामचन्द्र, बाण के घाव से मूर्छित होकर बिना जाने मैंने जो अनुचित वचन आपसे कहे हैं उनको आप क्षमा कीजिए और प्रसन्न हूजिए।

——

# उन्नीसवाँ सर्ग

## तारा आदि का विलाप

वानरों का राजा बाली भूमि पर बाण से पीड़ित पड़ा था। हेतु-युक्त वचनों से उसको समझा दिया गया था। वह अब कुछ न बोल सका। एक तो पत्थरों से उसके अंग चूर ही हो गये थे, दूसरे वृक्षों के घाव भी उसने सहे थे और तीसरे, रामचन्द्र के बाण की चोट तो ऐसी हुई कि उसकी मरणावस्था ही आ पहुची। अपने मरण के समय बाली मूर्छित हो गया। इतने में तारा ने यह समाचार पाया कि राम के बाण से बाली मारा गया। यह घोर संदेशा पाकर तारा अपने पुत्र को साथ लिये, उस पर्वत की गुफा से शीघ्र दौड़कर बाहर निकली। जो वानर अंगद को घेरकर चलते और महाबली कहलाते थे वे धनुर्द्धारी रामचन्द्र को देखकर डरकर भागने लगे। राम से डरकर वे ऐसे भागे जाते थे जैसे बाण के घाव से पीड़ित हों। यूथपति मृगों के मारे जाने से अपने झुण्ड का परित्याग कर भागनेवाले मृगों की नाईं इनको देख, तारा ने दुःखित होकर कहा—हे वानरो, तुम लोग जिस राजसिंह के अग्रगामी हो उसे छोड़कर इस तरह डरकर क्यों भागते हो? तो क्या राज्य के लिए निर्दय भ्राता ने राम के दूर तक जानेवाले बाणों से अपने भाई को दूर से मरवा डाला है।

कपि-पत्नी की यह बात सुनकर उन कामरूपी बानरों ने समय के अनुसार उत्तर दिया—हे रानी, तुम लौट जाओ और अपने पुत्र अंगद को बचाओ; क्योंकि रामरूपी काल बाली को मारे लिये जाता है। देखो, बाली अनेक वृक्षों और अनेक शिलाओं का प्रहार करके वज्ररूप बाणों से मारा गया। इन्द्र-तुल्य पराक्रमी वानरराज को मारा गया देख यह सेना डरकर भागी जाती है। इस नगरी की रक्षा के लिए तुम शूर वानरों को नियुक्त करो और अंगद को राज्याभिषेक कर दो। बाली के सिंहासन पर उसके पुत्र को देख वानर लोग उसकी सेवा करेंगे। हे सुन्दर मुखवाली, यदि तुमको यहीं रहना अच्छा लगे तो ये सब हनुमान् प्रभृति वानर किष्किन्धा के दुर्गों में चले जायँगे। इनमें बहुतेरों के साथ स्त्रियाँ हैं और बहुत से बिना ही स्त्री के हैं। ये सब सुग्रीव इत्यादि राज्य के लोभी हैं और इनसे हमारा पुराना वैर है। इसलिए इन लोगों से हम को बड़ा डर लगता है। वे वानर कुछ ही अन्तर पर थे। उनका यह वचन सुनकर तारा ने उचित उत्तर दिया कि जब वह वानरसिंह मेरा पति ही नष्ट हो गया तब मुझे पुत्र से, राज्य से और अपने शरीर से ही क्या करना है? इस समय मैं उसी महात्मा के चरणों के निकट जाऊँगी। वह राम के बाण से मारा गया है।

शोक से व्याकुल तारा यह कहकर रोती और दोनों हाथों से अपने सिर तथा छाती को पीटती हुई उधर की ओर दौड़ी। वहाँ जाकर उसने पति को भूमि पर पड़ा देखा। जो बड़े बड़े वानर समर में पीठ नहीं दिखाते हैं, उनको भी बाली ने मारा था। वज्र के चलानेवाले इन्द्र की तरह, वह बड़े बड़े पर्वतों को फेंकता था। वह इन्द्र के तुल्य पराक्रमी महावायु से भरे मेघों की भाँति गरजता रहता था। उसको श्रीरामचन्द्र ने इस तरह मारकर गिरा दिया था जैसे व्याघ्र, मांस के निमित्त, श्रेष्ठ मृग को मार डालता है और नाग को पकड़ने के लिए जैसे गरुड़ सब लोगों के पूजनीय, पताका और वेदी से सुशोभित वृक्ष को गिरा देता है। उस समय रामचन्द्रजी धनुष धारण किये खड़े थे और

लक्ष्मण तथा सुग्रीव भी वहीं थे। तारा ने उनको देखा। उनसे आगे बढ़कर, गिरे हुए पति को देखकर वह व्याकुल हो गिर पड़ी। फिर उठकर, वह "आर्यपुत्र" कहके, मृत्यु के बन्धन से बँधे पति को पुकारकर रोने लगी। कुररी की तरह चिल्लाती हुई तारा को और अंगद को वहाँ देखकर सुग्रीव बड़ा दुखी हुआ।

---

## बीसवाँ सर्ग

### तारा आदि का विलाप

रामचन्द्र के प्राणघाती बाण से मारे गये पति को देखकर, वह चन्द्रमुखी तारा अत्यन्त शोक से पीड़ित हो उससे लिपट गई। उसने कहा—हे संग्राम-कर्कश, पराक्रमीवानर वीर, तुम इस समय मुझे अपराधिनी क्यों मानते हो, मुझसे बोलते क्यों नहीं? हे वानरसिंह, उठो और चलकर अच्छे पलँग पर सोओ। तुम जैसे श्रेष्ठ राजा भूमि पर नहीं सोते। हे पृथ्वीनाथ, मैं जानती हूँ कि यह पृथ्वी तुमको अत्यन्त प्यारी है। तभी तो तुम प्राणहीन होकर भी मुझे छोड़ इसको से रहे हो। हे वीर, तुमने आज अपने धर्म-युद्ध के बल से स्वर्ग के मार्ग में किष्किन्धा की तरह पुरी बनाई है। तुम्हारे साथ इन मधुगंध से युक्त वनों में हम लोगों ने जो समय समय पर विहार किया है उसकी क्या समाप्ति की गई। हा! महायूथपतियों के यूथपति, तुम्हारे मरने से मैं आनन्द और आशा से हीन होकर शोक-समुद्र में डूब गई। हा, मेरा हृदय बड़ा कठोर है जो तुमको भूमि पर गिरा देख, शोक से सन्तप्त हो, टुकड़े टुकड़े नहीं हो जाता। तुमने जो सुग्रीव की भार्या हर ली और उसको वन में निकाल दिया था सो उसकी यह परिपाकावस्था तुम्हारे पास आ गई। देखो, मैं तुम्हारे हित की बात कह रही थी परन्तु तुमने मोह से मुझे दुतकार दिया। हे मानद, अब तुम स्वर्ग में जाकर रूप और यौवन से गर्विता बड़ी प्रवीण अप्सराओं के मन का उद्वेग बढ़ाओगे अर्थात् उनके मन में काम उत्पन्न करोगे। मैं जानती हूँ कि तुम्हारे जीवन का अंत करनेवाला काल ही है। उसी ने तुमको बलात्कार से लाकर सुग्रीव के वश में कर दिया। देखो दूसरे के साथ युद्ध करने में लवलीन बाली को अनुचित रीति से मारकर रामचन्द्र सन्ताप नहीं करते। इस प्रकार का निन्दित कर्म करके उनको अवश्य ग्लानि और पश्चात्ताप करना था। हा, अब तक मैं अदीन थी सो दीन हुई और सुख-पूर्वक वृद्धि को प्राप्त थी सो अब विधवा होकर शोक और सन्ताप को भोगूँगी, जैसे कि अनाथ स्त्री भोगती है। हा! यह दुलारा वीर सुकुमार अंगद सुख के योग्य है। अब इसकी क्या दशा होगी! सुग्रीव तो क्रोध कर रहे हैं, वह इससे कैसे अच्छा व्यवहार करेंगे! हे पुत्र, धर्म्मवत्सल पिता को देख लो क्योंकि फिर तुमको उनके दर्शन दुर्लभ हो जायँगे। हे प्रिय, इस पुत्र को उत्साह दो, और हमसे जो कुछ कहना हो सो कहो। पुत्र का माथा सूँघो क्योंकि अब तो तुम प्रवास के लिए तैयार हो। राम ने तुमको मारकर बड़ा काम किया। सुग्रीव से जो उन्होंने प्रतिज्ञा की थी, सो उसके ऋण से वे उत्तीर्ण हुए। हे सुग्रीव, अब तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो गया; तुम रुमा को प्राप्त करो। अब निश्चिन्त होकर राज्य करो, क्योंकि तुम्हारा शत्रुरूप भाई मारा गया। हे वानरेश्वर, देखो, ये तुम्हारी दूसरी भार्यायें तुमको घेर खड़ी हैं। मैं तुम्हारी प्यारी स्त्री विलाप कर रही हूँ। मुझसे तुम क्यों नहीं बोलते? तारा का विलाप सुनकर वे सब वानरियाँ अंगद को लेकर दुखार्त्त

हो चिल्लाने लगीं। तारा ने कहा कि हे महाबाहो, अंगद को छोड़ तुम अनन्तकाल के लिए क्यों यात्रा करते हो? गुणी, सुन्दर, मनोहर रूपवान् पुत्र का त्याग करना तुम्हारे लिए अच्छा नहीं। हे दीर्घ-भुजाओं-वाले वानरराज, मैंने जो कुछ तुम्हारा अप्रिय या अनुचित किया हो उसको क्षमा करो। मैं तुम्हारे चरणों पर सिर रखकर प्रणाम करती हूँ। इस प्रकार करुणा करके रोती हुई तारा ने, उन वानरियों के साथ, चाहा कि पति के पास अन्न-जल छोड़कर मरने के लिए बैठी रहे।

---

## इक्कीसवाँ सर्ग

### हनुमान् का तारा को समझाना

आकाश से गिरी हुई तारा की भाँति पति के पास तारा बैठी थी। उसको हनुमान् धीरे-धीरे समझाने लगे। उन्होंने कहा—मरने के अनन्तर प्राणी अपने गुण या दोष के द्वारा किये कर्म्मों के फल को, चाहे वे मंगलरूप हों या अमंगलरूप, अवश्य प्राप्त करता है। पाप-पुण्य के फन्दे में फँसी रहने के कारण तुम तो स्वयं सोचने योग्य हो, तुम भला किसका सोच कर रही हो; तुम तो कर्मफल के वश में होने के कारण दीन हो, तुम किसके लिए दया दिखला रही हो। भला कहो तो सही, इस पानी के बुलबुले के तुल्य देह में किसको किसके निमित्त पश्चात्ताप करना चाहिए! अब तू कुमार अंगद की ओर देख और इस आपत्ति में जो कुछ करना ठीक है उसको सोच। तू तो जानती ही है कि प्राणियों का जन्म और मरण अनियत है। इसलिए पंडित को शुभ लोकाचार का विधान करना चाहिए। देख, जिसके जीते जी सैकड़ों, सहस्रों और लक्षों वानर आशा करके जीते थे वह पुरुष शरीरान्त दशा को प्राप्त हुआ। बाली नीति द्वारा राज्य का शासन करता तथा साम, दान और क्षमा में तत्पर था, इसलिए उसको वह स्थान मिला जो धर्म से प्राप्त किया जाता है। इसलिए उसके विषय में तुझे शोक न करना चाहिए। देख, ये बड़े वानर लोग, तुम्हारा बेटा अंगद और बाली का राज्य—सभी तो तुम्हारे अधीन है। हे भामिनि, तू इन दोनों को आज्ञा दे। तेरी देख-रेख में रहकर अंगद इस पृथ्वी का शासन करे। जिस प्रयोजन के लिए शास्त्र में संतति कही है वह समय आ पहुँचा है। मृत राजा के हेतु जो कुछ करना चाहिए वह किया जाय; क्योंकि इस समय के लिए यही निश्चय है। सो तू अब वानरराज का संस्कार कर और अंगद का राज्याभिषेक कर। जब तू पुत्र को सिंहासन पर बैठा देखेगी तब तेरा चित्त उद्वेग को छोड़कर शान्त हो जायगा।

पति के दुख से दुःखिता तारा हनुमान् के ये वचन सुनकर उनसे बोली कि अंगद के तुल्य सौ पुत्र एक ओर हैं और इस मरे हुए वीर के शरीर का आलिंगन एक ओर है। इस समय तो पति के शरीर ही का आश्रय करना मेरे लिए अच्छा है। न इस राज्य पर मेरा कुछ वश है और न अगद को मैं राज्य देने में ही समर्थ हूँ। अंगद के चाचा सुग्रीव ही सब कार्य्यों के अधिष्ठाता होंगे। हे हनुमान्, अंगद के विषय में ऐसी बुद्धि करना ठीक नहीं क्योंकि पुत्र का बन्धु पिता ही है, माता नहीं। मेरे लिए क्या इस लोक में और क्या परलोक में इस वानरराज के आश्रय के सिवा और कुछ भी हितकारक नहीं है। इसलिए सम्मुख

युद्ध में गिरे हुए पति के शयन ही का मुझे अवलंबन करना चाहिए।

---

## बाईसवाँ सर्ग

### बाली का सुग्रीव और अंगद के प्रति कुछ कहकर शरीर त्यागना

बाली के प्राणवायु धीरे धीरे चल रहे थे। उसने चारों ओर देखकर और धीरे से ऊपर को श्वास लेकर सामने खड़े सुग्रीव की ओर देखा। विजयी भाई को देख कर वह स्नेहपूर्वक कहने लगा—हे सुग्रीव, तुम मुझे कुछ भी दोष न देना क्योंकि मैं पाप के कारण इस बुद्धि के मोह से बलात्कार खींचा गया हूँ। हे तात, मैं समझता हूँ कि हमारा तुम्हारा एक साथ सुख होना नहीं बदा था। क्योंकि भाई के संयोग से सौहार्द अर्थात् प्रेम होना चाहिए सो देखो यह उससे उलटा हो गया। अब तुम इन वानरों के राज्य को लो और मुझे इसी समय यमराज की पुरी में पहुँचा समझ लो। अब मैं अपने जीवन, प्रिय राज्य, इस बड़ी संपत्ति और इन अनिन्दित यश को शीघ्र ही त्याग करता हूँ। हे वीर, अब मैं इस अवस्था में जो कहता हूँ वह करने में यद्यपि कठिन है परन्तु तुम अवश्य करना। भूमि पर पड़े हुए इस अंगद की ओर देखो। यह सुख के योग्य है और सुख में ही इतना बड़ा हुआ है। यह मूर्ख नहीं है। मेरे प्राणों से भी प्यारे इस बालक की तुम सब प्रकार से अपने बेटे की तरह रक्षा करो। मेरे बिना इसे किसी प्रकार का दुःख न हो। क्योंकि मेरे समान तुम भी इसके पिता, दाता, सब प्रकार से त्राणकर्त्ता और भयस्थानों में निडर करनेवाले हो। इसलिए सब प्रकार से इसका परिपालन करना। मैं यह भी कहे देता हूँ कि यह तारा का पुत्र तुम्हारे ही तुल्य पराक्रमी है और उन राक्षसों के मारने में तुम्हारे आगे होकर लड़ेगा। यह बलवान् अपने पराक्रम से यथोचित काम करेगा क्योंकि यह तेजस्वी और तरुण है। यह सुषेण की पुत्री तारा सूक्ष्म अर्थ के निश्चय करने में और नाना प्रकार के उत्पातों के विचार में अर्थात् उत्पात से उत्पन्न भय के निर्णय करने में बड़ी चतुर है। इसलिए जो काम इसके विचार में ठीक ठहरे उसको करना। उसमें कुछ संदेह न करना; क्योंकि तारा का किया हुआ कोई विचार अन्यथा नहीं होता। रामचन्द्र का कार्य्य भी शंकारहित होकर करना। यदि न करोगे तो अधर्म होगा और राघव भी, अनादर होने से, तुम को मारेंगे। हे सुग्रीव, इस सुवर्ण की माला को मेरे गले से उतार कर अपने गले में पहन लो। इस माला में जयश्री का निवास है। यदि मैं इसको पहने हुए मर जाऊँगा तो फिर इसमें वह प्रभाव न रहेगा। मेरे मृत शरीर का स्पर्श होने से वह श्री इस माला से निकलकर चली जायगी।

भाई की ये बातें सुनकर सुग्रीव, उसके मोह के मारे, हर्ष को छोड़ ऐसा दीन हो गया जैसा राहु के ग्रास से चन्द्र दीन हो जाता है। सुग्रीव ने वह माला लेकर गले में पहन ली और सब काम करना स्वीकार किया। अब माला देकर और अपने पुत्र को समीप खड़ा देखकर बाली स्नेह से बोला—हे पुत्र, इस समय तुम देश और काल का सेवन करो और प्रिय तथा अप्रिय में क्षमावान् हो। सुख और दुःख को सह करके सुग्रीव के वश में रहो। हे महाबाहो, मैंने जैसा तुम्हारा लालन-पालन सदा किया था वैसा सुग्रीव न करेंगे, (क्योंकि अब तुम बड़े हो)। इसलिए न इनके मित्रों का और न,

शत्रुओं का अनुगामी होना; स्वामी के अर्थसाधन में तत्पर और जितेन्द्रिय होकर सुग्रीव के वश में सदा रहना। न अत्यन्त प्रेम रखना और न अत्यन्त द्वेष करना; क्योंकि ये दोनों दोष के कारण हैं। मध्यभाव से तुम अपना निर्वाह करना। यह कहकर बाली ने बाण की अत्यन्त पीड़ा से दोनों नेत्रों को और दाँतों को निकाल कर प्राण छोड़ दिये। तब तो सब वानर बड़े शब्द से रो-रोकर कहने लगे—हा! हे वानरेश्वर, तुम्हारे मरने से आज किष्किन्धा, वाटिका, पर्वत और जंगल शून्य हो गये! हा! इस वानरसिंह के मारे जाने से वानरगण प्रभा-हीन कर दिये गये। देखो, बाली ने गोलभ नामक महाबली गन्धर्व के साथ पन्द्रह वर्ष पर्य्यन्त द्वन्द्वयुद्ध किया था। वह युद्ध न रात्रि को रुकता था और न दिन को। सोलहवें वर्ष बाली ने उस दुष्ट को मार गिराया और हम लोगों को अभय किया। वह अब किस प्रकार मारा गया। उस वानर-राज के मारे जाने से सब वनचर दुःखी हो गये जैसे सिंहयुक्त वन में गायों के स्वामी के मरने से वे पीड़ित हो जाती हैं।

भूमि पर पड़े हुए मृत पति का मुँह देख कर तारा भी, वृक्ष से छूटी हुई लता की तरह, पृथिवी पर गिर पड़ी।

---

## तेईसवाँ सर्ग

### तारा का विलाप

अब उस समय तारा अपने मृत पति के मुख को सूँघती हुई बोली कि हे वीर, तुम मेरा कहना न मानकर इस ऊँची-नीची क्लेश देनेवाली पथरीली भूमि पर सो रहे हो। हा! हे वानरेन्द्र, यह भूमि क्या मुझसे भी अधिक प्यारी है जिससे कि तुम उसका आलिङ्गन किये पड़े हो और मुझसे बोलते भी नहीं? हे साहसप्रिय वीर, बड़े आश्चर्य की बात है कि यह रामरूप दैव सुग्रीव के वश में हो गये। इसलिए सुग्रीव ही पराक्रमी ठहरे। देखो ये प्रधान प्रधान भालू और वानर तुम्हारी शुश्रूषा कर रहे हैं। उनके, शोकग्रस्त अङ्गद के और मेरे वचनों को सुन कर तुम क्यों नहीं जागते? हे वीर, यह वही वीरशय्या है, जहाँ तुमने अपने शत्रुओं को मारकर सुला दिया था। हा! अब वहीं तुम आप सोते हो। हे शुद्ध पराक्रमी, शुद्ध कुलवाले, मेरे प्यारे, मुझ अनाथा को छोड़कर तुम चले गये? पण्डित को चाहिए कि शूर को कभी अपनी कन्या न ब्याहे। देखो मैं शूर की पत्नी थी सो-क्षण मात्र में विधवा कर दी गई। इससे मेरा मान और मेरी सुख की प्राप्ति भग्न हो गई। मैं इस अगाध शोकसागर में डूब रही हूँ। हाय! मेरा हृदय अवश्य पत्थर सा दृढ़ है, जो आज पति को मरा हुआ देखकर भी विदीर्ण नहीं हो जाता। प्यारा बाली मेरा सुहृद भी था और पति भी। पराक्रमी और शूर होकर भी वह मरण-दशा को प्राप्त हो गया। नारी यद्यपि पुत्रवती हो परन्तु पति से हीन हो जाय तो धन-धान्यसंयुक्त होने पर भी वह विधवा ही कहलाती है। हे वीर, तुम अपने शरीर के रुधिर-मण्डल में सो रहे हो जैसे कि अपने लाल रंग के बिछौने पर सोते थे। देखो, तुम्हारे शरीर में रक्त और धूल लिपटी हुई है। इस अवस्था में शोक और निर्बलता के कारण मैं अपनी भुजाओं से आपको आलिंगन नहीं कर सकती। इस दारुण वैर में आज सुग्रीव कृतार्थ देख पड़ते हैं। राम के एक बाण ने उनके भय को हटा दिया। हा! हे वीर, तुम्हारी छाती में जो यह बाण गड़ा है इसकी रोक से मैं भरपूर तुम्हारा आलिंगन नहीं कर सकती। मैं केवल देख रही हूँ।

तब नील नामक वानर ने उस बाण को खींच लिया जैसे कि पर्वत की गुफा में से प्रज्वलित सर्प खींच लिया जाय। उस खींचे हुए बाण की ऐसी शोभा हुई जैसे अस्ताचल पर पहुँचे हुए सूर्य की किरण खींच ली गई हो। उस बाण के निकाले जाते ही बाली के शरीर के घावों से रुधिर की धारा इस तरह बह निकली जैसे पर्वत से लाल गेरू की धारा बह निकले। अब तारा, रथ के धूल से लिपटे हुए, अपने पति के शरीर को पोंछने और आँसुओं से सींचने लगी। उसने अंगद से कहा—हे पुत्र, अपने पिता के अन्त की इस दारुण अवस्था को देखो। पाप-कर्म के वैर की यह अन्त अवस्था हुई। हे वत्स, बालसूर्य के तुल्य उज्ज्वल शरीर-धारी तुम्हारे पिता यमपुरी को चले गये। अब तुम इनको प्रणाम करो।

यह सुनकर अङ्गद ने उठकर अपनी मोटी मोटी भुजाओं से पिता के चरणों को प्रणाम किया और अपने नाम का उच्चारण किया। फिर तारा ने कहा—हे प्रिय! अङ्गद जब पहले तुमको प्रणाम करता था, तब तुम कहते थे कि "हे पुत्र चिरंजीव रहो।" उसी प्रकार इस समय आशीर्वाद क्यों नहीं देते? देखो, मैं इस समय पुत्र को साथ लिये तुम्हारी उपासना कर रही हूँ जैसे कि सिंह से मारे गये बैल की सेवा बछड़े के साथ गाय करती है। हे प्रिय, तुमने संग्रामरूप यज्ञ किया और उसमें राम के बाणरूप जल में मेरे बिना अकेले ही किस प्रकार से अवभृत स्नान अर्थात् यज्ञ के अन्त का स्नान किया। इन्द्र ने संग्राम से प्रसन्न होकर तुमको जो सुवर्ण की माला दी थी वह मैं तुम्हारे गले में नहीं देखती। यह क्या बात है? हे आदर करनेवाले, प्राण निकल जाने पर भी यह राज्यश्री तुमको नहीं छोड़ती। सूर्य के अस्त हो जाने पर भी जैसे अस्ताचल पर देर तक प्रभा बनी रहती है उसी तरह तुम्हारी प्राण-हीन देह में अब तक शोभा है। हा!

मम वचन हित नहि मानि।
तुम कीन्ह प्रिय निज हानि॥
तेहि खिन सकी न निवारि।
निज भाग्य बल निरधारि॥
तव मरण ते मैं नाथ।
भई पुत्र-सहित अनाथ॥
श्री तजनि है जिमि तोहि।
तिमि तजति है प्रिय मोहि॥

---

## चौबीसवाँ सर्ग

### सुग्रीव का विलाप, तारा की प्रार्थना और रामचन्द्र का तारा को समझाना

शोक-सागर में डूबी हुई तारा को देख सुग्रीव अपने भाई के उस अनुपम घात से दुखी हुए और आँखों में आँसू भरे अत्यन्त खेदयुक्त होकर अपने चारों अनुचरों को साथ ले धीरे-धीरे रामचन्द्र के पास आये। रामचन्द्र हाथ में धनुष लिये और उस पर बड़े तीक्ष्ण बाण चढ़ाये लक्ष्मण के साथ खड़े थे। वहाँ आकर सुग्रीव ने कहा—हे नरेन्द्र, जैसी आपने प्रतिज्ञा की थी वैसा काम किया। मैंने भी उसको सफल देख लिया, परन्तु हे नरेन्द्र-पुत्र! अब मेरा मन इन भोगों से हट गया है। अपने इस नष्ट जीवन से मैं कुछ भी सुख की इच्छा नहीं करता। हे रामचन्द्र, देखिए यह पटरानी कैसी रो रही है; राजा मारा गया और अङ्गद भी शङ्कित है। प्रजा भी दुखी है। इसलिए राज्य में मेरा मन नहीं लग सकता। हे इक्ष्वाकुश्रेष्ठ, क्रोध से

या डाह से अथवा अत्यन्त अपमान होने से मेरा मन भाई के मारने के लिए पहले उद्यत हुआ था परन्तु अब इसके मारे जाने पर मैं अत्यन्त दुखी हो रहा हूँ। मैं उसी ऋष्यमूक पर्वत पर जाकर रहना और किसी प्रकार अपनी जीविका का निर्वाह करना ठीक समझता हूँ। भाई को मारकर मुझे स्वर्ग का लाभ भी अब नहीं रुचता। देखिए, उस महात्मा बुद्धिमान् ने मुझसे कहा था कि मैं तेरा घात नहीं करना चाहता, तू मनमाना घूमा कर। हे रामचन्द्र, उसका वचन उसी के योग्य था। मेरा वचन और उसके अनुसार यह मेरा कर्म क्या उस वचन के योग्य हो सकता है? हे राम! भाई कैसा भी लोभी हो तो भी क्या ऐसे महागुणी भाई के वध को चाहेगा? परन्तु हाँ, यदि वह राज्य के और भाई के घात-रूप दुःख के सार को न विचारेगा तो इस दुष्ट कर्म को करेगा। हे वीर, अपने बड़प्पन का खयाल करके मुझे मारने का भाई ने विचार नहीं किया किन्तु मेरी बुद्धि ऐसी दुष्ट हो गई कि उसके द्वारा ऐसा प्राणघाती कर्म कर बैठा। देखिए, जब मैं यहाँ आकर मुहूर्त्त भर गरजा और मैंने भाई को ललकारा तब उसने वृक्ष की शाखा से मुझे मारकर आश्वासन दिया और कहा कि देख, फिर मेरे सामने ऐसी ढिठाई न करना। हे रघुवर, उसने अपने भाईपन, श्रेष्ठता और धर्म को बचाया परन्तु मैंने अपना क्रोध, लोभ और वानरपन ही प्रकट किया। हे मित्र, भाई के वध से मैं ऐसे पाप में पड़ा कि जो विचार करने के योग्य नहीं, उस पाप का परित्याग करना ही यथेष्ट था। उस पाप की इच्छा करना भी अयोग्य और उसकी ओर दृष्टि करना भी अशक्य है। विश्वरूप के मारने से इन्द्र को जैसा महापाप लगा था वैसा ही यह मुझे लगा। भला इन्द्र के पाप को तो पृथ्वी, जल, वृक्ष और स्त्रियों ने बाँट लिया; परन्तु मुझ वानर के इस पाप को कौन सह सकता और बाँट सकता है! हे राघव, यह पाप अधर्मयुक्त और कुल का नाशक है। इसको करके मैं प्रजा से आदर पाने योग्य नहीं रहा। यहाँ तक कि मुझे यौवराज्य की भी योग्यता नहीं; राज्य की कौन कहे। हे रामचन्द्र, मैंने यह निन्दित, क्षुद्र और लोकोपकारी पाप किया। इस समय मुझे यह बड़ा शोक ऐसा सता रहा है जैसा वृष्टि के जल का वेग नीची भूमि को डुबोता है। देखिए यह पापरूपी मतवाला हाथी मेरा घात कर रहा है यह हाथी सहोदर के घातरूप अङ्ग और केशों से युक्त है; यह सन्ताप रूप शुण्ड, नेत्र, कुम्भ और दाँतों से विचित्रित है। जैसे बनैला हाथी नदी के तट को तोड़ता है वैसे ही यह मुझे नष्ट कर रहा है। हे नरश्रेष्ठ, बड़े खेद की बात है कि यह पाप मेरे हृदय से साधु भाव का नाश वैसे कर रहा है जैसे खराब सोना, आग में तपाये जाने पर, अपने मैल का विनाश करता है। हे राघव, देखिए मेरे कारण अङ्गद के शोक-सन्ताप से इन महाबली वानर सेना-पतियों के कुल का आधा जीवन रह गया है। हे रघुवर, पुत्र का होना सहज है, और साधु जन का वश होना भी कठिन नहीं, पर अंगद के सदृश दूसरा पुत्र काहे को होगा! हे वीर ऐसा देश कोई नहीं जहाँ फिर भाई से भेंट हो। देखिए, पिता के मरने से अंगद के जीने में सन्देह है; परन्तु माता का परिपालन करने के लिए जीता रहे तो जीता रहे। यदि अंगद न रहेगा तो उसकी माता तो कभी नहीं जी सकती; यह मुझे निश्चय है। अपने भाई और उसके पुत्र के साथ मैत्री की इच्छा करके मैं अग्नि में प्रवेश करूँगा। ये बड़े-बड़े वानर, मेरी आज्ञा से, सीता को ढूँढेंगे। हे राजेन्द्रपुत्र, मैं मर जाऊँगा तो भी आपका कार्य सिद्ध हो जायगा। हे रामचन्द्र, मैं कुल का नाशक और जीवित रहने

के अयोग्य हूँ। मुझ अपराधी को अब आप आज्ञा दीजिए।

भुवनों के रक्षक क्षमावान् श्रीरामचन्द्र इस प्रकार से पीड़ित सुग्रीव को देखकर मुहूर्त्त भर अत्यन्त उदास हो गये। बार-बार भूमि की ओर देखते हुए वे दुःख-सागर में डूबी और रो रही तारा की ओर देखने लगे। सुन्दर नेत्रोंवाली तारा अपने पति का आलिंगन किये भूमि पर पड़ी थी। उसको मन्त्रियों ने पति से अलग करवा दिया। तब पति से अलग की जाती हुई तारा ने रामचन्द्र को देखा जो हाथ में धनुर्बाण लिये, तेज से सूर्य की भाँति प्रकाश करते और सम्पूर्ण राजचिह्नों से शोभित थे। पुरुषप्रधान श्रीरघुनन्दन को उसने कभी पहले न देखा था। आज उसने देखा कि यही रामचन्द्र हैं। इन्द्रतुल्य दुर्धर्ष और महाप्रभावयुक्त महाराज रामचन्द्र को देख तारा अत्यन्त विह्वल हो उनके समीप आई। शोक के कारण अपनी शरीर-दशा की ओर उसका ध्यान ही न था। वह संग्राम के जय करनेवाले रामचन्द्र से बोली—हे राघव! आप अप्रमेय, दुराधर्ष, जितेन्द्रिय, उत्तम धर्मधारी, पूरे यशस्वी, चतुर, पृथ्वी के तुल्य क्षमावान्, आरक्त नेत्रोंवाले, धनुर्बाणधारी, महाबली, दृढ़शरीर और मनुष्यशरीर के अभ्युदय से श्रेष्ठ दिव्य शरीर-सम्पत्ति से संयुक्त हैं। हे वीर, जिस बाण से आपने बाली को मारा है उसी से मुझे, भी मारिए, जिससे मैं मरकर उसके पास जाऊँ; क्योंकि मेरे बिना बाली को आनन्द न प्राप्त होगा। हे कमलनयन, स्वर्ग के लोगों से जब बाली मिलेगा और वहाँ मुझे न पावेगा तब वहाँ के विचित्रवेषधारिणी और नाना प्रकार के लाल पुष्पों से भूषित मस्तकोंवाली अप्सराओं के साथ विहार न करेगा। हे वीर, स्वर्ग में भी बाली मेरे बिना शोकयुक्त और म्लानमुख ही बना रहेगा, जैसे कि रमणीय पर्वतों पर भी आप सीता के बिना खिन्न होते हैं। आप तो स्त्री के वियोग-दुःख को जानते ही हैं; क्योंकि सुन्दर पुरुष स्त्री के बिना प्रायः दुःखित होते हैं। इसलिए आप इस बात के तत्त्व का विचार कर मुझे मारिए। मुझे न देखकर बाली स्वर्ग में न ठहर सकेगा। हे महात्मन्, यदि आप यह बात मानते हों कि मुझे मारने से स्त्री-वात का दोष होगा तो इस शंका को छोड़ दीजिए। आप यह समझ लीजिए कि तारा भी बाली की ही आत्मा का एक अंश है। ऐसा समझने से आपको स्त्री-वध का प्रायश्चित्त न होगा। देखिए शास्त्रों में और वेदों में भी यह बात लिखी है कि पुरुष का ही एक स्वरूप स्त्री है अर्थात् पति और पत्नी को एक ही रूप समझना चाहिए। देखिए, स्त्री-दान के तुल्य दूसरा दान नहीं है। आप भी मुझे मेरे प्यारे पति को समर्पण करेंगे, इसलिए आपको कुछ भी अधर्म न होगा। देखिए, मैं आर्त्त, अनाथ और पति के पास से हटाई हुई हूँ। मुझे इस दुःख-दशा से हटाने के लिए अवश्य मारिए। हे नरेन्द्र, मत्त हाथी के तुल्य गमन करनेवाले उस वानरराज के बिना मैं बहुत समय तक न जी सकूँगी।

तारा के ये वचन सुनकर रामचन्द्र उसे समझाने लगे और यह हित-वचन बोले—हे वीर पत्नी! तुम ऐसी कुबुद्धि की बात मत कहो; क्योंकि यह सम्पूर्ण लोक विधाता का बनाया हुआ है। उसी के किये हुए सुख और दुःख के संयोग लोगों को प्राप्त होते हैं। देखो, ये तीनों लोक उस विधाता के किये हुए विधान का उल्लङ्घन नहीं कर सकते; क्योंकि सब उसी के वश में है। पूर्ववत् तुम्हें फिर उत्कृष्ट प्रसन्नता प्राप्त होगी। तुम्हारे पुत्र को यौवराज्य मिलेगा। विधाता ने वैसा

ही विधान कर रक्खा है। शूरों की स्त्रियाँ ऐसा विलाप नहीं करतीं जैसा तुम कर रही हो।

दोहा

मृदु प्रभाव रस-नीतियुत, सुनि रघुपति के बैन।
तारा के मन बोध भा, मिटा शोक दुख ऐन॥

---

## पच्चीसवाँ सर्ग

### रामचन्द्र का सुग्रीव, तारा और अङ्गद को समझा-बुझाकर बाली की और्ध्व-दैहिक क्रिया करवाना

उस समय सबकी तरह राम-लक्ष्मण को भी शोक था। रामचन्द्र ने सुग्रीव, तारा और अंगद को समझाकर कहा कि शोक और सन्ताप करने से मृतक का कल्याण नहीं होता। इसलिए तुम लोग आगे का कार्य करो और लोकाचार में मन दो। रोना-धोना बहुत हुआ। होना था सो हो चुका। जिस समय जो कर्म्म करना विहित है उस समय उसी को करना चाहिए। दूसरा कर्म करने और उस समय को बिता देने से ठीक नहीं होता; क्योंकि लोक में काल ही कारण है और उसी से कर्म्म सिद्ध होते हैं। प्राणिमात्र के कार्य्यों में काल ही कारण है। दूसरा कोई किसी का कर्त्ता नहीं है और न दूसरे को किसी काम में ईश्वरत्व प्राप्त है। पूर्वसम्पादित कर्मरूप स्वभाव से सब लोक बर्तते हैं और उस स्वभाव का साथी होकर काल सब काम करता है। देखो, वह कालरूपी ईश्वर अपनी व्यवस्था से बाहर कोई काम नहीं करता। वह काल किसी प्रकार से हीन नहीं हो सकता अर्थात् उसकी हानि करनेवाला कोई भी नहीं। हर एक वस्तु अपने दैवरूप स्वभाव को पाकर उसी के अनुसार बर्तती है। किसी प्रकार उसका उल्लङ्घन नहीं कर सकती। काल की न किसी के साथ बन्धुता है और न उसका कोई हेतु है। उसमें न कोई पराक्रम लग सकता और न मित्र या ज्ञाति का सम्बन्ध उसमें कारण है। वह वश में भी नहीं हो सकता। इसलिए विवेकी पुरुष को चाहिए कि धर्म, अर्थ और काम को, काल के क्रम से उत्पन्न हुआ जान, काल का ही परिणाम जाने। देखो, बाली अपनी प्रकृति अर्थात् पूर्वदशा (इन्द्रलोक) को प्राप्त हुआ। अपने प्रारब्ध के फल को—जो साम, दाम, दान और ऐश्वर्य के संयोग से पवित्र था—इस लोक में भोगकर अपने धर्म के संयोग से इस महात्मा ने शरीर छोड़कर स्वर्ग को भी जीत लिया। यह काल-कृत व्यवस्था की प्राप्ति श्रेष्ठ है जिसमें कि यह वानर राज जा पहुँचा। अब सन्ताप करना व्यर्थ है। इस-लिए कालानुसार व्यवहार करना चाहिए।

सुग्रीव इस समय अचेत हो रहे थे। उनसे, राम-चन्द्र के समझा चुकने पर, लक्ष्मण ने नम्रतापूर्वक कहा—हे सुग्रीव, अब तुम तारा और अंगद के साथ बाली का प्रेत-कार्य करो। इसके जलाने के लिए बहुत सी सूखी लकड़ियाँ और दिव्य चन्दन-काष्ठ मँगवाओ। यह दुःखित अंगद दीन हो रहा है, इसको समझाओ और मूर्ख-बुद्धि मत करो; क्योंकि अब यह शहर तुम्हारे अधीन है। अंगद से कहो कि पुष्प, नाना प्रकार के वस्त्र और घृत, तैल तथा गन्धपदार्थ ले आवे। हे तार, तुम शीघ्र पालकी ले आओ क्योंकि इस समय विशेष करके शीघ्रता ही योग्य और गुणवती है। जो वानर बली, समर्थ और पालकी ढोने के योग्य हैं वे उद्यत हों और बाली को उठावें।

अब लक्ष्मण फिर रामचन्द्र के पास आ खड़े हुए। लक्ष्मण के वचन सुनकर तार नामक वानर शीघ्र गुफा में गया और पालकी उठा लाया। वह दिव्य पालकी राजा के बैठने के योग्य आसन से युक्त, रथ के तुल्य और पक्षियों, वृक्षों तथा अद्भुत पुरुषों के चित्रों से चित्रित थी। वह चारों ओर से ठीक-ठीक बनी, सिद्धों के विमान के तुल्य जालियों और झरोखों से भूषित तथा सुन्दर रीति से बनाई गई थी। चतुर शिल्पियों ने उसे बनाया था। वह काष्ठ के क्रीड़ा-पर्वत से संयुक्त, सुन्दर रचनाओं से भूषित, अच्छे-अच्छे भूषणों, हारों और चित्र-विचित्र पुष्पों से मनोहर थी। उस पर अच्छे वस्त्र की छत थी। वह रक्त-चन्दन से भूषित, नाना पुष्प इत्यादि पदार्थों से सजी और सूर्य्य के तुल्य चमकीली कमल की मालाओं से आच्छादित थी। उस पालकी को देखकर रामचन्द्र ने लक्ष्मण से कहा कि बाली को शीघ्र उठवाकर प्रेतक्रिया करवानी चाहिए। तब सुग्रीव और अंगद दोनों ने बाली को नाना प्रकार के भूषणों, पुष्पों और वस्त्रों से भूषित करके, रोते-रोते उठाकर, पालकी पर चढ़ा दिया। सुग्रीव ने आज्ञा दी कि आर्य का और्ध्व-दैहिक कर्म अच्छी तरह किया जाय। आगे-आगे बहुत से वानर नाना प्रकार के रत्नों को लुटाते चले, उसके पीछे शिविका चले। राजाओं की जैसी समृद्धि देखी जाती है उसी के अनुसार वानर लोग अपने स्वामी का सत्कार करें। सुग्रीव की आज्ञा के अनुसार सबने बाली की वैसी ही क्रिया की। अब तार इत्यादि वानर लोग अङ्गद के साथ रोते हुए चले। तारा इत्यादि वानरियाँ, वीर-वीर कहकर, जोर से रोती हुई पीछे-पीछे चलीं। उस समय उनके शब्द की प्रतिध्वनि से ऐसा जान पड़ता था मानो चारों ओर के वन और पर्वत रोते हों।

अब पहाड़ी नदी के तीर पर बहुत से वानरों ने मिलकर चिता बनाई। ढोनेवाले वानरों ने वहाँ पालकी को उतार दिया। वे शोकसन्तप्त हो एक ओर जाकर खड़े हो गये। उस शिविका पर सोये हुए पति को देख तारा ने, उसका सिर गोदी में लेकर, दुःखित हो विलाप करना आरम्भ कर दिया। हा वानर-महाराज, हा नाथ, हा मेरे दयालो, हा महायोग्य, हा महाबाहो, हा मेरे प्यारे, मुझे देखो। मुझ शोक-पीड़ित की ओर तुम क्यों नहीं देखते? प्राण निकल जाने पर भी मैं तुम्हारे मुख को हर्षित ही देखती हूँ। अस्ताचल को प्राप्त होते सूर्य की तरह तुम्हारा मुँह चमक रहा है। जीते जी तुम्हारा चेहरा जैसा देख पड़ता था वैसा ही इस समय भी है। देखो, यह काल रामरूप होकर तुमको खींचे लेता है। इसने एक ही बाण से हम सब वानरियों को विधवा कर डाला। हे राजेन्द्र, ये तुम्हारी पत्नी-वानरियाँ इतनी दूर पैदल चली आईं। इनको तुम क्यों नहीं देखते! देखो, ये तुम्हारी प्यारी चन्द्रमुखी सब वानरियाँ यहाँ उपस्थित हैं। हे वानरराज, इस समय तुम सुग्रीव की ओर क्यों नहीं देखते? देखो, ये तार इत्यादि तुम्हारे सचिवगण और पुरवासी जन तुमको घेरकर खड़े हैं और खेद कर रहे हैं। इनको पहले की तरह बिदा करो तब हम सब काम से उन्मत्त होकर तुम्हारे साथ विहार करें।

इस प्रकार विलाप करती तारा को सब वानरियों ने उठाया। अब अङ्गद ने रोते-रोते, सुग्रीव के साथ, अपने पिता को उठाकर चिता पर रख दिया और चिता में विधिपूर्वक आग लगा दी। उस समय पिता को दीर्घपथ का प्रस्थान करते देख अङ्गद बहुत व्याकुल हो गया। वानर लोग बाली का विधिपूर्वक संस्कार करके तिलाञ्जलि देने के लिए निर्मल जल-युक्त पवित्र नदी के

तीर पर आये। अङ्गद को आगे करके, सुग्रीव और तारा को साथ ले, उन लोगों ने जलक्रिया की। रामचन्द्र सुग्रीव के ही तुल्य दीन और शोकान्वित हो गये थे। उन्होंने सम्पूर्ण प्रेतक्रिया करवाई।

दोहा

एहि बिधि बिधियुत सकल कर, तहाँ क्रिया सुग्रीव।
आये सह सौमित्र जहँ, रहे राम बलसींव।

---

## छब्बीसवाँ सर्ग

### सुग्रीव का राज्याभिषेक

शोकरूप अग्नि से सन्तप्त सुग्रीव गीले कपड़े पहने खड़े थे। उनको प्रधान मन्त्री लोग घेरकर रामचन्द्र के पास गये, और हाथ जोड़कर खड़े हुए, जैसे कि ऋषि लोग ब्रह्मा को घेरकर खड़े होते हैं। हनुमान् सुवर्ण-पर्वत के तुल्य प्रकाशमान् थे। तरुण सूर्य के तुल्य उनका मुख सुशोभित था। वे हाथ जोड़कर बोले—हे काकुत्स्थ, आपके प्रसाद से सुग्रीव को अपने बाप-दादे का दुर्लभ राज्य मिल गया। कराल्दन्तवाले बड़े बली और महात्मा वानरों के राजा सुग्रीव हुए। प्रभो, अब ये आपकी आज्ञा से नगर में जाकर अपने सुहृदों के साथ सब कार्य करेंगे। विविध गन्धों और ओषधियों-द्वारा ये स्नान करेंगे। आपको इस पर्वत-कन्दरा (किष्किन्धा) में प्रवेश करना चाहिए। वहाँ पुष्पों और रत्नों से ये आपका सत्कार करेंगे। आप वानरों के स्वामी हैं, इनको आनन्दित कीजिए।

यह सुनकर रामचन्द्र बोले—हे सौम्य, मैं चौदह वर्ष तक न ग्राम में प्रवेश करूँगा, और न नगर में। मुझे तो पिता की आज्ञा पूरी करनी है। समृद्ध किष्किन्धा नगरी में सुग्रीव यथाविधि प्रवेश करें, और शीघ्र अभिषिक्त हों। इसके पश्चात् उन्होंने सुग्रीव से कहा कि देखो, तुम व्यवहार में चतुर हो। अब तुम चरित्र-सम्पन्न, बड़े बली और पराक्रमी अङ्गद को यौवराज्य पर स्थापित करो। देखो, एक तो यह तुम्हारे बड़े भाई का बड़ा बेटा है, दूसरे पराक्रम में भी पिता के सदृश और अदीनात्मा ( दिलेर ) है, इसलिए यह अङ्गद यौवराज्य के योग्य है। हे सौम्य, यह वर्षा-ऋतु का पहला महीना श्रावण है। वर्षा-ऋतु के चार महीने प्रसिद्ध हैं। इसलिए अभी जाओ, यह उद्योग का समय नहीं है। तुम पुरी में जाओ। मैं लक्ष्मण के साथ इस पर्वत पर निवास करूँगा। यह पर्वत की विशाल गुफा रमणीय, वायुसंयुक्त, जल से सम्पन्न और कमलों से भूषित है। जब कार्त्तिक लगे तब तुम रावण के वध के लिए उद्योग करना। हमारी-तुम्हारी यही प्रतिज्ञा रहे। इस समय तुम अपने घर जाओ और राज्याभिषेक करवाके अपने मित्रों को हर्षित करो।

राम की यह आज्ञा पाकर वानरश्रेष्ठ सुग्रीव किष्किन्धा में गये। जाते समय सहस्रों वानर उनको चारों ओर से घेरे हुए नगरी में गये। अब बस्तीवालों ने वानरों के महाराज सुग्रीव को देख माथा टेककर दण्डवत् प्रणाम किया। सुग्रीव ने उन सबको उठाकर और समझाकर भाई के अन्तःपुर में प्रवेश किया। वहाँ महापराक्रमी वानरश्रेष्ठ सुग्रीव का इनके सुहृद्गणों ने अभिषेक करना आरम्भ किया, जैसे कि देवों ने इन्द्र का अभिषेक किया था। सुग्रीव के अभिषेक के लिए सुवर्णदण्ड से भूषित श्वेत छत्र, सुवर्णदण्डी से युक्त दो बढ़िया चमर, सब प्रकार के रत्न, बीज और ओषधियाँ, दुग्धवाले वृक्षों के वरोह और फूल, श्वेत वस्त्र, श्वेत

अङ्गराग, अच्छी सुगन्धित मालाएँ, स्थलकमल, दिव्य चन्दन, अनेक प्रकार के बहुत से गन्धद्रव्य, सुवर्ण, अक्षत, प्रियंगु, मधु, सरसों, घृत, दधि, व्याघ्रचर्म, अत्युत्तम जूता—ये सब पदार्थ एकट्ठे किये गये। वहाँ सुन्दर सोलह कन्याएँ हर्ष से अंगराग के लिए गोरोचन और मैनसिल लेकर उपस्थित हुईं। इसके अनन्तर उन वानरों ने यथाविधि अभिषेक करने के लिए रत्नों, वस्त्रों और भक्ष्य पदार्थों से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया। अब वैदिक लोगों ने वेदी पर कुश बिछाकर आग जलाई। उसमें वे मन्त्रों से पवित्र हवि का होम करने लगे। इसके अनन्तर चित्र-विचित्र मालाओं से शोभित रमणीय महल के ऊँचे स्थान में, सुवर्ण के श्रेष्ठ आसन पर, सुग्रीव को मन्त्रों से विधिपूर्वक पूर्वमुख बैठाया। नदियों, नदों, तीर्थों और समुद्रों से लाया हुआ जल सुवर्ण के घड़ों में भरा रक्खा था। अब गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, हनुमान् और जाम्बवान्, ये प्रधान वानर लोग सुन्दर बैलों के सींगों से बने पात्रों और सुवर्ण के कलशों में उस सुगन्धित और निर्मल जल को ले-लेकर, महर्षिप्रोक्त शास्त्र की विधि से, सुग्रीव को नहलाने लगे जैसे कि इन्द्र का अभिषेक वसु करते हैं। जिस समय सुग्रीव का अभिषेक हुआ उस समय सैकड़ों-सहस्रों महात्मा वानर बड़े आनन्द-शब्द करने लगे। वानरेश्वर सुग्रीव ने रामचन्द्र का वचन मान अङ्गद को गले लगाकर यौवराज्य के आसन पर अभिषेक करा दिया। अंगद का अभिषेक देखकर सभी प्रधान वानर वाह-वाह कहकर सुग्रीव की प्रशंसा करने लगे। वे प्रसन्नतापूर्वक रामलक्ष्मण की भी स्तुति करने लगे। हृष्ट-पुष्ट जनों से भरी और ध्वजा-पताकाओं से शोभित वह किष्किन्धा नगरी उन दोनों के अभिषेक से अत्यन्त रमणीय हो गई।

दोहा

एहि बिधि राज्यरु रुमा कहँ, पाइ हरषि कपिराय।
समाचार अभिषेक कर, प्रभुहिं सुनायेउ जाय ॥१॥

सोरठा

किष्किन्धा-पुर-राज, पाइ रुमा सह कीसपति।
हरषे सहित समाज, जिमि सुरपति सुरराज लहि ॥२॥

---

# सत्ताईसवाँ सर्ग

## दोनों भाइयों का प्रस्रवण पर्वत पर निवास करना और कुछ बातचीत करना

अब सुग्रीव के अभिषिक्त होने और किष्किन्धा में प्रवेश करने पर लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र प्रस्रवण पर्वत पर आये। उस पवत पर शार्दूल और मृगों का शब्द होता था। भयङ्कर शब्द करनेवाले सिंह वहाँ रहते थे। वह नाना लता-गुच्छों से वेष्टित, बहुत वृक्षों से आच्छादित, ऋक्ष, वानर, गोपुच्छ और वनविलारों से सेवित था। वह पर्वत मेघ की घटा के सदृश देख पड़ता था। वह पवित्र स्थान मंगलरूप था। उस पर्वत की चोटी पर एक बड़ी लम्बी-चौड़ी कन्दरा देखकर दोनों भाइयों ने वहाँ निवास किया। रामचन्द्र ने सुग्रीव के साथ समय का नियम तो किया ही था, सो समय के उचित वचन लक्ष्मण से कहना आरम्भ किया।

उन्होंने कहा—हे लक्ष्मण, यह पर्वत की कन्दरा रमणीय, विशाल और हवादार है। हम वर्षाकाल भर यहीं रहेंगे। यह पर्वत का शृङ्ग रमणीय है। यह सफेद, काले और लाल रंग की शिलाओं से शोभित और नाना धातुओं से चित्रित है। यहाँ पर नदी के सुन्दर मार्गदूकों का टर्राना सुन पड़ता है।

यह स्थान नाना वृक्ष-समूहों और विचित्र मनोहर लताओं से घिरा, नाना पक्षियों से मनोहर, मयूर के शब्दों से नादित, तथा मालती और कुन्द के गुच्छों से और पुष्पित सिरस, कदम्ब, अर्जुन एवं साखुओं के वृक्षों से शोभित है। यह पहाड़ी नदी हमारी गुफा से बहुत दूर न रहेगी। यह फूले-फूले कमलों से भूषित है। वृष्टि के जल से बढ़कर यह पास ही आ जायगी। इस गुफा में नैर्ऋत्य कोण की ओर नीची भूमि है और पीछे का भाग ऊँचा है। इसलिए हम लोगों को यहाँ वात-भय न होगा अर्थात् वृष्टि के समय हवा के झोके न लगेंगे। हे सौमित्रे, गुफा के द्वार पर यह समतल काली शिला अंजन की ढेरी की तरह देख पड़ती है। हे तात! उत्तर की ओर इस पर्वत की चोटी देखो। वह अंजन की राशि के सदृश और उमड़े हुए, मेघ की भाँति देख पड़नी है। दक्षिण का यह शृङ्ग देखो कैसा श्वेत-वस्त्र के तुल्य और कैलास के शृंग की नाईं शोभा दे रहा है। यह नाना धातुओं से भूषित है। इस गुफा के अग्रभाग में यह पूर्ववाहिनी नदी ऐसी शोभा देती है जैसे चित्रकूट पर्वत पर गंगा शोभित है। इसमें कीचड़ नहीं है। इसके किनारे के चन्दन, तिलक, शाल, तमाल, अतिमुक्त अर्थात् पौण्ड्रक, पद्मक नामक चन्दन, पीला देवदार, अशोक, तिमिदवृक्ष, मौलसिरी, केवड़ा, हिन्ताल, तिमिश नामक वृक्ष, कदम्ब, बेत और अमलतास वृक्ष नाना रूप के है। किनारे के इन वृक्षों से इस नदी की ऐसी शोभा हो रही है जैसी वस्त्र और भूषण से लदी स्त्री शोभा देती है। इस नदी पर सैकड़ों पक्षी शब्द करते हैं। परस्पर अनुरागयुक्त चक्रवाक पक्षियों से यह सुशोभित है। अत्यन्त रमणीय तीर-देशों से शोभित, हंस तथा सारस पक्षियों से सेवित और नाना रत्नों से भूषित यह नदी हँसती हुई सी जान पड़ती है। कहीं नीले, कहीं लाल और कहीं सफेद कमलों से तथा कहीं दिव्य पुष्पों की कलियों से इसकी शोभा हो रही है। सैकड़ों जलपक्षी, मयूर और कोञ्च इसके तीर पर शब्द करते हैं। इस रमणीय नदी पर ऋषि लोग रहते हैं। देखो, ये सुन्दर चन्दन-वृक्षों और ककुभवृक्षों की पंक्तियाँ ऐसी देख पड़ती हैं मानो मन के सङ्कल्प से ही उठ खड़ी हुई हों। हे सौमित्रे! यह देश अत्यन्त रमणीय है। हम लोग यहाँ अत्यन्त सुख से रहेंगे। सुग्रीव की नगरी किष्किन्धा भी यहाँ से दूर नहीं है। देखो, यहाँ से गीत और बाजों का घोष तथा गरजते हुए वानरों का शब्द मृदङ्गों के शब्द से मिश्रित सुन पड़ता है। अपनी भार्या और राज्य को पाकर वह कपिश्रेष्ठ बड़ी श्री को प्राप्त कर अपने मित्रों के साथ अवश्य आनन्द करता होगा।

लक्ष्मण-सहित श्रीरामचन्द्र मनोहर कन्दरा और कुञ्जवाले प्रस्रवण पर्वत पर रहने लगे। यद्यपि वह पर्वत अत्यन्त सुखकारी था और उसमें बहुत प्रकार के पदार्थ थे तथापि वहाँ रहते समय राघव को कुछ भी प्रीति न हुई क्योंकि रामचन्द्र तो हरण की हुई सीता का स्मरण करते थे। उदयाचल पर चन्द्रमा को उदित होते देख-कर, रात्रि में उनको नींद न आती थी। उसी के शोक से नेत्रों में आँसू भरे वे सोचते और नित्य शोक में तत्पर रहते थे। उनके दुःख के साथी लक्ष्मण ने नम्रता-पूर्वक कहा—हे वीर, मन में व्यथा करना व्यर्थ है। आप शोक करने के योग्य नहीं; क्योंकि शोक करनेवाले पुरुषों के सम्पूर्ण अर्थ नष्ट हो जाते हैं—यह आपको विदित ही है। आप क्रियावान् हैं और देव-भक्ति में तत्पर हैं। आप आस्तिक, धर्मशील और उद्योगी हैं। यदि आप शोक से उद्यमहीन हो जायँगे तो पराक्रम में छली उस शत्रु राक्षस को न मार सकेंगे। इसलिए आप

शोक को निर्मूल कर डालिए। आप अपना व्यवसाय स्थिर कीजिए, तब आप उस राक्षस को और उसके परिवार को नष्ट कर सकेंगे। हे काकुत्स्थ, आप तो सागर, वन और पर्वतों-सहित इस पृथ्वी को उलट सकते हैं। रावण की तो कुछ बात ही नहीं। शरत्काल की बाट देखिए। यह वर्षाकाल है। तब रावण को उसके राज्य और परिवार-सहित मारना। आपके सोते हुए पराक्रम को मैं जगाता हूँ। भस्म से ढकी हुई आग को जैसे कोई आहुतियों से प्रदीप्त करता है उसी तरह मैं आपके पराक्रम को उद्दीपित करता हूँ। इस प्रकार समझाते हुए लक्ष्मण के वचनों को आदर देकर राघव बोले—हे लक्ष्मण, तुमने मुझे वैसा ही समझाया जैसा कि अनुरागयुक्त, स्नेही, हित और सत्यपराक्रमी पुरुष को समझाना चाहिए। शोक सभी कामों को चौपट करता है। देखो, अब मैंने उसको छोड़ दिया। अब मैं पराक्रमों में दुराधर्ष तेज को बढ़ाता हूँ। तुम्हारे वचन पर स्थिर होकर अब मैं शरत्काल की बाट देखता हूँ। सुग्रीव की और नदियों की प्रसन्नता की मैं आशा कर रहा हूँ। जो वीर पुरुष हैं वे अपने उपकारी पुरुष का अवश्य प्रत्युप-कार करते हैं। ऐसा नहीं हो सकता कि वे अकृतज्ञ होकर, किये हुए उपकार को भूलकर, प्रत्यु-पकार न करें। क्योंकि ऐसा विचार करने में हमारे ऐसे सत्त्वधारी पुरुषों के मन का घात होता है, अर्थात् मैत्री स्थिर नहीं रहती। इसलिए वह अवश्य प्रत्युपकार करेगा।

रामचन्द्र का यह युक्तियुक्त वचन सुनकर लक्ष्मण ने उस वचन की प्रशंसा की। हाथ जोड़कर उन्होंने राम-चन्द्र के सम्मुख कहा—हे नरेन्द्र, आपका यह कहना ठीक है। अर्थात् जो आपका इष्ट है उसको वह वानर शीघ्र ही करेगा। इसलिए आप शरत्काल की बाट जोहते हुए इस वृष्टिकाल की समाप्ति तक क्षमा कीजिए और शत्रु के निग्रह में दत्तचित्त हूजिए।

छन्द

करि शान्त कोपहि धीर।
शरदवधि लगि रघुवीर॥
प्रभु छमहु चारिउ मास।
एहि अचल पर करि वास॥

दोहा

सिंह आदि सेवित एहि, गिरि पर प्रभु मम साथ।
तुम समर्थ अरिदलन महँ, वास करहु रघुनाथ॥

---

## अट्ठाईसवाँ सर्ग

### रामचन्द्र का वर्षा ऋतु की शोभा का वर्णन करना

इस प्रकार वाली को मारकर और सुग्रीव को राज्याभिषेक देकर रामचन्द्र माल्यवान् पर्वत पर निवास करते हुए एक दिन लक्ष्मण से बोले—देखो, जलागम का समय आ गया। इन पर्वताकार मेघों से आकाश कैसा घेरा हुआ देख पड़ता है। देखो, आकाश-मण्डल सूर्य की किरणों के द्वारा समुद्रों के जल को पीकर और उस जल को नौ महीने तक गर्भ में धारण करके अब लोकोपकारक जीवन की औषधरूप वृष्टि को जनता (प्रसव करता) है। देखो, इस समय इन मेघरूप सीढ़ियों से आकाश में चढ़कर सूर्य को कोरैया और अर्जुन के पुष्पों की मालाएँ पहनाई जा सकती हैं। इस आकाश ने सन्ध्या के लाल रङ्ग से रँगे सफेद किनारेवाले रसीले मेघरूपी कपड़े के टुकड़ों से मानो

अपने घावों पर पट्टियाँ बाँधी हैं। यह आकाश कामातुर की नाईं देख पड़ता है। यह मन्दवायु-रूप निःश्वास छोड़ता है, सन्ध्यारूप चन्दन से भूषित है और कुछ एक श्वेत-मेघरूप इसके कपोल हैं। देखो, घाम से तपकर क्लेशित पृथ्वी नवीन जल से पूर्ण हो, शोक से पीड़ित सीता की नाईं, आँसू (भाप) बहा रही है। मेघों से निकला और कर्पूर की भाँति शीतल यह केवड़े के गन्ध से सुगन्धित वायु अञ्जलियों-द्वारा पिया जा सकता है। इस पर्वत पर अर्जुन के वृक्ष फूल रहे हैं। यह केवड़ों के सुगन्ध से सगन्धित हो रहा है। यह सुग्रीव की नाईं शत्रुहीन होकर जल-धाराओं से सींचा जाता है। देखो, इन पर्वतों की कन्दरा वायु से पूर्ण हो रही है। इन पर्वतों ने मेघ-रूप कृष्ण मृगचर्म को और धारा-रूप यज्ञोपवीतों को धारणकर मानो अध्ययन करना आरम्भ किया है। आकाश के मध्य में जो मेघों की गर्जना हो रही है, वह ऐसी जान पड़ती है मानो विद्युत् रूप सुवर्ण के कोड़ों की चोट खाकर आकाश पीड़ा से आर्तनाद कर रहा है। हे लक्ष्मण, काले-काले मेघों में चमकती हुई यह विद्युत् रावण की गोदी में तड़प रही तपस्विनी वैदेही की नाईं देख पड़ती है। देखो, मेघों से भरी हुई दिशाओं में ग्रह और चन्द्र नहीं देख पड़ते, इनमें इस समय पूर्वादिक का ज्ञान नहीं हो सकता। कामियों के लिए ये अत्यन्त सुख का साधन हो रही हैं। हे सौमित्रे! देखो, इस पर्वत के शिखरों पर ये कोरैया के वृक्ष कैसे फूल रहे हैं, पृथ्वी के वाष्प से भरकर वृष्टि के लिए ये अति उत्कण्ठित थे। मैं शोकपीड़ित हूँ, इसलिए मेरे काम को ये प्रज्वलित कर रहे हैं। देखो, इस वर्षा से धूल बैठ गई। ठण्डी हवा बहने लगी। ग्रीष्म-ऋतु के दोषों का सञ्चार शान्त हो गया। अन्य देशों पर राजाओं की चढ़ाई रुक गई। विदेशी लोग अपने-अपने देशों को जाने लगे। देखो, ये मानसरोवर के लोभी हंस मानसरोवर की ओर चले। चक्रवाक पक्षी अपनी प्यारी चक्रवाकी से मिले और निरन्तर वृष्टि के जल से खुदे हुए मार्गों में सवारियों का चलना बन्द हो गया। देखो, इन मेघों के भर जाने से कहीं तो आकाश में प्रकाश है, और कहीं नहीं; जैसे शान्त-महासागर का स्वरूप, बीच-बीच में पर्वत रहने के कारण, कहीं दिखाई देता है और कहीं नहीं। देखो, ये पहाड़ी नदियाँ नवीन वृष्टि-जल के गिरने से कैसी शीघ्र बह रही हैं। यह जल सालू और कदम्ब के पुष्पों से मिश्रित और पर्वत के धातुओं के मिलने से ताम्र-वर्ण का है। इनके बहने के साथ ये मोर कैसे बोल रहे हैं। रस से भरे, भौंरों के ऐसे काले-काले जामुन के फलों को लोग खा रहे हैं। देखो, ये अनेक रंग के पके आम के फल वायु के वेग से भूमि पर टपक रहे हैं। देखो, ये मेघ संग्राम में मत्त राजेन्द्र की नाईं गरज रहे हैं। इनमें विद्युत्-रूपी पताका है और बगुलों की पङ्क्ति ही इनकी माला है। पर्वत के शिखर की तरह ये बड़े-बड़े हैं। मध्याह्न के अनन्तर ये जंगल कैसे शोभित देख पड़ते हैं कि एक ओर तो मेघ के बरसने से हरी-हरी घास की हरियाली देख पड़ती है और दूसरी ओर मोर अपना नृत्य दिखा रहे हैं। बगुलों की पाँतियों से शोभित गरजते हुए ये मेघ, जल के भारी बोझ से, पर्वतों के बड़े-बड़े शृङ्गों पर विश्राम करके फिर चलते हैं। गर्भ धारण के लिए मेघ-मण्डल में गमन करती यह हर्षवती बलाकाओं की पंक्ति ऐसी शोभा दे रही है मानो आकाश की हवा से उड़ाई श्वेत कमलों की लम्बी माला हो। देखो, बीच-बीच में छोटी-छोटी बीरबहूटियों से भरी हुई हरी-हरी घास से इस पृथ्वी की ऐसी शोभा हो रही है जैसे लाल बूटे-

वाले हरे दुपट्टे को ओढ़ने से किसी स्त्री की शोभा हो। इस समय शेषशायी भगवान् विष्णु को धीरे-धीरे निद्रा आने लगी। ये नदियाँ समुद्र में शीघ्र मिलने लगीं। ये बगुलों की पाँतियाँ हर्षित होकर मेघ-मण्डल में उड़ने लगीं और कामिनी स्त्रियाँ अपने प्यारे पतियों के पास रहने लगीं। देखो, वनों में चारों ओर मोरों के नाच होने लगे। इन कदम्बों की डारों में फूल लद गये। गाय और बैल तुल्य-कामवाले हो गये। अन्न के पौदों से पृथ्वी बहुत ही मनोहर देख पड़ने लगी। देखो, नदियाँ बह रही हैं, मेघ बरस रहे हैं, मतवाले हाथी गरज रहे हैं, जङ्गल शोभा दे रहे हैं, पत्नी-रहित पुरुष सोच रहे हैं, मोर नाच रहे हैं और वानर चित्त को समझा रहे हैं। देखो, ये गजेन्द्र केवड़े के गन्ध को सूँघकर हर्षित हैं और वन के झरनों में पानी के गिरने के शब्दों से व्याकुल और मत्त होकर मोरों के साथ शब्द कर रहे हैं धारा के गिरने से धक्के खाने के कारण कदम्ब की साखा पर बैठे ये भौंरे पुष्प के रस से वृद्धि को प्राप्त अपने उत्सव के मद को धीरे-धीरे त्याग रहे हैं। देखो, ये जामुन-वृक्ष की शाखाएँ रस से भरे, कोयले के चूर्ण की ढेरी के सदृश, फलों से ऐसी जान पड़ती है मानो भौंरों के झुण्ड इनके रस को पी रहे हैं। देखो, तड़ित्-रूप पताकाओं से भूषित और महागम्भीर शब्द करनेवाले ये मेघ ऐसे देख पड़ते हैं मानो लड़नेवाले हाथी हों। देखो, यह हाथी पर्वत के वन की ओर चला जाता था सो मेघ के शब्द को सुनकर, शत्रु-दल के हाथी की शङ्का से, युद्ध की कामना से फिर लौटा चला आता है। देखो, जङ्गलों में कहीं तो भौंरे गूँज रहे है, कहीं मोर नाच रहे हैं और कहीं मतवाले हाथी घूम रहे हैं। यहाँ कैसे अनेक प्रकार के कौतुक देख पड़ते है। देखो, इस वन की भूमि बलवार की दुकान की नाईं शोभा दे रही है। यह कदम्ब, साखू, अर्जुन और गुलाब के पुष्पों से भरी है, जल-रूप मद्य से पूर्ण है, इस पर मतवाले मोर नाच रहे हैं और शब्द कर रहे हैं। देखो, इन पक्षियों के पङ्ख पानी से बिगड़ गये हैं। इन्द्र का दिया हुआ जल बरस रहा है। मोती के सदृश जो निर्मल जल पत्तों की नोकों पर लग रहा है उसको ये पक्षी हर्ष से पी रहे हैं। देखो, एक ओर जो भौंरे गुञ्जार कर रहे हैं, यही मानो वीणा का मधुर शब्द हो रहा है; दूसरी ओर ये मेढक क्या बोल रहे हैं मानो कण्ठ से ताल दे रहे हैं और मेघ जो गम्भीर शब्द करते है, वही मानो मृदङ्ग बज रहा है; इस प्रकार इन जङ्गलों में यह सङ्गीत सा हो रहा है। देखो, ये मोर कहीं नाच रहे हैं, कहीं शब्द कर रहे हैं और कहीं अपनी लम्बी पूँछ-रूप अलंकार को लटका कर वृक्षों पर बैठे हैं। वनों में इनके नाच राग-रङ्ग का सा आनन्द हो रहा है। देखो, इन वानरों के रूप और आकृतियाँ विभिन्न हैं। रङ्ग और बोली भी इनकी अलग-अलग है। मेघों की गर्जना से ये बहुत काल से लगी नींद छोड़कर और इस नवीन जल की धारा से भीगकर शब्द कर रहे हैं। देखो, चक्रवाक पक्षी नदियों में में पैरते देख पड़ते है; ये अपने जीर्ण कगारों को तोड़कर और नवीन पूर्ण शरीर को धारण करके समुद्ररूप अपने पति के पास चली जा रही है। देखो, ये नवीन जल से भरे काले-काले मेघ दूसरे झुण्ड के काले-काले मेघों मे मिले से देख पड़ते हैं, जैसे वनाग्नि से जले पर्वतों में उसी प्रकार के पर्वत सटे हों। देखो, जिन रमणीय जङ्गलों में मोर प्रमत्त होकर नाद कर रहे हैं और जिनमें बीरबहूटियों से भरी घास लहलहा रही है, और कदम्ब तथा अर्जुन के पुष्पों की सुगन्ध आ रही है उनमें ये हाथियों के झुण्ड चर रहे हैं। देखो, ये भौंरे नवीन जल की धारा से टूटे-फूटे केसरवाले

कमलों को छूकर सुन्दर नये केसरों से युक्त कदम्ब के पुष्पों को हर्ष से पी रहे हैं। इस समय मतवाले हाथी, बड़े बड़े बैल, वनों में पराक्रमी सिंहगण, रमणीय पर्वत और राजा लोग उद्यम-रहित देख पड़ते हैं। इस समय देवताओं का राजा इन्द्र इन मेघों के द्वारा क्रीड़ा कर रहा है। देखो, इन मेघों की गर्जना के समीप समुद्र का नाद भी दब जाता है। ये जल का भारी बोझ लादे आकाश का आश्रय कर नदी, तालाब, सरोवर, बावली और सम्पूर्ण पृथ्वी को भर रहे हैं। देखो तो, कैसे झोंके से जल की धारा गिर रही है और कैसे झकोर से वायु चल रहा है। ये नदियाँ अपने मर्यादा रूप तट को तोड़-ताड़कर कुमार्ग से अत्यन्त वेग-पूर्वक बह रही है। देखो, ये मेघ नहीं, इन्द्र के दिये हुए जल-पूर्ण घड़े हैं जिन्हें हवा ले आई है। इनके जल से अभिषिक्त बड़े-बड़े पर्वत अपना रूप दिखला रहे हैं, जैसे कि कोई राजा मनुष्यों-द्वारा अभिषिक्त होकर शोभित होता है। गिरते हुए जल से ये ऐसे सोभायमान हो रहे हैं जैसे मनुष्यों-द्वारा नहलाया गया राजा सुशोभित होता है। यह आकाश मेघों से ऐसा आच्छादित हो रहा है कि इसमें न तो तारे लक्षित होते हैं और न सूर्य के दर्शन होते हैं। नवीन जलप्रवाह से धरणी खूब तृप्त हो गई और अन्धकार ऐसा छा रहा है कि दिशाएँ प्रकाश-रहित हो गई हैं। ये पर्वतों के बड़े-बड़े शिखर जलधारा से धुल गये हैं। बड़े-बड़े झरनों से ये ऐसी शोभा दे रहे हैं मानो लम्बी-लम्बी मोतियों की माला पहने हों। देखो, मोरों के नाद से युक्त कन्दराओं में इन पर्वतों के ऊपर से जो पानी के झोंके गिरते हैं और बड़ी-बड़ी शिलाओं पर धक्के खाकर छितरा जाते हैं वे ऐसे मालूम होते हैं मानो हार के मोती छिटक गये हों। बड़े-बड़े पानी के झोंकों से इन शिखरों के ऊपरी हिस्से धुल गये हैं। वेग से गिरती और मोतियों की ढेरी के तुल्य शोभा देती हुई वे धाराएँ इन बड़ी-बड़ी कन्दराओं मे आती हैं। देखो, ये जल की अनुपम धाराएँ चारों ओर दिशाओं में गिर क्या रही हैं मानो सुरत के समय मर्दन से टूटे, स्वर्ग की स्त्रियों के हारों के मोती छितरा रहे है। देखो, ये पक्षी बसेरा लेने लगे, कमल सङ्कुचित हो गये और मालती के पुष्प खिल गये। इससे जान पड़ता है कि दिन डूब गया। देखो, राजाओं की युद्ध-यात्रा रुक गई और सेना मार्ग में ही ठहर गई। जल-वृष्टि ने इस घड़ी वैरों को और मार्गों को भी समान कर दिया, अर्थात् दोनों को रोक दिया। हे लक्ष्मण, इस भादों के महीने में सामवेद के अध्ययन करनेवाले ब्राह्मणों का अध्ययन-समय आ पहुँचा और कोशलाधि-पति भरत ने तो आषाढ़ में ही घर के सम्पूर्ण कृत्यों को समाप्त करके चातुर्मास के लिए भोजनाच्छादन इत्यादि की सामग्री घर में रखकर कुछ व्रत का आरम्भ किया होगा। इस वृष्टि से सरयू नदी पूर्ण होकर बड़े वेग से बहती होगी। उसका शब्द ऐसा होता होगा जैसा मेरे वन-यात्रा से घर जाते समय अयोध्यावासियों का होगा। देखो, इस वर्षा-काल में सुग्रीव सुख भोगते होंगे क्योंकि उनका शत्रु नष्ट हो गया, स्त्री मिल गई और राज्य की भी प्राप्ति हो गई। हे लक्ष्मण! देखो, एक तो मेरी स्त्री हरण कर ली गई, दूसरे मैं राज्य से भ्रष्ट हूँ ही, इसलिए मैं नदी के भीगे और फटनेवाले कगारे की तरह दुःख पा रहा हूँ। देखो, मेरा शोक बढ़ता जा रहा है। यह वर्षाकाल अत्यन्त दुर्गम आ गया और रावण बड़ा भारी शत्रु जान पड़ता है;—यह सब मुझे अपार ही समझ पड़ता है। वर्षा के कारण शत्रु पर आक्रमण नहीं हो सकता, मार्ग खराब हो गये हैं, अत-एव सीता को खोजने का सुग्रीव कुछ भी उपाय नहीं

करते। मैं उनसे अभी कुछ कह भी नहीं सकता। सुग्रीव ने बहुत क्लेश भोगे हैं, मुद्दत के बाद स्त्री से उनकी भेंट हुई है, और मेरा कार्य भी ऐसा-वैसा नहीं—बहुत कठिन है। इसलिए मैं उनसे कुछ कहना नहीं चाहता। विश्राम लेकर और उद्योग का समय देख वे आप ही अवश्य उपकार का स्मरण करेंगे। इसमें कुछ सन्देह नहीं है। इस कारण मैं समय की बाट देखता हुआ स्थिर बैठा हूँ। तब तक सुग्रीव की और नदियों की प्रसन्नता की मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ। वीर पुरुष अवश्य उपकारी का प्रत्युपकार करता है। इसके विरुद्ध विचार करने में मन को दृढ़ता नहीं होती अर्थात् मैत्री दृढ़ नहीं रह सकती।

एहि बिधि रघुबर के बचन, सुनि सौमित्रि सुजान।
जोरि पानि सम्मुख खड़े, बोले अति हित मान॥

छन्द

तुम चहहु जो नर भूप। होइहि सो रुचि अनुरूप।
शरदवधि पावस मास। छमि करहु पर्वत-वास।
हरिराज सो सुग्रीव। करिहहिं सकल मतिसीव।

---

## उनतीसवाँ सर्ग

### हनुमान् का सुग्रीव को समझाना और सुग्रीव का नील वानर को आज्ञा देना

महावीर हनुमान् ने देखा कि आकाश निर्मल हो गया, न अब चपला चमकती है और न बादल गरजते हैं; अब तो सारस बोलते हैं और चटकीली चाँदनी छिटकती है। उन्होंने देखा कि सुग्रीव समृद्धि-शाली होकर धर्म और अर्थ का संग्रह करने में शिथिल है, काम-प्रवृत्ति में उसका चित्त बेतरह उलझा रहता है। उसका शत्रु बाली भी दुनिया से हटा दिया गया और निष्कण्टक राज्य भी उसे मिल गया है; फलतः सुग्रीव के सभी मनोरथ पूरे हो गये। देवराज इन्द्र जिस तरह अप्सराओं से घिरे रहते हैं उसी तरह वह अपनी पत्नी रुमा और तारा सुन्दरी के साथ भी दिन-रात आमोद-प्रमोद में मस्त रहता है। राजकाज उसने मन्त्रियों के भरोसे छोड़ दिया है। उनकी वह देख-भाल तक नहीं करता। मन्त्रियों की कुशलता के कारण उसे राज्य में गड़बड़ होने की स्वप्न में भी आशङ्का नहीं। सुग्रीव की यह दशा देख देश-काल के ज्ञाता, अर्थ-तत्त्वज्ञ हनुमान् नाना प्रकार के हेतुयुक्त और मनोहर वचनों से उसको प्रसन्न कर बोले। सुग्रीव के समीप जाकर वे नम्रतापूर्वक कहने लगे—हे वानरराज, आपने राज्य और यश को भी प्राप्त किया तथा अपने कुल की लक्ष्मी को बढ़ाया। अब शेष मित्रों का कार्य्य रह गया। अब आपको उसका सम्पादन करना चाहिए। जो समय का जाननेवाला पुरुष मित्रों के साथ अच्छा बर्ताव करता है उसका राज्य, कीर्त्ति और प्रताप दिन-दिन बढ़ता है। हे पृथ्वीनाथ! जिस राजा के कोश, सेना, मित्र और आत्मा—ये चारों समान हैं, अर्थात् इन पर जो समान प्रेम रखता है वह बड़े राज्य का भोग करता है। आप चरित्र-सम्पन्न हैं और बाधारहित मार्ग पर आरूढ़ हैं, इसलिए मित्र के उस कार्य को यथोचित कीजिए जिसके लिए आप वचन-बद्ध हैं। जो पुरुष अपने सब कामों को छोड़कर मित्र के काम में नहीं लगता और भ्रम से अपने उत्साह को बिगाड़ डालता है वह अनर्थ में फँस जाता है। जो समय टल जाने पर मित्र का कार्य्य करता है वह चाहे कितना भी करे परन्तु मित्र के प्रयोजन की

सिद्धि को नहीं पहुँचता। उसकी मित्रता में बट्टा लग जाता है। यद्यपि तुम्हारे मित्र के कार्य का समय अभी टल नहीं गया है तथापि टलना ही चाहता है, इसलिए तुम सीता के खोजने में तत्पर हो जाओ। देखो, यद्यपि समय बीत चला है और रामचन्द्रजी को इस कार्य्य की शीघ्रता बहुत है, तथापि वे महापण्डित श्रीरघुनन्दन तुमसे कुछ भी नहीं कहते। वे तुम्हारी ही इच्छा के अनुसार चल रहे है। हे राजन्! देखो, रघुनाथ एक तो तुम्हारे इस महाकुल के हेतु हैं, दूसरे तुम्हारे बड़े मित्र, तीसरे अतुल प्रभावशाली, चौथे गुणों में सबसे ऊपर हैं। हे वानरेश्वर, उनके कार्य को तुम करो। देखो, उन्होंने पहले ही तुम्हारा काम कर दिया है, इसलिए मुख्य-मुख्य वानरों को आज्ञा दो। जब तक रामचन्द्र कुछ कहते नहीं तब तक विलम्ब नहीं समझना चाहिए। परन्तु जब वे कुछ बोलेंगे तब समय का टल जाना समझा जायगा। हे वानरराज, तुम तो अनुपकारी का भी कार्य कर देते हो, फिर जिसने राज्य और धन दिलाने में तुम्हारा उपकार किया है उसका कार्य्य करना क्या बात है! हे वानरों और भालुओं के स्वामी, तुम शक्तिमान् और पराक्रमी हो। अब रामचन्द्र की आज्ञा की बाट क्यों देखते हो? देखो, रामचन्द्र तो सुर, असुर और बड़े-बड़े नागों को भी बाणों के द्वारा अपने वश में कर सकते हैं, परन्तु इस समय वे तुम्हारी ही प्रतिज्ञा की बाट देखते हैं। देखो, बाली का घात करना अनुचित था, पर रामचन्द्र ने तुम्हारी प्रीति के लिए वह भी बेखटके कर दिया। हे राजन्, अब हम लोगों को यही उचित है कि उनकी सीता को खोजें, चाहे वह पृथ्वी पर हो, अथवा आकाश में। आप यह निश्चय जानिए कि देव, दानव, गन्धर्व, असुर, वायु और यक्ष, इनमें कोई ऐसा नहीं जो रामचन्द्रजी को डरवा सके। राक्षस की तो बात ही क्या है। हे वानरेश, वे इस प्रकार के शक्तिमान् हैं। उन्होंने पहले तुम्हारा उपकार किया है इसलिए तुम उनका सब प्रकार से प्रिय कार्य करो। यही उचित है। हे कपीश्वर, हम लोगों की गति न पाताल में रुक सकती है, न पृथ्वी पर, न जल में और न ऊपर आकाश में ही। केवल आपकी आज्ञा की देरी है। अब आप इन करोड़ों वानरों में से जिसको जो आज्ञा कीजिए वह उसी उद्योग में लगे। ये वानर एक से एक धुरन्धर और किसी से भी दबनेवाले नहीं हैं।

हनुमान् की ये बाते समय के योग्य थीं। इन्हें सुनकर सत्य-सम्पन्न सुग्रीव ने उस पर अपनी उत्तम बुद्धि को दृढ़ किया। नील नाम वानर सदा का उद्योगी था। उसको सुग्रीव ने सब दिशाओं से सेना इकट्ठा करने की आज्ञा दी कि मेरी सम्पूर्ण सेना और सभी सेनापति शीघ्र मुख्य सेनापति-सहित आकर उपस्थित हों। जो वानर दिगन्त की सेना के पालक, उद्योगी और शीघ्र गमन करनेवाले हैं वे मेरी आज्ञा से शीघ्र सबको इकट्ठा करें। सेना की गणना करना और उसकी व्यवस्था करना इत्यादि जो कार्य हैं उनको तुम स्वयं करो। पन्द्रह दिन के भीतर सब वानरों को आकर इकट्ठा हो जाना चाहिए। पन्द्रह दिन के अनन्तर यदि कोई वानर आवेगा तो उसको प्राणान्त-दण्ड होगा।

सोरठा

युवराजहिं लै साथ, वृद्ध कपिन्ह पहँ जाहु तुम।
अस कहि बर कपिनाथ, पुनि प्रविशे निज गेह महँ॥

———

# तीसवाँ सर्ग

## रामचन्द्र का विलाप करना, शरत्काल का वर्णन और सुग्रीव के विषय में भी कुछ कहना

उधर तो सुग्रीव घर में सुख-पूर्वक रहने लगा और इधर मेघों ने आकाशमण्डल को छोड़ दिया। रामचन्द्रजी वर्षा भर तो चुपचाप उसी स्थान पर बैठे रहे, किन्तु शरत्-काल के लगते ही वे काम-शोक से पीड़ित हो गये। उन्होंने आकाश को श्वेत, चन्द्रमण्डल को निर्मल और रात्रि को चन्द्रिका के प्रकाश से युक्त देखा। सुग्रीव को कामासक्त, जानकी को नष्ट और समय को बीता हुआ समझकर वे अत्यन्य आतुर हुए और अचेत हो गये। कुछ देर में सचेत होकर वे सीता का स्मरण करने लगे। सुवर्ण और धातु से शोभित उस पर्वत के अग्र-भाग में बैठे श्रीरामचन्द्र ने विद्युत् और मेघों से रहित तथा सारसों के शब्दों से नादित शरत्समय के आकाश को देखा। उसे देख वे मन के द्वारा अपनी प्यारी सीता के पास पहुँचकर आर्त वाणी से विलाप करने लगे—हा! सारस के तुल्य शब्द से बोलनेवाली वह बाला इन सारसों के शब्द सुनकर आश्रम में अत्यन्त आनन्दित होती थी, इस घड़ी वह किस प्रकार रहती होगी? देखो, ये पुष्पित असन-वृक्ष सुवर्ण की नाईं निर्मल हैं। इनको देखकर, मुझे देखे बिना, वह बाला किस प्रकार से रमेगी! जो पहले राजहंसों के मनोहर शब्द सुनकर जागती थी वह सर्वाङ्गसुन्दरी किस प्रकार रहती होगी! ये चक्रवाक अपनी स्त्री के साथ मिलकर क्रीड़ा कर रहे हैं इनके शब्दों को सुनकर वह कमल के तुल्य विशालनयनी कैसी जीवेगी! मैं तो इन सरोवरों, नदियों, बावलियों, वनों और उपवनों में घूमता हूँ परन्तु इस समय उस बालमृगनयनी के बिना मुझे सुख नहीं मिलता। मैं जानता हूँ कि इस शरत्काल के गुण से उत्पन्न हुआ काम उस भामिनी को मेरे वियोग और सुकुमारता के कारण भी अवश्य अत्यन्त पीड़ा देता होगा।

श्रीराघव अनेक प्रकार से विलाप करते थे, जैसे इन्द्र के आगे जल के लिए चातक विलाप करता है। पर्वत के शिखरों पर लक्ष्मण फल लेने के लिए गये थे। अब वे लौटकर आये और भाई को विरह-ताप में दुःसह चिन्ता से अचेत और एकान्त में बैठे देख अत्यन्त दीन होकर बोले—हे आर्य, काम के वश में हो जाने और अपने पौरुष से हीन करने से क्या लाभ है! आपके चित्त की स्थिरता नष्ट हो रही है। क्या इसको आप योग-बल से नहीं हटा सकते? अब आप शौच, स्नान इत्यादि कर्म्म कीजिए और मन को प्रसन्न रखिए। इस समय को अपने समाधियोग मे युक्त करके दीनता छोड़िए और देव-पूजन इत्यादि कर्म कीजिए जो अपने पौरुष को सामर्थ्य देनेवाले और अपने कार्य के हेतु हैं। हे मनुष्यवंश के नाथ, तुम्हारी पत्नी जानकी दूसरे मनुष्य को नहीं मिल सकती। हे वीरवर, भला कहिए तो सही कि प्रज्वलित अग्नि की शिखा को थामकर कौन बिना भस्म हुए रह सकता है?

लक्ष्मण का यह वचन सुनकर श्रीरघुवर ने हित पथ्य, नीतियुक्त और साम-धर्म तथा अर्थ से भरे वचन कहे—हे कुमार, कार्य की ओर दृष्टि अवश्य करनी चाहिए और उसके लिए उचित कर्म भी करना

चाहिए। कर्म-योग और ज्ञान-योग के बिना उत्कृष्ट वृद्धि नहीं हो सकती। दुर्लभ और वीर्यवान् कर्म के फल की ही अपेक्षा करनी चाहिए। अब श्री रामचन्द्र उसी कमल-नयनी जानकी का स्मरण करने लगे। उनका मुँह सूख गया। उन्होंने कहा—हे लक्ष्मण! देखो, जल से पृथ्वी को तृप्त करके और अन्न की सिद्धि का सम्पादन कर इन्द्र कृतार्थ हुए। अत्यन्त गम्भीर शब्द करनेवाले मेघ भी पर्वत, वृक्ष और नगरों में जलवृष्टि करके शान्त हो गये। देखो, ये मेघ नीले कमल के पत्र की नाईं श्यामवर्ण के थे। अब ये दशों दिशाओं में हरियाली उत्पन्न करके मद रहित हाथियों की भाँति वेगहीन हो गये। यह वृष्टि की हवा जलगर्भित और महावेगवाली थी और कोरैया तथा अर्जुन के पुष्पों की गन्ध से आमोदित होकर बहती थी। अब उसका बहना रुक गया। हे लक्ष्मण, न अब कहीं मेघों की गर्जना सुन पड़ती है, न हाथियों की चिग्घाड़ और न मोरों तथा झरनों के शब्द ही सुन पड़ते हैं। देखो, ये पर्वत महामेघों की वृष्टि से धुल जाने के कारण चित्र-विचित्र शिखरों से शोभित और चन्द्र की किरणों से लेपित हैं। ये कैसी शोभा दे रहे हैं! इस शरद ने सतौना (छितिउन वृक्ष) की शाखाओं में और तारा, सूर्य तथा चन्द्र की प्रभा में एवं उत्तम हाथियों की लीलाओं में मानो नई शोभा बाँट दी है। देखो, शरत्काल के गुणों से पूर्ण लक्ष्मी की शोभा इस समय अनेक पदार्थों में चित्र-विचित्र रूप से फैल रही है। सूर्य की किरणों से विकसित कमल-समूहों में यह अधिक शोभा दे रही है। देखो, यह शरत्काल सतौना (छितिउन) के पुष्पों की गन्ध से भरा है और भ्रमरों के समूह सर्वत्र गान कर रहे हैं। यह पवन के द्वारा मस्त हाथियों के गर्व को बढ़ाता हुआ अधिक शोभा दे रहा है। मान-सरोवर से आगत इन चकवों के पङ्ख बहुत अच्छे हैं, कमलों का पराग इनकी देह में लिपटा हुआ है। बड़ी-बड़ी नदियों के तीर पर इनके साथ हंस क्रीड़ा करते हैं। देखो, यह शरत्काल की लक्ष्मी मतवाले हाथियों, उन्मत्त साँड़ों और निर्मल जलवाली नादियों में अनेक प्रकार से लक्षित होती है। अब इस समय मोरों ने, आकाश को मेघों से रहित देखकर, अपने पङ्खरूप अभूषणों को वनों में छोड़ दिया। वे अपनी स्त्रियों पर अनुराग नहीं रखते और शोभा से हीन तथा उत्सव से रहित होकर कुछ सोचते से देख पड़ते हैं। असन नामक ये बड़े-बड़े वृक्ष मनोहर गन्ध फैला रहे हैं और पुष्पों के भार से इनकी अग्रशाखाएँ झुक रही हैं। सुवर्ण के तुल्य अपने रँगीले पुष्पों से ये नेत्रों को लुभा रहे हैं और इन वनों को प्रकाशित कर रहे हैं। देखो, ये उत्तम-उत्तम हाथी अपनी प्रिया के साथ, कमलों में मन दिये, वनों में प्रीति किये, छितिउन के पुष्पों की सुगन्ध लेने में तत्पर हैं। ये मद से भरे और काम-भोग में लवलीन हैं। ये कैसे मन्द-मन्द जा रहे हैं। देखो, इस समय आकाश निर्मल खड्ग की नाईं चमक रहा है। नदी के प्रवाह मन्द हो गये। श्वेत कमलों के गन्ध से भरा शीतल वायु कैसा सुन्दर बह रहा है और दिशाएँ कैसी अन्धकार-रहित होकर प्रकाशित हो रही हैं। सूर्य के तेज से अब भूमि में कीचड़ नहीं रहा, कुछ-कुछ धूलि उड़ने लगी। परस्पर वैर रखनेवाले राजाओं का अब चढ़ाई का समय आ पहुँचा। देखो, इस समय शरत्काल के गुण से बैलों के रूप और शोभा में वृद्धि हो गई है। ये धूलि से धूसर बैल मतवाले हैं और युद्ध की आकांक्षा करते हुए गायों के मध्य में कैसा शब्द कर रहे हैं। काम से व्याकुल यह हथिनी अत्यन्त अनुराग से पूर्ण है, यह

अपने झुण्ड के साथ मन्द-मन्द चलती अपने स्वामी मतवाले हाथी के पीछे-पीछे जा रही हैं। देखो, ये मोर अपने उत्तम आभरण-रूप पङ्खों को फेंककर और इन सारसों-द्वारा अनादृत से होकर नदियों के तीर पर उदास और दीन होकर चले जाते है। देखो, ये मद के बहानेवाले बड़े-बड़े गजराज अपने शब्दों से कारण्डव और चक्रवाक पक्षियों को डराते हुए फूले-फूले कमलवाले तड़ागों में घुस गये और हलोर-हलोरकर जल पी रहे हैं। देखो, ये नदियाँ पङ्क-रहित हैं। इनमें बालू है और निर्मल जल भरा है। गायों के झुण्ड भी इनमें हैं। इनमें सारसों का शब्द हो रहा है; हंस हर्षित होकर कूद-फाँद रहे हैं। इस समय नदी, मेघ, झरने अति प्रचण्ड वायु, मोर और मेढकों के शब्द नष्ट हो गये। ये उदास देख पड़ने लगे। देखो, मेघों की वृष्टि के कारण इन अनेक रङ्गवाले महाविषधर साँपों का शरीर अत्यन्त क्षुधा से दुबला हो गया है। ये बहुत काल के अनन्तर अपने-अपने बिलों में से निकल रहे है। देखो, चन्द्र की चमचमाती किरणों के स्पर्श-द्वारा हर्ष से मानो ताराओं* को प्रकाशित करके और राग†-युक्त हो सन्ध्या स्वयं अपने अम्बर‡ को त्याग रही है। देखो, यह रात्रि ऐसी जान पड़ती है मानो सफेद कपड़ा पहने कोई स्त्री हो। इस रात्रि-रूप स्त्री का मुख उदय को प्राप्त चन्द्रमा है, विकसित तारागण ही नेत्र हैं और चन्द्रिकारूप वस्त्रों से यह शोभित है। देखो, यह मनोहर सारसों की पंक्ति परिपक्व धानों की बालों को खाकर प्रसन्नतापूर्वक आकाशमार्ग में ऐसे वेग से चली जाती है जैसे वायु-वेग से उड़ी हुई पुष्पों की माला हो। देखो, इन महाजलाशयों के निर्मल जल में चन्द्र का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है और इसमें कुई के पुष्प विकसित हो रहे हैं। यह ऐसी शोभा दे रहा है जैसे मेघ-रहित आकाश पूर्ण चन्द्र से सुशोभित और तारागणों से भरा हो। देखो, चुद्रघण्टिका-रूप हंसों और माला-रूप खिले हुए कमलों के द्वारा इन उत्तम-उत्तम बावलियों की ऐसी शोभा हो रही है जैसी सिङ्गार करने पर उत्तम स्त्रियों की होती है। प्रातःकाल के समय यह वायु छिद्रयुक्त बाँसों में प्रविष्ट होकर बाँसुरी के सदृश शब्द करता है। वह शब्द बड़े-बड़े बैलों के शब्दों और गुफाओं की ध्वनि से मिश्रित होकर भर जाता है। ऐसा जान पड़ता है मानो ये दोनों शब्द परस्पर एक दूसरे को पूर्ण करते हैं। इन नदियों के तटों पर ये नये-नये काश फूल रहे हैं। मन्द वायु लगने से वे हिल रहे हैं। फूले-फूले काश के कारण नदियों के तट ऐसे जान पड़ते हैं मानो धुले हुए सफेद रेशमी कपड़े पहने हों। देखो, ये भौंरे वन के घूमने में मस्त, पुष्पों का रस पीने से मतवाले और अपनी-अपनी स्त्रियों को साथ लिये हैं; ये विकसित कमल और असन के पुष्पों के पराग से पीले होकर पवन के अनुसार यात्रा कर रहे हैं। देखो, जल निर्मल हो गया, पुष्प विकसित हो रहे है, कौञ्च पक्षी बोल रहे है। साठी के धान पक गये, मन्द-मन्द वायु बह रहा है और चन्द्र निर्मल है। ये सब वर्षाकाल की समाप्ति की सूचना कर रहे हैं। अपने पतियों से उपभोग को प्राप्त कामिनियाँ प्रातःकाल के समय जिस प्रकार आलस्ययुक्त मन्द गति से चलती हैं उसी तरह ये नदी-रूप वधुएँ मछलीरूप तागड़ी पहने मन्द-मन्द बह रही हैं। देखो, चक्रवाक पक्षियो और सेवारों से भूषित तथा वस्त्र के सदृश कासों से वेष्टित इन नदियों के तट ऐसी शोभा दे रहे हैं मानों पत्र-रेखाओं और रोचना से अलंकृत घूँघट-युक्त स्त्रियों के मुख हों। देखो, ये वन फूले-फूले कठ-

* तारा या आँखों की पुतलियाँ।
† राग = अनुराग या रङ्ग।
‡ अम्बर = आकाश या वस्त्र।

सरैया और असन के वृक्षों से चित्रित हैं और हर्षित भ्रमरों से नादित हैं। इनमें काम मानो चाप को उठाये पचण्ड प्रताप से व्याप रहा है। हे लक्ष्मण, देखो इन मेघों ने अपनी वृष्टि से लोगों को सन्तुष्ट करके नदियों और तालाबों को भर दिया और पृथ्वी में अन्न की सम्पत्ति उत्पन्न कर दी। अब ये आकाश का त्याग कर नष्ट हो गये। देखो, शरत्काल की नदियाँ अब धीरे-धीरे अपने तटों को दिखलाने लगीं जैसे नवसङ्गम से लज्जित स्त्रियाँ धीरे-धीरे अपनी जङ्घाएँ दिखलाती हैं। जलाशयों का जल निर्मल है। उनमें कुरर पक्षी शब्द कर रहे और चक्रवाक भरे पड़े हैं। देखो, ये जलाशय कैसे मनोहर देख पड़ते हैं! हे राजपुत्र, जिनमें परस्पर वैर है और जो विजय चाहते हैं उन राजाओं का यही उद्योग-समय है। हे राजपुत्र, राजाओं की प्रथम-यात्रा के दिन आ गये, परन्तु मैं न तो सुग्रीव को देखता हूँ और न उस प्रकार का उद्योग ही देखता हूँ। देखो, इन पर्वतों के शिखरों पर असन, छितिउन और कचनार फूले-फूले देख पड़ने लगे; दुपहरिया और तमाल के वृक्ष भी पुष्पित हो चले। हे लक्ष्मण! देखो हंस, सारस, चक्रवाक और कुररी आदि पक्षी नदी-किनारे बैठे हैं। ये वर्षाकाल के चार महीने मेरे लिए सौ वर्ष के तुल्य बीत गये; क्योंकि एक तो मैं शोक से व्याकुल था ही, दूसरे सीता भी पास न रही। इस विषम दण्डक वन में सीता मेरे पीछे-पीछे उस तरह आई थी जैसे चक्रवाकी अपने पति चक्रवाक के पीछे हो लेती है। हे लक्ष्मण, देखो मैं प्रिया से हीन और दुःखों से पीड़ित हूँ, मेरा राज्य ले लिया गया है, मैं घर से भी निकाला हुआ हूँ। अनाथ समझकर मुझ पर राजा सुग्रीव कृपा नहीं करते। वे यह नहीं सोचते कि इसका राज्य छिन गया है, रावण ने इसका अपमान किया है और घर इसका बहुत दूर है; ऐसा यह कामी, दीन होकर, मेरी शरण आया है। इस पर मुझे कृपा करनी चाहिए। हे परन्तप, इन्हीं कारणों से मुझे इस दुरात्मा वानरराज ने ठग लिया। देखो, वह दुर्बुद्धि सुग्रीव सीता के खोजने के लिए समय का नियम करके भी इस समय, कृतार्थ होने के कारण, चेत नहीं करता। वह वानरराज मूर्खता से गृह-सुख में लवलीन हो रहा है। उसको तुम किष्किन्धा में जाकर मेरा वचन सुनाओ कि बल-पौरुष-युक्त पूर्वोपकारी अर्थियों की आशा को जो प्रतिज्ञा करके नष्ट करता है वह पुरुषाधम है; परन्तु जो अपने कहे हुए वचन को—फिर चाहे वह शुभ वचन हो अथवा पाप-वचन—सत्यतापूर्वक निबाहता है वह वीर पुरुषोत्तम है। जो स्वयं कृतार्थ होकर अपने अकृतार्थ मित्रों के सहायक नहीं होते उन कृतघ्नों की लाश को क्रव्याद* भी नहीं खाते। अब तू मेरे सुनहरी पीठवाले धनुष का बिजली के तुल्य रूप अवश्य देखना चाहता है और मुझ क्रोधयुक्त के धनुष की प्रत्यञ्चा का वज्र-तुल्य शब्द फिर सुनना चाहता है। हे लक्ष्मण, यद्यपि सुग्रीव ऐसा अचेत हो रहा है तथापि मेरे पराक्रम को उसने देखा और जाना है। क्या उसको चिन्ता न होगी? शत्रुनगर के जीतनेवाले हे लक्ष्मण! देखो, जिस काम के लिए यह मैत्री की गई है उसके समय का सुग्रीव को स्मरण नहीं है। वह अपने सुख में भूल रहा है। उसने वर्षा बिताने की प्रतिज्ञा की थी, परन्तु वे चारों महीने बीत गये और वह विहार में ऐसा लीन हो रहा है कि उसको याद तक नहीं। हे लक्ष्मण, देखो वह सुग्रीव अपने मन्त्रियों और सभासदों के साथ क्रीड़ा करता हुआ मद्यपान में ऐसा तत्पर हो रहा है कि शोक से दीन हो रहे हम पर कृपा नहीं करता। इसलिए हे

* कच्चे मांस के खानेवाले पशु, पक्षी इत्यादि।

महाबल, तुम जाओ और उसको मेरे क्रोध का रूप कह सुनाओ। उससे कहो कि हे सुग्रीव, जिस मार्ग से बाली मरकर चला गया वह संकुचित नहीं हो गया। इसलिए अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर हो जाओ, बाली के मार्ग पर पैर रखने की इच्छा मत करो। उससे यह भी कहो कि मैंने बाली को तो अकेला ही मारा है परन्तु तुझ असत्यवादी को तो मारूँगा ही, तेरे परिवार को भी न छोड़ूँगा। हे पुरुषश्रेष्ठ, इस विषय में जो तुमको उचित समझ पड़े वह सुग्रीव से कहना। शीघ्रता करो, नहीं तो समय बीता जाता है। सुग्रीव से कहना कि हे वानरराज, तुमने मेरे लिए जो प्रतिज्ञा की है उसको सनातनधर्म की ओर दृष्टि करके पूरी करो; मेरे बाणों के द्वारा यमपुरी में जाकर बाली को मत देखो।

छन्द

अति तीव्र वर्द्धित कोप अरु
अति दीन वचन उचारते।
पुनि पुनि जनकजा-शोक-बस
विह्वल न चेत सँभारते॥
एहि बिधि प्रभुहिं लखि उग्र तेज
कृशानु लखन कुपित हिये।
हरिराज पर करि तीव्र मति
रघुवीर सन बोलत भये॥

---

## इकतीसवाँ सर्ग

### लक्ष्मण का धनुर्बाण लेकर किष्किन्धा में जाना

काम-विह्वल, दीन, पराक्रमी और शोकित रामचन्द्र को देखकर लक्ष्मण बोले—हे राजन्, वह वानर साधु आचरण में स्थिर न रहेगा; वह कर्म-फल के भोग अर्थात् अकण्टक राज्यभोग-सम्बन्ध को नहीं मानेगा। इसलिए वानर-राज्य की लक्ष्मी का वह भोग न करेगा क्योंकि उसकी मति मित्रता के मार्ग से विरुद्ध हो रही है। बुद्धि के भ्रष्ट हो जाने से वह विषयासक्त हो रहा है। आपके प्रसन्न करने के लिए उसकी प्रत्युपकार करने की बुद्धि नहीं देख पड़ती; इसलिए वह मारे जाने के योग्य है। वह इसी लायक है कि मरकर बाली को देखे। ऐसे गुणहीन अथवा विरुद्ध गुणवाले को राज्य देना उचित नहीं है। हे प्रभु, मैं अब कोप के वेग को नहीं रोक सकता। उस असत्य-वादी सुग्रीव को मैं आज ही मारता हूँ और बाली का पुत्र अङ्गद, वीर वानरों के साथ जाकर, जनक-पुत्री को खोजेगा।

हाथ में धनुर्बाण लिये उद्यत, कर्त्तव्य कार्य्य पर आरूढ़ और संग्राम के लिए प्रचण्ड कोप किये लक्ष्मण को देखकर श्रीरामचन्द्र नम्रता-पूर्वक बोले—हे लक्ष्मण, तुम्हारे सदृश पुरुष को ऐसा पाप न करना चाहिए। देखो, जो पुरुष अच्छे प्रकार विचार करके अपने कोप को शान्त करता है वह पुरुषोत्तम है। हे लक्ष्मण, तुम साधुचरित्र हो, तुम मित्रघात का विचार न करना। सुग्रीव के साथ वही प्रीति रखना और पहले किये हुए मित्रत्व का स्मरण करना। देखो, सुग्रीव से कठोर वचन न कहना। समझाने की रीति से केवल इतना ही कहना कि लो, जिस समय की तुमने प्रतिज्ञा की थी वह बीत गया।

बड़े भाई का यह वचन सुनकर श्रीलक्ष्मण ने किष्किन्धापुरी में प्रवेश किया। वहाँ वे अपने क्रोध को दिखलाते हुए सुग्रीव के घर अर्थात् राजभवन की ओर चले। उनका धनुष इन्द्र के धनुष के सदृश, कालान्तक के समान और पर्वत के शृङ्ग के तुल्य

विशाल था। उसको हाथ में लिये लक्ष्मण ऐसे देख पड़ते थे मानो अपने शृङ्गों से शोभित मन्दराचल हो। भाई के वचन को यथोचित करनेवाले श्रीलक्ष्मण-जी की बुद्धि बृहस्पति के तुल्य थी। वे मन में उत्तर-प्रत्युत्तर के वचन सोचते जाते थे। भाई के काम और क्रोध की अग्नि से सन्ताप को प्राप्त होते हुए वे वेगवान् तीव्र आँधी की नाईं चले जाते थे। मार्ग में वे साखू ताल और अश्वकर्ण के वृक्षों को वेग से गिराते तथा पर्वत के शृङ्गों को ढहाते जाते थे; वे वृक्षों को वेग से काटते और शिलाओं को चूर करते हुए गजराज की नाईं कार्य्यवश शीघ्र चले जाते थे। वानरराज सुग्रीव की पुरी सेनाओं के भरी, बड़ी दुर्गम और पर्वत की सन्धि में बसी थी। उसको लक्ष्मण ने देखा। वे सुग्रीव पर क्रोध किये और होठों को फरफराते किष्किन्धा के बाहर घूमनेवाले भयङ्कर वानरों को देखने लगे। वे वानर गजराज के सदृश थे। लक्ष्मण को देख-कर वे पर्वत के शृङ्गों और सैकड़ों विशाल वृक्षों को ले-लेकर पर्वत की खोहों में खड़े हो गये। लक्ष्मण क्रुद्ध तो पहले से ही थे परन्तु इन सबको युद्ध-तत्पर, हाथों में वृक्ष और पर्वतों को लिये, देख उनका क्रोध दूना बढ़ गया, जैसे कि बहुत से ईंधन से आग अधिक प्रज्वलित होती है। वे सब लक्ष्मण को अत्यन्त क्रुद्ध और मारे क्रोध के कालमृत्यु तथा युगान्त के अग्नि के तुल्य भयङ्कर देखकर अत्यन्त भयभीत हो गये। उनमें से सैकड़ों इधर-उधर भाग गये। जो श्रेष्ठ वानर थे उन्होंने सुग्रीव के घर जाकर लक्ष्मण का क्रोध-पूर्वक आना कह सुनाया। सुग्रीव तो तारा के साथ कामासक्त हो रहे थे, वे काहे को इनके वचनों की ओर मन देते! इसके अनन्तर सचिवों की आज्ञा पाकर बड़े-बड़े वानर लोग हाथों में वृक्ष लेकर खड़े हो गये। उन वानरों का ऐसा रूप था कि जिसको देखते ही रोमाञ्च हो जाय। बड़े-बड़े दाँतों और पैने नखों के कारण वे भयङ्कर सिंह के सदृश विकराल थे। उनमें से किसी में दस हाथियों का, किसी में सौ हाथियों का और किसी में हजार हाथियों का बल था। वे बड़े तेजस्वी देख पड़ते थे। इसके अनन्तर क्रोधयुक्त लक्ष्मण ने देखा कि सम्पूर्ण किष्किन्धा वानरों से भर गई और शत्रुओं द्वारा जीतने के अयोग्य हो गई। प्राकार और खाइयों के बीच से निकलकर वे महा-पराक्रमी वानर प्रत्यक्ष खड़े हो गये। वीर लक्ष्मण बड़े धीर थे। सुग्रीव के प्रमाद को देखकर और बड़े भाई के उस आवश्यक कार्य पर ध्यान देकर वे फिर भी क्रोधित हुए। लम्बी गर्म साँस छोड़ते हुए वे सधूम अग्नि के तुल्य देख पड़ने लगे। क्रोध के कारण उनकी आँखें लाल हो गईं। लक्ष्मण पाँच मुखवाले साँप की नाईं जान पड़ते थे, जिसकी बाणरूप जिह्वा फड़कती थी, धनुषरूप भोग* था और जिसमें अपना तेजरूप विष था। उस समय लक्ष्मण को प्रज्वलित कालाग्नि के सदृश और क्रुद्ध सर्पराज के तुल्य देखकर अंगद अत्यन्त डरे और बड़े दुखी हुए। उस समय लक्ष्मण के नेत्र क्रोध के मारे लाल हो गये थे। वे अङ्गद को देखकर बोले—बेटा! जाओ, सुग्रीव को मेरे आने की सूचना दो कि भाई की वेदना से पीड़ित लक्ष्मण तुम्हारे पास आये हैं और द्वार पर खड़े हैं। यदि उनके वचन सुनने में तुमको रुचि हो तो वैसा करो अर्थात् यदि उनकी बात सुनना चाहते हो तो शीघ्र आकर सुनो। बेटा, मेरा यह वचन सुग्रीव को सुनाकर शीघ्र लौट आओ। लक्ष्मण के मुँह से यह बात निक-

* भोग = सर्प का शरीर।

लते ही वे दौड़े और पिता के समीप जाकर बोले कि लक्ष्मण आये हैं। लक्ष्मण के उस रूखे वचन से अङ्गद बहुत व्याकुल और दीनमुख हो गये थे। पिता को इस बात का सन्देश देकर वे झट वहाँ से निकले। रुमा अर्थात् सुग्रीव की स्त्री के चरणों की वन्दना कर उन्होंने पिता के चरणों पर मस्तक रक्खा, तदनन्तर अपनी माता तारा को नमस्कार किया, फिर रुमा के चरणों पर गिरे और सब सन्देश कह सुनाया। परन्तु सुग्रीव निद्रा से ऐसे घिरे हुए और प्रमत्त थे कि कुछ भी न सुन-समझ सके। वे तो मदमत्त और काम से मोहित थे। वानरों का चित्त मारे डर के मोहित हो गया था। लक्ष्मण को क्रुद्ध देखकर उन्हें प्रसन्न करने के लिए वे बड़े उच्चस्वर से किलकिला शब्द करने लगे। उस समय वानरों का एक साथ ऐसा शब्द हुआ जैसा बड़ी धारा के प्रवाह का और बिजली की कड़कड़ाहट का होता है। यह शब्द लक्ष्मण के समीप ही हुआ। उस महाशब्द से सुग्रीव जागे, परन्तु उस समय उनके नेत्र मद से व्याकुल और लाल-लाल देख पड़ते थे। गले में सुन्दर माला पहने सुग्रीव व्याकुल से देख पड़ते थे। उन्होंने अङ्गद का वचन सुना। अंगद के साथ ही यक्ष और प्रभाव नामक दो मन्त्री भी भीतर जाकर सुग्रीव को लक्ष्मण के आने का संवाद सुनाने लगे। ये दोनों सुग्रीव के अन्तःपुर तक जा सकते थे और अर्थ-धर्म के विषय में जो कुछ ऊँची-नीची बात होती थी वह सुग्रीव को समझाते थे। पहले तो उन्होंने अर्थ-निश्चय के साथ वचन कहकर सुग्रीव को प्रसन्न किया। फिर वे दोनों सुग्रीव के अगल-बगल बैठ गये, जैसे इन्द्र के पास देवता बैठते हैं। वे दोनों कहने लगे—सत्यसन्ध महाभाग श्रीराम और लक्ष्मण मनुष्य-शरीर धारण किये हैं। वे राज्य के योग्य हैं। उन्होंने तुम्हें राज्य दिया है। उन्हीं राम के छोटे भाई लक्ष्मण हाथ में धनुष लिये द्वार पर खड़े हैं। उनके डर से थर-थर काँपते ये वानर चिल्ला रहे हैं। श्रीराघव के भाई लक्ष्मण का व्यवसाय ही रथ और वाक्य ही सारथी हैं। वे रामचन्द्र की आज्ञा से आये हैं। उन्हीं ने शीघ्रता से तारा के प्रिय पुत्र अङ्गद को तुम्हारे पास भेजा है। वे क्रोध से लाल-लाल नेत्र किये मानो नेत्राग्नि से वानरों को भस्म कर डालना चाहते हैं। वे द्वार पर खड़े बाट देखते हैं। महाराज, आप पुत्र को और अपने बन्धुजनों को साथ लेकर शीघ्र चलिए और मस्तक नवाकर उनको प्रणाम कीजिए, जिससे कि उनका क्रोध शान्त हो जाय।

दोहा

जेहि बिधि तुम कहँ जानही, धर्मशील रघुनाथ।
तेहि प्रकार मन धीर धरि, करि तुम होहु सनाथ॥

सोरठा

समय सँभारहु नाथ, करहु प्रतिज्ञा सत्य निज।
ना तरु श्री रघुनाथ, करन चहत उत्पात बड़॥

---

# बत्तीसवाँ सर्ग

## सुग्रीव का पश्चात्ताप और हनुमान् का उनको समझाना

अब सुग्रीव ने अंगद और मन्त्रियों से लक्ष्मण को क्रोधित सुनकर अपना आसन छोड़ दिया। विचार करने में बड़े निपुण मन्त्रियों से सुग्रीव ने गुरु लघु का विचार करके कहा—न तो मैंने उनके प्रति कुछ दुर्वचन कहा है और न कुछ दुष्ट कर्म किया है। ये श्रीरामचन्द्र के भ्राता लक्ष्मण किस कारण क्रोधित हुए हैं? यही मैं सोच रहा हूँ। मेरी समझ में

यही आता है कि मेरे शत्रुओं ने, जो नित्य मेरे दोष ढूँढ़ते रहते हैं, मेरे झूठे-झूठे दोष श्रीराघव के अनुज को सुनाये हैं। अब इस विषय में तुम लोग अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार यथोचित विचार कर इस बात का निश्चय करो। मुझे तो न लक्ष्मण से डर है और न श्रीराघव से; परन्तु मित्र का बे-ठिकाने क्रोधित होना ही डर का मूल-कारण है। मित्रता करना सहज है परन्तु उसका निबाहना बड़ा कठिन है; क्योंकि चित्त की स्थिरता सदा एक सी नहीं रहती, इसलिए थोड़ी सी बात में भी प्रीति में भेद हो जाता है। इन बातों को सोचकर मैं श्रीराम से डरता हूँ। उन्होंने मेरे साथ जो उपकार किया है उसका बदला चुकाने में मैं समर्थ नहीं हुआ।

यह सुनकर वानरश्रेष्ठ श्रीहनुमान् मन्त्रियों के बीच में अपने तर्क से विचार करके बोले—हे कपिगणेश्वर, यह बात सर्वथा आश्चर्य की नहीं जो तुम उस महोपकार को नहीं भूलते। देखो, श्रीराघव ने डर छोड़कर तुम्हारी प्रीति के लिए उस इन्द्रतुल्य पराक्रमी बाली को मारा था। इसलिए मैं जानता हूँ कि श्रीरामचन्द्र सर्वथा प्रेम से ही क्रुद्ध हुए हैं। इसमें सन्देह न करना चाहिए। प्रेम के ही कोप से अपने भाई लक्ष्मण को उन्होंने तुम्हारे पास भेजा है। इसका कारण मैं कहता हूँ, सुनिए। आप तो इस समय ऐसे प्रमत्त हो रहे हैं कि समय का विचार तक नहीं करते। देखिए, हरे-हरे पत्तेवाले छितिउन के वृक्ष फूलों से भर गये। आकाश से मेघ हट गये। ग्रह और नक्षत्र निर्मल प्रकाशित देख पड़ने लगे। सम्पूर्ण दिशाएँ, नदी और सरोवर भी निर्मल हो गये हैं। अब यह शरत्काल आ पहुँचा। हे वानरराज, उद्योग करने का समय आ गया; फिर भी आप नहीं जानते। आप प्रमत्त हैं, यही विचार कर ये लक्ष्मण यहाँ आये हैं। सो अब पीड़ित और स्त्री-रहित महात्मा श्रीरामचन्द्र का कठोर वचन, दूसरे पुरुष के मुँह से, आपको सहना ही पड़ेगा। अब तो हाथ जोड़कर लक्ष्मण को प्रसन्न करने में ही आपका कुशल मुझे देख पड़ता है; क्योंकि समय को बिताकर आप एक अपराध कर बैठे हैं। अधिकारी मन्त्रियों को राजा से हित की बात कहनी चाहिए। इसलिए मैं भय छोड़कर न्याय की बात कहता हूँ। देखिए, श्रीराघव में यह सामर्थ्य है कि यदि वे क्रुद्ध हों तो धनुष के द्वारा देव, असुर और गन्धर्वों-सहित इस जगत् को अपने वश में कर डालें। इसलिए हे राजन्, ऐसे पुरुष को क्रुद्ध न करना जिसको पीछे से प्रसन्न करना पड़े और खास कर उसको, जिसने कि पहले अपना उपकार किया है। कृतज्ञ पुरुष को तो यह सर्वथा अनुचित ही है। इसलिए आप पुत्र को और अपने बन्धुजनों को साथ ले जाकर, मस्तक नवाकर, उनको प्रणाम करो और अपनी कही बात पर स्थिर हो जाओ। राजन्, आप उनके वश में हो जाओ जैसे स्त्री अपने पति के वश में हो जाती है।

दोहा

श्रीरघुपति अरु लखन कर, अनुसासन कपिनाथ।
टारन योग न मनहु ते, जाइ नवावहु माथ॥

सोरठा

मन जानिहि तव नाथ, मानुष बल जिमि भ्रात दोउ।
हम सब होब सनाथ, शक्र-तुल्य रघुवरहि मिलि॥

——

# तेंतीसवाँ सर्ग

## लक्ष्मण का भीतर जाना और तारा से बातचीत करना

अब अंगद से उत्तर मिलने पर श्रीराम की आज्ञा के अनुसार लक्ष्मण किष्किन्धा में पहुँच गये। द्वार पर जो बड़े-बड़े विशाल शरीरवाले बलवान् वानर खड़े थे वे लक्ष्मण को देख हाथ जोड़कर खड़े हो गये। वे लोग लक्ष्मण को क्रोध से निःश्वास छोड़ते देख ऐसे डर गये कि इनको रोक न सके। वह रमणीय गुफा रत्नों से खचित और पुष्पित वनों से शोभित थी। उसमें रत्न बिछे हुए थे। उसको लक्ष्मण ने देखा। उसमें नाना प्रकार के कोठे और अटारियाँ थीं। नाना प्रकार के रत्न, सदा सब प्रकार के फल देनेवाले फूले-फूले वृक्ष, देव और गन्धर्वों के पुत्र और कामरूपी वानर वहाँ देख पड़े। वे सुन्दर रूपवाले वानर दिव्य माला और वस्त्र पहने हुए थे। वहाँ के राजमार्ग चन्दन, अगुरु और कमलों की गन्ध से सुगन्धित, तथा मैरेय और मधु दो प्रकार के मद्यों के गन्ध से आमोदित देख पड़े। उस नगरी के गृह विन्ध्याचल और मेरु पर्वत के तुल्य विशाल और अनेक खनवाले थे। वहाँ पहाड़ी नदियों में जल बह रहा था। राजमार्ग के ऊपर अंगद, मैन्द, द्विविद, गवय, गवाक्ष, गज, शरभ, विद्युन्माली, सम्पाति, सूर्याक्ष, हनुमान्, वीरबाहु, सुबाहु, नल, कुमुद, शुषेण, तार, जाम्बवान्, दधिवक्त्र, नील, सुपाटल और सुनेत्र, इन प्रधान वानरों के बड़े पक्के गृह थे। वे सफेद मेघों की नाईं चमकते, गन्ध और मालाओं से शोभित, अन्न, धन और सुन्दर स्त्रियों से भरे-पूरे थे। वानरराज का भवन सफेद पर्वत से घिरा और दुर्जय था। वह इन्द्र के भवन के तुल्य था। वह श्वेत प्रासाद और कैलास के शृंगों के सदृश शिखरों से युक्त था। वहाँ इन्द्र के दिये हुए ऐसे मनोहर वृक्ष थे जिनमें दिव्य पुष्प और फल लगते थे। वे वृक्ष मेघों की घटा के समान थे। उनकी छाया शीतल थी। वहाँ ऐसे भी वृक्ष थे जो सब कामनाएँ पूर्ण करते थे। उसके द्वार पर हाथ में शस्त्र लिये बलवान् वानर सावधानी से खड़े थे। वह भवन दिव्य मालाओं से वेष्टित, श्वेत रंगयुक्त और सुवर्ण के तोरणों से सुशोभित था। उसमें श्रीरामानुज ने प्रवेश किया।

उस समय श्रीलक्ष्मण ऐसे बे-रोकटोक चले जाते थे जैसे महामेघ-मण्डल में सूर्य प्रवेश करते हैं। वहाँ सौमित्रि ने सात कक्षाएँ देखीं, जो आसन और सवारियों से पूर्ण थीं, इसके अनन्तर बड़ा विस्तीर्ण अन्तःपुर था जहाँ सोने-रूपे के पलँग और बैठने के लिए बहुत प्रकार के मञ्च पड़े थे। उन पर बड़े मोल के बिछौने बिछे थे। वहाँ जाते ही वीणा और गीत से परिपूर्ण, समताल से युक्त, और पदों के अक्षरों से मनोहर मधुर शब्द सुनने में आया। रूप और यौवन से गर्वित अनेक आकारों की बहुत सी स्त्रियाँ वहाँ देख पड़ीं। वे अपने कुल और चरित्र से शोभित थीं और उत्तम मालाएँ पहने हुए थीं। वे उत्तम मालाओं की रचना में तत्पर और उत्तम भूषणों से भूषित थीं। श्रीलक्ष्मण ने वहाँ पर सुग्रीव के हृष्टपुष्ट अनुचरों को देखा जो सावधान-चित्त और उत्तम भूषण पहने थे। अब श्रीसुमित्रानन्दन पायलों के और क्षुद्रघण्टिकाओं के मधुर मनोहर शब्द सुनकर लज्जित हो रहे। क्रोध का वेग तो उनको था ही तिस पर भूषणों के शब्द सुनकर वे अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। उन्होंने प्रत्यञ्चा के शब्द से दिशाओं को पूर्ण कर दिया; परन्तु चरित्र-

रक्षा के हेतु श्रीलक्ष्मण आगे नहीं बढ़ सके, एकान्त स्थल देखकर वहीं ठहर रहे। उस प्रत्यञ्चा के शब्द से लक्ष्मण के आने का पता पाकर सुग्रीव डरे और आसन छोड़कर खड़े हो गये। वे कहने लगे कि अंगद ने मुझे जो सन्देश दिया था सो ठीक है, लक्ष्मण आ पहुँचे। जब प्रत्यञ्चा का शब्द भी सुन पड़ा, तब तो लक्ष्मण के आने का निश्चय होने से वानरराज का मुख सूख गया। वह व्याकुल होकर तारा से बोला—हे सुभ्रु! क्रोध का कारण कुछ समझ नहीं पड़ता कि ये श्रीराघवानुज क्रोध करके क्यों आये हैं। इनका चित्त तो स्वभाव से ही कोमल है। हे अनिन्दिते, तुम कुमार के क्रोध का कारण क्या समझती हो? क्योंकि ये नरश्रेष्ठ जो इस प्रकार से रुष्ट हुए हैं, सो इसका कुछ कारण अवश्य होगा। मेरे द्वारा यदि उनका कुछ अप्रिय हुआ हो और उसको तुम जानती हो तो विचार करके शीघ्र उसका उपाय करो; अथवा तुम स्वयं जाकर उनका दर्शन करो और शीतल वचनों से उनको प्रसन्न करो। जब वे तुमको देखेंगे तब क्रोध न करेंगे; क्योंकि उनका अन्तःकरण अत्यन्त शुद्ध है और महात्मा लोग स्त्रियों के साथ कठोरता का व्यवहार करते भी नहीं। जब तुम्हारे शान्त वचनों से वे प्रसन्नेन्द्रिय और प्रसन्नमन हो जायँगे तब मैं उनसे भेंट करूँगा और उनके दर्शन करूँगा। यह सुनकर स्तन-भार से झुकी हुई तारा लक्ष्मण के पास गई। उसके नेत्र मद से व्याकुल थे। सुवर्ण की काञ्ची की लड़ को लटकाये वह प्रति पग पर लड़खड़ाती जाती थी। उस समय हरि-राज की पत्नी को देख महात्मा लक्ष्मणजी ने उदास हो नीची निगाह कर ली। स्त्री को देखते ही उनका क्रोध भी शान्त हो गया। तारा एक तो मद्यपान के कारण लज्जाहीन थी ही, दूसरे लक्ष्मण की दृष्टि में प्रसन्नता की झलक पाकर समझाने के योग्य वचन बोली। अर्थ से भरे हुए उन वचनों में मैत्री की ढिठाई मौजूद थी। उसने कहा—हे राजेन्द्र-पुत्र, आपके कोप का क्या कारण है? आपकी आज्ञा के अनुसार कौन कार्य नहीं करता? सूखे वृक्षोंवाले वन को जला रही आग में कौन जन शङ्कारहित होकर अपने को डालना चाहता है?

इस पर लक्ष्मण प्रेमगर्भित वचन बोले—हे तारा, तू तो सदा पति के ही हित में तत्पर रहती है। क्या तू नहीं देखती कि तेरा पति काम के व्यवहार में कैसा तत्पर हो रहा है और धर्म-अर्थ के संग्रह से हीन हो बैठा है? देख, उसने अपने राज्य की और हमारे शोक की भी चिन्ता छोड़ दी है! उसकी सामान्य सभा ही राजकाज करती है और आप केवल काम के व्यापार में मग्न रहता है। देख, वानरराज ने जिन चार महीनों की प्रतिज्ञा की थी वे बीत गये। उनकी ओर यह दृष्टि भी नहीं करता; मतवाला होकर विहार करता है और कुछ भी चेत नहीं करता। देख, धर्म और अर्थ के साधन में मदपान करना प्रशंसा के योग्य नहीं। मदपान से अर्थ, काम और धर्म भी नष्ट हो जाता है। पहले तो यही एक धर्मलोक का महाकारण है कि सुग्रीव, उपकृत होकर भी, प्रत्युपकार करने में सुस्त देख पड़ता है। गुणवान् मित्र का नाश होने से बड़े अर्थ का नाश समझना चाहिए। मित्र को उचित है कि मित्र के अर्थ-साधन से अपने श्रेष्ठ गुणों को दिखलावे और सत्य धर्म पर तत्पर रहे। इन दोनों बातों को सुग्रीव ने छोड़ दिया है। वह धर्म पर आरूढ़ नहीं रहा। तू तो कार्य के तत्त्वों को जानती है। अब बतला कि इस समय इस प्रकार के उपस्थित कार्य में हम आगे क्या करें? लक्ष्मण के वाक्य इस प्रकार धर्म और अर्थ से मिश्रित

और स्वभाव से मधुर थे। उनको सुनकर तारा श्रीरामचन्द्र के उस कार्य के विषय में, जिसका समय बीता जा रहा था, विश्वासयुक्त वचन बोली—हे राजेन्द्रपुत्र, यह कोप करने का समय नहीं है और न आपको अपने जन पर कोप ही करना चाहिए। आपके ही अर्थ-साधन में जो दत्तचित्त है उस जन से जो कुछ भूल हो गई हो उसको क्षमा कीजिए। हे कुमार, भला सुनिए तो सही कि आपके ऐसा गुणोत्कृष्ट जन कौन होगा जो हीन बलवाले व्यक्ति पर इस प्रकार क्रोध करेगा; और कौन ऐसा सत्त्वगुणयुक्त श्रेष्ठ तपस्वी होगा जो इस प्रकार के कोप के वश में हो जायगा? मैं जानती हूँ कि समय का बीत जाना श्रीराम के कोप का कारण है। मैं यह भी जानती हूँ कि आपने हमारा बड़ा उपकार किया है। और मुझे जो कुछ प्रत्युपकार आपका करना चाहिए उसको भी मैं जानती हूँ। दुःसह काम का जैसा बल है उसको भी मैं जानती हूँ। उसी की बलवत्ता से सुग्रीव स्त्रियों में फँसकर आपके कार्य्य की ओर दृष्टि नहीं करता। यह सब मैं जानती हूँ। आपकी बुद्धि काम के विषय में अनुरक्त नहीं है, इसीलिए आप क्रोध के वश में हो गये। देखिए, जो मनुष्य काम के वश में हो जाता है वह देश और काल के यथार्थ धर्मों को नहीं जान सकता। हे शत्रुवीरनाशन, अब आप इस समय उस वानरवंश-नाथ सुग्रीव को क्षमा कीजिए। वह काम के व्यवहार में फँस रहा और काम के वेग से ही निर्लज्ज हो रहा है। देखिए, जो बड़े-बड़े महर्षि लोग धर्म और तपस्या में दृढ़व्रत हैं वे भी ऐसे काम के वश में हो अज्ञान में पड़ जाते हैं कि उन्हें कुछ भी नहीं सूझता। यह एक तो वानर की जाति है जो स्वभाव से ही चञ्चल होती है; दूसरे राजा है। यह भला क्यों न सुखों में आसक्त हो?

वह मद-घूर्णितनयना वानरी यों लक्ष्मण को समझाकर फिर भी सुग्रीव के हित की बात बोली—हे नरोत्तम, यद्यपि सुग्रीव काम के वश में है तो भी आपके प्रयोजन के साधन के विषय में वह बहुत दिनों से उद्योग कर रहा है। नाना-पर्वतवासी सौ सहस्र कोटि वानर आ गये हैं। वे महापराक्रमी और कामरूपी हैं। हे महाबाहो, आइए। आपने चरित्र की रक्षा की, क्योंकि साधुजन मित्रभाव से छल-रहित होकर स्त्रियों को देखते हैं।

तारा की आज्ञा पाकर श्रीलक्ष्मण भीतर गये। वहाँ जाकर देखा कि सुग्रीव बड़े मोल के बिछौने से शोभित सुवर्ण के आसन पर बैठे हैं। वे सूर्य के तुल्य प्रकाशमान हैं। वे दिव्य गहने पहने, दिव्य-रूपधारी और दिव्य वस्त्र तथा माला पहने हैं। वे इन्द्र की नाईं दुर्जेय और चारों ओर दिव्य भूषण तथा मालाओं को धारण किये कामिनी स्त्रियों से घिरे हैं। तब लक्ष्मण के नेत्र अधिक क्रोध से लाल हो गये। वे दूसरे काल की नाइ हो गये।

छन्द

तेहि समय कपिनृप वीर। गर लाय रुमहि सुधीर॥
वर हेम आसन राज। तेहि मध्य सुकपि विराज॥
सौमित्रि कोपि विशाल। पहुँचे तहाँ ततकाल॥

## चौंतीसवाँ सर्ग

### लक्ष्मण का सुग्रीव को कटु वचन कहना

उस समय लक्ष्मण को देख सुग्रीव थरथरा उठे; क्योंकि भाई के दुःख के मारे लक्ष्मण क्रोध से

प्रज्वलित हो रहे थे। अपने सोने के आसन को झटपट छोड़कर सुग्रीव इस तरह उठ खड़े हुए जिस तरह महेन्द्र की विशाल भूषित ध्वजा खड़ी हो जाय। सुग्रीव को उठते देख रुमा इत्यादि स्त्रियाँ भी उठ खड़ी हुईं, जैसे चन्द्र के अनुसार तारागण उदित होते हैं। अब श्रीमान् सुग्रीव हाथ जोड़, लक्ष्मण के समीप आकर, बड़े कल्पवृक्ष की नाईं खड़े हो रहे। रुमा के साथ सब स्त्रियों के बीच में खड़े सुग्रीव से लक्ष्मण ने कहा—देखो, सत्कुलोत्पन्न अगाध-बुद्धि-सम्पन्न राजा यदि दयालु, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ और सत्यवादी हो तो लोक में प्रतिष्ठा पाता है; परन्तु जो राजा अधर्म पर आरूढ़ होकर उपकारी मित्रों के साथ झूठ बोलता है उसके समान क्रूर दूसरा कौन होगा? देखो, एक घोड़े के विषय में झूठ बोलने से सौ घोड़े मारने का दोष और एक गाय के विषय में मिथ्या भाषण करने से हजार गायों के वध का प्रायश्चित्त लगता है; एक पुरुष के विषय में असत्य बोलने से आत्मघात और स्वजन-वध का पाप होता है। हे कपिराज, जो नर मित्रों के द्वारा पहले उपकृत होकर उनका प्रत्युपकार नहीं करता वह कृतघ्न कहलाता है। इसलिए वह सब प्राणियों के हाथ से मारे जाने योग्य है। देखो, सबके मान्य और पूजनीय ब्रह्मा ने कृतघ्न को देख क्रुद्ध होकर एक श्लोक कहा है। सुनो—

गोघ्ने चैव सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः॥

अर्थात् गोघाती, मद्यपान-कर्त्ता, चोर और जिसका व्रत भंग हो गया है उसके उद्धार का मार्ग तो सत्पुरुषों ने बता दिया है परन्तु कृतघ्न का उद्धार किसी प्रकार नहीं हो सकता।—हे वानर! तुम नीच, कृतघ्न और मिथ्यावादी हो; क्योंकि श्रीराम के द्वारा पहले कृतार्थ होकर अब उनका काम नहीं करते। हे वानर, तुमको तो यही उचित था कि उपकृत होकर तुम भी सीता की खोज में प्रयत्न करते और इस कार्य के द्वारा अपने को प्रत्युपकारी सिद्ध करते। परन्तु तुम तो असत्य-प्रतिज्ञ होकर तुच्छ भोगों में आसक्त हो रहे हो। तुम मेढक के समान शब्द करनेवाले सर्प हो, तुमको राघव ने पहचाना नहीं। देखो, महाभाग महात्मा श्रीरघुनन्दन ने दया करके तुम्हारे ऐसे पापी दुरात्मा को वानरों का राजा बना दिया। हे सुग्रीव, यदि तू श्रीराम के उपकार को नहीं मानता है तो इसी समय पैने-पैने बाणों से अपने प्राण त्याग करके बाली को देखेगा। जिस मार्ग से बाली ने मरकर प्रस्थान किया है वह बन्द नहीं हो गया। हे सुग्रीव, अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर हो। तू बाली का मार्गानुसारी मत बन।

दोहा।

श्रीरघुपति के धनुष ते, छूटे पबि-सम तीर।
देखि सुखी तुम होहुगे, सह कुटुम्ब कपि-वीर।

सोरठा

राम-काज तुम वीर, अजहुँ न सोचत मनहुँ ते।
अति दयालु रघुवीर, नहिं निरखत तव वञ्चना॥

---

## पैंतीसवाँ सर्ग

### तारा की विनती से लक्ष्मण के क्रोध की शान्ति

लक्ष्मण इस प्रकार क्रोध से वचन बोलते और तेज से प्रज्वलित हो रहे थे। उनसे चन्द्रमुखी तारा बोली—हे लक्ष्मण, आपको ऐसा वचन न कहना चाहिए। यह कपिराज ऐसे कठोर वचनों के

योग्य नहीं। विशेष करके आपके मुँह से ऐसा वचन इनके प्रति न निकलना चाहिए। देखिए, सुग्रीव न तो कृतघ्न है, न शठ, न दारुण, न मिथ्यावादी और न कपटी ही। जो उपकार किया गया है उसको यह भूला भी नहीं। श्रीरामचन्द्र ने इसके साथ जो उपकार किया है उसे और लोग नहीं कर सकते थे। हे परन्तप, श्रीराम के प्रसाद से सुग्रीव को कीर्त्ति, सनातन राज्य, मैं और रुमा मिली हैं। पहले के दुःखों का मारा हुआ यह सुग्रीव उत्तम सुख पाकर अचेत हो गया और प्राप्त-काल को नहीं जानता, जैसे कि विश्वामित्र मुनि घृताची नाम की अप्सरा पर दस वर्ष पर्यन्त आसक्त रहे थे, और बीते हुए समय को न जान सके थे। देखिए, इतने बड़े महामुनि धर्म्मात्मा विश्वामित्र जब समय से अचेत हो गये तब नीच जन की क्या बात कहनी चाहिए! हे लक्ष्मण, श्रीरघुनाथ को अब यह उचित है कि इस वानरराज को क्षमा करें; क्योंकि यह देह-धर्म में प्राप्त, थका और कामों से तृप्त नहीं है। आप भी कार्य्य के अर्थ को बिना जाने इस प्रकार क्रोध के वश में न हूजिए, जैसे और जन एकाएक क्रोध कर बैठते हैं। आपके तुल्य पराक्रमी जन बिना विचारे क्रोध के अधीन नहीं होते।

हे धर्मज्ञ, मैं सुग्रीव के लिए आपको मना रही हूँ। अब आप इस महाक्रोध को और उसके सन्ताप को त्याग दीजिए। मैं इस बात को अच्छी तरह जानती हूँ कि श्रीराम के कार्य के लिए सुग्रीव रुमा को, मुझे, अङ्गद को, राज्य को, धन-धान्य और पशुओं को छोड़ देगा। सुग्रीव श्रीराघव को सीता से ऐसे मिला देगा जैसे चन्द्र को रोहिणी प्राप्त होती है। यह उस अधम राक्षस को मारेगा भी। देखिए, लङ्का में सौ कोटि सहस्र और छत्तीस दश सहस्र सहस्र सौ राक्षस हैं। इसलिए इन कामरूपी दुर्द्धर्ष राक्षसों को बिना मारे रावण नहीं मारा जा सकता। उनको और रावण को भी मारने के लिए सुग्रीव की सहायता अपेक्षित होगी। बाली ने मुझसे यह बात कही थी। मैं आगम-ज्ञानिनी तो हूँ नहीं, परन्तु जो कानों से सुन रक्खा है वही मैंने कहा है। आपकी सहायता के लिए बहुत से वानरों के बुलाने को अनेक प्रधान वानर वीर भेजे गये हैं। सुग्रीव उन्हीं के आने की बाट जोह रहा है। इसी से श्रीराघव की कार्य्य-सिद्धि के लिए उपस्थित नहीं हुआ। आज ही उन सबके आने का दिन स्थिर है। सुग्रीव ने पहले से ही यह मर्यादा बाँध रक्खी है। आज ही कोटि सहस्र ऋक्ष, सौ गोलांगूल-जाति के वानर और अनेक कोटि और-और प्रकार के तेजस्वी वानर आपके समीप उपस्थित होंगे। इसलिए हे शत्रुनाशन, आप क्रोध को त्यागिए।

छन्द

तव मुख निरखि अति कोप-युत
अरु रक्त-नयन भयावने;
कर धनुष शर अरि-निकर-नाशन
दुष्ट खल डरपावने
कपिराज-वनिता हम सकल
प्रभु प्रथम भय-शङ्कित हिये;
नहिं शांति पावहिं विकल अति
अब दया हम पर कीजिए॥

---

## छत्तीसवाँ सर्ग

### सुग्रीव की प्रार्थना से लक्ष्मण का प्रसन्न होना

तारा के ये कोमल और धर्मयुक्त वचन सुनकर श्रीलक्ष्मण अपने कोमल स्वभाव के कारण

मान गये। अब सुग्रीव ने देखा कि इन्होंने तारा के वचन को अङ्गीकार कर लिया। लक्ष्मण से उन्हें जो बड़ा डर उत्पन्न हुआ था उसको, गीले कपड़े की नाईं, वानरराज ने छोड़ दिया। कपिराज सुग्रीव के कण्ठ में जो चित्र-विचित्र माला थी उसको उन्होंने तोड़ फेंका। अब वे सचेत हो गये। वे लक्ष्मण को प्रसन्न करने के लिए नम्रता पूर्वक बोले—हे राजपुत्र, जिन रामचन्द्र के प्रसाद से मैंने अपनी नष्ट श्री, कीर्ति और सनातन कपि-राज्य को फिर से पाया है उन राजेन्द्र के उपकार के सदृश काम करने में कौन समर्थ है? वे तो अपने ही कामों से विख्यात हैं। धर्मात्मा श्रीराघव अपने ही तेजोबल से सीता को पावेंगे और रावण को मारेंगे। मैं तो नाममात्र के लिए सहायक रहूँगा। भला सुनिए तो सही, ऐसे महापुरुष का साहाय्य क्या कोई करेगा जिसने एक ही बाण से उन सात महावृक्षों को और पर्वत तथा भूमि को फोड़ डाला; और जिसके धनुष की टङ्कार से पर्वत-सहित भूमि काँप उठी? ऐसे पराक्रमी को सहाय से भला क्या काम? राजेन्द्र श्रीरामचन्द्र जब रावण पर चढ़ाई करेंगे तब मैं उनका अनुगामी हूँगा। विश्वास से अथवा प्रेम की रीति से मुझ दास से जो कुछ अपराध हुआ हो सो क्षमा करना चाहिए। ऐसा कौन दास होगा जिससे स्वामी का कुछ भी अपराध न हुआ हो!

सुग्रीव का यह वचन सुनकर लक्ष्मण प्रसन्न हुए। वे प्रेम-पूर्वक बोले—हे वानरेश्वर, तुम्हारे ऐसे नाथ को पाकर मेरे भ्राता क्यों न सनाथ हों, अर्थात् सर्वदा कृतार्थ होंगे। हे सुग्रीव, तुम तो बहुत ही नम्र हो। जो तुम्हारा इस प्रकार का प्रभाव और इस प्रकार की शुद्धता है तो तुम इस वानरराज्य की लक्ष्मी का भोग करने के योग्य हो। तुम्हारे साहाय्य से प्रतापयुक्त होकर श्रीरामचन्द्र शीघ्र रावण को मारेंगे। इसमें सन्देह नहीं है। हे सुग्रीव, तुम धर्म्मज्ञ और कृतज्ञ हो। तुम संग्राम में पीठ नहीं दिखाते। तुम्हारा यह सब कहना ठीक है। तुमको और मेरे भाई को छोड़ कौन ऐसा पण्डित है जो सामर्थ्य रहते ऐसी बात कहे? पराक्रम और बल में तुम श्रीरामचन्द्र के तुल्य हो और देवताओं ने ही बहुत काल के लिए हमारी सहायता करने को तुम्हें भेजा है। हे वीर, अब तुम मेरे साथ शीघ्र यहाँ से चलो और स्त्री के हरण से पीड़ित अपने मित्र को समझाओ।

दोहा

शोकाकुल श्रीराम के, दीन वचन सुनि कान।
जो कठोर कछु कहेउँ मैं, छमहु सुमित्र सुजान॥

---

## सैंतीसवाँ सर्ग

### सुग्रीव की आज्ञा से हनुमान् का वानरों को बुलवाना

लक्ष्मण का वचन सुनकर पास ही खड़े हनुमान् से सुग्रीव बोले—महेन्द्र, हिमालय, विन्ध्य, कैलाश और श्वेत शिखरवाले मन्दराचल पर जो वानर रहते हैं उन्हें शीघ्र बुलवाओ; मध्याह्न के सूर्य के तुल्य प्रकाशमान् जो गिरि हैं उन पर रहनेवाले और पश्चिम दिशा के तथा उदयाचल एवं अस्ताचल पर्वतों के निवासी वानरों को शीघ्र बुलवाओ; पद्माचल पर्वत के रहनेवाले वानर काले-काले मेघों के सदृश और गजेन्द्र के तुल्य महापराक्रमी हैं। उनको, अञ्जन नाम पर्वत पर रहनेवाले वानरों को तथा महाशैल नामक गिरि की गुफा में रहनेवाले सुवर्ण-रंग के वानरों को शीघ्र बुलवाओ। मेरु के समीप रहनेवाले और धूम्र पर्वत पर रहनेवाले वानरों को बुलवाओ।

महारुण नाम गिरि पर रहनेवाले वानरों का रंग तरुण सूर्य के सदृश है। वे मैरेय नामक मधु पीते हैं और बड़े भयङ्कर वेगवाले हैं। उनको शीघ्र बुलवाओ। बड़े-बड़े सुगन्धयुक्त रमणीय वनों में, जहाँ तपस्वियों के रमणीय आश्रम हैं वहाँ, जो वानर रहते हैं और चारों ओर वन के प्रान्तभागों में जो रहते हैं उन सबको साम, दाम इत्यादि उपाय से शीघ्र बुलवाओ। मैं जानता हूँ कि तुमने पहले ही वानरों को भेजा है; परन्तु फिर भी शीघ्रता के लिए दूसरे वानरों को भेजो। इनमें से कितने ही कामों में आसक्त होंगे और अनेक दीर्घसूत्री होंगे। इन सबको शीघ्र बुलवा भेजो। मेरी आज्ञा है कि दस दिन के बीच में जो मेरे पास न आवेगा वह मारा जायगा; क्योंकि वह राजा की आज्ञा का उल्लङ्घन करेगा। इस समय मेरे पास जो सैकड़ों, सहस्रों, करोड़ों वानर हैं और जो मेघ तथा पर्वत के सदृश देख पड़ते हैं तथा भयङ्कर रूपधारी हैं, वे मेरी आज्ञा से आकाश में उड़ते हुए शीघ्र जाकर उन वानरों को लावें। वे पृथ्वी के सब स्थानों को जानते हैं।

कपिराज के ये वचन सुनकर हनुमान् ने उन वानरों को दिशाओं में भेजा। अब उन वानरों ने आकाश में पक्षियों और तारागणों के मार्ग से शीघ्र जाकर समुद्रों, पर्वतों, वनों और सरोवरों के रहनेवाले वानरों को—श्रीराम के कार्य के लिए—राजा की आज्ञा कह सुनाई। आज्ञा पाते ही, मृत्यु-काल के तुल्य राजराज कपिराज के भय से भीत होकर, वे सब के सब तीन करोड़ वानर, जो कज्जल-वर्ण के और महाबली थे, उस पर्वत से निकल श्रीराघव के पास जाने को चल पड़े। अस्ताचल के निवासी दस करोड़ वानर तपाये हुए सुवर्ण के रंग के थे, वे भी चले। कैलाश के शिखरों पर रहनेवाले कोटि सहस्र वानरों का रङ्ग सिंह के केसर के तुल्य था, वे भी रवाना हुए। हिमालय पर जो फल-मूल से जीवन-निर्वाह करते थे वे कोटि सहस्र-सहस्र निकले। विन्ध्यपर्वतवासी वानर करोड़ सहस्र थे। उनका भयङ्कर रूप और भयङ्कर ही कर्म था। वे काले कोयले के सदृश थे। दुग्धसमुद्र के तटों में रहनेवाले, तमाल वन में रहनेवाले और नारियल खानेवाले असंख्य वानर निकल चले।

इस प्रकार वनों, कन्दराओं और नदियों से वानरों की सेना सूर्य को मानो पान करती हुई निकली। सब वानरों को बुलाने जो वानर गये थे उन वीरों ने हिमालय पर उस महावृक्ष को देखा, जहाँ पूर्वकाल में सब देवताओं के लिए मनः सन्तोषकारक मनोहर माहेश्वर यज्ञ हुआ था। वहाँ अन्न के रस से नाना मूल और फल उत्पन्न हुए थे। वे अमृत के तुल्य स्वादयुक्त थे। उनको वानरों ने देखा। जिन दिव्य मूल-फलों को एक बार खा लेने से महीने भर तक तृप्ति रहती है उन दिव्य मूल-फलों को और वहाँ के दिव्य औषधों को वानर-यूथपतियों ने ले लिया। सुग्रीव की प्रसन्नता के लिए वे उस यज्ञ के स्थान से अच्छे-अच्छे सुगन्धित पुष्प भी ले आये। वे प्रधान-प्रधान वानर इस प्रकार पृथिवी के सब वानरों को सन्देश देकर और चलने के लिए सबको प्रेरणा करके झुण्डों के आगे-आगे चले और मुहूर्त्तमात्र में किष्किन्धा में सुग्रीव के पास जा पहुँचे। वहाँ से वे जो फल-मूल और ओषधियाँ लाये थे, वह सब सुग्रीव के आगे भेंट रक्खी और कहा—हम सबने पर्वत, नदी और सभी वनों में जाकर सबको आपकी आज्ञा सुना दी। वे सब वानर आ रहे हैं।

दोहा

एहि विधि तिनके वचन सुनि, हर्षितमन सुग्रीव।
फल इत्यादि उपायनहिं, लिये अतुल बलसींव॥

## अड़तीसवाँ सर्ग

### लक्ष्मण के साथ सुग्रीव का श्रीरामचन्द्र के पास जाना

सुग्रीव ने उन शूर वानरों की भेंट ग्रहण कर उनको समाश्वासन दिया और विदा किया। वानर-नाथ ने इससे अपने को और श्रीराघव को कृतार्थ माना। अब लक्ष्मण सुग्रीव से नम्रता-पूर्वक हर्ष के साथ बोले कि हे सौम्य, यदि आपकी इच्छा हो तो अब किष्किन्धा से बाहर चलें। यह सुनकर सुग्रीव अत्यन्त प्रसन्न हो बोले कि बहुत अच्छा, मैं अब आपकी आज्ञा में स्थिर हूँ। लक्ष्मण से यह कहकर सुग्रीव ने तारा इत्यादि स्त्रियों को बिदा कर दिया और उन वानरों को पुकारकर चलने के लिए कहा। महाराज का वचन सुनकर वे सब प्रधान वानर शीघ्र आ गये, जो स्त्रियों के समीप आने के योग्य थे। वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये। सुग्रीव ने उनसे कहा कि हे वानरो! मेरी पालकी शीघ्र ले आओ। तब उन्होंने पालकी लाकर राजा के समीप रख दी। अब सुग्रीव ने लक्ष्मण से कहा कि आप इस पर बैठिए। यह कहकर लक्ष्मण के साथ वे आप भी उस सुवर्ण की पालकी पर चढ़े। वह पालकी सूर्य के सदृश चमक रही थी। उस समय सुग्रीव के ऊपर श्वेत छत्र लगाया गया। दोनों ओर चँवर होने लगे, शङ्ख और नगाड़ों के शब्द के साथ सुग्रीव की यात्रा हुई। उस समय राजा के चारों ओर सैकड़ों योद्धा हाथों में शस्त्र लिये चल रहे थे। वहाँ से चलकर जब श्रीरामचन्द्र के निवास-स्थान पर पहुँचे तब दोनों उस सवारी से उतर पड़े। रामचन्द्र के समीप जाकर सुग्रीव हाथ जोड़कर खड़े हो गये। राजा को हाथ जोड़ते देख वानर भी हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। उस समय श्रीराघव ने कमल की कलियों से भरे तड़ाग की तरह सुग्रीव को देखा। वानरों की सेना देख कर श्रीरामचन्द्र सुग्रीव पर प्रसन्न हुए। चरणों पर गिरे हुए सुग्रीव को उठाकर वे बहुत आदर से गले लगाकर मिले। उन्होंने उससे बैठने को कहा। सुग्रीव नीचे बैठ गये।

अब रामचन्द्र ने कहा—हे कपिश्रेष्ठ, समय का विभाग करके जो राजा धर्म, अर्थ और काम का सेवन करता है वही राज्य करने के योग्य होता है। जो धर्म और अर्थ का त्याग करके केवल काम में ही आसक्त रहता है वह उस पुरुष के समान है जो वृक्ष के आगे की शाखा पर सोता है और गिर पड़ने पर जागता है। जो राजा शत्रु के वध में तत्पर और मित्र के संग्रह में सन्नद्ध रहता है वह धर्मादि तीनों फलों का भोक्ता और धर्म से संयुक्त होता है। हे शत्रुनाशक, यह उद्योग का समय आ पहुँचा है। इस समय आप अपने मन्त्रियों के साथ विचार कीजिए। यह सुनकर सुग्रीव ने कहा—हे महाबाहो, मुझे आपके ही प्रसाद से श्री, कीर्त्ति और यह वानर-राज्य मिला है। यह राज्य मेरे लिए पहले नष्टप्राय था। यह आपके और आपके भाई के प्रसाद का फल है। यह ठीक है कि जो उपकार के बदले प्रत्युपकार नहीं करता वह पुरुषों में दोषी गिना जाता है। हे शत्रुनाशक, ये सैकड़ों प्रधान वानर लोग पृथ्वी भर के सम्पूर्ण बलवान् वानरों को लेकर उपस्थित हुए हैं। हे श्रीराघव! ये भालू, वानर और गोलांगूल बड़े शूर तथा भयङ्कर-रूप-धारी हैं। ये निर्जन स्थान, वन और दुर्गम स्थानों के बड़े जानकार हैं। इन कामरूप-धारी वानरों में कोई तो देवताओं के पुत्र हैं और कोई गन्धर्वों के। इनमें बहुत से अपनी अपनी सेनाओं को साथ लिये मार्ग में हैं। सैकड़ों, लाखों, करोड़ों, अयुत, शंकु अर्बुद, मध्य, अन्त्य, समुद्र और अपरार्द्ध संख्यक वानर

तथा इनके यूथपति आवेंगे। वे इन्द्र के तुल्य पराक्रमी हैं और उनका रूप मेघ तथा पर्वत के सदृश विशाल है। वे मेरु और विन्ध्य के रहनेवाले हैं। हे राजन्, ये सब राक्षसों से युद्ध करने के लिए तुम्हारे साथ चलेंगे और रावण को मारकर सीता को ले आवेंगे।

दोहा

लखि उद्योग कपीश कर, अति हर्षित रघुवीर।
विकसित नील सरोज-सम, भये अतुल रणधीर॥

---

## उनतालीसवाँ सर्ग

### सेनापति और सेना की उपस्थिति तथा वानरों की संख्या

इस प्रकार सुग्रीव को हाथ जोड़कर विनती करते देख श्रीरामचन्द्र कपिराज को गले से लगाकर बोले—हे सुग्रीव, इन्द्र जो जल बरसाते हैं और सूर्य आकाश से अँधेरा हटाते हैं तो क्या आश्चर्य है! चन्द्रमा जो अपनी प्रभा से रात्रि को निर्मल करते हैं तो इसमें भी कुछ विचित्रता नहीं। इसी प्रकार तुम्हारे ऐसे सत्पुरुष जो मित्रों के ऊपर प्रीति करें तो इसमें क्या विचित्रता है? क्योंकि भले लोगों का स्वभाव ही ऐसा होता है। हे सुग्रीव, मैं तो जानता हूँ कि जो कुछ अच्छे काम तुमसे हों उसमें कुछ भी विचित्रता नहीं है। मैंने तुम्हें सदा प्रिय वचन बोलते ही पाया है। मुझे यह भी भरोसा है कि तुम्हारी सहायता से मैं सब शत्रुओं को जीत लूँगा। तुम्हीं मेरे सुहृद और मित्र हो, इसलिए मेरी सहायता करने की तुममें योग्यता है। देखो, रावण ने अपने नाश के लिए जानकी को हर लिया है। अनुह्लाद ने धूर्तता से इन्द्राणी के पिता पुलोमा से अनुमति लेकर शची का हरण किया था। उसको इन्द्र ने जैसे मारा और पीछे से शची के अहङ्कारी पिता पुलोमा को भी जैसे मारा था वैसे ही मैं भी शीघ्र पैने-पैने बाणों से उस रावण को मारूँगा। श्रीरामचन्द्र इस प्रकार बात कर रहे थे कि इतने में ऐसी धूल उड़ी कि सूर्य का प्रकाश छिप गया ऐसा अन्धकार छा गया कि दिशाएँ छिप गईं और भूकम्प होने लगा। अब पैने-पैने दाँतोंवाले, गजेन्द्र के तुल्य महाबली असंख्य वानरों से सम्पूर्ण भूमि ढक गई। इसके अनन्तर पल भर में सैकड़ों कोटि वानर देख पड़े। इनमें से कितने एक नदी-तीर के और अनेक पर्वतों के निवासी थे। बहुत से समुद्र-तीर के और बहुतेरे वनों के रहनेवाले थे। कितने ही वानरों का रङ्ग तरुण सूर्य के सदृश और बहुतेरों का चन्द्र के तुल्य था। बहुत से कमल-केसर के रङ्ग के थे और बहुतेरे हिमालय के रहनेवाले थे। उनका सफेद रङ्ग था। दस कोटि सहस्र वानरों के साथ शतबलि नाम वीर वानर देख पड़ा। तारा के पिता का आकार सुमेर पर्वत की तरह था। वह अनेक सहस्र कोटि वानरों को साथ लिये उपस्थित हुआ। सहस्र कोटि वानरों को लिये रुमा का पिता अर्थात् वानरेश्वर का श्वशुर आ गया। सब वानरों में श्रेष्ठ हनुमान् के पिता केसरी नामक वानर का रङ्ग कमल के केसर के तुल्य था और तरुण आदित्य के सदृश उसका मुख था। वह बुद्धिमान् वानर असंख्य सहस्र वानरों की सेना को साथ लिये देख पड़ा। इसके पश्चात् गोलांगूल-जाति के वानरों का महाराज गवाक्ष वानर कोटि सहस्र वानरों को लिये वहाँ आया। भयङ्कर वेगवाले रीछों का राजा महाबलीधूम्र दो सहस्र कोटि भालुओं को लिये, दिखाई दिया।

इसके अनन्तर पनस नामक वानर तीन कोटि सेना लेकर आया। नील पर्वत के सदृश विशाल नील नामक यूथपति दश कोटि सेना लेकर उपस्थित हुआ। गवय नामक यूथपति का आकार सुमेरु पर्वत के सदृश था। वह दश कोटि वानरों के साथ आया। एक अरब सेना लेकर दरीमुख नामक सेनापति आकर उपस्थित हुआ। मैन्द और द्विविद अश्विनीकुमार के पुत्र थे। ये सहस्र कोटि सेना लेकर आ पहुँचे। गज नामक यूथपति तीन कोटि वानरों को ले आया। ऋक्षराज जाम्बवान् दश कोटि सेना-सहित आकर उपस्थित हुआ। रुमण्ण नामक यूथपति सौ करोड़ वानरों के साथ आया। कोटि सहस्र सहस्र वानरों को लिये गन्धमादन आकर प्राप्त हुआ। इसके अनन्तर बाली के तुल्य पराक्रमी युवराज अङ्गद पद्म सहस्र और शत शङ्ख वानरों की भीड़ साथ लेकर आया। तदनन्तर तारे के सदृश चमकता तार नामक यूथपति पाँच करोड़ सेना के साथ दूर देख पड़ा। इन्द्रजानु नामक यूथपाल ग्यारह करोड़ वानरों को ले आया। तरुण सूर्य के सदृश तेजस्वी रम्भ नामक यूथपति सौ करोड़ वानरों को लेकर पहुँचा। दुर्मुख नामक यूथपति वानर दो करोड़ वानरों को साथ लिये देख पड़ा। इसके अनन्तर हनुमान् सहस्र करोड़ वानरों को लेकर आ गये इनके दल के वानरों का आकार कैलास के शिखर के तुल्य विशाल था। नल नामक वानर करोड़ सौ और सहस्र सौ वानरों को ले उपस्थित हुआ। दस करोड़ वानरों को लिये दरीमुख नामक वानर गरजता हुआ सुग्रीव के समीप आया। इस प्रकार शरभ, कुमुद, वह्नि, रम्भ इत्यादि बहुतेरे कामरूपी वानर यूथपति सम्पूर्ण पृथ्वी, पर्वत और वनों को आच्छादित करते हुए, वहाँ आ पहुँचे। इनकी संख्या नहीं है।

वे सब वानर आये। उनमें कुछ बैठ गये। कोई कूदते और कोई गरजते-गरजते सुग्रीव के चारों ओर घिर गये जैसे सूर्य के आसपास मेघ घिर आते हैं। वे वानर अनेक प्रकार के शब्द करने लगे। उन्होंने अपने मस्तक झुकाकर सुग्रीव को अपनी उपस्थिति की सूचना दी। अन्य वानर हाथ जोड़कर सुग्रीव के पास आ खड़े हुए। तब सुग्रीव ने हाथ जोड़कर रामचन्द्र को शीघ्रता-पूर्वक उन सबके आगमन की सूचना दी। सेनापतियों से सुग्रीव ने कहा—

दोहा

पर्वत निर्झर वनन महँ, सेन टिकावहु जाय।
तब कोउ सेना-चतुर तहँ, संख्या करै बनाय॥

---

## चालीसवाँ सर्ग

### श्रीरामचन्द्र की आज्ञा से वानरों को सीता के खोजने के लिए भेजना

अब राजा सुग्रीव प्रसन्नता-पूर्वक श्रीराघव से बोले—हे प्रभो, मेरे राज्य के रहनेवाले ये बड़े-बड़े पराक्रमी वानर आ गये। ये दैत्य-दानवों के तुल्य पराक्रमी हैं और तादृश इनका विशाल रूप है। ये युद्ध करने में विख्यात, खेदरहित, उद्योगी, आपके आज्ञानुसार चलनेवाले और बड़ों की शुश्रूषा करनेवाले हैं। ये सब आपका इष्ट कार्य कर सकेंगे। देखिए, ये सब महापराक्रमी हजारों वानरों को साथ लेकर आ गये। अब आप समय के योग्य आज्ञा दीजिए। यह सेना आपकी है और आपके वश में है, इसलिए जैसी आपकी इच्छा हो वैसा कीजिए। यद्यपि मैं जानता हूँ कि इन लोगों को आपका अमुक काम करना है

तथापि आप जैसा उचित समझिए तैसी आज्ञा दीजिए। सुग्रीव का वचन सुनकर श्रीरामचन्द्र दोनों भुजाओं से सुग्रीव को गले लगाकर बोले—हे सौम्य, पहले यह जानना चाहिए कि वैदेही जीती है या नहीं। रावण कहाँ रहता है ? वैदेही का जीवन-सन्देश और रावण के निवास का ठिकाना मालूम हो जाय तो फिर मैं समयानुसार तुम्हारे साथ उद्योग करूँगा। हे वानरेन्द्र, न मैं इस कार्य में समर्थ हूँ और न लक्ष्मण ही समर्थ हैं। इस कार्य में तो तुम्हीं कारण और प्रभु हो। अतएव मेरे उस कार्य के लिए तुम्हीं इनको आज्ञा करो, क्योंकि मेरे कार्य्य के तुम जानकर हो। एक तो तुम मेरे सुहृद्, दूसरे पराक्रमी, तीसरे पण्डित, चौथे समय का विचार करनेवाले, पाँचव हमारे हित में तत्पर, छठें मित्रता का गौरव रखनेवाले, और सातवें अर्थ जाननेवालों में श्रेष्ठ हो।

रामचन्द्र की बात सुनकर वानरराज पहले विनत नामक यूथपति से बोले। वह पर्वताकार वानर मेघ के तुल्य गरजता और सूर्य-चन्द्र के तुल्य वानरों को साथ लिये खड़ा था। वह देश, काल और नीति से युक्त और कार्य के निश्चय करने में दक्ष था। उससे सुग्रीव ने कहा—तुम लक्ष वानरों को साथ लेकर पूर्व दिशा में जाओ; वहाँ पर्वतों पर दुर्गम स्थानों, वनों और नदियों के तटों पर सीता को और रावण के निवास-स्थान को ढूँढ़ो। देखो, भागीरथी, सरयू, कौशिकी और कलिन्द पर्वत से निकली यमुना नदी को और उस पवत को भी देखना। सरस्वती, सिन्धु और मणि-तुल्य जलवाले शोण नद को देखना; मही और काल-मही दोनों नदियाँ पर्वत और वनों से शोभित हैं, उन्हें भी देखना। ब्रह्ममाल, विदेह, मालव, काशिकोशल, मगध, महाग्राम, पुण्ड्र, अङ्ग, रेशम के कीड़ेवाले देश और चाँदी की खानवाली भूमि—इन सब प्रदेशों में जा-जाकर दशरथ की पुत्रवधू, राघव की प्यारी भार्या सीता को खोजो। जो समुद्र के छोटे-छोटे द्वीप और मन्दराचल के शिखरों पर अनेक स्थान बने हैं उन सबको भी ढूँढ़ना। बहुत बड़े जिनके कान हैं उनके, तथा ओष्ठ तक जिनके कान फैले हैं उनके, और भयङ्कर लोह के सदृश मुखवालों के स्थानों में सीता का पता लगाना। बड़े वेगवाले एकटङ्गों के, और उन किरातों के—जो बड़े बलवान्, पुरुष-मांसाहारी, खड़ी चोटीवाले, सुवर्ण की तरह कान्तिमान् और सुन्दर रूपवान् हैं—स्थान में सीता को ढूँढ़ना। कई द्वीपों के किरात कच्ची मछलियाँ खाते हैं तथा जल के भीतर जल-जन्तुओं की नाईं घूमते और बड़े भयङ्कर हैं। कुछ "नर-व्याघ्र" नाम से विख्यात हैं। उनका धड़ तो मनुष्य का सा और ऊपर का हिस्सा व्याघ्र का सा होता है। हे वानरो ! इन सबके आश्रमों में जा-जाकर ढूँढ़ना। जहाँ पर्वत ही पर्वत जाना पड़े और जहाँ डोंगी, घरनई इत्यादि से जाने का ठिकाना हो वहाँ जाकर भी ढूँढ़ना।

तदन्तर सात राज्यों से शोभित यवद्वीप में जाना। फिर सुवर्ण और रूपा के द्वीपों में खोज करना। वहाँ सोना बनानेवाले भी बहुत रहते हैं। यवद्वीप के आगे शिशिर नामक पर्वत है, जिसके शृङ्ग आकाश को स्पर्श करते हैं। उस पर देव-दानव रहते हैं। इन सब स्थानों में और पर्वत की दुर्गम भूमि, झरने तथा वनों में, सब कोई मिलकर, श्रीराम की पत्नी की खोज करना। तदनन्तर समुद्र-पार जाने पर सिद्ध-चारणों से सेवित, लाल जलवाला और बड़े वेगवाला शोण नद मिलेगा। उसके तीरों पर और वनों में सीता का तथा रावण का पता लेना। बहुत से उपवनों-समेत पहाड़ी नदियों को, पर्वतों को और पर्वतों की गुफाओं तथा वनों को भी

ढूँढ़ना। इसके अनन्तर बहुत से भयङ्कर-भयङ्कर समुद्र के द्वीप मिलेंगे। वहाँ बड़ी तरङ्गों से भयानक समुद्र वायु के कारण चिग्घाड़ मारता है। उसमें बड़े विशाल शरीरवाले असुर छाया को थामते हैं। वे बहुत दिन से भूखे हैं। छाया पकड़ने के लिए उनको ब्रह्मा की आज्ञा है। बड़े-बड़े सर्पों से संयुक्त और मेघ की तरह नीले समुद्र पर तुम उस समय तीर ही तीर जाना। तब वहाँ महाभयानक लाल समुद्र मिलेगा। वहाँ तुम्हें एक बड़ा सेमर का वृक्ष देख पड़ेगा। वहाँ गरुड़ के रहने के लिए विश्वकर्म्मा ने कैलाश के सदृश नाना रत्नों से शोभित घर बनाया है। वहाँ नाना-रूप-धारी मन्देह नामक राक्षस पर्वत के शिखरों पर लटका करते हैं। वे पर्वताकार और भयङ्कर हैं; सूर्य के उदयकाल में सूर्य के तेज से तप्त होकर और ब्राह्मणों की अर्घ्याञ्जलि से वे मारे जाते हैं; परन्तु फिर जीवन पाकर वे उन्हीं पर्वतों के शृङ्गों पर जा लटकते हैं। इसके अनन्तर क्षीरोद नामक सागर अर्थात् दुग्ध-समुद्र है। वह अपनी लहरों के द्वारा मुक्ताहार के तुल्य देख पड़ता है। उस समुद्र के मध्य में ऋषभ नामक बिलकुल सफेद पर्वत है। उस पर दिव्य गन्धयुक्त फूले-फूले घने वृक्ष लगे हैं। उसी पर एक सुदर्शन नामक सरोवर है। वह अत्यन्त प्रज्वलित चाँदी के कमलों से शोभित है। उन कमलों में सुवर्ण-केसर होता है। वहाँ राजहंस भी रहते हैं। उस सरोवर में क्रीड़ा के लिए देव, चारण, यक्ष, किन्नर और अप्सराएँ प्रसन्नता से आया करती हैं। उस समुद्र के अनन्तर शुद्ध जल का समुद्र मिलेगा। वह सब प्राणियों के लिए भयंकर है। उसमें ब्रह्मर्षि और्व के क्रोध से उत्पन्न विशाल हयमुख नामक तेज अर्थात् बड़वानल है। इस बड़वानल का अद्भुत महावेग है। युग के अन्त में यह चराचर जगत् उसमें भात की नाईं पकता है। जो समुद्रवासी प्राणी असमर्थ हैं वे उस बड़वानल को देख-कर मारे डर के चिल्लाते हैं। वही महान् शब्द वहाँ सुन पड़ता है। उसके उत्तर तीर पर तेरह योजन विस्तीर्ण एक जातरूपशिल नामक महान् पर्वत है जो सुवर्ण सा चमकता है। हे वानर, वहाँ पर तुम लोग चन्द्र के तुल्य श्वेत प्रभावाले एक सर्प को देखोगे। कमलपत्र के तुल्य उसके विशाल नेत्र हैं। वह पृथ्वी को धारण करता है। वह पर्वत के अग्रभाग में बैठा हुआ है। सम्पूर्ण देवता उसे नमस्कार करते हैं। वह सहस्र मस्तकों से शोभित और अनन्त है। वह नीला वस्त्र पहनता है। उसी पर्वत के अग्रभाग में तीन शाखा-ओंवाला ताल का वृक्ष है जो उसी महात्मा सर्प की सुवर्णमय ध्वजा-रूप है और एक वेदी पर स्थापित है। इस तालवृक्ष को देवताओं ने पूर्व दिशा की सीमा के ज्ञान के लिए चिह्न-स्वरूप बना रक्खा है। इसके अनन्तर श्रीमान् उदय पर्वत है जिसका अग्र-शृंग आकाश को स्पर्श करता है। वह सौ योजन विस्तीर्ण और सुवर्ण-मय दिव्य वेदिका से युक्त है। उस पर जो पुष्पित साल, ताल, तमाल और कर्णिकार के वृक्ष लगे हैं वे सुवर्ण-मय, दिव्य और सूर्य के तुल्य चमकीले हैं। उस पर्वत पर सुवर्णमय एक सौमनस नामक शृङ्ग है। वह एक योजन विस्तीर्ण और दस योजन ऊँचा है। पहले भगवान् विष्णु ने तीन पाद भूमि नापते समय पहला पैर इसी शृङ्ग पर रक्खा था। पुरुषोत्तम ने दूसरा पैर मेरु के शिखर पर रक्खा था। उत्तर की ओर से जम्बूद्वीप की परि-क्रमा देते हुए भगवान् सूर्य इसी उच्च शिखर पर लोगों को अच्छे प्रकार से देख पड़ते हैं। वहीं वैखानस नामक बालखिल्य महर्षि लोग तपस्या करते देख पड़ते हैं। वे सूर्य के सदृश प्रकाशमान् हैं। यह सुदर्शन नामक द्वीप इसी के समीप देख पड़ता है। उसी शिखर पर सूर्योदय

होते ही सब प्राणियों के तेज और चक्षुरिन्द्रिय का प्रकाश होता है। उस शैल की पीठ पर, कन्दराओं और वनों में सीता-सहित रावण की खोज करना। सुवर्ण पर्वत से जब सूर्य का तेज मिलता है तब प्रातः-सन्ध्या लाल रंग की देख पड़ती है। ब्रह्मा ने पहले यही पूर्व दिशा-रूप—पृथ्वी और लोकों का—द्वार बनाया। इसी दिशा में सूर्य का भी उदय होता है इसलिए यह पूर्व दिशा कहलाती है। इस उदयाचल की पीठ पर, झरनों और कन्दराओं में, सीता और रावण को ढूँढ़ना। उस पर्वत के आगे वह पूर्व दिशा अगम्य है अर्थात् जाने के योग्य नहीं; क्योंकि वहाँ देवता रहते हैं। सूर्य और चन्द्र का प्रकाश न होने के कारण वहाँ महान्धकार है; कुछ देख नहीं पड़ता। इसलिए तुम लोग उन पर्वतों, गुफाओं और नदियों के स्थानों में जानकी का अन्वेषण करना और जिन देशों के नाम मैंने नहीं लिये उनमें भी ढूँढ़ना। हे वानर! बस, यहीं तक जाने की वानरों को शक्ति है। इससे आगे जो सूर्य के प्रकाश से रहित और मर्य्यादाहीन स्थान है वहाँ मैं नहीं जानता कि क्या है। देखो, सीता और रावण का पता लगाकर और उदय पर्वत तक जाकर महीना पूरा होते-होते तुम लोग लौट आना। जो महीने के ऊपर समय लगावेगा वह मारा जायगा। कार्य्य की सिद्धि करके लौटना।

दोहा

बहुबन सुन्दरि इन्द्र की, पूरब दिशा सब हेरि।
सीतहिं पाइ कृतार्थ होइ, बेगि मिलहु इहिं फेरि॥

——

# इकतालीसवाँ सर्ग

## दक्षिण की ओर वानरों को भेजना

इस प्रकार उन वानरों को पूर्व में भेज दिया। अब अग्नि के पुत्र नील, और हनुमान्, और ब्रह्मा के पुत्र जाम्बवान् तथा सुहोत्र, शरारि, शरगुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, सुषेण, वृषभ, मैन्द, दूसरे सुषेण, द्विविद, गन्धमादन और अग्नि के पुत्र उल्कामुख तथा अनङ्ग इत्यादि महावीरों को दक्षिण दिशा में भेजने के लिए कपिराज बोले। वे उन्हें दक्षिण दिशा के दुर्गम प्रदेश बतलाने लगे। ये सभी वानर बड़े वेगवान् और पराक्रमी थे। अङ्गद इस दल के अगुवा बनाये गये। सुग्रीव ने कहा—

देखो, नाना वृक्षों और सहस्रों शिखरों से भूषित विन्ध्य पर्वत तुम्हें मिलेगा। उस पर रमणीय नर्मदा नदी है जिसमें बड़े-बड़े साँप हैं। इसके सिवा गोदावरी, महानदी और कृष्णावेणी मिलेगी। आगे मेखल, उत्कल, दशार्णदेश आम्रवन्ती और अवन्ती है। तुम इन प्रदेशों में घूमना और विदर्भ, ऋष्टिक, माहिषक, मत्स्य, कलिङ्ग और कौशिक देशों में देखकर फिर दण्डकारण्य के पर्वत, नदी और गुफाओं को देखना। फिर आन्ध्र, पुण्ड्र, चोल, पाण्ड्य और केरल देशों में जाना। इसके पश्चात् अयोमुख (मलय) पर्वत पर जाना। वह धातुओं, विचित्र शिखरों और नाना पुष्पित वनों से भूषित है। उस पर चन्दन-वृक्षों का जंगल है। उस महागिरि पर तुम ढूँढ़ना। वहाँ तुम्हें कावेरी नदी मिलेगी जहाँ अप्सराएँ विहार करती हैं। उस पर्वत के अग्र-भाग में बड़े ओजस्वी अर्थात् सामर्थ्यवान् और सूर्य के तुल्य श्रीअगस्त्य मुनि रहते हैं। जब वे प्रसन्नता पूर्वक तुमको आज्ञा दें तब वहाँ से चल-

कर ताम्रपर्णी नामक नदी के पार जाना। उस नदी में बेहद ग्राह हैं। इस नदी के द्वीप और जल दोनों चन्दनवृक्षों के वन से आच्छादित देख पड़ते हैं। यह नदी समुद्र से जाकर मिली है, जैसे कि युवती स्त्री अपने पति से मिले। इसके अनन्तर पाण्ड्यों के नगर-प्राकार का द्वार मिलेगा। उसके दिव्य किवाड़ सुवर्ण-मय और मुक्तामणि से खचित हैं। इसके आगे समुद्र मिलेगा। उसके पार जाने के विषय में आपस में विचार करना। वहाँ पर अगस्त्य मुनि ने महेन्द्राचल पर्वत को समुद्र के बीच में डाल रक्खा है। वह पर्वत विचित्र शृङ्गों से युक्त, सुवर्णमय और नाना वृक्षों तथा लताओं से विचित्रित है। उसमें देवर्षि, यक्ष, अप्सरा, सिद्ध और चारण रहते हैं। उस पर देवराज इन्द्र सदा प्रति पर्व में आया करते हैं। उस समुद्र के बीच में ही एक द्वीप है जो सौ योजन विस्तृत और प्रकाशमान् है। वहाँ मनुष्य की गति नहीं है। वहाँ जाकर चारों ओर सीता की खोज करना। प्रायः वह देश उस दुष्टात्मा और वध के योग्य राक्षसराज रावण का निवास-स्थान है। उस दक्षिण समुद्र के मध्य में अंगारका नामक एक राक्षसी रहती है। वह आकाशचारी प्राणियों को छाया-द्वारा पकड़कर खा लेती है। इस प्रकार मेरे बताये हुए स्थानों में भली भाँति निरीक्षण करके सब सन्देहों को मिटाना और सीता को खोजना। उसको पार कर सौ योजन पर एक बड़ा श्रीमान् पुष्पितक नामक पर्वत है। वह सिद्ध-चारणों से सेवित है। वह सूर्य-चन्द्र के तुल्य कान्तिमान् है और समुद्र में ही है, परन्तु उसके शृङ्ग ऐसे ऊँचे-ऊँचे हैं कि आकाश को स्पर्श करते हैं। उस पर्वत के एक काञ्चनमय शृङ्ग को श्रीसूर्य सेवन करते हैं अर्थात् नित्य उसके सन्निकट भ्रमण करते हैं। उस शिखर को कृतघ्न, हिंसातत्पर और नास्तिक लोग नहीं देख सकते। हे वानरो, तुम सब उसको प्रणाम करके सीता को ढूँढ़ना। उसको उल्लङ्घन कर सूर्यवान् नामक पर्वत है। पूर्वोक्त पर्वत से यह पहाड़ चौदह योजन पर है, परन्तु मार्ग बहुत टेढ़ा है। उसके अनन्तर वैद्युत नामक पर्वत है। वह सब प्रकार के फूल देने-वाले मनोहर वृक्षों से शोभित है। वहाँ तुम लोग अत्युत्तम मूलफलों का भोजन करना और मधुपान करके तुष्ट होना तब आगे बढ़ना। इसके अनन्तर नेत्रों और मन को आनन्द देनेवाला कुञ्जर नामक पर्वत मिलेगा। उस पर अगस्त्य मुनि के रहने के लिए विश्वकर्मा ने एक गृह बनाया है। वह योजन-मात्र विस्तीर्ण, दस योजन ऊँचा, सुवर्ण-मय और रत्नों से जटित है। वहाँ सर्पों की भोगवती पुरी है, जिसकी बड़ी-बड़ी गलियाँ हैं। बड़े-बड़े, घोर, तीखे दाँतवाले महाविषधर सर्प उसकी रक्षा करते हैं। उस पुरी में सर्पों के राजा वासुकि रहते हैं। वहाँ जाकर उस पुरी में भी सीता को ढूँढ़ना। वहाँ पर अनेक गुप्त स्थान हैं, उनमें भी खोज करना। उस देश को लाँघकर ऋषभ नामक पर्वत को देखोगे। वह सम्पूर्ण रत्नों से खचित है। उस पर्वत पर गो-शीर्षक, पद्माक और हरिश्याम नामक चन्दन उत्पन्न होते हैं। ये चन्दन दिव्य और अग्नितुल्य कान्तिमान् हैं, परन्तु इन चन्दनों को देखकर कभी छूना मत, क्योंकि रोहित नामक गन्धर्व इस वन की रक्षा करते हैं। ये पाँच गन्ध-र्वपति सूर्य के तुल्य कान्तिमान् हैं। शैलूष, ग्रामणी, शिक्ष, शुक और बभ्रु उनके नाम हैं। जो पुण्यात्मा लोग चन्द्र, सूर्य और अग्नि के तुल्य शरीर धारण किये हैं वे वहाँ पर रहते हैं। इसके अनन्तर पृथ्वी का अन्त है। वहाँ ऐसे दुर्द्धर्ष लोग रहते हैं जिन्होंने अपने पुण्य के बल से स्वर्ग को जीत लिया है। इसके आगे बड़ा दारुण पितृलोक है जो यम की राजधानी है। वहाँ

बड़ा क्लेशदायक अन्धकार है। तुम वहाँ न जाना। हे वानर श्रेष्ठ, बस यहीं तक खोजने और जाने की सामर्थ्य है। इसके अनन्तर गति नहीं है। इन पूर्वोक्त स्थानों को तो ढूँढ़ना ही, जो और भी अधिक स्थान देख पड़ें वहाँ भी देख-भाल कर सीता का पता लगाकर लौटना। देखो, एक महीने के बीच में ही जो सीता को देखने का सन्देश मुझे देगा वह मेरे तुल्य विभव पाकर नाना प्रकार के भोगों से विहार करेगा। उस वानर से अधिक प्राण-प्यारा मुझे दूसरा न होगा। वह कितना भी अपराध करे तो भी मैं उसको बन्धु के तुल्य मानूँगा।

छन्द

तुम अमित बली अरु अमित पराक्रम,
बहुगुणयुत कुल जात सबै।
जनि बिलँब लगावहु बेगिहि धावहु,
ल्यावहु सीतहि खोजि अबै॥
प्रभु-काज सँवारहु मति मन हारहु,
मास दिवस को समय दियो।
शुभ कहहु सँदेशा मिटहि अँदेशा,
होइ हरषि मन दुगुन हियो॥

---

## बयालीसवाँ सर्ग

### सुषेण इत्यादि वानरों को पश्चिम दिशा में भेजना।

इन वानरों को दक्षिण दिशा बताकर कपिराज ने सुषेण से कहा। यह सुषेण तारा का पिता है इसलिए राजा का श्वशुर ठहरा। इस कारण सुग्रीव स्वयं उसके पास गये और प्रणाम कर तथा हाथ जोड़कर बोले। मरीचि महर्षि का पुत्र अर्चिष्मान्नामक महाकपि अनेक कपि वीरों से घिरा हुआ था। वह इन्द्र के तुल्य तेजस्वी, बुद्धिमान्, पराक्रमी और गरुड़ के समान प्रकाशमान् था। मरीचि के अन्य पुत्र अर्चिमाल्य नामक वानरों को पश्चिम दिशा जाने की आज्ञा दी। सुग्रीव ने कहा—हे वानरो! तुम सब सुषेण को अपना अगुआ बनाकर दो लक्ष वानरों के साथ सीता को खोजो। सौराष्ट्र, बाल्हीक और चन्द्रचित्र देश बड़े-बड़े और रमणीय हैं। इनमें तथा बड़े-बड़े नगरों में सीता को खोजो। नागकेशर, मौलसिरी, लसोड़ा और केवड़े के जङ्गलों से व्याप्त कुक्षिदेश में सीता को ढूँढ़ो। पश्चिम प्रवाहवाली नदियों के तट पर तपस्वियों के जङ्गलों में तथा दुर्गम पर्वतों पर और वहाँ के निर्जन देशों में सीता को खोजो। जहाँ अत्यन्त ऊँची और ठण्ढी अर्थात् पाले से भरी शिलाएँ हैं ऐसी पर्वतों से वेष्टित और दुर्गम भूमिवाली पश्चिम दिशा को देख समुद्र के तीर पर जाना। हे वानरो, वहाँ केवड़ों, तमालों और नारियलों के जङ्गलों में विहार करना। वहाँ सीता को और रावण के निवास को ढूँढ़ना। वहाँ समुद्र-तीरवर्ती पर्वतों और वनों में भी देखना। मुरची नामक नगर, जटापुर, अंगलेपा, अवन्ती, आलक्षित नामक वन, बड़े-बड़े राष्ट्र और वहाँ के नगरों में सीता को ढूँढ़ो। सिन्धु और सागर के सङ्गम पर एक सोम नामक पर्वत हैं, जिसके सौ शिखर वृक्षों से लदे हैं। उस पर्वत के रमणीय शिखरों पर पक्षधारी सिंह नामक जन्तु हैं। वे तिमि ऐसे बड़े-बड़े जलजन्तुओं और हाथियों को अपने घोंसलों में उठा ले जाते हैं। उस पर्वत के विशाल शिखर चारों ओर जल से पूर्ण हैं। उन पर बड़े-बड़े हृष्ट-पुष्ट मतवाले हाथी विचरते हैं। उन हाथियों का शब्द मेघ के गर्जन के तुल्य होता है। उसका एक सुवर्णमय

शृंग बड़ा ऊँचा मानो आकाश को छूता है, उस पर चित्र-विचित्र वृक्ष लगे हैं। उस पर अच्छे प्रकार से घूमकर देख लेना। तुम्हें वहाँ पर समुन्द्र के बीच में पारियात्र नामक पर्वत का एक सुवर्णमय शृंग मिलेगा। वह सौ योजन विस्तीर्ण और दुर्दर्श है। उस पर चौबीस करोड़ गन्धर्व रहते हैं। वे बड़े तपस्वी और अग्नि के तुल्य भयङ्कर हैं। उनका तेज अग्नि की ज्वाला के तुल्य देख पड़ता है। यद्यपि तुम लोग भी बड़े पराक्रमी हो तथापि उनसे गड़बड़ या विरोध, न करना और न वहाँ के किसी फल को छूना। क्योंकि वे गन्धर्व बड़े वीर और बलवान् हैं। वे उन फलों की रक्षा करते हैं। वहाँ पर सीता को अच्छी तरह खोजना और उनसे किसी भाँति का भय न करना; क्योंकि बन्दरों का चाल-चलन देख वे तुमसे कभी न बोलेंगे। वहाँ तुमको वज्र नामक पर्वत मिलेगा जो पन्ने के रङ्ग का और वज्र के तुल्य है। वह नाना वृक्ष-लताओं से शोभित और सौ योजन विस्तर्ण है। उसकी गुफाओं को खोजना। इसके अनन्तर समुद्र के चतुर्थ भाग में चक्रवान् नामक पर्वत मिलेगा। वहाँ पर विश्वकर्मा ने सहस्रार चक्र बनाया था। भगवान् विष्णु ने वहीं पर पञ्चजन और हयग्रीव नाम के दानवों को मारकर चक्र और शंख दोनों आयुध प्राप्त किये। इस पर्वत के शिखरों और विशाल गुफाओं में सीता को और रावण को खोजना। तदन्तर चौंसठ योजन का वराह नामक विशाल पर्वत मिलेगा। उसके शृंग सुवर्णमय हैं। यह पर्वत समुद्र के अगाध जल में है। इस गिरि पर प्राग्ज्योतिष नामक सुवर्णमय नगर है। इसमें नरकधारी दुष्टात्मा दानव रहता है। इस पर्वत के सब भागों में सीता को खोजना उसको लाँघने पर एक पर्वत मिलेगा। उसकी कन्दरा सम्पूर्ण सुवर्णमयी है। यह पर्वत भी सुवर्ण-रूप और झरनों से भूषित है। वहाँ पर हाथी, वनशूकर, सिंह और व्याघ्र अपनी प्रतिध्वनि सुनकर सदा गरजते रहते हैं। इसी पर्वत पर देवताओं ने इन्द्र का राज्याभिषेक किया था। यह मेघों का पर्वत कहलाता है। इसको लाँघने पर इन्द्र से पालित सुवर्णमय साठ सहस्र पर्वतों का झुण्ड मिलेगा। इन पर्वतों का प्रकाश मध्याह्न-सूर्य के सदृश चमकीला देख पड़ता है। इन पर्वत के वृक्ष पुष्पों से लदे सम्पूर्ण सुवर्णमय देख पड़ते हैं। इस झुण्ड के मध्य में सुमेर नामक पर्वत है जो सब पर्वतों का राजा है। इसको सूर्य ने प्रसन्न होकर वर दिया है कि तुम्हारे आश्रित पर्वत, सबके सब मेरे प्रसाद से, दिन-रात सदा सुवर्णमय देख पड़ेंगे; तेरे ऊपर जो देव, गन्धर्व और दानव रहेंगे; वे सब भक्त और सुवर्ण के तुल्य प्रभायुक्त होंगे। विश्वेदेवा, वसु और मारुत् तथा अन्य देवता भी इस गिरि पर सायं-सन्ध्या के समय आकर सूर्य के सम्मुख उपस्थित होते और पूजा करते हैं। उस समय भगवान् सूर्य सब जीवों से अदृश्य होकर अस्ताचल को प्राप्त होते हैं। उस समय श्रीसूर्य आधे मुहूर्त में दस सहस्र योजन चले जाते हैं अर्थात् सुमेरु से दस सहस्र योजन पर अस्ताचल है। उस पर्वत पर एक गृह अत्यन्त दिव्य, सूर्य के ही सदृश कान्तिमान् और अनेक अटारियों से शोभित है। उसे विश्वकर्मा ने बनाया था। महात्मा वरुण का निवासस्थान अनेक चित्र-विचित्र वृक्षों और पक्षियों से भूषित है। मेरु और अस्ताचल के बीच में ताड़ का एक सुवर्णमय वृक्ष है। वह दस शाखाओं से शोभित और विचित्र वेदिका से युक्त है। वहाँ के सब दुर्गम स्थानों, सरोवरों और नदियों पर सीता का और रावण का पता लगाना। वहाँ पर तपोबल से प्रकाशित और साक्षात् ब्रह्मदेव के सदृश मेरुसावर्णि नामक एक धर्मज्ञ महर्षि रहते हैं। तुम वहाँ जाकर झुक के उन्हें प्रणाम करना और मैथिली के

विषय में उनसे पूछना। बस, यहीं तक जीव-लोक की यात्रा हो सकती है। सूर्य भी यहीं तक प्रकाश करते हैं। इसलिए हे वानरश्रेष्ठ, वानरों को यहीं तक जाने की शक्ति है। इसके आगे न सूर्य का प्रकाश है और न कुछ भूभाग की मर्यादा है। इसलिए मैं उसके विषय में कुछ नहीं जानता। तुम लोग सीता और रावण का पता लगाकर तथा अस्ताचल को पाकर एक महीने के भीतर लौट आना। महीने के ऊपर कहीं न रह जाना; यदि महीने के ऊपर कहीं कोई अटक रहेगा तो वह मारा जायगा। तुम्हारे साथ ये मेरे श्वशुर जायँगे, इसलिए तुम लोग इनके वचनानुसार सब काम करना। देखो, एक तो ये बड़े, दूसरे मेरे श्वशुर और तीसरे महाबलवान् हैं। तुम लोग भी पराक्रमी और सब कामों में अग्रगण्य हो, तथापि इनके कहने के अनुसार पश्चिम दिशा में वर्त्तना। देखो, यह प्रत्युपकार करने से हम सब कृतार्थ हो जायँगे और इस कार्य में जो मेरे कहने से भी अधिक कोई हितकारी काम समझना उसको भी—देश, काल और वस्तु का विचार करके—करना।

दोहा

एहि विधि लहि अनुशासन, सुषेणादि कपि-वीर।
अरुण दिशा की ओर सब, चले अतुल बल-धीर॥

---

## तेंतालीसवाँ सर्ग

### उत्तर दिशा में वानरों को भेजना

पूर्वोक्त सर्ग में सुग्रीव ने अपने श्वशुर को पश्चिम दिशा में भेजा। अब शतबलि नामक वानर की ओर दृष्टि करके वानरराज बोले—ये लक्ष वानर तुम्हारे तुल्य हैं, सो तुम इनके साथ और यमराज के अंश से उत्पन्न अपने मन्त्रियों के साथ उत्तर दिशा में जाकर यशस्विनी श्रीराम की पत्नी को ढूँढ़ो। वह दशा हिमालय पर्वत से भूषित है। देखो, इस कार्य से जब हम सब निवृत्त हो जायँ और श्रीरामचन्द्र का प्रिय कर दें तब जानना कि हम ऋण से मुक्त और कृतार्थ हुए। देखो, रामचन्द्र ने हम लोगों का कैसा प्रिय कार्य किया है। अब यदि हम भी उसके बदले उनका प्रिय काम करें तो जीवन सफल हो। देखो जिसने अपना कोई उपकार नहीं किया उसका भी यदि कार्य कर दिया जाय तो जीवन सफल हो जाता है; और जो पहले से उपकार कर चुका है उसका उपकार करना तो न्यायमार्ग के अनुसार ही है। उसमें तो कुछ विवाद ही नहीं। अतएव, यदि तुम लोग मेरा हित करना चाहते हो तो जानकी जिस प्रकार से मिल सके उस प्रकार का प्रयत्न करो। देखो, ये पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र सब प्राणियों के मान्य हैं और हम लोगों पर प्रीति करते हैं। इसलिए जिन दुर्गम स्थानों, नदियों और पर्वतों को मैं बतलाता हूँ वहाँ जाकर तुम लोग अपनी बुद्धि और पराक्रम से ढूँढ़ो।

म्लेच्छ, पुलिन्द, सूरसेन, प्रस्थल, भरत, दक्षिण-कुरु, मद्र, काम्बोज और यवन देशों में तथा शकों के नगरों में रावण और वैदेही का पता लगाना। हिमवान् पर्वत के लोध के वनों, पद्म के वनों और देवदारु के वनों में भी रावण और वैदेही का पता लगाना। फिर देवताओं और गन्धर्वों से सेवित सोमाश्रम में जाकर काल नामक पर्वत पर जाना और उसके दुर्गम स्थलों तथा कन्दराओं में सीता को खोजना। इसके अनन्तर हेमगर्भ सुदर्शन पर्वत पर जाना। तब देवसखा नामक पर्वत मिलेगा। वहाँ बहुत पक्षी रहते हैं और वह अनेक

वृक्षों से भूषित है। उसके काञ्चनभूषित स्थानों, दर्रों और कन्दराओं में इधर-उधर ढूँढ़ना। उसके अनन्तर सौ योजन खाली मैदान पड़ा है। वहाँ न पर्वत है, न नदी, न वृक्ष और न कोई जन्तु ही। उसको देखने से रोमाञ्च होता है। उसको लाँघकर श्वेतवर्ण कैलास पर्वत को पाकर तुम प्रसन्न होगे। वहाँ सफेद मेघ के सदृश और सुवर्ण-भूषित कुबेर का गृह देखना। उसको विश्वकर्मा ने बनाया है। वहाँ एक बड़ा सरोवर है जो अनेक रङ्ग के बहुत से कमलों और हंसों तथा जल कार्कों से शोभित एवं अप्सराओं से सेवित है। वहाँ पर सर्वलोक-वन्दित यक्षों के राजा श्रीकुबेर, गुह्यकों के साथ, रहते हैं। तुम वहाँ चन्द्रतुल्य पर्वतों पर और गुफाओं में सीता-सहित रावण को ढूँढ़ना। फिर तुमको क्रौञ्च पर्वत मिलेगा। उसका बिल बड़ा दुर्गम है। उसमें बड़ी सावधानी से प्रवेश करना, क्योंकि लोग उसको दुष्प्रवेश्य कहते हैं। उसमें सूर्यतुल्य प्रभावाले बड़े-बड़े महात्मा महर्षि रहते हैं। उनको देवता लोग भी चाहते हैं। उस क्रौञ्च पर्वत की गुफाओं, शिखरों और आगे-पीछे के स्थानों में ढूँढ़ना। उसी पर मानस नामक एक कामशैल है (जहाँ काम भस्म किया गया था) उस पर कोई वृक्ष नहीं है, परन्तु वहाँ पक्षी रहते है। वहाँ पर किसी प्राणी की गति नहीं है। न वहाँ देवता जा सकते हैं और न राक्षस। सो तुम लोग उस पर्वत के शिखरों और कन्दराओं को ढूँढ़ना। क्रौञ्च पर्वत को लाँघने पर मैनाक नामक पर्वत मिलेगा। वहाँ मय नाम के दानव का भवन है। उस भवन को उसने अपने ही हाथ से बनाया है। इस पर्वत पर भी ढूँढ़ना। वहाँ अश्वमुखी (घोड़मुँही = किन्नरी) स्त्रियों के जहाँ-तहाँ घर हैं। उस देश को लाँघने पर तुम्हें सिद्धों से सेवित आश्रम मिलेगा। वहाँ सिद्ध वैखानस और बालखिल्य तपस्वी मिलेंगे। वे अपने तपोबल से पाप-रहित हो रहे हैं। उनको प्रणाम करना और उनसे नम्रता-पूर्वक सीता की प्राप्ति के विषय में पूछना। वहाँ वैखानसी का एक सरोवर है। वह पाले से और कमलों से अच्छादित है और तरुण-सूर्य के सदृश हंसों से शोभित है। उस सरोवर पर सार्वभौम नामक हाथी सदा हथिनियों के साथ आया-जाया और घूमा करता है। वह कुबेर का वाहन है। उस सरोवर को लाँघकर ऐसा देश देखोगे जहाँ न सूर्य देख पड़ेगा न चन्द्र, न नक्षत्र, और न मेघ देख पड़ेंगे। केवल अनाद्यन्त आकाश ही दृष्टि पड़ेगा। उस देश में सूर्य की किरणों की नाईं प्रकाश देख पड़ता है; क्योंकि वहाँ पर देवतुल्य, स्वयं-प्रकाश, सिद्ध तपस्वी रहते हैं। उस देश को लाँघने पर शैलोदा नदी मिलेगी। उसके दोनों तीरों पर छिद्रयुक्त बाँस लगे हैं। वे सिद्धों को इस पार से उस पार और उस पार से इस पार पहुँचाया करते हैं। उस नदी के पार उत्तरकुरु नाम देश है। वहाँ पुण्यवान् लोग रहते हैं। वहाँ निर्मल जल से शोभित ऐसी हजारों नदियाँ हैं जो सुवर्ण-कमलों से युक्त और पन्नों के पत्रों से भरी हैं। इस प्रकार के रक्त-कमलों के वन वहाँ सुवर्णमय देख पड़ते हैं। उनसे भूषित और तरुण सूर्य की नाईं चमकीले अनेक जलाशय हैं। उस देश में चारों ओर बड़े-बड़े मोल के रत्न और काञ्चनतुल्य केसरवाले विचित्र कमलों के वन हैं। वहाँ की नदियां के तट सुवर्णमय हैं। वहाँ गोल गोल मोती तथा बड़े सुन्दर महामूल्यवान रत्न देख पड़ते हैं। वहाँ जो सुवर्णमय वृक्ष हैं वे नित्य फूले-फले और पत्तियों से भरे हैं। उनके गन्ध, रस और स्पर्श दिव्य हैं। ये सब मनोरथों को पूर्ण करते हैं। उनमें से अनेक ऐसे हैं जिनमें नाना प्रकार के वस्त्र और

मुक्ता, पन्ना एवं मणि से शोभित भूषण फलते हैं। ये भूषण स्त्री और पुरुषों के धारण करने योग्य होते हैं। उनमें कई एक ऐसे हैं जो सब ऋतुओं में उपभोग के लायक और सुख-पूर्वक सेवन के योग्य पदार्थों को उत्पन्न करते हैं। उनमें अनेक ऐसे हैं जिनमें नाना रङ्ग के मणि फलते हैं। बहुतेरों में अच्छे-अच्छे विचित्र बिछौने से युक्त पलँग, मनोहर पुष्प, अच्छी-अच्छी उत्तम सवारियाँ और खान पान की विविध सामग्री फलती है। कुछ वृक्षों में गुण, रूप, यौवन से युक्त मनोहर स्त्रियाँ भी फलती हैं। वहाँ पर अत्युज्ज्वल स्वरूपधारी और तेजस्वी गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, नाग और विद्याधर—स्त्रियों के साथ—विहार करते हैं। ये सबके सब पुण्यवान्, रति में तत्पर और कामयुक्त होकर स्त्रियों के साथ वहाँ रहते हैं। वहाँ पर गीत, वाद्य और उत्कृष्ट हँसने का जो शब्द सुन पड़ता है, वह सब प्राणियों के मन को हरण करता है उस स्थान में कोई हर्षरहित नहीं देख पड़ता। वहाँ किसी को किसी प्रिय वस्तु की कमी नहीं है। वहाँ तो नित्य प्रति मनोहर-मनोहर गुणों की वृद्धि ही देख पड़ती है।

उस श्रेष्ठ पर्वत को लाँघकर उत्तर समुद्र है। उसके बीच में अति विशाल सोमगिरि नामक सुवर्णमय पर्वत है। यद्यपि वहाँ सूर्य का प्रकाश नहीं है तथापि वह देश उसी पर्वत के प्रकाश से प्रकाशित रहता है। ऐसा जान पड़ता है कि सूर्य ही प्रकाश कर रहे हैं। वहाँ पर भगवान् विश्वरूप एकादश रुद्रात्मक श्रीब्रह्मा रहते हैं। अनेक ब्रह्मर्षि वहाँ उनकी सेवा किया करते हैं। इसलिए देखो, तुम लोग उत्तरकुरु में कभी न जाना; क्योंकि वहाँ किसी प्राणी की गति नहीं है, अर्थात् ब्रह्मर्षियों को छोड़ वहाँ जाने की और किसी को सामर्थ्य नहीं। वह स्थान देवताओं के लिए भी दुर्गम है। तुम लोग सोमगिरि को देख शीघ्र वहाँ से लौट आना। हे वानर-श्रेष्ठ, बस वानरों को यहीं तक जाने की शक्ति है। इसके अनन्तर क्या है, सो मैं नहीं जानता; क्योंकि आगे न तो सूर्य का प्रकाश है, न कुछ मर्यादा है। जिन जिन स्थानों का मैंने नाम लिया है उन स्थानों में अच्छी तरह ढूँढ़ना। जिन स्थानों का उल्लेख मैंने नहीं किया है वहाँ भी पता लगा लेना। वायु और अग्नि के तुल्य पराक्रमवाले हे वानरो, देखो इसमें राम का अत्यन्त प्रिय होगा और उसके द्वारा मुझे भी बड़ा आनन्द होगा।

दोहा

तब तुम होइ कृतार्थ सब, सहित बन्धु-परिवार।
फिरहु अकण्टक भूमि पर, निज सुख थल निरवार॥
हमहूँ करब तुम्हार तब, मनवाञ्छित सब पूर।
काज भये रघुवंश कर, सब संशय करि दूर॥

---

## चवालीसवाँ सर्ग

### हनुमान् के प्रति सुग्रीव का विशेष वचन और रघुपति का मुद्रिका देना

अब हनुमान् से सुग्रीव कुछ विशेष बात कहने लगे। प्रयोजन की सिद्धि के विषय में सुग्रीव को परम निश्चय था कि हनुमान् अवश्य इस कार्य को सिद्ध करेंगे।

इसलिए सुग्रीव प्रसन्न होकर हनुमान् से बोले—हे वानरश्रेष्ठ, मुझे निश्चय है कि तुम्हारी गति न भूमि में रुक सकती है न पक्षियों के मार्ग में, न मेघमार्ग में, न स्वर्ग में और न जल में। असुर, गन्धर्व, नाग, मनुष्य और देव आदि के सम्पूर्ण लोकों को तुम जानते हो। समुद्र और पर्वतों में कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसको तुम

नहीं जानते । गति, वेग, तेज और शीघ्रता तुम में ऐसी है जैसी कि तुम्हारे पिता वायु में । तुम्हारे सदृश तेज भी इस पृथ्वी पर दूसरे प्राणी में मुझे नहीं दीखता । इसलिए हे वीर ऐसा करना जिसमें सीता मिल जाय । हे हनुमान् तुम में बल बुद्धि, पराक्रम और देश तथा काल का विचार एवं नीति का ज्ञान भी है । इसलिए हे नीतिपण्डित, यदि तुम इस कार्य में दत्तचित्त होगे तो अवश्य सिद्धि होगी ।

अब रामचन्द्र ने देखा कि वानर-राज को हनुमान् पर बड़ा भरोसा है, और हमको भी इस बात का निश्चय होता है कि हनुमान् अवश्य कार्य-साधन करेंगे । स्वामी का जिस पर विशेष आदर होता है, उससे अवश्य कार्य के सफल होने की आशा होती है । इस प्रकार सोच-विचार कर श्रीरामचन्द्र ने हर्षित होकर अपने नामाक्षर से चिह्नित अँगूठी, राजपुत्री की प्रतीति के लिए, हाथ से निकालकर हनुमान् को दी और कहा—हे हरिश्रेष्ठ, जनकपुत्री को इस चिह्न से विश्वास हो जायगा कि यह वानर रामचन्द्र के पास से आया है । तब वह उद्वेग-रहित होकर तुमको देखेगी । हे वीर ! तुम्हारा उद्योग, बल, पराक्रम और सुग्रीव का विशेष आदरपूर्वक तुमको सन्देश कहना—इन सब बातों से मेरी कार्य-सिद्धि प्रकट होती है ।

अब श्रीहनुमान् ने उस मुद्रिका को लेकर माथे से लगाया । वे हाथ जोड़ श्रीराघव के चरणों को प्रणाम कर चले । उस समय सेना से घिरे हनुमान् की ऐसी शोभा हुई जैसी निर्मल आकाश में तारा-गणों-सहित चन्द्र की होती है । हनुमान् की चलते देख श्रीरामचन्द्र और सुग्रीव बोले—

दोहा

बड़ भरोस तव पवनसुत, हमहिं महा बलवीर ।
वेगि मिलहिं जिमि जानकी, तथा करहु रघुधीर ॥

---

## पैंतालीसवाँ सर्ग

### वानरों की यात्रा ।

सुग्रीव ने वानरों को बुलाकर कहा—हे वानरेश्वर, देखो, जैसा मैंने कहा है उसी प्रकार से ढूँढ़ना और मेरे कठोर शासन की ओर दृष्टि करके शीघ्र लौट आना ।

राजा का यह वचन सुनकर वे वानर टिड्डी की भाँति सम्पूर्ण पृथ्वी में फैलकर चले । इधर रामचन्द्र और लक्ष्मण प्रस्रवण गिरि पर उस मास की अवधि देखने लगे जो सीता के संवाद-प्राप्ति के लिए नियत किया गया था । अब शतबलि नामक यूथपति अपने वानरों की सेना लिये हिमालय से आच्छादित रमणीय उत्तर दिशा की ओर चला । हनुमान् भी तार, अङ्गद इत्यादि वीर वानरों को साथ लिये अगस्त्यसेवित दक्षिण दिशा को चले । पूर्व दिशा की ओर विनत नामक यूथपति ने यात्रा की । वरुण-पालित घोर पश्चिम दिशा में सुषेण नामक वीर गया ।

इस प्रकार सब दिशाओं में वानरों को भेजकर सुग्रीव अनन्दित हुए । अब वानर लोग राजाज्ञा से अपने-अपने लिए निर्दिष्ट दिशाओं में शीघ्रता से गरजते, ठनकते और दौड़ते चले जाते थे । वे यह भी कहते जाते थे कि हम सीता को लावेंगे और रावण को मारेंगे । कोई कहता, मैं अकेला ही रावण को मारूँगा और भय से काँपती जानकी को छीन लाऊँगा । तुम सब

ठहरे रहो। सीता चाहे पाताल में हो तो भी मैं अकेला ही उसे ला दूँगा। कोई कहता था कि मैं वृक्षों का विध्वंस करूँगा, पर्वतों को फोड़ डालूँगा, धरणी को विदीर्ण कर डालूँगा और समुद्रों को उथल-पुथल कर दूँगा,। कोई कहता था कि मैं एक योजन निस्सन्देह कूद सकता हूँ। किसी ने कहा कि मैं सौ योजन कूद जाऊँगा। किसी ने कहा कि मैं इससे भी अधिक लाँघ सकता हूँ। कोई कहता था कि भूतल, समुद्र, पर्वत, वन अथवा पाताल में भी मेरी गति नहीं रुक सकती। इस प्रकार अपने-अपने बल के अहङ्कार से वे वानरराज के समीप बोलते चले जाते थे।

दोहा

एहि विधि वानर भालु सब, निज निज बाँधि बरूथ।
श्रीरघुपति के काज लगि, चले सलभ इव यूथ॥

---

# छियालीसवाँ सर्ग

## राम का सम्पूर्ण पृथ्वीदर्शन के विषय में सुग्रीव से पूछना और सुग्रीव का उत्तर देना

सब वानरों के चले जाने पर श्रीरामचन्द्र ने सुग्रीव से पूछा—सम्पूर्ण पृथ्वी-मण्डल को तुम क्योंकर जानते हो? यह सुन सुग्रीव प्रणत होकर बोले कि सुनिए, मैं इस बात को विस्तार-पूर्वक कहता हूँ। दुन्दुभी नामक दानव महिष का रूप धारण कर जब बाली से लड़ने किष्किन्धा में आया, परन्तु बाली के भय से जब वह भागा और मलयाचल की कन्दरा में घुस गया, तब उसको मारने की इच्छा से बाली भी वहाँ उसके पीछे जा घुसा। उसने मुझे उस गुफा के द्वार पर बैठा दिया। जब एक वर्ष बीत गया और बाली तो न निकला किन्तु रक्त की धारा उसमें से ऐसे वेग से निकली कि वह बिल रक्त से भर गया, तब मैं विस्मित और भाई के शोक से अत्यन्त पीड़ित हुआ। मुझे जब यह निश्चय हुआ कि बाली अवश्य मारा गया तब मैंने एक पर्वताकार शिला से उस बिल के द्वार को बन्द कर दिया कि कदाचित महिष दानव बाहर निकलना चाहता हो तो न निकल सकेगा; वरन् उसमें से बाहर न निकल सकने के कारण मर जायगा। तदनन्तर बाली के जीवन से निराश हो मैं किष्किन्धा में आया और राज्य तथा रुमा-सहित तारा को पाकर मित्रों के साथ आनन्द करने लगा। मैंने सारी चिन्ता छोड़ दी। इतने में बाली भी उस राक्षस को मारकर आ पहुँचा। तब मैंने बाली के डर और गौरव से उसको राज्य लौटा दिया। परन्तु वह दुष्टात्मा महा-क्रोध कर मुझे मारने की इच्छा से मुझ पर दौड़ा। उस समय मैं भागा और बाली ने मेरा पीछा किया। मैं जहाँ-जहाँ जाता था वहीं बाली भी मेरे पीछे चला आता था। उस समय अनेक नदियों, वनों और नगरों को मैंने देखा था। यह पृथ्वी मुझे दर्पण के सदृश और अलातचक्र* के तुल्य देख पड़ी। मैंने इसको गोष्पद† के तुल्य कर डाला। पहले मैं पूर्व दिशा में गया। वहाँ अनेक प्रकार के वृक्षों, पर्वतों और उनकी गुफाओं को तथा रमणीय विविध सरोवरों को देखा। उस दिशा में धातुओं से भूषित उदय पर्वत और दुग्धसमुद्र को देखा जहाँ पर कि अप्सराएँ नित्य रहती हैं, परन्तु बाली ने वहाँ भी मेरा पीछा न छोड़ा। तब मैं उस दिशा को छोड़कर विध्याचल और चन्दन के वृक्षों से शोभित दक्षिण दिशा में भागा। वहाँ वृक्ष की आड़ में देखा

* प्रज्वलित हुआ लुक्क।

†भूमि पर गाय के खुर से बना हुआ छोटा सा गड्ढा।

कि बाली चला आता है, तब मैं उस दिशा को भी छोड़ पश्चिम दिशा में गया। वहाँ भी अनेक प्रकार के देशों को देखता-भालता, अस्तगिरि तक पहुँच गया। वहाँ से फिर उत्तर की ओर दौड़ा। वहाँ मैंने हिमालय, मेरु और उत्तरसमुद्र-पर्य्यन्त धावा मारा, परन्तु बाली ने मुझे चैन न लेने दिया। तब बुद्धिमान् हनुमान् ने मुझसे कहा—हे राजन्, इस समय मुझे स्मरण हुआ कि बाली को मतङ्ग ऋषि ने शाप दिया था कि यदि वह इस आश्रम-मण्डल में प्रवेश करेगा तो उसके मस्तक के सौ टुकड़े हो जायेंगे; इसलिए वहीं चलो। वहाँ पर हमारा रहना ठीक होगा। वहाँ किसी प्रकार का दुःख न होगा। इसलिए जब मैं ऋष्यमूक पर्वत पर आया तब वहाँ मतङ्ग मुनि के भय से बाली न आ सका।

दोहा

एहि विधि सब परतच्छ मैं, महिमण्डल रघुवीर।
देख्यो फिरि तेहि कन्दरहिं, जाइ रह्यो धरि धीर॥

---

## सैंतालीसवाँ सर्ग

### हनुमान् को छोड़ शेष वानरों का लौट आना

सीता को ढूँढ़ने के लिए चारों ओर जिन वानरों को सुग्रीव ने भेजा था, वे सब राजा के आज्ञानुसार सरोवरों और नदियों के कछारों, निर्जन वनों, नगरों तथा नदियों के दुर्गम-दुर्गम स्थानों को, चारों ओर से खोजने लगे। वे वानर दिन भर तो सुग्रीव के बताये हुए देशों, पर्वतों और वनों को ढूँढ़ते थे और जब सायङ्काल होता तब भूमि पर उतर आते और जहाँ सब ऋतुओं में फल देनेवाले वृक्षों को फलों से लदे देखते वहीं सो रहते थे। इस प्रकार एक मास तक खोजकर सब वानर निराश हो सुग्रीव के पास आये और पता न लगने का समाचार कहने लगे।

विनत नामक वानर-यूथपति पूर्व दिशा में सीता को खोजते-खोजते निराश हो सुग्रीव से आकर मिला। शतबलि नामक महाकपि सम्पूर्ण उत्तर दिशा को ढूँढ़कर डरता हुआ कपिराज के पास लौट आया। इसी प्रकार सुषेण कपि अपनी सेना के साथ सम्पूर्ण पश्चिम दिशा में ढूँढ़कर महीना पूर्ण होते देख लौट आया। इस प्रकार इन तीनों दिशाओं से वानर लौट आये। प्रस्रवण गिरि पर रामचन्द्र के साथ बैठे कपिराज को प्रणाम कर वे कहने लगे—राजन्, हमने सम्पूर्ण पर्वतों, वनों और दुर्गम स्थानों को ढूँढ़ डाला; हमने सागर-पर्यन्त नदियों, देशों और कन्दराओं को, और जिन-जिन स्थानों को आपने बताया था, उनको भी ढूँढ़ डाला। हमने अनेक प्रकार की लताओं के झुण्डों का अन्वेषण किया। गहन वनों, देशों और दुर्गम स्थानों में सीता को ढूँढ़ा। वहाँ बड़े-बड़े जीव-जन्तुओं को पाया और उनको मार डाला। हमने बड़े-बड़े दुर्गम स्थानों को सन्देह की निवृत्ति के लिए बार-बार जाकर देखा, पर सीताजी नहीं मिलीं।

छन्द

बल-बुद्धि-सागर वीर। हनुमान कपि रणधीर॥
पैहहिं सियहिं यहि माहिं। कपिराज संशय नाहिं॥
जेहि दिशि गई बैदेहि। पवनज गयो दिशि तेहि॥

---

## अड़तालीसवाँ सर्ग

### दक्षिण दिशा के खोज का वर्णन

अब हनुमान्—तार और अङ्गद के साथ—सुग्रीव की बताई हुई दिशा में चले। दूर जाने पर उन्हें विन्ध्याचल मिला। उसकी गुफा, शृङ्ग, नदी, दुर्ग, झील, वृक्ष, वृक्ष-समूह और उस पर्वत की झाड़ी इत्यादि स्थानों को उन्होंने चारों ओर से खोजा, पर जानकी न मिलीं। वहाँ पर नाना प्रकार के मूल और फलों को खाते हुए उन्हें ऐसे निर्जन और शून्य स्थान मिले जिनको देखकर भय उत्पन्न हो। उस प्रकार के जङ्गलों को भी अच्छे प्रकार खोजते हुए वे अत्यन्त पीड़ित हुए; क्योंकि वह स्थान बहुत दुर्गम था। उसमें दुःखपूर्वक प्रवेश किया जा सकता था। वहाँ ऐसी अनेक गुफाएँ थीं, जिनमें प्रवेश करना बहुत ही कठिन था। अब वे वानर लोग अत्यन्त निर्भय होकर वहाँ से अधिक कठिन देश में गये। वहाँ वृक्षों में न फूल थे, न फल और न पत्ते ही। नदियाँ भी निर्जल और मूल भी दुर्लभ था। न वहाँ पर महिष देख पड़ते थे, न हरिण, न हस्ती, न सिंह, न पक्षी और न कोई जङ्गली जीव ही; वहाँ न औषधि थी, न लता और न पौधे ही। वहाँ हरे-हरे पत्तों और फूले-फूले फूलों से शोभित, तथा सुगन्ध से मनोहर, कमलों के पौदे भी न देख पड़े। फिर भ्रमर वहाँ जाने ही क्यों लगे। इसका एक कारण था। वहाँ बड़े सत्यवादी महाक्रोधी और अपने ब्रह्मकर्म्म के नियमों से दुर्जय कण्डु नामक महर्षि रहते थे। एक बार उनका दस वर्ष का बालक उस वन में मर गया। इस कारण उन्होंने उस वन को शाप दिया कि आज से यह वन निरालम्ब और दुर्गम हो जायगा; इसमें मृग, पक्षी इत्यादि जीव भी न रहेंगे। वहाँ भी ये वानर वनों और पर्वतों की कन्दराओं तथा नदियों के स्थानों में ढूँढ़ने लगे; परन्तु न वहाँ सीता मिलीं और न रावण का पता लगा। इसके अनन्तर वे वानर लता और झाड़ी से भरे अन्य वन में गये। वहाँ उन्होंने एक बड़े भयङ्कर असुर को देखा। वह देवताओं से भी नहीं डरता था। उस पर्वताकार राक्षस को देख वे युद्ध के लिए कमर कसने लगे। वह राक्षस भी बड़ा बलवान् था। वह बोला कि अब तुम सब मारे जाओगे; यह कहकर वह घूसा तानकर दौड़ा। इतने में अंगद ने उसको रावण जानकर ऐसा थप्पड़ मारा कि वह मुख से रक्त उगलकर पर्वत की नाईं गिर पड़ा और मर गया। वानरों ने देखा कि इसके प्राण निकल गये। तब वे सब फिर पर्वत को अन्य कन्दराओं में जाकर ढूँढ़ने लगे। वहाँ से फिर वे दूसरे पर्वत में घुसे वहाँ भी ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक गये।

दोहा

ढूँढ़ि थके बहु विधि सकल, बनत न कोटि उपाय।
तब सब कपि एकत्र ह्वै, बैठे तरु तर जाय॥

---

## उनचासवाँ सर्ग

### अङ्गद के कहने से फिर वानर लोग ढूँढ़ने चले

अब अंगद वानरों से बोले, यद्यपि थक तो वे भी गये थे परन्तु अपनी बुद्धिमत्ता से धीरज धर-कर वानरों का समाश्वासन कर धीरे से समझाने लगे—सुनो वानरो! हम लोगों ने वन, पर्वत, नदी, दुर्गम स्थान, गड्ढे, कन्दरा इत्यादि स्थानों को ढूँढ़ा; पर जानकी कहीं न मिली। उस दुष्ट राक्षस का भी कुछ पता न लगा। समय भी खोजने में बहुत बीत

गया। तुम जानते ही हो कि सुग्रीव बड़ा दण्ड देने-वाला राजा है। इसलिए तुम सब मिलकर फिर खोजो। आलस्य, शोक और निद्रा का त्याग कर ऐसा करो जिससे सीता का पता लग जाय। सुनो, खेद का तो परित्याग करो पर चतुराई और मन को ढीला न करना। इसी से कार्य की सिद्धि होती है। इसलिए मैं तुमसे फिर खोजने के लिए कहता हूँ। हे वानर लोगो, तुम खेद-रहित होकर फिर इस वन को ढूँढ़ो। करनेवालों को कर्म का फल अवश्य मिलता है, इसलिए मन से हार मानकर हमको ढिलाई करना उचित नहीं। देखो, एक तो सुग्रीव क्रोधी राजा हैं, दूसरे वे कठोर दण्ड देते हैं। अतएव उनसे और रामचन्द्र से भी सदा डरते रहना चाहिए। यह बात मैंने तुम्हारे हित के लिए कही है। यदि तुमको अच्छी लगे तो इसके अनुसार चलो, नहीं तो जैसा अच्छा लगे वैसा करो। हे वानरो, अब जो-जो तुम्हारा अभिप्राय हो, सो हमको कह सुनाओ। गन्धमादन नामक वानर प्यास और परिश्रम से व्याकुल हो रहा था। वह अङ्गद के वचन सुनकर बोला—हे भाइयो, अंगद जो बात कहते हैं सो तुम सबके लिए ठीक, हित की और न्याय के अनुसार है। इसलिए इनका कहना सुनो। आओ, हम लोग फिर से पर्वत, कन्दरा, शिला, शून्य जंगल और पर्वत के झरनों को ढूँढ़ें। सुग्रीव के निर्देश के अनुसार सब वानर मिलकर खोजें। इसके अनन्तर सब वानर उठे और विन्ध्य के जंगलों से भरी दक्षिण दिशा में घुसकर ढूँढ़ने लगे। अब वे वानर शरत्काल के मेघ के सदृश सुन्दर रजत पर्वत पर चढ़ गये। उस पर्वत के सुन्दर शृङ्ग और मनोहर-मनोहर गुफाएँ थीं। वहाँ सीता के दर्शन की आकांक्षा से रमणीय लोध के जंगल और सतौना के वनों को वे ढूँढ़ने लगे। पर्वत के ऊपरवाले शृंग पर चढ़कर वे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक गये, पर श्रीजानकी न मिलीं। उस पर्वत की बहुत सी गुफाएँ भी उन्होंने ढूँढ़ीं। वे सब चारों ओर दृष्टि फैलाकर देखने लगे। तदनंतर वे मारे परिश्रम के मूर्छित के सदृश हो घबरा उठे और पर्वत से नीचे उतर आये। मुहूर्त्त-मात्र एक वृक्ष के नीचे बैठ-कर उन्होंने विश्राम किया। वे फिर भी ढूँढ़ने में तत्पर हुए।

दोहा

हनुमदादि कपिवीर सब, विन्ध्य आदि ले सर्व।
खोजन लगे सचेत होइ, वानर-यूथ अखर्व॥

---

## पचासवाँ सर्ग

### वानरों का ऋक्षबिल नामक दुर्गम स्थान में जाना

तार और अङ्गद को साथ ले हनुमान् विन्ध्य के दुर्गम स्थानों और गुफाओं को खोजने लगे। जिनमें सिंह-शार्दूल रहते थे, ऐसे-ऐसे विषम स्थानों और झरनों पर जाकर वे ढूँढ़ने लगे। इसके अनन्तर वे दक्षिण-पश्चिम के कोने के शृङ्ग पर चढ़ गये। अभी ये वहीं पर थे कि सुग्रीव का नियत किया हुआ समय टल गया। वह स्थान भी ऐसा विकट था कि किसी के जाने के योग्य न था, क्योंकि वहाँ पर बड़ी-बड़ी दुर्गम गुफाएँ थीं और वन भी बड़ा सघन था। परन्तु वहाँ पर भी जाकर हनुमान् ढूँढ़ने लगे। तदनन्तर साथ छोड़कर—थोड़ी-थोड़ी दूर पर—गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, हनुमान्, जाम्बवान्, युवराज अङ्गद और वनचारी तार, ये सब

पर्वतों के जाल से छिपे देशों में घुस-घुसकर खोजने लगे। अब खोजते-खोजते इनको एक बड़ा भारी बिल देख पड़ा। उसका मुख खुला हुआ था। उस बिल का नाम ऋक्षबिल अर्थात् भालू का बिल था। वह अत्यन्त दुर्गम था। उस बिल का रक्षक कोई दानव था। ये सब के सब भूख और प्यास से व्याकुल और थके हुए थे। सभी पानी पीना चाहते थे। वह बिवर लता के झुरमुटों से व्याप्त था। इन्होंने देखा कि उस बिल में से क्रौञ्च, हंस, सारस और चक्रवाक पक्षी जल से भीगे और कमल के पराग से पीले रंग में रँगे निकलते हैं। इसलिए ये सब उस बिल के पास गये तो उसमें से एक प्रकार की सुगन्ध भी इनको जान पड़ी, पर बिल का मार्ग बड़ा टेढ़ा-मेढ़ा देख पड़ा। तब इन वानरों को बड़ा आश्चर्य हुआ। इनको कुछ सन्देह भी हुआ परन्तु ये बड़े तेजस्वी और महाबली थे इसलिए बिल के द्वार के निकट चले गये। वह बिल नाना जीवों से भरा हुआ पाताल के सदृश देख पड़ा। उसमें जाने की बात तो दूर है, उसकी ओर दृष्टि करने से भी डर लगता था। हनुमान् का शरीर पर्वत के तुल्य विशाल था। वे बड़े-बड़े जंगलों के जानकार थे। उन्होंने वानरों से कहा—सुनो भाइयो, हम लोगों ने इन पर्वत-जालों में घुस-घुसकर खोजा और हम सब थक भी गये, पर सीता नहीं मिलीं। अब देखो, इस बिल में से हंस, क्रौञ्च, सारस और चक्रवाक पक्षी जल से भीगे हुए निकल रहे हैं। सो अवश्य इसमें कूप या तालाब होगा। इस बिल के द्वार पर हरे-हरे वृक्ष भी देख पड़ते हैं, इससे सिद्ध है कि यहाँ जल है; क्योंकि बिना जल के ये हरे नहीं रह सकते।

हनुमान् के मुँह से इतनी बात निकलते ही सब के सब उस बिल में घुस गये। उसमें बड़ा अँधेरा था; न चन्द्र का प्रकाश था और न सूर्य का। भीतर देखने से रोएँ खड़े होते थे। उसमें सिंह, मृग और पक्षी भी थे। उस समय इन लोगों की यह दशा थी कि न तो इनकी दृष्टि काम देती थी, न तेज और न पराक्रम ही कुछ काम आती था। ये तो अँधेरे में वायु के तुल्य उड़ते चले जाते थे। इन बलवानों ने भीतर प्रकाश से युक्त मनोहर उत्तम स्थान देखा। वहाँ नाना वृक्षों से भरा सघन जंगल था। वे सब परस्पर मिलते-भेंटते अथवा एक दूसरे का हाथ पकड़े एक योजन और आगे बढ़े परन्तु सब के सब प्यास और परिश्रम के मारे व्याकुल और मूर्च्छित हो रहे थे। उस बिल के भीतर वे कुछ देर तक पड़े रहे। वे कृश तथा दीन-वदन हो गये थे। जीवन से जब वे अत्यन्त ही निराश हुए तब कहीं उन्हें प्रकाश मिला। उस अन्धकार-रहित वन में सुवर्ण के वृक्ष प्रज्वलित अग्नि के तुल्य देख पड़ते थे। उसमें साखू, ताड़, तमाल, नागकेसर, मौलसिरी, धव, चम्पा, नागवृक्ष और फूले-फूले कर्णिकार के वृक्ष देख पड़े। वे सुवर्ण के चित्रविचित्र गुच्छों, लाल-लाल पत्तों, मञ्जरियों और लताओं से ऐसे शोभित थे मानो किसी ने उनको सुवर्ण के गहने पहना दिये हों। उनमें अनेक वृक्ष ऐसे थे जो मध्याह्न के सूर्य के सदृश चमकते थे। पत्रों की उनकी वेदी थी। अनेक पक्षियों से शोभित कमलों की लताएँ हरे पन्नों के सदृश चमकती थीं। वहाँ पर कमल-पुष्पों से भूषित और निर्मल जल से पूर्ण बहुत से सरोवर थे। वे उदयकाल के सूर्य के सदृश, विशाल और सुवर्ण-वृक्षों से वेष्टित थे। उनमें सुवर्ण-रंग की मछलियाँ थीं। वहाँ चाँदी और सोने के कितने ही विमान थे। वहाँ पर वानरों ने सात खण्ड के मुख्य गृहों को देखा, जो सोने-चाँदी से बने थे। उनमें सुवर्ण के झरोखे कटे थे; मोतियों की

झालर लटकती थी; उनकी गच सोने और चाँदी से पीटी हुई थी और उसमें पन्ने तथा मणि जड़े हुए थे। उनमें फूले-फले सुवर्ण के सदृश वृक्ष लगे थे जिन पर भौंरे गुञ्जार करते थे। वहाँ चारों ओर मधु ही मधु देख पड़ता था। उन गृहों में मणि और कांचन से बने अनेक प्रकार के चित्र-विचित्र विशाल पलँग और आसन चारों ओर रक्खे थे। किसी ओर सोने, रूपे और काँसे के पात्रों का ढेर रक्खा था। किसी ओर अगर, दिव्य चन्दनों की राशि, अनेक प्रकार की भोजन की वस्तुएँ और मूल, फल इत्यादि देख पड़ते थे। यथोचित स्थानों में बड़े-बड़े मोल की सवारियाँ, स्वादिष्ट मधु, सुन्दर-सुन्दर वस्त्र, चित्र-विचित्र कम्बल अर्थात् दुशाले और मृगचर्म ढेरों रक्खे थे।

उन वानरों ने बिल में ढूँढ़ते-ढूँढ़ते इन सब पदार्थों को देखा। अब उन्होंने एक स्त्री को देखा जो चीर और काली मृगछाला पहने तपस्या करती थी। वह नियत भोजन करनेवाली और तेज से प्रज्वलित थी। उसको देखकर वे सब के सब विस्मित हो वहाँ खड़े हो गये।

बारवा

तब हनुमान महागिरि सुसदृश काय
बोले तेहि वृद्धा सन सीस नवाय॥
केहिकर रत्न सकल यह अरु तुम कौन?
बसहु अकेली बिल महँ केहि कर भौन॥

---

## ५१ वाँ सर्ग

### उस वृद्धा तापसी का वानरों से अपना समाचार कहना

हनुमान् यह पूछकर बोले—देखो, हम सब भूख-प्यास से व्याकुल और परिश्रम से खिन्न होकर इस अन्धकारमय महाबिल में चले आये हैं। यहाँ पर अनेक प्रकार के अद्भुत पदार्थों को देखकर हमें बड़ी व्यथा हो रही है और हम घबड़ाकर अचेत से हो गये हैं। ये तरुण सूर्य के सदृश चमकीले सुवर्ण के वृक्ष और ये सब निर्मल भोज्य पदार्थ, फल-मूल और ये सब सोने-चाँदी के बने विमान, गृह—जिनके झरोखे सुवर्ण से बने और मणिजाल से भूषित हैं—किसके हैं? इन फूले-फले वृक्षों की मनोहर सुगन्ध फैल रही है। ये सब वृक्ष किसके तेज से सुवर्णमय देख पड़ते हैं? ये सुवर्ण के कमल जल में खिल रहे हैं। ये मछलियाँ और कछुए किस प्रकार सुवर्ण के से देख पड़ते हैं? यह चमत्कार आपके प्रभाव से है अथवा किसी दूसरे के तपोबल से है? कृपापूर्वक यह बात हम लोगों से कहिए।

वह तपस्विनी सब प्राणियों के हित में तत्पर थी। उसने कहा—हे वानरेन्द्र, महातेजस्वी मायावी मय नामक दानव ने यह सुवर्ण का जङ्गल अपनी माया से बनाया है। सुनो, पहले यह मय नामक दानव मुख्य दानवों का विश्वकर्मा था। उसी की यह सब रचना है। पहले उसने महावन में हजार बरस तपस्या करके ब्रह्मा से यह वर प्राप्त किया कि शिल्प-विद्या का विषय जो कुछ शुक्राचार्य ने बनाया है उसका ज्ञान मुझको हो; उन शिल्पों में जो कुछ औजार आवश्यक हैं वे भी मुझे मिलें। अतएव उसे सब कुछ मिल गया। इस बिल में उसने अपनी वह विद्या प्रकट की। यहाँ तुम जो कुछ देखते हो, इसका वही स्वामी था। कुछ दिन तक इस वन में वह बड़े आराम से रहा। फिर वह हेमा नामक अप्सरा पर आसक्त हुआ। तब इन्द्र ने वज्र से उसका घात किया। तदनन्तर ब्रह्मा ने हेमा को यह वन दे दिया

और यहाँ के पदार्थों का यथेच्छ उपभोग करने की आज्ञा भी उसे दी। हे कपीश, मैं मेरुसावर्णि की पुत्री हूँ। मेरा नाम स्वयंप्रभा है। मैं इस भवन की रक्षा करती हूँ। मेरी प्यारी सखी हेमा नृत्य और गीत में बड़ी दक्ष थी। उसने मुझे वर दिया है कि इस भवन की रक्षा का सामर्थ्य तुझमें होगा। इसलिए मैं इस स्थान की रक्षा कर रही हूँ। इतनी कथा सुनाकर स्वयंप्रभा ने कहा—

चौपाई

केहि के कौन हेतु कपि तुम सब।
एहि थल आयेउ सकल कहहु अब॥
लखेउ कवनि बिधि यह दुर्गम वन।
अगम अगाध घोर अति निर्जन॥
खाहु मूल-फल अँचवहु वारि।
तब निज कथा कहहु निरधारि॥

---

## ५२ वाँ सर्ग

### हनुमान् को सब समाचार कहना और स्वयंप्रभा के तपोबल से बिल के बाहर निकलना

कुछ देर में जब वानर लोग खा-पीकर स्वस्थचित्त हुए तब स्वयंप्रभा बोली—हे वानरो, यदि फल खाने से तुम्हारा खेद दूर हो गया हो और यह बात मेरे सुनने योग्य हो तो मैं सुनना चाहती हूँ। तुम अपनी कथा कह सुनाओ। उसके ये वचन सुनकर हनुमान् ने कोमलता के साथ यों कहना आरम्भ किया—

सम्पूर्ण लोक के राजा और इन्द्र-वरुण के सदृश महाराज दशरथ के पुत्र श्रीमान् रामचन्द्रजी भार्या वैदेही और भाई लक्ष्मण को साथ ले दण्डकारण्य में आये। जनस्थान में उनकी भार्या को रावण ने बलात्कार से हर लिया। उन श्रीराघव के सखा सुग्रीव हैं। वे सब वानरों के राजा हैं। उन्होंने हम लोगों को, यमराज से रक्षित अगस्त्य ऋषि की दक्षिण दिशा में, अङ्गदादि वानरों के साथ, भेजा है और कहा है कि सब मिलकर सीता को तथा रावण को खोजो। इसलिए हम लोग सम्पूर्ण वन, समुद्र और सारी दक्षिण दिशा को खोजते हुए भूख से पीड़ित हो गये। एक वृक्ष के नीचे जा बैठे। हमारे चेहरे उतर गये थे। हम सब शोक कर रहे थे और इस शोकसमुद्र के पार नहीं जा सकते थे। देखते-देखते हम लोगों को यही बिल देख पड़ा, जो लता और वृक्षों से भरा तथा अन्धकार से पूर्ण था। हम लोगों ने देखा कि इस बिल में हंस, कुरर और सारस पक्षी जल से भीगे और पुष्प-पराग से रँगे निकल रहे हैं। यह देख हमने वानरों से कहा कि आओ इसमें चलें। यह बात सबके मन में बैठ गई। सभी को अर्थसाधन की शीघ्रता थी। इसलिए हम सब वेगपूर्वक परस्पर हाथ थामकर इसमें घुस आये। यही हमारा कार्य है और इसी के लिए हम आये हैं। तुम्हारे पास जब हम आये तब खिन्न और भूखे थे। तुमने हमारा आतिथ्य किया और फल-मूल भोजन दिया। हम लोगों ने खाया, सो तुमने हमको एक तरह क्षुधा-मरण से बचा लिया है। अब कहो, हम सब वानर तुम्हारा क्या प्रत्युपकार करें?

यह सुनकर स्वयंप्रभा ने कहा—हे वानरो, मैं तुमसे बहुत सन्तुष्ट हूँ। मैं यहाँ धर्माचरण कर रही हूँ। मुझे किसी से कुछ काम नहीं।

यह धर्मयुक्त वचन सुनकर हनुमान् उस तापसी से बोले—हे धर्मचारिणी, हम लोग तेरे शरण में हैं।

देख, सुग्रीव ने हमारे लिए जो समय नियत किया था वह इस बिल में ही बीत गया। अब तू हम लोगों को इस बिल से बाहर निकाल दे। सुग्रीव के निर्दिष्ट समय का हम सबने उल्लङ्घन किया है, इसलिए हम सबका मरण समीप है। तू हमको बाहर पहुँचाकर हमारी रक्षा कर। हमको बड़ा भारी कार्य्य करना था, सो यहाँ रहने से नहीं हुआ।

हनुमान् के वचन सुनकर तापसी बोली—इस बिल में जो घुसता है। उसका जीते-जी यहाँ से निकलना बड़ा कठिन है; परन्तु मैं अपने नियमों से उपार्जित तपस्या के प्रभाव से तुमको बिल के बाहर कर दूँगी। तुम लोग अपने-अपने नेत्र मूँद लो, क्योंकि नेत्रों के बन्द किये बिना यहाँ से तुम निकल न सकोगे। तब सबने अपने-अपने हाथों से अपने नेत्रों को झट-पट ढक लिया; क्योंकि उनको तो बिल से बाहर निकलना था। उस समय उनको, नेत्र ढाँपते ही स्वयंप्रभा ने पल भर में बाहर कर दिया। जब वे बाहर आये तब स्वयंप्रभा उनको समझाकर कहने लगी—

चौपाई

नाना वृक्ष-लतायुत कन्दर।
देखहु विन्ध्याचल अति सुन्दर॥
यह प्रस्रवण शैल, यह जलनिधि।
होय तुम्हार सुमंगल सब विधि॥
अब हम जाब गेह निज तौन।
अस कहि सो पैठी निज भौन॥

---

## ५३वाँ सर्ग

### समय के बीत जाने से वानरों का अत्यन्त शोकयुक्त होना।

अब उन लोगों ने समुद्र को देखा। वह बड़ा भयङ्कर, अपार और बड़ी-बड़ी तरङ्गों द्वारा गरज रहा था। मय के मायारचित पर्वतदुर्ग में खोज करते-करते इन वानरों का वह महीना बीत गया, जो सुग्रीव ने नियत कर दिया था। इस कारण वे सब विन्ध्य पर्वत की एक पहाड़ी पर बैठकर चिन्ता करने लगे। वहाँ पर फूले-फूले वृक्ष लहलहा रहे थे। वसन्त में फूलनेवाले वृक्षों के अग्रभाग पुष्पों से लदे और सैकड़ों लताओं से वेष्टित थे। उनको देखकर वे सब अत्यन्त भयभीत हुए, क्योंकि उन्होंने देखा कि वसन्तकाल आ पहुँचा पर कार्यसिद्धि नहीं हुई। अब वसन्त ऋतु के आ जाने से, सुग्रीव की उस आज्ञा की अवधि बीतते देख, वे पृथ्वी पर उतर पड़े। इसके अनन्तर युवराज अंगद मधुर वाणी से, वृद्ध और श्रेष्ठ वानरों से बोला—हे महाकपि लोगो! हम लोग राजा की आज्ञा से निकले थे परन्तु बिल में ही हमारा महीना पूरा हो गया। क्या इस ओर तुम्हारा ध्यान नहीं है? देखो, हम लोग एक मास की अवधि करके क्वार के महीने में इकट्ठे करके भेजे गये। सो वह समय बीत गया। देखिए, आप लोग राजा के विश्वासपात्र, नीति-मार्ग में दक्ष, स्वामी के कार्य में तत्पर, और सम्पूर्ण राजकार्यों के अधिकारी हैं। आप लोग सब प्रकार कार्य-साधन में अनुपम शक्तिशाली और विख्यात पराक्रमी हैं। आप मुझे आगे करके, सुग्रीव की आज्ञा से, खोजने निकले हैं। अब इस घड़ी कार्य सिद्ध नहीं हुआ, इससे हम लोगों का मरण

निस्सन्देह आ पहुँचा; क्योंकि वानरराज की आज्ञा का सम्पादन किये बिना कौन जी सकता है ? देखो, सुग्रीव का निर्धारित समय बीत गया। अब यही उचित है कि हम सब वानर लोग प्रायोपवेशन करें, अर्थात् अन्न-जल का त्याग करें, क्योंकि सुग्रीव एक तो स्वभाव के ही तीखे और दूसरे स्वामिपद को प्राप्त हैं। इसलिए वे हमको क्षमा न करेंगे। सीता का पता न लगने के कारण वे अवश्य हमारा वध करने को उद्यत हो जायँगे। इसलिए हम लोगों को आज ही प्रायोपवेशन करना चाहिए। यदि यहाँ से हम लोग राजा के पास जायँगे तो वह बुरी तरह हमारा घात करेगा। इसलिए भाइयो, यहीं मर जाना अच्छा है। अब पुत्र, स्त्री, धन और गृह का मोह छोड़ देना ही ठीक है। देखो, मुझे कुछ सुग्रीव ने यौवराज्य पर नहीं बैठाया, मेरा अभिषेक तो श्रीरामचन्द्र ने किया है। सुग्रीव मुझे पहले से ही वैरी समझता है। अब इस समय, इस आज्ञा के उल्लङ्घन से, अधिक क्रोध कर मुझे बड़ी कठोरता से मरवा डालेगा। मुझे अब अपने मित्र-बन्धुओं से भी कुछ प्रयोजन नहीं, क्योंकि राजा जब मुझे प्राणान्त-दंड देगा तब उनके किये कुछ भी न हो सकेगा। मेरा प्राणान्त देख वे अधिक दुखी होंगे। इसलिए मैं इसी समुद्र के पवित्र तीर पर प्रायोपवेशन करूँगा।

अंगद के ये वचन सुनकर सब वानर करुणापूर्वक बोले—देखो, युवराज का कहना बहुत ठीक है, क्योंकि सुग्रीव स्वभाव के कठोर हैं और रामचन्द्र अपनी प्रिया में अनुराग रखते हैं। जब वे देखेंगे कि ये वानर एक तो सीता का पता लगाये बिना ही लौट आये और दूसरे मेरे नियमित समय का भी इन्होंने उल्लङ्घन किया, तब राघव की प्रीति के लिए हमारा घात अवश्य किया जायगा। इसलिए अपराधी का स्वामी के पास जाना ही उचित नहीं। तिस पर हम लोग तो सुग्रीव के प्रयान हैं। इसलिए या तो सीता को देखकर या उसका पता लगाकर राजा के पास जायँगे किंवा यहीं जान दे देंगे।

वानरों के ये भयभीत वचन सुनकर तार नामक वानर बोला—भाइयो! खेद मत करो। आओ, हम लोग इसी बिल में घुसकर रहें। तुमको जो यह बात अच्छी लगे तो यही करो। देखो, यह बिल माया से अति दुर्गम बना है। इसमें पुष्प, जल, भोजन, पान इत्यादि भी बहुत है, यहाँ पर न तो हमको इन्द्र का डर है; न राघव से और न सुग्रीव से ही कुछ भय की शङ्का है।

दोहा

अति हित अङ्गद के वचन, सुनि सब करि परतीति।
बोले जिमि हम बचहिं कपि, तथा करहु अब नीति॥

---

## ५४वाँ सर्ग

### हनुमान् का अङ्गद को समझाना।

तार की यह सम्मति सुनकर हनुमान् ने मन में सोचा कि वानरों का राज्य अब अंगद ने लिया, अर्थात् ये बन्दर अङ्गद की सम्मति में आ गये। उन्होंने देखा कि अङ्गद अष्टाङ्ग बुद्धि से युक्त, चार प्रकार के बल से पूर्ण और चौदह गुणों से भूषित हैं; ये तेज, बल और परक्राम द्वारा शुक्लपक्ष के चन्द्र की नाईं, नित्य-नित्य बढ़ती हुई शोभा से शोभित हैं। बुद्धि में ये बृहस्पति के सदृश और पराक्रम में अपने पिता के तुल्य हैं। तार के वचन पर ये दत्तचित्त हैं जैसे शुक्र के कहने पर इन्द्र हों; पर स्वामी (सुग्रीव) की कार्यसिद्धि में अब ये विमुख हैं। इसलिए इनको समझाकर ठिकाने

पर लाना चाहिए। यह सोच-विचारकर हनुमान् ने अपनी वाणी की चतुराई से सब वानरों को फोड़ना आरम्भ किया। तदनन्तर जब वे अङ्गद से फूटकर भिन्न हो गये तब हनुमान् अनेक प्रकार के ऐसे वचनों से, जिनसे भय उत्पन्न हो और क्रोध की शांति हो, अङ्गद को समझाने लगे। उन्होंने कहा—

तारा के पुत्र हे अङ्गद, तुम युद्ध में अपने पिता के तुल्य सामर्थ्यवान् हो। पिता की तरह अच्छे प्रकार राज्य-पालन करने का भी तुममें सामर्थ्य है; परन्तु ये वानर सर्वथा चञ्चलचित्त होते हैं। अपने पुत्रों और स्त्री को छोड़कर ये तुम्हारी आज्ञा कभी न मानेंगे और इसी कारण ये तुम्हारे ऊपर कभी प्रीति न करेंगे। देखो, मैं सबके आगे कहता हूँ कि जाम्बवान्, नील, सुहोत्र और मुझे—इन चारों को—तुम सुग्रीव से फोड़कर अपनी ओर कभी नहीं मिला सकते। साम, दाम, भेद या दण्ड कोई भी उपाय तुम्हारा कारगर न होगा। देखो, दुर्बल के साथ बिगाड़ करके बलवान् व्यक्ति चुपचाप बैठ सकता है परन्तु जो दुर्बल अपने को बचाना चाहता है वह कभी बलवान् के साथ बिगाड़ करके अक्षुण्ण नहीं रह सकता। इसलिए दुर्बल व्यक्ति को बलवान् के साथ कभी बिगाड़ न करना चाहिए और, जो तुम कहते हो कि यह स्थान मेरी रक्षा करेगा सो लक्ष्मण के बाणों के सामने यह बिल कुछ भी नहीं। वे बाण क्षण भर में इसको विदीर्ण कर सकते हैं। इन्द्र ने केवल मय के ही घात के लिए वज्र मारा था, सो वह तो कुछ भी नहीं था परन्तु लक्ष्मण तो अपने पैने-पैने बाणों से पत्तों की नाईं इस बिल के स्थान को फोड़ डालेंगे। लक्ष्मण के ऐसे बाण हैं कि जिनका स्पर्श वज्र के तुल्य है। वे पर्वतों को भी विदीर्ण कर सकते हैं। तुम बिल में गये नहीं कि वानरों ने तुमको छोड़ा नहीं; क्योंकि उनको भी तो अपने प्राणों का डर है। एक तो उनको अपने पुत्र और अपनी स्त्री का स्मरण होगा, दूसरे नित्य भूखे और खेदयुक्त होने के कारण चिन्ता से वे सो न सकेंगे। ऐसे अनेक कारणों से घबराकर और तुमको छोड़कर ये भाग जायँगे। इस प्रकार तुम मित्र-रहित और हितकारी बन्धुओं से हीन होकर तृण से भी हलके हो जाओगे। तब तुमको उद्वेग होगा। देखो, लक्ष्मण के बाण अति वेग-युक्त, भयङ्कर और बड़े दुःख से सहने के योग हैं। वे अनिवार्य होकर तुम्हें विदारण करेंगे। यदि हमारे साथ चलोगे और नम्रतापूवक सुग्रीव के सम्मुख खड़े हो जाओगे तो वे क्रम-परम्परा के अनुसार तुमको राज्य पर अवश्य बैठावेंगे। देखो, तुम्हारे काका धर्मात्मा, प्रीतिमान्, दृढ़व्रत, पवित्र और सत्यप्रतिज्ञ हैं। वे कभी तुम्हारा नाश न करेंगे। फिर वे तुम्हारी माता के हित में सदा तत्पर रहते हैं। उसी के निमित्त उनका जीवन है, अर्थात् उसी को प्रसन्न रखने में वे तत्पर रहते हैं। तुमको छोड़ उनके कोई दूसरा पुत्र भी नहीं, इसलिए हे अङ्गद, मैं कहता हूँ कि तुम चलो।

दोहा

अति हितकर मम वचन यह, सुनु अङ्गद युवराज।
कबहुँ न तोहि कहँ मारिहैं, धर्मशील कपिराज॥

---

## ५५वाँ सर्ग

### वानरों का प्रायोपवेशन करना।

हनुमान् के वचन नम्रता-पूर्वक, धर्मयुक्त और स्वामी के सत्कार से युक्त थे। उनको सुनकर अङ्गद बोले—हे हनुमान्! देखो स्थिरता, आत्मा एवं

मन की शुद्धि, कृपादृष्टि, कोमलता, पराक्रम और धीरता, ये गुण सुग्रीव में नहीं हैं। जेठे भाई की स्त्री धर्म से माता लगती है, पर सुग्रीव ने निर्लज्ज होकर उसी को—मेरे जीते जी—अङ्गीकार कर लिया। इसी से प्रकट है कि वह कैसा धर्मात्मा है। देखो, जिस दुष्टात्मा ने युद्ध में तत्पर अपने बड़े भाई की आज्ञा का उल्लङ्घन कर बिल का मुख बन्द कर दिया वह किस प्रकार धर्म को जानता है? जो सत्यता से हस्तग्रहण-पूर्वक मैत्री करके उपकारी और महायशस्वी श्रीरामचन्द्रजी को भूल गया वह और किसके सुकृत का स्मरण करेगा? फिर देखो, जिसने लक्ष्मण के डर से हम लोगों को सीता की खोज के लिए भेजा; यह काम जिसने अधर्म के डर से नहीं किया; भला कहो तो ऐसे पुरुष में धर्म कहाँ पाया जा सकता है? इसलिए भाइयो! ऐसे पापी, कृतघ्न, स्मृतिविरुद्ध कर्मकारी और चञ्चलात्मा पर कौन पुरुष विश्वास करेगा? खास करके जो उसी कुल का जन्मा होगा वह व्यक्ति उस पर कैसे विश्वास करेगा? फिर चाहे वह गुणी हो या निर्गुण, मैं तो शत्रुकुल का पुत्र हूँ। मुझे वह राज्य पर प्रतिष्ठित करके किस प्रकार जीने देगा? इस समय बिल में घुसकर रहने का विचार प्रकट हो गया। भाँड़ा फूट गया। अतएव मैं अपराधी और हीन-बल हूँ। भला कहो तो सही कि मैं किष्किन्धा में जाकर दुर्बल और अनाथ की नाईं किस प्रकार जी सकूँगा? भले ही वह मुझे प्रत्यक्ष दण्ड न दे—प्राण न ले—परन्तु बँधवाकर अवश्य कारागार में डाल देगा, क्योंकि वह बड़ा धूर्त, कठोर और घातक है। उसको राज्य का बड़ा लोभ है। इससे देखो भाइयो, उस बन्धन में पड़ने की अपेक्षा मुझे प्रायोपवेशन ही भला जान पड़ता है। इसलिए इस विषय में सब वानर भाई मुझे आज्ञा दें और अपने-अपने घर को लौट जायँ।



मैं प्रतिज्ञा-पूर्वक कहता हूँ कि मैं किष्किन्धा में न जाऊँगा। प्रयोपवेशन के द्वारा मरना ही मेरे लिए भला है। तुम लोग जाओ। राजा से प्रणाम-पूर्वक मेरा कुशल और श्रीरामचन्द्र तथा लक्ष्मण से मेरा प्रणाम कहना। मेरे कनिष्ठ पिता राजा सुग्रीव से और मेरी माता रुमा से आरोग्य-पूर्वक मेरा कुशल कहना। मेरी माता तारा को भी समझा देना। देखो, उस तपस्विनी को स्वभाव से ही पुत्र प्यारा है। वह बड़ी दया रखती है। जब वह मेरा नाश सुनेगी तब अवश्य अपने प्राणों को त्याग देगी।

ये वचन कहकर और उन वृद्ध वानरों को प्रणाम कर अङ्गद ने रोदन करते-करते भूमि पर कुश बिछाये। उन पर वे मलिनमुख होकर बैठ गये। उनके बैठते ही सब वानर रोने और नेत्रों से गरम आँसू बहाने लगे। अब वे सब वानर भी सुग्रीव की निन्दा और बाली की प्रशंसा करते हुए अङ्गद को घेरकर बैठ गये। परस्पर प्रायोपवेशन का विचार और जल का आचमन करके उन्होंने दक्षिणाग्र कुश बिछा दिये। उन पर वे पूर्वमुख हो, उत्तर समुद्र के तीर पर, बैठ गये। इस प्रकार मरण चाहते हुए सब वानर लोग राम के वनवास, दशरथ के के मरण, जनस्थान के नाश, जटायु के वध, वैदेही के हरण, बाली के घात और राम के कोप इत्यादि का वर्णन करने लगे।

इतने में एक महाभय ऐसा आया कि वे सब इधर-उधर भागने और कन्दराओं में घुसने लगे।

चौपाई

पर्वत-सम विशाल तनु बन्दर।
इत उत जाय घुसे गिरि-कन्दर॥
अति भयभीत धीर नहिं धरहीं।
बहु बिधि घोर नाद चिक्करहीं॥

नादित भयो सनिर्झर गिरिवर।
जिमि वारिद-रव सकल दिगम्बर॥

---

## ५६वाँ सर्ग

### सम्पाति से भेंट और उसका अपने भाई के सब समाचार पूछना।

जहाँ सब वानर प्रायोपवेशन करने बैठे थे उसी स्थान में जटायु का भाई सम्पाति नामक गृध्रराज आ गया। वह चिरजीवी और बल-पराक्रम में विख्यात था। विन्ध्य पर्वत की कन्दरा से निकलकर वह इन वानरों को देख अत्यन्त हर्षित होकर बोला कि देखो, प्राचीन कर्म के अनुसार प्राणी को कर्म का फल मिलता है। आज बहुत दिन बाद मुझे यह भोजन मिला है। इन वानरों में से जो-जो मरता जायगा उसको मैं भक्षण करूँगा।

उस लोभी पक्षी की यह बात सुनकर अङ्गद अत्यन्त खिन्न हो हनुमान् से बोले—देखो, हम सीता को खोजने के लिए आये थे, परन्तु वानरों की विपत्ति के लिए इस स्थान में यह पक्षी प्रत्यक्ष यमराज के तुल्य आया है। हम लोगों ने न राम का ही कार्य किया और न राजा की आज्ञा का पालन ही। वानरों के लिए यह बिना जानी हुई विपत्ति आ पहुँची। तुम लोगों ने सुना ही है कि सीता की प्रिय कामना से जटायु ने क्या काम किया था। पशु-पक्षी तक, जितने प्राणी हैं वे सब, अपने प्राणों को देकर भी रामचन्द्र का प्रिय कार्य करते हैं, जैसे कि हम सबने किया। देखो, रामचन्द्र के प्रेम और दया के वश में होकर सम्पूर्ण प्राणी उपकार करते हैं। अतएव राघव के उपकार के लिए, अपनी ही इच्छा से, जटायु ने अपना शरीर समर्पण करके राम का प्रिय कार्य्य किया। अब हम लोग भी प्राणों की ममता छोड़कर और परिश्रम सहकर इस घोर वन में आये, परन्तु मैथिली नहीं मिलीं। वह गृध्रराज रण में रावण के हाथ से मारा क्या गया, बड़ा सुखी हुआ। वह सुग्रीव के भय से छूटा तथा परमगति को प्राप्त हुआ। देखो, जटायु के मरने, राजा दशरथ के स्वर्ग-वासी होने और सीता का हरण होने से हम सब वानर प्राणसंशय में पड़े हैं। देखो, कैकेयी के वरदान से ही राम, लक्ष्मण और सीता को वनवास हुआ। बाली का वध और जनस्थानवासी राक्षसों का घात आदि सब अनर्थ उसी कैकेयी के कारण हुए।

इस प्रकार कपियों के मुँह से वह दुःख-पूर्ण वचन सुनकर और उनको भूमि पर पड़े देखकर वह गृध्रराज अत्यंत चकित हुआ। उसने दया-पूर्वक कहा—मेरे प्राणप्रिय भाई जटायु के मारे जाने का समाचार कहकर कौन मेरे मन को कम्पित कर रहा है? जनस्थान में राक्षस और गृध्र का युद्ध किस प्रकार हुआ? बहुत दिन पर मुझे भाई का नाम सुन पड़ा। हे वानरो, मैं चाहता हूँ कि आप लोग मुझे इस दुर्गम पर्वत पर से नीचे उतार दें। मेरा छोटा भाई गुण और पराक्रम में सराहने के योग्य है। बहुत दिन पर उसका समाचार पाने से मैं अत्यंत सन्तुष्ट हुआ। हे वानरश्रेष्ठ, मैं उसके विनाश का ब्योरा सुनना चाहता हूँ। उससे और दशरथ से कैसे मैत्री हुई, जिनके प्रिय ज्येष्ठ पुत्र श्री रामचन्द्र हैं?

दोहा

चलि न सकत गिरिदुर्ग ते, पक्ष जरे मम वीर।
चाहत उतरन भूमि पर, अवतारहु कपि धीर॥

---

## ५७ वाँ सर्ग

### वानरों का सम्पाति को पर्वत से उतारकर अपना सब समाचार कह सुनाना।

भाई के शोक से उस गृध्र के गले का शब्द यद्यपि गद्गद हो गया था तथापि उसकी बात पर वानरों को विश्वास नहीं आता था; क्योंकि उसके कर्म से उन सब को शङ्का हो रही थी। जो वानर प्रायोपवेश-नियम लेकर बैठे थे वे गृध्र को देख, बड़ी दृढ़ बुद्धि से, यह विचार कर रहे थे कि यह हम सबको भक्षण करेगा। परन्तु उन लोगों ने मन में यह निश्चय ठान लिया कि यदि यह हम लोगों को खा लेगा तो हम लोग कृतकृत्य हो जायँगे और शीघ्र सिद्धि को प्राप्त होंगे। ऐसा सोच-विचारकर सबने गृध्र को पर्वत की चोटी पर से उतारा। तब अङ्गद बोले—ऋक्षरजा नामक एक प्रतापी वानरश्रेष्ठ था। मेरे कुल में प्रथम पुरुष वही राजा था। उसके दो धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुए। एक का नाम बाली और दूसरे का नाम सुग्रीव हुआ। ये दोनों बड़े बली थे। इनमें बाली मेरा पिता था। वह वानरों का बड़ा विख्यात राजा हुआ। कुछ समय के अनन्तर सम्पूर्ण जगत् के राजा, इक्ष्वाकु-वंशी महारथ दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्र, भाई लक्ष्मण और अपनी पत्नी सीता को साथ ले—पिता की आज्ञा से धर्म मार्ग में तत्पर हो—दण्डकारण्य में आये। उनकी भार्या को जनस्थान से रावण हर ले चला। इतने में राम के पिता के मित्र गृध्रराज जटायु ने देखा कि रावण आकाशमार्ग से सीता को हरे लिए चला जाता है। तब उसने रावण को विरथ कर डाला और सीता को उससे अलग कर लिया; परन्तु गृध्रराज एक तो वृद्ध था, दूसरे थक भी गया था। इस कारण वह रावण के हाथ से मारा गया। इस प्रकार रावण ने गृध्र को मार डाला; परन्तु रामचन्द्र के हाथ से दाहादि संस्कार होने के कारण वह पक्षी उत्तम गति को प्राप्त हुआ। उसके पश्चात् राम ने मेरे पितृव्य सुग्रीव के साथ मैत्री की और मेरे पिता को मार डाला; क्योंकि सुग्रीव अपने सचिवों-सहित मेरे पिता से बिगाड़ रखता था। बाली को मारकर राम ने सुग्रीव को वानरों का राजा बनाया। अब वानरराज की आज्ञा से हम लोग घर से निकले हैं। सीता को खोजते-खोजते हम थक गये, पर आज तक पता न पाया, जैसे रात्रि में सूर्य की प्रभा किसी को नहीं देख पड़ती। हे पक्षिराज! सम्पूर्ण दण्ड-कारण्य ढूँढ़ा, फिर मय नामक दैत्य की, माया से बनी, एक कन्दरा में हम सब बिना जाने घुस गये। वहाँ खोजते-खोजते वह समय बीत गया जो राजा ने निर्धारित कर दिया था, अर्थात् एक महीने से ऊपर समय बीत गया। हम सब कपिराज के आज्ञाकारी ठहरे, सो आज्ञाकाल के बीत जाने से भयभीत हो इस प्रायोपवेशन में ही अपनी भलाई समझते है। यदि हम लोग वहाँ गये भी तो राम, लक्ष्मण और सुग्रीव—ये तीनों—क्रुद्ध होंगे और इनके क्रुद्ध होने से हमारा जीवन दुर्लभ है।

दोहा

यह सब सोच विचार करि, लीन्ह प्राय-उपवेश।
इहाँ मरण सब विधि भलो, अति पवित्र यह देश॥

---

## ५८वाँ सर्ग

### गृध्र का वानरों का सीता का ठिकाना बतलाना।

वानरों के ये दीन वचन सुनकर गृध्र की भी आँखों में आँसू भर आये। वह कहने लगा—हे वानरो युद्ध में रावण के हाथ से जिसके मारे जाने का तुमने वर्णन किया वह जटायु मेरा छोटा भाई था। इस समय एक तो मैं वृद्ध हुआ, दूसरे पक्षहीन हूँ, इसलिए यह सब सहन किये लेता हूँ क्योंकि अब मुझमें ऐसी शक्ति नहीं कि मैं अपने भाई के वैर का बदला रावण से लूँ। पुर्व-काल में वृत्रासुर के वध के समय मैं और मेरा भाई दोनों, परस्पर जीतने की इच्छा से—यह देखने के लिए, कि हम दोनों में कौन अधिक बली है—उड़ चले और बड़े वेग से आकाश-मार्ग में स्वर्ग तक पहुँचे। उड़ने से पहले यह प्रतिज्ञा कर ली कि जो पहले सूर्य को छूलेगा उसका बल अधिक समझा जायगा; परन्तु जब सूर्य मध्य में आये तब जटायु पीड़ित हुआ। तब मैंने स्नेह-पूर्वक अपने भाई को पङ्खों से ढक लिया, परन्तु इससे मेरे दोनों पंख जल गये। मैं विवश होकर विन्ध्यपर्वत पर गिर पड़ा। इसलिए हे वानरो, आज तक मैंने उसका समाचार नहीं पाया कि वह मर गया या जीता है।

गृध्र के ये वचन सुनकर अङ्गद बोले—यदि तुम जटायु के भाई हो और मेरी कही सब बातें तुमने सुनी हैं तो मुझे बतलाओ कि वह अदूरदर्शी राक्षसाधम कहाँ रहता है? दूर है कि पास? यदि तुम जानते हो तो मुझसे कहो।

सम्पाति ने कहा—हे वानरो, यद्यपि मेरे पक्ष भस्म हो गये हैं और मैं पराक्रम-हीन हो गया हूँ; तथापि मैं वचन-मात्र से राम की उत्तम सहायता करूँगा। मैं सम्पूर्ण वरुण-लोकों को जानता हूँ; वामनावतार में विष्णु ने जिन-जिन लोकों पर आक्रमण किया उन सबको तथा देवासुर-संग्राम को मैं जानता हूँ। मुझे अमृतमन्थन का भी वृत्तान्त मालूम है। यदि यह कार्य श्रीरामचन्द्र का है तो मैं इसको पहले करूँगा। क्या करूँ, बुढ़ापे ने मेरा तेज हर लिया और मेरे प्राण भी शिथिल हो गये हैं, इस कारण मुझसे विशेष कुछ न बनेगा। सुनो—

सम्पूर्ण भूषणों से भूषित एक रूपवती तरुणी को रावण हरे लिये जाता था, वह मैंने देखा है। वह स्त्री राम और लक्ष्मण को पुकारती, अपने भूषणों को फेकती और अंगों को इधर-उधर करती जाती थी। उस काले राक्षस के शरीर पर उस स्त्री का पीला कौशेय वस्त्र ऐसा शोभा देता था जैसे काले पर्वत के अग्र भाग में सूर्य की पीली प्रभा, अथवा नीले आकाश में बिजली की चमक हो। वह राम का नाम लेती थी इससे मैं जानता हूँ कि वही सीता होगी। अब मैं उस राक्षस के घर का पता बतलाता हूँ, सुनो। वह राक्षस विश्रवा मुनि का पुत्र और कुबेर का भाई है। वह लंका-पुरी में रहता है। इस समुद्र के तट से चार सौ कोस पर एक द्वीप है। उसमें विश्वकर्मा की बनाई लंका नगरी है। उस नगरी के सुवर्णमय द्वार, सुवर्णरचित अच्छी-अच्छी बैठकें, सुवर्ण के बड़े-बड़े महल और सूर्य के तुल्य चमकीले विशाल प्राकार हैं। उसी नगरी में पीत कौशेय वस्त्र पहने दीन-रूप से सीता रहती है। रावण के रनिवास में वह राक्षसियों से रक्षित है। यदि तुम वहाँ जाओ तो जनक की पुत्री मैथिली मिले। देखो, वह लंका चारों ओर समुद्र से घिरी है। जब यहाँ से सौ योजन पर जाओगे तब वहाँ दक्षिण-तीर पर रावण को देखोगे। इसलिए हे वानर, तुम शीघ्र परिश्रम करो। मैं

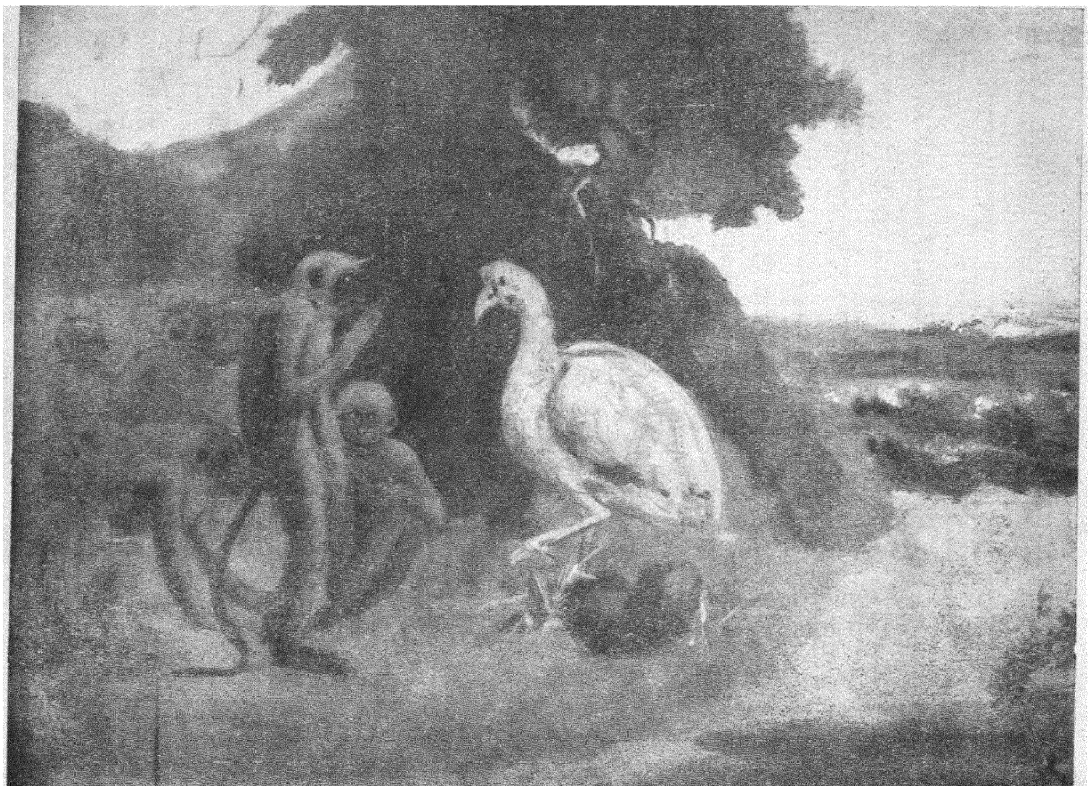

सम्पाति की वानरों से बातचीत। [पृष्ठ ४४५

अपने ज्ञान के द्वारा जानता हूँ कि तुम देखकर लौट आओगे। देखो, इस समुद्र के पार जाने के लिए आकाश-मार्ग का आश्रय लेना पड़ेगा। उसमें सात भेद हैं—पहला मार्ग कुलिङ्ग*, कबूतर प्रभृति धान्य-जीवी पक्षियों का है, दूसरा मार्ग बलिभोजी कौए इत्यादि का है; फल-मूल-भोजी भास, कुरर, क्रौञ्च इत्यादि का तीसरा मार्ग है। चौथा रास्ता बाज पक्षियों का है। गृध्रों का पाँचवाँ रास्ता है, और बलवीर्यशाली रूप-यौवन-सम्पन्न हंसों का छठा मार्ग है। गरुड़ की गति तो सबसे तेज है ही। हे वानरो! हमारी गृध्र-जाति की उत्पत्ति गरुड़ के बड़े भाई अरुण से है।

उस राक्षस ने बड़ा निन्दित काम किया। अब हमको अपने भाई का वैर रावण से लेना है। सो देखो, मैं यहाँ से रावण और सीता दोनों को देख रहा हूँ, क्योंकि हमारे चक्षु गरुण के चक्षु के सदृश दिव्य हैं। एक प्रकार के मांस-भक्षण के बल से और एक प्रकार की विद्या की सिद्धि से हमको सहज ही कुछ अधिक सौ योजन तक देख पड़ता है॥ हम लोगों की जीवनवृत्ति विधाता ने दूर की दी है इसलिए हमारी दृष्टि बहुत तेज होती है। कुक्कुट इत्यदि जो पैर से लड़ते हैं उनकी जीवनवृत्ति विधाता ने वृक्ष की जड़ में बता दी है, इसलिए उनकी नजर उतनी ही है। भाइयो, अब इस लवण-समुद्र के पार जाने का उपाय करो। देखो, मैं कहे देता हूँ कि तुम सब सीता को प्राप्त कर कृतार्थता पूर्वक लौट आओगे। तुम्हारी यात्रा सफल होगी। अब मैं चाहता हूँ कि तुम लोग मुझे समुद्र के तीर पर पहुँचा दो, क्योंकि मैं अपने स्वर्गवासी महात्मा भाई को जलाञ्जलि देना चाहता हूँ। यह सुनकर वानरों ने उसको वहाँ से उठाकर समुद्र के तीर पर रख दिया।

* जलमुर्ग।

दोहा

सम्पाती के वचन सुनि, हरषे सब कपि वीर।
जीवन की आशा भई, बिसरि गई भय पीर॥

---

## ५६वाँ सर्ग

### सम्पाति का वानरों से बातचीत करना और कुछ अपना समाचार भी कहना।

सम्पाति के अमृत-तुल्य वचन सुनने और सीता का सन्देश मिलने से वानरों को अत्यन्त हर्ष हुआ। इसके अनन्तर वानरों के साथ जाम्बवान् झट उठकर गृध्रराज से बोले—सीता कहाँ हैं? उनको किसने देखा है और कौन हर ले गया है? सब बातें आप कहिए और इन वानरों के शरणदाता हूजिए। वह कौन है जो राम और लक्ष्मण के बाणों का पराक्रम नहीं जानता!

गृध्रराज ने प्रसन्न होकर वानरों को धीरज दिया। सीता का सन्देश सुनने के लिए उत्सुक वानरों से वह बोला—हे वानरो! सुनो। जैसा मैंने वैदेही का हरण सुना है, जिसने मुझसे कहा है, और जहाँ पर सीता विद्यमान है, ये सब बातें मैं बतलाता हूँ।

यह दुर्गम पर्वत बड़ा भारी है। इस पर मैं मुद्दत से पड़ा रहता हूँ। एक तो मैं वृद्ध हूँ, दूसरे पक्षों के भस्म होने से मुझमें बल-पराक्रम भी नहीं रहा। इस दुरवस्था में मेरा पुत्र सुपार्श्व समय पर आहार देकर मेरा पालन करता था। देखो, जिस प्रकार गन्धर्व लोग अत्यन्त कामी, भुजंग महाक्रोधी और मृग बड़े डरपोक होते हैं उसी प्रकार हम लोगों की भूख बड़ी तेज होती है। एक बार प्रातःकाल होते ही वह पुत्र मेरे लिए अहार की खोज में गया और सायङ्काल

को खाली हाथ लौट आया। मैं उस समय भूख से अत्यन्त पीड़ित हो रहा था। तब मैंने अपने प्रिय पुत्र को अनेक प्रकार की कठोर बातें कहकर बहुत पीड़ित किया। इस पर उसने मुझसे क्षमा माँगकर कहा—हे तात, मैं समय पर मांस खोजने के लिए आकाश में उड़ा और महेन्द्राचल के द्वार को घेरकर वहीं ठहर गया। वहाँ समुद्र में विचरनेवाले हजारों जन्तुओं का मार्ग रोकने के लिए मैं बैठ रहा। वहाँ पर मैंने कज्जल की ढेरी के तुल्य काले-कलूटे एक पुरुष को देखा। वह सूर्योदय के समान प्रभाववाली एक स्त्री को लिये चला आता था। तब मैंने मन में निश्चय किया कि यही दोनों आज के भोजन के लिए होंगे। परन्तु उस पुरुष ने नम्रता पूर्वक मधुर वाणी से मुझसे मार्ग छोड़ने की प्रार्थना की। इसलिए मैंने उसे रास्ता दे दिया; क्योंकि मधुर भाषी जनों पर प्रहार करनेवाला पृथ्वीतल पर कोई नहीं है। जो नीच ही होगा वह भी ऐसे जन पर हाथ न बढ़ावेगा। तब मैं भला किस प्रकार ऐसा काम करता? सो वह अपने तेज से आकाश को तुच्छ करता हुआ झट निकल गया। इसके अनन्तर आकाशचारी प्राणियों ने मेरी बड़ी प्रशंसा की। बड़े-बड़े ऋषि लोग कहने लगे—बड़े आनन्द की बात है कि सीता जीती-जागती बच गई और वह किसी प्रकार उस स्त्री-सहित यहाँ से बचकर निकल गया। तुम्हारा भला हो। तदनन्तर सिद्ध लोगों ने मुझे बतलाया कि यह रावण राक्षसों का राजा था, और वह स्त्री जनक की पुत्री एवं दशरथ के पुत्र रामचन्द्र की भार्या थी। उसके गहने गिरते जाते थे और कौशेय पीला वस्त्र इधर-उधर हो रहा था। उसके केश खुले हुए थे। वह शोकाकुल होकर राम और लक्ष्मण को पुकारती जाती थी। हे तात, इसी कारण मेरा आहार खोजने का समय बीत गया।

हे वानरो, यह बात सुपार्श्व के मुँह से सुनकर भी कुछ पराक्रम करने की मुझे इच्छा न हुई; क्योंकि पक्ष-रहित पक्षी किस प्रकार कोई काम कर सकता है? अब वाणी और बुद्धि के गुण से जो कुछ मेरे करने योग्य है सो सुनो। वह तुम्हारे पौरुष के योग्य होगा। मैं अपनी वाणी और बुद्धि के द्वारा तुम्हारा प्रिय कार्य करूँगा। देखो, जो रामचन्द्र का कार्य है सो मेरा ही है, इसमें सन्देह नहीं। तुम लोग बुद्धिमान्, बलवान्, शूर और देवों का भी सामना कर सकते हो। इसी से सुग्रीव ने तुम्हें भेजा है। राम-लक्ष्मण के बाण भी तीनों लोकों का निग्रहानुग्रह करने में समर्थ हैं। यद्यपि रावण भी तेजस्वी और बलवान् है तथापि तुम लोग ऐसे समर्थ हो कि तुमको कोई बात दुष्कर नहीं। सो अब समय बिताना व्यर्थ है। अब अपनी बुद्धि को निश्चित करो, क्योंकि तुम्हारे ऐसे बुद्धिमान् लोग कार्यों में आलस्य नहीं करते।

बरवा

आलस छाँड़ि सँवारहु रघुपति-काज।
लाँघहु वेगि महोदधि सहित समाज॥

---

## ६०वाँ सर्ग

### सम्पाति का वानरों से विस्तारपूर्वक अपना समाचार वर्णन करना।

इसके अनन्तर जब सम्पाति अपने भाई को जलाञ्जलि देकर स्नान कर चुका तब वानर उसको चारों ओर से घेरकर पर्वत पर बैठ गये। अपने यूथ-सहित अङ्गद को बैठे देख वह गृध्र विश्वास देकर हर्ष से बोला—हे वानरो, तुम एकाग्रचित्त होकर मेरी

बात सुनो। मैं तुमको ठीक बतलाऊँगा कि किस प्रकार मैं सीता को जानता हूँ।

पहले मैं सूर्य के ताप से व्याकुल और सूर्य की किरणों से जलकर इसी विन्ध्य के शिखर पर गिरा, फिर मुझे छः दिन में चेत हुआ। परन्तु मैं ऐसा विवश और व्याकुल हो गया कि देखने से भी मुझे दिशा नहीं जान पड़ती थी। समुद्र, पर्वत, नदी, सरोवर, वन और नाना प्रकार के स्थलों को देखने से मुझे ज्ञान हुआ। तब मैंने जाना कि पक्षियों से भरा, कन्दरा और शृङ्गों से भूषित, दक्षिण-समुद्र के तीर पर यही विन्ध्याद्रि है। यहाँ पर एक पवित्र आश्रम देवगणों को भी पूज्य था। उसमें बड़ी कठोर तपस्या करनेवाले एक निशाकर नामक ऋषि रहते थे। जब वे स्वर्ग चले गये तब से मैं उनके बिना अकेला ही आठ हजार वर्ष तक यहाँ बना रहा। मैं बड़े क्लेश से इस विन्ध्य के शृङ्ग से ऊँचे-नीचे मार्ग होकर उतरा और तीखे कुशों से भरी इस भूमि पर आया। उन ऋषिजी के दर्शन करने की मेरी इच्छा थी क्योंकि जटायु ने और मैंने भी बहुत बार उनकी सेवा की थी। उनके आश्रम के समीप अति सुगन्धयुक्त वायु बह रहा था। वहाँ के कोई वृक्ष बिना फूल या फल के नहीं देख पड़ते थे। उस आश्रम में जाकर मैं एक वृक्ष के नीचे बैठा और मुनि के दर्शन की राह देखने लगा। इतने में दूर से मैंने उन ऋषि को देखा। वे तेजस्वी ऋषिजी स्नान किये उत्तर मुख चले आते थे। उनके चारों ओर सृमर नामक मृग, व्याघ्र, सिंह और नाना प्रकार के साँप चले आते थे, जैसे कि दाता को याचक लोग घेरकर चलते हैं। ऋषि जब आश्रम में पहुँच गये तब वे सब जीव अपने-अपने स्थान को चले गये, जैसे राजभवन में राजा के पहुँच जाने पर मन्त्री, सेना इत्यादि लौटकर अपने-अपने ठिकाने हो जाते हैं। इसके अनन्तर ऋषि ने मुझे देखा। वे सन्तुष्ट होकर अपने आश्रम में गये। फिर मुहूर्त्त भर के बाद वहाँ से निकलकर मुझसे पूछने लगे—भद्र, तुम्हारी यह सूरत देखकर मैं तुम्हें नहीं पहचान सका। तुम्हारे ये पक्ष अग्नि से जल गये। शरीर में प्राण-मात्र रह गये है। मैंने पहले दो गीध देखे थे। वेग उनका वायु के तुल्य था। वे गीधों के राजा, कामरूपी और दोनों भाई थे। हे सम्पाते, उनमें तू जेठा है। जटायु तेरा छोटा भाई था। तुम दोनों ने मनुष्य का रूप धारण कर मेरे चरणों का स्पर्श किया था।

चौपाई

कौन व्याधि जनमी अति घोर ?
जाते पङ्ख झरे दोउ तोर ॥
अथवा दण्ड दियो को तोहिं ?
सकल कथा समुझावहु मोहिं ॥

---

## ६१वाँ सर्ग

### मुनि से अपना समाचार कहना

तब मैंने मुनि से अपना सब समाचार कहना आरम्भ किया—हे भगवन्! मेरे शरीर में घाव हो गये हैं, जिससे एक तो मैं लज्जित हूँ, दूसरे व्याकुल हो रहा हूँ और थका भी हूँ; इससे कुछ कह नहीं सकता। हे मुने, मैं और जटायु दोनों घमण्ड में आकर मोहित हो अपने-अपने पराक्रम की परीक्षा के लिए आकाश में उड़े थे। पहले हम दोनों ने कैलाश पर्वत पर मुनियों के सामने यह प्रण किया कि जब तक सूर्य अस्ताचल पर न जायँ तभी तक हम उनके पास पहुँच जायँ। सो हम दोनों एक साथ उड़े और बहुत दूर तक आकाश में

निकल गये। जब पृथ्वी की ओर दृष्टि की तो सब नगर रथचक्र के सदृश देख पड़ने लगे। कहीं तो बाजा बज रहा था, कहीं भूषण के शब्द हो रहे थे और कहीं पर लाल कपड़े पहने स्त्रियाँ गा रही थीं। जब और बढ़े और सूर्य के मार्ग में पहुँचकर वहाँ से भूमि की ओर नीचे दृष्टि की तब वह वन हमको हरी घास से भरा देख पड़ा, अर्थात् वहाँ से सब वृक्ष छोटी-छोटी दूब के सदृश और पृथ्वी के सब पर्वत छोटे-छोटे पत्थरों की तरह देख पड़े। बड़ी-बड़ी नदियों से भरी यह पृथ्वी ऐसी जान पड़ी जैसे सूत के डोरे से छाई हो। हिमालय, विन्ध्य और मेरु, ये बड़े-बड़े पर्वत ऐसे देख पड़ने लगे जैसे जलाशय में हाथी खड़े हों। उस समय हम दोनों को बहुत पसीना आया, अत्यन्त खेद और भय भी उत्पन्न हुआ। तब हम दोनों व्याकुल होकर मूर्छित होने लगे। हे महर्षे! उस समय की बात मैं आपसे क्या कहूँ! न हमको दक्षिण दिशा जान पड़ती थी, न अग्नि-कोण और न पश्चिम दिशा। ऐसा जान पड़ता था कि युग का अन्त हुआ और यह लोक आग से जल सा गया। सूर्य को देखते ही मेरा मन और नेत्र दोनों शक्तिरहित हो गये; तथापि बड़े प्रयत्न से मैंने मन और नेत्रों को ठहराकर सूर्य की ओर देखा, तो सूर्यमण्डल मुझे प्रमाण में पृथ्वी के तुल्य विशाल जान पड़ा। इतने में जटायु, बिना मुझसे पूछे ही, पृथ्वी की ओर उतर पड़ा। उसको लौटते देख मैंने भी वहाँ से नीचे की ओर अपने को छोड़ा। जटायु के ऊपर मैंने अपने पक्षों की छाया कर दी। इससे वह तो न जला, परन्तु मैं जल गया। जब मैं वायुपथ से नीचे आ रहा था तब मुझे ऐसा जान पड़ा कि जटायु जनस्थान में गिरा होगा। मैं इस विन्ध्य पर्वत पर गिरा। पक्षों के जल जाने से मैं जड़ सा हो गया। देखिए महाराज! एक तो मैं राज्य से हीन हुआ, दूसरे भाई का सङ्ग छूटा, तीसरे मेरे पक्ष जल गये और पराक्रम नष्ट हुआ ही। इसलिए हे मुने, अब मैं यहीं चाहता हूँ कि पर्वत से गिरकर मर जाऊँ।

दोहा

अब कछु इच्छा और नहिं, कृपासिंधु मुनिराय।
जीवन ते मरिबो भलो, गिरि ते देह गिराय॥

---

## ६२वाँ सर्ग

### निशाकर मुनि का सम्पाति को समझाकर वर देना

हे वानरो, मुनि से यों कहकर मैं अत्यन्त दुःखित हो रोने लगा। तब उन्होंने पल भर ध्यान करके मुझसे कहा—हे गृध्र, तू चिंता मत कर। तेरे पक्ष और नवीन रोम फिर से उत्पन्न होंगे। तेरे नेत्र, प्राण, पराक्रम और बल जैसा था वैसा ही हो जायगा। देख, मैंने पुराण में सुना है कि एक बड़ा कार्य होनेवाला है। मैंने तपोबल से भी उसे देखा है; इसलिए दृढ़ निश्चय कर रक्खा है। उसे सुन—

इक्ष्वाकु-वंश में एक दशरथ नाम का राजा होगा। उसके महातेजस्वी राम नामक पुत्र उत्पन्न होंगे। वे अपने भाई लक्ष्मण के साथ पिता की आज्ञा से वन को जायँगे। वहाँ देवों और दानवों से अवध्य रावण नामक राक्षसों का राजा रामचन्द्र की भार्या को जनस्थान से उठा ले जायगा। वह मैथिली को नाना प्रकार के भक्ष्य और भोज्य पदार्थों का लोभ दिखावेगा परन्तु राम के विरह से पीड़ित सीता कुछ भी ग्रहण न करेगी। यह समाचार सुनकर

सीता के लिए इन्द्र सिद्ध परमान्न* भेजेंगे। वह देवताओं को भी दुर्लभ है। तब मैथिली उस अन्न को, इन्द्र का भेजा जानकर, ले लेगी। वह उसमें से थोड़ा सा राम के लिए यह कहकर भूमि पर डाल देगी कि "यदि मेरे पति या लक्ष्मण देवर जीते हों, अथवा देव रूपता को प्राप्त हुए हों तो भी यह मेरा दिया अन्न उनको प्राप्त हो।" इसके अनन्तर राम के भेजे हुए वानर-दूत यहाँ आवेंगे। हे पक्षी, तू उनसे श्रीरामचन्द्र की रानी का समाचार कहना, और इस स्थान से कहीं मत जाना। इस अवस्था में तू जा ही कहाँ सकता है! केवल देश और काल की राह देखता बैठा रह। तेरे फिर पक्ष हो जायँगे। मैं चाहूँ तो तुझे अभी पङ्खवाला कर दूँ पर इसलिए नहीं करता कि यहाँ पर रहकर तू लोकों का भला करेगा। इसके सिवा उन दोनों राजपुत्रों का काम भी तुझे करना है। वह काम करने से ब्राह्मणों का, बड़े-बड़े मुनियों का और इन्द्र का भी महान् उपकार होगा। हे वानरो! इस कारण मैं राम-लक्ष्मण को देखने की इच्छा करता हूँ; परन्तु अधिक समय तक अपने प्राणों को धारण करना नहीं चाहता। अब मेरी यही इच्छा है कि उनके दर्शन कर इस शरीर को त्याग दूँ।

दोहा

त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ मुनि, दृष्टि परावर ज्ञान।
यहि विधि कहेहु बुझाइ मोहि, रहित मोह मद मान॥

---

*खीर।

# ६३वाँ सर्ग

## सम्पाति के पङ्ख जमना

हे वानरो, इस प्रकार अनेक वचनों से मुझे समझा-बुझाकर मुनि आश्रम में चले गये। इसके अनन्तर मैं धीरे-धीरे वहाँ से चलकर इस विन्ध्य के ऊपर चढ़ा। मैं आप लोगों की राह देख रहा था। आज इस बात को कुछ ऊपर आठ हजार वर्ष बीते। मैं मुनि के वचन को अपने हृदय में स्मरण करता और देश-काल की राह देखता हुआ यहाँ रहने लगा। फिर महाप्रस्थान* के द्वारा जब वे निशाकर मुनि स्वर्ग चले गये तब मेरे मन में अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क उठने लगे। उन तर्क-वितर्कों के द्वारा मुझे अत्यन्त सन्ताप होने लगा किसी समय मेरी बुद्धि में ऐसा आता था कि मर जाना ही ठीक है; परन्तु मुनि के वचनों से फिर मैं सँभल जाता था। जाते समय मुनि ने मुझे जो बुद्धि दी थी, वही मेरे दुःख का इस तरह नाश करती थी; जैसे अग्नि की ज्वाला अँधेरे का नाश करती है। रावण के पराक्रम को जानकर भी मैंने पुत्र को बहुत धिक्कारा कि तूने सीता को क्यों न बचाया। सीता का विलाप सुनकर और उन दोनों भाइयों का सीता से वियोग सोचकर मुझे बड़ा खेद हुआ। जिस प्रकार दशरथ के साथ मेरा स्नेह था उसके अनुसार मेरे पुत्र ने मेरा प्रिय कार्य्य नहीं किया।

वह गृद्धराज वानरों के साथ इस प्रकार बातचीत कर ही रहा था कि इतने में उसके जले हुए पङ्खों के स्थान में फिर से लाल-लाल नये पङ्ख निकल आये। यह देखकर उस पक्षी को बड़ा हर्ष हुआ। वह वानरों

* हिमालय में शरीर गलाना।

से बोला—देखो, सूर्य की किरणों से जले हुए मेरे पक्ष बड़े सामर्थ्यवान् राजर्षि निशाकर के प्रसाद से निकल आये; युवा अवस्था में मेरा जैसा बल और पौरुष था वैसा ही इस घड़ी मुझे जान पड़ता है। हे वानरो, अब तुम सब प्रकार से मन लगाकर उपाय करो। अवश्य ही सीताजी मिलेंगी, क्योंकि मेरे जो नये पङ्ख निकल आये हैं इससे मुझे विश्वास है कि तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा।

यह कहकर वह पक्षिराज अपनी आकाश-गति की जाँच करने के लिए वहाँ से उड़ गया। सम्पाति के वचन सुनकर वानर लोग अत्यन्त हर्षित हुए। पराक्रम करने के लिए उनके मन में अधिक उत्साह हुआ।

छन्द

सुनि गीध वचन पौरुष उछाह।
सब हरषि उठे कपि सैन्य-नाह॥
सब पवन-तुल्य-विक्रम सुधीर।
अभिजित सम्मुख दिशि चले वीर॥

---

## ६४वाँ सर्ग

### वानरों का समुद्र को देखकर फिर दुखित होना

सम्पाति नामक गृध्र ने उड़ते समय भी वानरों को कार्यसाधन के लिए उत्साह दिया था। इसलिए सब वानर एकत्र होकर बड़े आनन्द से सिंहनाद करने लगे। रावण के नाश के विषय में सम्पाति की बातों का स्मरण कर वे सब हर्षपूर्वक सीता के दर्शन की इच्छा से समुद्र के समीप आये। वे समुद्र को देखने लगे। वह सम्पूर्ण लोक के प्रतिबिम्ब की नाईं देख पड़ता था। वे सब महावीर वानर दक्षिण समुद्र के उत्तर की ओर जाकर ठहरे। वह समुद्र कहीं-कहीं तो प्रसुप्त जन की भाँति शान्त और कहीं-कहीं खेलता सा देख पड़ता था। किसी ओर पर्वताकार जल की राशि से उमड़ता, पातालवासी दानवेन्द्रों से पूर्ण और देखनेवालों को रोमाञ्चित कर रहा था। उसको देखकर सभी वानर घबरा गये—सबको खेद हुआ।

जब वानरों ने समुद्र को आकाश की नाईं अपार देखा तब एक ही समय बोल उठे कि अब क्या करना चाहिए। समुद्र को देखने से अपनी सेना को उदास देखकर अंगद सब भयभीत वानरों को समझाने लगे—हे भाइयो, खेद मत करो क्योंकि खेद अत्यन्त दोषकारक है। देखो, खेद भी पुरुष का उसी प्रकार घात करता है जैसे क्रुद्ध साँप बालक को मार डालता है। पराक्रम करने के समय जो पुरुष खेद करता है, वह तेज से हीन हो जाता है। फिर उसका पुरुषार्थ अर्थात् किया हुआ कुछ भी सिद्ध नहीं होता।

रात बीतने पर जब प्रातःकाल हुआ तब वृद्ध वानरों के संग बैठकर अङ्गद फिर मन्त्रणा करने लगे। वह वानरों की सेना अङ्गद को घेर कर बैठ गई। उस समय उसकी ऐसी शोभा हुई जैसे देवताओं की सेना इन्द्र को घेर कर शोभित होती है। उन वानरों में अङ्गद और हनुमान् को छोड़ ऐसा कोई न था जो उस सेना को थामता।

अब अङ्गद ने उन वृद्ध वानरों की और सेना की सम्मति लेकर अर्थयुक्त बातें कहीं—भाइयो! इस घड़ी ऐसा कौन तेजस्वी वानर है, जो समुद्र को लाँघकर सुग्रीव की प्रतिज्ञा को सत्य करे? इस सेना में कौन ऐसा वीर है जो सौ योजन लाँघ सके और इन यूथपतियों को

महाभय से बचावे ? किसके प्रसाद से हम लोगों का अर्थ सिद्ध होगा और हम सुख-पूर्वक अपनी स्त्रियों, पुत्रों और घरों को फिर देखेंगे ? हे वानरो ! किसके प्रसाद से हम सब राम और लक्ष्मण के समीप प्रसन्न तथा हर्षित होकर जायँगे और सुग्रीव को अपना मुँह दिखावेंगे ? हे भाइयो तुम लोगों में से जो कोई समुद्र लाँघने में समर्थ हो सो शीघ्र हमको अभय-दक्षिणा दे।

अङ्गद के यह वचन सुन किसी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वानरी सेना तो इस बात को सुनते ही मानो ठण्डी हो गई। जब अङ्गद ने देखा कि कोई कुछ उत्तर नहीं देता तब फिर वे बोले—हे वानरो, भला सुनो तो सही कि आप लोग बलवानों में श्रेष्ठ और दृढपराक्रमी हैं, नामी कुल में आप उत्पन्न हुए और निरन्तर प्रतिष्ठा प्राप्त करते गये हैं। हे वानरो, आपके जाने में कोई रुकावट हो तो मुझे यही बताइए कि कौन कितना कूद सकता है।

दोहा

अति बलिष्ठ रणधीर तुम, विदित महा संग्राम।
कहहु शक्ति निज-निज सकल, सिद्ध करहु यह काम॥

---

## ६५वाँ सर्ग

### वानरों का अपनी-अपनी शक्ति वर्णन करना

अङ्गद के वचन सुनकर वे सब यूथपति अपनी-अपनी शक्ति का वर्णन करने लगे। गज नामक यूथपति बोला—दस योजन तक फाँदने की शक्ति मुझमें है। गवाक्ष ने कहा बीस योजन मैं लाँघ सकता हूँ। शरभ ने कहा—मैं तीस योजन जा सकूँगा। ऋषभ ने चालीस योजन तक और गन्ध-मादन पचास योजन तक निःसन्देह जाना स्वीकार किया। मैन्द बोला—मैं साठ योजन तक कूदने का उत्साह करता हूँ। द्विविद ने कहा—मैं सत्तर योजन लाँघ जाऊँगा। सुषेण ने अस्सी योजन तक जाने की बात कही।

सबकी बातें और पराक्रम सुनकर जाम्बवान् बोला—पहले, अर्थात् यौवनावस्था में, मैं भी फाँदने में पराक्रमी था; परन्तु इस समय तो मैं जवानी के पार हो गया हूँ। फिर भी इस कार्य में चुपचाप बैठे रहना अनुचित है, क्योंकि इसमें श्रीराघव और सुग्रीव ने भी निश्चय कर रक्खा है। इसलिए इस घड़ी मैं नब्बे योजन जा सकता हूँ। पहले इतना ही पराक्रम मुझमें था, ऐसा मत समझना। सुनो—

बलि के यज्ञ में जब भगवान् विष्णु वामन तीन पग भूमि नापने लगे तब मैंने उनकी प्रदक्षिणा की थी। परन्तु इस घड़ी मैं वृद्ध हुआ और लाँघने में मेरा पराक्रम मन्द हो गया है। मैं अब इतना ही लाँघ सकता हूँ। किन्तु इतने से कार्यसिद्धि न हो सकेगी। जाम्बवान् की बात सुनकर अंगद ने कहा—भाइयो, मैं सौ योजन जा सकूँगा, परन्तु मैं निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकता कि फिर वहाँ से लौट सकूँगा या नहीं। अंगद की यह बात सुन जाम्बवान् बोले—हे वानरश्रेष्ठ, यद्यपि आप सौ या हजार योजन जा सकते हैं और यह जान पड़ता है कि इस कार्य में आप समर्थ हैं तथा जाकर लौट भी आ सकते हैं, परन्तु हे तात, आप मेरे भेजनेवाले हैं—आप स्वामी हैं। आपको मैं नहीं भेज सकता। ये सब वानर आपके आज्ञाकारी दूत हैं। आप हमारे लिए कलत्र की तरह रक्षणीय और स्वामी के भाव से सेव्य हैं।

यह सब सेना आपके ही वश में है। आप ही इसकी गति और इस कार्य के मूल हैं। इसलिए हम लोगों को यही उचित है कि कलत्र अर्थात् कुलवधू की तरह आपका प्रतिपालन करें। कार्य करने में जो दक्ष पुरुष हैं वे अर्थ के मूल की ही रक्षा करना उचित मानते हैं और यही नीति है; क्योंकि जो मूल बचा रहता है तो सब कार्य सिद्ध होते और फलोदय होता है। हे परन्तप! आप इस कार्य के साधन, सत्यपराक्रमी, बुद्धि-विक्रम-युक्त और इस कार्य के हेतु हैं। आप हमारे बड़े और बड़े के पुत्र हैं, इसलिए आपका अवलम्बन करके हम सब इस कार्यसाधन में समर्थ होंगे।

जाम्बवान् के ये वचन सुनकर अंगद बोले—यदि मैं न जाऊँ और कोई दूसरा वानर भी न जा सके तो फिर हमको वही प्रायोपवेशन करना चाहिए। यों कपिराज का कार्य किये बिना ही उनके पास जाकर प्राणों की रक्षा करना कठिन देख पड़ता है; क्योंकि वे राजा हैं, हमारे निग्रहानुग्रह में समर्थ हैं। बिना कार्य-साधन किये वहाँ जाने से हमारा विनाश अवश्य होगा। भाई, यह कार्य किसी प्रकार से रुक नहीं सकता, इसलिए आप इसमें अच्छी तरह विचार करें।

अंगद के वचन सुनकर जाम्बवान् बोले—हे वीर, तुम्हारे कार्य की किसी प्रकार हानि न होगी। देखो, जो अब तुम्हारा कार्य सिद्ध करेगा उसको मैं उत्साहित करता हूँ।

तोमर छन्द

एकान्त महँ तहँ दूरि।
बैठे हुते बल भूरि॥
हनुमान् पवनकुमार।
गति-बुद्धि-विक्रम-सार॥
लखि जाम्बवान् विचारि।
बोल्यो वचन निरधारि॥

---

## ६६वाँ सर्ग

### जाम्बवान् का हनुमान् की स्तुति करना

जाम्बवान् ने वानरी सेना को खिन्न देखकर हनुमान् की ओर दृष्टि की और कहा—हे सर्वशास्त्र के पंडित वानरश्रेष्ठ! तुम एकान्त में चुप मारे क्यों बैठे हो? कुछ बोलते क्यों नहीं? हे हनुमन्, तुम सुग्रीव के तुल्य हो, बल्कि तेज और बल में तो मैं तुम्हें राम और लक्ष्मण के भी तुल्य समझता हूँ। देखो, काश्यप का अरिष्टनेमि भी नाम है। उनसे विनता में उत्पन्न गरुड़ सब पक्षियों में श्रेष्ठ हैं। मैंने बहुत बार देखा है कि भक्षण करने के लिए उन्होंने समुद्र में से बहुत से भुजङ्गों को निकाल लिया है। मैं जानता हूँ कि गरुड़ के पक्षों में जैसा बल-पराक्रम है वैसा ही तुम्हारी भुजाओं में है। विक्रम और तेज में उनसे तुम कम नहीं। तुममें बल, बुद्धि, तेज और पराक्रम सब प्राणियों से अधिक है, इसलिए तुम इस कार्य में उद्यत क्यों नहीं होते? अप्सराओं में श्रेष्ठ पुञ्जिकस्थली नामक अप्सरा का दूसरा नाम अञ्जना भी है। वह केसरी नामक वानर की पत्नी थी। उसका रूप तीनों लोकों में विख्यात था। किसी शाप-वश वह वानरी के रूप को प्राप्त हुई और कुञ्जर नामक वानरेंद्र की कन्या हुई। किसी समय की बात है कि वह अञ्जना, रूप-यौवन से शोभित मनुष्य का रूप धारण किये, चित्र-विचित्र पुष्प और रेशमी कपड़े पहने पर्वत के अग्रभाग में घूम रही थी। उस विशाल नेत्रों-वाली के पीले कपड़े का किनारा लाल था। उसके कपड़े को उस समय वायु ने धीरे से हर लिया। तदनन्तर वायु ने उसकी गोल-गोल अच्छी गठनवाली जङ्घाएँ, भरे हुए सघन कुच, सुन्दर मुख, अति सुन्दर कटि-पश्चाद्भाग और

पतली कटि को देखा। देखते ही काम-मोहित होकर उसने दोनों भुजाओं को बढ़ाकर आलिङ्गन किया। उस समय वायु ऐसा काम के वश हो गया कि उसको अपने शरीर का कुछ भी चेत न था। अञ्जना के गर्भ में वायु का तेज प्रविष्ट हो गया। उस समय वह पतिव्रता स्त्री व्याकुल होकर बोली—कौन मेरे एक-पतिव्रत को नष्ट करना चाहता है? वायु ने उत्तर दिया—हे सुन्दरि, तू डर मत। मैं तुझसे सम्भोग न करूँगा। मैंने आलिङ्गन-मात्र करके जो तेरे साथ मानस सम्भोग किया इससे तेरे ऐसा वीर्यवान् पुत्र होगा जो बुद्धिमान्, महापराक्रमी, महातेजस्वी और महाबली होगा। वह लाँघने और कूदने में मेरे तुल्य होगा।

हे हनुमन, वायु के ये वचन सुनकर तुम्हारी माता प्रसन्न हुई। उसने गुफा में तुमको उत्पन्न किया। उस समय उत्पन्न होते ही तुम आकाश में उदय को प्राप्त सूर्य को देख—फल जानकर—लेने की इच्छा से आकाश में उड़े और ऊपर तीन सौ योजन तक चले गये। परन्तु सूर्य के तेज से तुमको कुछ भी बाधा न हुई। उस समय इन्द्र ने तुमको आकाश में उड़ते देख क्रुद्ध होकर वज्र मारा। तब तुम पर्वत के शिखर पर गिर पड़े। तुम्हारा बायाँ हनु, अर्थात् ठुड्डी का बाईं ओर का भाग, टेढ़ा हो गया। इसी लिए तुम्हारा नाम हनुमान् हुआ। इसके अनन्तर वायु ने तुम्हारी यह दशा देख अत्यन्त क्रुद्ध होकर तीनों लोकों से अपनी गति रोक ली। वायु के रुकने से त्रैलोक्य विकल हो गया। देवता लोग भी घबरा गये। वायु को मनाने के लिए वे उपाय करने लगे। वायुदेव जब प्रसन्न हुए तब ब्रह्मा ने तुमको वर दिया कि संग्राम में किसी शस्त्र से तुम्हारा घात न होगा। अब इन्द्र ने देखा कि तुमको न तो वज्र के द्वारा कुछ पीड़ा हुई और न उतने ऊपर से गिरने से ही। इससे प्रसन्न होकर उन्होंने वर दिया कि तुम जब चाहोगे तभी मृत्यु होगी अन्यथा नहीं। सो हे महावीर, तुम केसरी के क्षेत्रज भीमपराक्रमी पुत्र और मारुत के औरस पुत्र हो। तेज में भी तुम वायु के समान हो। हे वत्स! तुम वायु के पुत्र हो। गति-वेग में भी तुम उन्हीं के समान हो। देखो, इस घड़ी हम सब गतप्राण हो रहे हैं। हम लोगों के बीच तुम चातुर्य और पराक्रम से सम्पन्न दूसरे सुग्रीव ही हो। देखो, वामन के पृथ्वी नापने के समय मैंने इस सम्पूर्ण पृथ्वी की २१ बार प्रदक्षिणा की। देव की आज्ञा से मैंने अनेक ओषधियाँ इकट्ठी कीं। उन ओषधियों को समुद्र में डालकर देवताओं ने उसको मथा और अमृत पाया। उस घड़ी मुझमें बड़ा बल था। मैं इस समय वृद्ध हूँ, मेरा पराक्रम भी हीन हो गया है। अब हमारे वीर वानरों में तुम सब गुणों से पूर्ण हो। इस समय अपने पराक्रम से तुम बढ़ो, क्योंकि तुम लाँघने-वालों में उत्तम हो। यह सम्पूर्ण वानरी सेना तुम्हारे पराक्रम को देखना चाहती है। हे कपिश्रेष्ठ, उठो और इस समुद्र को लाँघो, क्योंकि तुम्हारी गति सब प्राणियों की गति से श्रेष्ठ है। हे हनुमन्, यह वानरी सेना सुस्त हो रही है, तुम चुपचाप क्यों हो? देखो, जैसे भगवान् विष्णु तीन पग नापने के लिए बढ़े थे वैसे तुम भी बढ़ो।

दोहा

जाम्बवान् के वचन सुनि, हनूमान रणधीर।
अति विशाल निज रूप करि, हर्षायो कपिवीर॥१॥

---

## ६७वाँ सर्ग

### हनुमान्-कृत अपने पराक्रम का वर्णन

हनुमान् को सौ योजन लाँघने के लिए उद्यत और वेग से पूर्ण देखकर सब वानरों ने शोक करना छोड़ दिया। वे आनन्दसूचक शब्द और हनुमान् की स्तुति करने लगे। उन सबको अत्यन्त आश्चर्य हुआ क्योंकि उस समय हनुमान् का ऐसा रूप हो गया जैसा तीन पैर नापते समय श्रीवामन का हो गया था। अब स्तुति किये जाने पर हनुमान् बढ़े और अपनी पूँछ को हर्ष से झटककर बल को प्राप्त हुए। उस घड़ी तेज से वे ऐसे भर गये कि उनके रूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। कन्दरा में बैठा हुआ सिंह जैसे फूलता है उसी तरह हनुमान् उस समय विशाल रूप से फूलने लगे। जँभाते समय उनका मुँह धकधकाते भाड़ की तरह और बिना धुएँ की आग के ढेर की तरह देख पड़ा। अब उन वानरों के बीच से हनुमान् आनन्द से रोमाञ्चित हो उठ खड़े हुए और बूढ़े वानरों को प्रणाम कर बोले—देखो अग्नि का मित्र आकाशचारी वायु पर्वत के शृंगों को हिला देता है। वह बलवान्, अप्रमेय, शीघ्र-वेगवान् और शीघ्र-गमन-शील है। मैं उसी का औरस पुत्र हूँ। लाँघने-फाँदने में भी मैं उसके तुल्य हूँ। आकाश को स्पर्श करनेवाले विशाल मेरु तक की मैं हजार बार प्रदक्षिणा करने का उत्साह रखता हूँ। अपनी भुजाओं के वेग से समुद्र को हिलाकर सम्पूर्ण लोक को—पहाड़ों-नदियों समेत—डुबो देने की मुझमें शक्ति है। मेरी जङ्घाओं और घुटनों के वेग से यह वरुणालय समुद्र बड़ी-बड़ी तरंगें फेंकेगा। इसके प्राह ऊपर को उठ आवेंगे। सर्पभोजी गरुड़ आकाश में जितनी देर में एक बार जाते हैं उतनी ही देर में मैं हजार बार जा सकता हूँ। उदयाचल से निकले प्रकाशमान सूर्य के निकट—उनके अस्त न होते-होते—पहुँचने का मैं उत्साह करता हूँ। हे वानरो! फिर भूमि का स्पर्श किये बिना ही मैं सभी आकाश-चारी, ग्रह, नक्षत्र आदि को लाँघ सकता हूँ। मैं समुद्रों को सोख डालूँगा, पृथ्वी को विदीर्ण कर डालूँगा और पर्वतों को चूर कर डालूँगा। लाँघने के समय मैं अपनी जङ्घाओं के वेग से समुद्र को खींच ले जा सकता हूँ। और जब मैं आकाशमार्ग में उड़कर चलूँगा तब लताओं और वृक्षों के पुष्प मेरे पीछे उड़ते चलेंगे। मेरी गति का मार्ग आकाश में छायापथ के सदृश देख पड़ेगा। घोर रूप किये और आकाश में उड़ते मुझे सब प्राणी देखेंगे। हे वानरो, महामेरु के सदृश मेरा रूप देखो। मैं आकाश में फैलकर मानो आकाश का ग्रास करता हुआ चलूँगा। मैं मेघों को फाड़ूँगा, पर्वतों को कम्पित करूँगा और समुद्र को सुखा दूँगा। देखो, इस प्रकार जाने की शक्ति या तो गरुड़ की है या मेरी है किंवा वायु की है। गरुड़ या वायु को छोड़ ऐसा कोई जीव नहीं जो मेरे तुल्य गमन कर सके। देखो, मैं एक पल में इस निरालम्ब आकाश में उड़ जाऊँगा, जैसे मेघ से झटपट बिजली निकल पड़ती है। उड़ते समय मेरा रूप त्रिविक्रम भगवान् वामन के तुल्य हो जायगा। हे वानरश्रेष्ठो, तुम लोग आनन्द करो। मैं अवश्य सीता को देखूँगा; क्योंकि मेरी बुद्धि और मेरा मन ऐसा विश्वास करता है। मेरी चेष्टा भी उसी प्रकार की हो रही है। देखो, मैं वेग में वायु के और शीघ्रता में गरुड़ के तुल्य हूँ। मैं ऐसा उत्साह करता हूँ कि अयुत अर्थात् दस हजार योजन लाँघूँगा। मैं इतना उत्साह रखता हूँ कि वज्रधारी इन्द्र के या स्वयंभू ब्रह्मा के हाथ से, परा-

क्रम करके, अमृत हर ले आऊँ अथवा लङ्का को उखाड़कर लेता चला आऊँ।

इस प्रकार गरजते हनुमान् की ओर सब वानर लोग विस्मित होकर देखने लगे। वे सब अत्यन्त प्रसन्न हुए।

हनुमान् के वचन जातिवालों के शोक को दूर करनेवाले थे। उनको सुनकर जाम्बवान् फिर बोले—हे केसरी-पुत्र, वेगवान, वायुतनय! तुमने हमारे इस शोक का नाश किया। देखो, तुम्हारे कल्याण की इच्छा करनेवाले ये मुख्य वानर लोग अर्थ-सिद्धि के लिए मंगलाचार करेंगे। ऋषियों के प्रसाद से, वृद्ध कपियों की अनुमति से और गुरु लोगों के प्रसाद से तुम इस समुद्र को लाँघो। जब तक तुम न आओगे तब तक हम सब एक पैर से खड़े रहेंगे। वानरों का जीवन तुम्हारे ही अधीन है।

हनुमान् बोले—इस लोक में ऐसा कोई नहीं जो मेरे कूदने के वेग को थाम सके; परन्तु इस महेन्द्राचल के शिखर की शिलाएँ स्थिर और विशाल हैं। मैं इसी पर से लाँघने के वेग का आरम्भ करूँगा। इन शिखरों पर नाना वृक्ष हैं और नाना धातुएँ भरी हैं। ये शिखर मेरे वेग को धारण करेंगे।

यह कहकर हनुमान् शृङ्गों से ऊँचे महेन्द्र पर्वत पर चढ़कर घूमने लगे। वह पर्वत नाना प्रकार के पुष्पों से पूर्ण और नित्य फूलने-फलनेवाले वृक्षों से शोभित सिंह-शार्दूलों से और मत्त मतङ्गजों से सेवित था। वह पक्षियों से नादित तथा झरनों से मनोहर था। उस समय कूदने के लिए हनुमान् ने दोनों भुजाओं से उस पर्वत को ऐसा दबाया कि वह महागजेन्द्र की भाँति गरज उठा। उसमें से जल के फुहारे छूटने लगे। उस पर जो मृग, हाथी आदि थे वे सब डर गये। उसके शृंगों की शिलाएँ चूर-चूर होकर उड़ गईं। सब वृक्ष काँपने लगे। पान और मैथुन में बड़े आसक्त गन्धर्व स्त्री-पुरुष, विद्याधरों के समूह और पक्षिगण, ये सब उस पर्वत को छोड़ आकाश-मार्ग से उड़ चले। उस समय हनुमान् के वेग से दबा हुआ वह पर्वत आधे निकले और हाँकते भुजंगों द्वारा पताकाओं से भूषित-सा देख पड़ता था। जो ऋषि लोग उस पर तपस्या करते थे उन्होंने डरकर पर्वत को छोड़ दिया। उस घड़ी वह पर्वत ऐसा देख पड़ता था जैसे कोई पथिक साथियों के छूट जाने से बड़े जंगल में जा पड़ा हो।

दोहा

करि विचार दृढ़ वारिनिधि, लाँघन को कपि-वीर।
मन ते गवने लङ्क महँ, वायुतनय रणधीर॥
यहि विधि जेहि के दूत कर, अतुलित तेज विशाल।
विविध ताप छय हेतु नित, तेहि प्रणमत गोपाल॥
अनूदितोऽयं किष्किन्धाकाण्डो गोपालशर्मणा।
बालि सुग्रीवचरितसीतान्वेषणपूरितः॥*

* बालि-सुग्रीव के चरित और सीता के ढूँढने की बातों से भरे हुए इस किष्किन्धाकाण्ड का गोपाल शर्मा-कृत अनुवाद समाप्त हुआ।

किष्किन्धाकाण्ड समाप्त

श्रीरामचन्द्राय नमः

# श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

( हिन्दीभाषानुवाद )

## सुन्दरकाण्ड

### भाषान्तरकार-कृत मङ्गलाचरण

श्लोकः

श्रीमत्काञ्चनरत्नभूषितगृहां लङ्कां समासाद्य यः
पुच्छावेशितदग्धगौरवयुतश्रीहव्यावाहा द्रुतम् ॥
भस्मीकृत्य निहत्य राक्षसगणं दृष्ट्वा विदेहोद्भवाम्
पृष्ट्वा नाम यमागतोऽपरतटं तं वायुसूनुं भजे ॥ १ ॥

षट्पद

रघुपति-चरित-उदारकथामृतसिन्धुविगाहम् ।
कलधौताचलसदृशरुचिरतनुमतिपरिणाहम् ॥
रक्षोधिपवनसैन्यनगरसुतदाहहुताशम् ।
अङ्गदादिकपिवीरभीतिहरबुद्धिविकाशम् ॥
श्रीदशरथसुतहरिपदयुगे विदितभक्तमतिनागरम् ।
तं नौति नुतं मारुतसुतं गोपालोप्यतिसागरम् ॥ २ ॥

# पहला सर्ग

## वीर हनुमान् का समुद्र लाँघना

श्रीहनुमान् आकाश-मार्ग से सीता के खोजने के लिए तत्पर हुए। इस प्रकार का दुष्कर कर्म करने की इच्छा करते हुए वे अपने मस्तक और गले को ऊँचा किये उस पर्वत की हरित्तृणमय भूमि पर घूमने लगे। उस समय वे पक्षियों को त्रास देते और छाती के वेग से अनेक वृक्षों को उखाड़ते थे। ऐसा करते हुए वे ऐसे देख पड़ते थे जैसे मृगों को मारनेवाला बाड़ा भयङ्कर सिंह हो। वह पर्वत नीले, लाल, मँजीठ और कमल के रङ्ग के तथा सफेद-काले रंग के स्वभाव-सिद्ध धातुओं से भूषित था। उस पर देवताओं के तुल्य कामरूपी यक्ष, किन्नर और गन्धर्व थे। नाग भी अपनी तैयारी के साथ वहाँ सदा रहते थे। उस पर्वत पर खड़े श्रीहनुमान् की ऐसी शोभा देख पड़ती थी जैसे किसी जलाशय में खड़े गजेन्द्र की होती है।

अब श्रीहनुमान् ने सूर्य, महेन्द्र, वायु, ब्रह्मा और अन्यान्य देवगणों को नमस्कार करके यात्रा करने की इच्छा की। इसके अनन्तर वे फिर पूर्वमुख हो हाथ जोड़, अपने पिता वायु को प्रणाम करके, दक्षिण दिशा की ओर जाने के लिए बढ़े। उस समय सारे वानर हनुमान् की ओर एक दृष्टि से देख रहे थे और हनुमान्जी कूदने के लिए उत्साह कर रहे थे। राम की कार्य-सिद्धि के लिए वे ऐसे बढ़ते जाते थे जैसे पर्व-काल में समुद्र बढ़ता है। हनुमान ने बड़ा विशाल शरीर बनाकर कूदने के समय दोनों भुजाओं और चरणों से पर्वत को ऐसा दाबा कि वह मुहूर्त्त भर काँपता रहा। उसके ऊपर के वृक्षों के सब फूल झड़कर नीचे गिर पड़े। उन फूलों की ढेरियों से वह पर्वत ऐसा देख पड़ता था मानो फूलों से ही बना हो। हनुमान् की दाब से उस पर्वत से जल की धाराएँ ऐसे निकल पड़ीं जैसे मतवाले हाथी के शरीर से मद बहता है। वैसे ही, उस पर्वत से अनेक धातुओं की धाराएँ बह निकलीं जैसे कोई पिघलाया हुआ सुवर्ण, कज्जल और चाँदी बहा दे। उस पर्वत ने मैनसिल-सहित अनेक विशाल शिलाओं को इधर-उधर से फेंक दिया जैसे अग्नि बीच की ज्वाला के साथ धुवाँ देने लगे। महावीर के पीड़न से कन्दराओं के रहनेवाले जन्तुओं ने घबराकर बड़ा विकराल शब्द किया। उन जीवों का घोर शब्द सम्पूर्ण पृथ्वी, दिशाओं और जंगलों में भर गया। उस समय पर्वत में रहनेवाले बड़े बड़े नाग—जिनके मस्तक पर प्रत्यक्ष स्वस्तिकचिह्न देख पड़ते थे—क्रोध करके मुख से अग्नि उगलने और पर्वत की शिलाओं को दाँतों से काटने लगे। उन क्रुद्ध महाविषधरों से काटी जाने पर वे शिलाएँ जलने लगीं। उनके हजारों टुकड़े हो गये। उस पर्वत पर ऐसी-ऐसी ओषधियाँ थीं जो साँपों के विष का नाश कर सकती थीं किन्तु वे भी उस विष को शान्त न कर सकीं। उस पर्वत पर रहनेवाले तपस्वी और विद्याधर लोग अपनी स्त्रियों के साथ आकाश-मार्ग से उड़ चले; क्योंकि उन लोगों ने समझा कि इस पर्वत को ब्रह्मराक्षस इत्यादि भूत तोड़-फोड़ रहे हैं। उन लोगों की उस समय यह दशा हुई कि वे सब चीज जहाँ की तहाँ छोड़कर भाग खड़े हुए। पान-भूमि में जो सुवर्ण के आसन और बड़े-बड़े मोल के पात्र, सोने के करवे, अनेक प्रकार के लेह्य तथा भोजन की वस्तुएँ, अनेक भाँति के मांस, साबर के चमड़े की बनी ढाल और सुवर्ण की मूठवाले सुन्दर-सुन्दर खड्ग थे, उन सब पदार्थों को जहाँ का तहाँ पड़ा रहने दिया। अपनी-अपनी जान लेकर उन्होंने आकाश का मार्ग लिया।

वे लोग मतवाले थे; गले में अच्छी-अच्छी मालाएँ पहने हुए थे। वे सुन्दर-सुन्दर पुष्पों के हारों और मनोहर अंगरागों से भूषित थे। उनकी स्त्रियाँ हार, नूपुर, बिजायठ और कंकण पहने थीं। वे अत्यन्त आश्चर्य करके अपने-अपने पतियों के पास जाकर आकाश में ठहर गईं। अब विद्याधर और महर्षि लोग अपनी-अपनी महाविद्या को दिखलाते, आकाश में खड़े होकर, पर्वत की ओर देखने लगे। महात्मा ऋषियों के मुँह से वे शब्द सुनते थे कि देखो ये पर्वताकार हनुमान् बड़े वेग से समुद्र को लाँघना चाहते हैं। देखो, ये वीर वानर श्रीरामचन्द्र के और वानरों के लिए ऐसा भारी काम करने का मन में निश्चय कर उस समुद्र के पार जाना चाहते हैं जो दुःख से पार करने योग्य है।

उन तपस्वियों की यह वाणी सुनकर विद्याधर लोग उस अप्रमेय वानरश्रेष्ठ को पर्वत पर देखने लगे। उस समय पावकोपम हनुमान् ने अपने शरीर के रोमों को झरझराकर अपनी देह को हिलाया। वे बड़े मेघ की नाईं महाशब्द से गरजे। उनकी पूँछ चढ़ाव-उतार के क्रम से गोल और रोमों से भरी थी। उसको उन्होंने ऐसा झटकारा जैसे गरुड़ साँप को झटकारता है। उस समय वह पूँछ ऐसी देख पड़ती थी जैसे गरुड़ पक्षी साँप को पकड़े लिये जाता हो। कपि ने दोनों भुजाओं को जमाकर कटिस्थान पर दोनों पैरों का बल दिया और सिकोड़ लिया; फिर दोनों भुजाओं और ग्रीवा को संकुचित कर तेज, बल और पराक्रम को सँभालकर दूर से गमन-मार्ग को देखा। उन्होंने ऊपर दृष्टि कर आकाश को देख अपने प्राणवायु को हृदय में रोका और चरणों को भूमि पर दृढ़ता से जमाकर दोनों कानों को सिकोड़ लिया। उछलने के समय उन्होंने वानरों से कहा—देखो, जैसे राम का बाण वायुवेग से चलता है वैसे ही मैं लंका में जाऊँगा; और यदि लंका में सीता न मिलेंगी तो इसी वेग से देवलोक की यात्रा करूँगा। जो कदाचित् वहाँ भी सीता न मिलीं तो राक्षसराज रावण को बाँधकर ले आऊँगा और मैं तो सब तरह जानकी को ले कृतकार्य होकर ही लौटूँगा। अथवा रावण-सहित लंका को ही उखाड़ लाऊँगा।

बस, श्रीहनुमान् वहाँ से वेग से उड़े। उन्होंने अपने को गरुड़ के तुल्य समझा। उस समय हनुमान् के उड़ते ही उस पर्वत के वृक्ष बड़े वेग से अपनी शाखा और पत्रों-सहित चारों ओर से इनके पीछे उड़े। पुष्पों से लदे उन वृक्षों पर अनेक प्रकार के पक्षी थे। ऐसे वृक्षों को अपनी जंघाओं के वेग से लिए हुए हनुमान् विमल आकाश में उड़ चले। कपि की जंघाओं के वेग से उड़े हुए वे वृक्ष मुहूर्त्त-मात्र उनके पीछे-पीछे गये, जैसे दूर देश को जाते बन्धु के पीछे उसके बन्धुगण जाते हैं। शाल के वृक्ष उनके पीछे ऐसे चले जाते थे जैसे राजा के पीछे-पीछे सेना जाती हो। उस समय बहुत से पुष्पित वृक्षों से संयुक्त पर्वताकार श्रीहनुमान् का अद्भुत रूप देख पड़ता था। जो भारी-भारी वृक्ष थे वे समुद्र में गिरकर इस तरह डूब गये जैसे इन्द्र के भय से पर्वत डूब गये थे। उन वृक्षों के पुष्पों, अंकुरों और कलियों से मेघसदृश कपिराज की ऐसी शोभा हो रही थी जैसे जुगनू से घेरे हुए पर्वत की होती है। कपि के वेग से छूटने पर उन वृक्षों के पुष्प झड़ गये और वे तितर-बितर हो समुद्र के जल में गिर गये, जैसे बन्धुजन को पहुँचाकर सुहृद् लोग अपने घर लौट आते हैं। वृक्षों के जो अनेक प्रकार के पुष्प कपि के वायुवेग से पीछे-पीछे उड़ते चले आये थे वे अपने हलकेपन के कारण समुद्र में गिर गये। अनेक रंगों के सुगन्धयुक्त पुष्प-समूहों के द्वारा कपि की ऐसी शोभा हुई जैसे बिजलियों

के समूहों से भूषित उमड़े हुए मेघ की होती है। उन पुष्पों के बिछ जाने से समुद्र का जल मनोहर तारागणों से पूर्ण आकाश की नाईं शोभा देता था। उस समय आकाश में फैली हुई हनुमान् की भुजाएँ पर्वत के अग्र-भाग से निकले पाँच मुखवाले दो साँपों की भाँति शोभा देती थीं। जब हनुमान् नीचे मुख करके चलते थे तब यह जान पड़ता था कि वे तरंगयुक्त समुद्र को पी लेंगे और जब ऊपर मुख करके चलते थे तब ऐसा समझ पड़ता था कि आकाश को पी लेना चाहते हैं। वायु-मार्ग से गमन करते हुए हनुमान् के नेत्र बिजली के सदृश चमकते ऐसे देख पड़ते थे जैसे पर्वत पर दावानल लगा हो। वे नेत्र पिंगल-वर्ण के और विशाल मण्डलवाले थे। वे चन्द्र-सूर्य के सदृश प्रकाशित हो रहे थे। कपिराज का मुख रक्तनासिका-युक्त और रक्तवर्ण का था। वह ऐसा शोभमान देख पड़ता था जैसे सन्ध्या की लाली से युक्त सूर्य का मण्डल शोभा देता है। उस समय उनका पुच्छ आकाश में इन्द्र के ऊँचे ध्वज की नाईं विराजता था। जब कभी वे उसको मण्डलाकार कर लेते थे तब मुख के सफेद दाँतों के साथ उनकी ऐसी छवि देख पड़ती थी मानो सूर्य में मण्डल पड़ा है। उनका कमर के पीछे का हिस्सा ऐसा लाल देख पड़ता था मानो पर्वत में गेरू की खान खोल दी गई है। उस समय गमनवेग से हनुमान् की दोनों बगलों में वायु का ऐसा शब्द होता था मानों मेघ गरज रहा हो। वेगवान् कपि उस समय ऐसे देख पड़ते थे जैसे उत्तर दिशा से एक बड़ा भारी अग्नि का लुक्क, छोटे लुक्क से संयुक्त होकर, दक्षिण की ओर चला जाता हो। सूर्य-सदृश महाविशाल कपिवर कमर कसे हुए आकाश में महागजेन्द्र की भाँति देख पड़ते थे। ऊपर तो उनका शरीर था और समुद्र के जल में शरीर की छाया थी। इन दोनों के मिलने से ऐसी शोभा हो रही थी मानों वायु के जोर से नौका खिंची जा रही हो। वह महाकपि समुद्र के जिस-जिस स्थान में पहुँचते थे वहाँ समुद्र का भाग उद्वेगयुक्त सा देख पड़ता था। वे पर्वत के तुल्य अपने वक्षःस्थल से समुद्र के तरंग-समूहों को धक्का देते उड़े जाते थे। एक तो कपि के गमन-वेग का वायु और दूसरा मेघ-मण्डल से निकला वायु, ये दोनों उस महा गरजते हुए समुद्र को अत्यन्त कम्पित करते थे। इस प्रकार वे महावीर समुद्र की तरंगों को फाड़ते क्या जाते थे ऐसा जान पड़ता था मानो आकाश तथा भूमि को अलग करते जा रहे हैं। मेरु और मन्दराचल के सदृश महातरंगों को लाँघते वे ऐसे उड़े जाते थे मानो उनको गिनते जाते हों। कपि के वेग से ऊपर को उड़ा हुआ जल—मेघ-पथ-पर्यन्त आकाश में जाकर—शरत्काल के मेघों की नाईं शोभा देता था। समुद्र के तिमि, नाके, मत्स्य और कछुए जल से बाहर ऐसे देख पड़ते थे जैसे वस्त्र के खींच लेने से मनुष्यों के शरीर खुले हुए देख पड़ते हैं। समुद्र में रहनेवाले सर्पों ने कपि को आकाश में उड़ते देखकर जाना कि ये गरुड़ चले जाते हैं। उस समय हनुमान् की छाया समुद्र के जल पर दस योजन चौड़ी और तीस योजन लम्बी देख पड़ती थी। वह छाया सफेद मेघ से मिश्रित अनेक वर्णों के मेघ-खण्डों के तुल्य शोभा पाती थी। उस निरालम्ब वायुमार्ग में उड़े जा रहे हनुमान् पक्षधारी पर्वत की नाईं दिखाई देते थे। समुद्र के जिस मार्ग से वे चले जाते थे वह परनाले की तरह हुआ जाता था। इस प्रकार पक्षियों के मार्ग में गरुड़ की नाईं चले जाते हनुमान् मेघ-समूहों को इस तरह खींचते थे जैसे वायु खींचता है। कपि के वेग तथा गति से खिंचे जाते मेघगण सफेद, लाल, नील और मँजीठ के रङ्ग के अत्यंत शोभित हो रहे थे। कहीं तो वे महावीर मेघों में छिप जाते

और कहीं प्रकट हो जाते थे, इससे वे बादलों में चन्द्र की नाईं देख पड़ते थे। उस समय हनुमान् को जाते देख देव, गन्धर्व और दानव पुष्पों की वृष्टि करने लगे। उस समय हनुमान् को सूर्य अपनी किरणों द्वारा तपाते नहीं थे; और श्रम को दूर करनेवाला वायु उनकी सेवा में तत्पर था; क्योंकि ये सभी राम के कार्य की सिद्धि में तत्पर थे। ऋषि, देव और गन्धर्व हनुमान् की स्तुति करते थे। नाग, यक्ष और अनेक प्रकार के राक्षस उनको आकाश-मार्ग में श्रमरहित जाते देख प्रशंसा कर रहे थे।

उस समय उनको उड़ते देख समुद्र ने इक्ष्वाकु के कुल को आदर देना चाहा। वह मन में सोचने लगा कि यदि मैं श्री हनुमान् की इस समय कुछ सहायता न करूँगा तो सभी प्राणी मेरी निन्दा करेंगे; क्योंकि इक्ष्वाकुवंश के नाथ सगर ने ही मेरी वृद्धि की थी और यह कपि इक्ष्वाकु-वंशी श्रीराम का मन्त्री है। इसको किसी प्रकार का क्लेश न होना चाहिए। इसलिए मुझे ऐसा उपाय करना चहिए जिसमें कपि को विश्राम मिले; और मेरे यहाँ विश्राम करके यह समुद्र के पार हो जाय। मन में यह सोचकर हिरण्यनाभ अर्थात् सुवर्णमय मैनाक पर्वत से समुद्र ने कहा—हे मैनाक पर्वत, इन्द्र ने पातालवासी दैत्यों को रोकने के लिए तुमको यहाँ पर एक परिघ के तुल्य स्थापित कर दिया है। इन्द्र को उन दैत्यों का पराक्रम ज्ञात है। तुम पाताल का द्वार इसलिए रोके रहते हो जिसमें ये लोग फिर ऊपर न निकल आवें। हे शैल, तुममें ऊपर-नीचे और बेड़े बढ़ने का सामर्थ्य है इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम उठो। देखो, ये कपिश्रेष्ठ तुम्हारे ऊपर आते ही हैं। इनके श्रम की ओर दृष्टि करके तुम अपना उठना उचित समझो। ये श्रीराम का काम करने जा रहे हैं।

महा-वृक्षों और लताओं से भरा हिरण्यनाभ पर्वत समुद्र के वचन सुनकर जल के ऊपर प्रकट हो गया। पानी के ऊपर वह अत्यंत ऊँचा देख पड़ा। उस घड़ी वह ऐसा निकल पड़ा मानो मेघ-मण्डल को फाड़कर सूर्यदेव निकल आये हों। उस पर्वत ने समुद्र की बात मानकर क्षणभर में अपने शृंगों को ऊपर निकाल दिया। किन्नरों और बड़े-बड़े सर्पों से भरे उसके सुवर्णमय शृङ्ग उदयकाल के सूर्य-तुल्य प्रकाशमान थे। वे बहुत ऊँचे थे। उन शृंगों की कान्ति से आकाश सुवर्णमय देख पड़ने लगा। उस समय अत्यन्त प्रकाशयुक्त सुवर्णमय शृङ्गों-द्वारा उस पर्वत की शोभा सौ सूर्यों के तुल्य हुई। समुद्र में अकस्मात् आगे उठ खड़े हुए उस पर्वत को देख हनुमान् ने समझा कि यह एक विघ्न हुआ। तब कपि ने अपनी छाती के धक्के से उसको गिरा दिया जैसे वायु मेघों को हटा देता है। इस प्रकार से गिराया हुआ वह पर्वत कपि के उस वेग को समझ-कर हर्षित हुआ और गरजा। मनुष्य का रूप धरकर वह अपने शिखर पर खड़ा हो गया और उड़े चले जाते हनुमान् से बड़ी प्रसन्नता से बोला—हे वानरश्रेष्ठ, यह आपने बड़ा कठिन काम किया कि मुझे गिरा दिया। अब आप मेरे शिखरों पर आइए और विश्राम करके सुख से जाइए। देखो, यह समुद्र राघव के पूर्वपुरुषों द्वारा बढ़ाया गया है और आप राम के हित में तत्पर हैं, इसलिए यह समुद्र आपका सत्कार करना चाहता है; क्योंकि उपकारी का उपकार करना सनातन धर्म है। यह उसका बदला देना चाहता है, इसलिए आपसे आदर पाने के योग्य है। आपके लिए समुद्र ने मुझसे आदर-पूर्वक कहा कि देखो ये कपि सौ योजन जाने के लिए आकाश में उड़े हैं, सो तुम्हारे शिखरों पर विश्राम करके ये शेष मार्ग की यात्रा करें। हे कपि-श्रेष्ठ, तनिक

ठहरिए और मेरे वृक्षों के स्वादिष्ठ फलों तथा सुगन्धित कन्दमूलों का भोजन करके विश्राम कीजिए, इसके बाद चले जाइए। हे मुख्य कपे, हमारा-आपका सम्बन्ध भी तीनों लोकों में प्रसिद्ध और महागुणयुक्त है। देखो, वेगवन्त और उड़नेवाले जितने वानर हैं उन सबमें आपको मैं मुख्य समझता हूँ। ज्ञानवान् और धर्म को चाहनेवालों के लिए तो एक क्षुद्र अतिथि भी पूजा के योग्य है। फिर आप जैसे अतिथि की क्या बात है। आप तो महात्मा वायु के पुत्र हैं और वेग में भी आप उन्हीं के सदृश हैं। इसलिए आपकी पूजा करना मानो वायु की पूजा करना है। आप पूजनीय हैं, एक इसमें कारण भी है। उसे सुनिए—

पहले सत्ययुग में सभी पर्वत पक्षधारी थे। वे गरुड़ की भाँति दिशाओं में बड़े वेग से उड़ते थे। तब उनके उड़ते समय देवता और ऋषि लोग इसलिए अत्यन्त भयभीत हुए कि क्या जाने ये कहाँ गिर पड़ें। इसलिए इन्द्र ने अपने वज्र से उनके पक्षों को काटना प्रारम्भ किया। सैकड़ों हजारों पर्वतों के पक्षों को उन्होंने छाँट डाला। इसके बाद देवराज ने मेरे पक्षों को भी काटने की इच्छा से वज्र उठाया। जब वे मेरे पास पहुँचे तब वायु ने मुझे वेग से उठाकर इस समुद्र में डाल दिया और इस तरह मेरे पक्ष बच गये। इस तरह आपके पिता ने ही मुझे बचाया है। अतएव आप मेरे मान्य हैं। मैं आपका सत्कार करना चाहता हूँ। इस प्रकार हमारा-आपका सम्बन्ध है। इसलिए आप इस सागर की और मेरी प्रीति को रखिए; प्रसन्न होकर अपने श्रम को दूर करके इस पूजा को स्वीकार कीजिए। आप के दर्शन से मैं बहुत प्रसन्न हूँ।

मैनाक का यह वचन सुनकर हनुमान् बोले—हे शैल, मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। मेरा सत्कार हो चुका। अब आप अपने मन में किसी बात का खेद न कीजिए। मुझे कार्य की शीघ्रता है, क्योंकि दिन बीते जाते हैं। मैं प्रतीज्ञा कर चुका हूँ, इसलिए मैं बीच में कहीं ठहर नहीं सकता। यह कह कर हनुमान् उस पर्वत को हाथ से छूकर प्रसन्नता से मुसकुराते हुए फिर आकाश में उड़े। उस समय वह पर्वत और समुद्र बहुत आदर से कपि की ओर देखने, आशीर्वाद देने और अनुमोदन करने लगे।

अब हनुमान ने ऊपर आकाश में बढ़कर अपने पिता वायु के मार्ग का अवलम्बन किया। वे उस पर्वत की ओर देखते हुए निरालम्ब उड़ चले। हनुमान का यह दूसरा कर्म्म देख देव, सिद्ध और महर्षि लोग प्रशंसा करने लगे। देवता अत्यन्त हर्षित हुए। उस समय इन्द्र अति सन्तुष्ट होकर गद्गद वाणी से बोले—हे हिरण्यनाभ पर्वत, मैं तुम पर बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट हुआ। मैं तुमको अभय देता हूँ। तुम सुखपूर्वक रहो, क्योंकि सौ योजन लाँघने में तत्पर हनुमान की तुमने बड़ी सहायता की। यद्यपि ये निर्भय हैं तथापि तुमने अपनी बुद्धिपूर्वक, समय की भाँति, इनका सत्कार किया। हे पर्वतेन्द्र, देखो, ये कपि रामचन्द्र के हित के लिए जाते हैं और तुमने इनका यथाशक्ति आतिथ्य किया, इससे मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ।

इन्द्र की यह बात सुनकर वह पर्वत अत्यन्त हर्षित हुआ और इस प्रकार का वर पाकर स्थिर हुआ। हनुमान् भी मुहूर्त्त भर में बहुत दूर निकल गये। इसके अनन्तर देव, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि लोग सूर्य के तुल्य तेजस्विनी सुरसा नामक नागमाता से बोले—देख, यह वायु का पुत्र हनुमान समुद्र के ऊपर उड़ता चला जाता है; तू मुहूर्त्त-मात्र उसके कार्य में विघ्न कर और राक्षसी के तुल्य अपना रूप भयंकर और पर्वताकार

बना ले; अपने कराल दाँत और पिङ्गल नयन बनाकर मुख को ऐसा फाड़ कि आकाश को स्पर्श करे। ऐसी आकृति बनाकर तू इसको भय दिखला। हम सब इस कपि के पराक्रम को फिर देखना चाहते हैं। या तो यह उपाय से तुझे जीतेगा अथवा खिन्न हो जायगा।

देवताओं ने जब सत्कारपूर्वक यह प्रार्थना की तब वह सुरसा अपने रूप को विकराल और भयङ्कर बनाकर समुद्र के बीच में आई और हनुमान् को रोककर बोली—हे वानरश्रेष्ठ, देवताओं ने तुमको मेरा भक्ष्य बनाया है इसलिए मैं तुमको भक्षण करूँगी। आओ, मेरे मुख में प्रवेश करो। ब्रह्मा ने मुझे यह वर पहले ही दिया है।

अब सुरसा अपना मुँह फैलाकर कपि के आगे खड़ी हो गई। हनुमान् ने प्रसन्नमुख होकर उससे कहा—देख, दशरथ के पुत्र रामचन्द्र दण्डकारण्य में आये थे। उनके साथ उनके भाई लक्ष्मण और वैदेही भार्या भी थी। ये मृगया में तत्पर थे। सो वैर के कारण रावण इनकी भार्या को हर ले गया। मैं रामचन्द्र का दूत हूँ। उनकी आज्ञा से मैं सीता के पास जाता हूँ। तू भी उन्हीं के देश में रहती है, इसलिए तुझे भी उनकी सहायता करनी चाहिए; अथवा मुझे सीता को देखकर राम को सन्देश सुना आने दे, फिर मैं तेरे मुख में आकर प्रवेश करूँगा। यह मैं सच-सच कहता हूँ।

यह सुनकर सुरसा बोली—मेरे भक्षण का उल्लङ्घन किसी प्रकार नहीं हो सकता। पहले ऐसा ही वर मुझे ब्रह्मा ने दिया है। यह कहकर वह शीघ्रता से विकराल मुँह फैलाकर कपि के समीप खड़ी हो गई। यह चमत्कार देख हनुमान् क्रुद्ध होकर बोले—अच्छा, तू अपना मुँह ऐसा कर जिसमें हम समा सकें। यह कहकर और उसके दश योजन विस्तृत मुँह को देख हनुमान् भी दश योजन के विशाल हो गये। अब सुरसा ने अपना मुँह बीस योजन का कर लिया। तब इतने बड़े भयङ्कर, नरक के सदृश और बड़ी लम्बी जिह्वा से युक्त फैले हुए मुख को देखकर हनुमान् तीस योजन के हो गये। इस पर सुरसा ने अपना मुँह चालीस योजन का कर लिया। तब कपि ने अपना आकार पचास योजन का किया। इसके बाद सुरसा ने साठ योजन तक अपना मुँह फैलाया। उसको देखकर वायुपुत्र सत्तर योजन के हो गये। फिर नागमाता ने अस्सी योजन का अपना मुँह फाड़ा तब हनुमान नब्बे योजन ऊँचे हो गये। इसके पश्चात् सुरसा ने सौ योजन तक अपना मुँह बढ़ाया। तब तो हनुमान ने अपने शरीर को मेघ की भाँति ऐसा सिकोड़ा कि अँगूठे भर के हो गये और झट उसके मुँह में जाकर बाहर निकले तथा आकाश में उड़ गये। उन्होंने कहा—हे दाक्षायणि*, देख मैंने तेरे मुँह में जाकर अपनी सत्यता का पालन किया। मैं तुझे प्रणाम करता हूँ। अब मैं सीता के पास जाऊँगा। ले, तेरा वर भी सत्य हो गया। जब सुरसा ने देखा कि यह मेरे मुँह से छूट गया तब तो वह पूर्ववत् अपने रूप को धारण करके बोली कि हे हरिश्रेष्ठ, तुम सुखपूर्वक कार्यसिद्धि के लिए जाओ और सीता को रामचन्द्र से मिलाओ। हनुमान् का यह तीसरा कर्म देख चारों ओर से सब लोग वाह-वाह करके उनकी प्रशंसा करने लगे। हनुमान् आकाश में जाकर वेग से गरुड़ की तरह चल निकले।

वह आकाश जल की धाराओं से युक्त और पक्षियों से सेवित था। वह तुम्बुरु आदि गन्धर्वों के सञ्चार से

* दक्ष प्रजापति के कुल में उत्पन्न हुई।

भूषित और ऐरावत नाम गजेन्द्र, सिंह, हाथी, शार्दूल, पक्षी और साँप इन वाहनों से जुते हुए निर्मल विमानों से अलङ्कृत एवं ऐसे महाभाग और पुण्यवान स्वर्गीय प्राणियों से भरा था जिनका स्पर्श वज्र के तुल्य था और जिनका रूप अग्नि के सदृश प्रदीप्त था। होम-द्रव्य को धारण करनेवाले चित्रभानु नाम अग्नि से वह आकाश सेवित और ग्रह, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य और तारागणों से भूषित था। महर्षि, गन्धर्व, नाग और यक्षों से वह पूर्ण था। वह विमल आकाश जगत् का अवलम्ब विश्वावसु नाम गन्धर्वराज से सेवित था। वह इन्द्र के हाथी के चलने के मार्ग तथा चन्द्र और सूर्य के सुन्दर मार्ग से शोभित था। वह जीव-लोक का चँदोवा, ब्रह्मा से निर्मित और बहुत से विद्याधर वीरों से सेवित था। ऐसे आकाश के वायुमार्ग में गरुड़ की भाँति हनुमान् उड़े चले जाते और मेघ को वायु की तरह खींचते जाते थे। अगर के सदृश काले और लाल, पीले, सफेद रंग के बड़े-बड़े मेघ कपि से खींचे जाने पर बहुत ही भले देख पड़ते थे। उन मेघ-जालों में पैठते और निकलते हुए हनुमान् ऐसी शोभा को प्राप्त होते थे जैसे वर्षाकाल में चन्द्र की शोभा होती है। आकाश में सर्वत्र देख पड़ते वायुपुत्र हनुमान उस निरालम्ब मार्ग में ऐसे देख पड़ते थे जैसे पक्षयुक्त हिमालय पर्वत हो। सिंहिका नाम की राक्षसी समुद्र में ही रहती थी। वह अत्यन्त वृद्ध और कामरूपिणी थी। कपि को उड़ते देख वह सोचने लगी कि अहो! आज मैं बहुत दिन में भोजन पाऊँगी, क्योंकि यह विशाल प्राणी बहुत दिन बाद मेरे वश में आया है।

यह सोचकर उसने कपि की छाया को पकड़ लिया। छाया के पकड़े जाने पर हनुमान् मन में घबड़ाकर सोचने लगे कि अरे मैं तो बन्धन में पड़ गया और मेरा पराक्रम नष्ट हो गया। जैसे विपरीत वायु से समुद्र में नौका की दशा होती है वही मेरी हुई। अब वे नीचे-ऊपर, अगल-बगल की ओर देखने लगे तो क्या देखते हैं कि एक बड़ा सा जीव लवण-समुद्र के जल में उतरा रहा है। उसका मुँह बड़ा विकराल है। तब तो सुग्रीव के वचन का हनुमान् को स्मरण हुआ। उन्होंने कह दिया था कि एक अद्भुत रूप का जीव छाया ग्रहण करता है और बड़ा पराक्रमी है। हो न हो, यह वही जीव है। उसके कर्म-द्वारा बुद्धि-मान् कपि ने उसे सिंहिका जानकर वर्षाकाल के मेघ की नाईं अपना शरीर बढ़ा लिया। जब सिंहिका ने देखा कि इस जन्तु का शरीर बढ़ गया तब उसने आकाश-पाताल तक अपना मुँह फैला दिया। वह मेघघटा के तुल्य गरजती हुई कपि की ओर दौड़ी। उसका भयंकर और विशाल मुँह देखकर उसके शरीर और मर्मों का भेदन करने का अवसर ढूँढ़ते हुए हनुमान् अपने शरीर को अत्यन्त छोटा कर उसके मुँह में जा पड़े। सिद्ध-चारण लोगों ने इनको उसके मुँह में घुसते और डूबते देखा मानो पर्वकाल के समय राहु के मुँह में पूर्णचन्द्र जा पड़ा हो। अब कपि अपने तीखे नखों से उसके मर्मस्थलों को फाड़कर वेग से निकल भागे; क्योंकि इनका वेग मन के तुल्य था। इस प्रकार हनुमान् ने दैव के अनुग्रह, धैर्य और चतुराई से उसको मारकर फिर शरीर बढ़ा लिया। हृदय फट जाने से वह राक्षसी मरकर समुद्र के जल में गिर पड़ी। उसके मारने के लिए ब्रह्मा ने हनुमान् को ही सिरजा था। तब आकाशचारियों ने हनुमान् से कहा कि तुमने बड़ा भारी काम किया जो इस भयंकर प्राणी को मार गिराया। अब तुम निष्कण्टक होकर अपने कार्य को सिद्ध करो। हे वानरेन्द्र! जिसमें धैर्य, दृष्टि, बुद्धि और चातुर्य ये चार गुण हैं

उस पुरुष को कदापि कार्यसाधन में क्लेश नहीं होता। ये गुण तुममें पाये जाते हैं।

श्रीहनुमान ने उन आकाशचारियों से प्रशंसा पाकर, उस पार पहुँच, चारों ओर वन को देखा। वहाँ पहुँचते ही वे नाना वृक्षों से भूषित उस द्वीप में मलय के उपवन को देखने लगे। वहाँ पर उन्होंने समुद्र, खाड़ी और वहाँ के वृक्षों तथा नदियों के सङ्गम-स्थानों को देखा। तदनन्तर कपि ने देखा कि मेरा शरीर तो मेघ के सदृश आकाश को छू रहा है। यदि राक्षस लोग मेरे शरीर को और वेग को देखेंगे तो उनके लिए यह एक कौतुक होगा। यह सोच-विचारकर वे उस पर्वताकार शरीर को छोटा कर फिर पूर्ववत् हो गये जैसे कि भगवान् वामन ने, बलि के छलने के समय, अपने शरीर को बढ़ाकर अन्त में फिर साधारण कर लिया था।

इस प्रकार नाना-रूपधारी कपिश्रेष्ठ समुद्र के पार जाकर और पर्वत के ऊपर बसी हुई लंका को देखकर त्रिकूट पर्वत पर उतर पड़े। श्रीहनुमान् अपना रूप छोटा बनाकर वहाँ के मृग-पक्षियों को भयाकुल करते हुए उतर पड़े और लंका को देखने लगे।

सोरठा

एहि विधि श्रीकपि-वीर, लाँघि जलधि पर-तट पहुँचि।
देखी लंका धीर, जिमि सुरपति अमरावती॥

---

## दूसरा सर्ग

### लङ्का का वर्णन

श्रीहनुमान् त्रिकूट पर्वत पर चढ़कर लंका को देखने लगे। तदनन्तर वृक्षों से कपि के ऊपर इतने पुष्प गिरे कि वे पुष्पमय हो गये। देखो, ये पराक्रमी वायुपुत्र इतने बड़े सौ योजन समुद्र को लाँघ आये परन्तु न तो एक साँस ली और न उनको कुछ खेद ही हुआ। उन्होंने मन में सोचा कि हम तो इससे भी अधिक स्थान को लाँघ सकते हैं। मार्ग में जो जङ्गल थे उनमें हरी-हरी घास, सुगन्धयुक्त मधु और अच्छे-अच्छे वृक्ष थे। हनुमान् इनको और पर्वतों एवं पुष्पों से भरे वन की पंक्तियों को लाँघते गये थे। उस पर्वत पर खड़े होकर वे देखने लगे तो वन, उपवन और उस पर्वत के अग्रभाग में बसी हुई लंका को देखा। वहाँ पर उन्होंने देवदारु, कर्णिकार, फूले-फूले खजूर, मेवा और नीबू, कोरैया, केवड़ा और सुगन्धयुक्त प्रियङ्ग, कदम्ब, छितिवन, असन, कचनार और फूले हुए कन्दइल के वृक्षों को देखा। इनमें से अनेक फूले-फूले और अनेक कलीवाले वृक्ष थे। उन पर झुण्ड के झुण्ड पक्षी बैठे शोभा दे रहे थे। वायु से हिलते हुए वे बहुत ही भले मालूम देते थे। वहाँ बावलियाँ देख पड़ीं जिनमें हंस और जलकुक्कुट खेलते थे तथा कमल और कोई खिल रहे थे। फिर वहाँ राजाओं के विहार की वाटिकाएँ देखीं जो जलाशयों से भूषित थीं। वहाँ के बागीचों में जो वृक्ष थे वे सब ऋतुओं में फलते-फूलते थे। हनुमान् ने देखा कि जिस खाईं के अन्दर लंका बसी हुई है उसमें कोई और कमल खिले हुए हैं। सीता को हर लाने के कारण चारों ओर बड़े-बड़े धनुर्द्धर राक्षस बड़ी सावधानी से उस नगरी की रक्षा करने में तत्पर हैं। वह सुवर्ण के घेरे से घिरी और शरत्काल के मेघ के सदृश पर्वताकार गृहों से शोभित है। बस्ती में ऊँची-ऊँची सड़कें हैं। वह नगरी सैकड़ों अटारियों और ध्वजा-पताका से भूषित है। उसमें सुवर्णनिर्मित दिव्य द्वार-मुख हैं और उसका रक्षक रावण है। उसको हनुमान्

ने इस तरह देखा जैसे इन्द्र अमरावती को देखते हैं। वह विश्वकर्मा की बनाई पुरी आकाश में उड़ती सी जान पड़ती थी। लंका रूप स्त्री की जङ्घाएँ उसकी प्राकार-वेदी थी। जिन समुद्रों और वनों से वह घिरी हुई थी वे ही उसके कपड़े थे और शत्रुओं के मारने के लिए उस पर जो शतघ्नी तथा शूल आदि रक्खे थे वे ही उसके केश थे। अटारियाँ उसके कर्णभूषण थीं। इस प्रकार की लंका को देखकर और उसके उत्तर फाटक पर पहुँचकर हनुमान् सोचने लगे। वह उत्तर का फाटक कैलास के सदृश इतना ऊँचा था कि आकाश को छूता था, मानो ऊँचे-ऊँचे गृहों द्वारा आकाश को धारण किये था। कपिश्रेष्ठ मन में सोचने लगे कि जैसे गुफा में महाविषधर साँप भरे रहते हैं वैसे ही यह लंका भी इन घोर राक्षसों से भरी पड़ी है। सबसे बढ़-कर इसकी रक्षा तो समुद्र से ही होती है। फिर यह रावण भयंकर शत्रु है। यहाँ पर आकर भी वानरों से कुछ न बन पड़ेगा, क्योंकि युद्ध द्वारा इसको जीतने का सामर्थ्य मैं देवताओं में भी नहीं देखता। इस महा-विषम दुर्गम लंका में रामचन्द्र आकर भी क्या करेंगे! फिर साम, दान, दण्ड, भेद—इन चारों में से एक की भी दाल इन राक्षसों में नहीं गल सकती। यहाँ तो केवल चार वानरों की ही गति देख पड़ती है—एक तो अंगद की, दूसरे नील की, तीसरे मेरी और चौथे हमारे महाराज सुग्रीव की। अब जो हो सो हो, पहले मैं तो वैदेही का समाचार लेता हूँ कि वे जीती हैं या नहीं। तब वहीं इन सब बातों का विचार करूँगा।

कपिकुंजर हनुमान् उस पर्वत के शृंग पर पलभर ठहरकर रामचन्द्र के कार्य के लिए फिर सोचकर विचार करने लगे कि मैं इस रूप से इस पुरी में प्रवेश नहीं कर सकता; क्योंकि इस नगरी की रक्षा का भार बड़े बड़े क्रूर और बली राक्षसों के जिम्मे है। इसलिए सीता को खोजते समय इन महापराक्रमी बलवान् राक्षसों को ठगना चाहिए। अतएव रात्रि में ऐसे रूप से लंका में घुसना चाहिए कि मुझे कोई न देखे; क्योंकि बड़ा भारी काम करना है।

हनुमान् बारम्बार उस पुरी की ओर देखते और नीचे-ऊपर श्वास छोड़ते हुए यही विचार करते थे कि किस उपाय से मैं जानकी को देखूँ और उस दुष्टात्मा रावण की दृष्टि से बचा रहूँ तथा किस प्रकार से श्री-राघव का कार्य बनेगा। मैं एकान्त में अकेली जानकी को देखना चाहता हूँ। जैसे सूर्य के उदय से अन्धकार का नाश होता है उसी प्रकार कादर दूत को पाकर सिद्ध अर्थ भी नष्ट हो जाते हैं। क्योंकि वह कादर दूत देश और काल की ओर दृष्टि किये बिना ही कार्य करने में प्रवृत्त होता है। कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के विषय में बुद्धि का दृढ़ निश्चय पहले से भले ही किया गया हो परन्तु अधीर दूत के कारण वह शोभा को नहीं पाता। इसलिए जो दूत अपने को पण्डित समझते हैं, वे ऐसे स्थान में कार्य को चौपट अवश्य करते हैं। अब मैं क्या करूँ जिसमें न तो कार्य विनष्ट हो, न मेरी कादरों में गणना हो और न मेरा समुद्र का लाँघना ही व्यर्थ हो। यदि राक्षसों ने मुझे देख लिया तो महाराज राम-चन्द्र का यह कार्य व्यर्थ हो जायगा। मैं ऐसा सामर्थ्य किसी का नहीं देखता जो राक्षस का रूप धारण करके भी इस नगरी में, राक्षसों से बिना जाना हुआ, प्रवेश कर ले। वायु भी वहाँ राक्षसों से छिपकर न बहता होगा; क्योंकि वहाँ ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो इन भयंकर पराक्रमी राक्षसों का जाना हुआ न हो। यदि मैं अपने रूप से यहाँ ठहरूँ तो नष्ट हो जाऊँगा और स्वामी का कार्य भी चौपट हो जायगा। इसलिए मैं

रात्रि में छोटा रूप धरकर लंका में प्रवेश करूँगा, जिसमें राघव की अर्थ-सिद्धि हो। मैं इस पुरी के सब घरों में जा-जाकर मैथिली का पता लगाऊँगा।

इस प्रकार निश्चय कर श्रीहनुमान् सीता के दर्शन की उत्कण्ठा से सूर्यास्त की बाट जोहने लगे। जब सूर्य अस्ताचल-गामी हुए तब हनुमान् बिड़ाल के सदृश छोटा अद्भुत रूप धारणकर प्रदोष-काल में कूदे और उस रमणीय सुन्दर राजमार्गों से भूषित लङ्का में जा घुसे। उसमें बड़े-बड़े घर थे और सुवर्ण के तुल्य खम्भों, जालियों और झरोखों से भूषित गन्धर्वनगर के तुल्य वह देख पड़ती थी। वह राक्षसों की निवास-भूमि सात-सात, आठ आठ खण्डवाले गृहों से शोभित देख पड़ती थी। उन भवनों में किसी का फर्श सोने का था तो कहीं स्फटिक जड़ा हुआ था। राक्षसों के गृहद्वारों के तोरण (मेहराबें) सुवर्णनिर्मित और चित्र-विचित्र बने हुए थे। वे चारों ओर से भूषित हो उस नगरी को अत्यन्त प्रकाशित कर रहे थे।

इस प्रकार लङ्का का अचिन्तनीय और अद्भुत रूप देख कपिश्रेष्ठ कुछ दुखी और हर्षित भी हुए; क्योंकि सीता के दर्शन की उनको बड़ी इच्छा थी। उस समय मानों वायुपुत्र की सहायता करने के लिए ही हजारों किरणोंवाला चन्द्रमा भी, तारागणों के साथ, अपनी किरणों को फैलाकर आकाश में उदित हो गया।

दोहा

शङ्ख-छीर-विसतन्तुनिभ, इन्द्र-दिशा-अवतंस।
कपि नभ महँ चन्द्रहि लख्यौ, पौरत सर जिमि हंस॥

---

# तीसरा सर्ग

## कपि का लङ्का में प्रवेश करना और शरीर-धारिणी लङ्का को घूसा मारना

कपि ने लम्ब नामक पर्वत के शिखर पर अपने बल को धारण कर रात्रि में लङ्कापुरी में प्रवेश किया। वह नगरी शरत्काल के मेघों के तुल्य गृहों से शोभित और समुद्र के सदृश शब्दायमान थी। वह अलका नगरी सी लगती थी; उसमें समुद्री हवा आती थी, सेना भरी पड़ी थी और जहाँ-तहाँ मनोहर मत्त हस्ती-संयुक्त तोरण बने थे। उन तोरणों का रङ्ग कुछ-कुछ पीला था। वह भुजंगों से रक्षित सुन्दर भोगवती नगरी के तुल्य शोभायमान, तारागणों से सेवित, प्रचण्ड वायु से नादित, ऐसी जान पड़ती थी मानो देवताओं की नगरी हो। वह विशाल सुवर्णमय प्राकार से घिरी किङ्किणी-घोष से युक्त और पताकाओं से भूषित थी। रावण-पालित उस लंका को पाकर हनुमान् प्रसन्नता-पूर्वक उसके प्राकार पर चढ़ गये। चारों ओर से उस पुरी को देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। वे फिर पुरी की शोभा देखने लगे। अब द्वारों की ओर दृष्टि की तो वहाँ के सब द्वार सुवर्णमय और पन्नों की वेदिकाओं से शोभित, स्फटिक मणि और मोतियों से जड़े तथा मणियों की गचों से अलंकृत थे। उन पर सुन्दर सुवर्ण के मत्त हाथी रक्खे हुए थे। उनमें पन्नों की सीढ़ियाँ थीं। उन सीढ़ियों के बीच-बीच में स्फटिक लगे थे। वहाँ के बड़े विशाल सुन्दर सभा-गृहों को भी देखा जो आकाश को स्पर्श करते थे। वहाँ पर क्रौञ्च और मोर मधुर शब्द कर रहे थे

और राजहंस भी थे। उनमें नगाड़ों और भूषणों के शब्द हो रहे थे।

वह पुरी इस प्रकार समृद्ध और आकाश को स्पर्श कर रही अलकापुरी के सदृश थी। उसको देख हनुमान्‌जी सोचने लगे कि दूसरे का तो मैं सामर्थ्य नहीं देखता कि इस लङ्का को सर करे। ये रावण के योद्धा हाथों में शस्त्र लिए इसकी रक्षा कर रहे हैं। परन्तु कुमुद, अङ्गद, सुषेण, मैन्द, द्विविद, सूर्य के पुत्र सुग्रीव और कुश के तुल्य रोमधारी जाम्बवान् और मैं—इनकी गति यहाँ पर हो तो हो। ऐसा सोच-विचारकर हनुमान् ने जब श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण के पुरुषार्थ की ओर दृष्टि की तो मन में अत्यन्त हर्षित हुए।

वह नगरी अलंकृत स्त्री के तुल्य देख पड़ती थी, जिसके मणि-रूप वस्त्र और गोशाला तथा पहरे के गृह-रूप कर्णाभूषण एवं आयुधों के गृह ही स्तन थे। दीपों से और चमचमाते हुए घरों से वहाँ पर प्रकाश हो रहा था। उसको वायुपुत्र देख ही रहे थे कि इतने में उस लङ्का नगरी ने इनको पुरी में पैठते देखा। तब वह अपने राक्षस-रूप को धारण कर विकराल मुख से बड़ा भयंकर नाद करती हुई कपि के समीप आई और बोली—हे वनवासी वानर, तू कौन है और यहाँ किसलिए आया है? मुझे ठीक-ठीक बतला। देख, इस लंका में प्रवेश करने की तुझे सामर्थ्य नहीं। रावण की सेनाएँ इसे चारों ओर से घेरे पड़ी हैं।

यह कठोर वचन सुनकर हनुमान् बोले—तू जो पूछती है सो मैं ठीक-ठीक कहूँगा, परन्तु पहले यह बतला कि तू विकराल नयनोंवाली कौन है जो इस नगर के फाटक पर खड़ी है? तू मुझे क्रोध से क्यों दपटती है? अब वह काम-रूपिणी लंका क्रोध कर फिर कठोर वचन बोली—मैं महात्मा राक्षसराज रावण की आज्ञापालिका और अजेय हूँ; मैं इस नगरी की रक्षा करती हूँ। मेरी अनुमति बिना इस नगरी में किसी को जाने की शक्ति नहीं है। देख, अभी मैं तुझे मार डालूँगी। आज प्राण-विहीन होकर तू भूमि पर सोवेगा। हे वानर, मैं स्वयं लंका हूँ और चारों ओर अपनी रक्षा करती हूँ, इसलिए मैंने तुझसे पूछा। यह सुनकर बुद्धिमान्, उद्योगी हनुमान् पर्वताकार रूप से उसके समीप खड़े हो गये और बोले—हे लंके! इस नगरी की अटारियाँ, प्राकार, तोरण, वन, उपवन, जङ्गल और प्रधान-प्रधान गृहों को देखने की मुझे बड़ी लालसा है। इसी लिए मैं यहाँ आया हूँ। इस पर वह लंका फिर कठोर वचन बोली—हे दुर्बुद्धि वानराधम! बिना मुझे जीते राक्षसेश्वर की इस लंकापुरी को तू नहीं देख सकता। इसके अनन्तर वे वानरश्रेष्ठ फिर बोले—हे भद्रे, मैं नगरी को देखकर फिर अपने मार्ग से चला जाऊँगा। तब तो उस लंका ने बड़ा भयंकर नाद करके वेग से हनुमान् के एक थप्पड़ मारा। लंका के हाथ से वह भारी चोट खाकर हनुमान् अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उन्होंने बायें हाथ की मूठी बाँधकर लंका को एक मूका मारा; परन्तु कपि ने उसको स्त्री जान अधिक क्रोध नहीं किया। किन्तु वह निशाचरी लंका उस प्रहार से विह्वल हो झट भूमि पर लोट-पोट हो गई। उसका मुख और रूप अधिक विकराल हो गया। उसको गिरी हुई देख तेजस्वी कपिवीर के मन में दया आ गई। उन्होंने समझा कि देखो मैंने स्त्री को मारा, यह क्या किया। अब अत्यन्त व्याकुल लंका गद्‌गद वाणी से अहंकार-रहित वचन बोली—हे महाबाहो, तुम प्रसन्न हो और मुझे बचाओ; क्योंकि पराक्रमी महाबलवान् लोग मर्यादा पर स्थिर रहते हैं, अर्थात् स्त्री का घात नहीं

करते। यही शास्त्र की मर्यादा है। हे वानर, मैं लंका नाम नगरी हूँ। तुमने अपने पराक्रम से मुझे जीत लिया। अब जो मैं कहती हूँ उसको सुनो—

एक समय ब्रह्मा ने मुझसे कहा था कि जब कोई वानर तुमको पराक्रम से अपने वश में कर ले तब जानना कि राक्षसों पर संकट आ गया। सो हे सुन्दर, आज तुम्हारे दर्शन से वह मेरा समय आ गया। यही वह ब्रह्मा का कहा हुआ समय है। उसको सत्य ही जानना चाहिए, उसमें अन्तर नहीं पड़ सकता। देखो, सीता के कारण इस दुष्टात्मा रावण का और सब राक्षसों का भी विनाशकाल उपस्थित हुआ है। सो हे कपिमुख्य, अब तुम इस नगरी में प्रवेश करके जो-जो कार्य करना चाहते हो सो करो।

चौपाई

दत्तशाप नगरी यह वीर। राक्षसवरपालित मतिधीर॥
अब सुख से तुम या महँ जाय। सीता कहँ खोजहु मन लाय॥

---

## चौथा सर्ग

### हनुमान् का पुरी में जा करके रावण के अन्तःपुर को देखना

हनुमान् अपने पराक्रम से लंका को इस प्रकार जीतकर द्वार में गये बिना ही अर्थात् प्राकार को लाँघकर उस रात्रि को लंका में पैठे। सुग्रीव के हित के लिए उन्होंने पहले अपना बायाँ पैर वहाँ रक्खा, क्योंकि शत्रु की नगरी में पहले बायाँ पैर रखने से अपनी विजय होती है। अब हनुमान् पहले राजमार्ग से चले। गिरे हुए पुष्पों से वह मार्ग शोभित था। वहाँ हास्य के शब्द और बड़े-बड़े नगाड़ों के शब्द सुन पड़ते थे। हनुमान् ने वहाँ अनेक प्रकार के घर देखे जिनमें से किसी में वज्र की और किसी में अंकुश की प्रतिमा थी। उन घरों में हीरों से बने झरोखे अति सुन्दर देख पड़ते थे। उन मेघसदृश गृहों से उस रमणीय पुरी की ऐसी शोभा हो रही थी जैसे मेघों के द्वारा आकाश की होती है। इन राक्षसों के सुन्दर गृहों से वह लंका अत्यन्त भड़कीली देख पड़ती थी। बहुतेरे घर कमलाकार, कोई स्वस्तिकाकार और कोई वर्द्धमान-संज्ञक बने हुए देख पड़ते थे। उनमें अनेक प्रकार के चित्र-विचित्र पुष्प, स्थान-स्थान पर, शोभा के लिए लटकाये गये थे। इस प्रकार के भवनों को हनुमान् देखते और मन में आनन्दित होते जाते थे। वे एक अटारी से दूसरी अटारी पर और दूसरी से तीसरी पर कूदते नाना प्रकार के गृहों को देखते जाते थे। उन भवनों में सुन्दर गीतों का शब्द सुन पड़ता था। वह शब्द वक्षःस्थल, कण्ठ और मस्तक से निकले हुए मन्द्र, मध्य और तार नामक स्वरों से मिश्रित था। बड़े-बड़े राक्षसों के घरों में कामोन्मत्त स्त्रियाँ कोई सीढ़ियों पर चढ़ती थीं और कोई उतरती थीं। वे स्वर्ग की अप्सराओं के सदृश सुन्दर थीं। सीढ़ियों पर उनके चढ़ने-उतरने से उनकी क्षुद्रघण्टिका अर्थात् एक प्रकार की करधनियों और नूपुरों के शब्द हो रहे थे। कहीं-कहीं तालियों और सिंह के तुल्य गर्जनों के शब्द भी सुन पड़ते थे। हनुमान् ने वहाँ जप करनेवालों के मन्त्र भी सुने और ऐसे राक्षसों को देखा जो स्वाध्याय में तत्पर थे। बहुत से राक्षसों को रावण की स्तुति करते देखा। अनेक राक्षस गरज रहे थे। राक्षसों का झुण्ड राजमार्ग को घेरे खड़ा था। मध्यम डेवढ़ी में बहुत से दूत अर्थात् समाचार पहुँचानेवाले देख पड़े। हनुमान् ने वहाँ तरह-तरह के गुप्तचर राक्षसों को देखा। उनमें

बहुत से मुण्डित, दीक्षित, जटाधारी, गो-चर्मधारी, और कुशमुष्टि से प्रहार करने में चतुर थे; बहुत से राक्षस मारण-मन्त्र द्वारा अग्नि से कृत्या को उत्पन्न करनेवाले, काँटों से जड़े हुए मुद्गरों को धारण करनेवाले और दण्डायुधधारी थे। किसी के एक ही आँख थी, किसी के एक ही कान था और किसी के एक ही स्तन था। विकराल और टेढ़े मुँहवाले विकट रूपधारी और छोटे राक्षसों को भी हनुमान् ने देखा। फिर उन्होंने ऐसे राक्षसों को देखा जो धनुर्धारी और खड्गधारी थे। वे शतघ्नी, मुशल और बड़े-बड़े फरसे लिए हुए थे। वे उज्ज्वल कवच पहने हुए थे। वे राक्षस न कहीं बहुत मोटे, न अत्यन्त दुबले, न अत्यन्त लम्बे, न अत्यन्त नाटे, न बहुत गोरे और न बहुत ही काले-कलूटे थे। वे न तो अत्यन्त कुबड़े थे और न अत्यन्त छोटे ही। उनका विलक्षण रूप था। वे बहुरूप-धारी, सुन्दर रूपवान् और तेजधारी थे। कहीं-कहीं ध्वजा-पताकाधारी राक्षस थे। कुछ राक्षस अनेक आयुध धारण किये हुए थे। वे वृक्ष-रूप भालों को और पटा, वज्र, भिन्दिपाल तथा पाश को धारण किये हुए थे। वे राक्षस मालाएँ पहने, देह में अङ्गराग लगाये, अच्छे भूषण पहने और नाना प्रकार के वेष बनाये थे। हनुमान् ने अन्तःपुर के अग्रभाग में भी लाखों राक्षसों को देखा। वे राजा की आज्ञा के अनुसार बीच की डेवढ़ी की बहुत सावधानी से रक्षा कर रहे थे। उनमें कितने ही तो तीखे-तीखे शूलों को और वज्र को धारण किये थे। वहाँ पर्वत के शिखर पर विराजमान राक्षसराज का विख्यात गृह हनुमान् ने देखा। उसके द्वार का तोरण सोने का था। उसके चारों ओर जल से पूर्ण और कमलों से भूषित खाईं थी। वह प्रकार से वेष्टित था और स्वर्ग की भाँति दिव्य देख पड़ता था। वहाँ दिव्य नाद होते सुन पड़ते थे। वहाँ घोड़ों के हिनहिनाने का मनोहर शब्द सुनने में आता था। वहाँ द्वार पर रथ और अनेक प्रकार की सवारियाँ, विमान, हाथी-घोड़े, चार दाँतवाले सफेद मेघों के सदृश सजे-सजाये बहुत से गजेन्द्र, मृग और पक्षी थे। हजारों महापराक्रमी राक्षस उस राजद्वार की रक्षा कर रहे थे। उसके भीतर हनुमान् ने प्रवेश किया।

दोहा

कालागुरु चन्दन सुरभि, मुक्ताखचित सुवेश।
लखि सुवर्ण-प्राकार तहँ, कपिवर कीन्ह प्रवेश॥

---

# पाँचवाँ सर्ग

## चन्द्रोदय और अन्तःपुर का वर्णन

उस समय आकाश के मध्य में आये चन्द्र को हनुमान् ने देखा—

छप्पय

गगनमध्यगत इन्दु किरण पुनि पुनि फैलावत।
मत्त वृषभ जनु भ्रमत गोष्ठ महँ अति मन भावत॥
सकल पाप परिहरत उदधि कर हर्ष बढ़ावत।
पञ्चभूत भू आदि रुचिर शोभा दरसावत॥
मन्दरगिरि पर जो लच्छमी अरु प्रदोष महँ सिन्धुगत।
जो नीर जगत दिन माँझ सोइ चारु निशाकरगत लसत॥

दोहा

रजत पींजरा हंस जिमि, मन्दर-गत मृगराज।
मत्त हस्ति पर वीर जिमि, तिमि नभ महँ उडुराज॥
तीक्ष्णशृंग जिमि वृषभ वर, श्वेतशृंग गिरिराज।
जिमि सुवर्णमय शृंग गज, तिमि राजत उडुराज॥

छप्पय

नष्ट शीत जल तुहिन सूर्यकर मिलि नाशित तम।
अति प्रकाश के हेतु विमल दरसत कलंक तम॥
सोहत जिमि मृगराज पाय शुचि अचल शिलातल।
जिमि राजत गजराज पाय अति घोर युद्ध-थल॥
सुठि राज पाय नरनाथ जिमि छवि पावत सिर छत्रधर।
तिमि गगनमध्य नक्षत्रपति अतिहि लसत सुविकासिकर॥

दोहा

तिमिर दोष सब दूरि करि, प्रकटि निशाचर दोष।
मानवतिन कर मान हति, रुचिकर भयो प्रदोष॥

चौपैया

वीणारव कर्णहि सुख देत। सोवत पियसँग नारि सहेत॥
अति अद्भुत बहु क्रूर अचार। तहाँ निशाचर करत विहार॥
धनमद सुरामत्त सब शूर। रथ हय हेमासन भरपूर॥
शोभायुत वीरन की भीर। राक्षसकुल देख्यौ कपिवीर॥

छन्द

अति पीन भुज झटकारि राक्षस
वाद कोलाहल करैं।
बहु व्यर्थ भाषहिं मत्त होइ
कोउ डपटि मत्तहिं मुद भरैं॥
कोउ रजनिचर निज छाति ठोकहिं
कोउ तिया सँग रमि रहे।
बहु धरहिं रूप विचित्र कोउ
निज धनुष टंकारहि गहे॥ ८॥

दोहा

कोउ उवटति कोउ सोवती, कोऊ हँसति सुरूप।
कोउ उसाँसति क्रुद्ध होइ, तिय कपि लख्यो अनूप॥

कहीं हाथी नाद कर रहे हैं और कहीं वीर लोग निःश्वास छोड़ रहे हैं, जैसे जलाशयों में साँप फनफनाते हैं। वहाँ पर हनुमान् ने बुद्धिमान् और सुन्दर बोलनेवाले ऐसे राक्षसों को देखा जो विश्वासी अर्थात् आस्तिक, जगत् में विख्यात, नाना प्रकार के अच्छे नामधारी, सुन्दर रूपवान्, अनेक गुणों से पूर्ण और अपने गुणों के योग्य प्रकाशमान् थे। इन्हें देखकर हनुमानजी प्रसन्न हुए। उन राक्षसों की स्त्रियाँ अति योग्य, शुद्धचित्त, महाप्रभाववाली, अपने पतियों पर अत्यन्त प्रेम करनेवाली और पान करने में आसक्त थीं। वे ताराओं के तुल्य निर्मल थीं। शील भी उनका अच्छा था। उनको कपिश्रेष्ठ ने देखा। जैसे पक्षी और पक्षिणी विहार करते हैं उसी तरह बहुत-सी स्त्रियाँ उस अर्द्धरात्रि के समय पति से विहार करती हुई लज्जा और हर्ष से भरी देख पड़ीं। अनेक स्त्रियाँ मदन-युक्त चित्त से अटारियों पर बैठी थीं और कई एक अपने पति की गोद में थीं। सभी अपने-अपने स्वामी की सेवा में निरत थीं। कई स्त्रियाँ नग्न थीं। उनके शरीर का रङ्ग सुवर्ण के तुल्य था। कई एक तपाये हुए सुवर्ण के तुल्य और कई एक चन्द्र के तुल्य वर्णवाली थीं। उनमें से अनेक सुन्दरियाँ विरहिणी थीं। जो स्त्रियाँ अपने-अपने पति को पाकर प्रीतियुक्त हुई वे अपने घर में फूली नहीं समाती थीं। उनके मुख ऐसे लगते थे मानो अनेक चन्द्र पंक्ति बाँधकर उदित हुए हों। उन मृगनयनियों के भूषण ऐसे चमचमा रहे थे मानो अनेक बिजलियाँ चमक रही हैं।

सोरठा

देख्यौ सब कपिवीर, कूदि पैठि सब गृहन महँ।
पर न लख्यौ रणधीर, रामपत्नि श्रीजानकिहिं॥

श्रीहनुमान् ने इन सबको तो देखा, परन्तु उन सीताजी के दर्शन न हुए जो धर्म-मार्ग पर आरूढ़, राजकुल की पुत्री और अच्छे स्थल की प्रफुल्लित

लता के तुल्य थीं तथा जिनको ब्रह्मा ने अपने मन से सिरजा था। वे सीताजी सनातन धर्म मार्ग पर स्थिर, राम का ध्यान करनेवाली, उन्हीं में आसक्त और सदा पति के मन में रहती थीं। वे सब स्त्रियों से उत्कृष्ट, विरह-ताप से पीड़ित और अश्रुगद्गद कण्ठ से बोलती थीं। श्रीराम के समीप वे अति उत्तम निष्क नामक कण्ठभूषण पहने थीं। उनके अति सुन्दर नेत्र पलकों से भूषित थे और उनका मधुर स्वर था। इस समय वे वन में छूटी मयूरी के सदृश और घूमिली चन्द्र-रेखा के तुल्य थीं। वे धूलि से मलिन सुवर्ण-रेखा के सदृश और वायु से छितराई हुई मेघ की रेखा के तुल्य थीं। ऐसी परवश पड़ी श्रीरामचन्द्र की धर्मपत्नी के दर्शन हनुमान् को न हुए।

छन्द

बहु विधि चितै इत उत महाकपि
मनहि मन सोचत रह्यौ।
रजनीचरन के फिरत गृह-गृह
धीरता नेकु न गह्यौ॥
वय रूप गुण लावण्ययुत बहु
युवति-वृन्दन महँ तक्यौ।
सुर-विप्रगण-गोपाल प्रभु की
धर्म-पत्निहि नहिं लख्यौ॥

इस प्रकार जब हनुमान् ने वैदेही को न देखा तब तो वे बहुत दुखी हुए। उनकी गति मन्द हो गई।

---

## छठा सर्ग

### रावण के प्रधान राक्षसों के घरों पर हनुमान् का जाना और राजभवन-मण्डलों को भी देखना

मनमाना रूप धारण करनेवाले हनुमान् बड़ी शीघ्रता से अटारियों पर जाकर सब लंका को देखने लगे। अब वे रावण के राजभवन की ओर चले। वह राजभवन सूर्य के सदृश प्राकार से घिरा हुआ था। बड़े-बड़े राक्षस उसकी रक्षा कर रहे थे, जैसे सिंह महावन की रक्षा करते हैं। उस समय उस राजभवन के प्रकाश से कपि भी प्रकाशित हो गये। राजभवन के तोरण चाँदी के चित्र-विचित्र बने थे। उन पर सुवर्ण का काम किया हुआ था। उसमें अनेक कक्ष्या अर्थात् डेउढ़ियाँ थीं, और नाना प्रकार के सुन्दर द्वार बहुत शोभा दे रहे थे। वहाँ शूर लोग अमरहित और महावत हाथियों पर चढ़े देख पड़े। बड़े वेगवान घोड़े रथों में जुते हुए थे। वे रथ सिंह व्याघ्र के चमड़ों से शोभित थे। वे हाथीदाँत और सोने-चाँदी से भूषित थे। उनका शब्द बड़ा मनोहर था। वहाँ अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम मञ्च इत्यादि आसन रक्खे हुए थे। वहाँ महारथी लोग रहते थे। वह राजभवन अनेक रंग के सुन्दर पक्षियों से भरा और अनेक कोतवालों से रक्षित था। उसमें उत्तम-उत्तम स्त्रियाँ थीं, जिनके भूषणों के शब्दों से वह समुद्र की नाईं गरजता था। वह अनेक प्रकार के चन्दनों से सुगन्धित और महाजनों से पूर्ण था। उस राजभवन में भेरी, मृदङ्ग और शङ्ख का शब्द हो रहा था। तिथि, पर्व के दिनों में राक्षस वहाँ अपने इष्टदेव की पूजा करते थे। वह समुद्र के तुल्य गम्भीर और वैसा ही शब्द करता था।

उसमें उत्तम-उत्तम रत्नों की सामग्री भरी हुई थी। इस प्रकार के श्रेष्ठ भवन को देख कपि ने उसको लङ्का का भूषण माना। वे एक घर से दूसरे घर पर और वाटिकाओं में जा-जाकर सब देखने लगे। हनुमान् यद्यपि यह सब काम छिपकर कर रहे थे तथापि भय-रहित थे।

अब महावेगवान् कपि प्रहस्त के भवन पर गये और वहाँ से महापार्श्व के और फिर कुम्भकरण के। तदनन्तर विभीषण, महोदर, विरूपाक्ष, विद्युज्जिह्व, विद्युन्माली, वज्रदंष्ट्र, शुक, सारण, मेघनाद, जम्बुमाली, सुमाली, रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु, वज्रकाय, धूम्राक्ष, सम्पाती, विद्यूद्रूप, भीम, घन, विघन, शतनाभ, चक्र, शठ, कपट, ह्रस्वकर्ण, दंष्ट्र, रोमश, युद्धोन्मत्त, मत्त, ध्वजग्रीव, सादी, द्विजिह्व, हस्तिमुख, कराल, विशाल, सोणिताक्ष आदि सबके उत्तमोत्तम और अनेक प्रकार की समृद्धियों से भरे भवनों में जाकर कपि ने सबको देखा। फिर सब घरों को लाँघकर वे राक्षसेन्द्र के निवासस्थान में पहुँचे। वहाँ बड़े भयङ्कर नेत्रोंवाली अनेक राक्षसियाँ पारी-पारी से रावण के शयनस्थान पर पहरा देती थीं। फिर कपि ने शूल, मुग्दर शक्ति और तोमर अस्त्रों को धारण किये राक्षसियों के अनेक झुण्डों को और विशाल रूपवाले नाना शस्त्रधारी बहुत राक्षसों को वहाँ देखा। लाल, सफेद और धुमले रङ्ग के बड़े वेगवाले घोड़ों को और अच्छी नस्ल के रूपवान् हाथियों को कपि ने देखा। वे हाथी शत्रु के हाथियों को मारनेवाले, गजशिक्षा में शिक्षित, संग्राम में ऐरावत के तुल्य और शत्रु की सेना का नाश करनेवाले थे; वे मेघों की नाईं मद बरसाते थे और मेघों की भाँति गम्भीर शब्द करते थे। शत्रु उन्हें हटा नहीं सकते थे। रावण के भवन में सुवर्ण से भूषित बहुत-सी सेना कपि ने देखी। वहाँ हनुमान् ने सुवर्ण की जालियों से भूषित, मध्याह्न के सूर्य के सदृश चमचमाती, अनेक प्रकार की पालकियाँ देखीं। राक्षसराज के भवन में अनेक लताभवन, चित्रशाला के अनेक गृह, क्रीड़ा-गृह, दारु-निर्मित* बहुत से पर्वत, रतिगृह और दिन के विहार के लिए बने गृह कपि ने देखे। वह स्थान मन्दराचल के सदृश विशाल देख पड़ा। उस पर मोरों के रहने के लिए बहुत से स्थान थे। वहाँ बहुत सी ध्वजाएँ फहरा रही थीं। कहीं पर अनन्त रत्नों का ढेर लगा था, कहीं अनेक प्रकार के द्रव्य-समूह रक्खे थे। वहाँ उसके रक्षक अनेक धीर कर्मकाण्डी लोग बलिदान आदि कर रहे थे। वह यक्ष का सा भवन जँचता था। रत्नों के प्रकाश से और रावण के तेज से वह गृह ऐसा शोभित हो रहा था जैसे सूर्य अपनी किरणों से शोभित होते हैं। वहाँ हनुमान् ने सुवर्ण के उत्तमोत्तम पलँग, आसन और अनेक प्रकार के उज्ज्वल पात्र देखे। मद्य, आसव इत्यादि जो अग्नि से कुछ सम्बन्ध नहीं रखते उनका इस भवन में कीचड़ सा था। पीने के लिए बहुत से मणि के पात्र वहाँ देख पड़े। वहाँ सब पदार्थ मनोहर और अपने-अपने ठिकाने पर नियम से रक्खे थे। वह घर ऐसा विराजता था जैसे कुबेर का भवन शोभित होता है। कहीं नूपुर का घोष सुन पड़ता था, कहीं काञ्ची की ध्वनि हो रही थी, कहीं मृदङ्ग और ताल के शब्द सुन पड़ते थे। वे सब शब्द इकट्ठे होकर उस घर को नादित कर रहे थे। उस भवन में बहुत सी अटारियाँ देख पड़ीं। बहुत सी मनोहर स्त्रियाँ उसमें थीं। उन गृहों की डेउढ़ियाँ बहुत दृढ़ बनी थीं।

* राजाओं के यहाँ विहार के लिए लकड़ी के पहाड़ रहते हैं।

# सातवाँ सर्ग

## राजभवन का वर्णन

बलवान् हनुमान् उन गृहों को देखते जाते थे। उन गृहों में पन्नों और सुवर्ण के झरोखे कटे थे। उन भवन-समूहों की ऐसी शोभा हो रही थी जैसे वर्षाकाल में बिजली और बकपंक्ति से भूषित मेघों की घटा शोभा देती है। उन घरों के भीतर अनेक प्रकार के घरों को और शङ्ख, शस्त्र तथा धनुषों के लिए पृथक्-पृथक् बने मनोहर विशाल गृहों को हनुमान् ने देखा। उन पर्वताकार गृहों के ऊपर के गृह (जिनको चन्द्रशाला कहते हैं) को भी कपि ने देखा। वे लङ्काधिपति के गृह नाना प्रकार के रत्नों और द्रव्यों से भरे, देवता और असुरों से पूजित तथा सब प्रकार के दोषों से रहित थे। उन्हें रावण ने अपने बाहुबल से प्राप्त किया था। वे बड़े प्रयत्न तथा सावधानी से बनाये गये थे। ऐसा जान पड़ता था। मानो साक्षात् मय नामक दैत्य ने बनाया हो। इस भूतल में वे महल सब प्रकार के गुणों में श्रेष्ठ थे। अब हनुमान् ने राक्षसाधिप के बल के अनुरूप उसका अनुपम गृह देखा। वह अति उच्च मेघाकार, मनोहर और सुवर्ण-रचित था। वह गृह भूमि पर उतरे हुए स्वर्ग के तुल्य कान्ति से प्रज्वलित था। उसमें बहुत से रत्न भरे हुए थे। वह ऐसा देख पड़ता था मानो नाना वृक्षों के पुष्पों और उनके पराग से भरा पर्वत का अग्रभाग हो। वह गृह श्रेष्ठ नारियों से ऐसा प्रकाशित हो रहा था जैसे बिजलियों से मेघ की घटा प्रकाशित होती है, या हंसों से जोते हुए आकाशचारी विमान की शोभा होती है। उस भवन में पुष्पक विमान ऐसा लगता था मानों बहुत धातुओं से चित्र-विचित्र पर्वत का अग्रभाग हो, या चन्द्रमा और ग्रहों से भूषित आकाश हो अथवा रङ्ग-बिरङ्गे मेघों की घटा हो। उसमें बैठने का स्थान पर्वतों से भरा और पर्वत वृक्ष-समूह से भरे थे; वृक्ष पुष्पों से लदे और पुष्प केसर तथा पत्रों से पूर्ण थे। उस पर सफेद रङ्ग के कमरे थे; पुष्करिणी अच्छे-अच्छे पुष्पों से लहलहा रही थीं। उनमें केसरों से अलंकृत फूले हुए अनन्त कमल शोभते थे। उस पर बहुत से जङ्गल और सरोवर भी थे। इस विमान का नाम पुष्पक था। वह रत्नों की ज्योति से चमचमाता और उत्तमोत्तम गृहों से श्रेष्ठ था। उस विमानराज पर पन्ना, चाँदी तथा मूँगों के बनाये हुए पक्षी और चित्र-विचित्र धातुओं से बनाये हुए साँप एवं उत्तम जाति के घोड़े भी शोभा दे रहे थे। उन पक्षियों के पङ्खों पर मूँगों और सुवर्ण के फूल बने थे। वे पक्षी लीला से अपने पङ्खों को सिकोड़ते और टेढ़े करते थे। उनके मुख अत्यन्त सुन्दर और पङ्ख तो ऐसे सुन्दर थे मानो कामदेव के पक्ष हों। उस विमान पर एक सरोवर में श्रीलक्ष्मी की बहुत ही सुन्दर मूर्त्ति बनी थी, जिसके सुन्दर हाथ में कमल शोभित हो रहा था। उस मूर्ति के इधर-उधर अच्छे-अच्छे शुण्ड-वाले हस्ती अङ्कित थे जिनके शुण्डों में केसर-सहित कमल बने थे।

दोहा

इहि विधि सुन्दर कन्दरा-युत गिरि-सम सो भौन।
निरखि वीर कपि जानकिहिं, तहँ खोजत गहि मौन॥

सोरठा

सीतहि लख्यो न वीर, राजभवन सब ढूँढ़ि थकि।
दुःखित मन कपि धीर, अति गँभीरमति पवनसुत॥

## आठवाँ सर्ग

### फिर पुष्पक विमान का वर्णन

वह पुष्पक विमान सुवर्ण के जालों से युक्त, अति विशाल और मणि तथा रत्नों से चित्र-विचित्र था। उसको स्वयं विश्वकर्म्मा ने अपने हाथों से बनाया था। वह वायु-मार्ग में चलने में विख्यात और सूर्य के मार्ग का एक प्रसिद्ध चिह्न था। उस विमान में ऐसी कोई वस्तु न थी जो प्रयत्न-पूर्वक न बनाई गई हो। उसका ऐसा कोई भाग न था जो बड़े मोल के रत्नों-द्वारा न बनाया गया हो। उसका विशेष शिल्प देवताओं में भी प्रसिद्ध नहीं है। उसमें ऐसी कोई बनावट न थी जो महाविशेषता से न बनी हो। रावण ने तपस्या करके चित्त-समाधान से जो पराक्रम पाया था उसके द्वारा यह विमान प्राप्त किया था। जहाँ जाने का विचार हो वहीं यह विमान चित्त के समाधान रखने से चला जाता था। अनेक प्रकार की बैठकें इसमें विशेष रूप से बनी थीं। इसमें दिव्य विमानों के तुल्य बनावटें बनी और शोभा देती थीं। यह विमान मन के समाधान से आकाश में चलता था। इसकी गति वैसी ही तेज थी जैसी वायु की है। चलने में इसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता था। पापियों को इसकी प्राप्ति होनी कठिन थी। बड़ी समृद्धिवाले महात्मा, पुण्यवान् और यशस्वी लोगों के लिए यह मानो बड़े आनन्द का घर था। वह अपनी गतिविशेष का अवलम्बन करके आकाश में ठहरने-वाला, अनेक प्रकार की वस्तुओं से भरा, अनेक शालाओं से भूषित, मन को प्रिय और शरत्-काल के चन्द्र-तुल्य निर्मल था। वह चित्र-विचित्र शिखरोंवाला पर्वत सा था। उसके चलाने के लिए हजारों आकाश-चारी भूतगण नियुक्त थे, जो बड़े वेगवान् और बड़े-बड़े नेत्रोंवाले थे। कानों के कुण्डलों से उनके मुख की अत्यन्त शोभा होती थी। रात्रि में भी वे दिन के तुल्य जाते थे।

दोहा

पुष्पराशि-सम लखि परत, सो विमान शुभ सर्व।
जाकी छवि देखत लगत, ऋतु वसन्त अति खर्व॥

---

## नवाँ सर्ग

### रावण के रनिवास का वर्णन

उस श्रेष्ठ भवन के भीतर एक अर्द्ध योजन चौड़ा और योजन भर लम्बा निर्मल विशाल घर देख पड़ा। उसमें बहुत सी अटारियाँ थीं। हनुमान् उस उत्तम गृह में सीता को खोजते चारों ओर घूमने लगे। उस गृह में चार दाँतोंवाले और तीन दाँतोंवाले हाथी थे। शस्त्रधारी राक्षस उसकी रक्षा करने में तैनात थे। वहाँ रावण की पत्नी अनेक सुन्दरी राक्षसियाँ थीं, और बहुत सी राजकन्याएँ भी थीं जिनको वह अपने पराक्रम से हर लाया था। वह घर—नाक, मकर, तिमिङ्गिल और मत्स्यों से भरे और वायुवेग से लहराते हुए—समुद्र की नाईं देख पड़ता था। जो लक्ष्मी कुबेर के घर में और इन्द्रासन में देख पड़ती है वह रावण के घर में नित्य और अचल देख पड़ती थी। जो ऋद्धि कुबेर, यम और वरुण के घर में है वैसी ही अथवा उससे भी अधिक रावण के घर में थी। उस भवन के मध्य में एक दूसरा भी अच्छा घर बना हुआ था जिसमें मत-वाले हाथी के बहुत से आकार बने थे। ब्रह्मा के लिए

स्वर्ग में विश्वकर्मा ने जो दिव्य पुष्पक विमान बनाया था और जिसको कुवेर ने बड़ी तपस्या करके ब्रह्मा से पाया था उसको रावण ने अपने बल से कुवेर को जीतकर छीन लिया। नाना प्रकार के सुवर्ण और चाँदी के खम्भों से वह अत्यन्त शोभित था। इन खम्भों पर भेड़िये के चित्र अङ्कित थे। मेरु-मन्दर के तुल्य आकाश को स्पर्श करते और अग्नि एवं सूर्य के सदृश प्रकाशमान् गुप्त गृहों और विहार-गृहों से वह भूषित था। उसमें सुवर्ण की सीढ़ियाँ और मनोहर वेदियाँ बनी थीं, तथा कहीं-कहीं झरोखे और खिड़कियाँ सुवर्ण और स्फटिक मणि की सुन्दर कटी हुई थीं। उसके कोई-कोई भाग इन्द्रनील और महानील मणियों की वेदिकाओं से शोभित थे। फर्श में कहीं-कहीं नाना प्रकार के मूँगे, कहीं बहुमूल्य मणि और कहीं अत्यंत गोल-गोल मोती लगे थे। कोई भाग उसके श्वेत चन्दन, कोई रक्त चन्दन और कोई सुवर्ण के तुल्य अति पवित्र गन्धयुक्त काष्ठ से बने थे। कहाँ तक कहा जाय, उसकी चमक मध्याह्न के सूर्य के तुल्य देख पड़ती थी।

इस प्रकार के उस विमान को देख हनुमान् उस पर चढ़ गये। वहाँ चारों ओर से पीने और भक्षण करने के पदार्थों की दिव्य सुगन्ध आने लगी। बन्धु-जन अपने बन्धु को जिस तरह प्रीति से बुलाते हैं उसी प्रकार वह गन्ध मानो हनुमान् को वहाँ बुलाने लगी जहाँ रावण था। जिधर से दिव्य सुगन्ध आ रही थी वहीं रावण था। अब हनुमान् वहाँ से उस स्थान की ओर चले जो अत्यन्त मनोहर और स्वच्छ मणियों की सीढ़ियों से शोभित, सुवर्ण की जालियों से विराजित, स्फटिक एवं मणि की भूमि से भूषित, बीच-बीच में हाथी-दाँत के काम से युक्त, चित्रों से अलंकृत, मोती-हीरा-मूँगा-रूपा एवं सुवर्ण से युक्त था। वह बहुत से मणियों के खम्भों से प्रकाशमान था। सीधे, अति ऊँचे, एक समान और चारों ओर से भूषित खम्भों द्वारा वह स्थान ऐसा जान पड़ता था मानो पक्षों द्वारा आकाश में उड़ा जाता हो। उसमें अति विशाल उत्तम चौकोर बिछौने बिछे थे। राज्य और गृह से शोभित पृथ्वी की भाँति वह शाला विस्तीर्ण थी। उसमें मत्त पक्षी बोल रहे थे और दिव्य गन्धों की सुगन्धि आ रही थी। उसी में राक्षसराज रहता था। वह अगर के धूप से भरी, हंस के सदृश सफेद, पत्र और पुष्पों से पूजित, वशिष्ठ की कल्माषी नाम कामधेनु की नाईं सब मनोरथों की देनेवाली, मन को हर्ष देनेवाली, देह की शोभा को बढ़ानेवाली, शोक का नाश करनेवाली और दिव्य श्री को उत्पन्न करनेवाली थी। उस समय कपि की चक्षु आदि पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को रूप आदि पाँचों विषयों से उस शाला ने माता की नाईं तृप्त कर दिया। उस समय हनुमान् ने सोचा कि यह स्वर्ग है कि देवलोक है या इन्द्र की पुरी अथवा कोई उत्कृष्ट सिद्धि है। वहाँ सुवर्ण के दीपक ऐसे स्थिर जल रहे थे, मानो महाधूर्तों से द्यूतक्रीड़ा में हारे हुए धूर्त्त लोग शोक-ग्रस्त बैठे हों। उस समय दीपों के प्रकाश से, रावण के तेज से और भूषणों की चमक से वह घर चमक रहा था। इसके अनन्तर हनुमान् की दृष्टि दूसरी ओर जा पड़ी तो क्या देखा कि नाना रङ्ग के कपड़े और मालाएँ पहने और नाना वेष से अलंकृत हजारों स्त्रियाँ—उस ढली हुई अर्द्धरात्रि के समय—पान और निद्रा के वश में प्राप्त हो क्रीड़ा करके उत्तम बिछौने पर अचेत पड़ी सो रही थीं। उस समय वह रावण का गृह सम्पूर्ण रूप से शब्दहीन हो रहा था। वह ऐसी शोभा देता था जैसे भ्रमरों और हंसों के शब्द से रहित

कमल का वन शोभा देता है। उस समय उन स्त्रियों की आँखें बन्द थीं। उनके मुँह से कमल-तुल्य सुगन्ध आ रही थी। उन चेहरों को उस समय हनुमान् देखते थे। वे सोचते थे कि ये मुख और कमल एक से ही हैं। देखो, दिन में जैसे कमल खिल जाते हैं वैसे ही ये मुख भी खिलते हैं; रात्रि में जैसे वे कली-रूप हो जाते हैं वैसे ये भी हो गये हैं। गन्ध भी इनमें वैसा ही है, इसलिए इनमें और उनमें कुछ भी अन्तर नहीं है। कमलों की तरह इन मुख-पद्मों को सदा भौंरे चाहते हैं। उस समय वह रावण की शाला उन स्त्रियों से ऐसी शोभा दे रही थी जैसे शरत्काल का आकाश तारों से विराजता है। उन स्त्रियों से घिरा हुआ रावण, ताराओं से घिरे चन्द्र की नाईं, शोभित हो रहा था। हनुमान् अपने मन में तर्क करने लगे कि पुण्य की समाप्ति होने पर जो तारा आकाश से च्युत होती है वही स्त्री-रूप होकर रावण के पास इकट्ठी हुई है; क्योंकि उन स्त्रियों की प्रभा, वर्ण और स्वच्छता सुन्दर प्रकाशयुक्त विशाल तारों के ही समान देख पड़ती थी। उनमें बहुत सी स्त्रियों के केश और फूलों के गजरे टेढ़े-मेढ़े हो गये और भूषण छितरा गये थे क्योंकि पान और नाच-गान इत्यादि के परिश्रम से थककर वे सब निद्रा के वश हो गई थीं। उनमें बहुतों के तिलक मिट गये थे। अनेकों के पैरों के नूपुर उलट-पलट गये थे और कितनी ही स्त्रियों के हार पास ही टूटे पड़े थे। अनेकों के मुक्ताहार टूटकर ऐसे फैल गये कि उनके दानों से वे घिर गई थीं। कितनों ही के वस्त्र खसक गये और बहुतों की करधनियाँ स्थान से खसकी हुई थीं। अनेकों के कानों के कुण्डल गिर पड़े थे, बहुतों की मालाएँ टूट गई और रगड़ खा गई थीं जैसे हाथियों से मर्दी हुई फूली लता महावन में पड़ी हो। अनेक स्त्रियों के चन्द्र-किरण के तुल्य हार बटुरकर स्तनों के बीच में पड़े ऐसी शोभा देते थे मानो हंस सोते हों। अनेक स्त्रियों के पन्नों के हार स्तनों के बीच में जलकाक पक्षी की नाईं शोभा देते थे। अनेक स्त्रियों के स्तनों के मध्यगत सुवर्ण-सूत्र चक्रवाक पक्षी की भाँति प्रकाशित हो रहे थे।

उन स्त्रियों को नदियों की उपमा देनी चाहिए। पूर्वोक्त भूषणरूप पक्षी वहाँ मँडरा रहे थे और उनकी मनोहर जङ्घाएँ ही मानो तट थीं। उनकी किङ्किणियाँ सुवर्ण के कमलों की नाईं शोभा दे रही थीं। उनके विलास को ही ग्राह के तुल्य समझना चाहिए और अनेक प्रकार के उनके मनोहर गुण तट के तुल्य कहना चाहिए। इस प्रकार वे सोती हुई स्त्रियाँ नदियों के तुल्य देख पड़ती थीं। किसी-किसी स्त्री के कोमल अङ्गों में और स्तनों के अग्रभागों में, मर्दन किये जाने से, जो रेखाएँ पड़ गई थीं वे भी भूषण के तुल्य शोभा दे रही थीं। बहुत सी स्त्रियों के वस्त्र के अञ्चल मुख पर आ गये थे। वे मुख का वायु लगने से उड़ते हुए बहुत ही भले लगते थे। अनेक वर्ण के सुवर्ण-रचित वस्त्र जब मुख का वायु लगने से उड़ते थे तब फरफराती हुई पताका की नाईं शोभा देते थे। कितनों ही के कानों के कुण्डल मुख के वायु से धीरे-धीरे हिल उठते थे। एक तो शर्करासव नामक मद्य का गन्ध स्वभाव से ही सुगन्धित होता है और दूसरे वह उन स्त्रियों के मुख के श्वास से मिला हुआ था। अब भला उसकी मनोहरता का क्या कहना है। ऐसी ही गन्ध उस समय रावण की सेवा कर रही थी। रावण की कोई-कोई स्त्रियाँ अपनी सौतों के मुखों को रावण का मुख समझकर फिर-फिर सूँघ रही थीं जिन स्त्रियों का मन रावण में अत्यन्त आसक्त हो रहा था वे मद्य के अमल के वश में

होकर अपनी सौतों के मुखों को प्रिय के मुख समझकर प्रीति-व्यवहार करती थीं। कोई-कोई स्त्रियाँ अपने कङ्कणभूषित बाहु और रमणीय वस्त्रों को ही सिर के नीचे, तकिये की तरह, रक्खे सो रही थीं। कोई किसी की छाती पर, कोई किसी की भुजा को तकिया बनाये, कोई किसी की गोदी में और कोई किसी के स्तनों को तकिया बनाये पड़ी सो रही थी; कोई किसी की जङ्घा, पाँजर और कटि के सहारे और कोई किसी की पीठ से लिपटी-लिपटाई और परस्पर अङ्ग के स्पर्श से अति प्रसन्न, बाँह से बाँह को मिलाकर, मद्य और प्रीति के वश में पड़ी सो रही थी। कवि उपमा देते हैं कि परस्पर भुजरूप सूत्रों से गुँथी हुई वह स्त्रियों की माला ऐसी शोभती थी जैसे सूत में गुँथी और भ्रमरों से संयुक्त माला शोभा देती है। जैसे वैशाख में फूली हुई लताओं के पुष्पसमूह वायु-सम्बन्ध से एक में लिपटे रहते हैं वैसी ही वे स्त्रियाँ लगती थीं। वह रावण की स्त्रियों का झुंड एक जङ्गल के तुल्य शोभित हो रहा था, जिसमें फूली हुई वृक्षों की डालियाँ भौंरों से सुशोभित हो वायु लगने से परस्पर लिपट रही हों। उन स्त्रियों के अंग, भूषण और मालाएँ यद्यपि उचित स्थानों पर ही थीं तथापि परस्पर लिपटी रहने के कारण पृथक्-पृथक् पहिचानना कठिन था कि कौन भूषण है और कौन अंग, अथवा कौन भूषण किसका है। वहाँ पर रावण के निद्रावश हो जाने से जलते हुए सुवर्ण के दीपक मानो एकटक उन अनेक प्रकार की शोभा से शोभित स्त्रियों को देख रहे थे। उन स्त्रियों में से कोई तो राजर्षि की, कोई ब्राह्मण की और कोई दैत्य या गन्धर्व की स्त्रियाँ और अनेक राक्षसों की कन्याएँ थीं। वे रावण के कामवश हो गई थीं। उनमें से बहुतों को तो रावण युद्ध की इच्छा से हर लाया था कि इनके हरने से इनके घरवाले मुझसे युद्ध करें और बहुत-सी अपने आप ही, यौवन मद से काम-मोहित हो, रावण के यहाँ चली आई थीं। रावण यद्यपि बड़ा पराक्रमी था तथापि बलात्कार से किसी स्त्री को नहीं हर कर लाया, किन्तु केवल अपने गुण से उसने उनको प्राप्त किया था। उनमें ऐसी स्त्रियाँ न थीं जो दूसरे को चाहती हों अथवा दूसरे पुरुष के साथ उनका संयोग हुआ हो। उन स्त्रियों में न कोई कुलहीन थी, न कुरूप, न गँवार और न शृङ्गारहीन या अशक्त ही देख पड़ती थी। उनमें कोई ऐसी भी न देख पड़ी जिसको रावण न चाहता हो।

अब हनुमान् सोचने लगे कि यदि राक्षस-राज की इन स्त्रियों में सीता भी हो तो रावण के लिए तो अच्छा है परन्तु मेरा समुद्र लाँघना व्यर्थ है क्योंकि यदि मैं लौटकर रामचन्द्र से यह बात कहूँ तो वे उद्योगरहित हो जायँगे। वे सोचेंगे कि अपनी पत्नी जब अन्य से आसक्त हुई तब उस पर प्रेम करना निरर्थक है। ऐसा विचार करके हनुमान् मन में अत्यन्त पीड़ित होते जाते थे। वे सोचते थे कि सीता इन स्त्रियों की अपेक्षा रूप-लावण्य, पातिव्रत इत्यादि गुणों में बहुत अधिक हैं, इसलिए इन झुंडों में उनका रहना असम्भव है। यह विचारकर वे कहने लगे कि इस दुराचारी लङ्कापति ने सीता के विषय में बड़ा पाप-कर्म किया।

---

## दसवाँ सर्ग

### रावण और मन्दोदरी को देखना

अब फिर हनुमान् ने देखते-देखते एक शयन के स्थान को देखा जो दिव्य, मुख्य स्फटिक मणि से बना और रत्नों से भूषित था। वह हाथीदाँत

और सुवर्ण के बने चित्रों से भूषित, पन्नों से रचित, बड़े मूल्यवाले उत्तमोत्तम बिछौनों तथा आसनों से संयुक्त था। उस शयनस्थान के एक मुख्य देश में उज्ज्वल और चन्द्र के सदृश झलझलाता एक श्वेत छत्र देख पड़ा जो दिव्य पुष्पों से शोभित, सुवर्ण से वेष्टित, अग्नि के तुल्य प्रभावाला था। वह छत्र अशोक-पुष्प की मालाओं से अलंकृत था। यन्त्र की पुतलियाँ हाथ में चमर लिये रावण की सेवा में तत्पर थीं। वह स्थान अनेक प्रकार के गन्ध-द्रव्यों से सुगन्धित और उत्तम धूप से धूपित था। पलँग पर गलीचा बिछा हुआ था और चारों ओर फूलों की मालाएँ लटकती थीं। उस पर मेघ के सदृश कान्तिमान् रावण पड़ा सोता था। वह झलझलाते कुंडल पहने था। उस महाभुजवाले की लाल आँखें थीं। वह सुवर्ण-वस्त्र पहने, सुगन्धित लाल चन्दन की खौर लगाये, सन्ध्या-समय के बिजली-सहित मेघ के तुल्य प्रकाशमान् था। वह दिव्य-दिव्य भूषणों से भूषित, रूपवान्, कामरूपी और अनेक वृक्ष-लता-गुल्मों से आच्छादित मन्दराचल के सदृश था; वह रात्रि की क्रीड़ा करके थका और मद्य पिये हुए था; वह राक्षसों की कन्याओं का प्यारा, राक्षसों को सुख देनेवाला और नाग के ऐसा श्वास छोड़ता था। ऐसे रावण को हनुमान् ने देखा। उसका सामना होते ही कपि घबड़ाकर भयभीत की नाईं उस स्थान से कुछ हटकर सीढ़ी की आड़ में हो गये। वहाँ से वे मतवाले रावण की ओर देखने लगे। सोये हुए रावण की शैया ऐसी शोभती थी जैसा वह पर्वत का विशाल झरना शोभता है जिसमें गन्धहस्ती* सो रहा हो। रावण की भुजाएँ काञ्चन के बिजायठों से भूषित थीं। उनको फैलाये वह सो रहा था। वे भुजाएँ इन्द्रध्वज की नाईं शोभती थीं। उन पर संग्राम में लगी ऐरावत के दाँतों की चोट का चिह्न था। उन भुजाओं ने वज्र की चोट सही थी। उन पर विष्णु के चक्र के प्रहार के चिह्न बने थे। वे मोटे-मोटे काँधों से शोभित, मोटी-मोटी, बराबर चढ़ाव-उतारवाली, सुडौल और बली थीं। उनके नखों और अंगुष्ठों में सुलक्षण चिह्न थे। अँगुलियाँ सुन्दर-सुन्दर अँगूठियों से भूषित थीं। वस्त्र से आच्छादित विशाल गोल-गोल भुजाएँ हाथी के शुण्ड की नाईं सुन्दर थीं। उस सफेद बिछौने पर वे पाँच सिरवाले साँप के सदृश थीं। उन पर खरहे के रक्त के तुल्य लाल शीतल और महामूल्य सुगन्धित चन्दन लगा हुआ था। उत्तम स्त्रियों से क्रीड़ा के समय वे मर्दित हुई थीं। वे उत्तम गन्ध से सुगन्वित यक्ष, नाग, गन्धर्व, देव और दैत्यों को रुलानेवाली थीं। वे मन्दराचल की कन्दरा में सोते हुए क्रुद्ध सर्पों की नाईं शोभित थीं। उन भरी-पूरी भुजाओं-द्वारा वह रावण दो शृङ्गों से शोभित मन्दराचल के सदृश देख पड़ता था। राक्षस-राज के मुख से निकले श्वास का गन्ध आम, नागकेसर और मौलसिरी के पुष्पों से वासित, षड्रस-मिश्रित अन्न और और पान किये हुए मद्य से सुवासित था। वह उस सम्पूर्ण घर को सुगन्धित कर रहा था। मुक्ता-मणि से विचित्रित सुवर्ण-रचित मुकुट निद्रा में टेढ़ा-मेढ़ा हो गया था। उससे और कुण्डलों से उसका मुख अत्यन्त शोभित हो रहा था। उसका वक्षःस्थल मोटा और विशाल था। वह रक्त चन्दन से चर्चित और सुन्दर हार से जगमगा रहा था। यद्यपि वह सफेद रेशमी वस्त्र पहने और अति उत्तम पीला दुपट्टा ओढ़े था, परन्तु पापों के ढेर के तुल्य देख पड़ता था और भुजङ्ग के सदृश श्वास ले रहा था। उस समय सोते हुए रावण की ऐसी शोभा हो रही थी जैसे गङ्गा के तट पर

*जिसके मद के गन्ध से दूसरे हाथी भाग जाते हैं।

सोते हुए दिग्गज की होती है। उसके चारों ओर सुवर्ण के चार दीपक जल रहे थे जैसे मेघ के चारों ओर बिजली चमकती है। उसके पैरों की ओर उसकी बहुत सी पत्नियाँ सो रही थीं। वे चन्द्रमुखी स्त्रियाँ कुण्डलों से भूषित थीं और टटके फूलों की मालाएँ पहने थीं। वे सब गाने-बजाने में कुशल थीं। कोई उसकी भुजा से लिपटी थी और कोई उसकी गोद में अच्छे-अच्छे गहने पहने पड़ी सो रही थी। सबके कानों में हीरों और पन्नों से जड़े सुवर्ण-रचित कुण्डल शोभा दे रहे थे। उनके हाथों में विजायठों की शोभा हो रही थी। उस समय उन स्त्रियों के चन्द्र-तुल्य मुखों और ललित कुण्डलों से वह स्थान ऐसा शोभित हो रहा था जैसे तारागणों से आकाश शोभित होता है। मद्य के अमल और नाचने-गाने के परिश्रम से अत्यन्त खिन्न हो-होकर जहाँ जिसको स्थान मिला वहाँ घुसकर वह सो रहीं। इस प्रकार वे सब स्त्रियाँ ऊटपटाँग सो रही थीं। कोई नाचती-नाचती ऐसा हाथ फैलाये सोती थी मानो भाव बता रही हो। कोई वीणा से लिपटी हुई सो रही थी जैसे महानदी में बहती कमलिनी नौका में लिपट गई हो। कोई मरडुक नामक बाजे को बगल में लिए सो गई थी, जैसे छोटे बालक को गोद में लिए कोई सोती हो। कोई सुन्दरी तबले पर अपना सब शरीर डाले सो रही थी जैसे बहुत दिन में पति को पाकर उससे लिपटकर सो रही हो। कोई कमल-नयनी अपने प्यारे पति की नाईं वीणा का आलिंगन किये और कोई नाचनेवाली विपञ्ची नामक (एक प्रकार की) वीणा को अपने प्यारे पति की नाईं लिये और कोई कनकवर्णा, पीनाङ्गी, मत्तनयनी अपने कोमल अङ्गों से मृदङ्ग को दबाये सो रही थी। कोई दोनों भुजाओं से ढोलक थामे, कोई डिण्डिम लिये और उसी को तरुण पुत्र की भाँति आलिङ्गन किये, कोई आडम्बर को दाबे, कोई कलशी नाम वाद्य को पकड़े, वसन्ती चितकबरे पुष्पों से गुही स्वच्छ माला की नाईं शोभा पाती सो रही थी। कोई स्त्री स्वर्ण-कलश के तुल्य अपने सुन्दर स्तनों को हाथों से थामे सो गई थी, कोई दूसरी अपनी सखी से लिपटकर पड़ी सो रही थी। इसी प्रकार और-और स्त्रियाँ भी अनेक प्रकार के बाजे लिये और उनको अपने स्तनों से दबाये सोती देख पड़ीं। इन सबसे अलग, सुन्दर बिस्तरे पर सोई हुई, अत्यन्त रूपवती एक स्त्री को हनुमान् ने देखा। वह मुक्ता-मणि से रचित सुन्दर-सुन्दर भूषण पहने थी और अपनी कान्ति से उस उत्तम गृह को भूषित कर रही थी। उसके गोरे शरीर पर सुवर्ण की आभा झलकती थी। वह पति की बड़ी प्यारी और सम्पूर्ण अन्तःपुर की स्वामिनी थी। इस प्रकार रावण की पटरानी मन्दोदरी को देख हनुमान् ने समझा कि हो न हो यही सीता है।

छन्द

मन्दोदरिहि लखि धीर। तक्यो सियहि कपिवीर॥
अति हर्षयुत मन माँहि। आनन्द जलधिवगाहि॥
झटकारि पुच्छहि चूमि। क्रीड़ा कियो बहु घूमि॥
किलक्यो चल्यो कुछ दूरि। चढ़ि खम्भ कूद्यो भूरि॥

दोहा

मयतनया कहँ देखि तहँ, कपिवर सीतहि जानि।
दिखरायो कपि धर्म निज, आनन्द कौतुन सानि॥

——

## ग्यारहवाँ सर्ग

### हनुमान् की बुद्धि का बदल जाना और फिर सीता की खोज में तत्पर होना

अब हनुमान् का वह निश्चय जाता रहा। उन्हें फिर सीता को खोजने की चिन्ता हुई। वे मन में कहने लगे कि वह पतिव्रता वैदेही राम के बिना न सो सकती है, न खा सकती है, न शृंगार कर सकती और न पान ही कर सकती है। दूसरे पुरुष की तो क्या बात है, वह इन्द्र के पास भी पतिधर्म से नहीं रह सकती; क्योंकि राम के सदृश देवताओं में भी कौन है? इसलिए यह कोई दूसरी ही स्त्री है। मन में यह ठानकर वे फिर सीता को खोजने के लिए उसी पानभूमि में घूमने लगे। वहाँ पर कोई स्त्री क्रीड़ा करने से, कोई गाने से और कोई नाचने से थककर पड़ी सो रही थी; कोई अमल में चूर होकर मुरजों, मृदङ्गों और चेलिकाओं पर अपने शरीर का भार दिये सो रही थी। कोई बहुत सुन्दर बिछौनों पर कायदे से सोती थी। हजारों स्त्रियाँ गहनों से लदी सो रही थीं। उनमें कोई भाव बताती, कोई गीत का तात्पर्य कहती, कोई देश-काल के अनुसार वाक्य कहती-कहती और कोई उत्तम प्रकार से क्रीड़ा करती-करती सो गई थी। उसी पानगृह के दूसरे स्थल में भी इसी दशा में सोती हुई हजारों स्त्रियाँ देख पड़ीं। उनके बीच में सोता हुआ रावण ऐसा शोभता था जैसे बड़ी गोशाला में गायों के बीच बैल सोता हो या जैसे जंगल में हथिनियों से घिरा महागज सोता हो। रावण की उस पान भूमि में सब प्रकार के पदार्थ थे। कपि ने वहाँ मृगों का, भैसों का और शूकरों का मांस देखा। सुवर्ण के बड़े-बड़े पात्रों में मोर और मुरगे का मांस देख पड़ा। शूकर, बाघीणस, साही, हरिण और मोर—इन जन्तुओं का मांस दही और नमक से लिपटा हुआ वहाँ देख पड़ा। आधा खाया हुआ कुक्कुल पक्षी, अनेक प्रकार के बकरों, खरहों, भैंसों और एकशल्य मत्स्य का मांस अच्छे प्रकार से पकाया हुआ हनुमान् को देख पड़ा। कितने ही चाटने योग्य, बहुत से पीने के योग्य और अनेक खाने के योग्य पदार्थ वहाँ थे, जिनमें बहुत से तो तीक्ष्ण, खट्टे और खारे पदार्थों से मिश्रित थे। नाना प्रकार के दाख और अनार के पतले एवं गाढ़े रसों में चीनी और मधु इत्यादि मीठे द्रव्य लपेटे हुए रक्खे थे। किसी स्थान में पीने के पात्र, हार, नूपुर, और बिजायठ फेके हुए पड़े थे; कहीं प्यालों में अनेक प्रकार के फल पड़े थे। कहीं फूल बिखरे पड़े थे। इनके द्वारा वह पानभूमि शोभायुक्त हो रही थी। सुवर्ण और रत्नों मे रचित अनेक प्रकार के पलँग, चौकी, सोने और बैठने के पदार्थ जहाँ-तहाँ रक्खे थे। उनके द्वारा वह भूमि ऐसी चम-चमाती थी मानो आग लगी हो। वहाँ पर कहीं अच्छी चतुरता से पकाये हुए मांस और कहीं दिव्य निर्मल अनेक प्रकार के मद्य रक्खे थे। कहीं चुआये हुए मद्य, कहीं गुड़ से बने, कहीं दाख के, कहीं फूल के और कहीं फल के—चित्र-विचित्र भाँति से निकाले गये—मद्य अनेक प्रकार के सुगन्धित मसालों से बसाये हुए पृथक्-पृथक् रक्खे देख पड़ते थे। वह पान-भूमि पुष्पों की ढेरियों, सुवर्ण के कलशों, स्फटिक के पात्रों और काञ्चन के करवों से भरी हुई शोभा दे रही थी। कहीं चाँदी के और कहीं सुवर्ण के बड़े-बड़े कुण्डे रक्खे हुए उस भूमि को शोभित कर रहे थे। कहीं सुवर्ण के और रत्न के पात्रों में मद्य भरा रक्खा था। उनमें कोई तो

आधे खाली, कोई बिलकुल खाली अर्थात् पिये हुए और कोई सबके सब भरे देख पड़े। कहीं भक्ष्य पदार्थ आधे खाये देख पड़ते थे। कहीं स्त्रियों के बिछौने खाली पड़े थे। कहीं स्त्रियाँ परस्पर आलिङ्गन किये पड़ी सोती थीं। कहीं कोई स्त्री दूसरी के वस्त्र को छीन कर उससे अपने शरीर को लपेटे गाढ़ी निद्रा में सोती हुई कपि को देख पड़ी। उनके निःश्वास-वायु से शरीर प्रकार के कपड़े और मालाएँ धीरे-धीरे काँप रही थी, जैसे मन्द वायु से काँपती हों। उस समय पुष्पक विमान पर शीतल चन्दन और मद्य से सुवासित वायु बहुत ही मनोहरता से बह रहा था। उस वायु में नाना प्रकार के मधुरस का, अनेक प्रकार की मालाओं का और अनेक प्रकार के पुष्पों का गन्ध था; वह अनेक प्रकार के केशों के मसाले के चन्दन को स्पर्श करता और धूप के धूम को उड़ाता हुआ बह रहा था। दूसरी ओर भी बहुत सी स्त्रियाँ निद्रा के वश में पड़ी थीं जिनमें कोई तो साँवली, कोई काली और कोई सुवर्णवर्णा थी। उनका रूप काम-बल से अत्यन्त मनोहर था। वह ऐसा देख पड़ता था जैसा मुकुलित कमलों का स्वरूप होता है। कपिश्रेष्ठ ने इस प्रकार रत्ती-रत्ती करके रावण के अन्तःपुर को देखा परन्तु श्रीजानकीजी कहीं न मिलीं। जब कपि की दृष्टि उधर जाती थी तब स्त्रियाँ ही देख पड़ती थी, इस-लिए उन्हें धर्मलोप का भय उत्पन्न हुआ। वे मन में बड़ी चिन्ता करने लगे कि देखो सोती हुई दूसरे की स्त्रियों को देखना मेरे धर्म का नाश करेगा। मेरी दृष्टि आज तक दूसरों की स्त्रियों पर कभी नहीं पड़ी थी सो आज मैंने इस पापी पर-स्त्रीगामी रावण के साथ ही इन स्त्रियों को भी देखा। यह सोचते-सोचते श्रीहनुमान् के चित्त में स्थिरता और निश्चय के साथ कर्तव्य-अकर्तव्य के निर्णय के विषय में यह बात आई कि यद्यपि मैंने इन स्त्रियों को भली भाँति देखा है तथापि मेरे मन में कुछ भी विकार का लेश नहीं जान पड़ता। पुण्यकर्म और पापकर्मों में सब इन्द्रियों का प्रेरक मन ही है। सो मेरा मन अपने ठिकाने पर ही है, अर्थात् कुछ भी डिगा नहीं और स्त्रियों के स्थानों को छोड़ मैं वैदेही को खोजूँ ही कहाँ पर? स्त्रियाँ तो स्त्रियों में ही ढूँढ़ी जाती हैं। जिस पदार्थ की जो जाति है उसे उसी जातिवाले पदार्थों में लोग खोजते हैं; मनुष्य की खोई हुई स्त्री को मृगियों के झुण्ड में कोई नहीं ढूँढ़ता मैंने शुद्ध मन से रावण के सम्पूर्ण रनिवास को ढूँढ़ डाला पर जानकी न देख पड़ीं। और भी बहुत सी देव, गन्धर्व और नाग-कन्याओं को तो देखा, पर जानकी को न देखा।

दोहा

ढूँढ़्यो बहुधा यत्न करि, सीता को नहिं पाय।
पान-भूमि तजि अनत तब, खोजत भे कपिराय॥

---

## बारहवाँ सर्ग

### उस स्थान को छोड़कर दूसरी जगह हनुमान् का सीता को खोजना

उस राजभवन के बीच हनुमान् ने लतागृहों, चित्रशालाओं और रात्रि-गृहों को रत्ती-रत्ती करके ढूँढ़ा, पर जानकी न मिलीं। तब तो उनके मन में यह दृढ़ निश्चय हुआ कि सीता जीती नहीं है। यदि जीती होती तो अवश्य मुझे देख पड़ती। इसलिए मैं समझता हूँ कि अपने धर्म की रक्षा में तत्पर और आर्यमार्ग अर्थात् पातिव्रत्य धर्म पर आरूढ़

उस बेचारी को इस दुष्ट राक्षस ने मार डाला होगा; अथवा इन कुरूप, विकराल, भयङ्कर, बड़े-बड़े मुखवाली और बेढंगी आकृतिवाली राक्षसराज की स्त्रियों को देखकर उसने डर से अपने प्राण त्याग दिये होंगे। मैंने न तो सीता को देखा और न अपने परिश्रम का फल पाया; केवल वानरों के साथ समय नष्ट किया है। अब मेरी गति सुग्रीव के समीप जाने की नहीं हो सकती क्योंकि वह वानर बड़ा तीक्ष्ण दण्ड देनेवाला और बलवान् है। मैंने सब अंतःपुर छान डाला और रावण की सब स्त्रियों को देखा, पर पतिव्रता सीता न देख पड़ी। मेरा परिश्रम वृथा हुआ। मुझे सब वानर लोग क्या कहेंगे! जब मैं सीता को बिना देखे उस पार जाऊँगा और सब वानर मुझसे पूछेंगे कि वहाँ जाकर तुमने क्या किया तब मैं उनको क्या समझाऊँगा! सुग्रीव का नियत किया हुआ समय तो बीत ही गया है इसलिए अब मैं प्रायोपवेशन अर्थात् अन्न-जल छोड़कर प्राण छोड़ दूँगा। यदि मैं पार जाऊँ तो वह वृद्ध जाम्बवान्, अङ्गद और सब वानर मुझे क्या कहेंगे! वायु-पुत्र इस प्रकार चिन्ता कर फिर मन में विचार करने और सोचने लगे कि भाई, खेद का त्याग ही कार्यसिद्धि का मूल है। खेद का त्याग करने में ही परमसुख है। इसलिए अब मैं सीता को वहाँ भी ढूँढूँगा जहाँ नहीं ढूँढ़ा है, क्योंकि खेद का त्याग सब पदार्थों में प्रवृत्त करनेवाला है; वह मनुष्य के उस काम को सफल कर देता है जिसे वह करता है। इसलिए खेद को त्यागकर मैं उन स्थानों में भी जानकी को खोजूँगा जिनमें अभी खोज नहीं की है। देखो, मैं पानगृह, पुष्पगृह, चित्रशाला, क्रीड़ागृह, गृह वाटिका की गलियों और विमान को सब प्रकार ढूँढ़ चुका। यह विचार कर हनुमान् फिर ढूँढ़ने लगे।

अब हनुमान भूमि के नीचे तलगृहों को, प्राचीन और विख्यात वृक्षों के पास के मठों और घर के पास के घरों को ढूँढ़ते हुए कहीं ऊपर कूदते और फिर वहाँ से नीचे कूद पड़ते तथा खड़े हो जाते थे। कहीं चलते, कहीं द्वारों को खोल देते और कहीं किवाड़ों को बन्द करते थे। कहीं घुस जाते और कहीं निकल आते, कहीं ऊपर चढ़ जाते और कहीं नीचे उतर आते थे। इस प्रकार वे सब स्थानों में गये। यहाँ तक कि रावण के अन्तःपुर में चार अङ्गुल भूमि भी कपि के देखने से न बची। गृहों के बीच की गलियाँ, चौराहों के वृक्षों के चौतरे, गढ़हे और पुष्करिणी भी ढूँढ़ने से न बची। नाना प्रकार की विरूप, विकराल, बहुत सी राक्षसियों और विद्याधरों की परमसुन्दरी स्त्रियों को हनुमान् ने देखा। चन्द्रमुखी नागकन्याओं को रावण बलात्कार से हर लाया था, वे भी बहुत सी देख पड़ीं, पर वैदेही का पता न लगा। अब फिर हनुमान् सीता को न पाकर दुखी हुए। वानरेन्द्रों के उद्योग और सागर पार आने को वे व्यर्थ समझकर चिन्ता करने लगे।

दोहा

कपिवर उतरि विमान ते, मनहीं मन अकुलात।
अब कित खोजिय जानकिहि, बहुबिधि सोचत जात॥

---

## तेरहवाँ सर्ग

### हनुमान् की चिन्ता और अशोकवाटिका को ढूँढ़ने के लिए विचार करना

अब हनुमान् उस विमान पर से वेगपूर्वक एक अटारी पर कूद गये। वहाँ भी इधर-उधर

दृष्टि फैलाकर सीता को न देख कहने लगे कि देखो, रामचन्द्र की प्रसन्नता के लिए मैंने बार-बार लङ्का को ढूँढ़ा पर सीता न मिली। पुष्करिणी, तालाब, झील, छोटी-बड़ी नदियाँ, उनके तीर के वन, किले और पर्वत, ये सब ढूँढ़ डाले पर सीता के दर्शन न हुए। देखो, गृध्रराज सम्पाति ने सीता को यहीं बताया था, सो क्यों नहीं देख पड़ती। मैं जानता हूँ कि वही सुन्दरी स्त्री सीता होगी जो मुझे अलग पलँग पर सोती देख पड़ी थी; क्योंकि रावण बलात्कार से हर ले आया है, इसलिए वह विवश होकर कदाचित् रावण के वश में हो गई हो। अथवा जब रावण हरण करके राम के बाणों के डर से फुर्ती से उड़ा हो तब बीच में ही गिर पड़ी हो, या जिस समय वह आकाश-मार्ग से चला हो उस समय समुद्र को देख, मारे डर के, वैदेही के प्राण निकल गये हों। मुझे तो यह जान पड़ता है कि रावण के बड़े वेग से और उसकी दोनों भुजाओं के दबाव से जानकी ने प्राणत्याग कर दिया। अथवा समुद्र के ऊपर से आने में छटपटाती हुई सीता समुद्र में गिर पड़ी हो, या अपने पातिव्रत्य धर्म की रक्षा में तत्पर उस अनाथ तपस्विनी को इस नीच ने अथवा इसकी दुष्ट स्त्रियों ने ही खा लिया हो। हा! श्रीराम के नयन कमल-सदृश हैं और पूर्ण चन्द्र के तुल्य मुख है, उसी का ध्यान करती वह दीन बेचारी मर गई होगी। मैं जानता हूँ कि अवश्य वैदेही ने हा राम! हा लक्ष्मण! हा अयोध्ये! ऐसा बहुत विलाप करके देह का त्याग किया होगा; अथवा इसने किसी गुप्त स्थान में उसको डाल रक्खा होगा। वहाँ पर वह पिंजड़े में पड़ी मैना की नाईं राम-राम पुकारती और अत्यन्त चिल्लाती होगी। पहले जो मैंने सोचा था कि कदाचित् रावण के वश में हो गई हो सो ठीक नहीं है, क्योंकि जनक के कुल में उत्पन्न और महाराज श्रीरामचन्द्र की धर्म्मपत्नी होने के कारण किस प्रकार वह रावण के वश में हो जायगी! अब मैं श्रीराघव के समीप जाकर कैसे कहूँगा कि लंका में सीता को नहीं देखा, अथवा देखा है या वे मरण को प्राप्त हुईं। बड़ा कठिन तो यह है कि निवेदन करने में भी दोष है और जो निवेदन न करूँ तो भी दोष है, इसलिए अब क्या करना चाहिए।

इस प्रकार विचार करते हुए हनुमान् ने सोचा कि यदि मैं सीता को बिना देखे ही यहाँ से किष्किन्धा को लौट जाऊँ तो मेरा क्या पुरुषार्थ होगा। सागर का लाँघना, लंका में आना और राक्षसों का देखना, यह सब मेरा व्यर्थ हो जायगा। भला कदाचित् सुग्रीव ने क्षमा कर दिया तो भी वे मुझे क्या कहेंगे, फिर श्रीराम-लक्ष्मण और सब वानर भी क्या कहेंगे! यदि मैं जाकर श्रीरामचन्द्र से यह कठोर वचन कहूँ कि मैंने सीता को नहीं देखा तो वे अवश्य प्राणों को त्याग देंगे, क्योंकि सीता के विषय में ऐसी बात श्रीराघव के लिए केवल कठोर, भयंकर और इन्द्रियों को ताप देनेवाली ही होगी। ज्येष्ठ भ्राता की ऐसी दशा देख अत्यन्त प्रेमी लक्ष्मण भी देह को न रक्खेंगे। इन दोनों भाइयों का नाश सुनकर भरत और शत्रुघ्न भी जीवित न रहेंगे। पुत्रों का मरण होने पर इनकी माताएँ भी न बचेंगी। सुग्रीव तो कृतज्ञ और सत्य-सन्ध हैं वे भी राम की यह दशा देख प्राण छोड़ देंगे। पति का मरण देख रुमा उदास और पीड़ित होकर पति के शोक से मर जायगी। तारा रानी एक तो बाली के दुःख से पीड़ित हुई है, दूसरे सुग्रीव की भी यह दशा देख मारे शोक के कैसे जियेगी! माता-पिता के बिना, और सुग्रीव के शोक से भी, कुमार अंगद जीते न रहेंगे। अब रह गये वानर

लोग, सो ये भी स्वामी का विनाश देख थप्पड़ों और मुष्टिकाओं से अपने मस्तकों को कूटेंगे। देखो, सुग्रीव समाश्वासन और पारितोषिक देकर तथा सम्मान द्वारा इन वानरों पर कैसा दुलार रखता था, सो ये अब प्राणों को त्याग देंगे। ये सब न तो वनों में क्रीड़ानन्द करेंगे और न पर्वतों या गुफाओं में ही इन्हें आनन्द मिलेगा। ये सब पुत्र-स्त्री-सहित और परिजनों के साथ पर्वतों से गिर-गिरकर अपने प्राण दे देंगे। इनसे स्वामी की विपत्ति न देखी जायगी। विष खाकर या फाँसी लगाकर अथवा अग्नि-प्रवेश करके या उपवास अथवा शस्त्र के द्वारा ये सबके सब वानर नष्ट होंगे। मैं जानता हूँ कि मेरे वहाँ पहुँचने पर घोर रुदन होगा। फिर इक्ष्वाकु-कुल का और वानर-कुल का भी अवश्य नाश होगा। इसलिए यहाँ से मैं जाऊँगा ही नहीं। सीता का पता लगाये बिना मैं सुग्रीव को नहीं देख सकता। जब मैं न जाऊँगा तब अवश्य आशा से वे महात्मा दोनों भाई और वानर लोग भी जीते रहेंगे। इसलिए अब मैं वानप्रस्थ हो जाऊँगा। जो वस्तु आप से आप हाथ में आ जायगी अथवा मुख में आ पड़ेगी उसी को खा लूँगा। जितेन्द्रिय होकर वृक्ष के तले निवास करूँगा। अथवा जीना ही ठीक नहीं, इसलिए सागर के तीर पर—जहाँ फल, मूल और जल बहुतायत से मिल सकता है—चिता बनाकर अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा। अथवा शरीर को भस्म कर देना ठीक नहीं इसलिए मैं प्रायोपवेशन करके ही चुपचाप बैठूँगा। तब कौवे और जंगली जीव मेरे शरीर को भक्षण कर जायँगे। इस शरीर से दूसरों का पेट भरे तो इससे अच्छी बात दूसरी क्या है! ऋषि लोगों ने जल में डूब मरने को भी तो शरीर-त्याग का एक उपाय बताया है, इसलिए मैं भी डूब मरूँगा। हा! देखो तो यश की बढ़ानेवाली मेरी सुन्दर कीर्त्तिमाला वैदेही के न मिलने से नष्ट हो गई। आत्महत्या महापातक है, इसलिए तपस्वी होना ही ठीक है। जो सीता के दर्शन न होंगे तो मैं तापस होकर किसी वृक्ष के नीचे बैठा रहूँगा। भला रामचन्द्र के पास न जाकर पार ही चला जाऊँ तो भी ठीक नहीं, क्योंकि अंगद जो सुनेंगे कि कार्य की सिद्धि नहीं हुई तो वानरों के साथ अपने प्राण त्याग देंगे। अब तो मुझे यह सूझता है कि विनाश में बहुत से दोष हैं और जीते हुए को मङ्गल की प्राप्ति होती है, इसलिए मैं प्राणों का त्याग न करूँगा; क्योंकि जीते को अवश्य इष्ट-सिद्धि होती है।

इस प्रकार की बहुतेरी चिन्ताएँ करते-करते श्रीवायु-नन्दन को शोक से बचने का कोई उपाय नहीं मिलता था। थोड़े समय के अनन्तर वे अपने पराक्रम को सँभालकर हिम्मत बाँधकर कहने लगे कि कुछ नहीं, अब इस खल रावण को मार डालना ही ठीक है। सीता का हरण हुआ तो हुआ, वैर का बदला तो ले लिया जाय; अथवा इस दुष्ट को उठाकर समुद्र के ऊपर ही ऊपर ले चलूँ और रामचन्द्र को भेंट दूँ, जैसे यज्ञकर्त्ता लोग शिव के लिए पशु की भेंट चढ़ाते हैं। इस प्रकार की चिन्ताएँ करते-करते हनुमान् ने सोचा कि जब तक सीता न मिलेंगी तब तक बार-बार इसी लङ्का को ढूँढूँगा क्योंकि सम्पाति ने निश्चयपूर्वक सीता को लङ्का में ही बताया है; अथवा न हो तो श्रीरामचन्द्र को ही यहाँ बुला लाऊँ, परन्तु इसमें एक कठिनाई है। यदि रामचन्द्र यहाँ आकर सीता को न पावेंगे तो राक्षसों को चौपट करके सब वानरों को भी भस्म कर डालेंगे। इसलिए भाई अब कुछ नहीं, मेरा पहला ही विचार ठीक है कि मैं विरक्त, नियताहार और जितेन्द्रिय होकर यहाँ निवास करूँ। यह ठीक नहीं कि मेरे लिए सब

वानर मारे जायँ। अहो, एक बात तो मैं भूल ही गया। बड़े-बड़े वृक्षों से भरी इस अशोकवाटिका को तो मैंने खोजा ही नहीं। इसलिए अब इसको भी मैं ढूँढ़ डालूँ और राक्षसों के शोक को बढ़ाऊँ; तथा इन्हें जीतकर सीता को ले राम को समर्पण करूँ।

हनुमान् मुहूर्त्त-मात्र इस प्रकार सोच-विचार कर उठ खड़े हुए। राम, लक्ष्मण, जानकी, रुद्र, इन्द्र, यम, वायु, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वसु और अश्विनीकुमार को और और सब देवताओं को तथा सुग्रीव को प्रणाम कर उन्होंने सब दिशाओं को देखा। अब उन्होंने अशोक-वाटिका में जाने का दृढ़ विचार किया। वे सोचने लगे कि वहाँ जाकर क्या करना चाहिए। कपि के मन में यह विचार आया कि यह अशोकवाटिका राक्षसों से भरी और सभी संस्कारों से शोभित होगी। बहुत से राक्षस यहाँ पर वृक्षों की रक्षा करते होंगे। भगवान् विश्वात्मा वायु भी बड़े वेग से न बहते होंगे। राम के कार्य के लिए और रावण से छिपाने के लिए मैंने अपने शरीर को छोटा सा कर लिया है। अब इस समय देव, ऋषि स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा, देवर्षि लोग, अग्नि, वज्रधारी इन्द्र, पाशधारी वरुण, चन्द्र, सूर्य, अश्विनीकुमार, वायु, सब भूतगण और उनके स्वामी एवं अदृश्यरूप देव-गण—ये सब मेरे कार्य की सिद्धि करें। मैं सीता देवी के मुख को कब देखूँगा! वे ऊँची नासिका से शोभित और निर्मल चन्द्र के तुल्य मनोहर हैं। कमल सदृश उनके नेत्र हैं। देखो, यह नीच, हीन, घातक, भयंकर-वेषधारी और अलंकार धारण करनेवाला रावण उस अबला तपस्विनी को जबरदस्ती हर ले आया है। देखें, किस प्रकार से श्रीजानकी मेरे दृष्टिगोचर होती हैं।

---

# चौदहवाँ सर्ग

## अशोकवाटिका का वर्णन

इस प्रकार मन में सोच-विचार करके कपिश्रेष्ठ जिस गृह के प्राकार पर थे वहाँ से अशोक-वाटिका के प्राकार पर कूद गये। वहाँ वसन्त प्रभृति सब ऋतुओं के फूले-फूले वृक्षों को देख वे अत्यन्त हर्षित हुए। हनुमान् ने वहाँ पर शाल, अशोक, भव्य चम्पा, लसोड़ा, नागकेसर, आम और शाल-वृक्षों को देखा। वहाँ आम के जङ्गल से आच्छादित और सैकड़ों लताओं से वेष्ठित झाड़ियाँ थीं। उन्हें देखकर वे प्रत्यञ्चा से छूटे बाण की नाईं वाटिका में जा रहे। अब वे उस वाटिका की शोभा देखने लगे। वह वाटिका अति विचित्र पक्षियों से शब्दायमान, रजत और काञ्चन के वृक्षों से शोभित, पक्षियों और सुन्दर-सुन्दर मृगों से मनोहर थी। वह वाटिका उदयकाल के सूर्य के सदृश चमकती, पुष्पों और फलों से लदे वृक्षों से भरी, मत्त कोकिल और भ्रमरों से सेवित और पुरुषों को सदा हर्ष देनेवाली थी। वह नाना मृग, पक्षी और मत्त मयूर इत्यादि के कोलाहल से रमणीय थी। अब हनुमान् वहाँ सीता को खोजते ही थे कि उनके कूदने-फाँदने से पक्षी जाग उठे। उनके उड़ने से जो वृक्ष हिले उनसे झरकर कपि के ऊपर ऐसी पुष्पवृष्टि हुई कि वे उस वाटिका के पुष्पों के पर्वत के सदृश हो गये। उस समय एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर कूदते हनुमान् को जिन प्राणियों ने देखा उन्होंने यही जाना कि शरीरधारी वसन्त ऋतु इस वाटिका में घूम रहा है। उस भूमि पर वृक्षों से जो अनेक प्रकार के पुष्प गिरे थे उनसे वह ऐसी शोभित हुई जैसे नाना भूषणों से भूषित स्त्री की शोभा होती है।

हनुमान् ने भी बड़े वेग से उन वृक्षों को हिलाया, इससे उनके पत्ते, फुनगियाँ और फल-फूल सब झड़ पड़े। फूल-फल-पत्ते गिर जाने से उस समय वे वृक्ष ऐसे धूर्त लोगों की तरह देख पड़ते थे जिनके वस्त्र और आभूषण जुआ में हारने के कारण छीन लिए गये हों। हिलाये जाने के कारण वहाँ के वृक्षों पर न फूल रहे और न फल; केवल उनकी शाखाएँ रह गईं। उन पर से पक्षी भी उड़ गये। वहाँ हनुमान् ने पुच्छ से, हाथों से और पैरों से वृक्षों का विध्वंस कर डाला। हनुमान् ने महालताओं के झुरमुटों को इस तरह नष्ट कर दिया जैसे वर्षाकाल में हवा मेघ-घटा को छिन्न-भिन्न कर देती है। उस समय अशोकवाटिका का स्वरूप ऐसी तरुणी के सदृश देख पड़ता था जिसके केश बिखरे हों और तिलक पोंछा हुआ हो, जिसके अधर में दन्तक्षत और अन्य अङ्गों में दन्ताघात एवं नखाघात हुए हों। हनुमान् ने वहाँ रजतमयी, मणिमयी और कांचनमयी अनेक प्रकार की भूमियों को देखा। मनोहर जल से भरी अनेक बावलियाँ भी देख पड़ीं, जिनकी सीढ़ियाँ मणियों से बनी थीं और जिनमें मोती-मूँगे ही बालू के स्थान पर थे। उनका तलभाग स्फटिक से बना हुआ था। उनके तीरों पर चित्र-विचित्र सुवर्णमय वृक्ष लहलहा रहे थे। उनमें फूले-फूले कमलों के जङ्गल थे। चक्रवाक, दात्यूह*, हंस और सारस वहाँ शब्द कर रहे थे। उनके चारों ओर नदियाँ थीं जिनमें अमृत-तुल्य जल भरा हुआ था और जिनके किनारे पर वृक्ष लगे थे। उनमें सैकड़ों लताएँ झुक रही थीं। उनका जल देववृक्ष के पुष्पों और नाना प्रकार के गुच्छों से अलंकृत था। उनमें कन्दइल-वृक्ष झरोखों की नाईं शोभित हो रहे थे।

इसके अनन्तर कपि ने एक बहुत ऊँचा मेघाकार अपूर्व पर्वत देखा। उसके विचित्र शिखर थे, वह शिलागृहों से रमणीय और नाना वृक्षों से घिरा हुआ था। उस पर्वत से गिरी एक नदी वहाँ ऐसी देख पड़ी मानो क्रोध करके पति की गोद में से प्रिया स्त्री भूमि पर लेट रही हो। नदी के चारों ओर जो वृक्ष थे उनके अग्र भाग पानी को छू रहे ऐसी शोभा देते थे मानो कोपवती स्त्री को प्यारी सखियाँ मना रही हों। उस नदी में जो पानी पीछे मुड़ रहा था उससे ऐसी शोभा हो रही थी मानो वह मानवती मान छोड़कर पति के अनुकूल हुई हो। उससे थोड़ी ही दूर पर वायुनन्दन ने कमलों से भरी और नाना प्रकार के पक्षियों से भूषित झीलें और कृत्रिम बावलियाँ भी देखीं। वे शीतल जल से पूर्ण थीं। वे झीलें श्रेष्ठ मणियों की सीढ़ियों से भूषित, मोती-रूप बालू से शोभित, अनेक प्रकार के मृगों से विचित्रित और चित्र-विचित्र जङ्गलों से मनोहर थीं। वहाँ पर विश्वकर्मा के बनाये अनेक प्रकार के भवन थे। झीलों के समीप अनेक प्रकार के कृत्रिम जंगल थे। फूलों-फलों से लदे वहाँ जो वृक्ष थे वे सब छत्र की भाँति फैले-फैले उन पर छाया किये हुए थे। उनकी जड़ में सुवर्ण के थाले थे। वहाँ पर बहुत से लताजालों से लदा और सुवर्णमय वेदिकाओं से चमकता हुआ सुवर्ण के रङ्ग का एक शीशम का वृक्ष था। अनेक प्रकार की भूमियों के भाग, पहाड़ी झरने और दूसरे-दूसरे सुवर्णवृक्ष—जो अग्नि के तुल्य चमक रहे थे—इनको कपि ने देखा। उन सुवर्णवृक्षों की प्रभा से हनुमान् ने अपने को काञ्चनमय समझा। कपि को यह जान पड़ा कि मैं सुवर्ण का हो गया हूँ। जब ये वृक्ष वायु से हिले तब उनमें से सैकड़ों घुँघरूदार भूषणों का झन-झन शब्द होने लगा। यह देखकर कपि को बड़ा

*कठफोड़वा।

आश्चर्य हुआ। वे वृक्ष कुछ सुवर्ण के कृत्रिम नहीं थे, बल्कि उनके अग्र भाग सुन्दर-सुन्दर फूलों से लदे थे और उनमें नये-नये अंकुर और पत्ते भी सुवर्णमय लगे देख पड़ते थे।

अब हनुमान् कूदकर उस शिंशपा पर इस आशा से चढ़ गये कि यहाँ से कदाचित् वैदेही को मैं देख सकूँ; क्योंकि वे दुःख से पीड़ित कदाचित् इधर आ जायँ। यह अशोकवाटिका अत्यन्त रमणीय है। इसमें चन्दन, चम्पा और मौलसिरी के वृक्ष शोभायमान देख पड़ते हैं। यहाँ कमलों से भरी और पक्षियों से शोभित यह वापी अत्यन्त रमणीय है। राजपत्नी जानकी यहाँ अवश्य आवेंगी। वह राम की प्यारी वन की सैर करने में चतुर हैं इसलिए अवश्य आवेंगी। उनको वन में विचरने का अभ्यास भी तो है, अतएव राम के विरह से अत्यन्त पीड़ित होने के कारण उनका यहाँ आना बहुत सम्भव है। वन के मृगों और पक्षियों को वे बहुत चाहती हैं और यह प्रातःसन्ध्या का समय भी है। इसलिए प्रातःकृत्य करने को इस नदी पर वे अवश्य आवेंगी। यह वाटिका उन राज-राजेन्द्रपत्नी के योग्य है भी। यदि वे जीती होंगी तो इस नदी के तीर पर अवश्य देख पड़ेंगी। इस प्रकार श्री वानरेन्द्र, पुष्पित वृक्ष के घने पत्तों में छिपे-छिपे, सीता की बाट जोहते हुए चारों ओर देख रहे थे।

---

## पन्द्रहवाँ सर्ग

### हनुमान् का सीता को देखना

उस भूमि की ओर हनुमान् इस प्रकार देख रहे थे जो कल्पवृक्षों की लताओं और वृक्षों से शोभित, दिव्य गन्ध और रसों से युक्त नन्दनवन के तुल्य थी। वह भूमि मृग और पक्षियों से भरी, अटारी और भवनों से मनोहर, कोकिलाओं के शब्दों से नादित और सुवर्ण के कमलोंवाली वापियों से मनोहर थी। वहाँ बहुत से आसन और बिछौने बिछे हुए थे। बहुत तलवाले गृह वहाँ बहुतेरे थे। वह स्थान सब ऋतुओं के पुष्पों और फलों से लदे हुए वृक्षों से रमणीय और पुष्पित अशोक वृक्षों की शोभा के द्वारा उदय-काल के सूर्य के सदृश प्रभायुक्त और प्रज्वलित था। सैकड़ों पक्षी पुष्प-रूप भूषण धारण किये थे। उनकी चहल-पहल से वहाँ के कई एक वृक्ष ऐसे भी देख पड़ते थे मानो उनमें पत्र और शाखाएँ न हों। जड़ से लेकर पल्लव तक फूले हुए, मन को हर्ष देनेवाले अशोक-वृक्ष पुष्पों के बोझ से भूमि को छू रहे थे। उनकी और फूले हुए कर्णिकार एवं टेसुओं की प्रभा से वह जगह प्रज्वलित सी देख पड़ती थी। वहाँ नाग-केसर, छितउन, चम्पा और लसोढ़े के वृक्ष पुष्पित और विशाल थे। उनकी जड़ें मजबूत थीं। इनमें अशोक के कई वृक्ष तो सुवर्ण के तुल्य, कई अग्नि-ज्वाला के सदृश और बहुत से काजल की नाईं काले-काले देख पड़ते थे। इस उद्यान की सुन्दरता देवताओं के नन्दन नामक उद्यान और कुबेर के चैत्ररथ वन की तरह विचित्र थी। यह रावण का उद्यान ऐसा अच्छा था जिसके वर्णन में मन का प्रवेश नहीं हो सकता। इस उद्यान को पुष्परूप तारागणों से युक्त आकाश कहना चाहिए अथवा इसे पुष्परत्नों से भरा एक विचित्र पाँचवाँ सागर कहना चाहिए। इस उद्यान में सभी ऋतुओं के पुष्प और मधु-गन्धयुत वृक्ष थे। यह मृग-पक्षियों के अनेक शब्दों से नादित और अनेक प्रकार के पवित्र गन्धों से ऐसा सुगन्धित था मानो दूसरा गन्धमादन हो। उस अशोक-

वाटिका में पास ही एक गोल गृह था जिसमें हजार खम्भे लगे हुए थे। वह कैलाश के तुल्य सफेद था। उसमें मूँगों की बनी सीढ़ियाँ लगी थीं; सुवर्ण की मनोहर वेदियाँ थीं। वह अपने प्रकाश से नेत्रों को चुराता सा था। ऊँचा इतना था कि आकाश को छूता था। वहाँ पर मैले कपड़े पहने एक स्त्री को हनुमान् ने देखा। वह राक्षसियों से घिरी उपवास से कृश, दीन और बार-बार ऊँची साँस ले रही थी। वह शुक्ल-पक्ष के आरम्भ की चन्द्ररेखा की नाईं निर्मल थी। उसका रूप भली भाँति लक्षित नहीं होता था, परन्तु प्रभा के द्वारा वह ऐसी मनोहर देख पड़ती थी जैसे धूम से घिरी अग्नि की ज्वाला हो। वह एक जीर्ण उत्तम पीला कपड़ा पहने थी। उसकी देह पर कोई भूषण न था; वह पुष्पहीन कमलिनी के तुल्य, दुःख से सन्तप्त, अति क्षीण, तपस्विनी, मंगल ग्रह से पीड़ित रोहिणी के तुल्य थी। उसके नेत्रों में आँसू भरे हुए थे। वह दीन, भूखी रहने के कारण दुबली, शोक और ध्यान में तत्पर थी और काले साँप के तुल्य एक वेणी को—जो पीठ पर पड़ी थी—धारण किये थी, जैसे वर्षा के अन्त में नीले रङ्ग की वनपंक्ति को पृथ्वी धारण करती है। वह सुख भोगने के योग्य थी और दुःखों को न जानती थी परन्तु इस समय दुःख भोग रही थी। उस विशाल नयनोंवाली को देख हनुमान् ने अनेक निश्चित कारणों से जाना कि यही सीता है।

वे मन में निश्चय करने लगे कि जिस रूपवती स्त्री को राक्षस उस दिन लिये चला जाता था उसी का सा इसका रूप है। वह चन्द्रमुखी अपनी प्रभा से दिशाओं को अन्धकार रहित कर रही थी। वह सारे जगत् की इष्टदेवी, तपस्विनी की नाईं, भूमि पर बैठी थी; सपराज की स्त्री की भाँति निःश्वास छोड़ती थी और शोक-समूह के कारण बहुत ही उदास थी। वह सन्देहयुक्त स्मृति के तुल्य, विघात को प्राप्त हुई श्रद्धा जैसी, टूटी हुई आशा के सदृश, विन्नयुक्त सिद्धि की नाईं, अज्ञान-युक्त बुद्धि की नाईं, मिथ्यापवाद से भ्रष्ट हुई कीर्ति के सदृश और राम को न देखने से व्यथित थी। वह राक्षसियों से पीड़ित, इधर-उधर देखती थी। उसकी आँखों में आँसू भरे हुए थे। वह अप्रसन्नता से बार-बार ऊँची साँस लेती थी। भूषण के योग्य होकर भी वह भूषण-रहित और मेघों से घिरी चन्द्रप्रभा के तुल्य थी। ऐसी काल-मेघों से घिरी चन्द्रप्रभा की तरह सीता को देखो हनुमान् की बुद्धि सन्देह में पड़ गई। अभ्यास न करने से शिथिल हुई विद्या की तरह सीता की दशा थी। उन्हें कपि ने क्लेश से पहचाना। जैसे दूसरे अर्थ में चली गई हीन वाणी को पण्डित लोग व्याकरणादिक संस्कार-बल से पहचान लेते हैं उसी तरह उपपादक कारणों द्वारा हनुमान् ने सीता को पहचाना।

हनुमान् ने दृढ़ निश्चय किया कि यही वैदेही है। मुख्य कारण यह था कि रामचन्द्र ने सीता के शरीर के जिन भूषणों को बतलाया था उनको हनुमान् ने पहचान लिया। कानों की तरकी, कुण्डल, मणि और मूँगों से बने हाथ के भूषण बहुत दिन से साफ न किये जाने के कारण काले हो गये थे पर अपने ठिकाने पर स्थिर थे। इन्हें देख कपि ने सोचा कि यही वे भूषण हैं, जिनको श्रीराघव ने कह सुनाया था। परन्तु बतलाये हुए उन भूषणों में से कुछ गिर गये या खो गये होंगे; उनको मैं नहीं देखता। और जो हैं वे ठीक यही हैं। सुवर्ण के तुल्य पीला दुपट्टा, जो हरण-काल में ऊपर से गिर पड़ा था, सो तो सब वानरों ने देखा ही था और बहुत से उत्तम भूषण जो पृथ्वी पर गिरे देखे गये थे और जिनके गिरने में झनझनाहट का शब्द भी हुआ

था, सो इन्हीं ने गिराये थे। देखो यह कपड़ा, जो ये पहने हैं, बहुत दिन तक पहनने से मर्दित और मैला हो रहा है, तो भी उसका रङ्ग नहीं बिगड़ा। जो वस्त्र हमें वहाँ मिला था उसी के तुल्य यह चटकीला है। सुवर्णाङ्गी राम की प्यारी पटरानी पतिव्रता सीता हटा ली गई हैं तो भी राम के मन से नहीं हटतीं। ये वही हैं जिनके लिए रघुनन्दन चार प्रकार से पीड़ित हैं। पहले तो दया से कि आपत्ति में स्त्रियों पर दया अवश्य करनी चाहिए, आनृशंस्य से कि वन में भी मेरा साथ इसने नहीं छोड़ा परन्तु मैं हरण से इसकी रक्षा न कर सका, तीसरे शोक से कि पत्नी अपने धर्म का साधन है, उसकी रक्षा करना अवश्य था सो न हुआ, इससे धर्मनाश की चिन्ता; चौथे काम से कि हा! ऐसी सुन्दरी गुणवती और पतिव्रता प्यारी स्त्री मुझसे अलग हो गई—इस प्रकार उसके सुख-विलास का स्मरण करना चौथा कारण हुआ। इस देवी के अङ्ग-प्रत्यङ्ग जैसे सुन्दर हैं वैसे ही राम के भी हैं, इसलिए दोनों की यह परस्पर योग्यता है। मैं जानता हूँ कि सीता का मन राम में और राम का मन सीता में रहता है, इसलिए ये दोनों जीते हैं, नहीं तो मुहूर्त्त भर भी न जी सकते। रामचन्द्र दुष्कर काम कर रहे हैं, जो इस पत्नी से हीन होकर भी अपने शरीर को धारण करते हैं—शोक से नष्ट नहीं हो जाते।

दोहा

एहि बिधि सीतहिं देखि कपि, परम प्रफुल्लित गात।
अनिहि प्रशंसत रघुवरहिं, हर्ष न हृदय समात॥

---

# सोलहवाँ सर्ग

## सीता को पीड़ित देख हनुमान् का विलाप करना

राम और श्रीजानकी की इस प्रकार प्रशंसा कर फिर हनुमान् चिन्ता करने लगे। मुहूर्त्त भर सोचकर वे आँखों में आँसू भरकर सीता के लिए विलाप करने और कहने लगे—देखो, गुरु लोगों से सुशिक्षित श्रीलक्ष्मण के ज्येष्ठ भ्राता की पत्नी यह ऐसे दुःख में पड़ी है तो दूसरे को क्या कहना चाहिए। हा! काल का उल्लङ्घन कोई नहीं कर सकता। देखो, राम और लक्ष्मण के पराक्रम का चिन्तन करके सीता अत्यन्त क्षोभ नहीं करतीं जैसे कि वर्षा की धारा से गङ्गा में—दूसरी छोटी नदियों की नाईं—अत्यन्त हलचल नहीं होती। रामचन्द्र सीता के योग्य और सीताजी रामचन्द्र के योग्य हैं।

लक्ष्मी के तुल्य सुवर्णाङ्गी सीता को देख हनुमान् मन में रामचन्द्र का ध्यान कर कहने लगे—देखो, इसी विशाल नयनोंवाली के लिए महाबली बाली मारा गया और रावण के तुल्य पराक्रमी कबन्ध नामक राक्षस का वध भी इसी निमित्त हुआ। भयंकर पराक्रमी विराध को भी राम ने पराक्रम से मारा जैसे कि इन्द्र ने शम्बरासुर को मारा था। बड़ा भयंकर संग्राम करनेवाले चौदह हजार राक्षस इसी वैदेही के लिये जनस्थान में मारे गये। खर, त्रिशिरा और दूषण को भी राम ने मारा। देखो, इसी के निमित्त वानरों का वह दुर्लभ राज्य सुग्रीव को मिल गया जिसका पालन बाली करता था। इसी देवी के लिए मैंने नद और नदियों के पति बड़े सागर को लाँघा और इस पुरी को देखा-भाला।

सीतादेवी के लिए यदि रामचन्द्र इस पृथ्वी को उलट दें और इस जगत् को भी तहस-नहस कर दें तो ठीक ही है। तीनों लोकों का राज्य एक ओर है और सीता एक ओर है। मेरी समझ में तो त्रैलोक्य का राज्य सीता की एक कला को भी नहीं पहुँच सकता। देखो, ये सीता देवी धर्मशील महात्मा मैथिल-राज जनक की पुत्री हैं। ये पति की दृढ़व्रता हैं। ये हल से खोदी हुई भूमि को विदारण कर निकली थीं और उस खेत की, कमल के पराग के तुल्य, सुन्दर धूलि इनकी देह में लिपटी थी। बड़े पराक्रमी, धर्मशील और संग्राम में पीठ न दिखानेवाले महाराज दशरथ की ये जेठी पुत्रवधू और धर्मज्ञ, कृतज्ञ, आत्मज्ञ श्रीरामचन्द्र की प्यारी पत्नी हैं। इस समय ये राक्षसियों के वश में पड़ी हैं। देखो, ये जानकी सब भोगों को त्याग करके, पति के स्नेह के वश हो, क्लेशों को तुच्छ समझती निर्जन वन में चली आई थीं और फल-मूल से सन्तुष्ट हो पति की सेवा में तत्पर थीं। घर की तरह ये वन में भी प्रसन्न ही रहती थीं। ये कनकवर्णी इस अनर्थ के और दुखों के अयोग्य हैं फिर भी इस यातना को सह रही हैं। ये शीलवती रावण के द्वारा दुःख पा रही हैं। इनको राघव वैसे ही देखना चाहते हैं जैसे प्यासा प्राणी जलाशय को चाहता है। इनको प्राप्त करके रामचन्द्र उसी तरह प्रसन्न होंगे जैसे राज्य से निकाला गया राजा उसे दुबारा पाकर प्रसन्न होता है। जानकी यद्यपि काम और भोगों से दीन तथा बन्धुओं से रहित हैं फिर भी ये रामचन्द्र के समागम की आशा से अपने शरीर को धारण किये हैं। न तो ये राक्षसियों की ओर देखती हैं और न इन फूले-फले वृक्षों को ही देखती हैं। ये तो एकाग्र चित्त से राम को ही सोच रही हैं। ठीक है, स्त्रियों का भूषण भर्त्ता ही है, बल्कि भूषण से भी बढ़ कर है। सो ये भर्त्ता से बिछुड़ जाने के कारण शोभा के योग्य होकर भी शोभित नहीं होतीं। दुष्कर कर्म रामचन्द्र कर रहे हैं जो इनके बिना जीते हैं। मैं क्या कहूँ, कमलनयनी सीता को दुःखित देख मेरा मन भी दुःखित हुआ। हा! पृथ्वी के तुल्य क्षमा करने वाली सीता की रक्षा राम और लक्ष्मण करते थे, सो ये इस घड़ी इन विकराल राक्षसियों से वृक्ष के नीचे रक्षित हो रही हैं! पाले से नष्ट हुई कमलिनी की नाईं ये अनेक दुःखों से पीड़ा पाती और चक्रवाक से बिछुड़ी हुई चक्रवाकी की नाईं दुर्दशा भोग रही हैं। ये अशोक-वृक्षों की शाखाएँ फूलों के भार से झुक रही हैं और यह वसन्त-समय का निर्मल चन्द्र है। ये दोनों इस देवी के शोक को अत्यन्त बढ़ाते होंगे।

दृढ़ कियो निश्चय वीर, सीता यही रणधीर।
अति हर्षयुत कपिनाह, स्थिति वृक्ष-शाखा माँह॥

---

## सत्रहवाँ सर्ग

### सीता की रखवाली राक्षसियों का और कुछ सीता का भी वर्णन

कोई के पुष्पों के सदृश निर्मल चन्द्र, नीले आकाश में कुछ ऊपर आकर, उस समय ऐसी शोभा देता था जैसे नीले जल में सफेद हंस शोभता है। चन्द्र भगवान् अपने प्रकाश-द्वारा मानो श्री हनुमान् की सहायता करते हुए अपनी ठण्डी किरणें फैलाने लगे। प्रकाश की सहायता से हनुमान् ने चन्द्रमुखी सीता को भली भाँति देखा। उस समय शोक के कारण जानकी की वैसी दशा थी जैसी बड़े बोझ से दबी नौका

की होती है। जानकी को देखते समय कपि की दृष्टि उन भयङ्कर राक्षसियों पर जा पड़ी जो कुछ अन्तर पर बैठी थीं। उनमें से किसी के एक कान था, और किसी के एक ही आँख थी । किसी के कान बहुत ही बड़े थे तो कोई कर्णरहित थी। किसी के कान खूँटे के तुल्य और किसी की नाक मस्तक पर थी, जिससे वह साँस लेती थी। किसी के शरीर के ऊपर का भाग बहुत ही विशाल था। कोई पतली और लम्बी गरदन वाली, किसी के केश झड़े हुए, किसी का शरीर केश-हीन और किसी का ऐसा केशमय था मानो कम्बल ओढ़े हो। किसी के लम्बे-लम्बे कान, लम्बा कपाल, लम्बा पेट, लम्बे घुटने, लम्बे स्तन और लम्बे ओठ थे। किसी के ओठ ठुड्डी तक फैले हुए थे। कोई लम्बमुखी, कोई लम्बोदरी और कोई नाटी थी। कोई लम्बी, कुबड़ी, टेढ़ी-मेढ़ी, बौनी, और भग्नमुखी थी। कोई पीली आँखोंवाली, विकृतमुखी, काली, पीली, क्रोध से भरी और कलह करनेवाली थी। कोई महाशूल और काँटेदार मुद्गर लिये थी। किसी का मुख शूकर के सदृश और किसी का हरिण के तुल्य था। किसी का मुँह सिंह, महिष, बकरे और सियार के सदृश और पैर हाथी, घोड़े और ऊँट के तुल्य थे। किसी के एक ही हाथ था। किसी के एक ही पैर था। और कितनों के कान गदहे, घोड़े, गाय, हाथी और सिंहों के कानों के ऐसे थे। कितनों के मस्तक कबन्ध की नाईं, शरीर के भीतर गड़े, छाती में देख पड़ते थे। कोई बड़ी भारी नाकवाली, तिरछी नाकवाली, बिना नाक की, और हाथी के शुण्ड के सदृश नाकवाली थी। किसी के कपाल में नाक थी और उसी से वह साँस लेती थी। किसी के हाथी के ऐसे मोटे-मोटे पैर थे। किसी के गाय के ऐसे खुर थे और पैरों पर चोटी के ऐसे केश थे। कोई बड़े भारी शिरवाली, विशाल स्तनोंवाली, बड़े लम्बे-चौड़े पेटवाली, विशाल मुख और विशाल नयनोंवाली थी। किसी की बड़ी लम्बी जीभ थी। किसी का बड़ा विस्तीर्ण मुख था। किसी का मुँह बकरी के सदृश, किसी का हाथी के तुल्य, किसी का गाय, शूकर, घोड़े, ऊँट और गर्दभ के सदृश था। किसी के केश चुएँ के तुल्य थे। ऐसी सैकड़ों, हजारों बड़ी विकट-रूपा राक्षसियाँ वहाँ देख पड़ती थीं। ये सब की सब सदा मद्यपान करती थीं। वे ऐसी विकट थीं कि उनको देख कर डर से रोमाञ्च हो जाय। अपने शरीरों में वे सदा मांस और रक्त लपेटे रहतीं और उसी को खाती-पीती थीं। वे बड़े भारी एक गम्भिन वृक्ष को घेरे बैठी थीं। उसी वृक्ष के नीचे सीतादेवी भी थीं।

हनुमान् ने अशोकवाटिका में देखा कि भयङ्कर राक्षसियाँ सीता को चारों ओर से घेरे हुए थीं। वे उस समय शोकपीड़ित थीं और अपने पातिव्रत की कीर्ति को धारण किये थीं। उत्तम भूषणों से हीन होने पर भी वे पति के स्नेह से भूषित और रावण के कारागृह में पड़ी शोक-सागर में डूब रही थीं। वे पुष्पों से हीन लता की तरह देख पड़ती थीं। यद्यपि उनका चेहरा उतरा हुआ था तो भी पति के तेज से वे दीनता-रहित सी देख पड़ती थीं। वे अपने निःश्वासों से मानो पल्लव-धारी वृक्षों को भस्म करती थीं, जैसे शोकसागर से उठी दुःखरूप लहर हो। विरह-पीड़ा से यद्यपि वे कृश हो गई थीं तो भी अपने शरीर की ठवन से बिना भूषणों के भी शोभा देती थीं। इस प्रकार श्रीजानकीजी को देख कपिवर बड़े प्रसन्न हो अपने नेत्रों से आनन्द के आँसू बहाने लगे। श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण को मन ही मन प्रणाम कर वे वृक्ष की शाखा पर छिपकर बैठ गये।

---

## अठारहवाँ सर्ग

### रावण का जागना और सीता को देखने के लिए अशोकवाटिका में आना

इस प्रकार अशोकवाटिका के देखने और सीता के खोजने में बहुत देर हो गई। कुछ थोड़ी सी रात रह गई थी। उस समय षडङ्ग वेदों के ज्ञाता और उत्तमोत्तम यज्ञ करनेवाले ब्रह्म-राक्षसों के वेदाध्ययन का शब्द हनुमान् को सुन पड़ा। तदनन्तर मङ्गल बाजों और मनोहर शब्दों द्वारा महाबली रावण जगाया गया। सोते समय उसकी मालाएँ उलट-पलट गई थीं। वस्त्र इधर-उधर खसक गये थे। जागते ही वह सीता के विषय में सोचने लगा; क्योंकि वह उनमें अत्यन्त आसक्त और काम-मोहित था। उस काम को किसी प्रकार से वह रोक न सकता था। वह रावण अपने सम्पूर्ण आभूषण पहने अपूर्व शोभा धारण किये उस अशोकवाटिका में ही घुस गया। उसके पीछे सैकड़ों स्त्रियाँ चलीं जैसे इन्द्र के पीछे देवों और गन्धर्वों की स्त्रियाँ जाती हैं। उनमें बहुतों के हाथों में सुवर्ण के दीपक और बहुतों के हाथों में चँवर और ताड़ के पङ्खे थे। किन्हीं के हाथों में सुवर्ण की झारियों में जल था और कोई आसन लिए देख पड़ती थी। कोई चतुर स्त्री मद्य से भरे रत्नपात्र को दाहिने हाथ में लेकर चली। कोई राजहंस के तुल्य सफेद, पूर्णचन्द्र के तुल्य चमकीले और सुवर्णदण्ड से शोभित छत्र को लेकर उसके पीछे हो ली। सभी स्त्रियों के नेत्रों में निद्रा और अमल से खुमारी भरी हुई थी। वे अपने वीर पति के पीछे ऐसे चली जाती थीं जैसे मेघों के साथ बिजलियाँ चलें। इन स्त्रियों में बहुतों के हार टेढ़े-मेढ़े और बिजायठ उलटे-पुलटे हो गये थे। अनेकों का अङ्गराग छूट गया था, कितनों के जूड़े खुल गये थे और मुखों पर पसीना आ गया था। अमल के उतरने और निद्रा के कारण वे डगमगाती चलती थीं। वे जो फूल पहने थीं उनमें पसीना लगा हुआ था; उनके केशों में मालाएँ उलझ गई थीं। ये सब प्रिय पत्नियाँ बड़े आदर से, काम के वश हो, रावण के पीछे-पीछे चली जाती थीं। उनका महाबली पति काम के अधीन और मन्द-बुद्धि हो रहा था। वह सीता में चित्त को आशक्त किये मन्द गति से जा रहा था। इसके अनन्तर हनुमान् ने स्त्रियों की काञ्चियों और नूपुरों का शब्द सुना और उस अनुपमकर्मा अचिन्तनीय बल-पौरुषवाले को दरवाजे पर आते देखा। वह सुगन्ध तैल से पूर्ण अनेक दीपकों द्वारा चारों ओर से प्रकाशित हो रहा था। वह कामगर्व और अमल से भरा था। उसके विशाल कुटिल नेत्र लाल-लाल थे। प्रत्यक्ष धनुषधारी काम की नाईं वह सुन्दर था। मथे हुए अमृतफेन के तुल्य निर्मल और अत्यन्त उत्तम वस्त्र खसककर बिजायठ में जाकर अटक गया था, उसको वह पुष्पों सहित खींचता था। उस समय पत्र-शाखा में छिपे और सैकड़ों पत्तों और पुष्पों से घिरे हुए वायुपुत्र उसको देखते थे। जब वह पास आ गया तब कपि ने उसको पहचानना चाहा। देखते-देखते पहले उसकी स्त्रियाँ देख पड़ीं, पीछे वह राक्षसराज भी दीखा। वह उस प्रमदावन (अशोकवाटिका) में घुस गया। उस समय वह उन्मत्त विचित्र भूषणों और खूँटी के ऐसे कानों को धारण किये देख पड़ा। ताराओं से घिरे चन्द्रमा की नाईं उसको उन स्त्रियों के साथ देख कपि ने सोचा कि यह वही रावण है जो नगरी में उस उत्तम घर में सोता था। महातेजस्वी हनुमान् उस समय उसके

तेज के सामने दब गये। वे कूदकर बड़े गम्भिन वृक्ष की शाखा में जा छिपे।

दोहा

तेहि छन रावण मन्दमति, काम-बाण-हतचित्त।
आयो देखन जानकिहि, राक्षसनाश-निमित्त॥

---

## उन्नीसवाँ सर्ग

### रावण को देखकर सीता की दशा का वर्णन

सुन्दर भूषणों से भूषित और रूप-यौवन-युक्त रावण को देख सीता उस समय ऐसी काँपने लगीं जैसे बड़े वायु-वेग से केले का वृक्ष काँपे। दोनों जङ्घाओं से अपने पेट को और हाथों से स्तनों को ढाँपकर वे रोदन करने लगीं। अब रावण ने सीता को देखा जो राक्षसियों से घिरी—समुद्र की लहरों से झोंका खाती नाव की नाईं—दीन और दुःख-पीड़ित थीं। वे खाली धरती पर दृढ़ व्रत को धारण किये बैठी थीं। वे कटी हुई वृक्ष की शाखा के तुल्य देख पड़ती थीं। वे मल से भरी थीं और भूषणों के योग्य होकर भी उनसे हीन थीं। वे कीचड़ से भरी कमलिनी की भाँति शोभती भी थीं और नहीं भी। वे राजसिंह आत्मज्ञ श्रीरामचन्द्र के निकट सङ्कल्प-घोड़ों से जोते हुए मनोरथ-रूप रथ पर बैठी चली जाती थीं। वे केवल रोदन करती थीं; ध्यान और शोक में मग्न थीं, और दुःख का अन्त न देख केवल राम के ध्यान में लीन थीं। वे मन्त्र के वश में पड़ी महासर्पिणी के सदृश छट-पटाती थीं। वे धूमकेतु ग्रह से पीड़ित रोहिणी के तुल्य थीं। चारित्र्य, शील, आचार और धर्म से युक्त कुल में उत्पन्न होकर और तदनुकूल संस्कार होने पर भी वे इस समय दुष्ट कुल में उपजी हुई सी बनी थीं। वे भ्रष्ट हुई महाकीर्त्ति के तुल्य, अनादर को प्राप्त विश्वास की नाईं, हीन बुद्धि की नाईं, टूटी हुई आशा के सदृश, और नष्ट धन की नाईं थीं। वे उल्लङ्घन की गई आज्ञा के तुल्य, जलती हुई दिशा की भाँति, समय पर न की गई पूजा के सदृश, राहु से ग्रस्त चन्द्रवाली पूर्णिमा की रात्रि जैसी, विमर्दित कमलिनी जैसी और शूरों के मारे जाने से उदास सेना जैसी थीं; वे अन्धकार से घिरी प्रभा जैसी, सूखी हुई नदी जैसी, पतियों से आक्रमण की गई यज्ञ-वेदी जैसी, और बुझी हुई अग्नि-ज्वाला के सदृश थीं। उस समय सीता जी ऐसी थीं जैसे उत्तम पत्रों-पुष्पों से शोभित कमलिनी को हाथी ने सूँड़ से तोड़ डाला हो और वहाँ से पक्षी उड़ गये हों। पति के शोक से व्याकुल वे उस नदी के तुल्य थीं जो खोदकर इधर-उधर बहा दी गई हो। वे उत्कृष्ट अङ्गों की स्वच्छता से हीन, कृष्ण-पक्ष की रात्रि जैसी, सुकुमारी, सुन्दराङ्गी, रत्न-गृह में रहने योग्य ऐसी हो रही थीं जैसी तुरत की उखाड़ी कमलिनी घाम से तपाई गई हो। दुःख से पीड़ित होकर वे श्वास लेती थीं। वे एक ही लम्बी वेणी धारण किये और बिना ही शृङ्गार किये शोभित होती थीं। उपवास, शोक, ध्यान और भय से वे क्षीण और कृश हो रही थीं। अल्पाहार और तपस्या में रत होकर हाथ जोड़े हुए वे श्रीरामचन्द्र से रावण का पराजय चाहती थीं।

दोहा

रावण आयो समय तेहि, देखि जानकिहि दीन।
लोभ दिखायो बहुत विधि, मरण-हेतु मति-हीन॥

---

## बीसवाँ सर्ग

### सीता को रावण का अनेक प्रकार से लुभाना

उस दिन दुःखित तपस्विनी सीता को रावण बड़े अभिप्राय से भरे मधुर वचनों से लुभाने लगा। उसने कहा—हे सुन्दरि, तू मुझे देखकर अपने उदर और स्तनों को ढाँपती है और डर के मारे अपने को सम्पूर्ण रूप से छिपा लेना चाहती है। हे विशाल नयनोंवाली, मैं तुझे चाहता हूँ; प्रिये, मुझे तू बहुत आदर से मान। तू सम्पूर्ण अङ्गों के गुणों से भरी है, इसलिए सबके मन को हरण करती है। हे सीते, यहाँ न तो कोई मनुष्य है और न कोई कामरूपी राक्षस है, इसलिए जो तुझको मुझसे डर हुआ है उसको छोड़ दे। हे भीरु, परस्त्री-गमन करना अथवा बलात्कार से उनको हरना ही राक्षसों का सब दिन से धर्म है। अब फिर भी काम मेरे शरीर को कितनी ही पीड़ा क्यों न दे, यदि तू मुझे नहीं चाहती तो मैं तेरा स्पर्श भी न करूँगा। हे देवि, यहाँ डरो मत। प्रिये, मुझ पर विश्वास करो और मेरे ऊपर सच्ची प्रीति रक्खो। इस प्रकार शोक-पीड़ित मत हो। देख, तू जटारूप वेणी को धारण किये भूमि पर सोती है, सदा ध्यान करती है और मैले कपड़े पहने रहती है। तेरा उपवास करना भी बेठिकाने है। यह सब तेरे लिए अनुचित है। हे मैथिलि, मुझे प्राप्त करके तू चित्र-विचित्र पुष्प, चन्दन, अगुरु और नाना प्रकार के कपड़े, दिव्य भूषण, बड़े-बड़े मोल की सवारियाँ, पलँग, आसन, गीत, नृत्य और वाद्य इन सब पदार्थों का भोग कर। स्त्रियों में तू रत्न के तुल्य है। देख, ऐसा न कर। अपने शरीर को भूषित कर। मुझे पाकर क्यों तू अपने को ऐसी अयोग्य ठहराती है? देख, यह तेरी यौवनावस्था बीती जाती है, और जो बीत गया सो फिर लौटकर नहीं आता जैसे प्रवाह का जल, जो बहता जाता है, फिर नहीं लौटता। मैं जानता हूँ कि ब्रह्मा तेरे रूप और लावण्य को बनाकर सुचित्त हो गया, क्योंकि ऐसे रूप की उपमा कहीं पाई नहीं जाती। हे वैदेहि, तेरे ऐसी सुन्दरी को पाकर कौन ऐसा होगा जो मर्यादा का उल्लङ्घन न करेगा? मैं तो जानता हूँ कि यदि लोकों के पितामह ब्रह्मा भी हों तो वे भी तुझे देख अपनी मर्यादा को छोड़ कामवश हो जायँ। हे चन्द्रमुखि, मैं तेरे शरीर को जिस ओर देखता हूँ उसी अंग में मेरी दृष्टि उलझ जाती है। हे मैथिलि, तू मेरी भार्या हो और इस मोह को छोड़ दे। मेरी इन उत्तम स्त्रियों में तू पहली पटरानी हो जा। हे भीरु, जिन रत्नों को मैं अनेक लोकों से जीत जीतकर लाया हूँ उन सब रत्नों को और राज्य को भी मैं तुझे देता हूँ। नाना नगरों से युक्त यह सम्पूर्ण पृथ्वी जीतकर मैं, तेरे कारण, तेरे पिता जनक को दे डालूँगा। हे सुन्दरि, इस जगत् में ऐसा कोई नहीं जो मेरा सामना कर सके। देख, संग्राम में मेरे पराक्रम का सामना कोई नहीं कर सकता। दैत्यों और देवताओं को तो मैंने अनेक बार संग्रामों में मार गिराया है और उनकी ध्वजाएँ तोड़ डाली हैं, सो वे मेरे समीप नहीं ठहर सकते। हे देवि, तू मुझे अङ्गीकार कर। स्नान इत्यादि से अपने शरीर को तू निर्मल कर ले; सुन्दर-सुन्दर प्रकाशमान भूषण तेरे अङ्गों में पहनाये जायँ। सिंगारे हुए तेरे रूप को मैं अच्छी तरह देखना चाहता हूँ। बहुत अच्छे प्रकार से शरीर को सजाकर यथेष्ट भोगों को भोग और पीने के पदार्थों को पी, विहार कर और इच्छापूर्वक तू जिसको चाहे, पृथ्वी या धन दे। विश्वासपूर्वक मेरे ऊपर अपना वश रख और ढिठाई से अपनी आज्ञा का प्रचार

कर। मेरे प्रसाद से तुझे विलसती देख तेरे भाई-बन्धु भी सुख पावेंगे। हे भद्रे, तू मेरी समृद्धि की ओर और मेरी श्री की ओर दृष्टि कर। उस चीर के पहननेवाले राम के पास में क्या रक्खा है! देख, राम के पास न कोई विजय की सामग्री है और न पास में श्री है। केवल व्रत ग्रहण करके वन का वास और भूमि पर सोना उन्होंने अङ्गीकार किया है। मुझे तो यह भी सन्देह है कि वे जीते भी हैं या नहीं। हे वैदेहि, अब तो रामचन्द्र तुझे देख भी न पावेंगे, जैसे आगे-आगे चलनेवाली बगलों की पाँति मेघों से आच्छादित चन्द्रिका को पीछे नहीं देख सकती। मेरे हाथ से रामचन्द्र तुझे पा भी तो नहीं सकते, जैसे इन्द्र की कीर्त्ति को हिरण्यकशिपु नहीं पा सका। हे सुन्दर मुसकुरानेवाली, मनोहर दाँतोंवाली, सुनयने, सीते! देख, जैसे गरुड़ बलत्कार से साँप को खींच लेता है वैसे ही तू मेरे मन को हरण किये लेती है। हे सुन्दरि, यद्यपि तू इस सिकुड़े-फिकुड़े पट-वस्त्र को पहने है और अलङ्कारों से हीन है, तो भी मैं तुझे देखकर अपनी पत्नियों को नहीं चाहता। हे जानकी, मेरे अन्तःपुर में जो सम्पूर्ण गुणों से युक्त स्त्रियाँ हैं इन सब की तू स्वामिनी हो। मनोहर काले केशोंवाली हे सीते, त्रैलोक्य में जो श्रेष्ठ स्त्रियाँ हैं वे, अर्थात् मेरे अन्तःपुरवाली सबकी सब स्त्रियाँ, तेरी सेवा करेंगी, जैसे लक्ष्मी की सेवा अप्सराएँ करती हैं। हे सुभ्रु, कुबेर के पास जो रत्न और धन है उसका, और लोकों का उपभोग भी मेरे साथ यथेष्ट कर। हे देवि! देख, रामचन्द्र न तो तपस्या में मेरे तुल्य हैं न बल में, न पराक्रम और धन में। तेज और यश में भी वे मेरी बराबरी नहीं कर सकते। तू पान कर, विहार कर, क्रीड़ा कर, भोगों का उपभोग कर और जिसको चाहे उसको पृथ्वी तथा धन-समूह दे डाल। हे ललने, तू मेरे साथ सुखपूर्वक विलास कर, फिर तेरे भाई-बन्धु भी मौज करेंगे।

सवैया

यह फूले समुद्र के तीरन पै
बहु पल्लव शाखिन सो लहरैं।
बहु भृङ्ग मनोहर नाद भरे
त्रिविधानिल ते बहुधा थहरैं॥
तुम कञ्चनहार सिंगार करो,
न विलासिनि नेकु करो गहरैं।
अब आइ मिलौ इन कानन मैं
हम सङ्ग लिये तुमको बिहरैं॥

---

## इक्कीसवाँ सर्ग

### सीता का रावण को उत्तर देना

रावण की ये बातें सुनकर तपस्विनी सीता पीड़ित हो रोती, काँपती और केवल पति का स्मरण करती थीं। उन्होंने तृण को बीच में रखकर दीन स्वर से कहा—हे रावण, तू अपने मन को हमसे हटाकर अपनी स्त्रियों में लगा; क्योंकि तू मुझे चाहने के योग्य वैसे ही नहीं है जैसे पापी पुरुष सिद्धि की चाह करने योग्य नहीं होता। बड़े पवित्र कुल की पतिव्रता बहू-बेटी के लिए जो निन्दित है वैसे अकार्य को मैं नहीं कर सकती। इतना कहकर फिर सीता ने मुँह फेरकर रावण से कहा—हे राक्षसाधम, मैं तेरे भोग के योग्य भार्या नहीं हो सकती क्योंकि एक तो मैं पराई पत्नी हूँ, दूसरे पतिव्रता हूँ। तू अच्छी तरह धर्म की ओर दृष्टि कर और सज्जनों के धर्म पर आरूढ़ हो। जैसे तू अपनी स्त्रियों की रक्षा करता है

उसी तरह दूसरों की स्त्रियों की भी रक्षा करनी चाहिए। अपने दृष्टान्त को समझकर तू अपनी ही स्त्रियों के साथ विहार कर। देख, जो अपनी ही स्त्रियों से सन्तुष्ट न होकर चञ्चलता करता है उस अजितेन्द्रिय और बुरे कर्म पर आरूढ़ पुरुष को पर-स्त्रियाँ नष्ट कर देती हैं अर्थात् आयुष्य आदि क्षीण हो जाने से वह मारा जाता है। क्या यहाँ सज्जन लोग नहीं हैं अथवा तू उनका सेवन नहीं करता? क्योंकि यदि तूने उनका अनुसरण किया होता तो तेरी बुद्धि ऐसी विपरीत और आचार-हीन क्यों होती। अथवा महात्माओं के धर्मोपदेश-वचन को अपनी बुद्धि से मिथ्या समझकर तू राक्षसों का नाश तो नहीं करना चाहता? देख, जो राजा हितकारी और धर्मवचनों को नहीं सुनता तथा अन्याय में तत्पर होता है उसके राष्ट्र और नगर अत्यन्त समृद्ध होने पर भी नष्ट हो जाते हैं। इसलिए रत्नों से भरी तेरी लङ्का केवल एक तेरे ही अपराध से शीघ्र ही नष्ट हो जायगी, विलम्ब न होगा। हे रावण, होनहार अनर्थ की ओर दृष्टि न करनेवाले और इसी कारण अपने ही बुरे कर्मों द्वारा पापी पुरुष के मारे जाने पर सब प्राणी प्रसन्न होते हैं। इसी प्रकार के पाप-कर्म करनेवाले तुझे विपत्ति में फँसा देख वे लोग हर्षित होंगे जिन्हें तूने सताया है। वे कहेंगे कि बड़े आनन्द की बात है जो यह दुष्ट राक्षस इस विपत्ति में फँसा। देख, मैं तेरे ऐश्वर्य या धन के लालच में नहीं आ सकती, जैसे सूर्य की प्रभा दूसरे की नहीं हो सकती; क्योंकि मैं तो रामचन्द्र की अनन्य पत्नी हूँ। मैं उस लोकनाथ की भुजा को आदरपूर्वक अपने सिर की तकिया बना चुकी हूँ, अब किस प्रकार दूसरे पुरुष की भुजा को तकिया बनाऊँगी! आत्मज्ञ महाराज रामचन्द्र की ही मैं योग्य भार्या हूँ, जैसे व्रतस्नात ब्राह्मण के ही योग्य ब्रह्मविद्या हो सकती है। इसलिए हे रावण, तू मुझ दुःखिनी को राम से मिला दे। यदि तू लंका को बचाया चाहता है और अपने प्राणों का नाश नहीं चाहता तो राम को अपना मित्र बना ले। देख, रामचन्द्र सब धर्मों के ज्ञाता और शरणागतवत्सल हैं। उनके साथ तू मैत्री कर ले। यदि तू जीना चाहता है तो उनको प्रसन्न कर और नम्रतापूर्वक मुझे उनको दे डाल। तेरे कल्याण का यही उपाय है और यदि तू अन्यथा करेगा तो बड़ी विपत्ति में पड़ेगा। देख, तेरे ऐसे पापी को चलाया हुआ वज्र छोड़ दे तो छोड़ दे; मृत्यु भी बहुत काल तक न मारे तो न मारे; परन्तु वे लोकनाथ श्रीराघव तुझे बिना मारे कभी न छोड़ेंगे। हे राक्षस! रामचन्द्र के उस धनुष का, इन्द्र के वज्र के सदृश, भयंकर टंकार तू सुनेगा। हे रावण, शीघ्र ही इस लंका में राम और लक्ष्मण के पैने-पैने—प्रज्वलित मुखवाले सर्पों के सदृश—बाण गिरेंगे और राक्षसों को मारेंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। जब वे कंकपक्षों से भूषित बाण यहाँ गिरने लगेंगे तब तिल रखने को भी जगह न रहेगी। हे रावण, श्रीरामचन्द्र तेरे इन बड़े-बड़े राक्षसों को ऐसे उखाड़ फेकेंगे जैसे साँप को गरुड़ उठा ले जाता है। मेरे पतिदेव शत्रुओं का दमन करते हैं, वे शीघ्र ही तेरे हाथ से मुझे छुड़ावेंगे, जैसे श्रीवामन ने तीन पैरों से नापकर दैत्यों के हाथ से देवताओं की राज्यलक्ष्मी को छुड़ा लिया था। हे राक्षस, उस जनस्थान का नाम तक जाता रहा। उसमें जब राक्षसों की सेना मारी गई तब तुझसे कुछ भी न बन पड़ा। इसलिए तूने अशक्त होकर यह दुष्ट कर्म किया। हे अधम, आश्रम में उन मनुष्य-सिंहों को न देखकर तू उसमें घुसा और मुझे हर लाया। यदि तू उन दोनों भाइयों के गन्ध को भी पाता तो वहाँ ठहरने का तेरा सामर्थ्य न था, सामना होने की तो कौन कहे। कुत्ते को सामर्थ्य नहीं है कि दो सिंहों के

समीप खड़ा रह सके। फिर उनके साथ जूझते समय तेरा कोई सहाय भी न होगा जो कुछ काल तक तुझे बचावे। इसलिए, जैसे एक भुजावाले वृत्रासुर को मारने में इन्द्र को कुछ भी प्रयास नहीं हुआ उसी प्रकार तुझ अकेले को मारते उन दोनों को क्या विलम्ब लगेगा। हे राक्षसाधम, लक्ष्मण के साथ राम शीघ्र ही बाणों से तेरे प्राण हर लेंगे जैसे कि थोड़े से पानी को सोखने में सूर्य को विलम्ब नहीं लगता। अब जो तू कुबेर के पर्वत पर या उसके घर में अथवा वरुण की सभा में भी जा छिपेगा तो भी श्रीराघव तुझे अवश्य मारेंगे। भला वज्र से मारा गया महावृक्ष कभी बच सकता है।

---

## बाईसवाँ सर्ग

### रावण का सीता को कटु वचन कहना और सीता का भी रावण को कठोर उत्तर देना, फिर रावण का दो मास की प्रतिज्ञा करके चला जाना

सीता के ये कटु वचन सुनकर रावण अप्रिय वचन कहने लगा—हे सीते, स्त्रियों को समझानेवाला जैसे-जैसे उनको समझाया करता है तैसे-तैसे वह उनका प्यारा होता जाता है। परन्तु मैंने प्रिय वचन कहकर तुझको जैसे-जैसे प्रसन्न करना चाहा तैसे-तैसे तू मेरा तिरस्कार करती गई। क्या करूँ, तेरे ऊपर जो मेरी आसक्ति है वही मेरे क्रोध को रोकती है, जैसे दौड़ते घोड़ों को सारथी रोके। काम बड़ा टेढ़ा है। पुरुषों की जिस पर कामाशक्ति हो जाती है उस पर उनको दया और स्नेह हो जाता है इसी लिए हे सुन्दरमुखि, मैं तेरा घात नहीं करता; नहीं तो तू वध और अनादर के ही योग्य है। तू झूठमूठ उस राम नामक तापस पर प्रीति कर रही है। हे मैथिलि, तू मुझे जो कठोर वचन कहती है उनके लिए तेरा बड़ी निष्ठुरता से बध करना ही ठीक है।

क्रोध के वेग से भरा हुआ रावण फिर कहने लगा—अच्छा, दो महीने तक जो तेरे लिए मैंने अवधि कर रक्खी है उसकी मैं बाट देखता हूँ। दो महीने बीतने पर भी यदि मुझे तू अपना पति न करना चाहेगी तो रसोईदार लोग, मेरे प्रातःकाल के भोजन के लिए, तेरे शरीर को काटकर टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे। सीता को इस प्रकार डपटी जाती देख वे देवताओं और गन्धर्वों की कन्याएँ बड़ी दुखी हुईं। उनमें से कई एक तो ओष्ठों के इशारे से और बहुत सी नेत्रों तथा मुखों की सैनों से सीता को ढाढ़स बँधाने लगीं। जब सीता को उन स्त्रियों ने इशारे से समझा दिया तब तो वे ऐसा वचन बोलीं जो चारित्र्य, पति की शूरता और अहंकार से भरा था। उसी में रावण की भलाई थी। सीता ने कहा—हे रावण, निश्चय ही इस नगर में तेरा कल्याणकारक कोई आदमी नहीं है जो इस निन्दित कर्म से तुझे रोके, क्योंकि तीनों लोकों में तेरे सिवा दूसरा कोई ऐसा पुरुष न होगा जो धर्मात्मा राम की पत्नी मुझे मन से भी चाहता हो। हे राक्षसाधम! देख, अमित तेजस्वी श्रीरामचन्द्र की भार्या से जो तूने इतने पापवचन कहे सो अब तेरे लिए कहाँ ठिकाना है जहाँ जाकर तू उनके हाथ से बच जायगा? जैसे एक मत्त गजेन्द्र और एक खरहा दोनों ही यद्यपि वनवासी हैं तथापि तुल्य नहीं हो सकते, उसी प्रकार रामचन्द्र मत्त गजेंद्र हैं और उनके सामने तू नीच खरहे के तुल्य है। इक्ष्वाकुनाथ की निन्दा करने में तुझे लज्जा क्यों नहीं लगती! अच्छा, जब तक तू उनकी दृष्टि के समीप नहीं जाता तब तक जो चाहे सो

कह ले। तू मुझे बुरी दृष्टि से देख रहा है सो तेरी ये क्रूर, टेढ़ी और काली-पीली आँखें क्यों नहीं निकलकर भूमि पर गिर पड़तीं! धर्मात्मा राम की मैं पत्नी और दशरथ की पुत्रवधू हूँ। मुझको ऐसे ऐसे खोटे वचन कहते समय तेरी जीभ क्यों नहीं कटकर गिर पड़ती! हे दशग्रीव, मैं अपने तेज से तुझे भस्म कर सकती हूँ परन्तु एक तो इस विषय में मुझे राम की आज्ञा नहीं है और दूसरे तपस्या की रक्षा के लिए यह काम मैं नहीं कर सकती। तेरा सामर्थ्य नहीं था कि राम के पास से मुझे हर लाता परन्तु तेरे बध के लिए यह उपाय रचा गया है, इसमें कुछ सन्देह नहीं। अरे, तू तो शूर और कुबेर का भ्राता है, तू पराक्रमी भी पूरा है। तूने किसी उपाय से रामचन्द्र को बहकाकर स्त्री की चोरी की। छिः!

सीता के ये वचन सुनकर रावण अपनी क्रूर आँखों को टेढ़ी कर सीता की ओर देखने लगा। उसका रङ्ग नीले मेघ का सा था, उसकी भुजाएँ एवं ग्रीवा बड़ी और प्रशस्त थी। उसकी शक्ति और गति भी सिंह जैसी थी। उसकी आँखें और जीभ बड़ी प्रखर थीं। उसके मुकुट का अगला हिस्सा जरा खसक गया था। गले में कई तरह की मालाएँ पड़ी थीं और देह में विविध चन्दन आदि लगा हुआ था। वह लाल रंग की मालाएँ और वैसे ही कपड़े पहने था। उसकी भुजाओं में चमकीले बजुल्ले बँधे हुए थे। कमर में बड़ी सी तागड़ी पहनने के कारण वह अमृतमन्थन में नियुक्त साँप से बँधा मन्दराचल सा लगता था। अपनी दो विशाल भुजाओं द्वारा वह शिखरों से युक्त मन्दरगिरि सा देख पड़ता था। वह तरुण सूर्य के तुल्य कुण्डलों से अलंकृत ऐसा देख पड़ता था मानो लाल-लाल पत्र-पुष्पों से लदे हुए दो अशोक-वृक्षों से शोभित पर्वत हों। वह कल्पवृक्ष के सदृश और मूर्त्तिमान् वसन्त के तुल्य मनोहर था, तथापि श्मशान और बौद्ध-मन्दिर के तुल्य भयंकर ही देख पड़ता था। वह सीता को लाल नेत्रों से देखता और साँप के तुल्य हाँफता हुआ फिर बोला—तू नीति और अर्थ से हीन व्रत का पालन कर रही है; देख, मैं अभी तेरा नाश करता हूँ जैसे सूर्य सन्ध्या का नाश करता है।

अब वह रावण उन भयंकर राक्षसियों की ओर देखने लगा। उन राक्षसियों में कोई तो एक आँख की, कोई एक कान की, कोई बिना कान की और कोई बहुत बड़े कानवाली थी। कोई गोकर्णी, हस्तिकर्णी, लम्बकर्णी, हस्तिचरणी, हयपदी और गोपदी थी। किसी के पैरों पर बेहद बाल थे। कोई एक ही पैरवाली, मोटे पैरोंवाली, बिना पैर की, बहुत बड़े सिर और गरदनवाली थी। किसी के बहुत बड़े-बड़े स्तन थे, किसी का भारी पेट था; कोई विशालमुखी, विशालनेत्रा, लम्बजिह्वा, लम्बनखा, नासिकाहीन, सिंहमुखी, गोमुखी और शूकरमुखी थी। उनसे रावण ने कहा—हे राक्षसियो, तुम ऐसा उपाय करो जिससे यह जानकी शीघ्र मेरे वश में हो जाय। चाहे तुम अलग-अलग इसका उपाय करो अथवा सब मिलकर करो। सीधे-उलटे उपाय से हो चाहे साम, दान, दण्ड, भेद से हो, वैदेही को मेरे वश में कर दो। इस प्रकार बार-बार आज्ञा देकर काम और क्रोध से भरा राक्षसराज सीता की ओर दृष्टि करके गरजने लगा। इतने में धान्यमालिनी नाम की राक्षसी रावण से लिपटकर बोली—महाराज, आओ मेरे साथ विहार करो, इस सीता से क्या काम है? मनुष्य की स्त्री सीता का विरह की पीड़ा से पाण्डु वर्ण हो गया है, इससे तुमको क्या करना है? हे राक्षसेश्वर, तुम्हारे बाहुबल से उपार्जित उत्तम भोगों का भोग करना इसके भाग्य में देवताओं ने

नहीं लिखा। जो स्त्री चाहती न हो उसकी चाह करनेवाले पुरुष का शरीर भी सन्तप्त होता है। और अभिलाषिणी कामिनी की जो इच्छा करता है उसको सुन्दर प्रीति प्राप्त होती है। इस प्रकार जब उसने कहा और रावण को बहलाया तब वह हँसकर लौट पड़ा और वहाँ से चलकर अपने प्रदीप सूर्य-सदृश मन्दिर में घुस गया। देव, गन्धर्व और नागों की कन्याएँ भी उसको घेरे हुए उसी घर में चली गईं।

दोहा

एहि बिधि रावण तर्जि बहु, सीतहि भय दिखराइ।
कामबाण से अति दुखी, बैठ्यो घर महँ जाइ॥

---

## तेईसवाँ सर्ग

### राक्षसियों का सीता को धमकाना

श्रीजानकी के लिए इस प्रकार कह-सुनकर रावण जब अपने राजभवन में चला गया तब वे भयंकर राक्षसियाँ सीता की ओर लपकीं और क्रोध-पूर्वक उनसे कठोर वचन बोलने लगीं—हे सीते! देख, पुलस्त्य के कुल में उत्पन्न महात्मा रावण की भार्या होने में तू अपना अहोभाग्य नहीं मानती। ऐसे कुलीन की पत्नी बनना क्या तेरी समझ में बड़ी प्रतिष्ठा की बात नहीं है? एकजटा नामक राक्षसी क्रोध से लाल-लाल आँखें करके सीता को पुकारकर बोली—हे सीते, छः प्रजापतियों में चौथा प्रजापति पुलस्त्य ब्रह्मा का मानस पुत्र है। उसका मानस पुत्र विश्रवा बड़ा तेजस्वी और प्रजापति के समान है। शत्रुओं को रुलानेवाला यह राक्षसेन्द्र रावण उसी का पुत्र है। तू उसकी भार्या होने के योग्य है। हे मनोहराङ्गि, मेरा कहना क्य तेरे मन में नहीं आता? अब हरिजटा नाम राक्षसी अपने नेत्रों को घुमाकर सीता को समझाने लगी। उसकी आँखें बिल्ली के तुल्य थीं। उसने कहा—हे सीते, जिसने तैंतीसों देवताओं को और देवराज इन्द्र को भी जीत लिया उस राक्षसेन्द्र की तू भार्या होने योग्य है। बल का अहङ्कार रखनेवाले और संग्रामों में मुँह न फेरनेवाले बड़े पराक्रमी रावण की भार्या होना क्या तू नहीं चाहती? यह महाबली राजा सब स्त्रियों में भाग्यवती प्यारी मन्दोदरी को छोड़ तुझे आदर देगा। हजारों स्त्रियों से भरे और नाना रत्नों से भूषित अपने अन्तःपुर को छोड़ रावण तेरे पास ही आवेगा। तदनन्तर विकटा नाम राक्षसी बोली—देख, इस भयङ्कर पराक्रमी रावण ने कई बार गन्धर्वों और दानवों को संग्राम में जीत लिया है। वह तेरे पास आया है। हे अधमे, ऐसे समृद्ध रावण की तू भार्या नहीं होना चाहती! इसके अनन्तर दुर्मुखी नाम राक्षसी बोली—हे सीते, जिसके डर से सूर्य न तपता है और न वायु बहता है उसके वश में तू क्यों नहीं हो जाती? राक्षसराज ऐसा है कि उसके भय से वृक्ष पुष्प-वृष्टि करते हैं, पर्वत पानी बहाते हैं और वह जब चाहता है तभी मेघ बरसते हैं। उसकी भार्या होने की बुद्धि तू क्यों नहीं करती? हे भामिनि, जो ठीक बात थी सो हमने कह सुनाई। यदि इस बात को मानोगी तो अच्छा है, नहीं तो मारी जाओगी।

---

## चौबीसवाँ सर्ग

### राक्षसियों का सीता को धमकाना

अब वे राक्षसियाँ मिलकर सीता से अप्रिय बातें कहने लगीं—हे सीते, क्या तू उस अन्तःपुर में

रहना नहीं चाहती जो सब प्राणियों के लिए मनोहर है ? वहाँ उत्तमोत्तम बिस्तरे और पलँग बिछे हैं। हे मानुषि ! तू मनुष्य की ही भार्या होना बहुत मानती है। अब तू राम से अपना मन हटा ले, नहीं तो हम तुझे मार डालेंगी। त्रैलोक्य की समृद्धि के भोगनेवाले राक्षसेश्वर रावण को अपना पति बनाकर तू यथेष्ट विहार कर। हे सुन्दरि, तू उस मनुष्य राम को चाहती है जो राज्य से भ्रष्ट, असिद्धार्थ और कादर है।

राक्षसियों की ये बातें सुनने से कमलनयनी सीता की आँखों में आँसू भर आये। उन्होंने कहा—हे राक्षसियो, संसार में जो दुष्ट कर्म है उसी को करने के लिए तुम इकट्ठी होकर मुझे समझा रही हो। वह पापवचन मेरे मन में नहीं बैठता, और राक्षस की भार्या मानुषी हो भी कैसे सकती है ! इसलिए तुम मुझे भक्षण भले कर लो परन्तु मैं तुम्हारा कहा न करूँगी। मेरा पति चाहे दीन हो अथवा राज्यहीन, मेरे लिए तो वही देवतुल्य पूज्य है। उसी में सब दिन मेरा अनुराग है। सूर्य की पत्नी सुवर्चला जैसे सदा सूर्य में ही अनुरक्त रहती है, महाभागा शची जैसे इन्द्र को ही चाहती है और अरुन्धती वशिष्ठ को, रोहिणी चन्द्र को तथा लोपामुद्रा अगस्त्य को चाहती है; जैसे सुकन्या च्यवन को, सावित्री सत्यवान को, श्रीमती कपिल को, मदयन्ती सौदास को, केशिनी सगर को और दमयन्ती नल को चाहती थी उसी प्रकार मैं भी श्री राम को ही अपना पति मानती हूँ।

सीता का यह वचन सुनकर रावण की आज्ञा के अनुसार वे राक्षसियाँ क्रोध-पूर्वक कठोर वचनों से सीता को डपटने लगीं। शीशम की शाखा में छिपे हुए हनुमान् चुपचाप सब सुन रहे थे। अब वे सब की सब सीता को डपटती हुई चारों ओर से घेरकर, डर दिखलाने के लिए, अपने लम्बे-लम्बे प्रज्वलित ओष्ठों को चाटने लगीं। बड़े क्रोध से शीघ्रतपूर्वक हाथ में फरसा लेकर उन सब ने कहा—इस राक्षसाधिप रावण को तू अपना पति नहीं समझती; तुझे यही अच्छा लगता है कि हम सब तुझे खा जायँ ! उन भयङ्कर राक्षसियों द्वारा इस प्रकार डराई और डपटी हुई वराङ्गना सीता आँसू पोंछती हुई उस शिंशपा-वृक्ष के पास चली गई। वहाँ शोकसागर में डूबी हुई वह खड़ी हो गई। दीनमुखी मलिनवस्त्रधारिणी सीता को वे निशाचरियाँ वहाँ भी डरवाने लगीं। अब भयङ्करी कराल शुष्कोदरी विनता नाम राक्षसी क्रोध कर बोली—हे सीते, बहुत हो चुका; तुमको पति पर जितना प्रेम दिखलाना था उतना तुम दिखला चुकीं। अब अति न करो; क्योंकि निपट अति करने से दुःख ही होता है। मैं तुझसे सन्तुष्ट हुई। मनुष्य-जाति के उपयुक्त जो व्यवहार था सो तूने कर दिखलाया। अब जो मेरा हित-वचन है सो तू कर। देख, रावण सब राक्षसों का पति और पराक्रमी है। वह तेरे पास आकर प्रार्थना करता है। वह इन्द्र के तुल्य चतुर, दाता और सबसे प्रिय बोलता है। उसको तू अपना पति बना ले; और राम तो मनुष्य हैं। वे इस समय दीन भी हो रहे हैं, उनको तू छोड़ दे। तू रावण का आश्रय कर ले। आज से दिव्य अंगराग और दिव्य भूषणों से भूषित होकर सब की स्वामिनी हो जा। जैसे अग्नि की भार्या स्वाहा और इन्द्र की पत्नी शची है वैसे तू भी रावण की पत्नी कहला। हे वैदेहि, उस दीन आयुष्यहीन रामचन्द्र को लेकर क्या करेगी ? यदि तू मेरी बात न मानेगी तो इसी मुहूर्त्त में हम सब तुझे खा जायँगी। फिर लम्बे स्तनोंवाली एक विकटा नामक राक्षसी मुष्टिका तानकर सीता को धमकाती हुई बोली—हे दुर्बुद्धे, तेरी बहुत सी

अनुचित बातें हमने दया और कोमलता से सुन लीं। परन्तु यदि तू समय के अनुसार हमारे हितकारी वचन को न मानेगी तो तेरे लिए अच्छा न होगा। देख, तू समुद्र के इस पार लाई गई और इस भयंकर रावण के निवास में है। तू रावण के घर में कैद है। हम सब तेरी चौकीदारी कर रही हैं। अब यहाँ पर तुझे साक्षात् इन्द्र भी नहीं बचा सकते। इसलिए मैं तेरे हित की कहती हूँ। तू मान और आँसू बहाना छोड़कर व्यर्थ शोक करना छोड़ दे। अब प्रीति और हर्ष का आसरा कर। इस नित्य की दीनता को त्याग और राक्षसराज के साथ सुखपूर्वक विहार कर। हे भीरु, हम सब इस बात को जानती हैं कि स्त्रियों का यौवन स्थिर नहीं रहता, इसलिए जब तक तेरा यौवन है तब तक तू सुख भोग ले। हे मत्तनयनी! रमणीय बागीचों, पर्वतों और वाटिकाओं में तू राक्षसराज के साथ घूमकर विहार कर। हे सुन्दरि, हजारों स्त्रियाँ तेरे वश में रहेंगी, इसलिए तू रावण को अपना पति बना। हे मैथिलि, जो तू हठ न छोड़ेगी तो मैं तेरे हृदय को नोचकर खा लूँगी।

तदन्तर क्रूररूपा चण्डोदरी नाम निशचारी अपना बड़ा भारी शूल घुमाती हुई बोली—हे राक्षसियो, इस मृगनयनी के स्तन डर से हिल रहे हैं, इसको देख मुझे बड़ा दोहद* उत्पन्न होता है कि मैं इसके यकृत, प्लीह और नाड़ीबन्धन-सहित हृत्कमल को तथा मस्तक को खा जाऊँ। जी तो यही चाहता है कि इसके अन्य अङ्गों को भी खा लूँ। एक और प्रघसा नामक राक्षसी बोली—हे राक्षसियो, आओ हम सब इस क्रूरहृदया का कण्ठ निचोड़ लें, चुपचाप क्यों बैठी रहें; फिर चलकर राजा से कह दें कि वह मानुषी मर गई। यह सुनकर राजा निःसन्देह यही कहेंगे कि अच्छा मर गई तो तुम सब खा डालो। तदनन्तर अजामुखी राक्षसी बोली—राक्षसियो, इसको मारकर बराबर-बराबर टुकड़े कर लो, तब हम सब बाँट लें। मुझे झगड़ा अच्छा नहीं लगता। शीघ्रता करो और कुछ पीने के लिए मद्य और नाना प्रकार की बहुत सी फूलमालाएँ भी यहाँ लाकर रख दो। यह सुनकर शूर्पणखा राक्षसी बोली—जो बात अजामुखी ने कही वही मुझे भी भाती है, इसलिए सुरा लाओ, वही सब शोक को दूर कर देती है। हम सब मनुष्य का मांस खाकर निकुम्भिला* के समीप चलकर नाचें। इस प्रकार डर दिखाये जाने और डपटे जाने से सीता अधीर होकर रोने लगीं।

---

## पचीसवाँ सर्ग

### सीता का विलाप

उन राक्षसियों के कठोर और रूखे वचन सुनकर श्रीजानकी विलाप करने लगीं। बहुत डरती हुई वे गद्गद वाणी से कहने लगीं—हे राक्षसियो, देखो मनुष्य की बेटी कदापि राक्षस की भार्या नहीं हो सकती। तुम मुझे खा भले ही लो, परन्तु मैं तुम्हारा कहना न मानूँगी। राक्षसियों के बीच में पड़ी सीताजी का दुःख से तनिक भी छुटकारा नहीं होता था; क्योंकि एक तो वे शोक से पीड़ित थीं, दूसरे रावण ने धमकाया था। उस समय सीता काँपती और डर के मारे सिकुड़कर अपने ही शरीर में घुसी जाती थीं जैसे झुण्ड से छूटी हरिणी को हुँडारों ने घेर लिया हो।

---

* गर्भवती स्त्री की तरह-तरह की चीजें खाने की इच्छा।

* लङ्का के पश्चिम भाग में भद्रकाली की एक मूर्त्ति है।

उस समय एक अशोक की फूली हुई शाखा को थामकर सीता, शोक से व्याकुल हो, श्रीरामचन्द्र का ध्यान करने लगीं। वे अपने आँसुओं से स्तनों को सींचती और सोचती थीं पर शोकसागर के पार का पता न मिलता था। वे काँपती-काँपती, वायुवेग से कदली-वृक्ष की नाईं, गिर पड़ीं। राक्षसियों के डर से उनके चेहरे की रङ्गत उड़ गई। उस घड़ी सीता के काँपने से उनकी लम्बी और मोटी वेणी भी हिलने लगी। वे निःश्वास लेतीं, शोक से पीड़ित और मुर्छित हो विलाप करने लगीं। हा! राम, हा! लक्ष्मण, हा! मेरी सास, हा! कौशल्ये, हा! सुमित्रे, देखो, पण्डितों ने यह कहावत ठीक ही प्रसिद्ध की है कि अकाल में स्त्री या पुरुष की मृत्यु दुर्लभ है—अर्थात् माँगने से मौत भी नहीं मिलती। देखो, मुझे इन दुष्ट राक्षसियों से धमकाया, डरवाया और डपटा जाता है; जो माँगी मौत मिलती तो मैं क्या राम के बिना मुहूर्त्त भर भी जाती रहती? मैं अल्प-पुण्या, दीन और अनाथ की भाँति नष्ट हो जाऊँगी, जैसे कि भरी हुई नौका वायु के वेग से समुद्र में डूब जाती है। देखो, मुझे पति के दर्शन नहीं होते। मैं राक्षसियों के वश में पड़ी शोक से ऐसा दुःख सह रही हूँ, जैसे पानी के धक्कों से करारे की दुर्दशा होती है। धन्य हैं वे लोग जो कमलनयन, सिंह के तुल्य पराक्रमी और प्रिय बोलनेवाले मेरे नाथ को देखते हैं। विदितात्मा श्रीराम के बिना मेरा जीवन दुर्लभ है, जैसे तीक्ष्ण विष खानेवाले का जीवन दुर्लभ होता है। हा! मैंने पूर्व-जन्म में किस प्रकार का महापाप कर रक्खा है जिससे मैं इस प्रकार के भयङ्कर महाकठोर दुःख भोग रही हूँ! इस भारी शोक से व्याकुल होकर मैं अपने जीवन का त्याग करना चाहती हूँ। देखो, मैं इन राक्षसियों के द्वारा ऐसा दुःख पा रही हूँ पर रामचन्द्र मुझे मिलते ही नहीं। धिक्कार है मनुष्य-जन्म को और धिक्कार है पराधीनता को, जिसमें पड़कर अपनी इच्छा के अनुसार प्राण-त्याग करना भी दुर्लभ है।

---

## छब्बीसवाँ सर्ग

### फिर सीता का विलाप करना

आँसू बहाती हुई श्रीजानकी नीचे मुँह किये फिर विलाप करने लगीं। पागल की नाईं, भूली हुई की भाँति, घबरानी सी सोचती और भूमि पर लोटती हुई वे कहने लगीं—देखो, इस कामरूपी राक्षस ने राम को माया में भुलाकर मुझे बलात्कार से यहाँ ला रक्खा। मैं हजार रोती-चिल्लाती रही, पर मेरी एक न चली। अब मैं राक्षसियों के वश में पड़ी हूँ। ये मुझे इस प्रकार डपटती हैं। मैं दुःख से पीड़ित हूँ। अब मुझे जीने का उत्साह भी नहीं। अब न तो मुझे जीवन से कुछ प्रयोजन है, न धन से और न भूषणों से ही; क्योंकि एक तो राक्षसियों के बीच में रहना है, दूसरे रामचन्द्र का विरह है—ये दोनों परम दुःख मुझे असह्य हैं। हा! यह मेरा हृदय लोहमय अथवा अजरा-मर है; क्योंकि इतना दुःख पाकर भी यह फट नहीं जाता। दुष्ट मतिवाली और अपतिव्रता की नाईं कर्म करनेवाली मुझे धिक्कार है। मैं रामचन्द्र से बिछुड़-कर क्षण भर भी क्यों जीती हूँ! मैं तो अपने बायें पैर से भी रावण को न छुऊँगी। उसको मैं अङ्गीकार करूँगी, यह बात तो कहनी ही न चाहिए। देखो, वह न तो मना करने से मानता है, न अपने को जानता है और न अपने कुल को पहचानता है। केवल अपने क्रूर स्वभाव से मुझे अपनी ओर फेरना चाहता है।

हे राक्षसियो, चाहे मुझे काट डालो, चाहे तोड़ डालो, चाहे भून डालो, चाहे जला दो, पर मैं रावण की बात कभी न मानूँगी। क्यों इतनी देर से व्यर्थ बकवाद कर रही हो! रामचन्द्र तो विख्यात पण्डित, कृतज्ञ, दयाशील और सदाचारी हैं। मैं नहीं जानती कि इस घड़ी वे क्यों दयाहीन हो रहे हैं। मैं इसमें अपने भाग्य का दोष समझती हूँ। देखो, एक उन्हीं ने जन-स्थान में चौदह हजार राक्षसों को मार डाला, वे भला मेरी सुध क्यों नहीं लेते! इस अल्पवीर्य रावण ने मुझे लाकर बन्दीगृह में डाल रक्खा है। मेरे पति इसको संग्राम में मारने के लिए समर्थ हैं। राम ने दण्डकारण्य में उस राक्षसश्रेष्ठ विराध को मार डाला था, वे मेरी सुध क्यों नहीं लेते! यह लंका यद्यपि समुद्र के मध्य में है और दुःख से जीती जा सकती है तथापि राघव के बाण किसी प्रकार रुक नहीं सकते। एक कारण हो सकता है जिससे श्रीरामचन्द्र, ऐसे दृढ़ पराक्रमी होकर भी, राक्षस से हरी गई अपनी इष्ट भार्या के लिए यत्न नहीं करते। वह यह कि वे नहीं जानते कि सीता लङ्का में पड़ी है। यदि उन्हें मालूम होता तो क्या ऐसे तेजस्वी होकर वे इस प्रकार की अप्रतिष्ठा सहते? गृध्रों का राजा जटायु यदि इस समय जीता रहता तो वह मेरा समाचार रामचन्द्र को सुनाता। परन्तु वह भी संग्राम में रावण के हाथ मारा गया। मेरे हरण-काल में, मुझे बचाने के लिए, उसने बड़ा भारी काम किया। वृद्धावस्था में भी वह रावण को मारने के लिए उद्यत हो गया। अब यदि रामचन्द्र को मालूम हो जाय कि मैं लंका में हूँ, तो वे आज ही क्रुद्ध होकर इतने बाण चलावें की संसार में एक भी राक्षस न रह जायँ और इस लंका को महासागर समेत भस्म कर डालें। वे इस नीच रावण की कीर्त्ति और नाम दोनों का नाश कर दें। तब पतियों के मारे जाने से राक्षसियाँ घर-घर में मेरी तरह रोवें, इसमें सन्देह नहीं। मैं जानती हूँ कि लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र इस लंका को ढूँढ़कर ऐसा ही करेंगे; क्योंकि उनकी दृष्टि के आगे आने पर शत्रु मुहूर्त्त भर भी नहीं जी सकता। थोड़े ही काल के अनन्तर यह लंका श्मशान के तुल्य हो जायगी। इसमें जहाँ-तहाँ चिता का धुआँ और गृध्रों के झुण्ड देख पड़ेंगे। थोड़े ही समय के बीतने पर मेरा यह मनोरथ पूर्ण होगा। मेरी ये उलटी बातें तुम सबके लिए नाश-रूप है। इस समय इस लंका में ऐसे अशुभ देख पड़ते हैं कि थोड़े ही दिनों में इसको निस्तेज कर देंगे। यह लंका यद्यपि दुर्धर्ष है तो भी इस पापी रावण के मारे जाने पर विधवा स्त्री की भाँति ऐश्वर्यादिक से हीन हो जायगी। यद्यपि इस पुरी में इस समय पवित्र उत्सव हुआ करते हैं, तथापि जब राक्षसों-सहित रावण मारा जायगा तब यह विधवा स्त्री की नाईं हो जायगी। मैं प्रत्येक गृह में राक्षसों की कन्याओं के रोने-पीटने का शब्द सुनूँगी। इस बात को अब देर नहीं है। यह लंका जब रामचन्द्र के बाणों से जल जायगी, तब अन्धकारमय हो जायगी। सब उत्तमोत्तम राक्षस मारे जायँगे। रामचन्द्र के पास केवल इतना समाचार पहुँचना चाहिए कि सीता राक्षस के घर में है। हे राक्षसियो, इस क्रूर और अधम रावण ने मेरे लिए जो अवधि निर्धारित की है, वह समीप है; सो मेरी मृत्यु का समय इस दुष्ट ने बता ही दिया है। ये पापकारी राक्षस स्त्रीहत्या-रूप अकार्य को नहीं समझते, और उसको समझेंगे ही क्या! उसी अधर्म से तो इस घड़ी महान् उत्पात होनेवाला है। ये मांसभोजी राक्षस कुछ भी धर्म नहीं जानते। अवश्य राक्षस रावण प्रातर्भोजन के लिए मेरे शरीर को कटवावेगा; सो मैं प्रिय रामचन्द्र के बिना क्या करूँगी! यदि इस घड़ी

कोई मुझे विष दे दे तो मैं शीघ्र ही यमराज को देखूँ। पति के बिना मैं बहुत ही दुखी हूँ। हा! रामचन्द्र मुझे जीवित न जानते होंगे। यदि वे दोनों भाई मुझे जीती जानते तो क्या सम्पूर्ण पृथ्वी को न ढूँढ डालते? मैं जानती हूँ कि मेरे ही शोक से श्रीरामचन्द्र शरीर का त्याग करके देवलोक को चले गये। जो उन वीर रामचन्द्र को देखते होंगे वे देव, गन्धर्व, सिद्ध और बड़े-बड़े ऋषि धन्य हैं। परमात्मा श्रीरामचन्द्र केवल धर्म के चाहनेवाले राजर्षि हैं; उन्हें मुझ भार्या से क्या प्रयोजन? एक बात यह भी तो है कि जो वस्तु दृष्टिगोचर रहती है उसी पर प्रीति और सुहृद्भाव रहता है; और जो अदृश्य पदार्थ है, उसकी लोग प्रायः चाह नहीं रखते। परन्तु मुझे यह विश्वास है कि प्रणय का नाश करनेवाले कृतघ्न ही होते हैं। रामचन्द्र तो कृतघ्न हैं—वे कभी ऐसा न करेंगे। अथवा यह भी हो सकता है कि मुझमें किसी प्रकार के दोष होंगे, या मेरे भाग्य का ही दोष होगा; नहीं तो सीता ऐसे वराह श्रीरामचन्द्र से बिछुड़ कैसे जाती! अब तो ऐसे जीने से मरना ही मेरे लिए मंगलदायक है, क्योंकि मैं श्रीरामचन्द्र से हीन हो रही हूँ। अथवा यह हुआ होगा कि वे दोनों भाई शस्त्रों का त्याग करके फल-मूल का आहार करते वन में घूमते होंगे। या इस दुष्टात्मा रावण ने छल से उनको मरवा डाला होगा। सो मैं तो ऐसे समर में मरना ही भला समझती हूँ, परन्तु इस दुःख में मेरी मृत्यु लिखी ही नहीं। सत्यवादी, जितेन्द्रिय, महात्मा मुनि लोग धन्य हैं क्योंकि उनके लिए प्रिय और अप्रिय कुछ भी नहीं है। प्रिय से तो दुःख की सम्भावना ही नहीं परन्तु अप्रिय से अधिक दुःख होता है। ये दोनों जिनसे छूट गये हैं उन महात्माओं को मैं नमस्कार करती हूँ। देखो, एक तो प्रिय रामचन्द्र ने मुझे छोड़ दिया, दूसरे मैं इस पापी रावण के हाथ आ पड़ी हूँ; इसलिए अब मैं अपने प्राणों का त्याग करूँगी।

---

## सत्ताईसवाँ सर्ग

### त्रिजटा के स्वप्न का वर्णन

सीता की ये बातें सुनकर वे राक्षसियाँ क्रुद्ध हुईं। उनमें से बहुत सी तो रावण से कहने चली गईं और बहुत सी सीता के पास आकर पहले की भाँति अनर्थ-पूर्ण कठोर वचन कहने लगीं कि पापनिश्चय और दुष्ट बुद्धिवाली हे सीता, आज इसी घड़ी ये राक्षसियाँ तेरे मांस को सुख से खायँगी। राक्षसियों से डराई गई सीता को देख, उसी समय निद्रा से जागी हुई, त्रिजटा नाम वृद्धा राक्षसी बोली—अरी दुष्ट बुद्धिवाली राक्षसियो, अपने शरीर को खा लो, सीता को मत खाओ। ये जनक की इष्ट पुत्री और महाराज दशरथ की पुत्रवधू हैं। देखो, आज मैंने एक भयंकर स्वप्न देखा है। वह रोमाञ्चकारी है। वह राक्षसों के नाश के लिए और इनके पति के मङ्गल के लिए है।

त्रिजटा का यह वचन सुनकर सीता को धमकानेवाली राक्षसियाँ डर गईं। वे त्रिजटा से पूछने लगीं कि आज रात को तूने किस प्रकार का स्वप्न देखा है। हमको सुनाओ। राक्षसियों के पूछने पर त्रिजटा उस स्वप्न का वर्णन करने लगी—

हे राक्षसियो, आज मैंने स्वप्न देखा है कि हाथीदाँत के विमान में हजार घोड़े जुते हुए हैं। उस पर सफेद माला और सफेद ही कपड़ा पहने श्रीरामचन्द्र चढ़े हैं। लक्ष्मण उनके साथ में हैं। फिर मैंने देखा कि सागर से घिरे हुए सफेद पर्वत पर सफेद कपड़े

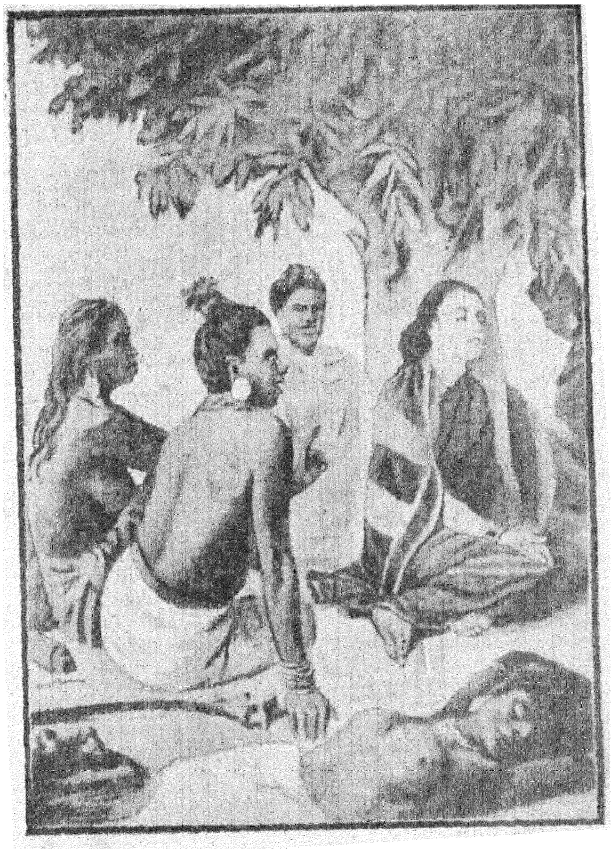

त्रिजटा का स्वप्न। [पृष्ठ ५०४

पहने सीता बैठी है। वहीं पर वह रामचन्द्र से मिली है जैसे सूर्य से प्रभा मिलती है। इसके बाद मैंने देखा कि चार दाँतोंवाले पर्वताकार हाथी पर रामचन्द्र और लक्ष्मण अत्यन्त शोभित हो रहे हैं। फिर मैंने देखा कि तेज से सूर्य के सदृश प्रकाशमान वे दोनों भाई सफेद माला और सफेद कपड़े पहने जानकी के पास आये हैं। मैंने देखा कि उस पर्वत के अग्रभाग में एक हाथी आकाश में खड़ा है और उसे रामचन्द्र पकड़े हैं। उस पर यह कमलनयनी सीता पति की गोद से उछलकर जा चढ़ी। फिर इसने अपने हाथ से चन्द्र और सूर्य को पोंछकर साफ किया। इसके अनन्तर वे दोनों राजकुमार भी उस हाथी पर चढ़ गये और सीता को लिए हुए लङ्का के ऊपर आकर ठहर गये। फिर मैंने देखा कि आठ सफेद बैलों से जुते रथ पर लक्ष्मण और श्रीरामचन्द्र सफेद माला और कपड़े पहने चढ़े हैं। इसके बाद राम, लक्ष्मण और सीता को दिव्य पुष्पक विमान पर चढ़े उत्तर दिशा में जाते मैंने देखा। फिर मैंने रावण को मूँड़ मुड़ाये देखा। वह तेल से नहाये, लाल कपड़े पहने, मद्य को पीता और मतवाला था। मैंने देखा कि वह कन्दइल की माला पहने पुष्पक विमान पर से भूमि पर गिर पड़ा। फिर मुझे देख पड़ा कि उसको एक स्त्री खींच रही है। वह मूँड़ मुड़ाये, काला कपड़ा पहने, लाल माला और चन्दन से भूषित था। वह तेल पीता, हँसता, नाचता, भ्रान्तचित्त और व्याकुलेन्द्रिय था। गदहों के रथ पर चढ़ा हुआ वह शीघ्रतापूर्वक दक्षिण दिशा में चला गया। फिर मैंने देखा कि रावण गदहे की सवारी से धरती पर अधोमुख गिर पड़ा। वह डर के मारे बहुत ही व्याकुल था। फिर वह डरा हुआ शीघ्र ही उठकर पीड़ित और पागल के तुल्य रूप धारण किये, नङ्ग-धड़ङ्ग, बहुत से दुर्वचन बकता हुआ भागा और नरक के तुल्य मल के ऐसे कीचड़ में जाकर डूब गया जो दुर्गन्ध से दुःसह, भयङ्कर और अन्धकारमय था। फिर मैंने देखा कि रावण दक्षिण दिशा में चला और चहले के तालाब में घुस गया। इसके बाद देखा कि लाल कपड़ा पहने, काली और कीचड़ से लिपटी कोई स्त्री रावण का गला बाँधे दक्षिण दिशा में खींच रही है। इसी प्रकार की दशा मैंने कुम्भकर्ण की भी देखी। रावण के पुत्र भी मूँड़ मुड़ाये और तेल से नहाये हुए थे। फिर देखा कि रावण सुअर पर, मेघनाद सूँस पर और कुम्भकर्ण ऊँट पर सवार होकर दक्षिण दिशा में जा रहा है। परन्तु मैंने विभीषण को माथे पर सफेद छत्र लगाये और चार मन्त्रियों के साथ आकाश-मार्ग में उपस्थित देखा था। मैंने देखा कि राक्षसों का बड़ा भारी समाज इकट्ठा हो रहा है और उसमें गाने-बजाने का महान् शब्द होता है; वे राक्षस लाल-लाल फूलों की माला पहने मद्य-पान कर रहे हैं। मैंने देखा कि रमणीय लंकापुरी के फाटक और तोरण चूर-चूर हो गये हैं; घोड़े, हाथी और रथों सहित वह समुद्र में डूब गई है। मुझे देख पड़ा कि राक्षसों की स्त्रियाँ तेल पीकर मतवाली हो इस लंका में बड़े जोर से हँस रही हैं। फिर ये कुम्भकर्ण प्रभृति प्रधान-प्रधान राक्षस लाल-लाल कपड़े पहने गोबर के तालाब में गिर गये।

सो हे राक्षसियो, तुम यहाँ से चली जाओ। देखो, रामचन्द्र सीता को प्राप्त करते हैं। नहीं तो कदाचित् वे परमक्रुद्ध होकर राक्षसों के साथ तुम्हें भी साफ कर देंगे। मैं तो यही जानती हूँ कि ऐसी प्यारी, अत्यन्त इष्ट और वनवास में भी साथ देनेवाली भार्या सीता की तुम्हारे द्वारा ऐसी दुर्दशा देख राघव कभी क्षमा न करेंगे। इसलिए अब कठोर वचन कहना बन्द करो और समाश्वासन-

वाक्य कहो। आओ, हम सब मिलकर सीता की प्रार्थना करें, क्योंकि जिस दुःखित स्त्री के विषय में ऐसा स्वप्न देख पड़ता है वह अपने दुःखों से छूट जाती है—उसे अपना अत्युत्तम प्रिय पदार्थ प्राप्त होता है। हे राक्षसियो, यद्यपि तुमने इसको बहुत डराया है तो भी अब प्रसन्नता का उपाय करो। कठोर वचन कहने का अवसर नहीं है; क्योंकि रामचन्द्र द्वारा राक्षसों को बड़ा भय आ पहुँचा है। देखो, प्रणाम करने से जब यह मैथिली देवी प्रसन्न हो जायगी तब तुमको बड़े भय से भली भाँति छुड़ा सकती हैं। देखो, इस विशाल नयनोंवाली के अङ्गों में थोड़ा भी दुष्ट चिह्न मैं नहीं देखती। इससे भी इसके प्रारब्ध का उदय ही पाया जाता है। केवल स्नान-भूषणमात्र के न होने से यह दुःखित जान पड़ती है। स्वप्न में जब यह देवी आकाशमार्ग में देख पड़ी तो अवश्य मुझे इसकी अर्थसिद्धि ही देख पड़ती है। वह अर्थसिद्धि अब दूर नहीं है। राक्षसराज का विनाश और राघव का विजय भी मुझे अवश्य जान पड़ता है। एक यह भी कारण देखो जिससे अनुमान होता है कि यह अवश्य अपने प्रिय की बातें सुनेगी। वह यह कि इसका वाम नेत्र—जो कमल के तुल्य विशाल है—फड़क रहा है। इसकी बाईं भुजा अकस्मात् काँपती देख पड़ती है और इसकी बाम जङ्घा भी फड़क रही है। इससे तो यही सूचित होता है कि राम समीप में ही खड़े हैं। यह पक्षी जो घोंसले में बैठकर सुखदायिनी वाणी बोल रहा है सो मानों सीता को आश्वासन देता हुआ बार-बार मङ्गल-प्राप्ति की सूचना दे रहा है।

इस प्रकार पति के विषय की बातें सुनकर सीता अत्यन्त हर्षित हुई और बोलीं कि यदि यह बात सत्य हुई तो मैं तुम्हारी रक्षा अवश्य करूँगी।

---

# अट्ठाईसवाँ सर्ग

## सीता का फिर विलाप करना

त्रिजटा के वचन से सीता प्रसन्न तो हुई पर रावण के क्रूर वचनों को याद करके वे फिर डरने लगीं। एक तो वे राक्षसियों के बीच में बैठी थीं, दूसरे रावण धमका गया था। इससे जङ्गल में छोड़ दी गई छोटी लड़की की नाईं वे अत्यन्त विलाप करने लगीं। उन्होंने कहा—सज्जन लोग यह सत्य ही कहते हैं कि अकालमृत्यु नहीं होती। सो यह बड़े खेद की बात है। देखो, मैं इस प्रकार धमकाई जाने पर भी जीती हूँ। इस दशा में क्षण-मात्र भी जीना मेरे लिए अनुचित है। सुख से हीन और दुःखों से भरा मेरा हृदय अवश्य बड़ा कठोर है क्योंकि वज्र से मारे हुए पर्वत के शृङ्ग की नाईं इसके हजार टुकड़े हो जाने चाहिएँ। आत्मघात करने में मुझे कुछ भी पाप न होगा, क्योंकि अन्त में यह क्रूर राक्षस मेरा घात करेगा ही। इस दुर्मरण की अपेक्षा अपने आप मर जाना मैं अच्छा समझती हूँ; और स्त्रीभाव से तो मैं इसको कभी स्वीकार करने की नहीं जैसे कि शूद्र को ब्राह्मण अपना मन्त्र नहीं दे सकता। मैं जानती हूँ कि लोकनाथ श्रीरामचन्द्र के आने से पहले ही यह राक्षस-राज मेरे शरीर को काटेगा, जैसे शल्यकृन्त* गर्भस्थ जन्तु (व्याधिरूप कृमि) के टुकड़े-टुकड़े करता है। मैं चिरकाल से दुःखिनी हूँ; सो मेरे लिए वे दो मास शीघ्र ही आ पहुँचेंगे, जैसे कारागृह में बँधे हुए चोर का नाशकाल शीघ्र ही आ जाता है। हा राम, हा लक्ष्मण, हा सुमित्रा, हा कौशल्या,

* शस्त्र-चिकित्सक।

हा मेरी जननी, तुम सब देखो कि मैं अब अपनी अल्पभाग्यता से नष्ट हो रही हूँ जैसे कि महासमुद्र में वायुवेग से नौका का नाश होता है। मैं जानती हूँ कि उस मृगरूपधारी राक्षस ने मेरे लिए उन दोनों भाइयों को मार डाला होगा जैसे कि बिजली प्राणियों का शीघ्र ही नाश कर देती है। मैं जानती हूँ कि वह मृगरूपधारी काल था, जिसने उस घड़ी मुझे लोभ में डाल दिया और जिससे मैंने उन दोनों भाइयों को अपने पास में अलग किया। हा पूर्णचन्द्र-सदृश मुखवाले राम, हा सत्यव्रत, हा दीर्घबाहो, हा जीवलोक-हितैशी ! मेरे प्यारे तुम नहीं जानते कि मैं राक्षसों के हाथ से मारी जाऊँगी। पति को छोड़ दूसरे देवता को न मानना, मेरी यह क्षमा, भूमिशयन, धर्म में नियम—पतिव्रता के ये सब धर्म मेरे लिए निष्फल हो गये। कृतघ्नों के साथ किया हुआ मनुष्य का उपकार जैसे व्यर्थ हो जाता है वही दशा मेरे नियमों की हुई। हे राम, मेरा किया हुआ यह धर्म व्यर्थ हुआ जाता है। जो मैं ऐसी दुर्बल और विवर्ण होकर भी तुमको नहीं देखती तो मेरा यह पतिव्रत निरर्थक है। तुम्हारे संयोग की अब मुझे आशा नहीं। मैं जानती हूँ कि तुम नियम से पिता की आज्ञा का पालन करके व्रत को समाप्त करोगे और वन से लौटकर, निर्भयता-पूर्वक कृतार्थ हो, विशाल नयनोंवाली स्त्रियों के सङ्ग विहार करोगे। हे रामचन्द्र, मैंने अपने विनाश के लिए ही तुम्हारी अभिलाषा की और तुमसे प्रेम किया। मेरा तप और व्रत भी निष्फल हुआ। मेरे मन्दभागी जीवन को धिक्कार है। मैं इसे त्याग दूँगी। मैं विष खाकर अथवा पैने शस्त्र के द्वारा शीघ्र ही अपने प्राण त्याग दूँगी, पर न तो कोई मुझे विष देनेवाला है और न इस राक्षस के घर में शस्त्र ही मिल सकता है। सीतादेवी इस प्रकार बहुत विलाप करके श्रीरामचन्द्र का स्मरण करती और काँपती हुई फूले हुए वृक्ष के पास चली गईं। वहाँ पर वे शोक से व्याकुल हो गईं। बहुत कुछ सोच-विचार करती हुई वे अपनी वेणी के बंधन को पकड़कर कहने लगीं कि इसी बन्धन से गले में फाँसी लगाकर मैं यमलोक को चली जाऊँगी। वे यह सोचती थीं और वृक्ष की शाखा पकड़कर रामचन्द्र का, लक्ष्मण का और अपने कुल का ध्यान करती ही थीं कि इतने में ऐसे श्रेष्ठ शकुन हुए जो उनके शोक को हरण करनेवाले थे और धैर्य से प्राप्त हुए थे। वे पहले भी हुए थे।

---

## उनतीसवाँ सर्ग

### सीता के शुभसूचक शकुनों का वर्णन

दीन चित्तवाली व्यथित सीता को वे सब शुभ-निमित्त आकर इस तरह प्राप्त हुए जैसे श्रीमान् मनुष्य के पास सेवक उपस्थित होते हैं। वक्र पपिनी की पंक्ति से शोभित, काली पुतली और शुक्ल वर्ण से भूषित उनका विशाल वाम नेत्र, मीन से ताड़ित लाल कमल की नाईं, फड़कने लगा। उनकी सुन्दर वाम भुजा गोल, मोटी, अत्युत्तम कालागुरु चन्दन लगाने योग्य और बहुत काल से प्रिय के संयोग से रहित थी; सो वह हिलने लगी। उनकी हस्तिशुण्डाकार वाम जङ्घा फड़कती हुई मानो यह कह रही थी कि रामचन्द्र समीप ही खड़े हैं; डरती क्यों हो। उनका सुनहरा वस्त्र कुछ-कुछ मलिन हो गया था, वह भी कुछ खसक गया। ये सब निमित्त

पहले भी हुए थे। इनसे देवी वैदेही को हर्ष हुआ, जैसे हवा और धूप लगने से खेत का सूखा हुआ बीज, वृष्टि होने पर, फिर हरा हो जाता है। सीता के बिम्बतुल्य अधर, सुन्दर नेत्र, मनोहर भौंहें और सफेद दाँत थे। उनका मुख फिर पहले के तुल्य शोभा और कान्ति से प्रकाशमान हो गया। जैसे राहु के ग्रास से छूटा हुआ चन्द्रमा प्रकाशमान होता है उसी तरह वह मुखड़ा सुहावना लगने लगा। शोक, आलस्य और सन्ताप से रहित और सावधानचित्त होकर श्री जानकी अपने प्रसन्न मुख के द्वारा ऐसी शोभित हुई जैसी शुक्ल-पक्ष की रात्रि उगे हुए चन्द्र से शोभित होती है।

——

## तीसवाँ सर्ग

### सीता से बातचीत करने के लिए हनुमान् का अनेक तर्क-वितर्क करना।

इधर हनुमान् त्रिजटा की कही बातों को और राक्षसियों की तर्जनाओं को सुनते थे। वे सीता की ओर देखते हुए चिन्ता करने लगे कि देखो, जिसको सहस्र-सहस्र और अयुत-अयुत वानर खोज रहे हैं उसको मैंने देख लिया। मैंने दूत बनकर युक्ति-पूर्वक शत्रु की शक्ति देखते-देखते और गुप्त रूप से घूमते-घूमते यह सब देखा। मैंने राक्षसों का ऐश्वर्य, यह पुरी और राक्षसाधिप का प्रभाव देख लिया। सब प्राणियों पर दयाशील, अप्रमेय श्रीरामचन्द्र की भार्या को अब समाश्वासन देना चाहिए। इन्हें पति के दर्शन की आकांक्षा है। पूर्णचन्द्रवदनी सीता ने दुःखों को नहीं देखा है पर इस समय दुःख-समुद्र में डूबती हुई पार नहीं पा रही हैं। अब मैं इन्हें समझाता हूँ। ऐसे शोक से व्याकुल सीता को यदि मैं समझाये बिना ही चला जाऊँ तो मेरा जाना दोष-युक्त होगा; क्योंकि मेरे चले जाने पर राजपुत्री जानकी किसी प्रकार अपनी रक्षा न देख कदाचित् प्राण छोड़ दें। इसके सिवा जिस प्रकार वे महाबाहु श्रीरामचन्द्र—जिन्हें सीता के दर्शन की बहुत आकांक्षा है—समझाने के योग्य हैं, उसी प्रकार सीता को भी समझा देना ठीक ही है। परन्तु इन राक्षसियों के सामने सीता से बातचीत करना भी ठीक नहीं। अब क्या करूँ; मैं बड़े सङ्कट में पड़ा। थोड़ी सी रात्रि रह गई है, इतने ही समय में यदि समाश्वासन न करूँ तो ये अपने प्राण छोड़ देंगी। फिर वहाँ जाने पर यदि श्रीराघव मुझसे पूछें कि सीता ने क्या कहा है तो मैं उनसे क्या कहूँगा। यदि मैं इनसे बातचीत न करूँ और इनके मुँह से सन्देश-वचन लिये बिना ही शीघ्रता से वहाँ पहुँचूँ तो श्रीराघव अवश्य क्रोधपूर्ण दृष्टि से मुझे भस्म कर देंगे। सीता से सम्भाषण किये बिना यदि मैं राम के लिए वानरराज से उद्योग भी करवाऊँ और इधर सीता प्राण त्याग दें तो सेना-सहित उनका यहाँ आना व्यर्थ हो जाय। इसलिए अब मैं ठहरा हूँ। इन राक्षसियों की आँख बचाकर सन्तापपीड़ित श्रीजानकी को धीरे से समझाये देता हूँ। मेरे बोलने से राक्षसियों को उद्वेग न होगा क्योंकि एक तो मेरा रूप बहुत ही छोटा है, दूसरे मैं वानर हूँ। अब मैं मनुष्य के सदृश संस्कृत वाणी बोलता हूँ; परन्तु एक आशङ्का है। यदि ब्राह्मण की ऐसी मेरी संस्कृत-वाणी सुनकर सीता मुझे रावण जानकर डर जायँ तो बड़ा कठिन होगा। इसलिए मनुष्य की साधारण बोली में ही इनको समझाना

ठीक होगा, दूसरे प्रकार से नहीं। परन्तु इसमें भी एक अड़चन है। यदि जानकी मेरा यह रूप देखेंगी और मेरी बोली सुनेंगी तो और भी डरेंगी; क्योंकि राक्षस इन्हें पहले ही डरवा चुके हैं। सो डर से यदि मुझे काम-रूपी रावण जानकर चिल्ला उठें तो राक्षसियों का झुण्ड नाना शस्त्र धारण किये आकर उपस्थित हो जायगा और मुझे घेर कर मारने अथवा पकड़ने का उपाय किया जायगा। तब मैं इस शाखा से उस शाखा पर और इस डाल से उस डाल पर दौड़ता फिरूँगा। इससे सीता जी को और भी शङ्का होगी क्योंकि जब मैं दौड़-दौड़कर वन में घूमता फिरूँगा तब मेरा विशाल रूप देखकर राक्षसियाँ अवश्य डरेंगी और बड़ा विकराल शब्द करेंगी। वे केवल चिल्लाकर ही चुप न बैठेंगी बल्कि उन राक्षसों को पुकारेंगी जो राजगृह में नियुक्त हैं। तब वे शूल, बाण, तलवार इत्यादि नाना शस्त्र लेकर बड़े वेग से अवश्य ही आवेंगे और मुझे चारों ओर से घेर लेंगे। मैं उस समय राक्षसी सेना को मारूँगा तो सही, पर थक जाऊँगा। फिर समुद्र के पार न जा सकूँगा; अथवा वे सब आकर मुझे शीघ्रतापूर्वक पकड़ लें तो सीता को इधर रामचन्द्र का सन्देश भी न मिले और मैं पकड़ा भी जाऊँ। फिर महादुष्ट हिंसाप्रिय राक्षस कदाचित् सीता को ही मार डालें तो रामचन्द्र और सुग्रीव का सब कार्य ही चौपट हो जाय। यदि मैं मारा गया अथवा बाँधा गया तो कोई ऐसा नहीं देख पड़ता जो राम के कार्य को सिद्ध कर दे। इसका कारण यह है कि पहले तो श्री जानकी राक्षसों से रक्षित और ऐसे मार्गरहित समुद्र से वेष्टित गुप्त स्थान में रहती हैं कि कोई पता न पा सकेगा। फिर पता लग भी गया तो मैं ऐसे किसी वानर को भी तो नहीं देखता जो मेरे मारे जाने पर इस सौ योजन चौड़े समुद्र को लाँघकर इस स्थान में पहुँच सके। इन हजारों राक्षसों के मारने के लिए तो मैं भली भाँति समर्थ हूँ, परंतु फिर मैं समुद्र के पार न जा सकूँगा। इसके सिवा संग्राम में जय और पराजय के विषय में सर्वदा सन्देह ही रहता है। ऐसा कौन पुरुष होगा जो पण्डित होकर सन्देहयुक्त कार्य को निःसन्देह होकर करे। इसलिए, सीता से बोलने में इन पूर्वोक्त महादोषों की सम्भावना है और जो न बोलूँ तो सीता का प्राणत्याग होगा। कादर दूत सिद्ध कार्य को भी देश-काल का विचार न करके बिगाड़ देते हैं। अर्थ और अनर्थ के मध्य में बुद्धि का निश्चय करना भी काम नहीं देता, क्योंकि अपने को पण्डित माननेवाले दूत अवश्य कार्य का नाश करते हैं। अब क्या करूँ जिससे कार्य का तो नाश न हो और मैं कादर भी न ठहरूँ, तथा मेरा समुद्र का लाँघना भी वृथा न हो। ये देवी किसी प्रकार मेरा वचन तो सुन लें पर घबरावें नहीं। इस प्रकार सोच-विचार कर श्रीहनुमान् ने मन में यह बात ठानी कि अब मैं श्रीरामचन्द्र की कथा कहना आरम्भ करता हूँ। ऐसा करने से सीता को उद्वेग न होगा; क्योंकि इनका मन सदा उन्हीं में लगा रहता है। अब मैं इक्ष्वाकु-वंश के रत्न श्रीरामचन्द्र के धर्मयुक्त और मङ्गलरूप वचनों को मधुर वाणी से सुनाऊँगा; और वैसा ही करूँगा जिससे सीता को विश्वास उत्पन्न हो। बहुत प्रकार से सोच-विचार करके श्री हनुमान् उसी शाखा में छिपे-छिपे बोलने लगे।

---

## इकतीसवाँ सर्ग

### हनुमान् का सीता को राम की कथा सुनाना और सीता का हनुमान् को देखना

श्रीहनुमान् सीता को सुनाकर इस प्रकार मधुर वचन बोले—एक महाराज दशरथ थे। उनके बहुत से रथ, हाथी और घोड़े थे। वे पुण्यशील, महा-कीर्त्तिमान् और इक्ष्वाकुवंश में महायशस्वी थे। वे हिंसारहित, महान्, दयावान, सत्यपराक्रमी, लक्ष्मीवान, लक्ष्मीवर्द्धन और छत्र-चँवर इत्यादि राज-चिह्नों से युक्त थे। वे महाश्री, राजाओं में श्रेष्ठ, पृथिवी की चारों दिशाओं में विख्यात, सुखदाता और सुखी थे। उनके प्यारे जेठे पुत्र श्रीरामचन्द्र जी हैं, उनका मुख चन्द्र का सा है। वे विशेषज्ञ, सब धनुर्द्धारियों में श्रेष्ठ, अपने चरित्र के और स्वजनों के रक्षक हैं। वे जीवों के और धर्म के रक्षक हैं तथा शत्रुओं को सताते हैं। दशरथ-कुमार श्रीरामचन्द्र अपने सत्यवादी वृद्ध पिता के वचन से, अपनी भार्या और छोटे भाई को साथ ले, वन में आये थे। उस महावन में मृगया करते समय उन्होंने बहुत से काम-रूपी शूर राक्षसों को मारा। जब रावण ने जन-स्थान और खर-दूषण इत्यादि वीरों का नाश सुना तब डाह से, मृग-रूप माया-द्वारा राम को ठगकर, वह उनकी भार्या जानकी को हर ले गया। अपनी भार्या को वन में खोजते समय सुग्रीव नामक वानर के साथ रामचन्द्र की मैत्री हुई। तब रामचन्द्र ने बाली को मारकर सुग्रीव को राज्य दिया। इसके अनन्तर सुग्रीव की आज्ञा से कामरूपी हजारों वानर सीतादेवी को पृथ्वी भर में खोज रहे हैं। मैं भी उन्हीं विशाल नयनोवाली वैदेही के लिए, सम्पाति का वचन मानकर, इस सौ योजन चौड़े समुद्र को लाँघकर आया हूँ। राघव के मुँह से मैंने सीता का जो रूप-रङ्ग और चिह्न सुना था वैसा ही इनको देख रहा हूँ। यह सुनाकर कपिश्रेष्ठ चुप हो रहे। यह वर्णन सुनकर जानकी को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। केशों से आच्छादित अपना मुख ऊपर को उठाकर उस शीशम के वृक्ष की ओर वे देखने लगीं। कपि का वचन सुनकर उस समय सीता ने दिशा और विदिशाओं में चारों ओर देखा, पर कोई न देख पड़ा। तब वे मन से राम का ध्यान करती हुई अपने आप अत्यन्त हर्षित हुईं। फिर सीतादेवी अगल-बगल और ऊपर-नीचे देखने लगीं तब बुद्धिमान् वायुपुत्र उदयाचल पर उगे सूर्य के तुल्य उन्हें देख पड़े।

---

## बत्तीसवाँ सर्ग

### वानररूप को देख सीता का अत्यन्त शोक करना

श्रीसीताजी ने शाखाओं के बीच में छिपे हुए हनुमान् को देखा। वे पीला कपड़ा पहने, बिजली के समूह की नाईं पीले थे और प्रिय वचन बोलते थे। वे फूले अशोक-पुष्पों के गुच्छों के तुल्य कान्तिमान्, सुवर्ण के सदृश नेत्रों से शोभित और नम्रता धारण किये बैठे थे। उन्हें देखकर सीता घबरा उठीं। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे कहने लगीं—अहो! इस वानर का रूप बड़ा भयङ्कर है और देखा नहीं जा सकता। यह कह-

कर वे डर गईं। वे मारे डर के करुणा से विलाप करने और राम-राम तथा लक्ष्मण को पुकारने लगीं। फिर मन्द-मन्द स्वर से रोने लगीं। मैथिली ने सोचा कि क्या यह स्वप्न है! तदनन्तर उधर देखा तो जैसा विशाल और टेढ़ा मुख पहले देखा था वैसा ही देख पड़ा। तब सीता अत्यन्त डर गईं और ऐसी मूर्च्छा खा गईं मानों प्राण ही निकल गये हों। बहुत देर में सचेत होकर वे सोचने लगीं—आज मैंने यह विकराल स्वप्न देखा; क्योंकि स्वप्न में वानर का देखना शास्त्रों में निषिद्ध माना गया है। सो लक्ष्मण, श्रीराम और मेरे पिता महाराज जनक का मङ्गल हो, अर्थात् इस स्वप्न के द्वारा इन लोगों पर कोई विपत्ति न आवे। ऐसा सोचती हुई जानकी फिर कहने लगीं—यह स्वप्न तो नहीं जान पड़ता, क्योंकि स्वप्न तो निद्रा में होता है। भला शोक और दुःख से पीड़ित मुझको नींद कहाँ! निद्रा का कारण सुख है, सो जब से मैं उन चन्द्रमुख श्रीराम से अलग हुई तब से मुझे सुख कहाँ से होगा! मेरी समझ में यह आता है कि मैं सदा राम के ही ध्यान में रहती और उन्हीं का नाम लेती रहती हूँ, इसी कारण उसी के अनुरूप मुझे देख भी पड़ता है और वैसा ही सुन भी पड़ता है। आज भी उन्हीं के काम से अत्यन्त पीड़ित होकर मैं उन्हीं का ध्यान किये बैठी थी। मैं सदा उन्हीं का चिन्तन किया करती हूँ। इसी लिए मुझे देख भी वैसा ही पड़ता है और उसी प्रकार का सुनने में भी आता है। मैं सोचती हूँ कि मनोरथ ही इसका कारण है, तथापि बुद्धि की तर्कणा से मनोरथ का यह रूप नहीं जान पड़ता; क्योंकि यह वानर स्पष्टरूप से बोल रहा है। इसका क्या कारण है? मैं बृहस्पति, इन्द्र, ब्रह्मा और अग्नि को प्रणाम करती हूँ कि इस वानर ने जो कुछ मेरे आगे कहा है वह सब सच हो।

---

## तेंतीसवाँ सर्ग

### हनुमान् और सीता की बातचीत

अब श्री हनुमान् उस वृक्ष से उतरे और सीता के समीप जाकर नम्रता-दीनतापूर्वक हाथ जोड़कर मधुर वाणी से बोले—हे कमलनयनि, तुम कौन हो, जो इस प्रकार के मैले कपड़े पहने वृक्ष की शाखा थामे खड़ी हो? तुम्हारे नेत्रों से जल किस कारण बह रहा है और तुम शोक से इतनी व्याकुल क्यों हो रही हो? सुर, असुर, नाग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नरों में से तुम कौन हो? तुम रुद्रों में से कोई हो अथवा वायु या वसुओं में से कोई हो? क्योंकि मुझे तुम देवता सी जान पड़ती हो। अथवा चन्द्रमा से हीन हो स्वर्ग से गिरी रोहिणी तो तुम नहीं हो? क्योंकि तुम सब गुणों में अधिक ही जान पड़ती हो। हे कल्याणि, हे सुन्दरलोचने! तुम कौन हो? तुम अरुन्धती तो नहीं हो जो कोप से या मोह से अपने पति वशिष्ठ को कोपित करके यहाँ चली आई हो? हे सुमध्मे, इस लोक से तुम्हारा कोई परलोक को तो नहीं चला गया है जिसके लिए तुम शोक कर रही हो? मुझे बतला दो कि वह तुम्हारा कौन था—पुत्र, पिता, भ्राता या पति? एक बात का तो मुझे निश्चय हो गया कि तुम देवी नहीं हो; क्योंकि एक तो तुम रो रही हो, दूसरे निःश्वास छोड़ती हो, तीसरे भूमि को

छू रही हो। देवताओं में इनमें से कोई बात नहीं होती। तुम घड़ी-घड़ी महाराज रामचन्द्र का नाम भी तो लेती हो। तुम्हारे चिह्नों और लक्षणों से मुझे निश्चय होता है कि तुम किसी राजा की पटरानी या राज-कन्या हो। जनस्थान से रावण जिसको जबर्दस्ती हर लाया था वह सीता तो तुम नहीं हो? हो तो मुझे बतला दो। तुम्हारा भला हो। तुम्हारी दीनता, विलक्षण रूप और तपस्विनी का वेष ऐसा है जिससे तुम मुझे श्री रामचन्द्र की पत्नी जान पड़ती हो।

कपि का यह वचन सुनकर और राम के कीर्तन से हर्षित होकर वैदेही बोली—हे कपे, पृथ्वी के सब राजसिंहों में मुख्य, आत्मज्ञ श्री दशरथ की तो मैं पतोहू और महाराज विदेहाधिपति जनक की पुत्री हूँ। मेरा नाम सीता है। मैं राम की भार्या हूँ। बारह वर्ष तक मैं राघव के घर में सब कामनाओं से पूर्ण होकर मनुष्यों के भोग्य पदार्थों का उपभोग करती रही। तेरहवें वर्ष राजा ने वशिष्ठ की सम्मति से रामचन्द्र को राज्याभिषेक देना चाहा और अभिषेक की सब सामग्री इकट्ठी हुई। उस समय कैकेयी ने अपने पति दशरथजी से कहा कि जो तुम राम को राज्य दोगे तो न मैं खाऊँगी और पीऊँगी; यहीं मेरे जीवन का अन्त होगा। हे राजसत्तम, पहले प्रसन्न होकर तुमने जो मुझे वर दिया था उसको यदि मिथ्या न करना चाहो तो रामचन्द्र को वन में भेज दो। हे वानर, अब सत्यवादी राजा पूर्वदत्त वरदान का स्मरण करके और कैकेयी के इस कठोर एवं अप्रिय वचन को सुनकर मूर्च्छित हो गये। सचेत होने पर उस वृद्धावस्था में भी, अपने सत्यधर्म का पालन करने के लिए, राजा ने विलाप कर अपने ज्येष्ठ यशस्वी पुत्र से राज्य माँग लिया। श्री रामचन्द्र ने पिता के उस वचन को अभिषेक से भी अधिक प्रिय समझा था। अतएव बहुत अच्छा कहकर उन्होंने अङ्गीकार कर लिया। श्री रामचन्द्रजी दाता और सत्यभाषी हैं। प्राण भी क्यों जाते हों, पर मिथ्या वचन नहीं बोलते। वे सत्यपराक्रमी हैं। उन्होंने अच्छे-अच्छे राजवस्त्रों को त्यागकर मन से राज्य को छोड़ा और जननी की रक्षा के लिए मुझे आज्ञा दी। परन्तु मैं तो पहले ही वन-वेष धारण करके आगे चल खड़ी हुई, क्योंकि राम के बिना मुझे स्वर्ग में रहना भी नहीं रुचता। उसी प्रकार लक्ष्मण भी बड़े भाई की सेवा में तत्पर हो कुश, चीर इत्यादि धारण कर आगे चले। सो हम सब महाराज दशरथ की आज्ञा को पालते हुए भयङ्कर वन में आये, जिसे कभी देखा तक न था। इस प्रकार दण्डकारण्य में हम सब रहते थे कि इतने में दुष्टात्मा रावण ने मुझको हरण कर लिया। इस राक्षस ने दो महीने तक मेरे जीवन पर अनुग्रह करने को कहा है। इसके बाद मैं जीवन का त्याग करूँगी।

---

## चौंतीसवाँ सर्ग

### हनुमान् का सीता को समझाना और सीता का हनुमान् को रावण समझकर डरना

अब हनुमान् सीता को समझाने लगे। उन्होंने कहा—हे वैदेही देवि, मैं रामचन्द्र की आज्ञा से उनका सन्देश लेकर तुम्हारे पास दूत के रूप में आया हूँ। श्रीरामचन्द्र कुशल-पूर्वक हैं।

उन्होंने तुम्हारा कुशल पूछा है। हे देवि, दशरथ के पुत्र रामचन्द्र ब्रह्मास्त्र को और वेदों को जानते हैं और वेदों के जाननेवालों में श्रेष्ठ हैं। उन्होंने तुम्हारा कुशल पूछा है। महातेजस्वी लक्ष्मणजी बड़े भाई की सेवा में सदा तत्पर रहते हैं; उन्होंने भी शोकासन्तप्त होकर तुमको नम्रता-पूर्वक प्रणाम कहा है। उनका कुशल-वृत्त पाकर सीता अत्यन्त हर्षित हुई और हनुमान् से बोलीं कि देखो, जीवित व्यक्ति को सौ वर्ष पर भी आनन्द प्राप्त होता है—लोगों की यह जो कहावत है सो मुझे ठीक जान पड़ती है।

अब उन दोनों के समागम में अद्भुत प्रीति उत्पन्न हुई। वे दोनों परस्पर विश्वास करके बात-चीत करने लगे। उस प्रकार से पीड़ित सीता के वचन सुनकर हनुमान् कुछ समीप चले गये। परन्तु जैसे-जैसे वे सीता के समीप सरकते जाते थे वैसे ही वैसे सीता को सन्देह होता था कि यह रावण तो नहीं है। सीता कहने लगीं—अहो, मैंने यह बड़ा बुरा काम किया जो इससे बातचीत की; क्योंकि यह तो रावण ही दूसरा वेष बनाकर आ गया है। यह कहकर वे उस अशोक की शाखा को छोड़ उसी स्थान में भूमि पर बैठ गईं। तदनन्तर हनुमान् ने सीता को प्रणाम किया, परन्तु सीता ने डर के मारे हनुमान् की ओर फिर न देखा। कपि को प्रणाम करते देख वे लम्बी और ऊँची साँस लेकर बोलीं—अरे रावण, यदि माया धारण करके फिर मुझे सन्तप्त करता है तो अच्छा नहीं है। तू वही रावण है जो अपना रूप छोड़ संन्यासी का रूप बनाकर मुझे जनस्थान में हरने को गया था। हे कामरूपी निशाचर, देख मैं उपवास से कृश और दीन हो रही हूँ, तिस पर भी तू मुझे सन्ताप दे रहा है। यह बात ठीक नहीं। किन्तु मेरी यह शङ्का ठीक नहीं, क्योंकि तुझे देखने से मेरे मन में प्रीति उत्पन्न हुई। यदि तू राम का दूत बनकर आया है तो तेरा भला हो। तू मुझे मेरे प्यारे रामचन्द्र की कथा सुना। मुझे वही प्रिय हैं। हे सौम्य, जैसे नदी का वेग करारे को खींचता है उसी तरह तू मेरे मन को हरण किये लेता है। अहो, स्वप्न में भी कैसा सुख होता है। मेरा हरण हुए बहुत दिन हो गये। मैं आज रामचन्द्र के भेजे वानर को देख रही हूँ। मैं यदि स्वप्न में भी राम-लक्ष्मण को देखती रहती तो खेद न करती। देखो, स्वप्न भी मुझसे डाह करता है। परन्तु यह तो मुझे स्वप्न नहीं जान पड़ता; क्योंकि स्वप्न में वानर को देखने से सुख नहीं मिलता किन्तु मेरा मन इस समय प्रसन्न हो रहा है। तो क्या मुझे यह चित्त का मोह हो रहा है अथवा कुछ वायु का या भूत का विकार है, या मुझमें कुछ विक्षिप्तता आ गई है? अथवा मैं मृगतृष्णा देख रही हूँ? नहीं, यह न तो उन्माद है और न उससे उत्पन्न हुआ मोह है, क्योंकि मैं सचेत हूँ और ठीक इसको वानर देख रही हूँ।

सीता ने कई प्रकार से बलाबल का निश्चय कर उस कपि को रावण ही समझा। उन्हें निश्चय था कि राक्षस लोग कामरूपी होते हैं। श्रीजानकी इस बात का ठीक निश्चय कर फिर हनुमान् से न बोलीं। तब कपि ने सोचा कि बड़ी कठिनाई हुई कि जानकी मुझे रावण ही जानती हैं। अब क्या करना चाहिए! सोचते-सोचते हनुमान् को यही उपाय सूझा कि अब फिर राम का गुणानुवाद करना ही ठीक है। तब वे मधुर वाणी से सीता को प्रसन्न करने के लिए राम का वर्णन करने लगे। वे कहने लगे—

श्री रामचन्द्रजी आदित्य की नाईं तेजस्वी, चन्द्र के तुल्य लोकमनोहर, और कुबेर के सदृश सब लोगों के राजा हैं। वे विष्णु के तुल्य पराक्रमी, महायशस्वी, सत्यवादी और बृहस्पति के तुल्य मधुर बोलते हैं। वे रूपवान्, सुभग और मूर्तिमान् काम के तुल्य हैं। वे उचित स्थान पर क्रोध करते हैं। वे लोक में श्रेष्ठ और महारथ हैं। उनके बाहु की छाया का आश्रय करके लोग सुखी रहते हैं। उन्हीं श्रीराम को मायामृग-रूप के द्वारा आश्रम से हटाकर जो एकान्त में तुम्हें हर लाया है वह अपने कर्म का फल पावेगा। हे सीते, वे थोड़े ही काल के अनन्तर क्रोध करके जलते हुए अग्नि-तुल्य बाणों से रावण को मारेंगे। मैं उन्हीं का दूत तुम्हारे पास आया हूँ। तुम्हारे वियोग से वे दुखी हो रहे हैं। उन्होंने तुम्हारा क्षेम-कुशल पूछा है; सुमित्रा के पुत्र महातेजस्वी लक्ष्मण ने तुमको प्रणाम कहा है और कुशल पूछा है। राम के मित्र वानरराज सुग्रीव ने तुम्हारा कुशल पूछा है। हे देवि, सुग्रीव और लक्ष्मण के साथ श्री रामचन्द्र नित्य तुम्हारा स्मरण करते हैं। हे वैदेहि, बड़े आनन्द की बात है कि इन राक्षसियों के वश में पड़कर भी तुम जीती-जागती हो। हे देवि, थोड़े ही दिनों में तुम लक्ष्मण को, महारथ श्री रामचन्द्र को और बड़े पराक्रमी सुग्रीव को करोड़ों वानरों के मध्य में देखोगी। हे सीते, मैं सुग्रीव का मन्त्री हनुमान् नामक वानर हूँ। मैं समुद्र को लाँघकर इस लङ्का में आया हूँ। दुरात्मा रावण के मस्तक पर पराक्रम से पैर रखकर मैं तुमको देखने आया हूँ। हे देवि, तुम जो समझती हो वह मैं नहीं हूँ। इसलिए शङ्का छोड़ दो और मेरी बात पर विश्वास करो।

## पैंतीसवाँ सर्ग

### हनुमान् का लक्ष्मणसहित रामचन्द्र का वर्णन करना और सब समाचार कहना

हनुमान् की ये बातें सुनकर सीतादेवी मधुर वाणी से शीतल वचन बोलीं—हे कपि, राम के साथ तुम्हारा सम्बन्ध कहाँ हुआ? लक्ष्मण को तुम किस प्रकार से जानते हो? वानरों का और मनुष्यों का साथ कैसे हुआ? हे वानर, राम के और लक्ष्मण के जो चिह्न हैं उनको तुम फिर कहो जिससे मैं शोक से बचूँ। रामचन्द्र की गठन कैसी है? रूप कैसा है? उनकी जङ्घाओं और बाहुओं का वर्णन करो। तदनन्तर लक्ष्मण की शरीर-स्थिति कहो। सीता का यह प्रश्न सुनकर कपि ने रामचन्द्र का ठीक-ठीक वर्णन आरम्भ किया। उन्होंने कहा—बड़े आनन्द की बात है कि आप मुझे राम का दूत समझकर उन दोनों भाइयों की गठन पूछती हैं। हे विशाल-नयनि, राम और लक्ष्मण के जिन चिह्नों को मैंने देखा है उनका मैं वर्णन करता हूँ। सुनो—

राम के नयन कमल-सदृश और मुख पूर्णचन्द्र के तुल्य है। वे रूप और दाक्षिण्य से संयुक्त, तेज में सूर्य के तुल्य, क्षमा में पृथिवी के तुल्य और बुद्धि में साक्षात् बृहस्पति हैं। वे इन्द्र के तुल्य यशस्वी, जीवलोक के पालक, स्वजनों के रक्षक, अपने चारित्र्य और धर्म के पालक, शत्रु को ताप देनेवाले और चारों वर्णों के रक्षक हैं। वे मर्यादा के करने और करानेवाले, कान्तिमान्, पूजित, ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित, साधुओं के उपकार के ज्ञाता, कर्मों के प्रचार के ज्ञाता और राजनीति में शिक्षित हैं। वे ब्राह्मणोपासक, ज्ञानवान्, शीलवान्, नम्र, यजुर्वेद के जाननेवाले,

वेद जाननेवालों से पूजित, धनुर्वेद में दक्ष और वेद-वेदाङ्गों में निष्णात हैं। उनके कन्धे विशाल, बड़ी भुजाएँ, शङ्ख सदृश ग्रीवा और सुन्दर चेहरा है। भरा हुआ शरीर होने के कारण उनके गले की हड्डियाँ नहीं देख पड़तीं। उनके रतनारे लोचन, दुन्दुभि का सा स्वर और स्निग्ध वर्ण है। वे समान विभागयुक्त अङ्गों से शोभित हैं। उनका रङ्ग साँवला है। उनकी जङ्घा, गट्टा और मुष्टि स्थिर है; भौं, अण्डकोष और बाहु लम्बे हैं। उनके केशों का अग्र-भाग, अण्डकोष और घुटने सम हैं; नाभि का मध्य-भाग, पेट और छाती ऊँची है। उनके नेत्रों के प्रान्त, नख और हाथ-पैर के तलुए लाल हैं। पैर की रेखा, केश और शुक्र चिकने हैं। उनका स्वर, गति और नाभि गम्भीर है। उदर और कण्ठ पर त्रिबली है। पैर के तलुए, रेखा तथा स्तनाग्र गहरे हैं। उनका गला, लिङ्ग, पीठ और जङ्घाएँ छोटी हैं। उनके मस्तक पर तीन भँवरियाँ हैं। उनके अङ्गुष्ठ-मूल में चतुर्वेद-प्राप्तिसूचक चार रेखाएँ है। उनके ललाट में महादीर्घायु-सूचक चार रेखाएँ है। वे चौबीस अङ्गुल के प्रमाण से चार हाथ ऊँचे हैं। उनके बाहु, घुटने, जङ्घा और कपोल सम हैं। उनकी भौं, नासापुट, नेत्र, कर्ण, ओष्ठ, स्तनाग्र, कोहनी, गट्टा, घुटने, अण्डकोष, कटि, हाथ-पैर और स्फिच्* समान हैं। उनके चार दाँत चिकने, घने और पैने-पैने हैं। उनकी गति सिंह, शार्दूल पक्षी, गज और बैल के तुल्य है। उनके ओठ, ठुड्डी और नासिका विशाल अर्थात् शास्त्रोक्त लक्षणों से मनोहर हैं। उनकी वाणी, मुख, नख, लोम और त्वचा स्निग्ध है। हाथ की नली, पैर की नली, तर्जनी, कनिष्ठा, गुल्फ, बाहु, ऊरु और जङ्घा दीर्घ हैं। उनके मुख, नेत्र, मुख-विवर, जिह्वा, ओठ, तालु, स्तन, नख और हाथ-पैर कमल के तुल्य हैं। उनका वक्षःस्थल, मस्तक, ललाट, ग्रीवा, बाहु, कन्धे, नाभि, पैर, पीठ और कान बड़े-बड़े हैं। वे श्री, यश और तेज से युक्त हैं। उनके मातृवंश और पितृवंश श्वेत# हैं। उनके कक्ष, पेट, वक्षःस्थल, नाक, कन्धे और ललाट ऊँचे हैं; अँगुलियों की पोर, केश, रोम, नख, त्वचा, शेफ और दाढ़ी-मूँछ के बाल कोमल और सूक्ष्म हैं। उनकी दृष्टि और बुद्धि सूक्ष्म है। वे अर्थ, धर्म, काम और सत्य-धर्म में तत्पर हैं। वे श्रीमान्, संग्रह और अनुग्रह में दत्तचित्त हैं; वे देश और काल के विभाग को जानते और सब लोगों से प्रिय बोलते† हैं। उनके भाई दूसरी माता सुमित्रा के बेटे हैं। वे अनुराग रूप और गुणों से उसी प्रकार के हैं परन्तु एक भेद है। उनकी कान्ति सुवर्ण के तुल्य है और रामचन्द्र साँवले हैं। हे सीते, ये दोनों नरसिंह तुम्हारे दर्शन की लालसा से सम्पूर्ण पृथ्वी को खोजते-खोजते हम वानरों के साथ आ मिले। वह वृत्तान्त भी सुनिए—ये दोनों तुमको खोजते-खोजते ऋष्यमूक पर्वत के पास आये। उस पर्वत पर सुग्रीव नामक वानर-पति रहते थे, जिन्हें बड़े भाई ने राज्यासन से उतार दिया था और जो उसके डर से पीड़ित थे। हम लोग सुग्रीव की सेवा में रहा करते थे। सो सुग्रीव ने इन दोनों को चीर धारण किये और हाथों में श्रेष्ठ धनुष लिये दूर से देखा। देखते ही वे उस पर्वत के शिखर से दूसरे शिखर पर कूद गये; क्योंकि इनको देखने से वे डर गये थे। उस दूसरे शिखर पर ठहरकर उन्होंने मुझे राम-लक्ष्मण के पास भेजा। तब मैं, सुग्रीव के वचन से

* कटि के पश्चाद्भाग का वह स्थान जिसमें चलने से गदा पड़ जाता है।

# निर्दोष।

† ये सब चिह्न, सामुद्रिक शास्त्रोक्त, चक्रवर्ती के हैं।

उन प्रभु के पास हाथ जोड़कर जा खड़ा हुआ। बात-चीत द्वारा उनके तात्पर्य को जानकर मैं प्रसन्न हुआ और उनको अपनी पीठ पर चढ़ाकर सुग्रीव के पास ले आया। राजा सुग्रीव को सब समाचार भी कह सुनाया। इसके अनन्तर सुग्रीव और श्री रामचन्द्र की बातचीत हुई। फिर दोनों में अत्यन्त प्रीति हो गई। कीर्तिमान् वानरराज और नरराज वहाँ पर पूर्व-वृत्तान्तों की कथा से परस्पर समाश्वासन करने लगे। स्त्री के कारण बड़े भाई बाली ने सुग्रीव को निकाल दिया था। उसे रामचन्द्र ने समझाया। तुम्हारे हरण से रामचन्द्र को जो शोक था वह श्री लक्ष्मण ने सुग्रीव को कह सुनाया। लक्ष्मण के मुँह से यह बात निकलते ही सुग्रीव शोक से ऐसे तेज-रहित हो गये जैसे राहुग्रस्त सूर्य हो जाते हैं। तब अपने जिन भूषणों को तुमने हरणकाल में ऊपर से भूमि पर फेंक दिया था उन्हें लाकर हर्ष से वानर-सेनापति ने राम को दिखलाया। पर वे यह न जानते थे कि तुम किधर गई। ये भूषण झनझनाते हुए जब नीचे गिरे थे तब इन्हें मैंने ही उठाकर रक्खा था। श्री रामचन्द्र ने उन भूषणों को अपनी गोद में रखकर बहुत विलाप किया। उन भूषणों को देखने से रामचन्द्र की शोकाग्नि बहुत ही प्रज्वलित हो गई। महाराज बहुत देर तक भूमि पर छटपटाते रहे। तब मैंने अनेक प्रकार के वाक्य कहकर उनको बड़ी कठिनाई से उठाया। श्री रामचन्द्र ने उन भूषणों को स्वयं देखा और बार-बार लक्ष्मण को दिखलाया। फिर वे भूषण सुग्रीव को सौंपे गये। हे आर्ये, तुम्हें देखे बिना श्री रामचन्द्र वैसे ही सन्तप्त हो रहे हैं जैसे ज्वालामुखी पर्वत सदा जलते अग्नि से सन्तप्त बना रहता है। हे देवि, तुम्हारे लिए महाराज को नींद नहीं आती। शोक और चिन्ता उनको सदा तपाया करती है जैसे अग्निगृह को तीनों अग्नि तपाया करते हैं। हे सीते, तुम्हारे दर्शन न होने से वे शोक से इस तरह काँपने लगते हैं, जैसे बड़े भूकम्प से महापर्वत काँप उठता है। हे राजपुत्रि! देखो, रामचन्द्र इतने रमणीय वनों, नदियों और झरनों की सैर करते हैं पर तुम्हारे बिना उन्हें आनन्द नहीं मिलता। हे जानकि, वे इस रावण को और इसके मित्र-बान्धवों को भी मारकर तुमको शीघ्र प्राप्त करेंगे।

फिर सुग्रीव और रामचन्द्र ने परस्पर प्रतिज्ञा की—राघव ने बाली को मारने की और सुग्रीव ने तुम्हारे खोजने की। तब उन दोनों वीरों ने किष्किन्धा में आकर युद्ध में बाली को मारा। रामचन्द्र जब बाली को मार चुके तब सुग्रीव को सब भालुओं और वानरों का राजा बनाया। हे देवि, इस प्रकार से राम और सुग्रीव की एकता हुई। उन दोनों का भेजा हुआ दूत मैं हनुमान् तुम्हारे पास आया हूँ। सुग्रीव ने राज्य पाकर अपने महावीर वानरों को बुलाया और तुम्हारे लिए दशों दिशाओं में भेजा। हे देवि, सुग्रीव की आज्ञा से वे महापराक्रमी पर्वताकार वानर तुम्हारे खोजने के लिए सम्पूर्ण पृथ्वी में घूम रहे हैं। बाली का बेटा अङ्गद हम लोगों के साथ, एक तिहाई सेना लिए, तुमको खोजने आया है। खोजने के विषय में हम लोग बड़े शोकाकुल थे। विन्ध्य पवत पर हम लोग एक जगह भटक गये थे, इसलिए वहीं हमें बहुत दिन बीत गये। कार्य की निराशा से और समय बीत जाने से हम लोग कपिराज के डर के मारे प्राण त्यागने को तैयार हुए; क्योंकि हम लोगों ने पर्वतों के दुर्ग, नदी और झरने सब खोज डाले, पर तुम्हारा पता न लगा। तब हम लोगों को यही सूझा कि अब प्राणत्याग ही अच्छा है, सो हम उस पर्वत के शिखर पर प्रायोप-

वेशन करके बैठ रहे। उस समय अङ्गद अत्यन्त शोक सागर में मग्न होकर विलाप करने लगे कि देखो सीता का हरण, बाली का वध, हमारा प्रायोपवेशन और जटायु का मरण, ये सभी कैसी-कैसी विपत्तियाँ इकट्ठी हुई। हम लोग अनेक प्रकार से विलाप करते थे और सुग्रीव की निर्दिष्ट अवधि बीतने से निराश होकर मौत चाहते थे। सो हमारी कार्यसिद्धि के लिए वहाँ पर सम्पाति नामक गृध्र आ गया। वह जटायु का सहोदर भाई है। वह अपने भाई के मारे जाने का समाचार सुनकर क्रोध से बोला कि मेरा छोटा भाई किसके हाथ से और कहाँ पर मारा गया। हे वानरश्रेष्ठ, मैं यह समाचार सुनना चाहता हूँ। तब अङ्गद ने उसको वह कथा कह सुनाई, जिस तरह रावण ने तुम्हारे लिए जनस्थान में जटायु को मारा था। अरुण का पुत्र सम्पाति अपने भाई जटायु का वध सुनकर दुःखित हुआ। उसी ने बतलाया कि जानकी रावण के घर में है। उस गृध्र का यह प्रीति-वर्द्धक वचन सुनकर हम लोग विन्ध्य पर्वत पर से उठे और तुम्हारे दर्शन के लिए उत्साहयुक्त हो समुद्र के तीर पर पहुँचे। वहाँ भी हमें बड़ी भयङ्कर चिन्ता रही कि समुद्र को कौन पार करेगा। जब मैंने देखा कि वानरों की सेना समुद्र को देखकर बहुत हैरान हो रही है तब मैं भय छोड़कर सौ योजन चौड़े समुद्र को लाँघ-कर इस पार आया और इस राक्षसपूर्ण लंका में रात को पैठा। मैंने रावण को देखा और शोक से पीड़ित तुमको भी देखा। हे देवि, सब समाचार मैं तुमसे कह चुका। मैं रामचन्द्र का दूत हूँ। तुम मुझसे बातचीत करो। देखो, मैंने रामचन्द्र के लिए तुमको देखने का यह उद्योग किया है। हे देवि, तुम मुझे सुग्रीव का मन्त्री और वायु का पुत्र समझकर अपना सन्देह दूर करो। सम्पूर्ण शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ श्री रामचन्द्रजी और उन्हीं की सेवा में तत्पर तथा उन्हीं के हित में दत्तचित्त श्री लक्ष्मण सुखी हैं। मैं अकेला, सुग्रीव के वचन से, यहाँ आया हूँ। तुमको खोजते-खोजते मैं दक्षिण दिशा में आ पहुँचा हूँ। हे देवि, मेरी सेनावालों को तुम्हारे नष्ट हो जाने की शंका से शोक हो रहा है। अब तुम्हारी प्राप्ति का सन्देश सुनाकर मैं उन्हें सुखी करूँगा। यह बड़ा आनन्द हुआ कि मेरा समुद्र लाँघना सार्थक हुआ। हे देवि, तुम्हारे दर्शन करने का यश मुझे मिलेगा और तुमको रामचन्द्र शीघ्र ही मिलेंगे। वे इस राक्षसाधिप रावण को पुत्र और बान्धवों सहित मारेंगे।

हे वैदेहि, माल्यवान् नामक एक उत्तम पर्वत है। वहाँ मेरा पिता केसरी नामक वानर गोकर्ण नामक पर्वत पर जाता था। उसको देवर्षियों ने आज्ञा दी कि समुद्र के पवित्र तीर्थ में जो शम्बसादन दैत्य रहता है उसे मार डाल। तब मेरे पिता ने उसको मारा। उसी केसरी वानर के क्षेत्र में, अञ्जना नाम पत्नी में, वायु देवता ने मुझे उत्पन्न किया है। अपने ही कर्म से मुझे हनुमान् नाम प्राप्त हुआ है। हे वैदेहि, तुम्हारे विश्वास के लिए मैंने श्री रामचन्द्र के गुणों का वर्णन किया है। थोड़े ही समय में वे तुम्हें यहाँ से ले जायँगे।

शोककर्शित सीता ने इन अनेक हेतुओं और चिह्नों से उसको दूत समझा। फिर वे बहुत प्रसन्न हुईं। अपने कमलसदृश नेत्रों से वे आनन्द के आँसू बहाने लगीं। उस घड़ी सीता का मुख ऐसा शोभित हुआ जैसे राहु से मुक्त चन्द्र शोभित होता है। सीता को निश्चय हो गया कि यह हनुमान् वानर ही है, कुछ माया-विडम्बना नहीं है। अब हनु-मान् फिर बोले—हे मैथिलि, मैंने यह सब तुम्हें कह सुनाया; अब तुम अपने चित्त का समाधान करो। मुझे तुम क्या आज्ञा देती हो? मैं क्या करूँ,

और तुम्हें क्या रुचता है ? रामचन्द्र के समीप जाकर मैं क्या कहूँ ?

चौपाई

तेहि दैत्य कहँ कपि वीर। जब हत्यौ सागर-तीर॥
ऋषि-कृपावश ते मात। मम जन्मदाता वात॥
तेहि क्षेत्रवश ते जान। मम नाम कपि हनुमान्॥
तत्तुल्य तेज प्रभाव। मोहिं वायुप्रभव जनाव॥

---

## छत्तीसवाँ सर्ग

### हनुमान् का सीता को मुद्रिका देना और सीता का दृढ़ विश्वासपूर्वक कपि से बोलना

हनुमान् नम्रतापूर्वक सीता से फिर बोले जिसमें उन्हें विश्वास हो जाय। उन्होंने कहा—हे देवि, मैं राम का दूत हूँ। देखो, मैं तुम्हारे विश्वास के लिए राम-नाम से अंकित यह अँगूठी लाया हूँ। यह मुद्रिका स्वयं महाराज ने मुझे दी है। तुम अपने चित्त को सावधान करो और यह समझ लो कि अब तुम्हारे सब दुःख दूर हुए। उस मुद्रिका को ग्रहण कर सीता देखने लगीं। उसकी प्राप्ति को पति की प्राप्ति के तुल्य समझकर वे हर्षित हुईं। उनके मुखचन्द्र की कान्ति राहु से मुक्त चन्द्र के तुल्य देख पड़ी। वह लज्जावती बाला पति के सन्देश से हर्षित और संतुष्ट होकर बड़े प्यार से कपि की प्रशंसा करने लगी—हे वानरोत्तम, तुम पराक्रमी, समर्थ और पंडित हो। तुमने अकेले इस राक्षस की राजधानी पर आक्रमण किया और इस सौ योजन विस्तीर्ण सागर को गाय के खुर बराबर कर डाला। मैं तुमको अन्य वानरों के तुल्य नहीं समझती; क्योंकि तुमको न तो रावण से डर है और न उद्वेग है। हे कपिश्रेष्ठ, जब तुमको राम ने भेजा है तब तुम मेरे साथ बातचीत कर सकते हो। रामचन्द्र भी पराक्रम को बिना जाने और परीक्षा लिये बिना ऐसे-वैसे दूत को न भेजेंगे और विशेष करके मेरे पास। यह सुनकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ कि रामचन्द्र और लक्ष्मण कुशलपूर्वक हैं। हे वानर, रामचन्द्र जो कुशल से हैं तो क्यों नहीं क्रोध से इस सम्पूर्ण पृथ्वी को जला देते, जैसे कि प्रलय का अग्नि चराचर को भस्म कर डालता है ? अथवा वे तो देवों को भी दण्ड देने में समर्थ हैं, पर मेरे ही दुःखों का अन्त अभी नहीं आया। भला यह तो कहो कि रामचन्द्र को दुःख तो नहीं है ? वे मेरे लिए संताप तो नहीं करते ? वे मेरा उद्धार करने का यत्न करते हैं न ? वे दीन तो नहीं होते ? वे घबराते तो नहीं ? कार्यों में वे भूल तो नहीं करते ? अपने पौरुष के कार्यों का निर्वाह वे भली भाँति करते जाते हैं न ? सीधे और टेढ़े दो प्रकार से संयुक्त उपाय का एवं धर्म, अर्थ और काम का वे सेवन करते हैं न ? विजय की अभिलाषा से वे मित्रों के साथ साम-दान की और शत्रुओं के साथ भेद एवं दण्ड की नीति से काम लेते हैं न ? मित्र उनका साथ तो देते हैं ? उनके मित्र तो कल्याण-कारक हैं ? मित्र उनकी प्रतिष्ठा तो करते हैं ? देवताओं के प्रसाद की उन्हें चाह है न ? पुरुषार्थ और दैव का तो वे आश्रय करते हैं ? मेरे अन्यत्र रहने से मुझ पर से उनका स्नेह तो नहीं घट गया ? मुझे इस दुःख से वे छुड़ावेंगे न ? सुखों के पात्र और दुःखों के अयोग्य श्री रामचन्द्र इस महादुःख में खेद तो नहीं करते ? भला कौशिल्या, सुमित्रा तथा भरत का कुशलमङ्गल तो कभी-कभी सुनने में आता है ? मेरे लिए शोक से पीड़ित श्री रामचन्द्र सन्ताप तो नहीं करते ? वे मेरी रक्षा करेंगे न ? भाई के स्नेही भरत मेरे लिए, मन्त्रियों से रक्षित,

अक्षौहिणी सेना को तो भेजेंगे ? वानरराज सुग्रीव वानरों की सेना लेकर मेरे लिए यहाँ आवेंगे भी ? श्री लक्ष्मण बड़े शूर और शस्त्रों के जाननेवाले है। वे अपने बाणों से राक्षसों को मारेंगे कि नहीं ? थोड़े ही समय के पश्चात् रौद्र अस्त्र के द्वारा राम के हाथ से मारे हुए इस रावण को मैं देखूँगी न ? श्री राम का काञ्चनवर्ण मुख कमल-गन्ध से युक्त है। वह मेरे बिना शोक-दीन होकर सूखता तो नहीं ? देखो, राम ने धर्म के बहाने राज्य छोड़ा, वन म पैदल चले और मुझे भी सङ्ग मे लिया तो भी उनको न व्यथा थी, न भय था और न कुछ शोक ही था। भला वे इस समय अपने हृदय में धीरता तो रखते है ? माता, पिता या अन्य व्यक्ति पर उनका मुझसे अधिक तो क्या इतना भी स्नेह नहीं जितना कि मुझ पर है। मैं तभी तक जीवित हूँ जब तक मुझे अपने प्यारे का खबर मिलेगी। सीता देवी इस प्रकार कहकर फिर श्री राम के सन्देशों से पूर्ण मनोहर वचन सुनने के लिए चुप हो रहीं।

अब महापराक्रमी हनुमान् हाथ जोड़कर बोले—हे देवि, रामचन्द्र नहीं जानते कि तुम यहाँ हो, इसी कारण वे तुमको यहाँ से शीघ्र उस तरह नहीं ले गये जैसे दैत्यों से हरी हुई शची को इन्द्र ले गये थे। जब मैं जाऊँगा और यह सन्देश दूँगा तब वे शीघ्र ही बड़ी भारी वानरी सेना लेकर आवेंगे। अपने बाणों से इस महासागर को बाँधकर वे इस लंका के राक्षसों को शान्त कर देंगे। इस कार्य में यदि मृत्यु, देव अथवा दैत्य विघ्न करेंगे तो मारे जायँगे। हे आर्ये, तुम्हें न देखने के कारण शोक से पीड़ित श्रीरामचन्द्र को तनिक भी सुख नहीं होता, जैसे सिंह से पीड़ित गजेन्द्र को सुख नहीं मिलता। हे वैदेहि ! मैं फल-मूल, मन्दराचल, मलय, विन्ध्य, मेरु और दर्दुर, इन सब की शपथ खाकर कहता हूँ कि तुम श्रीरामचन्द्र के उस मुख को देखोगी जो सुनयन, सुन्दर बिम्बोष्ठ और मनोहर कुण्डलों से शोभित है और जो पूर्ण चन्द्र के तुल्य उदय को प्राप्त है। हे वैदेहि, प्रस्रवण पर्वत पर बैठे श्रीराम को, ऐरावत पर चढ़े इन्द्र की नाईं, तुम शीघ्र देखोगी। हे जानकी जी, रामचन्द्र ने मांस और मधु का खाना-पीना छोड़ दिया है। वे अरण्य के उपयुक्त आहार सन्ध्या को करते है। कभी-कभी दो-दो दिन का अन्तर देकर वे वन-फलों का आहार करते हैं। हे देवि, उनका मन तुममें ऐसा आसक्त हो रहा है कि देह पर दंश, मच्छर कीड़ा या साँप भी आ बैठे तो भी वे उसको वहाँ से नहीं हटाते। वे सदा काम के वश में होकर ध्यान किया करते हैं, शोकग्रस्त बने रहते है और कुछ सोचा करते है। पक तो उनको नींद ही नहीं आती, जागते ही रहते हैं, यदि सोते भी हैं तो मधुर वाणी से "हे सीते" कहकर जाग उठते है। जो स्त्री को प्यारा है ऐसा कोई फल या फूल समीप में आ गया तो बहुधा 'हा प्रिये' कहकर वे ठण्डी साँस लेते है और तुम्हारा चिन्तन करते हैं। हे देवि ! बहुत क्या कहूँ, वे नित्य सीता-सीता कहा करते हैं। वे व्रत को धारण किये तुमको प्राप्त करने के उद्योग में तत्पर रहते हैं। हनुमान् के ये वचन सुनने से सीता का शोक नष्ट हुआ, परन्तु रामचन्द्र के शोक करने का हाल सुनकर उन्हें शोक भी हुआ।

---

## सैंतीसवाँ सर्ग

### सीता और हनुमान् की बातचीत और हनुमान् का सीता को अपना विशाल रूप दिखलाना

सीता अब धर्म और अर्थ-संयुक्त वचन बोलीं कि हे वानर, तुमने जो यह कहा कि रामचन्द्र का

चित्त दूसरी ओर नहीं है अर्थात् मेरे में ही है और वे सदा शोकमग्न रहते हैं सो यह बात तो विष-मिले हुए अमृत के तुल्य है। मृत्यु या तो बड़े ऐश्वर्य में अथवा कठोर दुःख में भी पुरुष के गले में डोरी बाँधकर खींचती है। हे वानर-श्रेष्ठ, प्राणियों का दैव अर्थात् भवितव्य रोका नहीं जा सकता। देखो, लक्ष्मण, मैं और रामचन्द्र कैसे दुख से व्याकुल हो रहे हैं। अब रामचन्द्र इस शोकसागर के पार किस प्रकार जायँगे! नाव डूब जाने पर मनुष्य जैसे हाथ से पैरकर बड़े क्लेश से किनारे लगता है वैसे ही रामचन्द्र बड़े दुःख से इस विपत्ति से पार होंगे। हे हनुमन्! राक्षसों को मारकर, रावण का वध करके और इस लंका का ध्वंस करके मेरे पतिदेव मुझे कब देखेंगे? हे कपे, तुम जाकर रामचन्द्र से कहना कि वर्ष पूरा होने से पहले शीघ्रता करो, क्योंकि तभी तक मेरा जीवन है। हे वानर, यह दसवाँ महीना है, शेष दो ही रह गये हैं। क्रूर रावण ने मेरे लिए यही समय नियत कर रक्खा है। उसके भाई विभीषण ने, मेरे दे डालने के लिए, बड़े प्रयत्न से रावण की प्रार्थना की थी परन्तु उसकी बुद्धि में यह बात नहीं आती—मेरा लौटाना रावण को नहीं भाता। इससे मैं जानती हूँ कि वह काल के वश हो रहा है। उसको मौत ढूँढ़ रही है। हे कपे, यह बात मुझसे विभीषण की बड़ी बेटी, जिसका नाम कला है, कहती थी। उसकी माता ने यही बात कहने के लिए उसको मेरे पास भेजा था। एक अविन्ध्य नामक राक्षस श्रेष्ठ है। वह बुद्धिमान्, विद्वान्, धैर्यवान्, शीलवान्, वृद्ध और रावण को बड़ा सम्मत है। उसने रावण से कहा कि देखो, राम के हाथ से राक्षसों का नाश हो जायगा; तो भी वह दुष्ट राक्षसाधिप उसके हित-वचन पर कान नहीं देता। हे हरिश्रेष्ठ, मुझे निश्चय है कि पति से मेरी भेंट होगी; क्योंकि मेरा अन्तरात्मा शुद्ध है। रामचन्द्र में बहुत गुण हैं। उत्साह, पौरुष, वीर्य, अक्रूरता, कृतज्ञता, पराक्रम और प्रभाव, ये सभी गुण उनमें हैं। देखो, उन्होंने भाई के बिना अर्थात् अकेले ही जनस्थान में चौदह हजार राक्षसों को मार डाला। ऐसा कौन शत्रु होगा जिसको उनसे त्रास न होगा? उन पुरुष श्रेष्ठ की इन दुख देनेवाले राक्षसों के साथ तुलना नहीं हो सकती। मैं उनके प्रभाव को उसी तरह जानती हूँ जैसे इन्द्र के प्रभाव को इन्द्राणी जानती है। हे कपे, राम-रूप सूर्य की बाण-जाल रूपी किरणें शत्रु-राक्षस-रूप जलाशय को सोख लेंगी।

राम के विषय में ये बातें कहते-कहते सीता के नेत्रों में आँसू भर आये। उनसे हनुमान् बोले—हे देवि, तुम्हारा सन्देश मिलने भर की देर है। श्रीराघव यह सन्देश पाते ही वानरी सेना लेकर यहाँ चले आवेंगे। अथवा मैं अभी तुमको इस राक्षस के दुःख से छुड़ाये देता हूँ। आओ, तुम हमारी पीठ पर सवार हो जाओ। तुमको पीठ पर लिये मैं समुद्र को पार करूँगा। तुम्हारी तो कुछ बात ही नहीं, मैं तो रावण-सहित इस लंका को भी लेकर उड़ सकता हूँ। हे मैथिलि, जैसे अग्नि हवन किया हुआ पदार्थ इन्द्र को पहुँचाता है उसी तरह मैं आज तुमको श्री रामचन्द्र के पास प्रस्रवण गिरि पर पहुँचा दूँगा। हे देवि, आज ही तुम लक्ष्मण और राम को देखोगी जैसे दैत्य-बध में प्रयत्नवान् विष्णु को देवों ने देखा था। वे भी तुम्हारे दर्शन की आशा में हैं। हे जानकि, अब तुम देर न करो। मेरी पीठ पर चढ़ो और रामचन्द्र से मिलने की इच्छा करो, जैसे कि चन्द्र से रोहिणी मिलना चाहती है। मैं तुम्हें बात की बात में वहाँ पहुँचाता हूँ। लंकानिवासियों में इतना सामर्थ्य नहीं कि मेरे पीछे पहुँचकर मुझे पकड़ लें। जिस वेग

और शीघ्रता से मैं उस पार से इस पार आया हूँ उसी प्रकार तुम्हें पीठ पर चढ़ाये मैं उस पार जाऊँगा।

कपि का यह अद्भुत वचन सुनने से सीता को हर्ष और विस्मय हुआ। उन्होंने कहा—हे हनुमन्, इतनी दूर तुम मुझे किस प्रकार ले जा सकते हो? बस, यही तो तुमने अपना वानर का धर्म मुझे दिखलाया है। फिर तुम्हारा तो यह छोटा सा शरीर है। तुम किस प्रकार मुझे मेरे स्वामी के पास पहुँचाना चाहते हो?

अब हनुमान् ने मन में कहा कि देखो, यह मेरी एक नई अप्रतिष्ठा हुई। सीता न तो मेरे वीर्य को जानती हैं और न प्रभाव को, सो अब मैं अपना रूप इन्हें दिखलाता हूँ। यह सोच-विचारकर श्रीवायुपुत्र उस वृक्ष पर से कूदे और सीता के विश्वास के लिए उन्होंने बढ़ना आरम्भ किया। वे मेरु-मन्दराचल के तुल्य विशाल और प्रज्वलित अग्नि के तुल्य कान्तिमान् होकर सीता के समीप खड़े हो गये। अब श्री कपिश्रेष्ठ पर्वताकार, ताम्रमुख और महाबली हो गये। उनके नख और दाँत वज्र के तुल्य थे। उन्होंने सीता से कहा—हे देवि! मुझमें इतनी शक्ति है कि पर्वत, वन, गृह, प्राकार और तोरण-सहित इस लङ्का को उठाकर ले चलूँ। इसी में रावण को भी लिये चलूँगा। इसलिए तुम चलने का निश्चय करो; व्यर्थ सन्देह मत करो। आओ, मेरी पीठ पर सवार हो जाओ और चलकर दोनों भाइयों का शोक दूर करो। हनुमान् का यह पर्वताकार रूप देख कमलनयनी सीता बोलीं—हे महाकपे, तुम्हारे वीर्य और बल को मैंने देख लिया। तुम्हारी गति वायु के तुल्य और तेज अग्नि के तुल्य है; नहीं तो किसकी सामर्थ्य है जो इस भूमि पर आ सके! इस अपार समुद्र को कौन लाँघेगा? मैं जानती हूँ कि तुमको चलने और मुझको उठा ले जाने की शक्ति है, परन्तु मुझे भी अपनी कार्यसिद्धि का विचार कर लेना चाहिए। सुनो, तुम्हारे साथ मेरा चलना ठीक नहीं; क्योंकि तुम्हारा वायु के तुल्य वेग मुझे अवश्य मूर्च्छित कर देगा। तुम समुद्र के ऊपर-ऊपर चलोगे। तुम्हारे वेग से चलते समय यदि मैं गिर पड़ी और समुद्र के मगर-मच्छ मुझे पकड़कर खा गये तो तुम क्या करोगे? इसलिए हे शत्रु-नाशक, मैं तुम्हारे साथ न जा सकूँगी। जब तुम स्त्री-सहित जाओगे तब एक और कठिनाई होगी। तुमको मुझे लेकर भागते देख रावण के भेजे हुए बड़े-बड़े राक्षस अवश्य पीछा करेंगे। शूल, मुग्दर लिये हुए वे मार्ग में तुम्हें घेर लेंगे। तब तो तुम, मुझे ले जाकर, संकट में पड़ोगे। वे सब शस्त्रधारी होंगे और तुम शस्त्र-रहित तथा अकेले पड़ जाओगे। तब तुम कैसे जा सकोगे और कैसे मुझे बचा सकोगे? उन क्रूरकर्माओं से कदाचित् तुम युद्ध भी करने लगे और मारे डर के मैं तुम्हारी पीठ पर से गिर पड़ी तब क्या होगा? अथवा इन बड़े-बड़े बलवान्, भयंकर राक्षसों ने संग्राम में तुमको जीत लिया अथवा तुम हारकर भाग खड़े हुए और मैं गिर पड़ी, तब वे पापी राक्षसगण मुझे पकड़कर ले चलेंगे, तब क्या होगा? अथवा तुम्हारे ही हाथ से छीनकर मुझे मार डालें। युद्ध में जय और पराजय दोनों ही होते हैं (यह कोई नहीं जानता कि युद्ध में कौन हारेगा और कौन जीतेगा)। अथवा राक्षसों की डपट से मैं ही मर गई तो हे हरिश्रेष्ठ, तुम्हारा इतना भारी प्रयत्न और परिश्रम वृथा हो जायगा। अस्तु, मैंने मान लिया कि तुम सारे राक्षसों को मारने में समर्थ हो परन्तु यदि तुम्हीं राक्षसों को मार डालोगे तो इससे रामचन्द्र का यश हीन हो जायगा। अथवा राक्षस लोग मुझे ऐसे गुप्त स्थान में रख दें कि जहाँ का पता न वानरों को लगे और न रामचन्द्र को, तब तो मेरे लिए तुम्हारा इतना भारी

समारम्भ व्यर्थ हो जायगा। यदि तुम्हारे साथ रामचन्द्र यहाँ आवें तो बड़ा गुण होगा। देखो, रामचन्द्र का, उनके भाइयों का और तुम्हारे राज-कुल का भी जीवन मेरे अधीन है। वे दोनों भाई इस घड़ी शोक और सन्ताप से कर्शित हो रहे हैं। यदि वे मेरी ओर से निराश हो जायँगे तो अवश्य प्राण त्याग देंगे; बल्कि उनके साथ वह वानरी सेना भी मर जायगी। हे वानर, मेरा पतिव्रत बड़ा कठिन है। मैं पति में ऐसी भक्ति रखती हूँ कि इच्छा-पूर्वक दूसरे के शरीर को छूना भी नहीं चाहती; और जो मुझे रावण के अंग का स्पर्श हुआ सो तो बलात्कार से हुआ; क्योंकि उस घड़ी मेरा कुछ भी वश नहीं चलता था। अब इस घड़ी राक्षसों सहित रावण को मारकर रामचन्द्र मुझे यहाँ से ले चलें तो उनके योग्य हो। महात्मा राम के पराक्रम मैंने सुने और देखे भी हैं कि देव, गन्धर्व, भुजङ्ग और राक्षस सभी संग्राम में उनके तुल्य कभी नहीं हो सकते। जिस समय वे संग्राम में अपना विचित्र धनुष लेकर खड़े होते हैं और लक्ष्मण उनकी सहायता में तत्पर हो जाते हैं, उस समय किसका सामर्थ्य है जो उनका तेज सह सके! वायु-प्रेरित प्रदीप्त अग्नि को भला कोई सह सकता है! जब वे युद्ध में लक्ष्मण के साथ दिग्गज की भाँति खड़े होते हैं और प्रलयकाल के सूर्य की नाईं अपनी बाण-रूप किरणों से तपते हैं तब उनका सहनेवाला कौन है? इसलिए हे कपिश्रेष्ठ, लक्ष्मण और यूथपतियों सहित मेरे प्यारे रामचन्द्र को तुम यहाँ बुला लाओ और मुझ शोक-पीड़िता को आनन्द दो।

---

## अड़तीसवाँ सर्ग

### हनुमान् का सीता को समझाना और सीता का हनुमान् को मणिचिह्न देना

इसके बाद हनुमान् सीता की बातों से प्रसन्न होकर कहने लगे—हे सुन्दरि, तुम जो कहती हो सो ठीक है। तुम्हारी बातें स्त्री-स्वभाव के, पतिव्रताओं के और विनय के योग्य हैं। तुम स्त्री हो, इस कारण मेरी पीठ पर चढ़कर सौ योजन चौड़े समुद्र के लाँघने में समर्थ नहीं। तुमने जो दूसरा कारण कहा कि राम के सिवा अन्य का संसर्ग मैं नहीं चाहती, सो हे देवि, यह तुम्हारा कहना ठीक है; क्योंकि तुम इतने बड़े महात्मा की पत्नी हो, तुमको यही कहना योग्य है। तुम्हारे बिना ऐसा योग्य वचन कौन कह सकती है? हे देवि, जो कुछ तुमने सन्देश दिया है और जो कुछ चेष्टा की है, यह सब मैं रामचन्द्र से कहूँगा। मैंने जो बातें कहीं इसके बहुत कारण हैं। एक तो रामचन्द्रजी का प्रिय कार्य करने की इच्छा, दूसरे मन में स्नेह की आर्द्रता, तीसरे लङ्का दुष्प्रवेश्य है; क्योंकि बीच में दुस्तर समुद्र पड़ता है और चौथे अपने शरीर का सामर्थ्य। हे जानकि, रामचन्द्र के स्नेह और भक्ति से मेरी यही इच्छा होती है कि आज ही तुमको ले चलकर राम से मिला दूँ; यह बात मैं कुछ गर्व से नहीं कहता। हे अनिन्दिते, मेरे साथ चलने में यदि तुमको उत्साह नहीं है तो मुझे कुछ निशानी दो जिससे राम को विश्वास हो। इस पर सीता की आँखों में आँसू भर आये। उन्होंने धीरे-धीरे कहा— हे कपिवर, तुम रामचन्द्र को यह श्रेष्ठ अभिज्ञान बतलाना कि चित्रकूट पर्वत के पास उसी के अवयवरूप पर्वत के

ईशान कोण पर मन्दाकिनी नदी के पास एक आश्रम है। उसमें मूल-फल और जल बहुत है। वहाँ सिद्ध लोग रहते हैं। वहाँ पर रहते समय वहाँ के नाना पुष्पों के सुगन्ध से भरे उपवनों में जलक्रीड़ा करके तुम मेरी गोद में सो गये थे। उस समय तुम्हारा शरीर भीगा हुआ था। उस अवसर पर वह कौआ सन्नद्ध होकर मुझे चोंच मारने लगा। मैं उसको ढेले से मारती थी तो भी वह मुझे नोचता और उसी स्थान में कहीं छिप जाता था। मैंने उसको कितना ही हाँका, पर वह मांस-भक्षार्थी नहीं हटा। तब मैं उस पक्षी पर क्रुद्ध हुई। मेरी करधनी नीचे खसक गई थी सो उसको मैं ऊपर चढ़ाने लगी। उस समय मेरा वस्त्र भी नीचे खसक पड़ा। तब तुमने मुझे देखकर हँस दिया। मैं क्रुद्ध तो थी ही, अब लज्जित भी हो गई। उस भक्ष्यलोभी कौए ने चोंचें मारकर मुझे थका दिया। तब मैं तुम्हारी गोद में सो रही। मुझे क्रुद्ध देख तुमने प्रहृष्ट चित्त से मुझे समझाया। उस समय आँसुओं से मेरा मुख भर गया था। मैं धीरे-धीरे अपने आँसुओं को पोंछ रही थी। तब तुमने जाना कि यह कौए की चोंच मारने से क्रुद्ध हो गई है। फिर मैं थकी होने के कारण बहुत देर तक तुम्हारी गोद में सोई थी। तदनन्तर फिर तुम मेरी गोद में सो गये। हे भरताग्रज, फिर भी वहाँ वही कौआ आया। मैं उसी क्षण तुम्हारी गोद से सोकर उठी थी और वह कौआ झट आकर मेरे स्तनों के बीच में चोंच मारने लगा। उछल-उछलकर उसने मुझे अत्यन्त विदीर्ण कर डाला। मेरी देह से रक्त बह चला। तब हे राम, तुम उठे और मेरी दशा देखकर सर्प के सदृश क्रुद्ध हुए और ऊपर को श्वास लेकर बोले कि हे नागनासोरु, तेरे स्तनों के मध्य-भाग को किसने विदीर्ण किया? पाँच मुखवाले साँप के साथ कौन खेलता है? ऐसा तुम कह रहे थे कि उस कौए की ओर तुम्हारी दृष्टि जा पड़ी। उसके पक्षों में रक्त लगा हुआ था। वह कौआ इन्द्र का बेटा था। तुमको देखते ही वह एक बिल में घुस गया; क्योंकि उसकी गति पवन की गति के तुल्य थी। हे महाबाहो, उस समय तुमने क्रोध अपने नेत्रों को टेढ़ा करके उस कौए पर बड़ी क्रूर दृष्टि की और चटाई से एक कुश लेकर उसको ब्रह्मास्त्र से अभिमंत्रित किया और उस पर चलाया। चलाते ही वह कुश कालाग्नि के तुल्य प्रज्वलित हो उस पक्षी पर दौड़ा। तब वह कौआ आकाश में उड़ा और उस अस्त्र ने उसका पीछा किया। वह कौआ अपने बचाव के लिए जहाँ-तहाँ भागता फिरा। इस भूमण्डल में सर्वत्र घूमा, पर रक्षा न हुई। तब वह अपने पिता के पास गया। पिता ने भी उसको दुरदुरा दिया। इसी प्रकार बड़े-बड़े ऋषियों ने भी उसका तिरस्कार किया। वह बेचारा तीनों लोकों में घूमकर फिर तुम्हारी ही शरण में आया। आकर वह भूमि पर गिर पड़ा और शरणागत हुआ। तुम तो शरणागतवत्सल फिर हो, इसलिए वध के योग्य होने पर भी उसको तुमने अपनी कृपा से बचाया। तुमने देखा कि वह क्षीणशक्ति और वर्णहीन होकर भूमि पर गिर पड़ा है, अतएव उसको बचाना चाहिए। उस समय तुमने उससे कहा कि भाई, यह ब्रह्मास्त्र निष्फल नहीं हो सकता सो अब क्या करना चाहिए। बस, तुमने उसकी दाहनी आँख फोड़ दी। तब दाहनी आँख देने पर, उसके प्राण बचे। वह श्रीमहाराज और दशरथ को नमस्कार करने पर छूटा और अपने घर गया। महाराज, मेरे लिए तुमने ऐसे तुच्छ कौए के ऊपर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया, सो भी केवल चोंच मारने के लिए! सो जो तुम्हारे हाथ से मुझे छीन ले गया है उसको क्यों क्षमा करते हो? हे नरश्रेष्ठ, महोत्साहयुक्त होकर मेरे ऊपर

कृपा कीजिए। तुम्हारे ऐसे नाथ को पाकर इस घड़ी मैं अनाथ सी हो रही हूँ। मैंने तुम्हीं से सुना है कि दया के तुल्य दूसरा धर्म नहीं है। मैं तुमको महावीर्य, महोत्साही, महाबली, अपारावार, अक्षोभ्य, गाम्भीर्य में समुद्र के तुल्य, आसमुद्रान्त पृथ्वी का स्वामी और इन्द्र के तुल्य जानती हूँ। अस्त्रों के जाननेवालों में श्रेष्ठ, बलवान् और सत्यवान् होकर भी राक्षसों पर तुम अस्त्र क्यों नहीं चलाते? देखो, राम के वेग को समर में नाग, गन्धर्व, दैत्य और देवता कोई भी नहीं रोक सकता। यदि उनके मन में मेरे लिए कुछ भी आदर है तो क्यों नहीं तीक्ष्ण बाणों से राक्षसों का नाश करते! अथवा भाई की आज्ञा लेकर लक्ष्मण ही क्यों नहीं मेरी रक्षा करते? वे दोनों पुरुषव्याघ्र वायु और इन्द्र के तुल्य तेजस्वी और देवताओं के लिए भी दुर्द्धर्ष हैं। वे क्यों मेरी उपेक्षा कर रहे हैं? मैं जानती हूँ कि मेरे ही किसी बड़े पाप का उदय हुआ है जिससे वे दोनों, समर्थ होकर भी, मेरी ओर दृष्टि नहीं करते।

सीता आँसू बहा रही थीं। उनके ये करुण वाक्य सुनकर हनुमान् बोले—हे देवि, मैं शपथपूर्वक सत्य वचन कहता हूँ कि तुम्हारे शोक से रघुनन्दन बड़े उदास हैं। उनके दुःख से लक्ष्मण भी सन्ताप कर रहे हैं। भला किसी प्रकार से मैंने तुमको देख तो पाया। अब यह समय शोक करने का नहीं। अब तुम इस दुख का अन्त देखोगी। वे दोनों राजपुत्र तुम्हें देखने का उत्साह रखते हैं; इसलिए वे लोकों को भस्म कर देंगे। हे विशालाक्षि, श्रीराघव इस क्रूर रावण को बान्धव-सहित मारेंगे और तुमको अपनी पुरी में ले जायँगे। अब तुम कहो कि मैं राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और उन सम्पूर्ण वानरों से जाकर क्या कहूँ। यह सुनकर सीता बोलीं—कौशल्यादेवी ने जिस लोक-स्वामी को उत्पन्न किया है उससे, मेरी ओर से, सुख का प्रश्न करो और मस्तक झुकाकर प्रणाम करो। मालाओं, रत्नों, प्यारी स्त्रियों और पृथ्वी में दुर्लभ ऐश्वर्य को छोड़कर तथा माता-पिता को प्रसन्न करके जो राम के पीछे वन में आये हैं, जिनके द्वारा सुमित्रा सुपुत्रवती कहलाती हैं, जिन्होंने राम के साथ जाने के लिए सुख छोड़ दिया और जो वन में पीछे-पीछे भाई की रक्षा करते चलते हैं उन वीर लक्ष्मण ने उस घड़ी मेरा हरण न जाना। वे सिंहस्कन्ध, महाभुज, मनस्वी और अति सुन्दर हैं। वे राम को पिता के तुल्य और मुझे माता के तुल्य मानते हैं। वे वृद्धसेवी, लक्ष्मीवान्, समर्थ, मितभाषी, राम के प्रियों में श्रेष्ठ और मेरे श्वशुर के तुल्य हैं। वे लक्ष्मण मुझसे भी अधिक राम को प्यारे हैं। जिस कार्य में उनको राम लगा देते हैं वे उसी को करते हैं। उनको देखने से रामचन्द्र को पिता का स्मरण नहीं होता। ऐसे लक्ष्मण से तुम मेरी ओर से कुशल कहना। हे वानरश्रेष्ठ, रामचन्द्र के प्रिय श्री लक्ष्मण मृदु, पवित्र और कुशल हैं। उनसे मेरे दुःखों का नाश करने के लिए कहना। हे वानर-यूथप, अब इस कार्य के निर्वाह में तुम प्रमाण हो जिसमें तुम्हारे प्रयत्न से रामचन्द्र मेरे विषय में यत्न करें। मेरे नाथ श्रीरामचन्द्र से बार-बार कहना कि हे दशरथात्मज, मैं एक महीने तक जीवित रहूँगी और महीने के ऊपर जीती न बचूँगी। तुमसे यह सच-सच कहती हूँ। देखो, इस दुष्ट रावण ने बड़ी दुर्दशा से मुझे कैद कर रक्खा है। जैसे वाराहावतार भगवान् ने पाताल से पृथ्वी का उद्धार किया था वैसे ही इस दुष्ट के हाथ से तुम मुझे बचाओ।

यह कहकर सीता ने वस्त्र में बँधी दिव्य चूड़ामणि खोलकर हनुमान् को दी और कहा कि यह मणि रामचन्द्र को देना। हनुमान् ने उस मणि को लेकर अँगुली

में बाँध लिया क्योंकि वह भुजा में नहीं बँध सकी। कपिश्रेष्ठ ने मणि लेकर प्रणाम किया और सीता की प्रदक्षिणा की। फिर हाथ जोड़कर वे पास ही खड़े हो रहे। सीता के दर्शन से उन्हें बड़ा हर्ष तो था ही। मन के द्वारा वे श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण के पास पहुँच गये।

---

## उनतालीसवाँ सर्ग

### हनुमान् और सीता की बातचीत

श्रीजानकी मणि देकर फिर कपि से बोलीं—हे कपे, इस मणि को रामचन्द्र भली भाँति जानते हैं। रामचन्द्र जब इस मणि को देखेंगे तब उनको माता का, मेरा और पिता दशरथ का स्मरण होगा। (मैंने तो इस विषय में सब कुछ तुमसे कही दिया है परन्तु) इसके अनन्तर क्या करना चाहिए, यह तुम सोचो। हे हरिश्रेष्ठ, तुम्हीं इस कार्य के निर्वाह में मुखिया हो। इसलिए अब उस उपाय को सोचो जिससे इस दुःख का नाश हो।

इस पर हनुमान् "बहुत अच्छा" कह कर और मस्तक से सीता को प्रणाम करके चलने को तैयार हुए। इनको चलते देख देवी फिर गद्गद वाणी से बोलीं—हे हनुमन्, दोनों भाइयों से कुशल कहना; मन्त्रियों सहित सुग्रीव से और वृद्ध वानरों से भी मेरी ओर से धर्म-संयुक्त कुशल कह देना। इस दुःख-सागर से वे मुझे जिस प्रकार पार करें तैसा उनको समझाना। हे हनुमन्, तुम ऐसा कहना जिससे कि वे मुझे जीती हुई पावें, तुमको धर्म का लाभ हो। श्रीरामचन्द्र को तो सदा उत्साह बना ही रहता है परन्तु मेरे वचनों को सुनकर उनका, मेरी प्राप्ति के लिए, पौरुष बढ़ेगा। मेरे सन्देश की बातें सुनकर श्रीरामचन्द्र विधिपूर्वक पराक्रम में अपना मन लगावेंगे।

सीता का यह वचन सुनकर हनुमान् ने हाथ जोड़कर कहा—हे देवि, श्रीरामचन्द्र वानरों को साथ ले शीघ्र आयेंगे और शत्रुओं को मारकर तुम्हारा शोक दूर कर देंगे। हे देवि, मैं तो मनुष्यों, दैत्यों या देवों में भी ऐसा कोई नहीं देखता जो उनके बाणों के समीप खड़ा होने का उत्साह करे। हे देवि! वे संग्राम में सूर्य, इन्द्र और यमराज के भी छक्के छुड़ा सकते हैं—विशेष करके तुम्हारे लिए। हे जानकि, वे तुम्हारे लिए सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतने के लिए कटिबद्ध हो रहे हैं और विजयी होंगे भी।

श्रीसीता ने हनुमान् का यह सुन्दर सत्य वचन बड़े आदर से सुना। राम के कृपा-पात्र हनुमान् जाने को तैयार खड़े थे। उनकी ओर बार-बार देखती सीता ने बड़े प्रेम से कहा—हे वीर, तुम चाहो तो किसी गुप्त स्थान में आज के दिन टिक रहो; विश्राम करके कल चले जाना। भला तुम्हारे पास रहने से मैं अभागिनी मुहूर्त भर तो इस शोक से बची रहूँगी। इसके अनन्तर तुम्हारे दुबारा आने तक मेरे प्राणों का सन्देह है, इसमें संशय नहीं। तुम्हें न देखने से भी मुझे एक प्रकार का शोक होगा। मैं बहुत बड़े दुःख से मग्न हूँ। वह शोक मुझे जलावेगा। हे वीर, मुझे एक सन्देह और भी है कि वानरराज अपनी सेना ले इस अपार समुद्र को कैसे लाँघेंगे और वे दोनों भाई किस प्रकार पार होंगे; क्योंकि समुद्र लाँघने की शक्ति तीन को ही है अर्थात् गरुड़, वायु और तुमको। हे वीर, इस प्रकार के दुरतिक्रम कार्य में तुम कौन सा उपाय देखते हो? इस कार्य के साधन में एक तुम्हीं सामर्थ्यवान् हो।

इसलिए यश की देनेवाली जय की प्राप्ति एक तुम्हीं को होगी। परन्तु रामचन्द्र जब सेना-सहित रावण को जीतकर और विजयी होकर मेरे साथ अपने नगर को लौटें तब उनके सदृश कार्य हो। सेनाओं से इस लंका को भर दें और जीतकर मुझे ले चलें तभी उनके योग्य कार्य हो। सो जिस प्रकार से उनके योग्य हो वैसा तुम करना।

इस पर हनुमान् बोले—हे देवि, सुग्रीव बड़े बलवान् हैं और तुम्हारे लिए उन्होंने निश्चय कर रक्खा है। सो वे हजारों और करोड़ों वानरों के साथ शीघ्र आवेंगे। उनकी आज्ञा का पालन करनेवाले वानर बड़े शूर, पराक्रमी और मन के तुल्य वेगवान् हैं। उनकी गति ऊपर, नीचे और बेड़ी कहीं नहीं रुक सकती। बड़े-बड़े काम करने में भी उन्हें खेद नहीं होता। उन महोत्साही वानरों ने अनेक बार इस पृथ्वी की प्रदक्षिणा की है। वे सब वायुमार्ग में चलते हैं। उनमें बहुत से तो मुझसे अधिक और बहुत से मेरे बराबर हैं। सुग्रीव के समीप तो मुझसे हीन कोई है ही नहीं। जब मैं यहाँ आ पहुँचा तब उन बलियों की क्या बात कहनी है; क्योंकि उत्कृष्ट बलवाले नहीं भेजे जाते, हीन शक्तिवाले ही भेज दिये जाते हैं। सो हे देवि, इस विषय में तुम चिन्ता न करो; शोक को छोड़ दो। वे वानरों के यूथपति एक छलाँग में लङ्का में आ पहुँचेंगे। वे दोनों भाई चन्द्र और सूर्य के सदृश उदय को प्राप्त हैं। वे मेरी पीठ पर चढ़कर तुम्हारे पास पहुँचेंगे। वे यहाँ आकर बाणों के द्वारा लङ्का का ध्वंस कर डालेंगे। वे सपरिवार रावण को मारेंगे और तुम्हारे साथ अपनी नगरी को जायँगे। इसलिए तुम अपने मन को समझाओ और समय की बाट देखो। अब बहुत विलम्ब नहीं है, तुम रामचन्द्र को प्रज्वलित अग्नि की नाईं लङ्का में देखोगी। इस राक्षसराज के साथ ही इसके पुत्र, मन्त्री और बान्धवों के मारे जाने पर, चन्द्र के साथ रोहिणी की नाईं, तुम रामचन्द्र से मिलोगी। हे मैथिलि, बहुत शीघ्र तुम्हारे इस शोक का अन्त होगा। तुम रावण को रामचन्द्र के हाथ से मरा हुआ देखोगी। इस प्रकार सीता को समझाकर, चलने के लिए उद्यत, हनुमान् सीता से फिर बोले—हे जानकि, तुम उन शत्रुघाती, आत्मज्ञ रामचन्द्र को शीघ्र ही देखोगी। तुम शीघ्र देखोगी कि हाथ में धनुष लिये लक्ष्मणजी लङ्का के द्वार पर खड़े हैं, नख और दन्त ही जिनके आयुध हैं, जो सिंह और शार्दूल के तुल्य पराक्रमी हैं और गजेन्द्र के तुल्य विशाल हैं। उन वानरों को शीघ्र एकत्रित देखोगी। पर्वत और मेघ के तुल्य विशाल शरीरवाले वानरों के अनेक झुण्डों को तुम इस मलय पर्वत पर गरजते देखोगी। हे देवि, वे रामचन्द्र काम के घोर बाण से मर्मस्थलों से ताड़ित हो रहे हैं। उन्हें सुख नहीं है। अब तुम रोओ मत, अपने मन से भय को हटा दो। तुम इन्द्राणी की नाईं इन्द्र के तुल्य रामचन्द्र से मिलोगी। तुम्हीं देखो कि राम से अधिक या लक्ष्मण के तुल्य दूसरा कौन है! वे दोनों भाई अग्नि और वायु के तुल्य हैं। वे तुम्हारे आधारभूत हैं। इस राक्षसों की निवासभूमि बड़े भयङ्कर स्थान में न तो तुम बहुत समय तक रहोगी और न तुम्हारे पति के आने में ही देर है। केवल उतने समय तक तुम बाट देखो जब तक कि मैं उनसे जाकर मिलूँ।

---

## चालीसवाँ सर्ग

### सीता और हनुमान् की कुछ बातचीत

इस पर सीतादेवी फिर कुछ अपने हित का वचन बोलीं—हे वानर, तुमको देखकर और तुम्हारे

प्रिय वचनों को सुनकर मुझे वैसा ही हर्ष हुआ जैसा कि वर्षा के अभाव में सूखती हुई फसल को वर्षा हो जाने से लाभ होता है। इसलिए अब तुम ऐसी कृपा करना जिससे मैं अपने शोककर्शित अङ्गों से, सकामा होकर, उन पुरुषव्याघ्र को स्पर्श करूँ। उन्हें यह चूड़ा-मणि तो देना ही, और उस कौए की आँख फोड़ने का स्मरण रामचन्द्र को अवश्य करा देना, और यह कहना कि जब सीता का तिलक मिट गया था तब तुमने उसके कपोल भाग में मैनसिल का तिलक बनाया था, उसका स्मरण करो। कहना कि तुम इस प्रकार के वीर्यवान् और इन्द्र-वरुण के तुल्य होकर क्यों उसकी उपेक्षा कर रहे हो? वह राक्षसों के बीच में रहती है। देखो, इस दिव्य चूड़ामणि को मैंने अपने पास रख छोड़ा था। मैं जब इसको देखती थी तब इस क्लेश में मुझे ऐसा हर्ष होता था जैसा तुम्हें (राम को) देखने से होता है। जल से उपजी हुई यह मणि मैंने तुमको दे दी। अब मैं शोकग्रस्त होकर न जी सकूँगी। मैं तुम्हारे ही लिए ये असह्य दुःख सहती हूँ, मर्मभेदी वचन सुनती हूँ और इन राक्षसों के साथ रहती हूँ। हे शत्रुनाशक, मैं एक महीने तक जीती रहूँगी; परन्तु यदि महीना बीत जायगा और तुम मुझे न मिलोगे तो अवश्य प्राण त्याग करूँगी क्योंकि यह राक्षसराज बड़ा भयङ्कर है। मेरे विषय में इसकी दृष्टि सुखदायिनी नहीं है। यदि मैं तुम्हें देर लगाते देखूँगी तो क्षण भर भी न जी सकूँगी।

अश्रुओं से गद्गद सीता के वचन दया-पूर्ण थे। उन्हें सुनकर हनुमान् बोले—हे देवि, मैं सत्य की सौगन्द खाकर कहता हूँ कि रामचन्द्र तुम्हारे शोक से दीन हो रहे हैं और उनकी दशा देख लक्ष्मण भी सन्तप्त हैं। भला मैंने किसी प्रकार तुमको देख तो लिया। अब यह समय सन्ताप करने का नहीं है। केवल मुहूर्त्त भर दुःख है। इन दुःखों का अन्त तुम शीघ्र देखोगी। तुम्हारे लिए वे दोनों पुरुषव्याघ्र बाणों की मार से लंका को भस्म कर देंगे। हे विशालाक्षि, वे दोनों इस रावण को और इसके परिवार को मारेंगे और तुमको अपनी पुरी में ले जायँगे। हे सुन्दरि, रामचन्द्र जिस पहचान को पहचानते हों और जिस पर नजर पड़ते ही उनको प्रीति उत्पन्न हो ऐसी पहचान की वस्तु मुझे दो। इस पर सीता ने कहा—हे वीर, मैंने बहुत उत्तम अभिज्ञान तुमको दिया है। इसको देखकर वे तुम्हारी बातों पर विश्वास कर लेंगे। हनुमान् उस मणि को तो लिये ही थे, अब वे उन्हें प्रणाम करके चले। जब सीता ने देखा कि ये उड़ान भरना चाहते हैं और बढ़ते जाते हैं तब फिर आँसू भर के गद्गद वचन बोलीं—हे वीर, उन दोनों भाइयों से और मन्त्री-सहित सुग्रीव से मेरा कुशल कहना। तुम राघव को ऐसी सम्मति देना जिससे वे इस दुःख-समुद्र से मेरा उद्धार करें। श्रीरघुनन्दन से मेरे शोक-वेग का हाल कहना और इन राक्षसों के द्वारा जो मेरी दुर्दशा हुई है उसका भी समाचार समझाकर कहना। तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो।

अब श्रीहनुमान् कृतार्थ और हर्षित होकर थोड़े से अवशिष्ट कार्य की ओर दृष्टि करके मन से उत्तर दिशा को चल दिये।

---

## इकतालीसवाँ सर्ग

### हनुमान् का रावण की मनोहर वाटिका को उजाड़ना

चलते समय सीता ने हनुमान् की बड़ाई की और आदर किया। वे उस स्थान से चलकर सोचने

लगे कि यह तो बड़ा भारी कार्य हुआ जो सीता को देखा। अब थोड़ा सा कार्य रह गया है। शत्रु के बल का पता लेना है। पहले तीन उपाय तो यहाँ किसी काम के हैं नहीं, केवल चौथे का ही प्रयोग करना चाहिए। अर्थात् केवल दण्ड ही यहाँ काम करेगा; क्योंकि सब शूर हैं, इसलिए इनमें साम से काम न होगा। फिर दान भी ठीक नहीं, क्योंकि ये सब बड़े सम्पत्तिवान् हैं; और भेद भी यहाँ काम न देगा क्योंकि इन्हें अपने बल का बड़ा गर्व है। अब मुझे यहाँ पराक्रम ही करना चाहिए। पराक्रम के बिना यहाँ किसी और निश्चय से काम सिद्ध न होगा। जब यहाँ राक्षसों के बड़े-बड़े प्रधान मारे जायँगे तब ये किसी प्रकार से ढीले पड़ेंगे। मुख्य कार्य करने के अनन्तर जो और भी ऐसे बहुत से कार्य करता है जिनका कृत-कार्य के साथ विरोध नहीं होता वही व्यक्ति कार्य करने में कुशल है। देखो, जो कोई जन अल्प कार्यों का साधन बहुत बड़े यत्न से करता है तो वह कार्य-साधन नहीं कहा जा सकता; कार्य-साधक व्यक्ति तो वह है जो साधारण उपाय से अपने कार्य को अनेक प्रकार से करे। यहाँ का कार्य हो गया इसलिए मैंने तो अब सुग्रीव के पास जाने का निश्चय कर रक्खा है परन्तु अपने और शत्रु के बलाबल का ठीक भेद लेकर मैं यहाँ से चलूँ तो स्वामी का कार्य सम्पन्न माना जाय। ऐसा करने से ही स्वामी की आज्ञा का पालन ठीक-ठीक होगा। इस घड़ी राक्षसों के साथ मेरा युद्ध अनायास किस प्रकार हो जिसमें कि रावण अपनी सेनावालों का और मेरा पराक्रम जान ले। इसके अनन्तर मन्त्री, सेना और सुहृद्गणों सहित रावण संग्राम में मिल जाय तो मैं सुख से उसके हृदयस्थित विचार को और उसके बल को जान लूँ और फिर यहाँ से जाऊँ। इस विषय में मुझे अब यही उपाय सूझता है कि इस दुष्ट के वन को ध्वंस कर डालूँ। यह वन नन्दन वन के तुल्य है और मन तथा नेत्रों को आनन्द देता है। इसमें नाना प्रकार की लताएँ और अनेक प्रकार के वृक्ष हैं। जैसे सूखे वन को अग्नि नष्ट करता है उसी तरह मैं इसे ध्वस कर डालूँ। इसके भग्न होने पर रावण क्रोध करेगा ही। तब वह घोड़े, रथ और हाथियों सहित अपनी सेना ले आवेगा! बड़े-बड़े राक्षस त्रिशूल, लोहमुद्गर और पटा इत्यादि शस्त्र ले-लेकर उपस्थित होंगे। तब बड़ा भारी युद्ध होगा। मैं उन महापराक्रमियों का सामना करूँगा। रावण की भेजी सेना को अनायास चूर कर मैं सुग्रीव के पास चला जाऊँगा।

यह विचार कर श्रीवायुपुत्र क्रोध से बड़े वेगपूर्वक, वायु के सदृश, वृक्षों को उखाड़ने लगे। उन्होंने थोड़े समय में तोड़-फोड़कर उस वन को नष्ट कर दिया। उस प्रमदावन में नाना मत्त पक्षी शब्द करते थे और उसमें नाना प्रकार के वृक्ष तथा लताएँ थीं। वृक्षों के टूट जाने, जलाशयों के फूट जाने, पर्वतों के अग्र-भागों के चूर्ण हो जाने और जलाशयों के नाना पक्षियों के तितर-बितर होकर चिल्लाने से तथा नये कोमल-कोमल पत्तों के छितिर-बितिर हो जाने से वह वन ऐसा हो गया जैसे दावाग्नि लगने से जङ्गल भद्दा हो जाता है। अब वहाँ आधार न रहने से लताओं की दशा विह्वल स्त्रियों की सी हो गई। लतागृहों और चित्रगृहों का तो कहना ही क्या है। वहाँ के साँप, मृग और पक्षी आर्तशब्द करके कोलाहल मचाने लगे। वहाँ जो घर पत्थरों से बने थे उनको भी कपि ने गिरा दिया। वह विशाल वन नष्ट हो गया। श्रीवायुपुत्र ने अशोक-लताओं को भङ्ग करके उस वन-भूमि को शोकयुक्त कर दिया। अपने बल से उन्होंने राक्षसराज के उस

प्रमदावन को अप्रमद कर डाला। श्रीहनुमान् इस प्रकार राक्षसराज की बड़ी हानि करके, अनेकों के साथ अकेले युद्ध करने की इच्छा से, द्वार के तोरणभाग पर जाकर बैठ रहे।

---

## बयालीसवाँ सर्ग

### रावण का सेना भेजना और हनुमान् का युद्ध

प्रमदावन के पक्षियों की चिल्लाहट से और वृक्षों के टूटने के शब्दों से सभी लङ्कावासी भयभीत हो गये। वहाँ के मृग और पक्षी मारे डर के भाग चले। राक्षसों को अनेक प्रकार के अशकुन होने लगे। इसके अनन्तर विकराल मुखवाली वे राक्षसियाँ जाग उठीं जो पिछली रात को सो गई थीं। वे उजड़े हुए वन की ओर और महाकपि की ओर देखने लगीं। उस घड़ी उनको जागी हुई देख कपि ने क्या चमत्कार किया कि अपने शरीर को महापर्वताकार और महाबलिष्ठ बना दिया। उस रूप को देखते ही वे सब डर गईं। वे पूछने लगीं—हे सीते, यह किसका कौन है; यह कहाँ से किस लिए यहाँ आया है? इसने तुमसे किस प्रकार बातचीत की है। हे विशालनयने, हमको सब हाल बताओ। डरो मत। इसने तुम्हारे साथ क्या बातचीत की है?

सीता ने उत्तर दिया—कामरूपी राक्षसों के जानने की मुझे क्या गति है! तुम्हीं जान सकती हो कि यह कौन है और क्या करेगा; क्योंकि साँप के पैरों को साँप ही जानता है। मैं भी बहुत डर गई हूँ, मैं नहीं जानती कि यह कौन है। अटकल से मुझे यही जान पड़ता है कि यह कोई कामरूपी राक्षस है।

यह सुनकर सब राक्षसियाँ वहाँ से भागीं। कई वहाँ खड़ी हो गईं और कई रावण को खबर देने गईं। रावण के समीप जाकर उन्होंने कहा—राजन्, अशोक-वाटिका में एक भयङ्कर-रूपधारी वानर आया है। वह बड़ा पराक्रमी देख पड़ता है। उसने सीता के साथ कुछ बातचीत की थी। हमने सीता से उसके विषय में बहुत पूछा कि यह कौन है, तुम हमको बतलाओ; पर वह हमें बतलाना नहीं चाहती। हम जानती हैं कि वह या तो इन्द्र का दूत होगा या कुबेर का; अथवा सीता के खोजने के लिए राम का भेजा हुआ कोई दूत हो। महाराज! नाना मृग-पक्षियों से शोभित प्रमदावन को उसने ध्वस्त कर डाला है। अब वहाँ ऐसा कोई स्थान नहीं जो उसने अछूता छोड़ा हो। परन्तु जहाँ जानकी बैठी है उस स्थान को उसने छुआ तक नहीं। सो उस स्थान को उसने न जाने जानकी की रक्षा के लिए छोड़ दिया है अथवा श्रम से; अथवा उसको श्रम ही काहे का, उसी की रक्षा उसने की है। मनोहर पत्तों से शोभित जिस शिंशपा-वृक्ष के नीचे सीता बैठी है उसको उसने बचा दिया है। राजन्, उस उग्ररूप वानर ने सीता से बात-चीत की और वन को ध्वंस कर दिया है, उसको दण्ड देने की आप आज्ञा दीजिए। हे राक्षसेश्वर, जो सीता आपकी मनभावती है उससे बातचीत करके कौन जीता बच सकता है!

राक्षसियों के ये वचन सुनकर रावण चिताग्नि की नाईं प्रज्वलित हो क्रोध से नेत्रों को घुमाने लगा। क्रोध के कारण उसके नेत्रों से आँसुओं के बूँद गिरे जैसे कि प्रज्वलित दीपों में से गरम तेल के बिन्दु टपक पड़ते हैं। तब उसने कपि को दण्ड देने के लिए अपने तुल्य योद्धा किङ्कर नामक राक्षसों को आज्ञा दी। अब बड़े वेगवाले अस्सी हजार राक्षस कूटमुद्गरों* को हाथों में लेकर वहाँ से

* जिनके अग्र-भाग में लोहा लगा है।

निकले। वे सब के सब महाबलवान् थे। उनके पेट और दाँत बड़े-बड़े थे। रूप भी उनका भयंकर था। युद्ध में उद्यत होकर वे हनुमान् को पकड़ने की इच्छा से चले। जहाँ कपि तोरण पर बैठे थे वहीं पर वे आ गये। वे उन पर ऐसे झुक पड़े जैसे अग्नि की ज्वाला पर पतङ्ग जा पड़ते हैं। विचित्र गदाओं, सुवर्णपट्ट-भूषित परिघों और चमकीले बाणों से वे कपि को मारने लगे। उनमें बहुत से तो मुद्गर, पटा, प्रास और तोमर शस्त्र लेकर कपि को चारों ओर से घेरकर खड़े हो गये। पर्वताकार श्री हनुमान् ने भी भूमि पर अपनी पूँछ पटककर बड़ा घोर नाद किया और अपने शरीर को बढ़ाया। इनकी पूँछ के झटकारने का शब्द सम्पूर्ण लंका में व्याप्त हो गया। आकाश में जो पक्षी उड़ रहे थे वे उस शब्द से मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। उस समय हनुमान् चिल्लाकर बोले—

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥
दासोहं कोशलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनुमाञ्छत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥
न रावणसहस्रम्मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः॥
अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम्।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम्॥

अर्थात्—अत्यन्त बलवान् श्रीराम-लक्ष्मण और उनसे रक्षित राजा सुग्रीव सबसे बड़े हैं। कोशलाधीश के सामने कोई काम कठिन नहीं है। मैं उन्हीं का दास हूँ। मेरा नाम हनुमान् है, मैं वायु का पुत्र हूँ। मैं शत्रु की सेनाओं का नाश करता हूँ। जब मैं हजारों शिलाओं और वृक्षों की मार करूँगा तब मेरी बराबरी हजार रावण भी न कर सकेंगे। मैं राक्षसों के सामने इस पुरी का मर्दन करके और मैथिली को प्रणाम करके प्रसन्नता से चला जाऊँगा।

कपि की गर्जना सुनकर वे सब बड़े भयभीत हुए। हनुमान् का स्वरूप सन्ध्याकाल के मेघ के सदृश उन्नत था। उसको वे देखने लगे, परन्तु स्वामी की आज्ञा तो कपि को मारने की थी, इसलिए वे सब मिलकर वायुपुत्र पर प्रहार करने लगे। तब हनुमान् उसी तोरण के पास से, एक बड़ा भारी परिघ लेकर, उन राक्षसों को मारने लगे। साँप को लेकर जैसे गरुड़ आकाश में उड़ता देख पड़ता है वैसे ही हनुमान् उस परिघ को लिये आकाश-मार्ग में पैंतरा करते देख पड़ते थे। देखते-देखते उन राक्षसों को हनुमान् ने उस परिघ से ऐसा मार गिराया जैसे कि दैत्यों को इन्द्र वज्र से मार गिरावें। इस प्रकार वायुपुत्र उन किङ्कर राक्षसों को मारकर, फिर युद्ध की इच्छा से, उसी तोरण पर जा बैठे। उनमें से बचे-खुचे राक्षस भागकर रावण के पास जाकर बोले कि वे सब राक्षस, कपि के हाथ से, मारे गये। यह सुनकर रावण ने अत्यन्त क्रुद्ध हो प्रहस्त के पुत्र जम्बुमाली को आज्ञा दी। वह समर में अत्यन्त दुर्जय था।

---

## तेंतालीसवाँ सर्ग

### हनुमान् का चैत्यप्रासाद को विनष्ट करना और वहाँ के राक्षसों को मारना

उन किंकरों को मारकर हनुमान् सोचने लगे कि मैंने वन का तो ध्वंस किया पर चैत्यप्रासाद* को बचा रहने दिया है। इसलिए इसको क्यों छोड़ूँ!

* राक्षसों के कुल-देवता का मन्दिर।

मन में यह सोचकर वे कूदकर उसके ऊपर चढ़ गये। वह प्रासाद मेरु के सदृश ऊँचा था। उस समय उसके ऊपर चढ़े हनुमान् ऐसे लगते थे मानो दूसरे सूर्य हों। उस प्रासाद को तोड़-ताड़ करके हनुमान् अपनी प्रज्वलित शोभा से पारियात्र पर्वत की नाईं उस घड़ी देख पड़े। बड़े विशाल रूप होकर वे बड़े वेग से गरजे। वह शब्द सम्पूर्ण लंका में भर गया और आकाश में उड़ते पक्षी उस शब्द से भूमि पर गिर पड़े। वहाँ के प्रासाद-रक्षक भी मूर्च्छित हो गये। बड़े जोर से हनुमान् ने फिर वही बात कही जिसका पिछले सर्ग में वर्णन हो चुका है। उसे दोहराकर वे उसी प्रासाद पर खड़े होकर जोर से गरजे जिससे कि राक्षस डर जायँ। वहाँ जो चैत्यपाल थे उनका शरीर विशाल था। वे नाना प्रकार के शस्त्र, प्रास, खड्ग और फरसे ले-लेकर सैकड़ों की संख्या में आये और हनुमान् को घेरकर मारने लगे। वहाँ पर कपि को घेरे हुए राक्षसों की ऐसी शोभा हुई जैसे गङ्गा का बड़ा भारी भँवर तरङ्ग हो। हनुमान् पर वे राक्षस लोग गदा, परिघ और बाणों का प्रहार करने लगे। उस समय कपि ने क्रुद्ध होकर अपना रूप भयंकर और विशाल बना लिया। उस प्रासाद के सुवर्णभूषित एक विशाल खम्भे को उखाड़कर वे घुमाने लगे। उस खम्भे में सौ धारें थीं। उसके घुमाने से और खम्भे की टक्कर से आग उत्पन्न हो गई। इससे सम्पूर्ण प्रासाद जलकर भस्म हो गया। इधर तो प्रासाद जलता ही था उधर हनुमान् ने उस खम्भे से राक्षसों को मार गिराया। आकाश में जाकर श्री वायुपुत्र बड़े जोर से बोले—मेरे ऐसे हजारों वानर सुग्रीव के वश में हैं; वे पृथ्वी में चारों ओर घूम रहे हैं। उनमें से कुछ में दस हाथियों का बल है, बहुतेरों में सौ हाथियों का और किसी-किसी में हजार हाथियों का पराक्रम है। अनेक वानर हस्तिसेना के तुल्य पराक्रमी और बहुतेरे वायुतुल्य पराक्रमी हैं। कुछ वानर ऐसे हैं जिनका बल अप्रमेय है। इस प्रकार के वानर-यूथपतियों और वानरों के शस्त्र दन्त और नख ही हैं। उनकी संख्या सौ-सौ सहस्र कोटि और दस सहस्र है। उनसे घिरे हुए सुग्रीव आवेंगे। वे तुम लोगों का नाश कर देंगे। न तुम्हारी यह लंका बचेगी, न तुम बचोगे और न रावण ही बचेगा; क्योंकि तुमने इक्ष्वाकु-वंशी महाराज श्रीरामचन्द्र से वैर कर रक्खा है।

---

## चवालीसवाँ सर्ग

### हनुमान् का जम्बुमाली को मारना

पहले यह कथा हो गई है कि रावण ने प्रहस्त के पुत्र जम्बुमाली को कपि के मारने की आज्ञा दी थी। सो जम्बुमाली लाल माला और लाल कपड़े पहने रथ पर चढ़कर घर से निकला। वह हार पहने, और कुण्डलों से भूषित था। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें थीं। इन्द्र के धनुष के तुल्य बड़े प्रचण्ड धनुष और सुन्दर बाणों को लिए वह धनुष का टङ्कार करता था। उस शब्द से दिशा-विदिशा और आकाश पूर्ण हो रहा था। उसके रथ में गदहे जुते हुए थे। उसको देखते ही हनुमान् बहुत प्रसन्न होकर गरजे। जम्बुमाली ने पहुँचकर देखा कि एक बड़ा विशाल वानर तोरण के विटङ्क* पर बैठा है। तब वह राक्षस उन्हें पैने-पैने बाण मारने लगा। उसने अर्धचन्द्राकार बाण कपि के मुख पर, एक कर्णिक बाण मस्तक पर और पाँच-पाँच बाण दोनों भुजाओं पर मारे। बाणों की चोट खाने से हनुमान् का मुख ऐसा शोभित हुआ मानो शरत्काल का कमल सूर्य की

* बाहर के दरवाजे के ऊपर का ऊँचा भाग।

किरणों से युक्त हो। हनुमान् का मुख एक तो लाल था ही, दूसरे रक्त के बिन्दुओं से ऐसा शोभित हुआ जैसे आकाश में काञ्चन की बूँदों से सींचा महाकमल हो। अब इतने बाण खाकर कपि क्रुद्ध हुए। उनके पास ही एक बड़ी-सी शिला पड़ी थी। उसको उठाकर हनुमान् ने बड़े वेग से राक्षस के ऊपर फेंका। परन्तु उसने बड़ी फुर्ती से दस बाणों से उसको चूर्ण करके गिरा दिया। हनुमान् ने देखा कि मेरा यह काम व्यर्थ हुआ; तब वे एक साखू का वृक्ष उखाड़कर, उसको मारने के लिए, घुमाने लगे। उस समय महाबली जम्बुमाली ने उन पर बहुत से बाण चलाये। चार बाणों से तो उसने वृक्ष को काट डाला और पाँच बाण कपि की भुजा में मारे। एक बाण कपि की छाती में मारा और दस हृदय में मारे। इन बाणों की चोट सहकर हनुमान् ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर फिर उसी मूसल को उठाया जिससे कई राक्षसों को मारा था। बड़े वेग से उसे घुमाकर उन्होंने जम्बुमाली की छाती को लक्ष्य करके फेंका। उस समय न तो उस राक्षस का मस्तक देख पड़ा और न भुजा, जङ्घा, धनुष, रथ और घोड़े ही देख पड़े। वे बाण भी न जाने क्या हुए। टूटे-फूटे और चूर्ण हुए वृक्ष की भाँति वह चटपट भूमि पर गिर पड़ा।

यह समाचार रावण के पास पहुँचा। इसको सुनते ही उसने बड़े क्रोध से लाल आँखें करके अपने मन्त्रियों के बलवान् पुत्रों को आज्ञा दी।

---

# पैंतालीसवाँ सर्ग

## हनुमान् का सातों मन्त्रिपुत्रों को मारना

वे मन्त्रियों के सात पुत्र अग्नि के तुल्य तेजस्वी थे। वे बड़े पराक्रमी, धनुर्द्धर, अस्त्रों के जाननेवालों में श्रेष्ठ, और परस्पर जय की इच्छा रखते थे। उनके रथ सुवर्णजालों से वेष्टित, ध्वजाओं से शोभित, पताका फहराते और मेघों के तुल्य शब्द करते थे। वे ऐसे महारथों पर सवार थे जिनमें अच्छे घोड़े जुते हुए थे। वे सुवर्ण के पट्टों से भूषित चापों को धारण किये थे और हर्षयुक्त होकर धनुषटंकार करते ऐसे लगते थे मानो बिजली-युक्त मेघ हों। घर से वे सातों चल निकले। उनकी माताएँ किंकरों के मारे जाने का हाल सुनकर बान्धवों और सुहृदों के साथ अत्यन्त शोकसंतप्त हो गईं। वे सबसे पहले जीतने की इच्छा रखते हुए तोरणस्थ हनुमान् के पास पहुँचे। बाणों की वृष्टि करने और उनके रथ की गड़गड़ाहट होने से वे ऐसे जान पड़ते थे मानो वर्षा-काल के मेघ हों। उनकी बाण-वृष्टि में हनुमान् ऐसे छिप गये जैसे हिमालय पर्वत जल की धारा से छिप जाय। अब हनुमान् आकाश में ऐसी शीघ्रता से पैंतरा करने लगे कि सम्पूर्ण रूप से राक्षसों के बाणों की चोट और रथों का वेग खाली जाने लगा। वे इस प्रकार उन धनुर्द्धारियों के साथ कुछ देर तक खेलते रहे। उस समय आकाश में उनकी ऐसी शोभा हुई जैसे इन्द्रधनुष से भूषित मेघों के साथ आकाशचारी वायु की होती है। अब हनुमान् उस सेना को डराते हुए बड़े भयंकर शब्द से गरजे और उन राक्षसों को मारने के लिए वेगवान् हुए। उन्होंने उनमें से किसी को तो थपेड़े से, किसी को लातों से और किसी को मुष्टि-

प्रहार से मार गिराया। किसी को नखों से विदीर्ण कर डाला, किसी को छाती से और किसी को दोनों जङ्घाओं से पीस डाला। कितने एक सेनावाले तो हनुमान् के वज्रनाद से ही भूमि पर गिरकर मर गये। बचे-खुचे सेना के राक्षसों ने जब देखा कि वे सातों वीर मरकर गिर पड़े तब वे मारे डर के इधर-उधर भाग गये। सेना के हाथी बड़ा आर्त्तस्वर करने लगे। घोड़े भूमि पर गिर गये। रथों के आसन, चक्र, ध्वज और छत्र चूर-चूर हो गये। उनसे सम्पूर्ण भूमि बिछ गई। उस युद्ध में रुधिर की नदियाँ बह निकलीं। लंका में अनेक प्रकार के विकराल शब्द होने लगे।

दोहा

उन सातहुँ कर मथन करि, हनूमान रणधीर।
युद्ध-कामना ते बहुरि, तोरण गवने वीर॥

——

## छियालीसवाँ सर्ग

### रावण का सेना के पाँच मुख्य नायकों को भेजना और हनुमान् के हाथ उनका मारा जाना

जब रावण ने सुना कि उस बली वानर ने सातों मन्त्रिपुत्रों को मार डाला तब तो वह सन्न हो गया और कुछ मन में सोचने लगा। सोच-विचार कर उसने विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्द्धर्ष, प्रघस और भासकर्ण—इन पाँच राक्षस-वीरों को आज्ञा दी। वे सेना के मुख्य नायक, संग्राम में वायु के तुल्य वेगवान् और नीतिशास्त्र में निपुण थे। उनसे कहा—तुम लोग सेना अगुआ हो, तुम लोग बड़ी सेना लेकर हाथी-घोड़े और रथों-सहित वहाँ जाओ और उस वानर का शासन करो। देखो, उसके पास बहुत सावधानी से जाना; देश और काल का विचार करके काम करना। हे भाइयो, मैं तो उसके कामों से उसको वानर नहीं समझता। मुझे तो वह कोई महाबली जीव जान पड़ता है। लोग कह रहे हैं "वह वानर है, वह वानर है" यह सुनने से मेरा मन शुद्ध नहीं होता; क्योंकि वह सचमुच वानर नहीं है। मैं तो यह समझता हूँ कि इन्द्र ने अपने तपोबल से हमारे लिए इसको सिरजा है। मेरी आज्ञा से तथा मेरे साथ ही तुम लोगों ने नाग, यक्ष, गन्धर्व, देव, दैत्य और महर्षियों को जीता; इसलिए वे हमारी हानि के विषय में कुछ किया चाहते हैं। जरूर यही बात है। इसलिए तुम उस जीव को पकड़ लो। देखो, वह कपि वीर पराक्रमी है, उसको अनादर की दृष्टि से न देखना। मैंने बड़े-बड़े पराक्रमी वानरों को देखा था। बाली, सुग्रीव, जाम्बवान्, सेनापति नील और द्विविद इत्यादि महाबली हैं, परन्तु न उनकी ऐसी भयंकर गति है, न ऐसा तेज और न ऐसा पराक्रम है। मैंने उनमें न ऐसी बुद्धि देखी, न बलोत्साह और न ऐसी कामरूपता ही। इसलिए हे राक्षसो, यह वानररूप-धारी कोई बड़ा बलिष्ठ जीव है। तुम लोग बड़े प्रयत्न से इसको पकड़ना। मैं जानता हूँ कि संग्राम में इन्द्र, देव, दैत्य और मनुष्यों सहित तीनों लोक तुम्हारे समीप खड़े भी नहीं हो सकते, लड़ना तो दूर है; तो भी जो नीति-शास्त्र का जाननेवाला जय की इच्छा रक्खे तो उसको बड़ी सावधानी से अपने को बचाना चाहिए क्योंकि जय चञ्चल है।

स्वामी की यह आज्ञा पाकर वे सब पराक्रमी और अग्नि के सदृश तेजस्वी राक्षस बड़ी सेना को सजाकर चले। उनके साथ रथ, मत्त हस्ती, बड़े वेगवाले घोड़े और पैने-पैने शस्त्र थे। उन्होंने वहाँ जाकर देखा कि उस तोरण पर उगे हुए सूर्य की नाईं एक महावेगशाली,

महापराक्रमी, महाबुद्धिमान्, महोत्साही, पर्वताकार, महाभुज वानर बैठा है। तब वे सब के सब, उससे दूर ही दूर खड़े हो, अपने-अपने शस्त्र चलाने लगे।

दुर्द्धर नामक राक्षस ने कपि के मस्तक में बड़ी पैनी धारवाले पीले रङ्ग के—कमल-पत्र के तुल्य प्रभा से युक्त—पाँच बाण मारे। तब हनुमान् उन बाणों की चोट सहकर बड़ी गर्जना के साथ आकाश में उड़ चले। उनके गरजने से दशों दिशाएँ प्रतिध्वनित हो गईं। रथ पर सवार दुर्द्धर भी अपनी प्रत्यञ्चा को चढ़ाये सैकड़ों बाण चलाता हुआ कपि का पीछा कर चला। तब तो हनुमान् उसको रोकने लगे जैसे शरत्काल के मेघ को वायु बरसने नहीं देता। परन्तु जब वह राक्षस बड़ी बाणवृष्टि से कपिश्रेष्ठ को सताने लगा तब वे फिर गरजे और बढ़े। बहुत ऊपर उछलकर वे दुर्द्धर के रथ पर ऐसे वेग से गिरे जैसे बिजली का समूह पर्वत पर गिरता है। इनके गिरने से आठों घोड़े, चक्र और रथ सब टूटकर नष्ट हो गये। रथ को छोड़कर वह राक्षस भूमि पर गिरने से मर गया। उसको इस प्रकार मरते देख विरूपाक्ष और यूपाक्ष, दोनों बड़े क्रोध से कूदकर हनुमान् के पास पहुँचे और घेरकर खड़े हो गये। दोनों ने कपि के वक्षस्थल पर मुद्गरों से प्रहार किया। उस प्रहार को व्यर्थ करके और उन वेगवालों के वेग को बचाकर, गरुड़ के तुल्य वेग से, वे भूमि पर आ गये। उन्होंने एक साखू का वृक्ष उखाड़कर उससे उन दोनों को ऐसा मारा कि वे निर्जीव होकर नीचे गिर पड़े। इन तीनों का इस प्रकार नाश देख प्रघस नामक राक्षस कुछ हँसा और हनुमान् के पास पहुँचा। भासकर्ण क्रुद्ध हुआ और शूल लेकर कपि के एक ओर आकर उपस्थित हो गया। प्रघस पटा से और भासकर्ण शूल से कपि पर प्रहार करने लगा। इनके प्रहार से हनुमान् के अङ्गों से रक्त बह चला। तब तो बालसूर्य के सदृश कांतिमान् वायुपुत्र ने एक पर्वत के शृंग को उखाड़कर उन दोनों के शरीर पर बड़े वेग से पटका। उस शिखर पर मृग, साँप और बहुत से वृक्ष थे। उस पर्वत-शृङ्ग के आघात से वे दोनों ऐसे पिस गये कि उनके अंग तिल के बराबर हो गये। इस प्रकार कपि ने उन पाँचों को मारकर बची हुई सेना का भी नाश करना आरम्भ किया। घोड़ों से घोड़ों को, हाथियों से हाथियों को, पैदलों से पैदलों को, और रथों से रथों को चूर कर डाला। वहाँ पर मरे हुए हाथी, घोड़े, टूटे-फूटे रथ और राक्षसों की लोथें इतनी अधिक पड़ी थीं कि वह युद्ध-भूमि चारों ओर से अगम्य हो गई।

दोहा

एहि बिधि सेनापतिन्ह कहँ, श्रीकपिवर बिलवाइ।
प्रलय-समय के काल इव, तोरण बैठे जाइ॥

---

## सैंतालीसवाँ सर्ग

### अक्षकुमार का मारा जाना

राक्षसराज रावण ने देखा कि उस वानर ने पाँचों सेनापतियों को समाप्त कर डाला। अब अक्षकुमार को युद्ध के लिए उद्यत देख वह उसकी ओर देखने लगा। रावण के देखने की ही देर थी कि तुरन्त वह अपना सुवर्ण-भूषित धनुष लेकर, ब्राह्मणों के द्वारा घृत से प्रज्वलित की गई आग की नाईं, उठ खड़ा हुआ। बाल-सूर्य के तुल्य चमकीले और सुवर्ण-जाल से भूषित रथ पर चढ़कर वह कपि-श्रेष्ठ के ऊपर दौड़ा। वह रथ उसको तपोबल से प्राप्त हुआ था। उस पर पताका फहराती थी। उसकी ध्वजा रत्नों से भूषित थी। उस

अक्षयकुमार का युद्ध करने को जाना । [पृष्ठ ५३४

रथ में बड़े तेज आठ घोड़े जुते हुए थे। वह रथ देवों और दैत्यों से अजेय था और खूब चलता था। वह बिजली की भाँति चमकता और आकाश में भी उड़ सकता था। उसमें तरकश रक्खे थे। वह आठ खङ्गों से चारों ओर घिरा था। उसमें यथोचित स्थान पर शक्ति, तोमर और संग्राम की अन्य वस्तुएँ रक्खी थीं। वह सुवर्ण की डोरियों से कसा हुआ चन्द्र और सूर्य के सदृश चमक रहा था। ऐसे रथ पर सवार अक्षकुमार उस तोरण पर बैठे हुए कपिसिंह के पास आ पहुँचा। जाते समय वह घोड़े, हाथी और महारथ के शब्दों से आकाश और पृथ्वी को शब्दायमान करता गया। अक्ष की सिंह के तुल्य क्रूर दृष्टि थी। हनुमान्‌जी प्रलय-काल के अग्नि के तुल्य थे। राक्षसकुमार को देखने से उनके मन में आश्चर्य और आदर का भाव उदित हुआ। उन्हें अक्षकुमार बहुत आदर से देखने लगा। शत्रुओं पर हनुमान् के वेग और पराक्रम को, और अपने बल को विचारकर वह प्रलय के सूर्य की तरह बढ़ने लगा। कपि के पराक्रम की ओर दृष्टि करके और उनकी दुर्निवार्यता को सोचकर उसने संग्राम में स्थिरता प्राप्त कर बड़ी सावधानी से तीन पैने बाण चलाये; परन्तु उन बाणों की चोट से कपि को कुछ भी हिलते-डुलते न देख अक्षकुमार उनकी ओर देखने लगा। उस शीघ्र पराक्रमी के हाथ में धनुष-बाण था; और हनुमान् संग्राम के गर्व से भरे, श्रम को काबू में किये और शत्रुओं का पराजय करने योग्य थे। उन दोनों का अनुपम समागम देवों और दैत्यों के लिए भी भयंकर हुआ। उस समय सभी प्राणी चिल्लाने लगे। सूर्य की धूप धीमी पड़ गई। वायु का बहना बन्द हो गया। पर्वत काँप उठे। आकाश शब्दायमान हो गया और समुद्र खड़बड़ा उठा। वह वीर लक्ष्य देखने, बाण-सन्धान करने और उसके छोड़ने में चतुर था। उसने महाविषधर साँप के तुल्य तीन बाण कपि के मस्तक में मारे। उन बाणों के लगने से हनुमान् के मस्तक से रक्त बह निकला। क्रोध से उनके नेत्र तिरछे हो गये। उस समय कपि की ऐसी शोभा हुई जैसी उदय-काल में सूर्य की होती है। उनके मस्तक में छिदे बाण किरणों के तुल्य शोभा देने लगे। वह राक्षसराज का पुत्र विचित्र आयुधों और धनुष को लिए लड़ रहा था। उसको देखकर वानरराज के मन्त्रिप्रवर हनुमान् बढ़े और संग्राम के लिए हर्षित एवं उद्यत हुए। क्रोधयुक्त होकर वे अपने नेत्राग्नि से उस राक्षस को और उसकी सेना को भस्म करने लगे। महापर्वत पर जैसे मेघ बरसता है वैसे ही वह राक्षस हनुमान् पर लगातार बाणों की वृष्टि कर रहा था। कपि ने देखा कि यह राक्षस तो प्रचण्ड पराक्रमी है और बड़ी तेजी, बल, एवं पराक्रम से बाण चला रहा है। तब हनुमान् हर्ष से मेघ की नाईं गरजे। अक्ष को लड़कपन के कारण युद्ध में बड़ा अहङ्कार था। क्रोध से उसके नेत्र लाल-लाल हो गये थे। घास-फूस से ढँके कूप को जिस तरह हाथी नहीं पहचानता उसी तरह उसने यह नहीं जाना कि यह कपि काल है। बहुत बाणों की चोट सहकर हनुमान् गरजकर आकाश में उड़ चले। उस समय भुजाओं और जङ्घाओं के फैलाने से उनका रूप बड़ा भयङ्कर देख पड़ता था। हनुमान् को आकाश में चढ़ते देख अक्ष भी रथ सहित आकाश में उड़ा और कपि पर बाणों की इस तरह वृष्टि करने लगा जैसे पर्वत पर मेघ पत्थर बरसाता है। हनुमान् अपने पैंतरों से उसके बाणों को बचाते थे और बाणों के बीच-बीच वायु की तरह फिर रहे थे। इनका वेग मन के तुल्य था। जब हनुमान् ने देखा कि इसने तो मारे बाणों के आकाश को छा दिया है तब वे

चिन्ता करने लगे। उन्होंने उसे आदर की दृष्टि से देखा। इतने में उस राक्षस ने हनुमान् की छाती में इतने बाण मारे कि घाव हो गये। हनुमान्जी कार्य-विशेष के जानकार थे। वे अब गरजकर सोचने लगे कि संग्राम में क्या करना चाहिए। वे सोचने लगे कि बालसूर्य-तुल्य कान्तिमान् यह महाबली, बालक होने पर भी, वीर का काम कर रहा है। संग्राम के सब व्यवहारों को यह ऐसी खूबी से निबाह रहा है कि इसके मारने को मेरा जी नहीं चाहता। यह महात्मा वीर्य में महान्, संग्राम में सावधान और रणक्लेश को सहनेवाला है। निःसन्देह यह अपने कर्म-गुणों द्वारा नाग, यक्ष और मुनियों से पूजित है। देखो, पराक्रम और उत्साह से इसका मन बढ़ रहा है। यह सामने खड़ा मेरी ओर देख रहा है। यह शीघ्रता से युद्ध करता है। इसका पराक्रम तो देवों और दैत्यों के मन को कम्पित कर सकता है। यदि मैं इसकी उपेक्षा करूँ तो यह मुझे अवश्य पराजित करेगा, क्योंकि युद्ध में इसका पराक्रम बढ़ता देख पड़ता है। इसलिए इसका घात ही करना मुझे रुचता है; क्योंकि बढ़ता हुआ अग्नि छोड़ने के योग्य नहीं होता। वायुपुत्र ने इस प्रकार शत्रु के वेग की तर्कना करके अपने कर्म के योग का सन्धान किया। फिर वे बड़े वेग से उसका वध करने में तत्पर हुए। उसके घोड़े बड़ी सावधानी से रथ को खींच रहे थे और पैंतरों के बोझ को सहते थे। उन्हें हनुमान् ने उसी आकाश-मार्ग में थपेड़ों से मार डाला। घोड़ों के मरने से वह रथ निरवलम्ब हो चूर-चूर होकर आकाश से भूमि पर आ गिरा। तब तो अक्ष ने उसको छोड़ दिया। वह खड्ग और धनुष लेकर फिर आकाश में इस तरह जा पहुँचा जैसे तप के योग से उग्र वीर्यवान् ऋषि देह को छोड़ स्वर्ग में चले जाते हैं। अब वायुतुल्य पराक्रमी श्री हनुमान् ने आकाश में घूमते और युद्ध करते हुए उस राक्षस के दोनों पैरों को दृढ़ता से पकड़ लिया। गरुड़ जैसे महासर्प को पकड़कर झटकता है उसी प्रकार हजारों बार घुमाकर उसे हनुमान् ने भूमि पर वेग से पटक दिया। झकझोरे जाने से राक्षस की भुजाएँ, जङ्घाएँ, कटि और वक्षःस्थल सब उखड़-पखड़ गये। उसके सब अङ्गों से और मुँह से रक्त बह चला। हड्डियाँ और आँखें पिस गईं। शरीर के सब जोड़ उखड़ गये। बन्धन टूट गये। वह मरकर भूमि पर गिर पड़ा। पृथ्वी पर उसे पीड़ित करके रावण के लिए उन्होंने महाभय उत्पन्न कर दिया। उस समय तारामण्डल के निवासी, बड़े-बड़े ऋषि लोग, अनेक प्रकार के प्राणी, यक्ष, नाग और देवताओं सहित इन्द्र—सभी वहाँ आकर इकट्ठे हो गये। सभी बड़ा आश्चर्य करने और हनुमान् की ओर देखने लगे।

दोहा

एहि विधि अक्षकुमार कहँ, मारि वीर कपिराय
महाप्रलय के काल इव, तोरण बैठे जाय॥

——

## अड़तालीसवाँ सर्ग

### इन्द्रजित् द्वारा हनुमान् का बाँधा जाना

जब रावण ने सुना कि अक्षकुमार भी मारा गया तब वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। बहुत विचार करके उसने देव-तुल्य इन्द्रजित् को युद्ध की आज्ञा दी। उसने कहा—तुम अस्त्र जाननेवालों में श्रेष्ठ हो तथा देवों और दैत्यों को सताते हो। तुम्हारे युद्धकर्मों को इन्द्र आदि देवताओं ने देखा है। तुमने ब्रह्मा का

आराधन करके अस्त्र प्राप्त किया है। तुम्हारे अस्त्र के के बल के सामने इन्द्र सहित देवगण भी संग्राम में ठहर नहीं सके। तीनों लोकों में तुम्हारे ऐसा कोई नहीं जो संग्राम में श्रमरहित हो या भुज-पराक्रम से किंवा तपस्या से रक्षित हो; ऐसा भी कोई नहीं जो तुम्हारे सदृश देश और काल में प्रधान हो। ऐसे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ तुम्हीं हो और समर में तुम्हारे लिए कोई बात अशक्य नहीं है। मन्त्रणा करके राज-काज करने की तुममें शक्ति है। ऐसा कोई न होगा जो तुम्हारे बाहुबल और अस्त्रबल को न जानता हो। मेरे तुल्य तुम्हारा तपोबल, पराक्रम और युद्ध में अस्त्रबल भी है। संग्राम में तुम्हारे रहने से मुझे जीत होने के विषय में तनिक भी दुविधा नहीं। देखो, युद्ध में सब किङ्कर मारे गये; जम्बुमाली भी मर मिटा; मन्त्रियों के पाँच पुत्र और वे सेना-नायक भी न बचे। अच्छे समृद्ध घोड़े, हाथी, और रथों की सेना, महोदर और अक्षकुमार ये सब संग्राम में मारे गये। इनमें कुछ भी सार नहीं था; सार तो तुममें है। हे शत्रुनाशक, तुम इस भारी सेना का नाश देखो और कपि के प्रभाव तथा पराक्रम का विचार करो। फिर अपने बल और पराक्रम की ओर दृष्टि करके तुम अपने पौरुष के योग्य जल्दी करो। हे अस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, युद्ध में हनुमान् के समीप पहुँचकर तुम ऐसा करो जिससे शत्रु तो शान्त हो जाय, पर सेना का नाश न हो। अथवा हे धीर, सेना की भी जरूरत नहीं; क्योंकि प्रबल शत्रु को देखकर वह भाग जाती है। बड़ा भारी वज्र भी यहाँ कुछ काम न करेगा। कारण यह है कि यह वायु का पुत्र है और वायु की गति का कुछ प्रमाण नहीं। जो अग्नि के तुल्य है वह शस्त्रास्त्र से मारे जाने के योग्य नहीं। इसलिए इन बातों को भली भाँति विचारो और अपने कर्म की समता देख सावधान होकर अपने धनुष के दिव्य वीर्य को याद करो। ऐसे कर्म का आरम्भ करो जिसमें हानि न हो। तुम्हारे ऐसे प्रिय पुत्र को ऐसे संकट कार्य में भेजना ठीक नहीं है पर मैं करूँ ही क्या! यह तो राजा के धर्मवालों और क्षत्रियों का कर्म है। अनेक शास्त्रों में और संग्राम में कुशलता प्राप्त करनी चाहिए। रण में विजय की इच्छा रखनेवाले के लिए इन विषयों का ज्ञान अवश्य होना चाहिए।

पिता का यह वचन सुनकर देवप्रभाव मेघनाद, रावण की प्रदक्षिणा करके, बड़ी शीघ्रता से संग्राम के लिए चला। अपने इष्टगणों से प्रशंसा-वाक्यों को सुनता और युद्ध के लिए उत्साह करता हुआ वह संग्राम-भूमि में जा पहुँचा। उस समय वह राक्षसराज का बेटा ऐसा आगे बढ़ा जैसा पर्वकाल में समुद्र बढ़ता है। गरुड़ के तुल्य फुर्तीले और तीखे दाँतोंवाले चार साँप उसके रथ में जुते थे। उस पर इन्द्रतुल्य इन्द्रजित् सवार हुआ और जहाँ हनुमान् थे वहाँ गया। वीर हनुमान् इसके रथ के शब्द को और धनुष के टंकार को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। हनुमान् को देख वह राक्षस अपने तेज बाणों को निकालकर और धनुष को दृढ़ कर निकट पहुँचा। जिस समय वह धनुर्बाण लेकर लड़ने को चला उस समय दिशाएँ मलिन हो गईं। मृग भयंकर शब्द करने लगे। उस संग्राम को देखने के लिए नाग, यक्ष, महर्षि, तारामण्डल में घूमनेवाले सिद्ध लोग और अनेक प्रकार के पक्षी भी जोर-जोर से शब्द करते हुए आकाश-मण्डल को छाकर उपस्थित हुए।

इन्द्र की सी ध्वजा से युक्त रथ को आते देख कपि-वीर बड़े नाद से गरजे और बढ़े। इन्द्रजित् दिव्य रथ पर सवार था और हाथ में विचित्र धनुष लिये था। उसके

धनुष का शब्द बिजली के तुल्य प्रचण्ड था। उस धनुष के रौंदे को उसने बजाया। कपि और राक्षस दोनों ही तीक्ष्ण वेगवाले, महाबली, संग्राम में निडर तथा देवराज और दैत्यराज के तुल्य बद्धवैर थे। अब वे इकट्ठे हुए। अब उस महावीर के बाणवेगों को हनुमान् आकाश में पैंतरे बदलकर बचाने लगे। तब तो इन्द्रजित् ऐसे विशाल बाण चलाने लगा जिनकी नोकें तीखी थीं, जो अच्छे पङ्खों से भूषित, सुवर्णपुङ्ख और वज्र-समान वेगधारी थे। हनुमान् उसके रथ के शब्द को और मृदङ्ग, भेरी एवं नगाड़े के स्वर को तथा उसके धनुष के भयंकर नाद को सुनकर फिर आकाश में उड़े और बाणों के बीच-बीच में पैंतरा बदलते और उसके लक्ष्य को बचाते हुए घूमने लगे। वे थोड़ी देर के लिए बाणों के समीप आ जाते और फिर हट जाते थे। वे दोनों हाथ फैलाये हुए आकाश में उड़ते थे। वे दोनों ही संग्राम करने में बड़े पण्डित थे। वे ऐसा युद्ध कर रहे थे जो सब प्राणियों के लिए मनोहर था। हनुमान् का दोष न वह राक्षस पाता था और न हनुमान् को राक्षस का अन्तर मिलता था। इसलिए दोनों परस्पर असह्य पराक्रमी हो गये। इन्द्रजित् ने देखा कि ऐसे-ऐसे अमोघ बाणों को मैं चला रहा हूँ जो कभी निष्फल होने के योग्य न थे, परन्तु अब मेरा लक्ष्य व्यर्थ ही होता जाता है; इसलिए अब क्या करना चाहिए। इस प्रकार की चिन्ता करता और कपि की अवध्यता की ओर दृष्टि देता हुआ वह राक्षस सोचने लगा कि अब किस प्रकार से इसको थकाऊँ। ऐसी दृढ़ बुद्धि करके उसने कपि पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। कपि की अवध्यता देख मेघनाद ने उनको ब्रह्मास्त्र में बाँधा। उस समय ब्रह्मास्त्र के बन्धन में पड़कर हनुमान् चेष्टारहित हो भूमि पर गिर पड़े। कारण यह था कि जिस समय हनुमान् को जान पड़ा कि यह ब्रह्मास्त्र का बन्धन है और प्रभु के प्रभाव से मेरा थोड़ा ही वेग नष्ट हुआ है, सम्पूर्ण पराक्रम नहीं घटा है तब उन्होंने अपने ऊपर पितामह का अनुग्रह माना। वह अस्त्र ब्रह्मा के मन्त्रों से अभिमन्त्रित था इसलिए हनुमान् ने पितामह के वरदान को सोचा और कहा कि लोकगुरु के प्रभाव से इस बन्धन से छूटने की मुझे शक्ति नहीं है, अतएव इस अस्त्रबन्ध का मुझे अनुसरण करना ही चाहिए। यह सोच-विचारकर वे उसमें बँध गये। उन्होंने सोचा कि यद्यपि मैं अस्त्र से बँधा हूँ तो भी मुझे कुछ डर नहीं है क्योंकि पितामह, इन्द्र और वायु मेरी रक्षा कर रहे हैं। इन राक्षसों द्वारा पकड़े जाने से मुझे एक प्रकार का लाभ भी है कि राक्षसराज के साथ मेरी बातचीत होगी। इसलिए ये लोग मुझे पकड़ लें। अपने हित की बात विचारकर समीक्ष्यकारी श्री हनुमान् उन राक्षसों की डपट और गालियाँ सहते हुए ऊँचे स्वर से शब्द करने लगे। उन राक्षसों ने इनको चेष्टारहित देख सन के रस्सों और वृक्ष की छाल से कसकर बाँध लिया। यह सब बन्धन और शत्रुओं के मुख से अपनी निन्दा हनुमान् सहते जाते थे और सोचते थे कि कदाचित् राजा कुतूहल से मुझे देखना चाहेगा तो बहुत अच्छी बात होगी।

जिस समय वे डोरियों से बाँधे गये उसी समय अस्त्रबन्ध से छूट गये क्योंकि दूसरे बन्धन को अस्त्र बन्ध सहन नहीं करता। इन्द्रजित् ने देखा कि राक्षसों ने वानर को रस्सों से बाँध लिया तो अब यह ब्रह्मास्त्र से छूट गया, परन्तु यह बड़ा आश्चर्य है कि अस्त्रबन्ध का यह अब तक अनुसरण करता है। फिर कहने लगा कि नहीं, इन राक्षसों ने इस अस्त्रबन्धन को व्यर्थ कर दिया और मन्त्र की गति का विचार नहीं किया। अब मैं इसको फिर मन्त्र से बाँधना चाहूँ तो नहीं हो सकता।

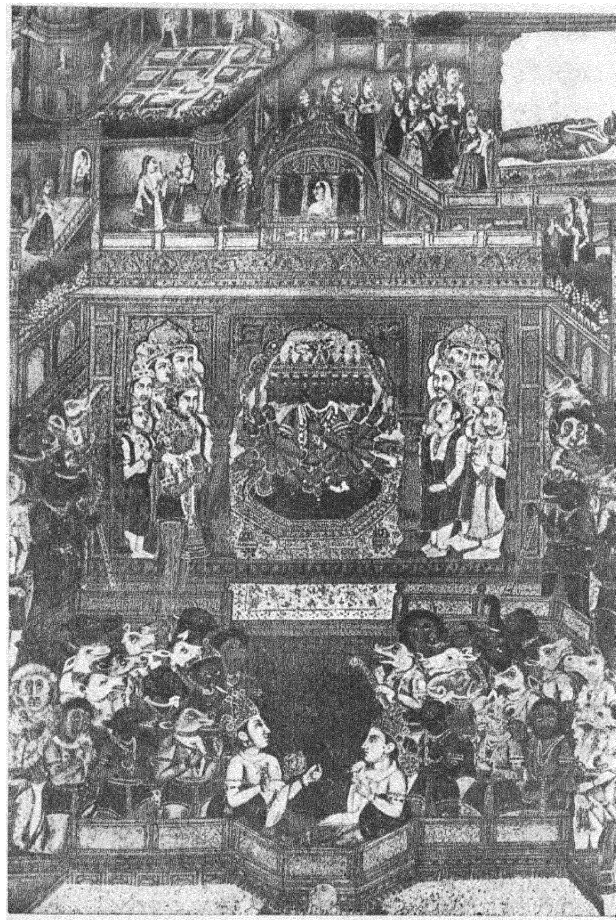

हनुमान्‌जी रावण की सभा में । [पृष्ठ ५३९

अस्त्र के नष्ट होने से दूसरा अस्त्रबन्धन हो नहीं सकता। इसलिए हम लोग फिर इस वानर की विपत्ति में पड़े। अस्त्र से छूटने पर भी हनुमान् सचेत नहीं होते थे और राक्षस लोग इनको खींच रहे और सता रहे थे। अब वे राक्षस अपनी कठोर मुष्टिकाओं से हनुमान् को मारते-पीटते रावण के पास खींच ले चले। इन्द्रजित् ने हनुमान् को राजा के समीप उपस्थित कर दिया। मत्त गजेन्द्र की नाईं हनुमान् को बड़े-बड़े राक्षस लोग वहाँ ले जाकर रावण को दिखलाने लगे। अब वे राक्षस-वीर यह बातचीत करने लगे कि यह कौन है, किसका है, कहाँ से और किस कार्य के लिए यहाँ आया है? इसका आश्रय क्या है? वहाँ के अन्यान्य राक्षस क्रोध करके बोले कि इसको मार डालो, जला दो अथवा इसको भक्षण कर लो। इन बातों को सुनते हुए श्री हनुमान् ने राजा के पास जाकर उसके चरणों के समीप सेवकों को देखा। वे बड़े-बड़े प्रधान थे। महारत्नों से भूषित उसके भवन को भी उन्होंने देखा। हनुमान् को विकराल राक्षस इधर-उधर खींच रहे थे। उसे रावण ने भी देखा। तेज, बल से युक्त और तप रहे सूर्य की नाईं प्रकाशमान् राक्षसाधिपति को हनुमान् ने देखा। उनको देखते ही रावण ने टेढ़ी टेढ़ी लाल-लाल आँखें करके—कुल और शील में वृद्ध—अपने मुख्य मन्त्रियों को वानर का वृत्तान्त जानने के लिए आज्ञा दी। तब उन्होंने हनुमान् से कार्य, मूल और उसका प्रयोजन पूछा। उन्होंने उत्तर दिया—मैं सुग्रीव का दूत हूँ और उन्हीं के यहाँ से आया हूँ।

---

# उनचासवाँ सर्ग

## कपि का रावण को देखना

इन्द्रजित् के उस बन्धनरूप कर्म से हनुमान् विस्मित तो थे ही परन्तु उस समय क्रोध से लाल नेत्र करके रावण की ओर देखने लगे। वह बड़े मूल्यवाला, सुवर्णरचित और मुक्ताजाल से वेष्टित मुकुट पहने था। वह ऐसे चित्र-विचित्र भूषण पहने था जो महाकांतिमान्, हीरों से जटित और महामणियों से रचित थे। वह अति उत्तम पट्टवस्त्र पहने और लाल चन्दन की खौर लगाये था। उसके भयंकर लाल नेत्र देखने के योग्य थे। उसके प्रदीप्त, विशाल दाँत तीखे और ओठ लम्बे थे। उसके दश सिर थे। वह नाना सर्पों से युक्त शिखरोंवाले मन्दराचल सा लगता था। वह नीले अञ्जन के ढेर के सदृश था। वक्षःस्थल के हार से और पूर्ण चन्द्र के तुल्य मुख से वह ऐसा लगता था मानो बाल-सूर्य सहित मेघ हो। उसकी भुजाएँ विजायठ से भूषित, चन्दन से सुगंधित और पाँच मुखवाले भयंकर साँपों की नाईं थीं। वह स्फटिक के आसन पर बैठा था जो विशाल रत्नों से विचित्र था। उस पर उत्तम बिछौने बिछे थे। गहने पहने स्त्रियाँ हाथ में चमर लिए चारों ओर से उसकी सेवा कर रही थीं। मन्त्रतत्त्व के जाननेवाले दुर्द्धर, प्रहस्त, महापार्श्व और निकुम्भ, इन चारों मन्त्री-राक्षसों से सेवित वह ऐसा लगता था जैसे चार समुद्रों से घिरा हुआ सम्पूर्ण लोक हो। उसे अपने बल का अहङ्कार था। तत्वज्ञ शुभदर्शी सचिव उसको आश्वासन देते थे कि जैसे कि देवता लोग इन्द्र का अनुमोदन करते हैं। उस समय रावण की ऐसी शोभा हो रही थी जैसी मेरु-शिखर पर जल से पूर्ण मेघ की होती है। बड़े-बड़े बली राक्षस यद्यपि उस समय

हनुमान् को पीड़ा दे रहे थे तथापि उनकी दृष्टि विस्मयपूर्वक उस राक्षसेन्द्र की ही ओर थी। उसके तेज से वे मोहित से हो गये थे। उस घड़ी हनुमान् मन में यही कहते थे कि क्या ही रूप है! कैसा धैर्य्य और किस प्रकार का पराक्रम है! वाह री कांति! राक्षसराज की सर्वलक्षण सम्पत्ति कैसी अद्भुत है! अहा! यदि अधर्म बलवान् न होता तो यह राक्षसराज इन्द्रसहित देवताओं का भी रक्षक हो सकता था। देखो, इसके क्रूर, घातक और लोकनिन्दित कर्मों से सब दैत्य, दानव और देवता इससे डरते हैं। यह पुरुष अपने क्रोध से सम्पूर्ण जगत् को एक समुद्रमय करने का उत्साह रखता है।

रावण का ऐसा प्रभाव देखकर हनुमान् अपने चित्त में बहुत कुछ सोचते और रावण की ओर देखते थे।

---

## पचासवाँ सर्ग

### रावण का हनुमान् से पूछना और उनका उत्तर देना

हनुमान् को अपने आगे देख रावण क्रोध से लाल आँखें करके मन में शंका करने और सोचने लगा कि क्या ये साक्षात् भगवान् नन्दी तो यहाँ नहीं आये, जिन्होंने कैलास पर—हँसने के कारण—मुझे शाप दिया था! मैं जानता हूँ कि वही वानर मूर्त्ति धरकर यहाँ आये हैं अथवा यह बाणासुर हो। इस प्रकार शंका करता और क्रोध में भरा हुआ वह पास में बैठे प्रहस्त मन्त्री से बोला—इस दुरात्मा से पूछो कि कहाँ से और किस-लिए आया है? वन के नाश करने में इसे क्या मिला? राक्षसों के मारने से इसका क्या लाभ हुआ? मेरी अप्रधृष्य पुरी में यह किस प्रयोजन से आया और मेरे राक्षसों से युद्ध करने का क्या काम था?

प्रहस्त मन्त्री ने कपि से पूछा—हे वानर, अपने चित्त को सावधान करो। डरो मत। ठीक-ठीक कहो कि तुम्हें इन्द्र ने तो यहाँ नहीं भेजा है? यथार्थ कहो, भय छोड़ दो; तुम छुड़वा दिये जाओगे। यदि तुम कुबेर के, यम के या वरुण के दूत हो और वानर के रूप में यहाँ आये हो तो सच कह दो; अथवा विजय की इच्छा रखनेवाले भगवान् विष्णु ने तुम्हें भेजा है? क्योंकि तुम्हारा रूप ही वानर का है, तेज वानर का नहीं है। भाई वानर! यदि तुम सच-सच कह दोगे तो अभी छुड़वा दिये जाओगे और यदि झूठ बोलोगे तो तुम्हारा जीना दुर्लभ है; अथवा किसी और कारण से तुम रावण की पुरी में आये हो तो उसे प्रकट करो।

यह सुनकर हनुमान्जी ने रावण से कहा—न तो मैं इन्द्र का भेजा हुआ हूँ, और न यम या वरुण का दूत हूँ; न कुबेर से मेरी मैत्री है और न मुझे विष्णु ने भेजा है। मैं ठीक वानर-जाति हूँ और राक्षसराज के दर्शन के लिए ही मैंने वाटिका उजाड़ी है। बड़े-बड़े बलवान् राक्षस युद्ध की इच्छा से मेरे पास आये, तब मैं क्या करता? अपने शरीर की रक्षा के लिए मैं उनसे लड़ा। अस्त्र-पाशों से मुझे बाँधने में न तो देव समर्थ हैं और न दैत्य ही; क्योंकि पितामह ने मुझे भी यह अतुल बल-रूप वर दिया है, परन्तु केवल राजा के देखने के लिए मैं इस अस्त्र-फाँस में बँध गया। जब मैं अस्त्र-बन्धन से छूट गया तब भी केवल राजा के देखने के लिए ही अपने को बँधा सा बनाये रहा। इन राक्षसों ने यहाँ लाकर मुझे खड़ा कर दिया है। मैं राम के किसी कार्य के लिए तुम्हारे पास आया हूँ। इसलिए हे

प्रभो ! आप मुझे महापराक्रमी श्रीराघव का दूत जानिए और मैं जो हित-वचन कहता हूँ उसे सुनिए।

——

## ५१वाँ सर्ग

### हनुमान् का रावण को उपदेश करना

हनुमान् बोले—हे राजन्, मैं सुग्रीव का सन्देश लेकर तुम्हारे पास आया हूँ। हे राक्षसेश्वर, वानरराज ने तुम्हारा कुशल-मङ्गल पूछा है। अब तुम अपने भाई महात्मा सुग्रीव का सन्देश सुनो। वह सन्देश धर्म और अर्थ से युक्त और इस लोक तथा परलोक के लिए हितकारी है।

उन्होंने कहा है—भूमण्डल के राजा श्रीमहाराज दशरथजी पिता की नाईं लोगों के हितकारी, और इन्द्र के समान तेजस्वी थे। उनके प्रिय-पात्र ज्येष्ठ पुत्र, उन्हीं की आज्ञा से, घर से निकलकर अपने छोटे भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता के साथ दण्डकारण्य में आये उनका नाम श्री रामचन्द्र है। वे धर्म-मार्ग पर स्थित हैं। उनकी भार्या सीता विदेहराज जनक की पुत्री है। वह जनस्थान से अदृश्य हो गई। उसको खोजते-खोजते लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र ऋष्यमूक पर्वत पर आये और सुग्रीव से मिले। सुग्रीव ने रामचन्द्र से सीता के खोजने की प्रतिज्ञा की और राम ने सुग्रीव को वानरों का राज्य दिलाने की। उन्होंने संग्राम में बाली को मारकर सुग्रीव को वानरों का राजा बना दिया। हे लंकेश, तुम तो जानते ही होगे कि बाली कैसा बलवान् था, सो उसको उन्होंने एक ही बाण से मार गिराया। अब सुग्रीव सीता के खोजने में व्यग्र हो रहे हैं क्योंकि वे सत्यप्रतिज्ञ हैं। उन्होंने चारों दिशाओं में वानरों को भेजा है। इस समय सहस्र शत लक्ष वानर सीता की खोज में लगे हुए हैं। वे उसको दिशाओं में ही नहीं खोजते, किन्तु पाताल और आकाश को भी उन्होंने छान डाला है। उनमें बहुत से गरुड़ के सदृश और बहुत से वायु के तुल्य बे-रोक चलनेवाले और शीघ्र गमनशील हैं। मैं वायु का औरस पुत्र हूँ, हनुमान् मेरा नाम है। सीता की खोज में इस सौ योजन चौड़े समुद्र को लाँघकर मैं तुम्हें देखने के लिए यहाँ आया हूँ। मैंने घूमते-घूमते तुम्हारे घर में जनकपुत्री को देखा है। हे महाप्राज्ञ, तुम धर्म के तात्पर्य को जानते हो। तुमने तपोबल से ऐश्वर्य प्राप्त किया है। दूसरे की स्त्री को अपने वश में कर रखना तुम्हें उचित नहीं। तुम्हारे ऐसे बुद्धिमान् लोग इस प्रकार के कर्मों में आसक्त नहीं होते जो कि धर्मविरुद्ध, अनर्थकारी और मूल के नाशक हैं। भला कहो तो सही कि देवताओं या दैत्यों में ऐसा कौन पुरुष है जो लक्ष्मण के चलाये और रामचन्द्र के कोप से छोड़े बाणों के सामने खड़ा भी हो सके ? हे राजन्, तीनों लोकों में ऐसा कोई नहीं जो रामचन्द्र का विरोध करके सुख पावे। इसलिए हे नरशार्दूल, तीनों कालों में हितकारी और धर्मार्थ के अनुकूल मेरे इस वाक्य को मानो और श्रीरामचन्द्र को जानकी लौटा दो। मैंने तो सीता को देख ही लिया। यही मुझे दुर्लभ पदार्थ का लाभ हुआ। अब इसके अनन्तर जो करना है, उसको श्रीराघव जानें। मैंने सीता को यहाँ शोक से ग्रस्त देखा। उसे तुमने अपने घर में रोक रक्खा है। तुम नहीं जानते कि यह पाँच मुखवाली नागिन है। दैत्यों और देवों में ऐसा कोई नहीं जो इसको पचा सके। विषमिश्रित अन्न पचाने का किसी में सामर्थ्य नहीं है। हे राजन्! तुमने बड़ी तपस्या से जिस ऐश्वर्य और बहुकाल-व्यापी जीवन

को प्राप्त कर रक्खा है उसका नाश करना तुमको उचित नहीं। जो तुम यह सोचते हो कि मैं देवताओं और दैत्यों से अवध्य हूँ तो उसमें भी एक बड़ा कारण है। देखो, सुग्रीव न तो देव हैं, न यक्ष और न राक्षस। वे वानरों के राजा वानर है। उसी प्रकार रामचन्द्र भी मनुष्य हैं। सो इनसे तुम अपने प्राणों का बचाव किस प्रकार कर सकते हो? जो तुम यह कहो कि तपोबल से मैं सर्वत्र जय ही पाऊँगा तो इस धोखे में न रहना; क्योंकि बलवान् अधर्म के फल से जब पुरुष संयुक्त होना चाहता है तब पूर्वोपार्जित धर्म उसकी रक्षा नहीं कर सकते; और दुर्बलता के कारण अपने फल से उसको संयुक्त नहीं कर सकते। बलवत्ता से अधर्म का नाश करनेवाला धर्म अपने ही फल से पुरुष को संयुक्त करता है अर्थात् तुम्हारे धर्म से अधर्म बलवान् है। हे राजन्, धर्म का फल तो तुम्हें मिल गया है, परन्तु इस अधर्म का फल भी तुमको शीघ्र ही मिलेगा। अब तुम जनस्थान के नाश की ओर, बाली के बध की ओर और राम-सुग्रीव की मैत्री की ओर दृष्टि करके अपना हित सोचो। देखो, मैं अकेला चाहूँ तो तुम्हारी लङ्का का और सेना का नाश कर डालूँ; पर मेरे स्वामी की इस विषय में आज्ञा नहीं है। राम ने वानरों के सामने यह प्रतिज्ञा की है कि "जिन्होंने सीता का प्रधर्षण किया है उन वैरियों को मैं उच्छिन्न करूँगा।" फिर देखिए, यदि साक्षात् इन्द्र भी रामचन्द्र का अपकार करें तो वे भी किसी प्रकार सुखी नहीं रह सकते, तो फिर तुम्हारे ऐसों की क्या बात कहनी है! हे राजन्, जिसको तुम सीता जानते हो और जो तुम्हारे घर में है उसको काल-रात्रि समझो। वह तुम्हारी लङ्का का नाश कर डालेगी। हे राक्षसराज, इस सीतारूप कालपाश को अपने हाथ से अपने गले में फाँस लेना व्यर्थ और अनर्थकारक है। इसलिए अपने कुशल का चिन्तन करो। यह तुम निश्चित समझो कि अटारियों और गलियों सहित यह लङ्का सीता के तेज से दग्ध और राम के कोप से प्रज्वलित होकर जल जायगी। अपने मित्र, मन्त्री, जाति-भाई, स्त्री-पुत्र और सब सुखों को तुम चौपट मत करो। हे राक्षसराजेन्द्र मैं तो राम का दास और दूत वानर हूँ; परन्तु जो मैं कहता हूँ उसको सच समझो। चराचर प्राणियों सहित इन लोकों का संहार करके फिर नई सृष्टि रचने की शक्ति रामचन्द्र में हैं। फिर देव, दैत्य, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, नाग, विद्याधर, साँप, गन्धर्व, मृग, सिद्ध, किन्नर और पक्षी—इनमें, और सब स्थानों तथा सब कालों में ऐसा कोई नहीं जो विष्णु-तुल्य पराक्रमी श्रीरामचन्द्र का युद्ध में सामना कर सके। सर्वलोकेश्वर राजसिंह श्रीरामचन्द्र का यह अप्रिय कर्म करके तुम्हारा जीवित बचना दुर्लभ है। हे राक्षसेन्द्र! देव, दैत्य, गंधर्व विद्याधर, नाग और यक्ष त्रिलोकी नाथ श्रीराघव के सामने युद्ध में खड़े रहने को भी समर्थ नहीं हैं। चाहे स्वयम्भू ब्रह्मा चतुर्मुख हों, चाहे रुद्र त्रिनेत्र और त्रिपुरासुर के मारनेवाले हों, और चाहे देवताओं के राजा इन्द्र हों, परन्तु संग्राम में रामचन्द्र के सामने वे खड़े नहीं रह सकते।

कपि के वचन अत्यन्त सुन्दर, दीनता-रहित, अनुपम और अप्रिय थे। इन्हें सुनकर रावण ने क्रोध से अपने नेत्र लाल-लाल करके कपि को मारने की आज्ञा दी।

—

# ५२वाँ सर्ग

## विभीषण का रावण को कपिवध करने से रोकना

रावण तो क्रुद्ध होकर कपि के बध की आज्ञा दे ही चुका था पर इस काम में विभीषण की सम्मति न थी; क्योंकि हनुमान् ने कई बार अपने को दूत बतलाया था। जब विभीषण ने देखा कि राक्षस-राज क्रुद्ध होकर कपि के बध की आज्ञा दे चुका तब वह सोच-विचार करने लगा। थोड़ी देर तक सोच-विचार-कर वह अपने बड़े भाई रावण से हित-वचन बोला—हे राक्षसेन्द्र क्षमा कीजिए और क्रोध को दूर कीजिए। प्रसन्न होकर मेरे वचन को सुनिए कि जो सज्जन राजा लोग पूर्वापर में ज्ञानवान् होते हैं वे दूत की हत्या नहीं कराते। राजन्, दूत के रूप से आये हुए इस कपि का घात करना तुम्हारे लिए धर्म से विरुद्ध, लोकाचार से निन्दित और अयोग्य कर्म है। देखो, तुम धर्मज्ञ, कृतज्ञ, राजधर्मों में पारङ्गत और पूर्वापर के विचार में कुशल हो। प्राणियों के विषय में जो परमार्थ है उसको तुम जानते हो। यदि तुम्हारे सदृश चतुर लोग क्रोधवश कोई भूल कर बैठें तो शास्त्र में पाण्डित्य प्राप्त करना कोरा श्रम करना ही ठहरा। इसलिए, पहले तुम योग्या-योग्य का विचार कर लो फिर दूत को दण्ड देना।

विभीषण का वचन सुनकर क्रोध से मूर्च्छित रावण बोला—हे शत्रुनाशन, पापियों का बध करने में पाप नहीं है, अतएव इस पापी वानर का मैं बध करूँगा। विभीषण बुद्धिमानों में श्रेष्ठ था। उसने रावण की वह बात सुनी जो अधर्म की जड़, बहुत दोषों से भरी और असज्जनों से सेवित थी। उसे सुनकर उसने कहा—हे लंकेश्वर, तुम प्रसन्न हो और धर्मार्थयुक्त मेरे वचन सुनो। सन्तों का कहना है कि किसी स्थान में अपने स्वामी का काम करते हुए दूत का घात करना उचित नहीं। माना कि शत्रु बड़ा भारी है और अत्यन्त अपराधी है तथापि साधु लोग दूत का बध करना उचित नहीं समझते, क्योंकि दूत के प्राण न लेकर उसे दूसरी तरह का दण्ड दिया जा सकता है; जैसे अंग-भंग कर देना, कोड़े मारना, सिर मुँड़ा देना, अथवा उसके शरीर के किसी चिह्न का नाश कर देना। दूतों के लिए यही दण्ड कहे गये हैं, परन्तु दूत का बध मैंने नहीं सुना। तुम्हारी बुद्धि धर्मार्थ से शिक्षित और कार्यार्थ पूर्वापर के विचार से निश्चित है, फिर भी तुम क्रोध के वश में हो रहे हो! देखो, पराक्रमी लोग क्रोध नहीं करते। हे वीर! धर्मोपदेश में, लोकाचार में और शास्त्रों का विचार करने में तुम्हारे तुल्य कौन है। दैत्यों, दानवों और देवों के बीच इस घड़ी इन विषयों में एक तुम्हीं उत्तम हो। जो देव और असुर पराक्रमी, उत्साही और शूर हैं उनके लिए तुम दुर्जय हो। उनको तुमने अनेक बार जीता है। राजन् तुम देवों और दैत्यों के शत्रु तथा शूर-वीर हो। कोई मन से भी तुम्हारे प्रतिकूल कार्य नहीं कर सकता; जिसने किया भी वह अपने प्राणों से गया। इस कपि का घात करने से मुझे कोई फल भी नहीं देख पड़ता। जिसने इसको भेजा है उसी को वह दण्ड दो। यह साधु हो या असाधु, परन्तु भेजा तो इसे दूसरों ने है और उन्हीं का सन्देश यह तुमसे कहता है; इस-लिए यह पराधीन दूत मारे जाने योग्य नहीं। और भी एक बात है; यदि तुम इसको मार डालोगे तो इसके तुल्य आकाशचारी मुझे दूसरा नहीं देख पड़ता। इस-लिए हे शत्रुनाशक, इसको मारने का प्रयत्न न करो; तुम तो देवताओं पर चढ़ाई करने का प्रयत्न करो। यदि यह दूत नष्ट कर दिया जायगा तो फिर ऐसा दूसरा न

मिलेगा जो तुम्हारे विरोधी उन दुर्विनीत राजपुत्रों को लड़ने के लिए उत्साह दे। हे राक्षस-मनोनन्दन! इन पराक्रमी और उत्साह में दत्तचित्त राक्षसों के मन को तोड़ देना तुमको उचित नहीं; क्योंकि ये योद्धा लोग हितैषी, शूर, सावधान, कुलीन, महागुणी और शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ हैं। गणना में भी ये करोड़ों हैं। इसलिए अब मेरी समझ में यही आता है कि तुम्हारी सेना का कोई एक भाग वहाँ जाय और उन दोनों मूढ़ राजपुत्रों को पकड़ लावे। इससे तुम्हारा प्रभाव उनको विदित हो जायगा।

अपने छोटे भाई विभीषण की यह सलाह राक्षस-राज ने मान ली; क्योंकि जो-जो बातें उसने कहीं वे सब उत्तम और मानने के योग्य थीं।

---

## ५३वाँ सर्ग

### रावण का कपि की पूँछ जलाने की आज्ञा देना

विभीषण के वचन सुनकर रावण बोला—तुम्हारा कहना ठीक है; दूत का घात करना अवश्य निन्दित है। परन्तु बध के अतिरिक्त अन्य कोई दण्ड इसको अवश्य देना चाहिए। कपियों की पूँछ उनका बड़ा प्यारा भूषण है। यह जला दी जाय और जली पूँछ लिये यह वहाँ जाय। इसके मित्र और ज्ञाति-बान्धव आदि इसको अङ्ग-भङ्ग से दीन और कृश देखें। अब रावण ने आज्ञा दी कि इस वानर की पूँछ में आग लगा दो और पूँछ जब जलने लगे तब इसको सारे नगर में घुमाओ। इस पर वे बड़े क्रूर राक्षस पुराने कपड़े ला-लाकर कपि की पूँछ में लपेटने लगे। उस समय ज्यों-ज्यों इनकी पूँछ में कपड़े लपेटे जाते थे त्यों-त्यों ये बढ़ते जाते थे जैसे कि सूखे ईंधन के कारण वन में आग बढ़ती है। अब किसी प्रकार कपड़ा लपेटकर और उसको तेल में भिगोकर राक्षसों ने आग लगा दी। हनुमान् उस समय रोष और अमर्ष से भर गये थे। उनका मुख बालसूर्य की तरह शोभता था। उन्होंने वह जलती हुई पूँछ उन राक्षसों को मारी। अब बहुत से राक्षसों ने कपि को घेर लिया। लङ्कानिवासी स्त्री, बाल, वृद्ध सभी प्रसन्न हुए। उस समय बँधे-बँधे हनुमान् ने सोचा कि बन्धन में रहने पर भी मेरा ये राक्षस कुछ नहीं कर सकते; नहीं तो मैं इन बन्धनों को काटकर और कूदकर इन सबको मारता। मैं रामचन्द्रजी के कार्य के लिए यहाँ घूम रहा हूँ, सो मुझे जो इन्होंने बाँध लिया तो क्या हर्ज है; इन्होंने बदला तो नहीं लिया। मैं तो अकेला ही इन सबको मारने में समर्थ हूँ। परन्तु रामचन्द्र की प्रसन्नता के लिए मैं इस प्रकार के अनादर को सहूँगा। यह अच्छा होगा कि ये लोग मुझे लङ्का में घुमावें, क्योंकि मैं रात को इसमें घूमा सही, पर किला भली भाँति देखने को नहीं मिला और प्रातःकाल मुझे लङ्का देखनी ही थी। ये मुझे बाँधें, कोई चिन्ता नहीं। पूँछ जलाकर जो मुझे पीड़ा दे रहे हैं, उससे भी मेरे मन को खेद नहीं होता। महाबलवान् हनुमान् अपने आकार को छिपाये हुए थे। उन्हें राक्षस लोग बस्ती में घुमाते और शङ्ख-नगाड़ा बजाते जाते थे। साथ ही साथ लोगों को वे उस वानर का अपराध भी सुनाते जाते थे। हनुमान् भी सुखपूर्वक घूमते थे और विचित्र विमानों, अटारियों, गुप्त स्थानों और अनेक प्रकार के चौतरों, छोटी-छोटी गलियों, फाटकों और अनेक

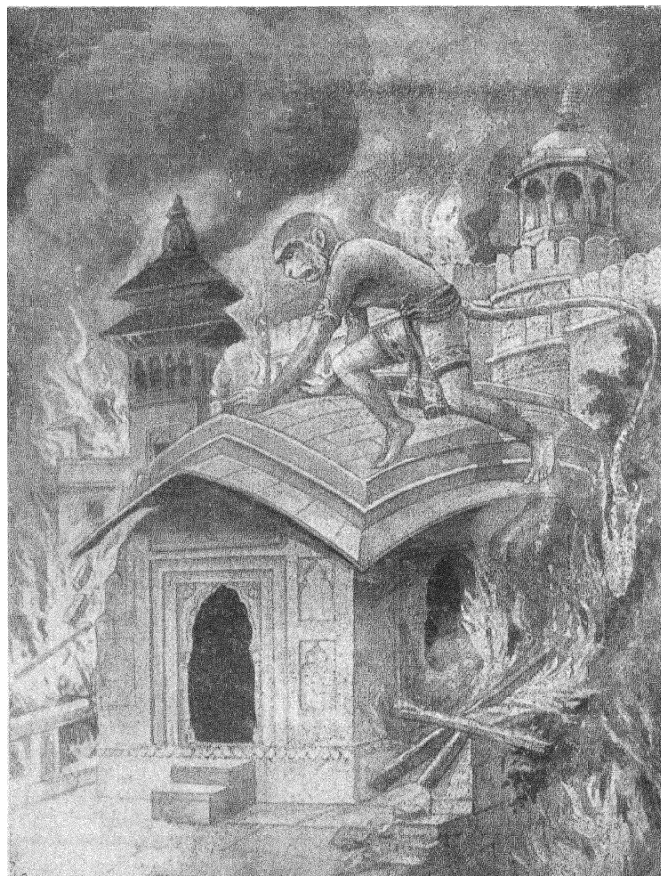

लंका-दहन। [पृष्ठ ५४५

प्रकार के घरों को देखते चले जाते थे। राक्षसों ने सर्वत्र घोषित कर दिया कि यह 'चर' है।

जो राक्षसियाँ सीता को घेरे बैठी थीं वे कहने लगीं—हे देवि सीते, जो लाल मुँहवाला वानर तुमसे बातचीत कर गया था वह नगरी में घुमाया जाता है। उसकी पूँछ में आग लगा दी गई है। यह कठोर बात सीता के लिए अप्रिय और अपने हरण के तुल्य थी। इसे सुनकर वे अत्यन्त शोक-सन्तप्त हुईं और अग्नि का ध्यान कर कपि के लिए मङ्गल-चिन्तन करने लगीं। उन्होंने बड़ी शुद्धता से अग्नि की स्तुति करना आरम्भ किया—हे अग्ने, यदि मैंने पति की शुश्रूषा की हो, यदि मैंने कुछ तपस्या की हो और यदि मैं पतिव्रता हूँ तो हनुमान् के लिए तू शीतल हो जा। पहले जो आग बड़ी तेज ज्वाला फेंक रही थी उसकी, इस स्तुति को सुनने से, प्रदक्षिणा-ज्वाला हो गई। इस तरह वह सीता के प्रति हनुमान् का मानो मङ्गल जताने लगी। इतने में हनुमान् के पिता वायु अत्यन्त शीतल होकर बहने लगे जिसमें सीतादेवी जान लें कि हनुमान् को कुछ दुःख नहीं होता। कपि की पूँछ तो धायँ-धायँ करके जल रही थी परन्तु उनको कुछ भी क्लेश न होता था। उन्होंने मन में कहा कि चारों ओर से ऐसी प्रज्वलित होने पर भी आग मुझे जलाती क्यों नहीं। ज्वाला तो बड़ी निकल रही है परन्तु मुझे पीड़ा नहीं देती। मेरी पूँछ के अग्रभाग में बड़ी ठण्डक जान पड़ती है। इससे मुझे निश्चय होता है कि यह रामचन्द्र का प्रभाव है। देखो, समुद्र लाँघते समय राम के प्रभाव से मैंने समुद्र में पर्वत देखा था। रामचन्द्र के विषय में यदि समुद्र का और मैनाक का इस प्रकार का आदर है तो फिर अग्नि क्यों न करेगा! मुझे निश्चय हुआ कि सीता की दयालुता, रामचन्द्र का तेज और मेरे पिता की मैत्री इसमें कारण है। फिर कपि ने सोचा कि इन अधम राक्षसों के द्वारा मेरे ऐसे पराक्रमियों का बँधा रहना अच्छा नहीं लगता। यदि मुझमें पराक्रम है तो अवश्य इसका बदला लेना चाहिए। यह सोचकर हनुमान् ने उन बन्धनों को काट डाला। वे कूदकर गरजने लगे। वहाँ पास ही पर्वत की चोटी की नाईं ऊँचा नगर का फाटक था। वहाँ राक्षसों की भीड़भाड़ न थी। पर्वताकार होकर वे उस पर चढ़ गये; फिर क्षणमात्र में बहुत ही छोटा रूप बनाकर उन्होंने अपने सब बन्धनों को काट डाला। वे फिर पर्वताकार हो गये। अब वे इधर-उधर शस्त्र खोजने लगे तो उसी द्वार में लोहे का बड़ा सा दृढ़ परिघ देख पड़ा। उसी को लेकर उन्होंने उन रक्षकों को मार गिराया। उन सबको मारकर हनुमान् फिर लंका की ओर देखने लगे। उस समय भी पूँछ में अग्नि की महा ज्वाला उठ रही थी। उसके द्वारा, किरणों से प्रकाश करते सूर्य की नाईं, उनकी छवि देख पड़ती थी।

---

## ५४वाँ सर्ग

### लङ्का-दाह

अब हनुमान् लंका की ओर देखने और शेष कार्य को सोचने लगे। उनके मन में उत्तरोत्तर उत्साह बढ़ता ही जाता था। वे विचार करने लगे कि अब क्या करूँ जिससे इन राक्षसों के मन में सन्ताप हो। मैंने वन का नाश किया, चुने हुए राक्षसों को मारा और सेना के एक भाग को भी ध्वंस कर दिया; परन्तु अब दुर्ग का नाश करना और रह गया है। सो दुर्ग के नष्ट होने से मेरा काम पूरा हो जायगा। तभी

समुद्र लाँघने का परिश्रम सफल होगा। इसका नाश करने के लिए बड़े प्रयत्न की भी जरूरत नहीं। थोड़े ही प्रयत्न से यह नष्ट हो जायगा तब मेरा परिश्रम सफल होगा। मेरी पूँछ में जो यह आग प्रज्वलित हो रही है सो इसको भी तो तृप्त करना चाहिए। अतएव इन उत्तम घरों को भस्म करके मैं इसको तृप्त करता हूँ।

यह सोच-विचारकर, बिजली-सहित मेघ की नाईं वे जलती हुई पूँछ लिये घरों की अटारियों पर घूमने लगे। राक्षसों के एक घर से दूसरे घर पर और दूसरे से तीसरे पर जा-जाकर वे चढ़ने और निर्भय होकर वहाँ के बाग इत्यादि देखने लगे। वायु के तुल्य वेगवान हनुमान् प्रहस्त के घर पर चढ़ गये। वहाँ आग लगाकर वे महापार्श्व की अटारी पर कूद गये। वहाँ भी कालानलज्वाला के तुल्य आग लगाकर उन्होंने वज्रदंष्ट्र के घर को फूँका। इसी प्रकार शुक, सारण, इन्द्रजित्, जम्बुमाली, सुमाली, रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु, ह्रस्वकर्ण, दंष्ट्र, रोमश, युद्धोन्मत्त, मत्त, ध्वजग्रीव, विद्युज्जिह्व, हस्तिमुख, कराल, विशाल, शोणिताक्ष, कुम्भकर्ण, मकराक्ष, नरान्तक, कुम्भ, निकुम्भ, यज्ञशत्रु और ब्रह्मशत्रु के घरों पर जा-जाकर कपि ने आग लगाई। एक विभीषण के घर को उन्होंने छोड़ दिया; और घरों को क्रम से जला डाला। केवल घरों को ही भस्म नहीं किया, किन्तु इनमें जो कुछ अन्न, वस्त्र, द्रव्य इत्यादि पदार्थ थे उनको भी जला दिया। जब वे सब घरों को जला चुके तब रावण के घर पर कूद गये और उस मुख्य भवन में अपनी पूँछ की आग लगाकर ऐसे बल से गरजे जैसे प्रलय-काल का मेघ गरजता है। वह अत्यन्त वेगवान् अग्नि वायु के संयोग से कालाग्नि के तुल्य भभककर बढ़ चला। वायु ने उसे चारों ओर फैला दिया।

वहाँ की दुर्दशा का वर्णन क्या किया जाय। वहाँ के सुवर्ण के झरोखे मुक्ता-मणि से भूषित थे, बड़े-बड़े भवन रत्नों से लदे थे और बड़ी-बड़ी अटारियाँ थीं, वे सब जल-जलकर और टूट-टूटकर इस तरह गिरने लगीं जैसे कि सिद्धों के भवन, पुण्य का नाश होने पर, आकाश से टूटकर गिरते हैं। वहाँ पर राक्षस लोग अपने-अपने घरों को बचाने के लिए इधर-उधर दौड़ रहे थे। वे भग्नोत्साह और नष्टश्री हो गये थे। उनका बड़ा कोलाहल सुन पड़ता था। वे यही कहते थे कि हाय! अग्नि ही कपि का रूप धारण करके आया है। बच्चों को गोद में लिये रोती हुई राक्षसियाँ नीचे गिरने लगीं। चारों ओर की ज्वाला से झुलसी हुई राक्षसियाँ अटारियों पर से नीचे आ पड़ती थीं जैसे मेघों में से बिजलियाँ निकलकर भूमि पर आ गिरें। राक्षसियों के बाल बिखर गये थे। उन भवनों से हीरे, मूँगे, पन्ने, मोती और चाँदी इत्यादि अनेक प्रकार के विचित्र धातु पिघलकर बहते देख पड़े। काष्ठों और तृणों से जिस प्रकार अग्नि तृप्त नहीं होता उसी प्रकार हनुमान् इन महाराक्षसों के बध से सन्तुष्ट न होते थे। इन्होंने इतने राक्षसों को मारा कि लंका में उनकी लोथों के लिए स्थान न रह गया। जैसे शिव ने त्रिपुर को जलाया था उसी प्रकार वेगवान् महात्मा हनुमान् ने संपूर्ण लंका को जला दिया। हनुमान् की लगाई वह भयंकर पराक्रमी आग अपने ज्वालामण्डल को फैलाये, प्रलय-काल के अग्नि के तुल्य होकर, उस लंका-पर्वत (त्रिकूट) के अग्रभाग में अत्यंत भभक उठी। वायु की सहायता से वह आकाश को स्पर्श करती हुई बढ़ चली; और लंका के गृहों में राक्षसों के शरीररूप घृत को पाकर अपनी धूमरहित किरण प्रकट करने लगी। उस समय अग्नि ने करोड़ों सूर्यों के सदृश तेजस्वी होकर संपूर्ण लंका को घेर लिया। वज्र के तुल्य सुन पड़नेवाले अनेक

प्रकार के शब्दों द्वारा ऐसा लगता था मानो वह ब्रह्माण्ड को फोड़ डालेगा। वह अग्नि लंका के ऊपर आकाश में बहुत बढ़ा और अपनी प्रभा के द्वारा ऐसा जान पड़ता था मानो फूला हुआ पलाश का जंगल है। जब वह भभककर ऊपर धुआँ छोड़ता था तब आकाश में नीलकमल के तुल्य मेघ मण्डल की भ्रान्ति हो जाती थी। यहाँ पर बहुत से शिष्ट राक्षस इकट्ठे होकर यही कहते थे कि यह वानर वज्रधारी देवराज इन्द्र तो नहीं है; या साक्षात् यमराज तो नहीं, या वरुण तो नहीं है। वे कहते थे कि यह वायु तो नहीं, किंवा रुद्र, अग्नि, सूर्य, कुबेर अथवा चन्द्र तो नहीं आये। भाई यह वानर नहीं है, यह तो स्वयं काल है। हम जानते हैं कि सबके पितामह लोक के सिरजनहार जो चतुर्मुख ब्रह्मा हैं उन्हीं का कोप, वानर का रूप धर कर, राक्षसों का संहार करने के लिए यहाँ आया है। अथवा अचिंत्य, अव्यक्त, अनन्त, अद्वितीय विष्णु का तेज ही हो जो कि कपि का रूप धारण किये है। वह हम राक्षसों के नाश के लिए लंका में आकर उपस्थित हुआ हो।

अब प्राणियों, गृहों और वृक्षों-सहित भस्मीभूत उस पुरी को देखकर वे ऐसे ही अनेक तर्क वितर्क कर रहे थे। जब इस प्रकार से राक्षस, हाथी, घोड़े, रथ, पक्षी, मृग और वृक्षों-सहित वह पुरी भस्म हो गई तब दीन होकर बड़े ऊँचे स्वर से रोने लगी। हा तात! हा पुत्र! हा कान्त! हा मित्र! हा प्राणनाथ! अहो पुण्य का नाश हुआ। इस प्रकार बातचीत करते हुए अनेक राक्षसों ने वहाँ भयंकर शब्द किया। अग्नि की ज्वाला से वेष्टित वह लंका उस समय पाप से नष्ट हुई सी देख पड़ने लगी। वह बड़े-बड़े वीरों से हीन, छिन्न-भिन्न योद्धाओं से संयुक्त और हनुमान् के क्रोध तथा बल से जीत ली गई थी। उस समय लंका में घबराये हुए विषादयुक्त राक्षस मरे पड़े थे। हनुमान् ने अत्यन्त प्रज्वलित अग्नि से धायँ-धायँ जलती हुई लंका को देखा—मानो ब्रह्मदेव के क्रोध से पृथ्वी नष्ट हुई हो। इस प्रकार वायुपुत्र श्री हनुमान् उस उत्तम वन का ध्वंस कर, बड़े-बड़े राक्षसों को मारकर और लंका को जलाकर स्थिर हुए। अब मन के द्वारा वे श्री रामचन्द्र के पास पहुँचे। उस समय देवता लोग महाबली हनुमान् की स्तुति करने लगे। देव, महर्षि, गन्धर्व, विद्याधर, नाग और सम्पूर्ण बड़े-बड़े प्राणी कपि के इस कर्म से अत्यन्त प्रसन्न हुए। उस समय हनुमान् भी अत्यन्त विराजमान् हुए थे। उस समय वे एक विचित्र गृह के अग्रशृङ्ग पर बैठे हुए थे। उनकी पूँछ में प्रज्वलित आग लगी हुई थी। किरणों से प्रज्वलित सूर्य की भाँति उस समय उनकी शोभा हो रही थी।

छन्द

एहि भाँति लंकहि दाहि कपिवर अतिहि मन हर्षित भयौ।
तब वह्नि प्रशमन हेतु गृह तें उतरि सागर महँ गयौ॥
तहँ देव मुनि गन्धर्व गण सब दग्ध लंकहि देखि कै।
कपि बल सराहत विस्मयाकुल बार बार सुपेषि कै॥

---

## ५५वाँ सर्ग

### सीता के लिए हनुमान् का शोकग्रस्त होना

उस पुरी को प्रज्वलित, विध्वस्त और राक्षसों को भयभीत देख हनुमान् सोचने लगे। सोचकर वे बड़े भयभीत हुए। वे खिन्न होकर कहने लगे कि देखो लंका को जलाकर मैंने यह क्या किया। धन्य हैं वे महात्मा लोग जो क्रोध को बुद्धि से रोक लेते हैं जैसे

कि जलते हुए अग्नि को पानी ठंडा कर देता है। ऐसा कौन पुरुष होगा जो क्रोध से पाप न करेगा। मैं तो जानता हूँ कि क्रोधी पुरुष यदि अपने बड़े लोगों को अर्थात् पिता इत्यादि को भी मार दे तो आश्चर्य नहीं। क्रुद्ध मनुष्य कठोर वचनों द्वारा साधुओं का भी अपमान कर दे तो आश्चर्य नहीं। क्रुद्धजन वाच्यावाच्य की ओर कभी दृष्टि नहीं देता। उसको न कुछ अकार्य जान पड़ता है और न उसके लिए कुछ अवाच्य ही है। परन्तु जो मनुष्य उगते हुए क्रोध को क्षमा के द्वारा नष्ट कर देता है—जैसे सर्प अपनी पुरानी केंचुल का त्याग करे,—उसी को पुरुष कहना चाहिए। धिक्कार है मुझ दुर्बुद्धि, निर्लज्ज और महापापी को; मैंने सीता का विचार किये बिना ही लंका में आग लगा दी। उसके साथ ही मैंने स्वामी का भी घात किया। क्योंकि यदि यह सम्पूर्ण लंका भस्म हो गई तो जानकी देवी भी जल गई होंगी। अज्ञान से मैंने स्वामी का कार्य ही नष्ट कर डाला। देखो तो सही कि जिसके लिए इतना भारी कार्य किया उसी को चौपट कर डाला। लंका को जलाते समय मैंने सीता की रक्षा नहीं की। लंका का भस्म करना तो कुछ कठिन नहीं था, इसमें संदेह नहीं; परन्तु ऐसा करने में क्रोधान्ध होकर मैंने मूल ही का नाश कर डाला। प्रत्यक्ष ही देख पड़ता है कि अवश्य जानकी भस्म हो गईं, क्योंकि लंका का कोई भी स्थान बिना जला हुआ नहीं देख पड़ता। संपूर्ण लंका भस्म हो गई। जब कि मैंने बुद्धि के विपर्यय से कार्य नष्ट कर दिया है तब यहीं अपने प्राणों का भी संन्यास कर देना मुझे ठीक जँचता है। अब मैं बड़वानल अग्नि में गिरूँ या अपना शरीर समुद्रवासी जन्तुओं को समर्पण कर दूँ। क्योंकि अब मैं जीते-जी किस प्रकार वानरराज को देख सकता हूँ! उन दोनों पुरुषसिंहों का दर्शन मैं कैसे कर सकता हूँ। क्योंकि मैंने सर्वस्व कार्य का घात कर डाला। क्रोध दोष से मैंने इस घड़ी वही दिखलाया जो वानर जाति का धर्म अर्थात् चञ्चलता तीनों लोकों में प्रसद्ध है। हा! धिक्कार है उस रजोगुण धर्म को जो कार्य करने में असमर्थ और व्यवस्था-रहित है। मैंने समर्थ होकर भी, रजोगुण के वश में होकर, सीता की रक्षा नहीं की। देखो, सीता का नाश होने से वे दोनों नष्ट होंगे, और उनके नाश से सकुटुम्ब सुग्रीव नष्ट हो जायँगे। इस बात को सुनकर शत्रुघ्न और भरत कैसे जीवित रहेंगे, क्योंकि भाई पर वे भी बड़ी प्रीति रखते और धर्मशील हैं। ऐसा धर्मिष्ठ इक्ष्वाकु का वंश जब नष्ट हो जायगा तो सारी प्रजा शोक और सन्ताप से पीड़ित होगी। मैं अभागा धर्मार्थ-संग्रह से हीन और क्रोधरूप दोष से भरा हूँ। इस लोक का नाशक एक मैं ही ठहरा।

इस प्रकार हनुमान् शोकसागर में डूब रहे थे कि इतने में इनको अनेक प्रकार के शुभसूचक शकुन हुए। ये पहले भी देख पड़े थे। तब तो कपि ने अपने मन में सोचा और विचार किया कि जो मैं सोच रहा हूँ सो नहीं है। वह मनोहराङ्गी सीता नष्ट न होगी। वह तो अपने तेज से रक्षित है। अग्नि में अग्नि नहीं लग सकता। अतुल तेजस्वी धर्मात्मा श्री रामचन्द्र की पत्नी तो अपने पतिव्रत से रक्षित है। उसको अग्नि स्पर्श नहीं कर सकता। राम ही के प्रभाव और वैदेही के सुकृत से जलानेवाले अग्नि ने मुझे नहीं जलाया। फिर जो भरत इत्यादि तीनों भाइयों की देवता है और जो रामचन्द्र की प्यारी भार्या है वह किस प्रकार से नष्ट होगी! देखो न, यह अग्नि भस्म करनेवाला और सब स्थानों में समर्थ है, इसका नाश नहीं होता। ऐसा होने पर भी यह मेरी पूँछ को नहीं जलाता, तो फिर आर्या सीता

देवी को कैसे जलावेगा। समुद्र के बीच हिरण्यनाभ पर्वत का जो अकस्मात् दर्शन हुआ था उसको स्मरण करके हनुमान् अचरज करने और कहने लगे कि तपस्या, सत्य वचन और पतिव्रत के तेज से जानकी तो अग्नि को भी जला सकती हैं। अग्नि उन्हें क्या जलावेगा। सीता के ऐसे धर्माचरण को हनुमान् सोचते ही थे कि इतने में बड़े बड़े चारणों का शब्द सुन पड़ा कि अहो हनुमान् ने बड़ा कठिन काम किया कि राक्षसों के भवनों में यह भयङ्कर आग लगा दी जिससे राक्षसों की स्त्रियाँ, बालक और वृद्ध सब भागे और खड़बड़ा उठे। वहाँ बड़ा कोलाहल हुआ। यह नगरी, पर्वत की कन्दरा के द्वारा, रोती और चिल्लाती देख पड़ती है। यह तो सम्पूर्ण गृह और अटारियों-सहित भस्म हो गई पर जानकी नहीं जलीं। यह हमको बड़ा आश्चर्य जान पड़ता है। इस प्रकार की अमृत-तुल्य वाणी सुनकर हनुमान् बहुत प्रसन्न हुए। शुभ शकुनों, अनेक मङ्गल कारणों और ऋषियों के वचनों से वे अत्यन्त हर्षित हो गये।

दोहा

एहि विधि सीता-कुशल सुनि, पुनि विलोकि निज नैन।
कपिवर रघुपति पहँ चले, खबर लङ्क की दैन॥

---

## ५६वाँ सर्ग

### कपि की यात्रा

अब हनुमान् ने फिर उस शिंशपा वृक्ष के पास आकर जानकी को देखा। वे प्रणाम करके बोले कि हे देवि, मैं तुमको अक्षत देखकर अत्यन्त आनन्दित हुआ। इसके पश्चात् सीता ने कपि को जाने के लिए उद्यत देख पति के स्नेह से युक्त होकर कहा—हे तात, यदि तुम चाहो तो कहीं गुप्त स्थान में आज के दिन ठहर जाओ; विश्राम करके कल चले जाना। तुम्हारे रहने से मुझ हीन-भागिनी के इस अप्रमेय दुःख का मुहूर्त्त भर तो कट जाता है। जब तुम चले जाओगे तब फिर तुम्हारे आने तक मुझे अपने जीवन का विश्वास नहीं है। तुम्हें न देखने से मुझे पीड़ा होगी। मैं एक दुख से दूसरे दुःख में जा पड़ूँगी। उदासीनता और शोक से तो मैं पीड़ित हूँ ही। हे वीर, मुझे यही संदेह है कि दोनों भाई सैन्यसहित समुद्र के पार कैसे आवेंगे। इस सागर के लाँघने में तीन ही प्राणियों की सामर्थ्य मैं देखती हूँ। एक तो गरुड़ की, दूसरे तुम्हारी, तीसरे वायु की; सो अब इस कार्य के साधन में तुम क्या उपाय सोचते हो। हे महावीर, इस कार्य के साधन में एक तुम्हीं समर्थ हो, क्योंकि तुम्हारे बल का उदय मैं बड़ा यशोयुक्त देखती हूँ। अब अपनी सेना से इस लंका को मर्दन करके यदि रामचन्द्र मुझे यहाँ से ले जायँ तो यह काम उनके योग्य हो। सो तुम ऐसा करना जिससे यह कार्य विक्रमयुक्त और उनके योग्य सिद्ध हो।

ये वचन सुनकर कपि बोले कि हे देवि, वानरी सेना के स्वामी सुग्रीव ने तुम्हारे लिए निश्चय कर रक्खा है सो वे करोड़ों वानरों के साथ शीघ्र आ पहुँचते हैं। वे दोनों वीर इस लंका का विध्वंस शीघ्र ही करेंगे। सैन्य-सहित रावण को मारकर वे तुमको अपनी नगरी में ले जायँगे। इसलिए हे देवि, शोक मत करो, समय की बाट जोहती रहो। राम के हाथ से मारे गये रावण को तुम शीघ्र देखोगी। उसके मारे जाने पर रामचन्द्र से वैसे ही मिलोगी जैसे रोहिणी चन्द्र से मिलती है। हे जानकि, वानरों को लेकर रामचन्द्र

शीघ्र ही आते हैं। विजयी होकर वे तुम्हारे शोक को दूर करेंगे। इस प्रकार सीता को समझाकर और प्रणाम करके श्री हनुमान्, स्वामी को देखने के लिए उत्कण्ठित हो, सागर के बीच होकर यात्रा करने को उद्यत हुए। उन्होंने बड़े-बड़े राक्षसों को मारा और अपना नाम सुनाया; वैदेही को ढाढ़स बँधाकर अपना पराक्रम प्रकट किया, नगरी को व्याकुल करके रावण को छकाया और अब लौटने को तैयार हुए। अरिष्ट नाम पर्वत पर वे कूदकर चढ़े। उस पर्वत पर बड़े-बड़े पद्मक वृक्ष थे। वन की हरी-हरी पंक्तियों से वह शोभित थे। उसके शृङ्गों के बीच में लटकते मेघ, दुपट्टों की नाईं, शोभा दे रहे थे। उस पर जो सूर्य की किरणें पड़ती थीं उनसे ऐसी शोभा होती थी मानों प्रीति-पूर्वक उसको निद्रा से जगा रही है। अनेक धातु-रूप अपने खुलते नेत्रों से वह अत्यन्त भूषित हो रहा था। झरनों की धाराओं के शब्द से ऐसा जान पड़ता था मानों अध्ययन कर रहा हो, और अनेक झरनों के शब्दों द्वारा वह स्पष्ट गाता-सा जान पड़ता था। ऊँचे ऊँचे देवदारु वृक्षों की मनोहर पंक्तियों से वह ऊर्ध्वबाहु की नाईं देख पड़ता था। झरनों के गंभीर घोषों से वह पुकारता सा था। सप्तपर्ण आदि हरे-हरे वृक्ष वायु लगने से हिल रहे थे। उनके द्वारा वह पर्वत काँपता सा था। सच्छिद्र बाँसों में वायु भर जाने से ऐसा लगता था मानों वह पर्वत बाँसुरी बजा रहा हो। घोर विषधर सर्प क्रुद्ध होकर फुफकार रहे थे, उनके द्वारा मानों वह साँस ले रहा था। कुहिरे में अत्यन्त अन्धकारमय अपनी गम्भीर कन्दराओं द्वारा वह मानों ध्यानावस्थित हो रहा था। मेघखण्डों के सदृश अपने खण्ड-पर्वत रूप पैरों से वह मानों चलना चाहता था। उसके शिखर इतने ऊँचे थे कि आकाश को छू रहे थे, उनके द्वारा वह मानों अङ्ग मोड़कर जँभा रहा था। बड़े बड़े शृङ्गों, बड़ी-बड़ी कन्दराओं और साखू, ताड़, अश्वकर्ण, बँसवारी और अनेक प्रकार की पुष्पित लताओं से वह वेष्टित और भूषित था। नाना प्रकार के मृगों, धातुओं के झरनों और पानी के अनेक झरनों से वह सुशोभित था; उस पर बहुत सी चट्टानें थीं। उस पर महर्षि, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, नाग और कन्दराओं में सिंह सर्वदा रहते थे। लता और वृक्ष उस पर खूब थे। वह व्याघ्रादिकों से पूर्ण और स्वादिष्ट मूल फल तथा वृक्षों से रमणीय था।

हनुमान् को राम के दर्शन की अति शीघ्रता और कार्य की सिद्धि होने से बड़ा हर्ष था। इस कारण ये बड़े वेग से इस पर्वत पर चढ़े। उस समय इनके पैरों के आघात से उसके शृङ्ग की शिलाएँ भरभराकर चूर हो गईं। उस पर चढ़कर हनुमान् बढ़े और वायु की नाईं उत्तर की ओर उड़ चले। उस समय हनुमान् के पैरों से दबाया गया वह पर्वत, अनेक प्राणियों की चिल्लाहट के साथ, धँसकर भूमि के तुल्य हो गया। उसके सब शिखर और वृक्ष हिलकर भूमि पर आ पड़े। अनेक प्रकार के पुष्पित वृक्ष उनकी जङ्घाओं के वेग से मथित एवं चूर चूर होकर भूमि पर गिर पड़े मानों वज्र लगने से गिरे हों। कन्दराओं के भीतर जो सिंह थे वे इस भयङ्कर प्राणहारी दाब के कारण बड़े नाद से गरजते थे। उनके गर्जन से ऐसा जान पड़ता था कि इससे आकाश तो न फट जायगा। विद्याधरों की जो स्त्रियाँ उस पर्वत पर विहार कर रही थीं वे मारे भय के उस पर्वत से अकस्मात् उड़कर आकाश में चली गईं। उनके वस्त्र, आभूषण सब अस्त-व्यस्त हो गये। बड़े विशाल, बली सर्पों की जिह्वा प्रज्वलित थी। उन महाविषधरों के मस्तक और गले दब

जाने से वे वहीं छटपटा रहे थे। वहाँ के किन्नर, नाग, गन्धर्व, यक्ष और विद्याधर उस पर्वत को विपन्न देख आकाश में चले गये। वह श्रीमान् पर्वत वृक्षों और शिखरों-सहित रसातल में चला गया। उस पर्वत का दस योजन तो विस्तार और तीस योजन की उँचाई थी। वह बिलकुल पृथ्वी के समान चौरस हो गया।

पवन-तनय बलबीर, गरजत लवण समुद्र कहँ।
लाँघन को मतिधीर, वेगि कूदि नभ महँ चले॥

---

## ५७वाँ सर्ग

### हनुमान् का कूदकर उस पार जाना और अंगद आदि से भेंट करना

पक्षधारी पर्वत की भाँति अब वे आकाश-रूप समुद्र में उड़ चले। आकाश-रूपी समुद्र में भुजङ्ग, यक्ष और गन्धर्व ही कमल थे। उसमें चन्द्र ही कुमुद था; सूर्यनारायण जलकुक्कुटवत् और तिष्य एवं श्रवण ही हंस-रूप थे। वहाँ पर मेघ ही सिवार थे। पुनर्वसु महामीन और मङ्गल ही घड़ियाल हो रहा था। ऐरावत उसमें महाद्वीप था और हंस का विलास स्वाती करता था। पवन ही उसकी लहरें और चन्द्र की किरणें ही उसमें जल के स्थान पर थीं।—इस तरह आकाश ही समुद्र था। इस प्रकार हनुमान् आकाश को मानों ग्रास करते, चन्द्र को मानों फाड़ते और सूर्यमण्डल तथा नक्षत्रों-सहित आकाश को लूटते हुए अपार समुद्र के बीच से चले जाते थे। कहीं-कहीं बीच-बीच में वे मेघमण्डलों को भी खींचते जाते थे। उस समय वे मेघ कहीं पाण्डुवर्ण, कहीं लाल, कहीं नीले, कहीं मजीठ के रङ्ग के, कहीं हरे या लाल रङ्ग के थे। मेघों में बार-बार घुसते और निकलते हनुमान् प्रकट और गुप्तरूप से चन्द्र की नाईं लगते थे। श्वेत वस्त्र पहने, मेघों को फाड़ते और उन्हीं के सदृश महानाद से गरजते हुए वे वेग से वायु के तुल्य चले जाते थे।

श्रीवायुपुत्र ने प्रबल राक्षसों को मारा, अपना नाम सुनाया, नगरी को व्याकुल किया, रावण को पीड़ा दी, बड़े-बड़े वीरों को मथ डाला और मैथिली को प्रणाम किया। अब वे इस पार लौटे। बीच समुद्र में उन्होंने मैनाक का सत्कार किया। प्रत्यञ्चा से छूटे बाण की भाँति वे इस पार आ पहुँचे। दूर से महेन्द्र पर्वत को देख वे ऐसे गरजे कि दसों दिशाएँ भर गईं। अपने सुहृदों के देखने की लालसा से वे महानाद करते और अपनी पूँछ को हिलाते हुए उसी स्थान में आ पहुँचे। जब-जब हनुमान् गरजते थे तब तब सूर्यमण्डल सहित आकाश मानों फटने लगता था। जो महाबली वानर उस उत्तर तीर पर हनुमान् के आने की बाट देख रहे थे उन्होंने वायु-प्रेरित मेघ के गर्जन की नाईं नाद और इनकी जङ्घाओं के वेग का शब्द सुना। तब वे सब के सब, सुहृद् के दर्शन की आकांक्षा से, अत्यन्त उत्कंठित हुए। जाम्बवान् अत्यन्त हर्षित होकर सब वानरों को पुकार कर कहने लगे—हे भाइयो! हनुमान् ने सर्वथा कार्य की सिद्धि की है क्योंकि यदि कार्य सिद्ध न हुआ होता तो इनका गरजना इस प्रकार का न होता। वे यह कह ही रहे थे कि इतने में फिर हनुमान् की बाहु और जंघाओं का वेग और गरजने का शब्द सुन पड़ा। तब तो वे सब अत्यन्त हर्षित हो, चारों ओर कूदने और वृक्षों की एक शाखा पर से दूसरी शाखा पर तथा एक शिखर से दूसरे पर कूद-कूदकर चढ़ने लगे। हनुमान् को देखने की इच्छा से वे वृक्षों पर चढ़कर और शाखाओं को पकड़-पकड़कर बाट देखने लगे। बहुत से

कपड़ों को हाथ में ले-लेकर वे हिलाने लगे। कन्दरा में घुसा हुआ वायु जैसा शब्द करता है उसी प्रकार की उस समय हनुमान् की गरजना सुन पड़ी। अब वानरों को हनुमान् आकाश में मेघ की नाईं देख पड़े। तब तो सब हाथ जोड़कर खड़े हो गये। पर्वताकार श्री वायुपुत्र उसी पर्वत के शृङ्ग पर, जो वृक्षों से भरा था, आकर कूद पड़े। हर्ष से पूर्ण श्री हनुमान् ऊपर से ऐसे कूदे जैसे कटे हुए पक्षोंवाला पर्वत आकाश से गिरता है।

अब उन वानरों ने हनुमान् को घेर लिया। उनके चेहरों पर प्रसन्नता झलकने लगी। मूल और फल की भेंट ले-लेकर वे हनुमान् का पूजन करने लगे। कोई गरजने, कोई किलकिल शब्द करने और कोई हर्षित होकर हनुमान् के बैठने के लिए वृक्षों की शाखा लाने लगे। वहाँ पर जो गुरु और वृद्ध जाम्बवान् इत्यादि वानर थे उनको और अंगद को हनुमान ने प्रणाम किया। उन दोनों ने हनुमान् की प्रशंसा की। अन्य वानरों ने भी उनको प्रसन्न किया। तब हनुमान् ने संक्षेप में कह दिया कि मैं सीता देवी को देख आया।

इसके अनन्तर वे अंगद को लेकर महेन्द्राचल की रमणीय वन-भूमि में जाकर बैठे। वानरों के पूछने पर हनुमान् बोले कि मैंने अशोक-वाटिका में सीता को देखा है। वहाँ बड़ी भयंकर राक्षसियाँ उनकी रक्षा करती हैं। फिर वे सीता के स्वरूप का वर्णन करने लगे कि वे एक वेणी को धारण किये राम के दर्शन के लिए उत्कण्ठित, उपवास से कृश और मलिन हो रही हैं। 'मैंने सीता देवी को देखा'—यह अमृत के तुल्य और महाकार्य का साधक वचन हनुमान् के मुख से निकलते ही संपूर्ण वानर आनन्दित हो गये और अनेक प्रकार के नाद करने लगे। वे किलकिल शब्द द्वारा हर्ष सूचित करने, पूँछें ऊँची करने और झटकारने लगे। बहुतेरे वानर पर्वत के शृङ्गों पर से कूदकर हनुमान् को छूने लगे। हनुमान् का वचन सुनकर वानरों के मध्य में अंगद बोले—हे वानर-श्रेष्ठ, बल और पराक्रम में तुम्हारे सदृश कोई नहीं है क्योंकि तुम इतने बड़े समुद्र को लाँघकर लौट आये। एक तुम्हीं हमारे जीवन के दाता हो और तुम्हारे ही प्रसाद से हम सब कृतार्थ होकर श्रीरामचन्द्र से मिलेंगे। हे हनुमन्, स्वामी में तुम्हारी भक्ति अद्भुत है; तुम्हारा वीर्य और धैर्य अद्भुत है। बड़े हर्ष की बात है कि यशस्विनी रामपत्नी को तुम देख आये। देखो, इस समाचार को सुनकर रामचन्द्र सीता के वियोग के शोक को दूर कर देंगे। इसके अनन्तर अंगद, हनुमान् और जाम्बवान को घेरकर वानर लोग वहाँ बड़ी-बड़ी शिलाओं पर इस इच्छा से बैठ गये कि हनुमान् ने समुद्र को कैसे पार किया और किस प्रकार से लंका, सीता और रावण को देखा सो सब हम लोग सुनेंगे। इसी आशा से सब वानर हाथ जोड़े केवल हनुमान् ही की ओर देख रहे थे। इन वानरों से वेष्टित अङ्गद की ऐसी शोभा हो रही थी जैसे देवताओं से इन्द्र की होती है।

दोहा

बैठे जेहि गिरि-शृंग पर, अनिलसुतरु युवराज।
शोभायुत प्रज्वलित तहँ, तेहि छन सोति विराज॥

---

## ५८वाँ सर्ग

### हनुमान् का अङ्गद आदि से सब समाचार कहना

उस शृंग पर बैठे ये महावीर लोग अत्यन्त प्रसन्न और हर्षित हो रहे थे। हनुमान् को प्रसन्न देख

जाम्बवान् बोले—भैया, तुमने सीता को कैसा पाया, वहाँ पर वे किस प्रकार से हैं और वह क्रूर राक्षस उनसे कैसा व्यवहार करता है—यह सब ठीक ठीक कहो। किस प्रकार से तुम्हें देवी मिलीं और उन्होंने तुमसे क्या कहा ? समाचारों को सुनकर हम लोग फिर कार्य का निश्चय करेंगे कि आत्मज्ञ श्रीरामचन्द्र को कौन समाचार कह सुनाना चाहिए, और उसमें जो कुछ सुनाने के योग्य न हो उसको छिपा रखना चाहिए। सो तुम सब कह सुनाओ।

तब श्री हनुमान् हर्षित होकर और सीता देवी को प्रणाम कर बोले कि देखो, तुम लोगों के सामने ही मैं इस महेन्द्राचल से उड़ा। चलते-चलते मुझे एक भयङ्कर विघ्न सा ज्ञात हुआ। मैंने देखा कि मेरा मार्ग रोके मनोहर सुवर्ण शृङ्गधारी एक दिव्य पर्वत खड़ा है। तब मैंने विचार किया कि इस पर्वत को तोड़ डालूँ और ऐसा ही मैंने किया भी। वहाँ पहुँचकर मैंने उसे पूँछ से ऐसा मारा कि उसका सूर्य के सदृश प्रकाशमान शिखर टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़ा। तब तो वह पर्वत बड़ी मधुर वाणी से मुझे हर्ष देता हुआ बोला कि हे पुत्र! मैं तुम्हारा पितृव्य-पिता का भाई हूँ, क्योंकि तुम्हारे पिता मेरे मित्र हैं। मेरा नाम मैनाक है। मैं इस समुद्र में रहता हूँ। पूर्वकाल में सभी पर्वत पक्षधारी थे। वे अपनी इच्छा के अनुसार संपूर्ण पृथ्वी पर घूमते और प्रजा को सताते थे। यह बात जब इन्द्र ने सुनी तब वज्र लेकर उन्होंने सबके पक्ष काट डाले। हे पुत्र, उस समय तुम्हारे पिता वायु ने मुझे उठाकर समुद्र में डाल दिया। तब मैं बचा रहा। सो मैं रामचन्द्र का साहाय्य करूँगा। वे धर्मात्मा और इन्द्र के तुल्य पराक्रमी हैं। जब मैंने यह बात सुनी तब अपना कार्य उससे निवेदन कर मैं आकाश में उड़ चला। उसने भी मुझे आज्ञा दे दी। मनुष्य के शरीर को धारण करके वह बोलता था, सो उसको उसने पर्वत में गुप्त कर लिया और पर्वत समुद्र में जा रहा। तब मैं बड़े वेग से शेष मार्ग में चला और देर तक चलता रहा। इसके अनन्तर मैंने नागमाता सुरसा देवी को देखा। वह मुझसे बोली कि हे वानर-श्रेष्ठ, तुम तो मेरे भक्षण के लिए यहाँ आ पहुँचे हो, इसलिए मैं तुमको खाऊँगी; तुमको भक्षण कर लेने की अनुमति मुझे देवताओं से मिली है। सुरसा की बात सुनकर मैं बहुत ही नम्र हो गया। मैंने हाथ जोड़े। मेरा चेहरा उदास हो गया। मैंने उससे कहा कि दशरथ के पुत्र श्री रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता के साथ, दण्डकारण्य में आये थे। उनकी भार्या को दुरात्मा रावण हर ले गया है, सो मैं इस घड़ी उनकी आज्ञा से दूत बनकर सीता के पास जाता हूँ। तू भी उन्हीं के देश में रहती है इसलिए तू इनका साहाय्य कर, और मुझे जाने दे। अथवा मैं मैथिली को देखकर और रामचन्द्र से उसका समाचार कहकर अवश्य तेरे मुख में प्रवेश करूँगा। मेरी प्रतिज्ञा को तू सत्य समझ। इस पर वह कामरूपिणी बोली कि मेरा उल्लङ्घन करके कोई नहीं जा सकता क्योंकि मुझे ऐसा ही वर मिला है। तब मैंने अपने शरीर का विस्तार दस योजन का कर लिया और सुरसा में पाँच योजन लम्बा चौड़ा मैं और भी हो गया। वह भी अपने मुख का विस्तार मेरे शरीर के विस्तार से अधिक-अधिक बढ़ाती गई। तब मैंने अपने शरीर को ऐसा छोटा कर लिया कि अंगुष्ठमात्र का हो गया। फिर मैं झट उसके मुख में जाकर शीघ्र निकल भी आया। तब तो सुरसा ने अपना यथार्थ रूप धारण करके मुझसे कहा—हे सौम्य, तुम सुख से यात्रा करो और सीता से रामचन्द्र को मिलाकर सुखी हो। हे महाबाहो! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। उस समय आकाश-

चारी प्राणियों ने वाह-वाह कहकर मेरी प्रशंसा की। तब मैं फिर गरुड़ की नाईं आकाश में उड़ा। अब मेरी छाया को किसी ने पकड़ा। चारों ओर देखा पर मुझे कोई देख न पड़ा। मेरा वेग नष्ट हो गया। दसों दिशाओं में दृष्टि फैला करके देखा तो वह देख न पड़ा जिसने मेरी गति को रोका था। मैंने सोचा कि विघ्न तो मेरे गमन में हुआ ही पर रूप नहीं देख पड़ता, इसका क्या कारण है! सोचते-सोचते मेरी दृष्टि नीचे समुद्र पर जा पड़ी तो क्या देखता हूँ कि एक घोररूपा राक्षसी पानी में खड़ी है। उसे देखकर मैं डरा नहीं। उसने हँसकर और गरजकर यह क्रूर वचन कहा कि अरे महाविशाल-देहवाले, अब तुम कहाँ जा सकते हो? अब तो तुम मेरे भक्ष्य हुए। मैं भूखी हूँ सो अब तुम मुझे तृप्त करो। मुझे बहुत दिन से आहार नहीं मिला। मैंने उसकी यह बात मान ली और बहुत अच्छा कहा। उसके मुख के प्रमाण की अपेक्षा मैंने अपना शरीर अधिक विशाल कर लिया, परन्तु मुझे भक्षण करने के लिए उसका मुख बड़ा विशाल और भयंकर बढ़ गया। तब मैंने एक चतुराई की, पर उसको वह समझ न सकी। मैंने पल भर में अपने विशाल रूप को अति सूक्ष्म कर डाला और झपटकर उसके हृदय को फाड़ डाला। फिर मैं आकाशमार्ग से उड़ चला। हृदय फट जाने से वह पर्वताकार राक्षसी मर गई और दोनों हाथ फैलाकर समुद्र में गिर पड़ी। उस समय आकाश-चारियों की यह वाणी मुझे सुन पड़ी कि सिंहिका नाम राक्षसी को हनुमान् ने शीघ्र ही मार डाला। इसके अनंतर मैंने सोचा कि देखो कार्य में विलम्ब हुआ। मैं फिर वेग से चला और समुद्र के दक्षिण तीर पर पहुँच गया। वहाँ मैंने लंका नगरी को देखा। अब मैं सूर्यास्त-काल में लंका में गया। मुझे राक्षसों ने नहीं देखा। वहाँ पैठते ही एक स्त्री मेरे समीप कल्पान्त के मेघ के तुल्य अट्टहास करती हुई आई। वह मुझे मारना चाहती थी। उसके बाल प्रज्वलित अग्नि के तुल्य देख पड़ते थे। तब मैंने उस भयङ्करी को बायें हाथ की मुष्टिका के प्रहार से जीत लिया। इस पर वह भयभीत होकर कहने लगी 'कि हे वीर, मैं लंका नामक पुरी हूँ। तुमने अपने पराक्रम से मुझे जीत लिया, इसलिए लङ्का के राक्षसों को भी तुम जीत लोगे। यह सुनकर मैं पुरी में गया और रात भर घूमता रहा। रावण के अन्तःपुर में जाकर सर्वत्र ढूँढ़ा पर जानकी न मिलीं। तब तो मैं शोक-सागर में निमग्न हो गया। परन्तु सोचते-सोचते मैंने वहाँ पर सुवर्ण प्राकार से वेष्टित एक गृह-वाटिका देखी। तब मैं उस प्राकार को लाँघकर अनेक वृक्षों से युक्त अशोकवाटिका के बीच में गया। वहाँ एक बड़ा विशाल शिंशपा का वृक्ष देखा। उस पर मैं चढ़ गया। वहाँ से मैंने सुवर्ण का कदली-वन देखा। उस शिंशपा वृक्ष से थोड़ी ही दूर पर मुझे सीताजी भी देख पड़ीं। वे श्यामा, कमलनयनी, उपवास से कृश, एक ही वस्त्र को पहने थीं और उनके केशों में धूलि भरी थी; वे शोक-संताप से दीन, और पति के हित में तत्पर थीं। मांस-शोणित खानेवाली घोर और विकराल राक्षसियाँ उन्हें घेरे हुए थीं। उन्हें राक्षसियाँ बार बार डपटती भी थीं। वे एक वेणी को धारण किये पति के ध्यान में तत्पर और भूमि पर सोती थीं। वे हेमन्त ऋतु की कमिलिनी की नाईं विवर्णा थीं, रावण से उनका कुछ सम्बन्ध न था। वे मरने का निश्चय किये बैठी थीं। किसी प्रकार से मुझे सीता के ऐसे ही दर्शन हुए। मैं उसी शिंशपा वृक्ष पर बैठा-बैठा सीता को देख रहा था कि इतने में रावण के घर में

काञ्ची और पायल के शब्द से मिश्रित एक बड़ा हलहला शब्द मुझे सुन पड़ा। तब में अत्यन्त उद्विग्न हुआ। मैं अपने स्वरूप को संकुचित करके पक्षी की भाँति उसी शिंशपा वृक्ष की घनी शाखा में छिप रहा। अब जहाँ सीता बैठी थीं वहाँ अपनी स्त्रियों के साथ रावण आया। उसको देखते ही देवी ने अपनी दोनों जङ्घाओं को संकुचित करके दोनों स्तनों को बाहुओं से ढाँप लिया। सीताजी बहुत ही भयभीत और उद्विग्न हुईं। वे इधर-उधर देखतीं पर किसी को रक्षक न पातीं और काँपती थीं। उनको रावण ने देखा और नीचे सिर करके प्रणाम करते हुए कहा कि हे सीते, मुझे तू बहुत आदर दे। देख, यदि तू अहंकार से मेरा अभिनन्दन न करेगी तो दो महीने के अनन्तर मैं तेरा रुधिर पान करूँगा। इस पर सीता परम क्रोध करके बोलीं—हे राक्षसाधम, मैं अमितपराक्रमी और तेजस्वी इक्ष्वाकुवंश के नाथ श्रीराम की भार्या और दशरथ की पुत्रवधू हूँ। तू मुझसे ऐसा दुर्वचन कहता है तो तेरी जिह्वा क्यों नहीं कटकर गिर पड़ती। हे असभ्य, तेरा पराक्रम ही क्या है जो तू मुझे पति के सामने न हर लाया और न उन्होंने तुझे देख पाया। तू राम के तुल्य कभी नहीं हो सकता। तुल्य तो कौन कहे, तू उनका दास होने के भी योग्य नहीं। क्योंकि श्रीरामचन्द्र अजेय, सत्यवादी, शूर और रण में सराहने के योग्य हैं। जानकी का यह कठोर वचन सुनकर रावण क्रोध से जल उठा जैसे कि चिता की अग्नि प्रज्वलित होती है। वह अपने नेत्रों को टेढ़ा करके, मुष्टिका तानकर सीता को मारने चला तब उसकी स्त्रियों ने हाहाकार किया। उस समय उन्हीं स्त्रियों में उस दुष्टात्मा की सुन्दरी भार्या मन्दोदरी भी थी। वह उसकी बड़ी प्यारी थी। उसने मना किया और मधुर वाणी से उस काम-पीड़ित को समझाया कि "हे इन्द्र-तुल्य पराक्रमी, सीता से तुमको क्या करना है। आओ, मेरे साथ विहार करो; मुझसे जानकी अधिक नहीं है। हे प्रभो! देव, गन्धर्व और यक्षों की कन्याओं के साथ रमण करो। सीता से क्या करोगे।" तब उन स्त्रियों ने इकट्ठा होकर उसको वहाँ से हटाया और अपने घर पहुँचाया। रावण के जाते ही वे घोररूपा राक्षसियाँ बड़े कठोर कठोर वचनों से सीता को धमकाने लगीं। परन्तु जानकी ने उनकी बातों को तृण के तुल्य समझा। उनका गरजना भी सीता के समीप व्यर्थ हो गया। वृथा गरजने से वे सब थककर और चेष्टा-रहित होकर रावण के पास गईं। उसको उन्होंने सीता का सब समाचार सुनाया। इसके अनन्तर वे सबकी सब आशा-रहित और उद्योग-हीन होकर तथा क्लेश पाकर निद्रा के वश में हो गईं। उनके सो जाने पर सीता दीनता-पूर्वक विलाप करने और सोचने लगीं। इसके अनन्तर एक त्रिजटा नाम की राक्षसी उठकर राक्षसियों से बोली कि तुम सब अपने ही को क्यों नहीं भक्षण करतीं, सीता को क्यों खाना चाहती हो। यह बेचारी जनक की पुत्री और दशरथ की पुत्रबधू है, इसको क्यों धमकाती हो। देखो, आज मैंने स्वप्न देखा है जो बड़ा कठोर और रोमाञ्च करनेवाला है। वह राक्षसों के विनाश के लिए और इसके पति के जय के लिए है। सो आओ, हम सब रामचन्द्र के हाथ से अपनी रक्षा के लिए सीता से प्रार्थना करें। यही मुझे अच्छा लगता है। क्योंकि जिस दुःखिता स्त्री के विषय में इस प्रकार का स्वप्न देख पड़ता है वह अनेक प्रकार के दुःखों से छूटकर सुख को प्राप्त होती है। हमारे प्रणाम करने से जब

यह जनकपुत्री प्रसन्न होगी तो हमको अवश्य उस भय से बचावेगी। पति के विजय की बात सुनने से हर्षित होकर सीता बोलीं कि यदि यह बात ठीक होगी तो हम तुम्हारी रक्षा करेंगी। सीता की इन दुर्दशाओं को मैं देखता था। मेरा मन भी भीतर से सुखी नहीं था। तब मैंने सीता से बातचीत करने का उपाय अपने मन में सोचा और इक्ष्वाकुवंश की स्तुति करना आरम्भ किया। उन राजर्षियों के गुणों को सुनकर सीता ने आँखों में आँसू भरे और कहा कि हे वानरश्रेष्ठ, तुम कौन हो और किस प्रकार से यहाँ आये; रामचन्द्र से तुम्हारी कैसी प्रीति है—यह सब मुझसे कहो। तब मैंने कहा—हे देवि, तुम्हारे पति रामचन्द्र की सहाय करनेवाले सुग्रीव नामक महाबली वानरराज का मैं भृत्य हूँ। मेरा नाम हनुमान् है। तुम्हारे पति ने तुम्हारे लिए मुझे यहाँ भेजा है और पहचान के लिए यह अँगूठी तुमको दी है। सो हे देवि, अब मुझे आज्ञा करो कि मैं क्या करूँ। क्या तुमको रामचन्द्र और लक्ष्मण के पास ले चलूँ? अथवा जो कुछ तुम कहो वह मैं जाकर उनसे कहूँ। यह सुनकर सीता ने कहा कि रावण को मारकर श्रीराघव मुझे यहाँ से ले चलें। हे भाइयो, तब मैंने उनको प्रणाम किया और राघव को आनन्द देनेवाली कोई अभिज्ञान-वस्तु उनसे माँगी। सीता ने कहा कि यह मणि लो और इसको राम को दिखलाना। इससे रामचन्द्र को विश्वास हो जायगा कि तुम मेरे पास पहुँच गये थे। उन्होंने मणि निकालकर मुझे दी और अत्यन्त उद्विग्न होकर कुछ संदेश भी कहा। तब मैं उनको प्रणाम कर यहाँ आने को तैयार हुआ। उस समय सीता ने कुछ मन से सोचकर मुझसे कहा—हे हनुमन्, यह वृत्तान्त राम से कहना जिसको सुनने से सुग्रीव सहित वे दोनों वीर शीघ्र आवें और इसी उद्योग में तुम भी रहना। यदि वे शीघ्र न आवेंगे तो फिर मुझे न पावेंगे। दो ही महीने तक मेरा जीवनकाल है। मैं अनाथ की नाईं मर जाऊँगी। सीता का करुण वचन सुनने से मुझे बड़ा क्रोध हुआ। फिर मैं अन्य कार्य की चिन्ता करने लगा। मेरा शरीर पर्वताकार हो गया। युद्ध की आकांक्षा से मैंने रावण के उस वन का विनाश करना प्रारम्भ कर दिया। उसका नाश करने में वहाँ के मृग-पक्षी सब व्याकुल हो गये और राक्षसियाँ जाग पड़ीं। वे मेरी ओर देखने लगीं और इधर-उधर भागीं। उन्होंने रावण को सन्देश दिया कि हे राजन्, एक दुष्टात्मा वानर ने तुम्हारे वन को उजाड़ किया है। तुम्हारे बल और पराक्रम को बिना जाने उसने बड़ी ढिठाई की। हे महाराज, यह उसकी बड़ी दुर्बुद्धि है। आप उसके वध की आज्ञा दीजिए, जिसमें वह यहाँ से फिर न जा सके। इस पर रावण ने किंकर नाम अस्सी सहस्र राक्षसों को आज्ञा दी। वे उसके बड़े मनोनुगामी थे। वे सब शूल, मुग्दर आदि शस्त्र लेकर चढ़ आये। तब मैंने उसी वन में एक परिघ से उन सब का घात किया। उनमें जो बच गये थे उन्होंने रावण को यह समाचार जा सुनाया। वहाँ एक चैत्यप्रासाद लंका का भूषणरूप था। सो मैंने उसका भी विध्वंस करके वहाँ के सौ रक्षकों को, एक खम्भा उखाड़कर उसी से मार डाला। उधर रावण ने प्रहस्त के पुत्र जम्बुमाली को बड़ी सेना के साथ मेरे पास भेजा। तब मैंने परिघ लेकर सेना को और उस बलिष्ठ राक्षस को मार गिराया। राजा ने यह समाचार सुनकर बड़े बलवान् मंत्रिपुत्रों को, पैदल सेना के साथ, मेरे मारने को भेजा। मैंने परिघ उठाकर उन सबको यमपुरी में भेज दिया। इनके मारे जाने की खबर पाकर

रावण ने सेनाग्रगामी पाँच महावीर राक्षसों को मेरे पास भेजा। मैंने उनको भी सैन्य-सहित मार गिराया। तब रावण ने अपने महाबली पुत्र अक्ष को, बहुत से राक्षसों के साथ, युद्ध के लिए भेजा। आकाश में उड़ते हुए उसके भी मैंने पैर पकड़े और घुमाकर ऐसा पटका कि वह चूर-चूर हो गया। अब उसका मरण सुनकर रावण ने इन्द्रजित् नामक अपने पुत्र को भेजा। वह बली और रणदुर्मद है। मैंने उसका पराक्रम भी नष्ट कर दिया। यही दशा उसकी सेना की कर दी। तब मैं अत्यंत प्रसन्न हुआ। रावण ने उसको अति बलिष्ठ समझकर बड़े बड़े वीरों के साथ भेजा था। सो उसने मुझे असह्य जानकर और अपनी सेना का नाश देखकर वेग-पूर्वक मुझे ब्रह्मास्त्र से बाँध लिया। इसके अनन्तर राक्षस लोग मुझे रस्सों से बाँधने लगे। बाँधकर वे मुझे रावण के समीप ले गये। तब रावण मुझसे पूछने लगा कि लंका में तुम किस लिए आये और राक्षसों को क्यों मारा। मैंने यही कहा कि केवल सीता के लिए मैंने यह सब काम किया है। हे विभो, उसी के दर्शन के लिए मैं तुम्हारे भवन में आया हूँ। मैं वायु का औरस पुत्र हनुमान् नामक वानर हूँ। हे राजन, मैं राम का दूत और सुग्रीव का सचिव हूँ। मैं राम का दूत बनकर तुम्हारे पास आया हूँ। जो मैं संदेश कहता हूँ उसको सुनो। हे लंकेश, सुग्रीव ने आपका कुशल-मंगल पूछा है; और धर्म एवं काम से युक्त हितवचन का उन्होंने आपके लिए उपदेश किया है कि बहुत वृक्षों से सुशोभित इस ऋष्यमूक पर्वत पर रहते समय रणशूर श्रीरामचन्द्र ने मुझसे मैत्री की है। उन्होंने मुझसे कहा है कि मेरी भार्या को राक्षस हर ले गया सो इस कार्य में मेरा साहाय्य करने की तुम प्रतिज्ञा करो।

जिन सुग्रीव का राज्य बाली ने हर लिया था उनके साथ, अग्नि को साक्षी करके, लक्ष्मण और राम ने मैत्री की है। इसके अनन्तर राम ने संग्राम में एक ही बाण से बाली को मारा और सुग्रीव को वानरों का राजा बनाया। अब उनका साहाय्य हमको सब प्रकार से करना ही चाहिए। सो हे राजन्, उन्हीं ने आपके लिए मुझे धर्म-पूर्वक दूत बनाकर भेजा है। जब तक वानर लोग तुम्हारी सेना का नाश नहीं करते उससे पहले ही तुम सीता को शीघ्र अर्पण करो। वानरों का प्रभाव किसे मालूम नहीं। देवताओं से निमन्त्रण पाकर वे उनके शत्रुओं को मारने जाते हैं। सो हे राक्षसाधिप, वानर-राज ने तुमको यही कहा है। रावण से मैंने ऐसा ही कह दिया। हे भाइयो, तब तो वह बड़ी क्रुद्धदृष्टि से मेरी ओर ऐसे देखने लगा मानों मुझे जला देगा। उसने मेरा वध किये जाने की आज्ञा दे दी; क्योंकि उसे मेरा प्रभाव विदित नहीं था। इसके अनन्तर उसी के भाई विभीषण ने मेरे लिए उससे प्रार्थना की कि हे राक्षस-सिंह, आप इस विचार को छोड़ दीजिए। जो काम आप कर रहे हैं यह राजनीति-शास्त्र से बाहर है, क्योंकि राजशास्त्र में दूत का वध कहीं नहीं पाया जाता। दूत को आकर स्वामी का यथोक्त वचन सुनाना ही चाहिए। दूत यद्यपि बड़ा भी अपराध करे तो भी उसका वध करना अनुचित है। उसको विरूप कर देने का शास्त्र में उल्लेख है पर वध करने का नहीं। विभीषण के समझाने पर रावण उस बात को अङ्गीकार करके बोला कि अच्छा, इसकी पूँछ जला दो। तब राक्षसों ने मेरी पूँछ को सन, छाल और कपड़ों से लपेटा। सन्नाहों से भूषित बड़े पराक्रमी राक्षसों ने मेरी पूँछ में आग लगा दी। वे लोग मुझे कठोर मुष्टिकाओं से मारने लगे। यद्यपि मैं अनेक बन्धनों से बँधा और राक्षसों से

नियन्त्रित था तथापि मुझे कुछ भी पीड़ा न थी, क्योंकि दिन को मैं नगरी देखना चाहता था। मैं बँधा हुआ और अग्निज्वाला से वेष्टित था। उसी रूप में वे मुझे लिये राजमार्ग में चिल्लाकर लोगों को समाचार देने लगे। तब मैंने अपने बड़े रूप को छोटा किया और बन्धन से निकलकर फिर ज्यों का त्यों बना लिया। फिर लोहे का एक बड़ा भारी मुग्दर लेकर मैंने उन राक्षसों को मार गिराया। नगर के द्वार को लाँघकर, अपनी पूँछ की आग से, मैं भवनों और फाटकों सहित उस नगरी को जलाने लगा—जैसे प्रलय का अग्नि प्रजा को जलाता है। जब सब जला चुका तब मुझे एक चिन्ता हुई कि इसमें सीता भी भस्म हो गई क्योंकि लंका का कोई भी प्रदेश बिना जला न बचा था। मैं यह चिन्ता करने लगा कि मैंने लंका को जलाते समय सीता को भी जला दिया और रामचन्द्र का कार्य निष्फल कर डाला। इतने में मैंने चारणों की मङ्गलाक्षर-युक्त वाणी सुनी। वे कहते थे कि देखो, इस आग से जानकी नहीं जलीं। उस समय वह अद्भुत वाणी सुनने से मुझे निश्चय हुआ कि जानकी बच गईं। अनेक प्रकार के शकुन भी ऐसे हुए जिससे यह मङ्गल-समाचार ज्ञात हुआ। जब मेरी पूँछ जलने लगी तब मुझे अग्नि का ताप कुछ भी नहीं जान पड़ा। मेरा हृदय भी हर्षित था और वायु सुगन्ध-युक्त बह रही थी। इन निमित्तों के महागुणयुक्त कारणों से और ऋषियों के वाक्यों से भी मेरा मन प्रसन्न हुआ। मैंने फिर से वैदेही को देखा और उनसे विदा माँगी। इसके पश्चात् अरिष्ट पर्वत पर चढ़कर मैंने तुम्हारे दर्शन की आकांक्षा से कूदना आरम्भ किया। फिर मैं वायु, चन्द्र, सूर्य, सिद्ध और गन्धर्वों से सेवित आकाश-मार्ग से चलकर आया और आप लोगों का दर्शन किया। राम के प्रसाद से और आप लोगों के तेज से, सुग्रीव के कार्य के निमित्त, मैंने यह सब किया।

दोहा

लङ्का महँ यह काज सब, कीन्हौं मैं कपिवीर।
शेष होय या महँ जु कछु, सो पुनवहु रघुधीर॥

---

## ५६वाँ सर्ग

### कुछ उद्योग का विचार करना और लङ्का का भी कुछ समाचार कहना

वायुपुत्र और भी बोले कि हे जाम्बवान्, रामचन्द्र का उद्योग और सुग्रीव का साहस दोनों ही सफल हैं; क्योंकि सीता का शील अति उत्तम और अनुपम है। इससे मेरा भी मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ। हे वानरश्रेष्ठ, जानकी अपने तपोबल से इन लोकों को धारण कर सकती हैं और क्रुद्ध होकर भस्म भी कर सकती हैं। यह रावण महातेजस्वी है, इसी से उसका शरीर सीता के शरीर को स्पर्श करते समय तपोबल से नष्ट न हुआ। क्रुद्ध होने पर सीताजी वह काम कर सकती हैं जो कि आग भी नहीं कर सकती। हे भाइयो, जो कार्य मैंने निवेदन किया है उसमें जाम्बवान् प्रभृति कपियों की सम्मति से न्याय्य तो यही है कि सीता को साथ लेकर उन दोनों वीर पुरुषों को देखना चाहिए। देखो, अकेला मैं ही राक्षसगणों सहित उस पुरी को नष्ट करने में और राक्षसों समेत रावण के मारने में भी समर्थ हूँ। फिर तुम लोगों के साथ यदि मैं लंका में पहुँचूँ तो कहना ही क्या है। क्योंकि आप लोग वीर, बलवान्, कुशल, अस्त्र-शस्त्र के

जाननेवाले, समर्थ और विजयाकांक्षी हैं। मैं तो यहाँ तक सामर्थ्य रखता हूँ कि युद्ध में रावण को और उसके मित्र, पुत्र, बान्धव और सेना को भी नष्ट कर दूँगा। इन्द्रजित् के ब्राह्म, रौद्र, वायव्य और वारुण अस्त्र यद्यपि दुर्निरीक्ष्य हैं तथापि मैं इन सबका नाश कर सकता हूँ और राक्षसों को मार सकता हूँ। परन्तु आप लोगों की अनुमति न होने से मैं रुका हूँ। देखिए, मैं जो लगातार पर्वतों की वृष्टि करने लगूँ तो देवताओं को भी मार सकता हूँ, फिर राक्षस हैं ही किस लेखे। केवल आप लोगों के कहने ही पर है। समुद्र चाहे अपनी मर्यादा छोड़ दे और मन्दराचल चाहे स्थान से डिग जाय, पर संग्राम में जाम्बवान् को शत्रु की सेना नहीं हिला सकती। संपूर्ण राक्षसों के झुण्डों को या उनके प्रधानों को मारने के लिए तो बाली के पुत्र अङ्गद ही बस हैं और नील कपि की जङ्घाओं के वेग से मन्दराचल भी फट जायगा, राक्षसों की क्या बात है। देव, गन्धर्व, यक्ष, दैत्य, नाग और पक्षियों में भी मैन्द का अथवा द्विविद का प्रतियोद्धा कौन है, यह आप ही लोग कहें? महावेगवान् अश्विनीकुमार के ये दोनों पुत्र भी ऐसे वीर हैं कि संग्राम में इनका भी प्रतियोद्ध कोई नहीं देख पड़ता। देखो, एक मैंने ही लंका का घात और दाह कर डाला, और सम्पूर्ण राजमार्गों में अपना नाम पुकार के सुना दिया। मैंने कहा—श्री रामचन्द्र और लक्ष्मण की जय हो, राघव से रक्षित राजा सुग्रीव की जय हो। मैं कोशलराज का दास और वायु का पुत्र हूँ। मेरा नाम हनुमान् है। बेचारी सीताजी अशोक वाटिका में शिंशपा वृक्ष के नीचे दीन भाव से बैठी हैं; वे शोक और सन्ताप से कृश हैं; मेघपंक्ति से घिरी चन्द्ररेखा जैसी प्रभाहीन देख पड़ती है वैसी ही वे देख पड़ती हैं। उन्हें राक्षसियाँ चारों ओर से घेरे हैं। फिर भी वे अहंकारी रावण को कुछ भी नहीं समझतीं। बेचारी पतिव्रता शुभाङ्गी बन्दीगृह में पड़ी है और सब प्रकार से रामचन्द्र ही का ध्यान किया करती है, और कुछ भी नहीं सोचती जैसे कि इन्द्राणी केवल इन्द्र ही में अनुरक्त रहती है। हे भाइयो! सीताजी एक वस्त्र को धारण किये हैं, वे धूलि से धूसर हैं। मैंने उन राक्षसियों के बीच में उन्हें देखा है। राक्षसियाँ उन्हें बार बार धमकाती थीं। उन राक्षसियों का रूप महाविकराल है। हा! सीताजी एक वेणी को धारण किये हैं, पति की चिन्ता से सन्तप्त हैं, और भूमि पर शयन करती हैं। हेमन्त में कमलिनी की जो दशा होती है। वही विवर्णाङ्गी सीता की है। वे रावण से मन को फेरे और केवल मरने का निश्चय किये बैठी हैं। मैंने उनको देखा। बड़ी कठिनाई से उन्होंने मुझ पर विश्वास किया। तदनन्तर मैंने बातचीत की और सब बातें कह सुनाईं। फिर उन्होंने राम सुग्रीव की मैत्री सुनी। तब तो बड़ी प्रसन्न हुईं। उनका आचरण नियमयुक्त है। पति पर उनकी अति उत्तम प्रीति है। केवल रावण के तपोबल के कारण सीता के तेज से उसका नाश नहीं होता। मैं जानता हूँ कि रावण के मारने में रामचन्द्र केवल निमित्त-मात्र ही होंगे, अर्थात् इसी महापातक के द्वारा वह मर चुका है। देखो, एक तो वह स्वभाव ही से कृश थी; उस पर अब पति का वियोग है, आजकल तो वह ऐसी कृश हो रही है जैसे प्रतिपद् (परिवा) के दिन पढ़नेवाले की विद्या क्षीण हो जाती है। हे भाइयो, वहाँ का समाचार और सीता की दशा मैंने कह सुनाई। अब जो कुछ आप लोगों से बन पड़े सो कीजिए।

———

## ६०वाँ सर्ग

### वानरों का विचार करना

हनुमान् की बातें सुनकर बालिपुत्र बोले कि देखो ये दोनों, अश्विनीकुमार के पुत्र, (मैन्द-द्विविद) ब्रह्मा के वर से अत्यन्त गर्व्विष्ठ हैं; अश्विनीकुमार के आदर के लिए ब्रह्मा ने इनको सर्वावध्यत्व का वर दिया है अर्थात् इन्हें कोई भी मार न सकेगा। इन दोनों ने वर के गर्व से मत्त होकर देवताओं की बड़ी भारी सेना को हटा दिया और अमृत पी लिया था यही दोनों लङ्का का नाश करने में समर्थ हैं। और सब वानर बैठे रहें; अथवा अकेला मैं ही राक्षसों का और रावण सहित उस लङ्का का मथन कर सकता हूँ। यदि आप महावीर भी मेरी सहायता करें तो फिर कुछ कहना ही नहीं। वायुपुत्र ही के बल से लङ्का भस्म हो गई। यह बात तो हम लोगों ने सुन ही ली है। देवी को केवल देख आये, उनको ले नहीं आये—यह बात मैं वहाँ पर कहने के योग्य नहीं समझता। कारण यह है कि आप लोग विख्यात-पराक्रमी हैं, उनको ले न जाना आपकी वीरता के अनुरूप न होगा। लाँघने में और पराक्रम करने में आपके तुल्य न कोई दैत्यों में देख पड़ता है, न देवों और लोकों में ही। सो हे वीर वानरो, राक्षसों सहित लंका को जीतकर और रावण को मारकर सीता को ले चलो। हम लोग कृतार्थ और हर्षित मन होकर ही वहाँ चलें। बहुत से राक्षसों को तो हनुमान् ने मार ही डाला है। जो बच रहे हैं उन्हीं को मारना है और विशेष क्या करना है। इसलिए हे भाइयो, अब वैदेही को साथ लेकर चलना ही ठीक है। हे वानरश्रेष्ठ, यहाँ से सीता को ले जाकर दोनों भाइयों के बीच में हम रख दें। सब बखेड़ा छूटे। उन वानरों को व्यर्थ दुःख क्यों दें; सो अब चलकर राक्षसों को मारो, तब वहाँ से लौटकर सुग्रीव-सहित दोनों भाइयों को देखें।

वानरश्रेष्ठ जाम्बवान् ऐसे विचारों में बड़े कुशल थे। अंगद का यह संकल्प सुनकर उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—हे महाबुद्धे, यह विचार ठीक नहीं है, जो तुम कर रहे हो। क्योंकि हमको दक्षिण दिशा में ढूँढ़ने की आज्ञा है, सीता को लाने की आज्ञा नहीं है। हम लोग राक्षसों को मारकर और सीता को जीतकर वहाँ ले चलें और यह बात उनके मनमानी न हो तब क्या होगा? कारण यह है कि रामचन्द्र राजसिंह हैं और अपने कुल का गर्व रखते हैं। हम मुख्य वानरों के सामने उन्होंने सीता के जीतने की प्रतिज्ञा की है। भला यह बात कभी वे मिथ्या करेंगे? हमारा करना निष्फल हो जायगा और उनको संतोष भी न होगा। हम लोगों का पराक्रम दिखलाना सब व्यर्थ हो जायगा। इसलिए हे वानर भाइयो, चलो हम लोग वहाँ चलें और उनसे निवेदन करें।

दोहा

यद्यपि यह अनुचित नहीं, जस तुम करहु विचार।
पर रघुपति की मनोगति, राखि करहु व्यवहार॥

---

## ६१वाँ सर्ग

### वानरों का मधुवन में जाना और फल तोड़कर खाना

जाम्बवान् की सम्मति सबको अच्छी लगी। सबने उसको माना। सभी प्रसन्न हुए। अब वे मेरु-मन्दराकार वानर उस महेन्द्राचल पर से कूदकर आकाश में उड़ चले। वे लोग मतवाले गजेन्द्र की नाईं थे और उस समय आकाश को अच्छादन किये महाबली

वायुपुत्र ही की ओर दृष्टि किये चले जाते थे। उन पराक्रमी वानरों का शरीर विशाल था। आत्मज्ञ हनुमान् की सभी प्राणी प्रशंसा करते थे। वे दृष्टि के द्वारा मानों हनुमान् को उड़ाये लिये जाते थे। रामचन्द्र की अर्थ-सिद्धि का और परम यश की प्राप्ति का निश्चय करके वे कृतार्थ थे; कार्य की सिद्धि हो जाने से अति हर्षित और प्रिय समाचार कहने के लिए उत्सुक थे; वे युद्ध के लिए उत्साहवान् और रामचन्द्र का बदला लेने में दत्त-चित्त थे। वे सब शूर वानर जाते जाते मार्ग में मधुवन नामक सुग्रीव के वन के पास जा पहुँचे। वह नन्दन-वन के तुल्य था। उसमें सैकड़ों वृक्ष थे और वह सब प्राणियों के लिए अधृष्य और मनोहर था। दधिमुख नामक वानर उसकी सदा रक्षा किया करता था। वह बड़ा वीर था और सुग्रीव का मामा लगता था। सुग्रीव के प्रिय वन को देखकर वे वानर लोग मधु पीने के लिए अत्यन्त उत्कंठित हुए। अङ्गद से उन्होंने स्पष्ट कहा भी। तब अङ्गद ने जाम्बवान् इत्यादि वृद्ध और महावीर कपियों को यथेष्ट मधु-पान करने की आज्ञा दे दी। अब वे आज्ञा पाते ही भ्रमरों से भरे उन वृक्षों पर टूट पड़े; और वहाँ के सुगन्धयुक्त मूल और फलों को तोड़ तोड़ खाने लगे। इससे उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। वे मतवाले हो गये। राजपुत्र की आज्ञा पाने से वे सब के सब हर्षित और आनन्दित होकर नाचने, गाने, हँसने और प्रणाम करने लगे। कोई पढ़ने, ललकारने, कूदने, मिथ्या बकवाद करने, और एक दूसरे को पकड़ने लगे। कोई परस्पर कलह करने, कोई एक वृक्ष से दूसरे पर कूदने, वृक्ष पर से भूमि पर गिरने और फिर वेग से वृक्ष पर चढ़ने लगे। वहाँ से और भारी वृक्ष पर लाँघ जाने लगे। उनमें कोई गा रहा है तो उसके पास दूसरा हँसता हुआ जाता है। कोई रो रहा है तो उसके पास दूसरा रोता हुआ पहुँचता है। एक दूसरे को ढकेलता है तो वह भी उसको धक्का दे रहा है। इस प्रकार वह सेना की सेना गड़बड़ा उठी। उस सेना में ऐसा कोई न था जो मतवाला न हुआ हो, अथवा गर्व से भर न गया हो। दधिमुख ने देखा कि ये सब वन का वन खा जायँगे और इन्होंने वृक्षों के पतों और पुष्पों का विध्वंस कर डाला है तब वह उनको रोकने लगा परन्तु वे काहे को मानने लगे। वे उसी को डपटने लगे। दधिमुख भी तेजस्वी वानर था, अतएव वह रक्षा का उपाय करने लगा और बहुतों को गालियाँ देने और अनेकों को थपेड़ों से मारने लगा। कितनों ही से वह कलह करने और बहुतों को समझाने लगा। वे सब तो अमल से चूर होकर अत्यन्त वेगयुक्त हो गये थे; और वह अपने बल से इनको सर्वथा रोकना चाहता था। ये लोग निडर थे और दोष की ओर न देखते हुए इकट्ठे हो उसको खींचते थे। उसको नखों से बकोटते और दाँतों से काटते थे। थपेड़े मारकर और वृक्षों की मार से इन्होंने उसको मूर्च्छित कर दिया। ये सब ऐसे मतवाले हो गये। उस वन को इन्होंने बिलकुल उजाड़ डाला।

---

## ६२वाँ सर्ग

### मधुपान किया जाना और सुग्रीव के पास दधिमुख का जाना

हनुमान् बोले—हे वानरो, तुम यथेष्ट मधु-भक्षण करो; घबराओ मत, मैं तुम्हारे शत्रुओं को मारूँगा। यह सुनकर अङ्गद ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—हाँ, वानर लोग मधुपान करें; काम करके लौटे हुए हनुमान्

का वचन यदि अनुचित भी हो तो भी करना चाहिए और उचित की तो कुछ बात ही नहीं। अङ्गद का यह वचन सुनकर सब वानर प्रसन्नता से वाह-वाह करने लगे। फिर वे मधुवन में इस तरह घुसे जैसे नदी का वेग वृक्षों में घुस जाता है। हनुमान् सीता को देख आये थे और अन्य वानरों ने उनके मुँह से कुल कथा सुनी थी। इधर अङ्गद ने भी आज्ञा दे दी थी। इसलिए उन वानरों ने बेधड़क होकर वन-रक्षकों पर आक्रमण किया। अत्यन्त उद्धत होकर ये लोग मधु पीने और रसीले फल खाने लगे। वहाँ के सैकड़ों रखवाले इन्हें मना करते थे, इससे उनको ये उछल-उछल-कर पीटने लगे। बड़े-बड़े दोने बनाकर वे उनमें मधु भरते और बड़े हर्ष मे पीते थे। इकट्ठे होकर वे वनपालों को भी ताड़ना देते थे। पीते भी थे और बहुतेरे दूसरों पर उच्छिष्ट मधु फेंक देते थे। कितने ही वानर वृक्ष के नीचे शाखा पकड़े खड़े थे, और बहुतेरे अत्यन्त मद से मूर्छित होकर पत्ते बिछाकर सो रहे थे। वानरों का उन्मत्त की नाईं वेग हो गया। वे परस्पर गालियाँ देने और लटपटा कर गिरने लगे। कोई तो सिंहनाद और कोई बाँसुरी का सा शब्द बड़े हर्ष से करने लगे। अनेक मतवाले होकर भूमि पर सो रहे। उनमें से अनेक ढिठाई से हँसते थे, कोई दूसरी-दूसरी चेष्टा करते और कोई कुछ कहते और कोई उसका तात्पर्य कुछ और ही समझते थे।

वहाँ पर जो दधिमुख के सेवक मधुपाल थे, वे भी इन भयङ्कर वानरों के आघात से भाग गये। बहुत से रक्षकों की टाँगें पकड़कर इन्होंने घसीट डाला। टँगड़ी पकड़कर बहुतों को ऊपर फेंक दिया। वे सब अत्यन्त व्याकुल हो गये, और जाकर दधिमुख से कहने लगे कि देखिए, हनुमान् की आज्ञा से वानरों ने इस मधुवन का नाश कर डाला; उन्होंने हमको घुटनों से पीसा और पैर पकड़कर आकाश में फेंक दिया। दधिमुख ने यह बात सुनी और वन को विध्वंस होते देखा। तब उन वानरों को समझाया और कहा कि आओ अब इनको बल के द्वारा रोकें। दधिमुख का वचन सुनकर वे वानर साथ में चले। दधिमुख ने एक महावृक्ष लेकर उन पर धावा किया, और वे साथी वानर भी उसके साथ दौड़े। उनमें से अनेकों ने शिला, बहुतों ने वृक्ष और कई एक ने हाथ में पत्थर ले लिये। वे क्रोध करके अङ्गद आदि के ऊपर दौड़े और रोकने लगे। वे क्रोध से ओठों को चबाने और डपटने लगे। दधिमुख को क्रुद्ध देखकर हनुमान् इत्यादि वानर दौड़े। इतने में दधिमुख ने बड़े वेग से उस वृक्ष को चलाया। अङ्गद ने उसको दोनों हाथों से थाम लिया। उस समय अंगद मदान्ध हो गये थे। उन्होंने यह न समझा कि यह मेरे पितृव्य का मामा है; इसको मानना या इस पर कृपा करना चाहिए। उन्होंने झटपट दधिमुख को पकड़कर वेग से भूमि पर पटक दिया। उस रगड़ से दधिमुख के हाथ, जङ्घा और मुख सब टूट-फूट गया। वह व्याकुल हो गया। उसकी देह रक्त से तर हो गई। मुहूर्त्त भर के लिए वह मूर्च्छित हो गया। किसी प्रकार से उन वानरों के हाथ से छूटकर वह एकान्त में गया और अपने भृत्यों से कहने लगा—आओ, हम लोग स्वामी सुग्रीव के पास चलें और सब अपराध अंगद के ही ऊपर लगावें। वहाँ रामचन्द्र भी हैं। राजा हमारे क्रोधी हैं। वे अवश्य वानरों को मारेंगे। यह दिव्य वन सुग्रीव को बहुत प्यारा है। यह उनके पिता-पितामह की सम्पत्ति है। देव लोग भी इसको नहीं पा सकते। जब राजा इनका अपराध सुनेंगे तब इन मधुलोभियों का अवश्य घात करेंगे। ये मरणोन्मुख हैं। ये सब दुष्टात्मा, राजाज्ञा के शत्रु, वध

के ही योग्य हैं। क्रोध से उत्पन्न मेरा यह रोष तभी सफल होगा।

बस, वह अपने भृत्यों के साथ वहाँ से उड़ा और क्षण भर में वहाँ जा पहुँचा, जहाँ सूर्य के पुत्र सुग्रीव थे। वहाँ उसने रामचन्द्र, लक्ष्मण और सुग्रीव को बैठा देखा। समतल भूमि देखकर वह आकाश से नीचे उतरा। वनपालों का स्वामी महावीर दधिमुख वानर अपने भृत्यों के साथ दीनमुख होकर और हाथ जोड़कर सुग्रीव के चरणों पर गिर पड़ा।

---

## ६३वाँ सर्ग

### दधिमुख का वानरों के उपद्रव का वर्णन करना और सुग्रीव का प्रसन्न होकर उनको बुलवाना

सुग्रीव ने देखा कि मेरा मामा मेरे चरणों पर गिरा है। इसका कोई बड़ा भारी कारण होगा। यह सोच-विचारकर और चित्त से उद्विग्न होकर सुग्रीव बोले—उठो-उठो, तुम मेरे पैरों पर क्यों गिरे? मैं तुम्हें अभय देता हूँ। सच-सच कहो, ऐसी घबराहट तुमको क्यों हुई? मधुवन का तो मंगल है? मैं सुनना चाहता हूँ।

सुग्रीव के समझाने पर दधिमुख उठा और कहने लगा—राजन्, न तुम्हारे पिता ऋक्षराज ने, न तुमने और न बाली ने ही कभी किसी को वह वन यथेष्ट भोग करने के लिए दिया था; सो उस वन को वानरों ने नष्ट कर दिया। मेरे और इन वनपालों के मना करने पर भी उन्होंने मुझे कुछ न समझकर आनन्द से खाया और पिया। सिर्फ खाया ही नहीं किन्तु हमारी अप्रतिष्ठा भी की। हमको तुच्छ समझकर वे सम्पूर्ण वन को भक्षण कर रहे हैं। उनमें से कोई तो इधर आने को प्रवृत्त हैं, शेष वानर वहीं खा रहे हैं। मना करो तो भ्रुकुटी दिखाते हैं। ये भृत्य जब मना करने को उद्यत हुए तब उन्होंने इनको डपट दिया और उस वन से निकालने के लिए प्रवृत्त हुए। वे लाल-लाल आँखें करके इकट्ठे हो गये। उन्होंने किसी को थपेड़ों से और बहुतों को घुटनों से मारा और झकझोर डाला। बहुतों को उठा-उठाकर उन्होंने आकाश में फेंक दिया। राजन्, आप ऐसे स्वामी के विद्यमान रहते उन्होंने मार-पीट की और वन को उजाड़ दिया।

सुग्रीव की वह इस प्रकार प्रार्थना कर रहा था। इस पर श्री लक्ष्मण ने पूँछा—राजन्, यह वनपाल किसलिए आया है और दुःखित होकर किस बात के विषय में आपसे कह रहा है? उनसे वानरराज ने कहा—हे आर्य लक्ष्मण, यह दधिमुख वानर कहता है कि अङ्गद इत्यादि वीरों ने मधु भक्षण कर लिया। इससे मैं सोचता हूँ कि बिना कार्य किये ये लोग कभी ऐसी धृष्टता नहीं कर सकते कि समूचा वन नष्ट कर दें। अवश्य ही इन्होंने कार्य सिद्ध किया है। देखिए, मना करनेवाले वनपालों को उन्होंने मारा और मेरे वन के स्वामी इस दधिमुख को कुछ भी नहीं माना। हमीं ने इसको वहाँ तैनात किया है। सीतादेवी को हनुमान् ने देखा है; इसमें सन्देह नहीं। हनुमान् को छोड़ इस कार्य के साधन में दूसरा हेतु नहीं है। हनुमान् में ही कार्यसिद्धि, बुद्धि, उद्योग, वीर्य और शास्त्र पाये जाते हैं। जहाँ पर जाम्बवान् और अङ्गद नायक हैं और हनुमान् अधिष्ठाता हैं वहाँ कदापि अन्यथा गति नहीं

हो सकती। अङ्गद इत्यादि वानरों ने, दक्षिण दिशा को खोजकर और वहाँ से लौटकर, मधुवन का नाश किया है। वे उस वह में घुसे और उसको तोड़ा और खाया; उन्होंने वनपालों को पछाड़ा और मारा भी। यही बात कहने को दधिमुख आया है। हे सौमित्रे, इन वानरों ने सीता को देख लिया। यह आप भली भाँति विचार लीजिए; सीता को बिना देखे ये विख्यात वानर ऐसा काम कभी न करेंगे कि मधु को पियें और वरदान में मिले वन को उजाड़ें।

यह सुनकर लक्ष्मण बहुत प्रसन्न हुए। कानों को सुख देनेवाली यह वाणी सुग्रीव के मुँह से सुनकर श्रीरघुनन्दन भी बड़े प्रसन्न हुए। अब सुग्रीव ने कहा—हे दधिमुख, उन वानरों ने जो वन के फल-फूल आदि खा लिये इससे मैं प्रसन्न हूँ, क्योंकि उन्होंने बड़ा भारी कार्य किया है। उन्होंने जो ढिठाई की है उसे सह लेना चाहिए। अब तुम जाकर पूर्ववत् वन की रक्षा करो और उनको यहाँ भेज दो। उन सिंहतुल्य पराक्रमी हनुमान् आदि वीरों को मैं देखना चाहता हूँ। श्री रामचन्द्र और लक्ष्मण सहित मैं उन कृतार्थों से पूछना और सीता की प्राप्ति में प्रयत्न जानना चाहता हूँ।

दोनों राजकुमारों के नेत्र उस समय प्रीति से प्रफुल्लित थे। उनको अत्यन्त हर्षित देखकर वानरराज कृतार्थ हो गये। अङ्गों के हर्ष से उनको जान पड़ा कि कार्य की सिद्धि हाथ में आ गई।

—

## ६४वाँ सर्ग

### दधिमुख का जाकर वानरों को भेजना और उनका किष्किन्धा में आना

राजा की आज्ञा पाकर और राम, लक्ष्मण तथा सुग्रीव को प्रणाम करके दधिमुख अपने भृत्यों के साथ आकाश-मार्ग से उड़ चला। वह जिस प्रकार आया था उसी प्रकार शीघ्र वहाँ पहुँच गया। आकाश से भूमि पर उतरकर वह वन में गया। वे वानर अब न मतवाले थे और न उद्धत ही। उसी पिये हुए मधु के सदृश ही वे मूनते थे। उनको देखकर और उनके आगे हाथ जोड़कर दधिमुख ने अङ्गद से कहा—हे सौम्य, क्रोध मत करना। इन लोगों ने जो तुमको रोका था, सो केवल अज्ञान से; तुम थके हो और दूर से आये हो, इसलिए अपना मधु-भक्षण करो। हे महाबल, तुम युवराज और इस वन के स्वामी हो। हम लोगों ने मूर्खता से जो क्रोध किया सो क्षमा करो। जैसे तुम्हारे पिता वानरों के स्वामी थे वैसे तुम भी हो। सुग्रीव भी कोई दूसरे नहीं हैं। मैंने जाकर तुम्हारे पितृव्य से सब समाचार कहा; सो वे प्रसन्न हुए, रुष्ट नहीं। वन उजड़ जाने की खबर पाकर वे सन्तुष्ट हुए। हर्षित होकर उन्होंने कहा कि उन वानरों को शीघ्र मेरे पास भेजो। अब अङ्गद ने वानरों से कहा—भाई, मुझे जान पड़ता है कि रामचन्द्र ने यह वृत्तान्त सुन लिया है क्योंकि यह दधिमुख हर्ष से बोल रहा है। सो अब हमारा यहाँ ठहरना उचित नहीं। काम हो ही चुका है। यथेष्ट मधु पी लिया। शेष मार्ग अब है ही कितना जहाँ सुग्रीव हैं! जैसा आप लोग कहें तैसा मैं करूँ। यद्यपि मैं युवराज हूँ फिर भी आपके ही अधीन हूँ। आपको

किसी बात की आज्ञा नहीं दे सकता, क्योंकि कृतार्थ व्यक्तियों की धर्षणा करना अनुचित है। इस पर वानरों ने कहा—राजन्, प्रभु होकर कौन ऐसी बात कहेगा? क्योंकि ऐश्वर्य-मद से मत्त सभी अहङ्कारी होते हैं। ये वाक्य तुम्हारे ही योग्य हैं, दूसरे के नहीं। तुम्हारी यह नम्रता होनेवाले मंगल को सूचित करती है। हम सब वहाँ चलने के लिए तैयार हैं। तुम्हारे कहे बिना वानर लोग एक पैर भी कहीं नहीं चल सकते। हे वानरश्रेष्ठ, हम यह सत्य कहते हैं। तब अंगद बोले कि आओ, चलें।

अब वे आकाश में उड़े। इनको उड़ते देख सब सेनापति भी उड़े। उन्होंने आकाश को भर दिया। उन लोगों ने अंगद और हनुमान् को आगे किया और आप पीछे हो लिये। ये वानर, वायु-प्रेरित मेघ की नाईं, नाद करते चले। पहले अंगद ही वहाँ पहुँचे। उनको देखते ही शोक से सन्तप्त रामचन्द्र से सुग्रीव बोले—राजन्, प्रसन्न हो जाओ, सीता का पता लग गया; क्योंकि यदि इन्होंने सीता को न देखा होता तो, समय बीत जाने पर, ये वानर यहाँ कभी न आते। हे शुभ-दर्शन, अंगद के हर्ष से मैं जानता हूँ कि इन्होंने सीता का पता लगा लिया; नहीं तो कार्य नष्ट करके अंगद मेरे पास कभी न आ सकते। यद्यपि बिना कार्य किये भी वानर बाग को उजाड़ सकते हैं तथापि सीता को देखे बिना जो ये आते तो दीन-मुख और भ्रान्तचित्त होते। हमारे पुरखों के इस रक्षित बाग को ये कभी चौपट न कर डालते। हे रामचन्द्र, प्रसन्न हूजिए, हनुमान् ने सीता को अवश्य देखा है; क्योंकि इस कार्य के सिद्ध करने में वैसा दूसरा न होगा। हनुमान् में सिद्धि, मति, व्यवसाय, शूरता और शास्त्र सब कुछ है। जहाँ जाम्बवान् अंगद ऐसे नायक वानरेश्वर और हनुमान् ऐसे अधिष्ठाता हैं वहाँ अन्यथा गति नहीं हो सकती। हे अमित पराक्रमी, आप चिन्ता न कीजिए। जब ये इस प्रकार गर्वयुक्त भाव से इकट्ठे हो रहे हैं तब अवश्य कार्य-सिद्धि ही समझनी चाहिए। बिना कार्य-सिद्धि हुए इन वानरों का ऐसा औद्धत्य नहीं हो सकता कि ये वन को उजाड़ कर मधु पी लें।

यह बातचीत हो ही रही थी कि इतने में वानरों का किलकिला शब्द आकाश में समीप ही सुन पड़ा। ऐसा प्रतीत हुआ मानो ये सिद्ध को सूचित करते चले आते हों। उस शब्द को सुनकर सुग्रीव ने अपनी पूँछ फैलाकर सिकोड़ ली। उनका चित्त हर्षित हो गया। इतने में हनुमान् और अङ्गद को आगे किये वे वानर राम के दर्शन की इच्छा से आ पहुँचे। अत्यन्त हर्षित और गर्वयुक्त होकर वे लोग वानरराज और श्री रामचन्द्र के समीप आकाश से उतर पड़े। हनुमान् ने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया तथा रामचन्द्र से कहा—सीतादेवी नियमयुक्त और क्षति-रहित हैं। "सीतादेवी को देखा" यह अमृत के तुल्य वचन हनुमान् के मुँह से सुनते ही लक्ष्मण-सहित श्री राघव को हर्ष हुआ। सुग्रीव को तो निश्चय ही था कि हनुमान् के द्वारा कार्य की सिद्धि होगी। इसलिए राम-लक्ष्मण बड़ी प्रीति से हनुमान् की ओर देखने लगे।

---

## ६५वाँ सर्ग

### हनुमान् का सीता का समाचार कहना और रामचन्द्र को अभिज्ञान मणि देना

वानरों ने प्रस्रवण पर्वत पर जाकर रामचन्द्र और लक्ष्मण को प्रणाम किया। युवराज को आगे

करके और सुग्रीव को प्रणाम कर वे सीता का समाचार कहने लगे। रावण के रनिवास में अवरोध, राक्षसियों से डाँट-फटकार, रामचन्द्र में अनुराग और जैसा नियम किया गया था—ये सब बातें रामचन्द्र को वानरों ने सुनाईं। तब रामचन्द्र बोले—सीतादेवी कहाँ हैं, और हमारे विषय में उनका मन कैसा है? यह बात मुझसे कहो। यह सुनकर वानरों ने हनुमान् को आगे कर दिया; क्योंकि उस विषय को वही जानते थे। हनुमान् ने सीतादेवी को और उस दिशा को प्रणाम करके उनके दर्शन का समाचार कहना आरम्भ किया। सीता ने जो दिव्य मणि दी थी वह काञ्चन में जड़ी हुई और अपने तेज से प्रकाशमान थी। हनुमान् ने पहले वही रामचन्द्र को दी। फिर हाथ जोड़कर समाचार कहना आरम्भ किया—

हे राघव, मैं सौ योजन चौड़े समुद्र को लाँघकर सीता के देखने की इच्छा से पार गया। उस पार दुष्ट रावण की लंका नगरी है। वहाँ रावण के रनिवास में मैंने सीता को देखा। वे आप में ही अपना मनोरथ लगाये जीती हैं। विकराल राक्षसियाँ उनको बार-बार डपटती है। वे दुःख पा रही हैं। वे राक्षस के रनिवास में घिरी हुई हैं और एक वेणी धारण किये हैं; वे दीन, तुम्हारी चिन्ता में मग्न, भूमि पर सोती और ऐसी विवर्णाङ्गी हैं जैसी हेमन्त की कमलिनी हो। रावण से उनका कुछ भी प्रयोजन नहीं। वे मरने का निश्चय किये बैठी हैं। हे काकुत्स्थ, मैंने बड़े प्रयत्न से उनको ढूँढ़ा और आपके इक्ष्वाकुवंश का वर्णन करके उनका विश्वास दृढ़ किया। फिर उनके साथ बातचीत की और सब विषय कह सुनाया। सुग्रीव के साथ आपकी मैत्री होना सुनकर वे हर्षित हुईं। हे राघव, उनका चरित्र नियमयुक्त है। वे सदा आपमें भक्ति रखती हैं। हे महाभाग, इस प्रकार से मैंने जानकी को देखा। वे आपके विषय में बड़ी भक्तियुक्त हैं और उग्र तपस्या कर रही हैं। उन्होंने सन्देशरूप अभिज्ञान आपको सुनाया है, जो चित्रकूट में उस काक के विषय में आपने किया था। मुझ से यह कहा कि जैसा तुम देखे जाते हो वैसा ही रामचन्द्र को सब कह सुनाना। कहने लगीं—यह मणि बड़े यत्न से मैंने अपने पास रक्खी थी, सो यह सुग्रीव के सामने रामचन्द्र को देना। और भी कहा कि मनःशिला के तिलक का उनको स्मरण करवा देना। और यह बात कही कि जल से उत्पन्न हुई इस मणि को मैंने तुम्हारे लिए दिया। इसको देखने से मुझे तुम्हारे दर्शन के तुल्य आनन्द होता था। और कहा कि हे दशरथात्मज, एक महीने तक मैं जीवित रहूँगी, परन्तु महीने के ऊपर न जी सकूँगी; क्योंकि मैं राक्षसियों के वश में पड़ी हूँ। सीता ने इस प्रकार मुझसे कहा है। वे अत्यन्त कृश होकर धर्म-मार्ग पर आरूढ़ हो रही हैं और रावण के अन्तःपुर में मृगी की नाईं कैद हैं। हे रामचन्द्र, वहाँ का यही समाचार है। अब समुद्र पार होने के लिए उपाय कीजिए। जब हनुमान्जी को ज्ञात हो गया कि राम-लक्ष्मण को मेरी बातों पर विश्वास हो गया है तब उन्होंने सीता की दी हुई मणि रामचन्द्रजी को दे दी; और सीता का कहा हुआ सन्देशा भी कह सुनाया।

---

## ६६वाँ सर्ग

### मणि को देखकर रामचन्द्र का विलाप करना और कपि से फिर पूछना

हनुमान् के मुँह से समाचार पाकर रामचन्द्र ने उस मणि को हृदय से लगा लिया। फिर वे

और लक्ष्मण रोदन करने लगे। आँखों में आँसू भर-कर वे सुग्रीव से बोले—देखो, जैसे धेनु बछड़े को देखकर अपने स्तनों से दूध बहाने लगती है, उसी प्रकार इस उत्तम मणि के देखने से मेरा हृदय पिघल उठा। मेरे विवाह में जनक ने यह मणि सीता को दी थी। उसके मस्तक में बँधी यह बहुत ही भली देख पड़ती थी। यह मणि जल से निकली है और अत्यन्त श्रेष्ठ है। इन्द्र ने यज्ञ में सन्तुष्ट होकर मेरे श्वशुर को यह मणि दी थी। इसको देखकर मैंने पिता का और जनक का दर्शन पाया, अर्थात् इन दोनों का मुझे स्मरण हुआ; क्योंकि जनक ने यह मणि मेरे पिता के हाथ में दी थी। उस समय यह मणि उस प्यारी के मस्तक पर बहुत अच्छी लगती थी। इस घड़ी इसको देखने से मैं यही समझता हूँ मानो सीता मुझे मिल गई। हे सौम्य हनुमन्, सीता ने क्या कहा ? मुझसे बार-बार तुम वही बात कहो। उसकी बातें मुझे ऐसा आनन्द देती हैं जैसे मूर्च्छित व्यक्ति को पानी प्यारा लगता है। हे लक्ष्मण, अब इससे अधिक दुःख क्या होगा जो सीता को तो मैं देखता नहीं, पर उसके मस्तक की मणि को मै देखता हूँ। हे वीर, यदि महीने भर तक सीता जीती रहेगी तो मैं जानता हूँ बहुत समय तक जीवेगी। मैं तो क्षण भर भी उसके बिना नहीं जी सकता। हे कपे, जहाँ मेरी प्यारी को तुमने देखा है वहीं मुझे भी ले चलो। मैं उसका पता पाकर क्षण भर भी नहीं ठहर सकता। हे हनुमन्, वह अत्यन्त डरनेवाली सीता किस प्रकार उन भयंकर राक्षसों के बीच रहती है ? हा ! वर्षाकाल के अन्धकार से छूटे परन्तु मेघों से घिरे शरत्काल के चन्द्र की नाईं उसका मुख इस घड़ी शोभित न होता होगा। हे हनुमन्, सीता ने क्या कहा—मुझे ठीक-ठीक सुनाओ। इसी से मैं जीता रहूँगा, जैसे कि रोगी औषध से जीता है। सुन्दरी और मधुर बोलनेवाली मेरी भामिनी ने क्या कहा ? हे हनुमन्, वह इस घड़ी मुझसे बिछुड़ी हुई है। कहो, उसने क्या सन्देश दिया ? महादुःख पाकर जानकी किस प्रकार जीती है ?

---

## ६७वाँ सर्ग

### हनुमान् का विस्तारपूर्वक सीता का सन्देश कहना

रामचन्द्र के पूछने पर वायुपुत्र ने सीता का सम्पूर्ण सन्देश विस्तार से कहना आरम्भ किया—"हे पुरुश्रेष्ठ, सीता ने चित्रकूट की सम्पूर्ण बात कही;—जानकीदेवी आपके साथ सोती थीं और पहले उठीं। तब एक कौए ने उनके स्तनों के मध्य भाग में चोंच मारी। उस समय आप देवी की गोद में सो गये थे। वह कौआ आकर उनको पीड़ा देने और पहले की नाईं विदारने लगा। उस रक्त से आप सिच गये। इससे पीड़ित होकर देवी ने आपको जगाया तब आप जाग उठे। उनकी यह दशा देखकर आपने महा-विषधर साँप की नाईं क्रुद्ध होकर पूछा कि हे भीरु, अपने नखों के अग्रभागों से तुम्हारे स्तनों के मध्यभाग को किसने विदीर्ण किया है ? पाँच मुखवाले क्रुद्ध साँप से कौन खेल कर रहा है ? फिर आप देखने लगे तो वह कौआ आपको देख पड़ा। उसके तीखे तीखे नखों में रक्त लगा हुआ था। वह देवी के समीप खड़ा था। कौए के रूप में वह इन्द्र का पुत्र था। आपको देखते ही वह पृथ्वी के नीचे जा छिपा। उसकी गति वायु के तुल्य थी। तब तो

आपने टेढ़े-टेढ़े नेत्र करके उस कौए पर बड़ी कठोर मति की। कुश की चटाई से एक कुश निकाल कर उसको आपने ब्रह्मास्त्र-मन्त्र से अभिमंत्रित किया। तब वह कालाग्नि के सदृश उस पक्षी के समीप प्रदीप्त हुआ। उस कौए पर जब आपने वह प्रदीप्त कुश चलाया और वह कौए के पीछे दौड़ा तब देवताओं ने भी डरकर उस पक्षी को अपने शरण में न रक्खा। वह तीनों लोकों में घूमता फिरा पर कोई रक्षक न मिला। घूम-फिरकर वह आपके ही शरण में आया। वह कौआ आकर भूमि पर गिर पड़ा और शरण चाहता था। यद्यपि वह वध के योग्य था, तथापि आपने कृपा से उसका परिपालन किया। वह शस्त्र निष्फल नहीं हो सकता था, इसलिए आपने उसकी दाहिनी आँख फोड़ दी। तब वह कौआ आपको और महाराज दशरथ को प्रणाम करके अपने घर को गया। हे राघव, आप ऐसे अस्त्र के जाननेवाले, पराक्रमी और शीलवान् होकर भी राक्षसों पर अस्त्र का प्रयोग क्यों नहीं करते? हे राम, आपके समीप रण में न दानव खड़े रह सकते हैं न गन्धर्व, न दैत्य और न देवता ही। सो ऐसे महावीर आप यदि मेरा आदर करते हैं तो बाणों से शीघ्र रावण को मारिए; अथवा भ्राता की आज्ञा लेकर श्रीलक्ष्मण ही क्यों नहीं मेरी रक्षा करते! उन दोनों पुरुष-व्याघ्रों का तेज वायु और अग्नि के तुल्य है; उन्हें देव-दानव भी नहीं जीत सकते, वे क्यों मेरी ओर कृपा-दृष्टि नहीं करते? अथवा मेरा ही कोई बड़ा पाप है; क्योंकि दोनों भ्राता ऐसे समर्थ होकर भी मेरी रक्षा नहीं करते।" हे प्रभो, सीता का यह करुणायुक्त और योग्य वचन सुनकर मैंने कहा—देवि! मैं शपथ खाकर सच कहता हूँ कि रामचन्द्र तुम्हारे शोक से बहुत ही दीन हो रहे हैं। उनकी दीनता देखकर लक्ष्मण को बड़ा ताप होता है। हे देवि, भला किसी प्रकार से मैंने तुमको देखा तो। अब यह समय शोक करने का नहीं है। तुम इन दुखों का अन्त देखोगी। वे दोनों पुरुषसिंह तुम्हारे दर्शन के लिए उत्कण्ठित हैं, वे लंका को भस्म कर डालेंगे। इस दुष्ट रावण को और इसके बन्धुओं को मारकर वे तुमको अपनी पुरी में ले जायँगे। हे अनिन्दिते, जिस अभिज्ञान को रामचन्द्र जानते हों और जिससे उनको प्रीति उत्पन्न हो वह मुझे दो। तब उन्होंने इधर-उधर देखकर वेणी में बाँधने की यह दिव्य मणि अपने वस्त्र में से खोलकर मुझे दे दी। हे रघुप्रिय, आपके लिए यह मणि लेकर और सीता को प्रणाम करके मैंने इधर आने का विचार किया। जब सीता ने देखा कि यह जाना चाहता है और इसने अपना रूप विशाल कर लिया तब उन्होंने आँसू भर लिये; उनकी वाणी गद्गद हो गई। मुझे वहाँ से रवाना होते देख वे व्याकुल और शोक-मूर्च्छित होकर बोलीं—हे महाकपे! तुम भाग्यवान् हो क्योंकि तुम उन कमल-लोचन महाबाहु राम को और मेरे देवर श्री लक्ष्मण को देखोगे। इस पर मैंने कहा—देवि, आओ मेरी पीठ पर सवार हो लो। मैं तुमको अभी राम-लक्ष्मण और सुग्रीव के दर्शन कराता हूँ। तब वे बोलीं—हे वीर, यह धर्म नहीं है कि हम बुद्धिपूर्वक तुम्हारी पीठ पर सवार हों। यदि कहो कि मैं राक्षस के शरीर से छू गई थी तो मैं उस समय अवश थी। अस्तु, तुम वहाँ जाओ जहाँ वे दोनों भाई हैं। इसके पश्चात् सीता फिर कहने लगीं कि हनुमन्! राम, लक्ष्मण और सचिव सहित सुग्रीव से मेरा आरोग्य कहना। तुम जाकर राघव से ऐसा कहना जिससे वे महाबाहु इस दुःखसागर से मुझे उबार लें। यह राक्षसों का डपटना और धमकाना और मेरे शोक का तीव्र वेग तुमने देखा ही है। राम के समीप जाकर

इसका उल्लेख करना। मेरे तीव्र शोक के वेग का समाचार उनको सुनाना। हे वानरश्रेष्ठ! तुम्हारा मार्ग मङ्गल-मय हो।

राजन, इस प्रकार से विषादपूर्वक सीता ने वचन कहे हैं। अब आप इसको समझकर सीता की रक्षा में तत्पर हूजिए।

—

## वाँ सर्ग

### फिर सीता का सन्देश कहना

हनुमान् फिर बोले कि हे नरव्याघ्र! सीता ने स्नेह और सौहार्द से और भी कहा था—हे कपे, तुम इस प्रकार मेरे लिए रामचन्द्र से बहुत बार कहना जिससे कि वे रावण को मारें और मुझे शीघ्र मिलें। हे वीर, यदि तुम्हारी इच्छा हो तो किसी गुप्त स्थान में एक दिन टिक रहो और श्रम को दूर करो; कल चले जाना। तुम्हारे रहने से मुझ अभागिनी का शोक मुहूर्त्त भर कम रहेगा। तुम्हारे चले जाने और वहाँ से आने तक मेरे प्राणों के रहने का सन्देह है। तुम्हें न देखने से मुझे भय पीड़ित करेगा। अब कठिन दुःख मेरे लिए उपस्थित होगा। मैं इस समय दुःख-भागिनी हो रही हूँ। मुझे एक बड़ा सन्देह है कि वह वानरी सेना इस दुष्पार समुद्र को कैसे पार करेगी। वे दोनों वीर इस पार कैसे आवेंगे, क्योंकि मैं इसे पार करने में तीन का ही सामर्थ्य देखती हूँ—अर्थात् गरुड़ का, वायु का और तुम्हारा। हे वीर, बतलाओ इस दुष्कर कार्य में तुम क्या उपाय सोचते हो? इस कार्य के साधन में अकेले तुम्हीं समर्थ हो, इसमें सन्देह नहीं, क्योंकि तुम्हारे बल का उदय यशस्वी है। यदि रामचन्द्र यहाँ आवें और सम्पूर्ण सेना समेत रावण को मार विजयी होकर मुझे अपनी नगरी में ले चलें तो यह काम यश का देनेवाला हो। रामचन्द्र के आश्रम से रावण ने, उनके डर से, जिस प्रकार छलपूर्वक मेरा हरण किया है वह राघव के पक्ष में अनुचित है। इसलिए वे सेना लाकर लङ्का को विध्वंस करें और मुझे यहाँ से ले चलें तो उनके योग्य हो। तुम वैसा ही करना जो रामचन्द्र के पराक्रम के योग्य हो। हे रामचन्द्र, देवी का इस प्रकार से नम्रता-युक्त और हेतु से भरा हुआ वाक्य सुनकर मैंने उत्तर दिया—हे देवि, वानर-सैन्य के स्वामी सुग्रीव बड़े पराक्रमी हैं। तुम्हारे लिए उन्होंने निश्चय कर रक्खा है। जो वानर बड़े पराक्रमी, वीर्यवान्, बली और मन के सङ्कल्प के सदृश हैं वे उनकी आज्ञा में हाथ बाँधे खड़े रहते हैं। उन वानरों की गति ऊपर, नीचे और बेंड़े, किसी प्रकार से भी नहीं रुक सकती। वे ऐसे अमित तेजस्वी हैं कि बड़े-बड़े कामों में भी उनको न तो श्रम होता है और न दुःख। कई बार उन्होंने पृथ्वी की प्रदक्षिणा की है; क्योंकि वे वायु के मार्ग का अनुसरण कर सकते हैं। उनमें बहुत से तो मुझसे अधिक और बहुत से मेरे तुल्य हैं। सुग्रीव के पास मुझसे हीन-पराक्रमी कोई भी वानर नहीं है। देखो, मैं जब यहाँ आ पहुँचा हूँ तब उन महाबलियों की क्या बात है? क्योंकि भेजे छोटे ही जाते हैं, बड़े नहीं। हे देवि, इस विषय में तुम्हारा सन्ताप करना व्यर्थ है। तुम दीनता को छोड़ दो। वे सब वानर-सेनापति तो एक ही छलाँग में यहाँ आ पहुँचेंगे। हे महाभागे, वे दोनों मनुष्यसिंह चन्द्र और सूर्य के सदृश उदित हैं, मेरी पीठ पर चढ़कर वे तुम्हारे पास आ पहुँचेंगे। उन शत्रुओं के नाशक और सिंहतुल्य पराक्रमी श्रीराम-लक्ष्मण को तुम लङ्का के

द्वार-देश पर खड़े देखोगी। नख और दाँत ही जिनके आयुध हैं, जो सिंहशार्दूल के तुल्य पराक्रमी हैं और गजेन्द्र के सदृश विशाल हैं ऐसे वीर वानरों को तुम यहाँ इकट्ठे देखोगी। तुम शीघ्र ही सुनोगी कि पर्वत और मेघ के तुल्य शरीरधारी मुख्य वानर लङ्का के मलय पर्वत पर गरजते हैं। वनवास के नियमों से निवृत्त और अपने साथ अयोध्या के राज्य पर अभिषिक्त श्रीरामचन्द्र को शीघ्र ही तुम देखोगी। हे रघुनन्दन, इस प्रकार की मङ्गल और इष्ट बातों से मैंने उनको प्रसन्न किया। तब वे दीनता छोड़कर शान्त हुईं। फिर भी वे तुम्हारे शोक से पीड़ित ही हैं।

दोहा

करुणानिधि रघुवंशमणि, प्रणतन के परिपाल।
भव-तापत्रय-हरणहित, तेहि प्रणमत गोपाल॥
श्रीमान् सुन्दरकाण्डोयं हनुमद्विक्रमाश्रितः।
अन्ववादि सदानन्ददायी गोपालशर्म्मणा॥*

---

* सुन्दरकाण्ड का हिन्दी भाषा मे अनुवाद मैं (गोपाल शर्म्मा) ने किया। इस काण्ड में महावीर श्रीहनुमान्‌जी के विक्रम का वर्णन है और यह सज्जनों को सदा आनन्द देनेवाला है।